RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 75 अंक : 12
मार्च, 2026

नारी शक्ति

संस्कार, संवेदना, सृजन और
समर्पण की अनंत यात्रा

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

www.arpsguwahati.com

वर्ष : 75 | अंक : 12 | मार्च, 2026

परामर्श मंडल

भारतभूषण महंत (असम) • **प्रो. आर. एस. सर्राजु** (तेलंगाना) • **प्रो. किरण हाजरिका** (पंजाब)
• **प्रो. प्रदीप के शर्मा** (सिक्किम) • **प्रो. एच. एन. वाघेला** (गुजरात) • **डॉ. रीतामणि वैश्य** (असम)

संपादक मंडल

प्रो. देवाशीष महापात्र (तेजपुर) • **डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन** (गुवाहाटी) • **प्रो. दिलीप कुमार मेधी** (गुवाहाटी)
• **डॉ. अनुशब्द** (तेजपुर) • **डॉ. कुसुम कुंज मालाकार** (गुवाहाटी) • **डॉ. जुरी दत्त** (तेजपुर)
• **डॉ. अंबेश्वर गोगोई** (गुवाहाटी) • **डॉ. प्रांजल शर्मा वशिष्ठ** (गुवाहाटी) • **डॉ. स्वप्नाली दास** (गुवाहाटी)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया

संपादक

प्रो. मोहन

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature, Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32

फोन : 9101541395, 9101541380

ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : 100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा. लिमिटेड, इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

© सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	हिंदी विभाग		
	संपादकीय		*5*
1.	भारतीय संस्कृति और साहित्य में नारी की बदलती छवि : परंपरा, प्रतिरोध और समकालीन पुनर्पाठ	✍ डॉ. अनुशब्द	7
2.	भक्ति आंदोलन और हिंदी साहित्य	✍ डॉ. हरिनिवास पाण्डेय	25
3.	भगिनी निवेदिता के चिंतन में भारतीय राष्ट्रवाद, शिक्षा और सांस्कृतिक चेतना	✍ डॉ. ब्रजेश कुमार प्रसाद	31
4.	प्रतिरोध की संस्कृति और प्रतिबंधित हिंदी साहित्य	✍ डॉ. उपमा शर्मा	37
5.	नागार्जुन की काव्यगत विशेषताएँ : एक आलोचनात्मक अध्ययन	✍ डॉ. पुष्पा सिंह	43
6.	स्त्री-शिक्षा और आधुनिक भारतीय शिक्षा नीति	✍ डॉ. रुचिरा वर्मा	51
7.	हरिशंकर परसाई की रचना-दृष्टि में कबीर के समाज-सुधारक रूप और गांधी के राष्ट्रपिता रूप का विरोधाभासी चित्रण	✍ सीमा सिंह	57
8.	रामराज्य, गांधी और आधुनिक यूटोपियन समाज : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	✍ डॉ. विजेता लक्ष्मी	64
9.	भारतेंदु की गजलों में प्रेम और भक्ति का स्वरूप	✍ डालेश शर्मा ✍ डॉ. शशिकांत मिश्र	70
10.	गोपालदास नीरज : कविता, गीत और संवेदना के सम्राट	✍ अनुराग सिंह	78
11.	सांख्य शब्द का यथार्थ : सूत्रों का संयोजन	✍ हिमाद्री शर्मा ✍ पपी कलिता	83
12.	काशीनाथ सिंह की कहानियों में स्त्री चेतना	✍ उजमा अहद ✍ डॉ. बृजेंद्र कुमार अग्निहोत्री	88
13.	कामायनी : मनु के द्वंद्व से उपजा सृजन बिंदु	✍ ऋषिकेश कुमार	92
14.	'अल्मा कबूतरी' : स्त्री चेतना के जागरण में शिक्षा का महत्व	✍ मनीषा मोरांग	96
15.	लीलाधर जगूड़ी के काव्य में लोक और अभिजात्य का समन्वय	✍ गणेश प्रसाद	101
	पुस्तक समीक्षा		
16.	प्रो. प्रदीप के शर्मा की पुस्तक 'संस्कृति-पथ के पथिक'	✍ डॉ. मुकेश कुमार	109

অসমীয়া বিভাগ

17.	ভক্তি সাহিত্যত আধিপত্য আৰু প্ৰান্তীয়কৰণ বিৰোধী চেতনা	✍ ড° শিখা দেৱী নাথ	112
18.	অসমৰ পিতল শিল্প ঃ এটি আলোচনা	✍ ড° প্ৰতুল ডেকা	117
19.	অসমীয়া লোকগীতত অসমৰ ইতিহাস সন্ধান	✍ ড° মন্মী বৰুৱা	124
20.	ৰাজাবালা দাসৰ তিনিকুৰি দহবছৰৰ স্মৃতি আত্মজীৱনীত সমসাময়িক সমাজ জীৱন, নাৰীৰ স্থিতিৰ প্ৰতিফলন	✍ ড° তাম্ৰপালি ৰাজকোঁৱৰ	129
21.	হোমেন বৰগোহাঞিৰ 'অস্তৰাগ' ঃ এক পৰ্যালোচনা	✍ ড° নন্দিতা গোস্বামী	137
22.	অসমীয়া স্থানচ্যুতিকেন্দ্ৰিক উপন্যাসত প্ৰতিফলিত মানসিক আঘাত (ট্ৰমা) ৰ চিত্ৰণ ঃ এক অধ্যয়ন	✍ প্ৰীতম দুৱৰা ✍ ড° অম্বেশ্বৰ গগৈ	149
23.	অসমীয়া-বঙালীৰ সম্পৰ্কসূত্ৰ আৰু সন্তোষ কুমাৰ কৰ্মকাৰৰ উপন্যাস 'শিপাৰ সন্ধানত'	✍ শিল্পী শৰ্মা ✍ ড° লুট্‌ফা হানুম ছেলিমা বেগম	163
24.	শংকৰদেৱ আৰু গোপাল আতাৰ সাঁচিপতীয়া নাট্য পুথিৰ আংগিক বিচাৰ	✍ মমী দত্ত ✍ ড°উৎপল নাৰায়ণ গোস্বামী	169
25.	বিকাশ বৰুৱাৰ ব্যংগ সাহিত্য চটপ ঃ এটি চমু আলোচনা	✍ ডিম্পী দাস ✍ ড° কল্পনা শৰ্মা কলিতা	175
26.	ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাৰ উপন্যাস 'আজাৰ'ৰ ইতিহাসনিৰ্ভৰতা	✍ সমীৰ শংকৰ দত্ত ✍ ড° কল্পনা শৰ্মা কলিতা	180
27.	সাংবাদিক জীৱনৰ অভিজ্ঞতা আৰু ঐতিহাসিক তথ্যৰ দলিল ৰূপে সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ স্মৃতি বিচিত্ৰা	✍ ৰিম্পী ৰাণী দত্ত ✍ ড° বিদিশা বুঢ়াগোহাঁই	187
28.	মিচিং ভাষা চৰ্চা ঃ এটি আলোচনা	✍ ড° ৰিন্‌চিন্ বৰুৱা ✍ ড° দিলীপ ৰাজবংশী	195
29.	চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ দেউকুবেৰ উৎসৱ ঃ এক অধ্যয়ন	✍ ভৃগুত্তম বৰা ✍ ড° ধীৰাজ পাটৰ	202
30.	অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ ঃ এক তুলনামূলক অধ্যয়ন	✍ কিৰণ ৰবিদাস	210
31.	'অসম সাহিত্য সভা'ৰ মহিলা সভাপতিৰ অভিভাষণত প্ৰতিফলিত জাতীয় চেতনা	✍ ডৰথী শইকীয়া ✍ ড° পাপুমণি হাজৰিকা	217
32.	অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ	✍ নয়ন চেতিয়া ✍ ড° পুষ্পাঞ্জলি হাজৰিকা	225
33.	নৰকান্ত বৰুৱাৰ উপন্যাসত চিত্ৰিত সমাজ জীৱন ('কপিলীপৰীয়া সাধু' উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লিখনসহ)	✍ লীমা কলিতা ✍ ড° মহেশ্বৰ কলিতা	237
34.	শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৃতিত প্ৰতিফলিত উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী আৰু বৰ্তমান ইয়াৰ প্ৰাসংগিকতা	✍ অপূৰ্ব নাথ	241
35.	য়েছে দৰজে ঠংচিৰ চুটিগল্প 'মৃত্যু' ঃ মাতৃভাষা অৱলুপ্তিৰ মৰ্মন্তুদ চিত্ৰণ	✍ অৰূপ চন্দ্ৰ দাস	248
36.	প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যৰ ভাষা সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক পৰ্যবেক্ষণ	✍ ঋতুপৰ্ণা শইকীয়া	254

❑❑❑

संपादकीय

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के दौर में भाषाई पहचान का सवाल

भाषा सिर्फ बोलने-लिखने का जरिया नहीं होती। यह तो वह चीज है जिसमें हम सपने देखते हैं, क्षुब्ध होते हैं, प्यार जताते हैं। जिस भाषा में हम सोचते हैं, वही भाषा हमारी पहचान का हिस्सा बन जाती है। और अब जब पूरी दुनिया डिजिटल हो रही है, कृत्रिम बुद्धिमत्ता हर जगह प्रवेश कर रही है, तो सवाल यह उठता है : क्या हमारी भाषाएँ इस बदलाव में बचेंगी, या पीछे छूट जाएँगी? जवाब सीधा नहीं है। तकनीक ने भाषाओं को बचाने का मौका भी दिया है और उन्हें मिटाने का खतरा भी साथ लाया है।

भारत में यह बात और भी ज्यादा मायने रखती है। यहाँ सैकड़ों भाषाएँ और हजारों बोलियाँ सदियों से एक साथ रहती आई हैं। लेकिन आज स्कूल में, नौकरी में, यहाँ तक कि सामाजिक प्रतिष्ठान में भी अंग्रेजी का दबदबा साफ दिखता है। यह सिर्फ भारत की बात नहीं, यूनेस्को कहता है कि दुनिया की हजारों भाषाएँ इस सदी के समाप्त होने तक गायब हो सकती हैं। वजह? डिजिटल दुनिया कुछ ही भाषाओं - जैसे अंग्रेजी, चीनी, स्पेनिश के इर्द-गिर्द बनी है। जो भाषा इंटरनेट पर ठीक से मौजूद नहीं, उसमें नई पीढ़ी की दिलचस्पी अपने-आप कम होती जाती है और यहीं कृत्रिम बुद्धिमत्ता की एंट्री होती है, जो कभी मदद करती दिखती है, कभी खतरा बन जाती है।

मशीन ट्रांसलेशन, आवाज पहचानने वाली तकनीक, ये सब आज इतनी आगे बढ़ चुकी हैं कि वे भोजपुरी, मैथिली, संथाली जैसी भाषाओं को भी डिजिटल दुनिया में जगह दे सकती हैं, जिनमें अब तक न लिखी हुई सामग्री ज्यादा थी, न डिजिटल मौजूदगी। अगर कृत्रिम बुद्धिमत्ता के मॉडल्स को हिंदी, तमिल, बांग्ला, असमिया, मराठी जैसी भाषाओं का अच्छा डेटा मिले, तो ये भाषाएँ भी ऑनलाइन दुनिया में मजबूती से खड़ी हो सकती हैं। स्कूल, हॉस्पिटल, सरकारी दफ्तर, हर जगह मातृभाषा में काम हो सकता है, जो किसी भी इंसान के लिए बहुत मायने रखता है। भारत सरकार की भाषिणी जैसी कोशिशें इस दिशा में अच्छा कदम हैं, मकसद है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता के जरिए भारतीय भाषाओं के बीच आसानी से बात-चीत हो सके। अगर इन प्रोजेक्ट्स को सही सहारा मिलता रहे, तो क्षेत्रीय भाषाएँ भी डिजिटल मुख्यधारा का हिस्सा बन सकती हैं, लेकिन एक बड़ी दिक्कत भी है। ज्यादातर बड़े कृत्रिम बुद्धिमत्ता मॉडल अंग्रेजी के भारी-भरकम डेटा पर प्रशिक्षित होते हैं। नतीजा यह है कि हिंदी में जवाब देने वाली कृत्रिम बुद्धिमत्ता भी अक्सर अंग्रेजी जैसी सोच में बँधी रहती है, बस शब्द बदल देती है, पर भाषा की असली रूह, उसकी कहावतें, उसका लहजा, उसका माहौल, वह सब गायब हो जाता है। कुछ भाषाविद् इसे 'नए तरीके का भाषाई उपनिवेशीकरण' कहते हैं, भाषा दिखती तो है, पर उसके पीछे की सोच धीरे-धीरे दूसरी भाषा जैसी बनने लगती है। एक और चिंता है, जब मशीन एक ही ढर्रे में भारी मात्रा में कंटेंट बनाने लगती है, तो भाषा की वह स्थानीय खूबसूरती, बोलियों का रंग, धीरे-धीरे पीछे छूट जाता है। जैसे अवधी, ब्रज, बुंदेली, ये बोलियाँ मौखिक परंपरा में बहुत समृद्ध हैं, पर लिखी हुई डिजिटल सामग्री इनमें कम है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के दौर में ये और भी पीछे छूट सकती हैं।

तो अब सवाल यह है कि तकनीक और भाषाई विविधता, दोनों को साथ कैसे ले जाएँ। कुछ बातें जरूरी लगती हैं। पहली, नीति बनाने वालों को यह तय करना होगा कि कम बोली जाने वाली भाषाओं का डेटा इकट्ठा करने को प्राथमिकता दी जाए, और वह डेटा सही, विविध और भाषा की संस्कृति को दिखाने वाला हो। दूसरी, स्कूलों में मातृभाषा में पढ़ाई को बढ़ावा मिले, और कृत्रिम बुद्धिमत्ता को सिर्फ मदद के लिए इस्तेमाल किया जाए, उसकी जगह लेने के लिए नहीं। तीसरी, लेखकों, भाषाविदों और टेक एक्सपर्ट्स को मिलकर काम करना होगा, ताकि कृत्रिम बुद्धिमत्ता सिर्फ व्याकरण नहीं, भाषा की आत्मा भी समझे। सबसे अहम बात, भाषा को बचाने का काम सिर्फ तकनीक के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। तकनीक तो एक औजार है, उसे कैसे इस्तेमाल करना है, यह समाज और सरकार की मर्जी पर निर्भर करता है। जापान, फ्रांस, इजराइल जैसे देशों ने अपनी भाषा पर गर्व बनाए रखा और उसे आधुनिक भी बनाया। भारत और बाकी बहुभाषी देशों को भी यह समझना होगा कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का यह दौर भाषाओं के लिए अंत नहीं, बल्कि एक नई शुरुआत भी हो सकता है, बस इसे समझदारी और सही योजना से अपनाना होगा।

कुल मिलाकर, भाषा और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का यह रिश्ता न पूरी तरह बुरा है और न ही पूरी तरह अच्छा। यह इस पर निर्भर करता है कि हम इसे किस दिशा में ले जाते हैं। अगर कृत्रिम बुद्धिमत्ता को भाषाई विविधता बचाने और बढ़ाने के लिए इस्तेमाल किया जाए, तो यह सैकड़ों भाषाओं को नई जान दे सकती है, पर यदि इसे सिर्फ व्यवसाय और सुविधा के नाम पर कुछ बड़ी भाषाओं तक सीमित रखा गया तो यह इंसानी सभ्यता की सबसे बड़ी दौलत, उसकी भाषाई विविधता को खत्म कर सकती है और यह जिम्मेदारी तकनीक की नहीं, हमारी अपनी है।

अंत में इस अंक के लेखकों को हार्दिक बधाई।

– मोहन

❑❑❑

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

भारतीय संस्कृति और साहित्य में नारी की बदलती छवि : परंपरा, प्रतिरोध और समकालीन पुनर्पाठ

डॉ. अनुशब्द

वरिष्ठ सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
एवं सह संकायाध्यक्ष, छात्र कल्याण
तेजपुर विश्वविद्यालय
नपाम, तेजपुर (असम)-784028
9555638788
dranushabda@gmail.com

शोध-सार :

भारतीय संस्कृति और साहित्य में नारी की छवि किसी स्थिर, एकरेखीय अथवा निर्विवाद अवधारणा के रूप में विकसित नहीं हुई है। उसके भीतर सम्मान और नियंत्रण, शक्ति और पराधीनता, सृजन और मौन, आत्मदान और आत्मान्वेषण जैसी परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ आरंभ से सक्रिय रही हैं। भारतीय चिंतन ने एक ओर नारी को प्रकृति, शक्ति, पृथ्वी, विद्या, समृद्धि और मातृत्व के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित किया, तो दूसरी ओर सामाजिक संस्थाओं, रूढ़ियों और पुरुष-केंद्रित मर्यादाओं ने उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को सीमित भी किया। साहित्य ने इस द्वंद्व को केवल प्रतिबिंबित ही नहीं किया, बल्कि समय-समय पर उसकी आलोचना, पुनर्व्याख्या और अतिक्रमण भी किया है। ऋग्वैदिक ऋषिकाओं की आत्मविश्वासी वाणी, उपनिषदों की गार्गी और मैत्रेयी की दार्शनिक जिज्ञासा, महाकाव्यों की सीता और द्रौपदी की नैतिक दृढ़ता, भक्ति साहित्य की मीरा का निर्भीक आत्मसमर्पण, नवजागरणकालीन सुधारवादी चेतना, आधुनिक साहित्य की संघर्षशील स्त्री तथा समकालीन कविता में उभरती दलित, आदिवासी, श्रमशील और स्वायत्त नारी—ये सभी भारतीय स्त्री-छवि की परिवर्तनशील यात्रा के महत्त्वपूर्ण पड़ाव हैं।

प्रस्तुत आलेख भारतीय संस्कृति और साहित्य में नारी की बदलती छवि का ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय और साहित्यिक अनुशीलन करता है। इसका उद्देश्य केवल यह सिद्ध करना नहीं है कि प्राचीन भारत में नारी सम्मानित थी अथवा वह सर्वथा पराधीन थी; बल्कि उन जटिल प्रक्रियाओं को समझना है जिनके बीच स्त्री की अस्मिता निर्मित, नियंत्रित और पुनर्निर्मित होती रही। आलेख में वैदिक एवं उपनिषदिक स्त्री से लेकर मध्यकालीन भक्त कवयित्रियों, औपनिवेशिक आधुनिकता, राष्ट्रीय आंदोलन, हिंदी नवजागरण, छायावाद, कथा-साहित्य, स्त्री-विमर्श तथा आधुनिक कवयित्रियों तक की स्त्री-चेतना का विश्लेषण किया गया है। साथ ही यह प्रश्न भी विचार के केंद्र में रखा गया है कि देवी के रूप में स्त्री की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा वास्तविक स्त्रियों की सामाजिक स्वतंत्रता में किस सीमा तक रूपांतरित हो सकी। अध्ययन का केंद्रीय निष्कर्ष यह है कि भारतीय साहित्य में नारी की यात्रा वर्णित वस्तु से स्वयं अपना अनुभव लिखने वाली सर्जक बनने की यात्रा है; किंतु यह यात्रा अभी पूर्ण नहीं हुई है।

बीज शब्द :

भारतीय संस्कृति, नारी-छवि, स्त्री-अस्मिता, वैदिक स्त्री, पितृसत्ता, स्त्री-विमर्श, शक्ति, मातृत्व, साहित्यिक प्रतिनिधित्व, प्रतिरोध, आधुनिक कवयित्रियाँ, दलित स्त्री, आदिवासी स्त्री, स्वायत्तता, समकालीनता।

मुख्य विषय-वस्तु :

नारी-छवि का सांस्कृतिक द्वंद्व और साहित्यिक यात्रा किसी भी सभ्यता को पहचानने का एक विश्वसनीय तरीका यह है कि वह अपने समाज की स्त्रियों को किस दृष्टि से देखती है, उन्हें कितनी स्वतंत्रता प्रदान करती है और उनके अनुभवों को अपनी सांस्कृतिक स्मृति में किस रूप में सुरक्षित करती है। संस्कृति केवल पूजा-पद्धतियों, उत्सवों, वेशभूषा, रीति-रिवाजों और कलाओं का समुच्चय नहीं होती; वह मनुष्य और मनुष्य के बीच निर्मित संबंधों, अधिकारों, निषेधों और मूल्य-व्यवस्थाओं की भी अभिव्यक्ति होती है। इसलिए भारतीय संस्कृति में नारी की स्थिति का मूल्यांकन केवल देवियों की प्रतिष्ठा, मातृशक्ति के जयघोष अथवा कुछ आदर्श नारियों के आख्यानों के आधार पर नहीं किया जा सकता। इसके लिए यह भी देखना आवश्यक है कि वास्तविक सामाजिक जीवन में स्त्री को शिक्षा, संपत्ति, निर्णय, प्रेम, विवाह, देह, श्रम, सृजन और असहमति के कितने अधिकार प्राप्त थे। भारतीय परंपरा का एक अत्यंत आकर्षक, किंतु जटिल पक्ष यह है कि उसने स्त्री को एक साथ देवी और दासी, शक्ति और सहनशीलता, जननी और पराश्रिता, गृहलक्ष्मी और परिवार की संपत्ति जैसे परस्पर विरोधी रूपों में देखा। यही द्वैत भारतीय साहित्य में भी बार-बार लौटता है और प्रत्येक युग अपने सामाजिक अनुभवों तथा वैचारिक आवश्यकताओं के अनुसार उसकी नयी व्याख्या करता है।

भारतीय साहित्य में नारी की बदलती छवि का इतिहास वस्तुत: भारतीय समाज की आत्मालोचनात्मक चेतना का इतिहास भी है। आदिकालीन साहित्य में जहाँ स्त्री के अनुभव को प्राय: पुरुष कवि, शास्त्रकार अथवा आख्यानकर्ता अभिव्यक्त करते हैं, वहीं आगे चलकर स्त्री स्वयं अपनी इच्छा, वेदना, स्मृति, आकांक्षा और प्रतिरोध की भाषा रचती है। इस परिवर्तन को केवल साहित्यिक शैली का परिवर्तन मानना पर्याप्त नहीं होगा; यह अभिव्यक्ति के अधिकार और ज्ञान की सत्ता में हुए परिवर्तन का संकेत है। महादेवी वर्मा ने भारतीय नारी की विषम स्थितियों को अनेक दृष्टि-बिंदुओं से देखने की बात कहते हुए स्वीकार किया था कि *अन्याय के प्रति मैं स्वभाव से असहिष्णु हूँ, अत: इन निबंधों में उग्रता की गंध स्वाभाविक है, परंतु ध्वंस के लिए ध्वंस के सिद्धांत में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा।*[1] यह कथन स्त्री-विमर्श की उस भारतीय दृष्टि को उद्घाटित करता है जो सामाजिक संबंधों को नष्ट करने के बजाय उनमें निहित अन्याय को बदलना चाहती है। यहाँ प्रतिरोध परिवार अथवा पुरुष के विरुद्ध कोई यांत्रिक युद्ध नहीं, बल्कि मनुष्यता को अपूर्ण बनाने वाली असमानता के विरुद्ध संघर्ष है।

भारतीय संस्कृति में स्त्री की छवि पर विचार करते समय 'आदर्श' और 'यथार्थ' के अंतर को समझना विशेष रूप से आवश्यक है। किसी सभ्यता में स्त्री को देवी कहे जाने भर से यह प्रमाणित नहीं हो जाता कि वहाँ प्रत्येक स्त्री सामाजिक रूप से स्वतंत्र और सम्मानित थी। इसी प्रकार कुछ निषेधात्मक स्मृति-वचनों के आधार पर संपूर्ण भारतीय परंपरा को स्त्री-विरोधी घोषित कर देना भी ऐतिहासिक सरलीकरण होगा। भारतीय संस्कृति अनेक कालखंडों, जातीय समूहों, भाषाओं, धर्मों, दार्शनिक मतों और स्थानीय परंपराओं से निर्मित हुई है; अत: उसमें स्त्री की कोई एकमात्र छवि नहीं मिलती। कहीं वह ऋचा की रचयिता है, कहीं सभा में दार्शनिक प्रश्न पूछती है, कहीं युद्ध और राज्यनीति में हस्तक्षेप करती है, कहीं पति की छाया बना दी जाती है और कहीं सामाजिक निषेधों को तोड़कर अपनी मुक्ति का गीत गाती है। इस बहुलता के भीतर एक स्पष्ट ऐतिहासिक गति अवश्य दिखाई देती है—स्त्री पहले पुरुष द्वारा निर्धारित आदर्शों की वाहिका बनती है, फिर उन आदर्शों की सीमाओं को पहचानती है और अंतत: अपनी शर्तों पर मनुष्य के रूप में स्वीकृति की माँग करती है।

वैदिक संस्कृति में नारी : सहधर्मिता से आत्मबोध तक

भारतीय स्त्री-छवि के ऐतिहासिक अध्ययन की शुरुआत प्राय: वैदिक साहित्य से की जाती है। ऋग्वेद को भारतीय धार्मिक और दार्शनिक चिंतन का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ माना जाता है; किंतु वह केवल देवताओं

की स्तुतियों का संकलन नहीं, बल्कि आरंभिक भारतीय समाज के जीवन, परिवार, प्रकृति-बोध, श्रम, युद्ध, प्रेम, विवाह और ज्ञान की अनेक झलकियों को भी सुरक्षित करता है। वैदिक समाज को आधुनिक अर्थों में पूर्णतः समानतामूलक समाज मानना उचित नहीं होगा, फिर भी उपलब्ध मंत्रों से इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ धार्मिक और बौद्धिक जीवन से सर्वथा बहिष्कृत नहीं थीं। ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं के साथ लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, विश्ववारा, रोमशा, वाक् अम्भृणी तथा सूर्या जैसी ऋषिकाओं के नाम जुड़े हैं। यह तथ्य अपने आप में महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ स्त्री केवल अनुष्ठान की निष्क्रिय सहभागी नहीं, बल्कि वैदिक वाणी की सर्जक और ज्ञान की अधिकारिणी के रूप में उपस्थित होती है। वाक् अम्भृणी का आत्मविश्वासपूर्ण उद्घोष है कि *मैं ही राष्ट्र की अधिष्ठात्री, धन प्रदान करने वाली, ज्ञान से युक्त और यज्ञ में सर्वप्रथम पूजनीय हूँ।*[2] एक ऐसी स्त्री-वाणी का परिचय देता है जो अपनी शक्ति किसी पुरुष-संबंध से नहीं, अपने सार्वभौम ज्ञान और सृजनात्मक सामर्थ्य से ग्रहण करती है। इस ऋचा में बोलने वाली स्त्री किसी व्यक्तिगत अहंकार का प्रदर्शन नहीं करती; वह स्वयं को उस चेतना के रूप में पहचानती है जो देवताओं, मनुष्यों और समस्त विश्व-व्यवस्था को ऊर्जा प्रदान करती है। भारतीय संस्कृति में 'शक्ति' की अवधारणा के बीज इसी प्रकार की वैदिक अनुभूति में देखे जा सकते हैं। ऋग्वेद के विवाह-सूक्त में नववधू को परिवार में केवल आज्ञाकारिणी सेविका बनकर प्रवेश करने का आदेश नहीं दिया गया, बल्कि उसे गृहस्थ जीवन के केंद्र में प्रतिष्ठित करते हुए कहा गया है कि *तुम इस घर में साम्राज्ञी बनकर रहो; श्वसुर, ननद और देवर पर भी साम्राज्ञी बनो।*[3] 'साम्राज्ञी' शब्द की व्याख्या करते हुए यह सावधानी आवश्यक है कि उसे आधुनिक राजनीतिक अधिकारों के समान न माना जाए, फिर भी इस संबोधन का सांस्कृतिक महत्त्व कम नहीं है। नववधू को परिवार में बाहरी अथवा अधीनस्थ व्यक्ति न मानकर गृह-व्यवस्था की सम्मानित सहभागी के रूप में देखने की आकांक्षा इसमें निहित है। वैदिक विवाह की आदर्श कल्पना में पति-पत्नी का संबंध धर्म, यज्ञ, संतति और गृहस्थ जीवन की साझेदारी पर आधारित था। 'सहधर्मिणी' की धारणा का अर्थ भी यही था कि स्त्री के बिना पुरुष का धार्मिक और सामाजिक जीवन पूर्ण नहीं माना जाता, लेकिन इसी आदर्श के भीतर भविष्य के उस अंतर्विरोध की संभावना भी उपस्थित थी, जिसमें स्त्री का महत्त्व उसकी स्वतंत्र मनुष्यता के बजाय पत्नी और माता के रूप में उसकी उपयोगिता से निर्धारित किया जाने लगा।

वैदिक साहित्य में लोपामुद्रा का संवाद स्त्री की इच्छा और दाम्पत्य अधिकार के प्रश्न को भी उल्लेखनीय स्पष्टता से सामने लाता है। वह अपने तपस्वी पति अगस्त्य से दांपत्य की उपेक्षा पर प्रश्न करती है और अपनी कामना को किसी पापबोध के साथ नहीं, बल्कि जीवन के स्वाभाविक और न्यायसंगत पक्ष के रूप में व्यक्त करती है। इस प्रसंग का महत्त्व इसलिए है कि यहाँ स्त्री की देह केवल पुरुष की इच्छा का निष्क्रिय क्षेत्र नहीं है; स्त्री स्वयं अपनी कामना को पहचानती और भाषा प्रदान करती है। बाद की अनेक सामाजिक व्यवस्थाओं में स्त्री-कामना को मौन, लज्जा अथवा नैतिक अपराध से जोड़ दिया गया, किंतु लोपामुद्रा की वाणी इस दमन के बहुत पहले एक निर्भीक मानवीय स्वर प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार अपाला और घोषा की ऋचाएँ रोग, स्वास्थ्य, विवाह, सौंदर्य और सामाजिक स्वीकृति से जुड़ी स्त्री-अनुभूतियों को सामने लाती हैं। इन ऋषिकाओं की उपस्थिति से यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि प्रत्येक वैदिक स्त्री को समान शैक्षिक और धार्मिक अधिकार प्राप्त थे, परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ज्ञान और काव्य-सृजन पर स्त्री का अधिकार भारतीय परंपरा के लिए सर्वथा अपरिचित अवधारणा नहीं था। वैदिक काल की नारी-छवि का सबसे विकसित दार्शनिक रूप उपनिषदों में गार्गी और मैत्रेयी के संवादों में मिलता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में राजा जनक की सभा में गार्गी याज्ञवल्क्य से ब्रह्मांड की अंतिम सत्ता के संबंध में प्रश्न करती है। वह पहले पूछती है कि पृथ्वी, जल, वायु और आकाश को धारण करने वाली सत्ता स्वयं किसमें ओत-प्रोत है और फिर अपने प्रश्न को उस 'अक्षर' तक ले जाती है, जिसके अधीन समस्त अस्तित्व संचालित होता है। गार्गी का महत्त्व केवल इस बात में नहीं है कि वह विदुषी थी; उसका

वास्तविक महत्त्व उस निर्भीक सार्वजनिक उपस्थिति में है, जिसके साथ वह अपने युग के प्रतिष्ठित पुरुष दार्शनिक को चुनौती देती है। सभा में प्रश्न पूछना ज्ञान-सत्ता में भागीदारी का प्रमाण है। वह श्रद्धावश मौन नहीं रहती, बल्कि तर्क की अंतिम सीमा तक जाती है। यह प्रसंग भारतीय बौद्धिक परंपरा में स्त्री को केवल श्रद्धा, सौंदर्य अथवा करुणा की प्रतिमूर्ति मानने के विपरीत उसे विचार, तर्क और प्रश्न की स्वायत्त सत्ता के रूप में स्थापित करता है। मैत्रेयी का प्रसंग इस दार्शनिक स्वायत्तता को एक अन्य दिशा देता है। जब याज्ञवल्क्य गृहत्याग से पूर्व अपनी संपत्ति दोनों पत्नियों में बाँटने की इच्छा प्रकट करते हैं, तब मैत्रेयी पूछती हैं कि *यदि यह सारी पृथ्वी धन से परिपूर्ण होकर मेरी हो जाए, तो क्या मैं उससे अमर हो सकती हूँ ?*[4] याज्ञवल्क्य के नकारात्मक उत्तर पर वह कहती हैं, *जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, उसे लेकर मैं क्या करूँगी ?*[5] यह प्रश्न भारतीय स्त्री-छवि के इतिहास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मैत्रेयी धन का तिरस्कार इसलिए नहीं करतीं कि स्त्री को भौतिक संसार से विरक्त रहना चाहिए, बल्कि वह साधन और साध्य का विवेकपूर्ण अंतर पहचानती हैं। वह संपत्ति की निष्क्रिय उत्तराधिकारी बनने के बजाय ज्ञान की सक्रिय अन्वेषक बनना चुनती हैं। उनका प्रश्न आत्मा, प्रेम और अमरत्व के औपनिषदिक संवाद का द्वार खोलता है। इस प्रकार वैदिक-औपनिषदिक साहित्य में नारी की एक ऐसी छवि सामने आती है, जो गृहस्थी की सहचरी होते हुए भी ज्ञान की स्वतंत्र जिज्ञासु है। फिर भी इस उज्ज्वल वैदिक और औपनिषदिक उपस्थिति को एक स्वर्णयुग की निर्विवाद कथा में बदल देना उचित नहीं होगा। किसी युग में कुछ विदुषी स्त्रियों की उपस्थिति उस समाज की समस्त स्त्रियों की समानता प्रमाणित नहीं करती। सामाजिक वर्ग, वर्ण, संपत्ति और पारिवारिक स्थिति के अंतर स्त्रियों के जीवन को तब भी प्रभावित करते रहे होंगे। किंतु इन स्त्री-पात्रों और ऋषिकाओं का ऐतिहासिक महत्त्व यह है कि वे भारतीय संस्कृति की मूल स्मृति में स्त्री की बौद्धिकता, वाणी और आत्मनिर्णय के लिए वैध स्थान निर्मित करती हैं। बाद की सामाजिक रूढ़ियाँ जब स्त्री को शिक्षा और प्रश्न से दूर करती हैं, तब गार्गी, मैत्रेयी और वाक् अम्भृणी की स्मृति उन रूढ़ियों को 'सनातन' मानने से रोकती है। वे प्रमाणित करती हैं कि भारतीय परंपरा का एक सशक्त स्रोत स्त्री को मौन रहने का आदेश नहीं देता, बल्कि उसे बोलने, प्रश्न करने और सत्य की खोज में सहभागी बनने का अधिकार प्रदान करता है। आगे के कालखंडों में नारी की छवि इसी अधिकार और उस पर आरोपित नियंत्रण के बीच निरंतर बदलती दिखाई देती है।

महाकाव्यकालीन नारी : मर्यादा, स्वायत्तता और प्रतिरोध का अंतर्द्वंद्व

वैदिक और औपनिषदिक साहित्य में स्त्री की जो छवि ज्ञान, संवाद और आध्यात्मिक जिज्ञासा से निर्मित हुई थी, महाकाव्यों में प्रवेश करते ही वह अधिक जटिल सामाजिक और नैतिक संदर्भों से जुड़ जाती है। रामायण और महाभारत केवल राजवंशों, युद्धों और धर्म-संकटों की कथाएँ नहीं हैं; वे भारतीय समाज की पारिवारिक संरचना, दाम्पत्य-मर्यादा, उत्तराधिकार, स्त्री-पुरुष संबंध और सत्ता के नैतिक चरित्र का विशाल आख्यान भी प्रस्तुत करते हैं। इन महाकाव्यों में स्त्री एक ओर परिवार, कुल और राज्य की प्रतिष्ठा का आधार मानी जाती है, दूसरी ओर उसी प्रतिष्ठा की रक्षा के नाम पर उसके व्यक्तिगत जीवन, इच्छा और निर्णय को नियंत्रित किया जाता है। इस दृष्टि से सीता और द्रौपदी भारतीय साहित्य में नारी के दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण किंतु परस्पर भिन्न प्रतिमान निर्मित करती हैं। सीता का व्यक्तित्व धैर्य, आत्मसंयम, नैतिक दृढ़ता और मौन प्रतिरोध से विकसित होता है, जबकि द्रौपदी प्रश्न, तर्क, आक्रोश और प्रत्यक्ष असहमति के माध्यम से पितृसत्तात्मक सत्ता को चुनौती देती है। इन दोनों को केवल 'पतिव्रता' और 'प्रतिशोधिनी' जैसे रूढ़ विशेषणों में सीमित करना उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के साथ न्याय नहीं होगा।

वाल्मीकि की सीता भारतीय सांस्कृतिक स्मृति में त्याग और पतिव्रत की सर्वाधिक प्रतिष्ठित प्रतीक अवश्य हैं, परंतु मूल आख्यान में उनकी भूमिका निष्क्रिय आज्ञाकारिणी तक सीमित नहीं है। राम के वनगमन का समाचार मिलने पर वे राजमहल में सुरक्षित रहने का प्रस्ताव स्वीकार नहीं करतीं। वन जाने का उनका निर्णय केवल पति के पीछे चलने वाली पत्नी का भावुक आग्रह

नहीं, बल्कि अपने दाम्पत्य, जीवन और नियति के संबंध में स्वयं निर्णय लेने वाली स्त्री की घोषणा है। जब राम वन के कष्ट, हिंसक जीवों, अभाव और असुरक्षा का वर्णन करके उन्हें अयोध्या में रहने के लिए समझाते हैं, तब सीता उनके तर्कों का प्रतिवाद करती हैं। वे स्पष्ट करती हैं कि पति-पत्नी का जीवन सुख और संकट दोनों में सहभागिता का संबंध है और अपने हिस्से के जीवन को चुनने का अधिकार उन्हें भी है। सीता कहती हैं कि *पिता, माता, पुत्र और अन्य संबंधी अपने-अपने कर्मफल का उपभोग करते हैं, किंतु पत्नी पति के भाग्य में सहभागी होती है; इसलिए वनवास उनके लिए बाहरी दंड नहीं, चुना हुआ सहजीवन है।*[6] यहाँ 'सहधर्मिणी' की प्राचीन अवधारणा केवल धार्मिक अनुष्ठान की संगिनी होने तक सीमित नहीं रहती, बल्कि जीवन के जोखिम में समान साझेदारी का रूप ग्रहण करती है। सीता की दृढ़ता का दूसरा पक्ष यह है कि वे राम के प्रत्येक निर्णय से यांत्रिक सहमति नहीं रखतीं। अरण्यकाण्ड में जब राम दण्डकारण्य के ऋषियों की रक्षा के लिए राक्षसों के विनाश की प्रतिज्ञा करते हैं, तब सीता उन्हें बिना प्रत्यक्ष अपराध के हिंसा से बचने की सलाह देती हैं। वे कामजन्य तीन व्यसनों- मिथ्याभाषण, परस्त्रीगमन और बिना बैर के हिंसा का उल्लेख करते हुए राम से पूछती हैं कि तपोवन में रहते हुए शस्त्र धारण करने और अनावश्यक संघर्ष में पड़ने की क्या आवश्यकता है। उनके शब्दों में केवल भयभीत पत्नी की चिंता नहीं, बल्कि हिंसा और धर्म के संबंध पर विचार करने वाली नैतिक चेतना भी विद्यमान है। सीता राम के धर्मबोध को अस्वीकार नहीं करतीं किंतु उसके समक्ष अहिंसा, संयम और परिस्थिति-सापेक्ष विवेक का प्रश्न रखती हैं। इस प्रसंग में वे राजनीतिक शक्ति के सम्मुख नैतिक सावधानी का स्वर बनती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सीता की मूल छवि मौन अनुसरण की नहीं बल्कि प्रेमपूर्ण असहमति और नैतिक परामर्श की भी है। लंका में बंदी बनाई गई सीता का व्यक्तित्व और अधिक स्वायत्त रूप में प्रकट होता है। रावण के वैभव, सत्ता, भय और प्रलोभन के सामने उनका प्रतिरोध किसी बाहरी संरक्षण पर निर्भर नहीं रहता। अशोकवाटिका में वे शारीरिक रूप से अकेली और राजनीतिक रूप से असहाय हैं, फिर भी रावण की सत्ता को नैतिक वैधता प्रदान करने से इनकार करती हैं। उनका प्रतिरोध युद्ध के शस्त्रों से नहीं, निर्णय की अडिगता से निर्मित होता है। वे अपनी देह और सहमति पर रावण के अधिकार को अस्वीकार करके यह स्थापित करती हैं कि बलपूर्वक अपहरण स्त्री की इच्छा को पराजित नहीं कर सकता। हनुमान जब उन्हें अपने साथ ले जाने की संभावना प्रकट करते हैं, तब भी सीता तत्काल मुक्ति के आकर्षण में अपनी विवेकशीलता नहीं खोतीं। वे व्यावहारिक कठिनाइयों के साथ यह प्रश्न भी उठाती हैं कि राम को स्वयं अन्याय का प्रतिकार करना चाहिए। इस निर्णय में दांपत्य-निष्ठा के साथ राजनीतिक न्याय की माँग भी जुड़ी हुई है। युद्ध की समाप्ति के बाद सीता के चरित्र के सामने सबसे कठोर संकट उपस्थित होता है। राम जब सार्वजनिक रूप से उनकी शुचिता पर संदेह व्यक्त करते हैं, तब सीता केवल लज्जित अथवा भयभीत स्त्री की तरह मौन नहीं रहतीं। वे उनके शब्दों को अपने व्यक्तित्व और समस्त स्त्रीजाति के प्रति अन्याय के रूप में देखती हैं। उनका आशय है कि *किसी निम्न आचरण वाली स्त्री को देखकर समस्त स्त्रियों के चरित्र पर संदेह करना उचित नहीं है और पराधीन अवस्था में शरीर पर घटित बलपूर्वक घटना को स्त्री की इच्छा या नैतिकता का प्रमाण नहीं माना जा सकता।*[7] यह तर्क स्त्री की सहमति और परिस्थितिजन्य विवशता के बीच अत्यंत आधुनिक प्रतीत होने वाला अंतर स्थापित करता है। सीता अग्नि में प्रवेश का निर्णय भी भीड़ के सामने अपराध-स्वीकृति के रूप में नहीं, बल्कि उस सार्वजनिक अपमान के विरुद्ध अपने अंतिम नैतिक प्रतिवाद के रूप में लेती हैं। वे कहती हैं कि *यदि उनका हृदय राम से कभी विचलित नहीं हुआ है तो अग्निदेव उनकी रक्षा करें।*[8] यहाँ अग्नि परीक्षा से अधिक महत्त्वपूर्ण वह सामाजिक स्थिति है, जिसमें एक स्त्री को स्वयं निर्दोष होते हुए भी अपनी निर्दोषता सिद्ध करनी पड़ती है। सीता की त्रासदी इसी बिंदु पर व्यक्तिगत न रहकर पितृसत्तात्मक न्याय-व्यवस्था की त्रासदी बन जाती है। उत्तरकाण्ड में लोकापवाद के कारण गर्भवती सीता का परित्याग इस अंतर्विरोध को और तीव्र करता है। राजा की सार्वजनिक प्रतिष्ठा बचाने के लिए रानी के निजी

जीवन का बलिदान किया जाता है। यद्यपि उत्तरकाण्ड की पाठ-प्रामाणिकता और रचनाकाल को लेकर विद्वानों में मतभेद रहे हैं। भारतीय लोकस्मृति और उत्तरवर्ती साहित्य पर इस प्रसंग का गहरा प्रभाव निर्विवाद है। वाल्मीकि आश्रम में सीता अपने पुत्रों का पालन-पोषण करती हैं और अंततः सभा में पुनः शुचिता प्रमाणित करने की अपेक्षा के सामने पृथ्वी में समा जाने का निर्णय लेती हैं। पृथ्वी-प्रवेश को केवल दुखी स्त्री की मृत्यु-कामना मानना पर्याप्त नहीं है; यह उस सामाजिक व्यवस्था की निर्णायक अस्वीकृति भी है जो बार-बार स्त्री से प्रमाण माँगती है, किंतु उसके अनुभव और कथन पर विश्वास नहीं करती। इस अर्थ में सीता का अंतिम मौन भी प्रतिरोध की भाषा बन जाता है।

यदि सीता का प्रतिरोध प्रायः संयमित और अंतर्मुखी है, तो महाभारत की द्रौपदी का प्रतिरोध सार्वजनिक, तर्कपूर्ण और मुखर है। द्रौपदी का जन्म ही यज्ञाग्नि से होता है; वह किसी सामान्य जैविक वंशक्रम के बजाय राजनीतिक उद्देश्य और प्रतिशोध से जुड़ी हुई स्त्री है। किंतु महाभारत उसे केवल पुरुषों के प्रतिशोध की उपकरणात्मक पात्रता में सीमित नहीं करता। स्वयंवर में वह अपने पति के चयन की प्रक्रिया का केंद्र है, यद्यपि उस चयन की सामाजिक संरचना पूरी तरह उसकी स्वतंत्र इच्छा पर आधारित नहीं है। बाद में कुंती के अनजाने वचन और पारिवारिक-राजनीतिक निर्णय के कारण उसका पाँच पाण्डवों से विवाह होता है। इस असाधारण विवाह-व्यवस्था में भी द्रौपदी की निजी सहमति का प्रश्न महाकाव्य में उतनी स्पष्टता से उपस्थित नहीं होता जितना होना चाहिए; फिर भी इंद्रप्रस्थ की महारानी के रूप में वह आर्थिक, पारिवारिक और राजनीतिक व्यवस्था में प्रभावशाली भूमिका निभाती है।

द्यूतसभा का प्रसंग द्रौपदी को भारतीय साहित्य में न्याय और स्त्री-अस्मिता की सबसे प्रखर प्रश्नकर्ता के रूप में स्थापित करता है। युधिष्ठिर द्वारा पहले अपना सब कुछ और अंततः द्रौपदी को दाँव पर लगा देने के बाद जब प्रतिकामी उसे सभा में बुलाने पहुँचता है, तब वह सीधे आने के बजाय एक मूलभूत कानूनी प्रश्न भेजती है-राजा पहले स्वयं को हारे थे अथवा पहले मुझे? इस संक्षिप्त प्रश्न से वह संपूर्ण द्यूत-व्यवस्था की वैधता को चुनौती देती है। यदि युधिष्ठिर स्वयं को पहले ही हार चुके थे, तो अपने ऊपर अधिकार खो देने के बाद वे द्रौपदी को किस अधिकार से दाँव पर लगा सकते थे? द्रौपदी का प्रश्न पत्नी को पति की संपत्ति मानने वाली धारणा के भीतर से ही उसकी तार्किक असंगति उजागर करता है। वह भावनात्मक दया नहीं माँगती बल्कि धर्म, स्वामित्व और अधिकार की सार्वजनिक व्याख्या की माँग करती है। सभा में लाए जाने के बाद भी द्रौपदी अपनी स्थिति को व्यक्तिगत अपमान तक सीमित नहीं रखती। वह भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र और उपस्थित राजाओं से पूछती है कि धर्म के ज्ञाता पुरुष इस प्रश्न पर मौन क्यों हैं? भीष्म का उत्तर कि धर्म की गति अत्यंत सूक्ष्म है और बलवान व्यक्ति जिसे धर्म कहता है, निर्बल को उसी को स्वीकार करना पड़ता है, राजसत्ता और नैतिकता के विघटन का असाधारण स्वीकार है। द्रौपदी इस 'सूक्ष्मता' के आवरण को स्वीकार नहीं करती; उसका प्रश्न बताता है कि जहाँ किसी स्त्री की देह, गरिमा और स्वतंत्रता दाँव पर लगी हो, वहाँ धर्म की अस्पष्टता वस्तुतः अन्याय के पक्ष में मौन बन सकती है। वह सभा से पूछती है कि *मैं जीती गई हूँ अथवा नहीं इसका उत्तर दिया जाए।*[10] इस माँग के सामने समस्त पुरुष-सत्ता नैतिक रूप से अनावृत हो जाती है। इसीलिए द्रौपदी केवल अपमानित नारी नहीं, उस न्याय-व्यवस्था की आलोचक है जिसमें ज्ञानी, वृद्ध और शक्तिशाली पुरुष अन्याय देखते हुए भी निर्णायक प्रतिरोध नहीं करते।

सीता और द्रौपदी की भिन्न प्रतिक्रियाएँ भारतीय स्त्री-अनुभव के दो विरोधी नहीं, बल्कि पूरक रूप प्रस्तुत करती हैं। सीता धैर्य और आत्मसंयम के भीतर से सत्ता की नैतिकता को प्रश्नांकित करती हैं, जबकि द्रौपदी भाषा, तर्क और क्रोध के माध्यम से अन्याय को सार्वजनिक करती हैं। एक की शक्ति उसके अडिग आत्मविश्वास और त्याग की सीमा पर जाकर किए गए अस्वीकार में है; दूसरी की शक्ति प्रश्न पूछने, अपराधियों को नामित करने और मौन समुदाय को उसके नैतिक दायित्व का बोध कराने में है। भारतीय साहित्य में नारी की बदलती छवि को समझने के लिए इन दोनों को रूढ़ आदर्शों से मुक्त

करके पढ़ना आवश्यक है। वे केवल परिवार की रक्षा करने वाली स्त्रियाँ नहीं बल्कि धर्म, न्याय, राज्य और पुरुष-प्रतिष्ठा की सीमाओं को उजागर करने वाली नैतिक व्यक्तित्व भी हैं।

द्रौपदी के प्रश्नाकुल और प्रतिरोधी व्यक्तित्व के साथ-साथ महाभारत में कुंती और गांधारी ऐसी स्त्रियाँ हैं जिनके जीवन में मातृत्व, राजसत्ता, कुल-मर्यादा और व्यक्तिगत पीड़ा परस्पर उलझे हुए दिखाई देते हैं। इन दोनों का चरित्र यह स्पष्ट करता है कि महाकाव्यकालीन समाज में स्त्री का प्रभाव महत्त्वपूर्ण होते हुए भी उसकी स्वतंत्रता प्राय: पारिवारिक और राजवंशीय संरचना से नियंत्रित थी। कुंती का जीवन आरंभ से ही स्त्री-अनुभव की असुरक्षा और सामाजिक भय का प्रतिनिधित्व करता है। दुर्वासा से प्राप्त मंत्र की परीक्षा करते हुए सूर्य के आह्वान और कर्ण के जन्म का प्रसंग केवल एक अलौकिक कथा नहीं है; उसके भीतर अविवाहित मातृत्व के प्रति समाज की कठोर दृष्टि और स्त्री की प्रतिष्ठा पर केंद्रित नैतिकता भी छिपी है। लोकापवाद के भय से नवजात कर्ण को त्यागने का निर्णय कुंती की स्वेच्छा से अधिक उस व्यवस्था की निर्ममता को प्रकट करता है, जिसमें पुरुष देवता का आगमन चमत्कार है, किंतु उससे उत्पन्न संतान का भार अकेली स्त्री की सामाजिक लज्जा बन जाता है।

कुंती अपने जीवन में अनेक निर्णय लेती हैं, किंतु उनके निर्णयों पर परिस्थितियों का दबाव निरंतर बना रहता है। पाण्डु के शापग्रस्त होने के बाद वंश-वृद्धि का दायित्व भी उन्हीं के शरीर और प्राप्त मंत्र पर आ टिकता है। धर्म, वायु और इंद्र से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन की प्राप्ति तथा माद्री के साथ मंत्र साझा करना उन्हें राजवंश की संरक्षिका बनाता है, परंतु इस भूमिका में उनकी व्यक्तिगत इच्छा की अपेक्षा वंश की निरंतरता अधिक महत्त्वपूर्ण है। पति की मृत्यु के बाद पाँचों पाण्डवों का पालन-पोषण, हस्तिनापुर की असुरक्षित राजनीति में उनका संरक्षण और विपत्तियों में उन्हें संगठित बनाए रखना कुंती की असाधारण राजनीतिक समझ तथा मानसिक दृढ़ता का परिचायक है। वह युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से शस्त्र नहीं उठातीं, किंतु पाण्डवों के सामूहिक अस्तित्व और राजकीय दावे की आधारशिला बनी रहती हैं। द्रौपदी को पाँचों भाइयों में बाँटने से संबंधित कुंती का अनजाने में दिया गया निर्देश महाकाव्य के सबसे विवादास्पद प्रसंगों में से एक है। इस घटना को केवल माता की आज्ञा और पुत्रों द्वारा आज्ञापालन के रूप में नहीं देखा जा सकता। इसके भीतर स्त्री की सहमति, परिवार की एकता और पुरुष-प्रधान निर्णय-व्यवस्था का अंतर्विरोध उपस्थित है। द्रौपदी के जीवन का इतना बड़ा निर्णय पुरुषों और एक मातृसत्तात्मक प्रतीत होने वाली वरिष्ठ स्त्री के कथन से निर्धारित हो जाता है, किंतु *स्वयं द्रौपदी की इच्छा गौण* रहती है। यह प्रसंग बताता है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था केवल पुरुषों द्वारा ही संचालित नहीं होती; कई बार परिवार और कुल की प्रतिष्ठा से बँधी स्त्रियाँ भी अनजाने में उसी व्यवस्था की संवाहक बन जाती हैं। कर्ण के प्रति कुंती का अपराधबोध उनके चरित्र को और जटिल बनाता है। युद्ध से पहले वे कर्ण को उसकी जन्म-कथा बताती हैं, किंतु यह सत्य उस समय उद्घाटित होता है जब वह पाण्डवों के लिए राजनीतिक रूप से उपयोगी हो सकता है। कर्ण का यह कहना कि मातृत्व का अधिकार केवल जन्म से नहीं, पालन और समय पर किए गए स्वीकार से भी बनता है, कुंती की नैतिक स्थिति को प्रश्नांकित करता है। फिर भी कुंती को केवल स्वार्थी माता कहना उचित नहीं होगा। वह उस सामाजिक भय की दीर्घकालिक शिकार भी हैं, जिसने उन्हें जीवनभर अपने प्रथम पुत्र के सत्य को छिपाने के लिए विवश किया। महाकाव्य उनके माध्यम से यह दिखाता है कि समाज द्वारा दबाया गया स्त्री का एक निर्णय केवल उसके निजी जीवन को ही नहीं आने वाली पीढ़ियों और व्यापक राजनीतिक इतिहास को भी प्रभावित कर सकता है।

गांधारी का चरित्र भी इसी प्रकार त्याग और प्रतिरोध के बीच स्थित है। धृतराष्ट्र से विवाह के बाद स्वयं अपनी आँखों पर पट्टी बाँध लेना भारतीय सांस्कृतिक व्याख्याओं में प्राय: पतिव्रत और पति के दु:ख में सहभागिता का सर्वोच्च प्रतीक माना गया है, किंतु आधुनिक दृष्टि से यह निर्णय अनेक प्रश्न उत्पन्न करता है। क्या यह पति के प्रति समर्पण था, अपने विवाह की परिस्थितियों के प्रति मौन विरोध था अथवा उस राजसत्ता से स्वयं को अलग कर लेने का प्रयास, जिसमें उनका विवाह उनकी

इच्छा से अधिक राजनीतिक समझौते का परिणाम था? गांधारी का नेत्रबंध एक साथ आत्मत्याग, प्रतिरोध और आत्म-निषेध का प्रतीक बन जाता है। वे पति की दृष्टिहीनता को साझा करती हैं, परंतु ऐसा करते हुए स्वयं को राजनीतिक घटनाओं का प्रत्यक्ष साक्षी बनने से भी वंचित कर लेती हैं। गांधारी अपने पुत्रों के प्रति स्नेह रखती हैं, परंतु दुर्योधन के अन्याय का खुला समर्थन नहीं करतीं। युद्ध के पूर्व वे बार-बार धृतराष्ट्र और दुर्योधन को लोभ, अहंकार और अधर्म के परिणामों से सावधान करती हैं। उनकी नैतिक दृष्टि इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि वे मातृत्व को पुत्र के प्रत्येक कर्म की स्वीकृति नहीं मानतीं। फिर भी उनकी चेतावनियाँ राजकीय निर्णय में प्रभावी नहीं हो पातीं। यहाँ स्त्री की वह स्थिति दिखाई देती है, जिसमें वह सत्य को पहचानती और व्यक्त करती है, किंतु सत्ता-संरचना उसे निर्णायक अधिकार प्रदान नहीं करती। युद्धोपरांत पुत्रों की मृत्यु से उत्पन्न उनका शोक कृष्ण के विरुद्ध शाप में बदल जाता है। यह शाप केवल पुत्रवियोग से विक्षिप्त माता की प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि उस समूची युद्ध-राजनीति के विरुद्ध आक्रोश है, जिसमें नीति और धर्म की बात करने वाले सभी पक्ष अंतत: असंख्य परिवारों के विनाश के सहभागी बने। वनवास और अंतिम जीवन में गांधारी, कुंती और धृतराष्ट्र का एक साथ रहना व्यक्तिगत बैर से ऊपर उठकर साझा दु:ख की मानवीय परिणति प्रस्तुत करता है।

बौद्ध-जैन परंपरा और शास्त्रीय संस्कृत साहित्य में नारी

महाकाव्यों के पश्चात् बौद्ध साहित्य में स्त्री की छवि एक भिन्न आध्यात्मिक और सामाजिक दिशा ग्रहण करती है। प्रारंभिक बौद्ध परंपरा में महाप्रजापती गौतमी द्वारा स्त्रियों के संघ-प्रवेश के लिए किया गया आग्रह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भिक्षुणी-संघ की स्थापना ने स्त्रियों को गृहस्थ जीवन और पारिवारिक पहचान से अलग एक संस्थागत आध्यात्मिक मार्ग प्रदान किया, यद्यपि उस व्यवस्था में स्त्रियों पर अतिरिक्त अनुशासन भी लगाए गए। इससे बौद्ध परंपरा के भीतर मुक्ति की समानता और संस्थागत असमानता का द्वंद्व स्पष्ट होता है।

थेरीगाथा इस संदर्भ में विशेष महत्त्व रखती है क्योंकि इसमें आरंभिक बौद्ध भिक्षुणियों के अनुभव उनके अपने स्वर में अभिव्यक्त हुए हैं। यह ग्रंथ स्त्रियों के आध्यात्मिक जीवन, गृहस्थ बंधनों से मुक्ति, शोक, मातृत्व, वैधव्य, देह-बोध और आत्मज्ञान की अनुभूतियों को सामने लाता है। आधुनिक बौद्ध अध्ययन में इसे *स्त्री-अनुभव की आरंभिक और अत्यंत मूल्यवान काव्यात्मक अभिव्यक्ति माना गया है।*[11] इन कविताओं में स्त्री केवल करुणा अथवा त्याग की प्रतिमा नहीं रहती; वह अपने दु:ख का विश्लेषण करती है, संसार की अनित्यता को पहचानती है और ज्ञान के माध्यम से अपनी स्वतंत्र सत्ता अर्जित करती है। पटाचारा, किसा गौतमी, सुमेधा और मुत्ता जैसी भिक्षुणियों के अनुभव बताते हैं कि आध्यात्मिक मुक्ति का प्रश्न स्त्री के लिए घरेलू श्रम, विवाह, मातृत्व और सामाजिक नियंत्रण से मुक्ति के प्रश्न से भी जुड़ा था। थेरीगाथा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें स्त्री किसी पुरुष ऋषि या कवि की कल्पना के रूप में नहीं, अपने जीवन की स्वयं व्याख्याकार बनकर उपस्थित होती है। प्रारंभिक बौद्ध ग्रंथों के व्यापक संग्रह और उनके भाषांतर आज सुत्तसेंट्रल जैसे पाठ-संग्रहों में उपलब्ध हैं, जहाँ *थेरीगाथा को वरिष्ठ भिक्षुणियों की स्वतंत्र आध्यात्मिक वाणी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।*[12]

जैन परंपरा में भी स्त्री की धार्मिक उपस्थिति व्यापक रही है। जैन साध्वी-संघों ने तप, संयम, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य पर आधारित वैकल्पिक जीवन-पद्धति उपलब्ध कराई। चंदनबाला की कथा त्याग, करुणा और आध्यात्मिक दृढ़ता का प्रमुख उदाहरण है। वे सामाजिक अपमान, दासत्व और शारीरिक कष्ट से गुजरते हुए भी अंतत: आध्यात्मिक प्रतिष्ठा प्राप्त करती हैं, किंतु जैन परंपरा के दिगंबर और श्वेतांबर मतों में स्त्री-मुक्ति के प्रश्न पर मतभेद भी रहे। श्वेतांबर परंपरा स्त्री के वर्तमान जन्म में मोक्ष की संभावना स्वीकार करती है और मल्लि को स्त्री तीर्थंकर मानती है, जबकि दिगंबर परंपरा पूर्ण मुनि-जीवन की कुछ शारीरिक शर्तों के आधार पर स्त्री-मुक्ति को भिन्न रूप में देखती रही। यह मतभेद इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि आध्यात्मिक समानता की घोषणा करने वाली परंपराएँ भी देह और लिंग के प्रश्न से पूर्णत: मुक्त नहीं थीं।

शास्त्रीय संस्कृत साहित्य, विशेषत: कालिदास की रचनाओं में, स्त्री की छवि सौंदर्य, प्रेम, प्रकृति और

दाम्पत्य के सुकुमार संसार से निर्मित होती है, किंतु उसमें सामाजिक मर्यादा और पुरुष-दृष्टि की सीमाएँ भी विद्यमान हैं। अभिज्ञानशाकुंतलम् की शकुंतला आश्रम की सहज, प्रकृति-संलग्न और भावुक युवती है। दुष्यंत से उसका प्रेम व्यक्तिगत आकर्षण और स्वाभाविक चयन पर आधारित है, परंतु विवाह के बाद उसकी सामाजिक वैधता पुरुष की स्मृति और राजकीय स्वीकृति पर निर्भर हो जाती है। दुर्वासा का शाप कथा की नाटकीय युक्ति अवश्य है, किंतु विस्मृति का परिणाम केवल स्त्री को भुगतना पड़ता है। गर्भवती शकुंतला जब राजसभा में अस्वीकार की जाती है, तब उसका आहत स्वाभिमान स्पष्ट रूप से मुखर होता है। वह दुष्यंत से दया नहीं माँगती, बल्कि उसे उसके नैतिक पतन और आत्मविस्मृति का बोध कराती है। कालिदास का नाटक शकुंतला को कोमल सौंदर्य की प्रतिमा बनाता है, परंतु उसकी गरिमा, मातृत्व और अपमान-बोध को भी गंभीरता प्रदान करता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के उपलब्ध अनुवादों और पाठ-परंपरा से यह भी स्पष्ट होता है कि *कथा का केंद्रीय तनाव प्रेम से अधिक पहचान और सामाजिक स्वीकृति का है।*[13] कालिदास के साहित्य में पार्वती का चरित्र भी उल्लेखनीय है। कुमारसंभवम् में वे शिव को प्राप्त करने के लिए कठोर तप करती हैं। उनका प्रेम निष्क्रिय प्रतीक्षा नहीं, संकल्प और आत्मानुशासन से निर्मित साधना है। फिर भी उनकी तपस्या का अंतिम लक्ष्य विवाह और देवकार्य की पूर्ति है। इसी प्रकार रघुवंशम् की इंदुमती स्वयंवर में चयन का अधिकार रखती हैं, परंतु उनका साहित्यिक अस्तित्व मुख्यत: पत्नी और माता की भूमिकाओं के भीतर विकसित होता है। इससे शास्त्रीय साहित्य की मूल प्रवृत्ति स्पष्ट होती है – स्त्री को भावनात्मक गरिमा, सौंदर्य, नैतिक शक्ति और कभी-कभी चयन का अधिकार दिया गया, किंतु उसकी पहचान प्राय: प्रेम, विवाह, मातृत्व और कुल-मर्यादा से ही परिभाषित रही।

इस प्रकार महाकाव्य से बौद्ध-जैन और शास्त्रीय संस्कृत साहित्य तक आते-आते स्त्री की छवि अनेक दिशाओं में विकसित होती दिखाई देती है। कुंती और गांधारी राजनीतिक परिवारों के भीतर स्त्री की शक्ति और विवशता का प्रतिनिधित्व करती हैं; बौद्ध भिक्षुणियाँ गृहस्थ जीवन से बाहर आत्ममुक्ति की भाषा रचती हैं; जैन साध्वियाँ तप और अपरिग्रह के माध्यम से वैकल्पिक आध्यात्मिक पहचान अर्जित करती हैं; और कालिदास की नायिकाएँ प्रेम, सौंदर्य तथा आत्मसम्मान के बीच अपनी उपस्थिति दर्ज करती हैं। फिर भी इन सभी रूपों में स्त्री की स्वतंत्रता पूर्ण नहीं है। कहीं कुल, कहीं धर्मसंस्था, कहीं देह और कहीं पुरुष की स्वीकृति उसकी सीमाएँ निर्धारित करती है। यही अंतर्विरोध आगे मध्यकालीन समाज और साहित्य में अधिक जटिल रूप ग्रहण करता है, जहाँ एक ओर स्त्री को भक्ति के माध्यम से व्यक्तिगत आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का नया अवसर मिलता है, तो दूसरी ओर सामंती और पितृसत्तात्मक मर्यादाएँ उसके सामाजिक जीवन को और अधिक नियंत्रित करती हैं।

भक्तिकाल में नारी की बदलती छवि : आध्यात्मिक स्वायत्तता से सामाजिक प्रतिरोध तक

भारतीय साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल नारी-अभिव्यक्ति का एक निर्णायक मोड़ है। यदि वैदिक साहित्य में स्त्री ज्ञान और दार्शनिक संवाद की सहभागी थी तथा महाकाव्यों में वह परिवार, राज्य और धर्म के जटिल अंतर्विरोधों के बीच अपना अस्तित्व निर्मित करती दिखाई देती है, तो भक्तिकाल में पहली बार वह अपने आध्यात्मिक अनुभव की स्वयं प्रवक्ता बनकर सामने आती है। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ स्त्री केवल पुरुष कवि की कल्पना का विषय नहीं रहती बल्कि स्वयं कवयित्री, साधिका, भक्त और विचारक के रूप में प्रतिष्ठित होती है। भक्ति आंदोलन ने जाति, कुल, लिंग और कर्मकाण्ड पर आधारित सामाजिक पदानुक्रम को चुनौती देते हुए ईश्वर के साथ व्यक्ति के प्रत्यक्ष संबंध की अवधारणा विकसित की। इस वैचारिक परिवर्तन का सबसे गहरा प्रभाव स्त्री की सामाजिक और साहित्यिक स्थिति पर पड़ा। भक्ति ने उसे वह भाषिक और आध्यात्मिक मंच प्रदान किया जहाँ वह परिवार, राजसत्ता, जाति और पितृसत्तात्मक नियंत्रण से परे अपनी स्वतंत्र सत्ता की उद्घोषणा कर सकी।

भक्ति आंदोलन का उदय ऐसे समय में हुआ, जब भारतीय समाज समंती संरचनाओं, कठोर जाति-व्यवस्था,

स्त्री की सीमित सामाजिक भूमिका तथा धार्मिक कर्मकाण्डों से संचालित था। स्त्री की शिक्षा, सार्वजनिक उपस्थिति और वैचारिक स्वतंत्रता पर अनेक प्रकार के सामाजिक प्रतिबंध थे। ऐसे परिवेश में भक्ति ने यह उद्घोष किया कि ईश्वर तक पहुँचने के लिए न जाति की आवश्यकता है, न लिंग की, न जन्म की और न किसी विशेष धार्मिक अधिकार की। इस विचार ने स्त्री को पहली बार यह विश्वास दिया कि उसकी आध्यात्मिक पहचान पुरुष की मध्यस्थता पर निर्भर नहीं है। वह स्वयं ईश्वर से संवाद कर सकती है , स्वयं साधना का मार्ग चुन सकती है और स्वयं अपने अनुभव को भाषा दे सकती है। इसीलिए भक्तिकाल को केवल धार्मिक आंदोलन नहीं, बल्कि भारतीय समाज में वैयक्तिक चेतना के उदय का भी काल माना जाता है।

दक्षिण भारत की आलवार और नयनार परंपराओं में इस परिवर्तन के प्रारंभिक संकेत दिखाई देते हैं। विशेष रूप से आंडाल (गोदा देवी) का काव्य भारतीय स्त्री-अनुभव का अद्वितीय उदाहरण है। आंडाल ने विष्णु को अपना आराध्य ही नहीं, अपना प्रियतम और पति भी स्वीकार किया। उनका तिरुप्पावै तथा नाचियार तिरुमोली स्त्री की उस आध्यात्मिक आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें प्रेम लौकिक सीमाओं का अतिक्रमण कर दिव्यता का रूप धारण कर लेता है। आंडाल का यह निर्णय सामाजिक विवाह-संस्था की अस्वीकृति नहीं, बल्कि उससे ऊपर उठकर आध्यात्मिक चयन की घोषणा है। वे किसी राजपरिवार या पुरुष संरक्षक की अनुमति से नहीं, बल्कि अपनी व्यक्तिगत आस्था के आधार पर जीवन का मार्ग निर्धारित करती हैं। इस दृष्टि से *आंडाल भारतीय साहित्य में स्त्री की स्वायत्त आध्यात्मिक सत्ता की प्रथम सशक्त प्रतिनिधियों में गिनी जा सकती हैं।*[14]

इसी प्रकार कर्नाटक की वीर शैव संत अक्क महादेवी भारतीय स्त्री-विमर्श के इतिहास में अत्यंत क्रांतिकारी व्यक्तित्व हैं। उन्होंने सांसारिक विवाह, राजकीय वैभव और सामाजिक प्रतिष्ठा का परित्याग कर 'चन्नमल्लिकार्जुन' को अपना एकमात्र पति स्वीकार किया। अक्क महादेवी का यह निर्णय केवल धार्मिक संन्यास नहीं था; यह स्त्री के शरीर पर पुरुष के स्वामित्व की अवधारणा के विरुद्ध एक गहन सांस्कृतिक प्रतिरोध भी था। वस्त्र-त्याग का उनका निर्णय भी सामाजिक मर्यादा के विरोध में नहीं, बल्कि देह को सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में देखने वाली मानसिकता के विरुद्ध प्रतीकात्मक विद्रोह था। उनके वचनों में बार-बार यह विचार मिलता है कि आत्मा का सत्य शरीर, कुल, लिंग और सामाजिक प्रतिष्ठा से कहीं अधिक व्यापक है। इसलिए *अक्क महादेवी को भारतीय स्त्री-अस्मिता के प्रारंभिक वैचारिक स्वर के रूप में देखा जाना चाहिए।*[15]

उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति ने भी स्त्री की स्थिति पर अप्रत्यक्ष रूप से गहरा प्रभाव डाला। कबीर, रैदास और दादूदयाल जैसे संतों ने जाति, बाह्याचार और सामाजिक ऊँच-नीच का विरोध किया। यद्यपि इनके काव्य में स्त्री स्वयं वक्ता के रूप में कम दिखाई देती है, फिर भी इन संतों की समतावादी दृष्टि ने स्त्री को आध्यात्मिक समानता का आधार प्रदान किया। कबीर के यहाँ आत्मा को अनेक स्थानों पर विरहिणी नारी के रूप में चित्रित किया गया है। यह रूपक केवल काव्य-सौंदर्य नहीं, बल्कि इस तथ्य का भी संकेत है कि आध्यात्मिक अनुभव को व्यक्त करने के लिए स्त्री-अनुभूति सबसे प्रामाणिक प्रतीक मानी गई। हालांकि कबीर की कुछ उक्तियों में स्त्री के प्रति आलोचनात्मक स्वर भी मिलता है, किंतु आधुनिक शोध यह स्पष्ट करता है कि उनका लक्ष्य स्त्री नहीं, बल्कि वासना, मोह और सांसारिक आसक्ति की आलोचना है। अत: कबीर को स्त्री-विरोधी कह देना उनके व्यापक दार्शनिक संदर्भ का सरलीकरण होगा। सगुण भक्ति की परंपरा में स्त्री की भूमिका और भी अधिक विस्तृत रूप में विकसित होती है। सूरदास के काव्य में गोपियाँ केवल कृष्ण-प्रेम की प्रतीक नहीं हैं; वे प्रेम के माध्यम से सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण करने वाली स्वतंत्र व्यक्तित्व भी हैं। उद्धव के साथ उनका संवाद ज्ञान और प्रेम, शास्त्र और अनुभव, तर्क और संवेदना के बीच एक गहरे वैचारिक संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता है। गोपियाँ यह स्थापित करती हैं कि प्रेम का अनुभव केवल दार्शनिक तर्क से नहीं समझा जा सकता। इस प्रकार सूरदास के यहाँ स्त्री पहली बार आध्यात्मिक अनुभव की प्रामाणिक व्याख्याकार बनकर

सामने आती है। तुलसीदास के साहित्य में नारी-छवि अपेक्षाकृत अधिक जटिल है। रामचरितमानस में सीता, अनुसूया, कौशल्या, उर्मिला, शबरी, मंदोदरी और त्रिजटा जैसी अनेक स्त्रियाँ अपने-अपने नैतिक व्यक्तित्व के साथ उपस्थित हैं। विशेषत: शबरी का चरित्र यह स्थापित करता है कि भक्ति जन्म, जाति और सामाजिक स्थिति की सीमाओं से परे है। तुलसीदास की स्त्री-दृष्टि पर आधुनिक आलोचना में पर्याप्त विवाद हुआ है, विशेषकर कुछ लोकप्रिय पंक्तियों को संदर्भ से काटकर उद्धृत किए जाने के कारण, किंतु संपूर्ण मानस का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि तुलसी के लिए आदर्श स्त्री केवल आज्ञाकारिणी नहीं, बल्कि धर्म, करुणा, धैर्य और विवेक की संवाहक भी है। सीता और शबरी जैसे पात्र उनके काव्य में स्त्री की आध्यात्मिक गरिमा को उच्च स्थान प्रदान करते हैं।

भक्तिकाल की सर्वाधिक सशक्त और स्वतंत्र स्त्री-आवाज मीराबाई के रूप में सामने आती है। भारतीय साहित्य में मीरा केवल कृष्ण-भक्त कवयित्री नहीं हैं; वे मध्यकालीन सामंती समाज के विरुद्ध स्त्री की स्वायत्त चेतना की उद्घोषणा भी हैं। राजपरिवार में जन्म लेने के बावजूद उन्होंने राजकीय मर्यादाओं, कुल-प्रतिष्ठा और विधवा-जीवन की रूढ़ सामाजिक अपेक्षाओं को अस्वीकार कर दिया। उनके लिए कृष्ण केवल आराध्य देव नहीं, बल्कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और आध्यात्मिक स्वाधीनता के प्रतीक हैं। *मीरा का प्रसिद्ध कथन 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई' केवल भक्तिभाव का उद्घोष नहीं है; यह उस सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध आत्म-घोषणा है, जो स्त्री की पहचान को परिवार, पति और कुल तक सीमित कर देती थी।*[16] मीरा के पदों में बार-बार विष का प्याला, लोकलाज, कुल-निंदा, राजदरबार और सामाजिक निषेध का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि उनका संघर्ष केवल धार्मिक नहीं था। वे अपने समय की उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था से भी जूझ रही थीं जो स्त्री की आध्यात्मिक स्वतंत्रता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी। मीरा का काव्य यह सिद्ध करता है कि प्रेम सामाजिक दासता का नहीं, बल्कि आत्म-मुक्ति का माध्यम भी हो सकता है। इसी कारण आधुनिक नारीवादी आलोचना मीरा को भारतीय स्त्री-प्रतिरोध की आरंभिक सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में देखती है।

भक्तिकाल की अन्य महिला संत-कवयित्रियाँ— जैसे लल्लेश्वरी (ललद्यद), जनाबाई, बहिणाबाई, सहजोबाई और दयाबाई भी भारतीय स्त्री-अनुभव की विविध दिशाओं को सामने लाती हैं। लल्लेश्वरी कश्मीर की दार्शनिक-आध्यात्मिक परंपरा में आत्मानुभूति की स्वतंत्र भाषा विकसित करती हैं; जनाबाई श्रम, सेवा और भक्ति के माध्यम से जाति तथा लिंग दोनों की सीमाओं को चुनौती देती हैं; सहजोबाई और दयाबाई निर्गुण साधना में स्त्री की बौद्धिक भागीदारी का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। इन सभी रचनाकारों की विशेषता यह है कि इन्होंने संस्कृत जैसी अभिजात भाषा के स्थान पर लोकभाषाओं को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इससे स्त्री का अनुभव पहली बार व्यापक समाज तक पहुँचा और साहित्य अभिजात वर्ग की सीमा से बाहर निकला।

इस प्रकार भक्तिकाल भारतीय संस्कृति और साहित्य में नारी की बदलती छवि का एक निर्णायक अध्याय सिद्ध होता है। यहाँ स्त्री केवल करुणा, सौंदर्य या पतिव्रत की प्रतिमा नहीं रह जाती; वह साधिका, कवयित्री, दार्शनिक, प्रश्नकर्ता और सांस्कृतिक विद्रोही के रूप में सामने आती है। यद्यपि सामाजिक स्तर पर पितृसत्ता समाप्त नहीं होती, फिर भी भक्ति आंदोलन स्त्री को एक ऐसी वैचारिक और भाषिक स्वतंत्रता प्रदान करता है, जो आगे चलकर आधुनिक भारतीय स्त्री-विमर्श की आधारभूमि बनती है। यही कारण है कि भक्तिकाल को भारतीय साहित्य में नारी की आत्म-अभिव्यक्ति का स्वर्णिम काल कहा जा सकता है।

आधुनिक भारत में नारी अस्मिता का पुनर्जागरण : शिक्षा, सामाजिक सुधार और स्वाधीनता आंदोलन

भारतीय समाज में आधुनिक काल नारी-विमर्श के इतिहास का एक निर्णायक मोड़ है। यदि प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति परंपरा, धर्म, जाति और पारिवारिक संरचनाओं द्वारा नियंत्रित होती रही तो उन्नीसवीं शताब्दी से प्रारंभ होने वाले सामाजिक नवजागरण ने पहली बार इन संरचनाओं की

आलोचनात्मक समीक्षा की। यह परिवर्तन आकस्मिक नहीं था; इसके पीछे औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत आधुनिक शिक्षा का प्रसार, मुद्रण संस्कृति का विकास, सामाजिक सुधार आंदोलनों का उदय तथा भारतीय समाज के भीतर आत्मालोचन की प्रक्रिया सक्रिय थी। इसी काल में स्त्री को केवल परिवार की मर्यादा अथवा पुरुष की परिधि में स्थित सत्ता के रूप में देखने के स्थान पर उसे स्वतंत्र व्यक्तित्व, अधिकार-संपन्न नागरिक और समाज-निर्माता के रूप में समझने का प्रयास प्रारम्भ हुआ। यह परिवर्तन पूर्ण नहीं था, किंतु इतना महत्त्वपूर्ण अवश्य था कि उसने भारतीय साहित्य और संस्कृति दोनों की दिशा बदल दी।

सामाजिक सुधार आंदोलनों ने स्त्री-संबंधी अनेक प्रश्नों को सार्वजनिक विमर्श का विषय बनाया। सती-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, स्त्री-शिक्षा, उत्तराधिकार तथा विवाह संस्था जैसे प्रश्न अब केवल धार्मिक व्याख्या तक सीमित नहीं रहे, बल्कि नैतिक, सामाजिक और मानवीय दृष्टि से भी उनका मूल्यांकन होने लगा। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इन आंदोलनों का उद्देश्य केवल किसी एक कुरीति का उन्मूलन नहीं था, बल्कि स्त्री को मनुष्य के रूप में स्वीकार करने की चेतना का विकास भी था। इसी प्रक्रिया ने भारतीय समाज में यह प्रश्न उपस्थित किया कि यदि स्त्री परिवार, समाज और राष्ट्र के निर्माण में समान रूप से सहभागी है, तो उसे शिक्षा, संपत्ति, विचार और निर्णय के अधिकारों से वंचित क्यों रखा जाए। इस प्रकार स्त्री का प्रश्न पहली बार सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा के व्यापक प्रश्न से जुड़ने लगा।

आधुनिक शिक्षा ने इस परिवर्तन को वैचारिक आधार प्रदान किया। शिक्षा ने स्त्रियों को केवल अक्षरज्ञान नहीं दिया, बल्कि आत्मबोध, तर्कशीलता और सामाजिक सहभागिता का अवसर भी उपलब्ध कराया। शिक्षित स्त्रियों की नई पीढ़ी ने यह अनुभव किया कि *परंपरा का सम्मान तभी सार्थक है जब वह मनुष्य की गरिमा के अनुकूल हो।*[17] फलतः साहित्य में ऐसी स्त्री-पात्रों का उदय हुआ, जो केवल त्याग और समर्पण की प्रतिमाएँ नहीं हैं, बल्कि अपने निर्णय स्वयं लेने वाली, प्रश्न पूछने वाली तथा अन्याय का प्रतिरोध करने वाली चेतन व्यक्तित्व हैं। यहाँ स्त्री की छवि देवी और दासी के बीच झूलने के स्थान पर एक जीवित मनुष्य के रूप में विकसित होती है। यही परिवर्तन आगे चलकर भारतीय स्त्री-विमर्श की बौद्धिक आधारभूमि बना।

हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग और द्विवेदी युग के दौरान सामाजिक सुधार की यह चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। आरंभिक रचनाओं में स्त्री-शिक्षा और सामाजिक सुधार का आग्रह अपेक्षाकृत उपदेशात्मक रूप में उपस्थित है, परंतु धीरे-धीरे साहित्य जीवन की जटिलताओं को अधिक गहराई से देखने लगता है। अब स्त्री केवल सुधार की पात्र नहीं रहती; वह स्वयं विचार करने वाली सत्ता के रूप में सामने आती है। साहित्यकारों ने यह समझना प्रारंभ किया कि स्त्री की मुक्ति केवल विधायी परिवर्तन से संभव नहीं है; उसके लिए सामाजिक मानसिकता, पारिवारिक संबंधों और सांस्कृतिक मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन भी आवश्यक है।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में राष्ट्रीय आंदोलन ने स्त्री की सामाजिक भूमिका को एक नया आयाम प्रदान किया। स्वाधीनता-संग्राम में स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी ने यह स्थापित किया कि राष्ट्र-निर्माण का प्रश्न केवल पुरुषों का दायित्व नहीं है। सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने वाली महिलाओं ने शिक्षा, राजनीति, पत्रकारिता, सेवा, संगठन और जन-जागरण के विविध क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दिया। परिणामस्वरूप भारतीय समाज में स्त्री की सार्वजनिक उपस्थिति सामान्य होती गई। यह परिवर्तन केवल राजनीतिक नहीं था; उसने सांस्कृतिक मानस को भी प्रभावित किया। अब साहित्य में स्त्री घर और बाहर, दोनों संसारों की सक्रिय सहभागी के रूप में चित्रित होने लगी। यद्यपि राष्ट्रीय आंदोलन ने स्त्रियों को सार्वजनिक मंच प्रदान किया, फिर भी उसके भीतर अनेक अंतर्विरोध विद्यमान थे। *राष्ट्रवादी विमर्श प्रायः स्त्री को त्याग, सेवा और मातृत्व के आदर्श रूप में प्रतिष्ठित करता रहा। इससे स्त्री की सामाजिक प्रतिष्ठा तो बढ़ी, किंतु कई बार उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता और निजी आकांक्षाएँ पुनः सामूहिक आदर्शों के अधीन कर दी गईं।*[18] इसीलिए आधुनिक

स्त्री-विमर्श यह प्रश्न उठाता है कि क्या केवल राष्ट्र के लिए समर्पित 'आदर्श नारी' की छवि पर्याप्त है या स्त्री को उसके व्यक्तिगत अधिकारों, इच्छाओं और स्वायत्त अस्तित्व के साथ भी स्वीकार किया जाना चाहिए। यही प्रश्न आधुनिक भारतीय साहित्य की अनेक महत्वपूर्ण कृतियों में विविध रूपों में व्यक्त हुआ है। प्रेमचंद के कथा-साहित्य में यह संक्रमण विशेष रूप से दिखाई देता है। उनके यहाँ स्त्री न तो पूर्णत: परंपरा की बंदिनी है और न ही आधुनिकता का एकांगी प्रतीक। वह सामाजिक विषमताओं, आर्थिक असमानताओं, पारिवारिक दबावों और नैतिक संघर्षों से जूझती हुई मनुष्य के रूप में उपस्थित होती है। उनके स्त्री-पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक परिवर्तन केवल कानून से नहीं, बल्कि जीवन की वास्तविक परिस्थितियों के परिवर्तन से संभव है। इसी कारण आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री के प्रश्न को वर्ग, जाति, गरीबी और नैतिकता जैसे व्यापक सामाजिक प्रश्नों से जोड़कर देखा जाने लगा। छायावादी साहित्य ने भी स्त्री की छवि को नया सौंदर्य और नई संवेदनात्मक गहराई प्रदान की। विशेषत: महादेवी वर्मा के गद्य और काव्य में स्त्री की मौन पीड़ा, आत्मसंघर्ष, करुणा और स्वाधीन चेतना अत्यंत सूक्ष्मता के साथ अभिव्यक्त होती है। *उनके साहित्य में स्त्री किसी बाहरी उद्धार की प्रतीक्षा नहीं करती; वह अपनी आंतरिक शक्ति और आत्मसम्मान के माध्यम से अपनी पहचान निर्मित करती है।*[19] यहाँ स्त्री-विमर्श प्रत्यक्ष राजनीतिक न होकर मानवीय संवेदना और आत्मानुभूति के स्तर पर विकसित होता है। इस दृष्टि से आधुनिक भारतीय साहित्य में स्त्री की छवि करुणा से आगे बढ़कर आत्मनिर्णय और आत्मगौरव की छवि बन जाती है।

आधुनिक भारतीय संस्कृति का सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह रहा कि स्त्री को पहली बार इतिहास की सक्रिय निर्माता के रूप में देखा जाने लगा। वह केवल परंपरा की संरक्षिका नहीं रही, बल्कि परिवर्तन की वाहक भी बनी। *शिक्षा, सामाजिक सुधार, स्वतंत्रता आंदोलन और साहित्यिक पुनर्जागरण ने मिलकर स्त्री के उस व्यक्तित्व को जन्म दिया, जिसने आगे चलकर लोकतांत्रिक भारत में समानता, न्याय और संवैधानिक अधिकारों की अवधारणा को सामाजिक आधार प्रदान किया।*[20] फिर भी यह स्वीकार करना आवश्यक है कि आधुनिकता ने सभी वर्गों की स्त्रियों को समान अवसर नहीं दिए। जाति, वर्ग, क्षेत्र, भाषा और आर्थिक विषमता जैसी संरचनाएँ स्त्री-अनुभव को निरंतर प्रभावित करती रहीं। अत: आधुनिक नारी की छवि को किसी एक सार्वभौमिक मॉडल में नहीं बाँधा जा सकता; वह बहुवचन में विकसित होने वाली सामाजिक वास्तविकता है। यही बहुलता समकालीन भारतीय स्त्री-विमर्श की आधारभूमि भी है। आधुनिक भारतीय साहित्य यह स्पष्ट करता है कि नारी की बदलती छवि केवल अधिकार प्राप्त करने की कथा नहीं है; यह आत्मसम्मान, आत्मनिर्णय, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक पुनर्पाठ की सतत प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया ने भारतीय संस्कृति को भीतर से बदलने का कार्य किया है और आगे भी वही परिवर्तन सार्थक होगा, जो स्त्री को प्रतीक नहीं, बल्कि समान गरिमा वाले मनुष्य के रूप में स्वीकार करेगा।

समकालीन भारतीय साहित्य और संस्कृति में नारी का पुनर्पाठ : अस्मिता, अंतर्संबंध और भविष्य की चुनौतियाँ

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में भारतीय समाज ने तीव्र सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन देखे हैं। उदारीकरण, वैश्वीकरण, सूचना-प्रौद्योगिकी, शिक्षा के प्रसार, लोकतांत्रिक अधिकारों की बढ़ती चेतना तथा मीडिया के विस्तार ने नारी की सामाजिक स्थिति और सांस्कृतिक छवि दोनों को गहराई से प्रभावित किया है। यदि उन्नीसवीं शताब्दी का सुधारवादी विमर्श स्त्री को अधिकार दिलाने की प्रक्रिया का आरंभ था और स्वाधीनता-आन्दोलन ने उसे राष्ट्र-निर्माण की सहभागी के रूप में प्रतिष्ठित किया, तो समकालीन काल में स्त्री स्वयं अपने अनुभवों की व्याख्याकार बनकर सामने आती है। अब वह किसी अन्य के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि अपनी दृष्टि से समाज, संस्कृति, इतिहास और साहित्य का पुनर्पाठ करती है। यही कारण है कि समकालीन नारी-विमर्श केवल पुरुष-वर्चस्व की आलोचना तक सीमित नहीं

रहता, बल्कि ज्ञान, सत्ता, भाषा, इतिहास और संस्कृति की उन संरचनाओं की भी समीक्षा करता है, जिनके माध्यम से स्त्री की छवि का निर्माण किया गया था।

समकालीन भारतीय साहित्य की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उसमें नारी को एकरूप सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि विविध सामाजिक-सांस्कृतिक अनुभवों से निर्मित व्यक्तित्व के रूप में देखा गया है। ग्रामीण और शहरी स्त्री, शिक्षित और अशिक्षित स्त्री, दलित, आदिवासी, पिछड़े वर्गों तथा अल्पसंख्यक समुदायों की स्त्रियों के अनुभव एक-दूसरे से भिन्न हैं। इसी प्रकार *आर्थिक रूप से संपन्न स्त्री और श्रमजीवी स्त्री की समस्याएँ भी समान नहीं हैं।* [21] इसलिए समकालीन विमर्श यह स्वीकार करता है कि स्त्री-अनुभव को किसी एक सार्वभौमिक प्रतिमान में समेटना न तो संभव है और न ही न्यायसंगत। भारतीय समाज की बहुलतावादी संरचना स्त्री-अस्मिता को भी बहुवचन में विकसित करती है। इसीलिए आज नारी-विमर्श का स्वर अधिक लोकतांत्रिक, बहुस्तरीय और अंतर्संबंधी दिखाई देता है। इसी संदर्भ में *'अंतर्संबंधिता' (Intersectionality) की अवधारणा विशेष महत्त्व ग्रहण करती है।* [22] समकालीन भारतीय चिंतन यह स्पष्ट करता है कि *स्त्री का शोषण केवल उसके स्त्री होने के कारण नहीं होता; अनेक बार जाति, वर्ग, भाषा, धर्म, क्षेत्र, विकलांगता, आयु तथा आर्थिक स्थिति जैसी संरचनाएँ भी उसके अनुभवों को निर्धारित करती हैं।* [23] उदाहरणत: एक शिक्षित महानगरीय स्त्री की चुनौतियाँ किसी आदिवासी अथवा दलित ग्रामीण स्त्री से भिन्न हो सकती हैं। अत: समकालीन साहित्य उन आवाजों को भी केंद्र में लाने का प्रयास करता है, जिन्हें लंबे समय तक मुख्यधारा के साहित्यिक इतिहास ने अपेक्षाकृत उपेक्षित रखा। यह परिवर्तन भारतीय लोकतंत्र की सामाजिक चेतना का भी द्योतक है।

हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के समकालीन साहित्य में स्त्री अब केवल पीड़ा की प्रतिनिधि नहीं है; वह प्रतिरोध, आत्मनिर्णय और वैकल्पिक सामाजिक दृष्टि की वाहक भी है। *समकालीन कथा-साहित्य, आत्मकथाओं, संस्मरणों, कविताओं और नाटकों में स्त्री अपने श्रम, देह, भाषा, प्रेम, मातृत्व, पेशेवर जीवन, वैवाहिक संबंधों, राजनीतिक भागीदारी तथा सांस्कृतिक पहचान से जुड़े प्रश्नों पर स्वयं बोलती है।* [24] इस परिवर्तन ने साहित्य की भाषा और संरचना दोनों को प्रभावित किया है। निजी अनुभव अब सामाजिक विमर्श का विषय बनते हैं और घरेलू जीवन भी राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विश्लेषण के दायरे में आता है। इस प्रकार साहित्य जीवन के उन क्षेत्रों को भी अभिव्यक्ति देता है, जिन्हें कभी निजी कहकर सार्वजनिक चर्चा से बाहर रखा जाता था।

समकालीन संस्कृति में मीडिया और डिजिटल मंचों ने स्त्री की दृश्यता को अभूतपूर्व रूप से बढ़ाया है। सोशल मीडिया, डिजिटल पत्रकारिता, वेब-माध्यम, स्वतंत्र लेखन और वैकल्पिक मंचों ने अनेक स्त्रियों को अपने अनुभव साझा करने तथा सामाजिक संवाद में सक्रिय भागीदारी का अवसर प्रदान किया है। इससे लैंगिक हिंसा, कार्यस्थल पर भेदभाव, घरेलू उत्पीड़न, साइबर हिंसा, समान वेतन, प्रजनन अधिकार और प्रतिनिधित्व जैसे अनेक प्रश्न व्यापक सामाजिक बहस का विषय बने हैं। दूसरी ओर यही डिजिटल संस्कृति स्त्री के वस्तुकरण, निजता के उल्लंघन, ऑनलाइन उत्पीड़न तथा बाज़ार-निर्मित सौंदर्य-मानकों को भी बढ़ावा देती है। अत: समकालीन तकनीकी परिवेश नारी के लिए अवसर और चुनौती दोनों का क्षेत्र है।

वैश्वीकरण ने भी स्त्री की भूमिका को बहुआयामी बनाया है। शिक्षा और रोजगार के नए अवसरों ने स्त्रियों की आर्थिक स्वायत्तता को बढ़ाया है, किन्तु साथ ही कार्यस्थल और परिवार के बीच संतुलन, अस्थायी श्रम, उपभोक्तावादी संस्कृति तथा मानसिक दबाव जैसी नई समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं। आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति अनेक बार स्त्री-स्वतंत्रता को केवल बाज़ार की स्वतंत्रता के रूप में प्रस्तुत करती है। वस्त्र, सौंदर्य, जीवन-शैली और उपभोग के विकल्पों को ही स्वतंत्रता का पर्याय मान लेना नारी-मुक्ति की अवधारणा को सीमित कर देता है। समकालीन आलोचना इस प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए यह प्रश्न उठाती है कि क्या वास्तविक स्वतंत्रता केवल उपभोग की क्षमता से प्राप्त होती है अथवा वह समान अवसर, सम्मान, सुरक्षा और निर्णय-स्वायत्तता से

निर्मित होती है।

भारतीय साहित्य में समकालीन नारी-पात्रों का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे संबंधों को अस्वीकार नहीं करतीं, बल्कि उन्हें अधिक न्यायपूर्ण और मानवीय बनाने का प्रयास करती हैं। भारतीय नारी-विमर्श का स्वर पश्चिमी प्रतिमानों की यांत्रिक पुनरावृत्ति नहीं है; वह भारतीय सांस्कृतिक अनुभवों के भीतर रहकर समानता, गरिमा और संवाद की संभावनाएँ खोजता है। परिवार, समुदाय और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों को नकारे बिना भी स्त्री की स्वतंत्र पहचान स्थापित की जा सकती है- समकालीन भारतीय साहित्य का एक बड़ा हिस्सा इसी संतुलित दृष्टि का समर्थन करता है। इसीलिए भारतीय नारी-विमर्श का लक्ष्य स्त्री और पुरुष के मध्य संघर्ष को स्थायी बनाना नहीं, बल्कि समान गरिमा पर आधारित सामाजिक साझेदारी का निर्माण करना है।

समकालीन स्त्री-विमर्श का एक अन्य महत्त्वपूर्ण आयाम इतिहास और परंपरा का पुनर्पाठ है। आज की लेखिकाएँ और आलोचक भारतीय मिथकों, महाकाव्यों तथा ऐतिहासिक आख्यानों की स्त्री-पात्रों को नए दृष्टिकोण से पढ़ रही हैं। सीता, द्रौपदी, अहिल्या, गांधारी, उर्मिला, कुंती, मीराबाई और अनेक ऐतिहासिक स्त्रियों की पुनर्व्याख्या यह दर्शाती है कि इतिहास एक स्थिर सत्य नहीं, बल्कि निरंतर पुनर्पाठ की प्रक्रिया है। इस पुनर्पाठ का उद्देश्य परंपरा का निषेध नहीं, बल्कि उसके भीतर दबे हुए स्त्री-अनुभवों को सामने लाना है। परिणामस्वरूप भारतीय सांस्कृतिक स्मृति अधिक बहुलतापूर्ण और समावेशी बनती है। फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि समकालीन भारत में लैंगिक समानता का प्रश्न अभी पूरी तरह हल नहीं हुआ है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, संपत्ति पर अधिकार, घरेलू हिंसा, बाल-विवाह, मानव-तस्करी, लैंगिक वेतन-अंतर तथा स्त्री-सुरक्षा जैसी अनेक समस्याएँ आज भी सामाजिक यथार्थ का हिस्सा हैं। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों, सीमांत समुदायों तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की स्त्रियों के सामने चुनौतियाँ कहीं अधिक जटिल हैं। इसलिए समकालीन नारी-विमर्श केवल उपलब्धियों का उत्सव नहीं मनाता, बल्कि उन असमानताओं की ओर भी ध्यान आकर्षित करता है जो लोकतांत्रिक मूल्यों के बावजूद बनी हुई हैं। इस समूचे परिदृश्य में भारतीय साहित्य की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। साहित्य समाज का दर्पण भर नहीं होता; वह समाज की संभावनाओं का भी निर्माण करता है। समकालीन साहित्य स्त्री को करुणा की पात्र या आदर्श की मूर्ति बनाकर नहीं, बल्कि संघर्षशील, विचारशील, सृजनशील और नैतिक निर्णय लेने वाली मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करता है। यही प्रस्तुति भारतीय संस्कृति को अधिक मानवीय, लोकतांत्रिक और समतामूलक बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। नारी की बदलती छवि अंततः केवल स्त्री के परिवर्तन की कथा नहीं है; वह भारतीय समाज की बदलती नैतिक चेतना, लोकतांत्रिक परिपक्वता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भी कथा है। इसी बिंदु पर आधुनिक भारतीय नारी-विमर्श परंपरा और परिवर्तन, अधिकार और उत्तरदायित्व, स्वायत्तता और सामाजिक सहभागिता के बीच एक संतुलित मानवीय दृष्टि विकसित करता है, जो भविष्य के भारतीय समाज के लिए भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय संस्कृति और साहित्य में नारी की बदलती छवि : विमर्श और भविष्य की दिशाएँ

भारतीय संस्कृति और साहित्य में नारी की बदलती छवि का सम्यक् किसी एक ऐतिहासिक घटना, सामाजिक आंदोलन अथवा वैचारिक हस्तक्षेप का परिणाम नहीं है, बल्कि भारतीय सभ्यता की दीर्घकालिक सांस्कृतिक यात्रा का निष्कर्ष है। वैदिक युग से लेकर समकालीन वैश्विक समाज तक स्त्री की सामाजिक स्थिति, सांस्कृतिक भूमिका और साहित्यिक अभिव्यक्ति निरंतर परिवर्तनशील रही है। यह परिवर्तन कभी तीव्र गति से दिखाई देता है, तो कभी अत्यंत धीमी सामाजिक प्रक्रियाओं के माध्यम से विकसित होता है। इसलिए भारतीय नारी-विमर्श को केवल अधिकारों के इतिहास के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय समाज के आत्मबोध, सांस्कृतिक पुनर्समीक्षा और मानवीय मूल्यों के विकास की प्रक्रिया के रूप में समझना अधिक उपयुक्त होगा। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का एक उल्लेखनीय गुण उसका निरंतर आत्मसंशोधन है। इसी कारण भारतीय साहित्य में स्त्री की छवि कभी स्थिर नहीं रही। वैदिक युग में जहाँ ज्ञान, संवाद और

आध्यात्मिक साधना में स्त्री की सक्रिय उपस्थिति दिखाई देती है, वहीं उत्तरवर्ती काल में अनेक सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक कारणों से उसकी सार्वजनिक भूमिका क्रमशः सीमित होती चली गई। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन ने पुनः स्त्री-अनुभव को आध्यात्मिक और मानवीय गरिमा के साथ जोड़ने का प्रयास किया, जबकि आधुनिक युग के सामाजिक सुधार आंदोलनों ने स्त्री के प्रश्न को सामाजिक न्याय और मानवीय अधिकारों के विमर्श से संबद्ध किया। समकालीन भारत में यह प्रक्रिया लोकतांत्रिक मूल्यों, संवैधानिक अधिकारों और वैश्विक संवादों के माध्यम से और अधिक व्यापक हो चुकी है। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति की शक्ति उसके परिवर्तनशील चरित्र में निहित है, न कि किसी एक युग की अपरिवर्तनीय सामाजिक संरचना में।

साहित्य इस संपूर्ण प्रक्रिया का सबसे संवेदनशील साक्षी रहा है। प्रत्येक युग के साहित्य ने अपने समय की स्त्री-छवि को अभिव्यक्ति दी है, किंतु केवल उसका प्रतिबिंब प्रस्तुत करना ही साहित्य का कार्य नहीं रहा; उसने अनेक बार समाज से आगे बढ़कर भविष्य की संभावनाओं का भी संकेत किया है। वाल्मीकि की सीता, महाभारत की द्रौपदी, कालिदास की शकुंतला, भक्तिकाल की मीराबाई, आधुनिक कथा-साहित्य की संघर्षशील स्त्रियाँ और समकालीन लेखन की आत्मनिर्णयी नायिकाएँ-ये सभी अपने-अपने समय की सांस्कृतिक चेतना की प्रतिनिधि होने के साथ-साथ उस चेतना के पुनर्निर्माण की सक्रिय वाहक भी हैं। इस दृष्टि से भारतीय साहित्य नारी की बदलती छवि का केवल अभिलेख नहीं, बल्कि उसके विकास का सक्रिय माध्यम भी है। समकालीन नारी-विमर्श का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि उसने स्त्री को 'वस्तु' से 'विषय' में रूपांतरित किया है। लंबे समय तक साहित्य में स्त्री का वर्णन प्रायः पुरुष-दृष्टि के माध्यम से किया जाता रहा; उसकी सुंदरता, त्याग, मातृत्व, सेवा या पतिव्रत को ही उसकी पहचान का आधार बनाया गया। आधुनिक और उत्तर-आधुनिक विमर्शों ने इस दृष्टि को चुनौती देते हुए यह स्थापित किया कि स्त्री स्वयं अपनी अनुभूतियों, विचारों और जीवनानुभवों की स्वायत्त व्याख्याकार है। यह परिवर्तन केवल साहित्यिक शैली का परिवर्तन नहीं है; यह ज्ञान-निर्माण की प्रक्रिया में स्त्री की समान भागीदारी का उद्घोष है। इसी कारण आज स्त्री-विमर्श केवल प्रतिनिधित्व का प्रश्न नहीं रह गया, बल्कि ज्ञान, इतिहास, संस्कृति और सत्ता-संबंधों की पुनर्समीक्षा का व्यापक उपक्रम बन चुका है। फिर भी भारतीय नारी-विमर्श की सबसे बड़ी विशेषता उसका संतुलित सांस्कृतिक दृष्टिकोण है। भारतीय चिंतन परंपरा सामान्यतः स्त्री और पुरुष को परस्पर विरोधी सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक सहअस्तित्व के पूरक पक्षों के रूप में देखने का प्रयास करती है। आधुनिक भारतीय नारी-विमर्श भी समानता की स्थापना को सामाजिक विघटन का नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण साझेदारी का आधार मानता है। इसका उद्देश्य परिवार, समाज और संस्कृति का निषेध करना नहीं, बल्कि उन्हें अधिक मानवीय, समतामूलक और लोकतांत्रिक बनाना है। इसलिए भारतीय संदर्भ में नारी-मुक्ति का प्रश्न केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रश्न नहीं है; वह सामाजिक उत्तरदायित्व, सांस्कृतिक पुनर्रचना और मानवीय सहअस्तित्व का भी प्रश्न है। यहाँ यह स्वीकार करना भी आवश्यक है कि समकालीन समाज में स्त्री-सशक्तीकरण की उपलब्धियों के बावजूद अनेक गंभीर चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। शिक्षा और रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है, किंतु निर्णय-निर्माण के उच्च स्तरों पर स्त्रियों की भागीदारी अभी भी अपेक्षाकृत सीमित है। संवैधानिक समानता की स्थापना के बावजूद सामाजिक व्यवहार में लैंगिक पूर्वाग्रह अनेक रूपों में सक्रिय हैं। घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर उत्पीड़न, डिजिटल हिंसा, वेतन-असमानता, बाल-विवाह, मानव-तस्करी तथा स्त्री-श्रम के अवमूल्यन जैसी समस्याएँ यह संकेत करती हैं कि विधिक सुधारों के साथ-साथ सांस्कृतिक चेतना का विकास भी समान रूप से आवश्यक है। भारतीय समाज का वास्तविक लोकतंत्रीकरण तभी संभव होगा, जब समानता केवल कानून का प्रावधान न रहकर सामाजिक व्यवहार का स्वाभाविक मूल्य बन सके।

इक्कीसवीं शताब्दी में कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल मीडिया, जैव-प्रौद्योगिकी और वैश्विक संचार के विस्तार ने स्त्री-अध्ययन के समक्ष नए प्रश्न भी उपस्थित किए हैं। भविष्य का भारतीय नारी-विमर्श केवल पारंपरिक लैंगिक असमानताओं तक सीमित नहीं रहेगा; उसे

डिजिटल निजता, एल्गोरिद्मिक पूर्वाग्रह, साइबर उत्पीड़न, कृत्रिम बुद्धिमत्ता में लैंगिक प्रतिनिधित्व, प्रजनन-प्रौद्योगिकी, पर्यावरणीय न्याय तथा जलवायु परिवर्तन जैसी उभरती हुई चुनौतियों पर भी विचार करना होगा। इसी प्रकार भारतीय भाषाओं में उपलब्ध स्त्री-अनुभवों का डिजिटलीकरण, क्षेत्रीय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन तथा पूर्वोत्तर, आदिवासी और सीमांत समुदायों की स्त्री-परंपराओं का गंभीर अनुसंधान भविष्य की महत्त्वपूर्ण शोध-दिशाएँ हो सकती हैं। इससे भारतीय नारी-विमर्श अधिक समावेशी, बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक स्वरूप ग्रहण करेगा। भारतीय संस्कृति की दीर्घ परंपरा हमें यह भी सिखाती है कि किसी समाज की वास्तविक प्रगति का मूल्यांकन केवल उसकी आर्थिक समृद्धि या तकनीकी उपलब्धियों से नहीं, बल्कि इस आधार पर भी किया जाना चाहिए कि वह अपने सबसे संवेदनशील वर्गों के प्रति कितना न्यायपूर्ण है। इस दृष्टि से नारी की स्थिति किसी भी सभ्यता के नैतिक स्तर का महत्त्वपूर्ण संकेतक है। जिस समाज में स्त्री को सम्मान, शिक्षा, सुरक्षा, निर्णय-स्वतंत्रता और सृजनात्मक अभिव्यक्ति के समान अवसर प्राप्त होते हैं, वही समाज दीर्घकालिक सांस्कृतिक विकास की दिशा में आगे बढ़ता है। अत: नारी-सशक्तीकरण को किसी एक वर्ग विशेष का प्रश्न मानना भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि के अनुरूप नहीं है; यह समूचे समाज की नैतिक उन्नति और लोकतांत्रिक परिपक्वता का प्रश्न है।

निष्कर्ष :

बहरहाल, स्त्री की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति को किसी एक स्थिर प्रतिमान के आधार पर नहीं समझा जा सकता। भारतीय सभ्यता के दीर्घ इतिहास में नारी कभी वैदिक ऋषिका के रूप में ज्ञान-परंपरा की वाहक रही, कभी महाकाव्यों में मर्यादा, न्याय और प्रतिरोध का नैतिक प्रश्न बनी, कभी मध्यकालीन सामाजिक संरचनाओं के कारण सीमित होती दिखाई दी, तो कभी भक्ति आंदोलन के माध्यम से अपनी आध्यात्मिक स्वायत्तता की उद्घोषक बनी। आधुनिक भारत में सामाजिक सुधार आंदोलनों, स्त्री-शिक्षा, राष्ट्रीय आंदोलन और लोकतांत्रिक चेतना ने उसके व्यक्तित्व को नई वैचारिक ऊर्जा प्रदान की, जबकि समकालीन साहित्य ने उसे स्वतंत्र अनुभव, आत्मनिर्णय और सामाजिक हस्तक्षेप करने वाली सृजनशील सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार भारतीय नारी की छवि निरंतर परिवर्तन, पुनर्व्याख्या और आत्मविकास की प्रक्रिया से निर्मित हुई है। यह भी स्पष्ट है कि भारतीय साहित्य ने प्रत्येक युग में नारी की स्थिति का केवल प्रतिबिंब प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का मार्ग भी प्रशस्त किया है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भक्तिकालीन संत-कवियों, आधुनिक हिंदी साहित्यकारों तथा समकालीन रचनाकारों ने अपने-अपने समय की सांस्कृतिक चेतना के अनुरूप स्त्री-पात्रों का सृजन किया, किंतु अनेक अवसरों पर साहित्य ने समाज से आगे बढ़कर भविष्य की संभावनाओं को भी उद्घाटित किया। सीता, द्रौपदी, शकुंतला, मीरा और आधुनिक कथा-साहित्य की नायिकाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय साहित्य में नारी केवल चरित्र नहीं, बल्कि नैतिक विवेक, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक पुनर्समीक्षा की प्रतिनिधि रही है। इसलिए भारतीय साहित्य का इतिहास वस्तुत: भारतीय समाज में स्त्री-अस्मिता के क्रमिक विकास का इतिहास भी है। भारतीय नारी-विमर्श का स्वरूप पश्चिमी स्त्रीवादी प्रतिमानों की यांत्रिक पुनरावृत्ति नहीं है। भारतीय संदर्भ में नारी-अस्मिता का प्रश्न समानता, गरिमा और स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक सहअस्तित्व, सांस्कृतिक उत्तरदायित्व और लोकतांत्रिक सहभागिता से भी जुड़ा हुआ है। यहाँ नारी की मुक्ति का अर्थ परिवार, समाज या संस्कृति का निषेध नहीं, बल्कि उन संरचनाओं का मानवीय पुनर्गठन है, जिनमें स्त्री और पुरुष दोनों समान गरिमा के साथ जीवन-यापन कर सकें। भारतीय चिंतन की यही विशेषता उसे संघर्ष की अपेक्षा संवाद, प्रतिस्पर्धा की अपेक्षा सहनिर्माण तथा वर्चस्व की अपेक्षा सहभागिता की दिशा में उन्मुख करती है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में यह भी स्पष्ट है कि विधिक और संवैधानिक समानता प्राप्त हो जाने के बावजूद सामाजिक यथार्थ में अनेक प्रकार की असमानताएँ अभी भी विद्यमान हैं। लैंगिक हिंसा, आर्थिक विषमता, कार्यस्थल पर भेदभाव, डिजिटल उत्पीड़न, सांस्कृतिक रूढ़ियाँ तथा प्रतिनिधित्व की सीमाएँ यह संकेत करती हैं कि नारी-सशक्तीकरण की प्रक्रिया अभी अधूरी है। अत: केवल नीतिगत सुधार पर्याप्त नहीं

होंगे; शिक्षा, साहित्य, मीडिया, परिवार और सांस्कृतिक संस्थाओं को मिलकर ऐसी सामाजिक चेतना विकसित करनी होगी जो स्त्री को पूर्ण मानव व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार करे। सामाजिक परिवर्तन की वास्तविक सफलता इसी बात पर निर्भर करेगी कि समानता का सिद्धांत व्यावहारिक जीवन में किस सीमा तक रूपांतरित होता है। कुलमिलाकर यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य में नारी की बदलती छवि परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व की नहीं, बल्कि उनके रचनात्मक संवाद की कथा है। इस यात्रा में नारी देवी भी रही है, दासी भी; त्याग की प्रतिमा भी रही है और प्रतिरोध की आवाज भी; परिवार की धुरी भी रही है और सामाजिक परिवर्तन की अग्रदूत भी। समकालीन भारतीय साहित्य इन सभी रूपों को एक व्यापक मानवीय परिप्रेक्ष्य में पुनर्स्थापित करते हुए यह स्थापित करता है कि स्त्री की वास्तविक पहचान किसी पूर्वनिर्धारित सांस्कृतिक साँचे में नहीं, बल्कि उसकी स्वतंत्र चेतना, मानवीय गरिमा और सृजनात्मक क्षमता में निहित है। यही दृष्टि भारतीय संस्कृति के मूल मानवीय आदर्श समानता, सहअस्तित्व, करुणा और न्याय को भी नई अर्थवत्ता प्रदान करती है। इसलिए भविष्य का भारतीय समाज तभी अधिक समतामूलक, संवेदनशील और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध बन सकेगा जब वह नारी को संरक्षण की नहीं, सहभागिता की; प्रतिनिधित्व की नहीं, नेतृत्व की; और प्रतीक की नहीं, पूर्ण मानव व्यक्तित्व की दृष्टि से स्वीकार करेगा। ❑

संदर्भग्रंथ-सूची :

1. वर्मा, महादेवी, शृंखला की कड़ियाँ, साहित्य भवन, 1944, 'अपनी बात,' अपृष्ठांकित
2. ऋग्वेद-संहिता, मंडल 10, सूक्त 125, मंत्र 3
3. ऋग्वेद-संहिता, मंडल 10, सूक्त 85, मंत्र 46
4. बृहदारण्यक उपनिषद्, द्वितीय अध्याय, चतुर्थ ब्राह्मण, मंत्र 2
5. बृहदारण्यक उपनिषद्, द्वितीय अध्याय, चतुर्थ ब्राह्मण, मंत्र 3
6. वाल्मीकि, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 27, श्लोक 3-4
7. वाल्मीकि, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग 116, श्लोक 6-10
8. वाल्मीकि, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग 116, श्लोक 24-25
9. व्यास, महाभारत,सभापर्व, द्यूतपर्व, अध्याय 66
10. व्यास, महाभारत, सभापर्व, द्यूतपर्व, अध्याय 66-67
11. हैलिसी, चार्ल्स (अनुवादक) थेरीगाथा : पोएम्स ऑफ द फर्स्ट बुद्धिस्ट विमेन, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015
12. थेरीगाथा : वर्सेज ऑफ द सीनियर नंस, (अनुवाद) भिक्खु सुजातो एवं जेसिका वाल्टन, सुत्तसेंट्रल, 2019, अभिगमन 20 जुलाई 2026
13. कालिदास, द रिकग्निशन ऑफ शकुंतला : अ प्ले इन सेवन एक्ट्स, (अनुवाद) डब्ल्यू. जे. जॉनसन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001
14. आंडाल, द पोएम्स ऑफ आंडाल : तिरुप्पावै एंड नाच्चियार तिरुमोली, (अनुवाद) पी.एस. सुंदरम, अनंताचार्य इंडोलॉजिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1987
15. Mahadaviyakka. "Vachanas." Speaking of Œiva, translated by A. K. Ramanujan, Penguin Books, 1973.
16. मीराबाई, 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई' मीराबाई की पदावली, संपादक परशुराम चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य सम्मेलन, 1947
17. Ramabai Sarasvati, Pandita. The High-Caste Hindu Woman. Press of the J. B. Rodgers Printing Co., 1887
18. Shinde, Tarabai. A Comparison between Women and Men: Tarabai Shinde and the Critique of Gender Relations in Colonial India. Translated and introduced by Rosalind O'Hanlon, Oxford UP, 1994
19. वर्मा, महादेवी, शृंखला की कड़ियाँ, साहित्य भवन, 1944
20. Chatterjee, Partha. The Nation and Its Fragments : Colonial and Postcolonial Histories. Princeton UP, 1993
21. Rege, Sharmila. Writing Caste/Writing Gender : Narrating Dalit Women's Testimonios. Zubaan, 2006
22. Crenshaw, Kimberle. "Demarginalizing the Intersection of Race and Sex: A Black Feminist Critique of Antidiscrimination Doctrine, Feminist Theory and Antiracist Politics." University of Chicago Legal Forum, vol. 1989, no. 1, 1989, pp. 139–67
23. Chakravarti, Uma. Gendering Caste : Through a Feminist Lens. Revised ed., SAGE, 2018
24. Tharu, Susie, and K. Lalita, editors. Women Writing in India : 600 B.C. to the Present. 2 vols., Feminist Press, 1991–93

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

भक्ति आंदोलन और हिंदी साहित्य

डॉ. हरिनिवास पाण्डेय

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय
पासीघाट, अरुणाचल प्रदेश-791103
7005686071
hariniwaspandey@gmail.com

शोध-सार :

भारतीय सांस्कृतिक और धार्मिक इतिहास में भक्ति आंदोलन एक अत्यंत महत्वपूर्ण तथा व्यापक जनआंदोलन के रूप में प्रतिष्ठित है। इस आंदोलन ने न केवल भारतीय धर्म-साधना को नवीन दिशा प्रदान की बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित किया। मध्यकालीन भारत में विकसित विशाल भक्ति साहित्य इसी आंदोलन की देन है, जिसने भारतीय जनमानस में आध्यात्मिक चेतना, सामाजिक समरसता और मानवीय मूल्यों का संचार किया। भक्ति की परंपरा का मूल स्रोत वैदिक एवं उपनिषदिक चिंतन में निहित है, किंतु इसे लोकव्यापी स्वरूप प्रदान करने का श्रेय दक्षिण भारत के आलवार और नायनमार संतों को जाता है। इन संतों ने भक्ति को कर्मकांडों और जातिगत बंधनों से मुक्त कर जनसाधारण के लिए सुलभ बनाया तथा ईश्वर के प्रति प्रेम, समर्पण और अनुभूति को साधना का प्रमुख आधार माना। आलवारों द्वारा प्रवर्तित वैष्णव भक्ति आंदोलन ने आगे चलकर रामानुजाचार्य, रामानंद, कबीर, सूरदास, तुलसीदास, चैतन्य महाप्रभु तथा अन्य अनेक संतों और आचार्यों के माध्यम से संपूर्ण भारत में व्यापक रूप ग्रहण किया। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न भारतीय भाषाओं में समृद्ध भक्ति साहित्य का सृजन हुआ, जिसने क्षेत्रीय भाषाओं के विकास और भारतीय सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भक्ति आंदोलन ने सामाजिक विषमताओं, जातिगत भेदभाव और धार्मिक रूढ़ियों का विरोध करते हुए समानता, प्रेम और मानवता का संदेश दिया। इस प्रकार भक्ति आंदोलन भारतीय इतिहास का एक ऐसा युगांतकारी अध्याय है, जिसने धर्म, समाज और साहित्य के क्षेत्र में स्थायी एवं दूरगामी प्रभाव स्थापित किया।

बीज शब्द :

भक्ति आंदोलन, वैष्णव भक्ति, आलवार संत, प्रबंधम, श्रीमद्भागवत, रामानुजाचार्य, स्वामी रामानंद, रामभक्ति काव्य, कृष्णभक्ति काव्य, मध्यकालीन हिंदी साहित्य।

विश्लेषण :

भक्ति आंदोलन का भारतवर्ष में बहुत ही महत्वपूर्ण इतिहास रहा है। भारतीय भाषाओं में मध्ययुग में जो विपुल भक्ति साहित्य निर्मित हुआ है, वह भक्ति आंदोलन की ही देन है। वैदिक काल से लेकर आज तक भक्ति भावना का विकास कई अवस्थाओं में हुआ है। भक्ति का जो स्वरूप आज दिखाई देता है,

वह बहुत कुछ भक्ति आंदोलन का परिणाम है, जिसका नेतृत्व तमिल प्रदेश के वैष्णव भक्त आलवारों ने ईसा की छठी शताब्दी से नौवीं शताब्दी तक किया था। आलवारोत्तर काल में भक्ति आंदोलन प्रबल होकर एक व्यापक जन आंदोलन बन गया। वैष्णव भक्ति आंदोलन के प्रेरक तत्वों ने मध्य काल में भक्ति आंदोलन को देशव्यापी रूप प्रदान कर भक्तिमय वातावरण का सृजन किया और भक्ति को बहुत ही लोकप्रिय बना दिया, जिसके फलस्वरूप हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में मध्ययुग में प्रचुर मात्रा में वैष्णव भक्ति साहित्य का प्रणयन हुआ। हिंदी प्रदेश के वैष्णव भक्ति आंदोलन का संबंध दक्षिण में उदित वैष्णव भक्ति आंदोलन से है। फिर भी तमिल के आलवार संतों के भक्ति-साहित्य के उचित मूल्यांकन के अभाव में वैष्णव भक्ति आंदोलन के संतुलित इतिहास में कुछ कमियाँ रह गई हैं। भक्ति साहित्य का अध्ययन तभी सर्वांगीण हो सकता है, जब अन्य भारतीय भाषाओं के भक्ति साहित्य के संदर्भ में उसका अनुशीलन और मूल्यांकन किया जाए।

भारतीय धर्म साधना में भक्ति का अपना विशिष्ट धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व रहा है। यह वह मार्ग है, जिसने सर्वप्रथम व्यापक रूप से समाज के संपूर्ण अंग को प्रभावित किया और एक बहुत ही लंबी अवधि तक समाज का मार्गदर्शन किया। इस मार्ग का हमारे साहित्यकारों, समाजसेवियों, समाज सुधारकों और धर्माचार्यों का अत्यधिक सहयोग और समर्थन प्राप्ता होता रहा। भारतीय संस्कृति ने जितना भक्ति-मार्ग को प्रभावित किया, उतना कोई दूसरा स्रोत नहीं कर सका। भक्ति- भाव के उद्‌भव और विकास का इतिहास काफी लंबा है। जहाँ तक वैष्णव भक्ति-भावना की बात है तो इसके उद्‌भव से लेकर विकास के विभिन्न चरणों और अवस्थाओं को पारकर आज जिस स्वरूप में हैं, उसके लिए हमारे भक्तों और संतों ने अपना संपूर्ण जीवन खपा दिया। वैदिक काल के कर्म मार्ग की अनुपयुक्तता और उपनिषद काल के ज्ञानमार्ग की दुरुहता के समक्ष परवर्ती युग के भक्ति मार्ग की उपयुक्तता और सरलता ने जनमानस को अपनी ओर आकृष्ट किया और भक्ति साधना को लोकप्रिय बना दिया। इसलिए कुछ विद्वान वैष्णव भक्ति का उद्‌भव वैदिक युग से मानते हैं, परंतु जिस भावमूलक भक्ति का स्वरूप आज हमारे सामने है - उसका दर्शन वेदों में नहीं होता। वैदिक युग मुख्य रूप से यज्ञीय कर्मकांड का युग था। उपनिषद काल में ही हमें भक्ति भावना का स्पष्ट रूप देखने को मिलता है। भक्ति भावना के विकास में उपनिषदों का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बाद के सभी चिंतकों ने उपनिषदों से ही अपना कदम बढ़ाया है, तत्पश्चात रामायण, महाभारत और गीता के काल तक आकर वैष्णव भक्ति भावना का काफी विकास हो जाता है। इस प्रकार वेद उपनिषद, महाकाव्य, गीता, प्रबंधम, श्रीमद्‌भागवत इत्यादि वैष्णव भक्ति-भावना के विकास के विभिन्न सोपान हैं। धर्म-साधना की दृष्टि से वैदिक युग से लेकर ब्राह्मण ग्रंथों के युग तक धर्म-साधना की दो पद्धतियाँ-कर्म और ज्ञान प्रचलित हो चुकी थीं, किंतु वैदिक युग के ज्ञान और कर्म में से ब्राह्मण-ग्रंथों ने यज्ञीय कर्मकांड को पराकाष्ठा की सीमा तक पहुँचा दिया था और स्थिति यह हो गई कि यज्ञ और यज्ञ के पुरोहित के प्रभाव मंडल में स्वयं यज्ञ के देवता का तिरोभाव होता जा रहा था और धर्म के क्षेत्र में केवल पुरोहितों का बोलबाला हो गया और उनकी तानाशाही को चुनौती देते हुए उपनिषदकारों ने तत्वान्वेषण का क्रम जारी रखा। परिणामस्वरूप चिंतन पक्ष, जिसका बीज ऋग्वेद में भी मिलता है पर बल दिया।

भागवत संप्रदाय में प्राचीन वैदिक देवताओं तथा उनकी पारंपरिक कथाओं को कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन के साथ अपनाया गया और उन्हीं मूर्तियों को नए ढंग से सँवारा गया। फिर भी भागवत धर्म में ब्राह्मणों का एकाधिपत्य बना रहा और सर्व सामान्य के लिए धार्मिक क्षेत्र में कोई अधिकार नहीं था। जैन और बौद्ध धर्म ब्राह्मणों के विरोध में और बहुजन के समर्थन में बहुमत के साथ खड़े हो गए। धीरे-धीरे ब्राह्मण आचरण से पतित होता चला गया तब और विकट स्थिति पैदा हो गई। इसी युग की आवश्यकता की पूर्ति हेतु दक्षिण के आलवार और नायनमारों ने भक्ति आंदोलन रूपी समाज सुधारवादी धार्मिक आंदोलन आरंभ किया। आलवारों ने भक्ति मार्ग को जो नया रूप दिया, उसे दूसरे अर्थों में वैष्णव भक्ति आंदोलन भी कहा जा सकता है। यहीं से वैष्णव भक्ति आंदोलन की शुरुआत हो जाती है। कुछ इतिहासकारों और विद्वानों ने भक्ति के इस नवीन मार्ग को 'आंदोलन' (मूवमेंट) या धर्म सुधार (रिलिजियास

रिफॉर्म) का नाम दिया है। अंग्रेजी भाषा के 'मूवमेंट' शब्द का अर्थ है – कुछ व्यक्तियों या व्यक्ति समूहों द्वारा किसी विशेष उद्देश्य की उपलब्धि के लिए किया जाने वाला प्रयास। 'आंदोलन' शब्द भी लगभग यही अर्थ देता है। 'सुधार' या 'रिफॉर्मेशन' शब्द के साथ क्रांति (रेवोल्यूशन) शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। बौद्ध-जैन धर्म के प्रवर्तक महात्माओं ने जिस नई धार्मिक चेतना को प्रचारित किया, उसे इतिहास में बौद्धिक क्रांति की संज्ञा दी गई। आंदोलन शब्द की सार्थकता आलवारों से संचालित 'भक्ति आंदोलन' में भक्ति भावना के विकास के इतिहास की दृष्टि से ठीक घटित होती है। आलवार भक्तों ने परंपरागत/ शास्त्रसम्मत भक्ति भावना में सुधार न किया होता तो भक्ति का जो स्वरूप आज दिखाई देता है, वह नहीं हो पाता। सामाजिक स्तर पर वैष्णव भक्ति का द्वार सभी जातियों के लिए खोलकर आलवार भक्तों ने वैष्णव भक्ति को पहली बार लोक धर्म बना दिया। इतना ही नहीं, यज्ञादि कर्मों में सीमित रहने वाली शास्त्रीय वैष्णव भक्ति को भावमूलक स्वरूप प्रदान कर सर्वसाधारण के लिए उसे सरल और सुलभ बनाने के साथ भक्ति को केवल अनुभूति का साधन घोषित किया।

आलवार भक्तों का भक्ति आंदोलन वस्तुत: जन आंदोलन था, क्योंकि ये पद रचना करके सामान्य कवियों की तरह अपने घरों में नहीं पड़े थे, बल्कि समाज में घूम-घूमकर ऐसे वातावरण का सृजन किया, जिसमें भक्ति का स्वर सबसे ऊँचा था। भक्ति आंदोलन का नेतृत्व करने वाले आलवार भक्तों ने स्वयं अपने जीवन आदर्शों के बल पर वैष्णव भक्ति के नवीन रूप को जनता के सन्मुख रखा और भक्ति का राष्ट्रीयकरण कर दिया, जिससे उस पर कुछेक लोगों का एकाधिकार न होकर सबका समान रूप से अधिकार हो गया। आलवार भक्तों का समय ईसा की पाँचवी शताब्दी से नौवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक है। आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य के आविर्भाव ने पुन: प्राचीन युगीन समस्याओं को वैष्णवों के सामने उपस्थित किया। इस बार वैष्णवों से उनके साकार ब्रह्म को छीनने का प्रयास किया गया और उसका आधार श्रुतियों को बताया गया। शंकराचार्य के देशव्यापी प्रभाव को चुनौती देकर आलवारों से सुधार पाने वाले नवीन आकर्षक भक्ति मार्ग को देशव्यापी बनाने के लिए आलवारोत्तर काल में वैष्णव आचार्यों ने विशेषकर रामानुजाचार्य ने संस्कृत में शास्त्रीय विवेचन प्रारंभ कर दिया। इस विवेचन के फलस्वरूप अनेक संप्रदायों का जन्म हुआ, जिन्होंने अपने अपने क्षेत्र में भक्ति मार्ग को प्रतिष्ठित कर उसे लोकप्रिय बना दिया।

मध्ययुग का प्रारंभ हम दसवीं शताब्दी से मानते हैं और उसकी छाया सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी तक है। आलवरोत्तर काल को ही भक्ति साहित्य के इतिहास में 'मध्यकाल' के नाम से जाना जाता है। यह वही समय है, जब दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति आंदोलन पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था और उत्तर भारत पराधीनता की जंजीरों में जकड़ कर पतित धार्मिक अवस्था में था। वहाँ भी सुधार की आवश्यकता ह्यी, जब परिस्थितियाँ तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दियों में बहुत ही विकट हो गईं, तब एक व्यापक जन आंदोलन का जन्म होता है। हिंदी साहित्य का मध्यकाल और इतिहास के मध्ययुगीन भारत विशेषत: हिंदी प्रदेश की परिस्थितियों में विशेषकर हिंदू धर्म की स्थिति बहुत खराब थी। उसमें जो बीमारियाँ थीं, उन्हें ठीक करने की सारी औषधियाँ दक्षिण के वैष्णव भक्ति आंदोलन में थीं। यही कारण है कि दक्षिण के वैष्णव भक्ति आंदोलन का स्वाभाविक रूप से उत्तर भारत में स्वागत हुआ। इस आंदोलन को व्यापक रूप देने के लिए जन भाषा हिंदी के माध्यम से भक्ति मार्ग का प्रचार करने की आवश्यकता थी और यह कार्य स्वामी रामानंद ने किया। इस प्रकार उन्होंने हिंदी प्रदेश में वैष्णव भक्ति का द्वार सबके लिए खोल दिया और दक्षिण के वैष्णव भक्ति आंदोलन के सभी आकर्षक तत्वों का समावेश अपने युग की आवश्यकता के अनुरूप किया। परिणामस्वरूप भक्ति आंदोलन 'बिजली की चमक' के समान उत्तर भारत में फैल गया और वैष्णव भक्ति आंदोलन देशव्यापी बन गया। भारत में इस्लाम का आगमन और उत्तर में मुसलमानों का शासन केवल संयोग की बात है। परवर्ती युग में भक्ति आंदोलन को व्यापक रूप देने और उसे लोकप्रिय बनाने में सूफी संतों का भी थोड़ा-बहुत योगदान है। भक्ति आंदोलन के देशव्यापी होने के कारण सभी भारतीय भाषाओं का मध्ययुगीन साहित्य भक्ति भावना से ओत-प्रोत है और भारत को एक सूत्र में बाँधकर अनेकता में एकतावाली भारतीय संस्कृति के मूल तत्व को सुदृढ़ किया।

आलवारों का भक्ति-साहित्य 'प्रबंधम' भक्ति आंदोलन का मूल ग्रंथ है, जिसमें विष्णु के दो 'रामावतार और कृष्णावतार' रूप के प्रति विशेष आस्था थी। प्रबंधम में प्रतिपादित रामभक्ति और कृष्णभक्ति के स्वरूप पर अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों वैष्णव काव्य धाराओं का उद्‌गम 'प्रबंधम' ही है। भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से ही सांसारिक दुखों से मुक्ति हेतु तीन मार्ग - ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग प्रचलित रहे हैं। आलवारों के स्तुति-गीतों की एक बड़ी विशेषता उनमें संगीत का समावेश था। यह प्रभाव हिंदी प्रदेश में भी भजन-कीर्तन की परंपरा में दिखाई देता है। संस्कृत वांग्मय में वेद, उपनिषद और गीता के उपरांत श्रीमद्‌भागवत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ है। गीता और भागवत के बीच में भक्ति के क्षेत्र में भक्ति को आंदोलन का रूप देकर नवीन आकर्षक स्वरूप प्रदान करने का श्रेय 'प्रबंधम' को ही है। बहुत-से विद्वान गीता और श्रीमद्‌भागवत के बीच की लंबी अवधि देखकर विस्मय में पड़े हैं। श्रीमद्‌भागवत की अतिशय लोकप्रियता देखकर इसके रचनाकाल के अनुसंधान की ओर अनेक देशी और विदेशी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। आधुनिक विद्वानों का मत है कि यह एक परवर्ती रचना है, जो नौवीं ईस्वी शताब्दी के पहले की नहीं है। कुछ विद्वान उसे 13वीं शताब्दी की रचना मानते हैं। उन विद्वानों में विल्सन, मेक डॉनल, कोलब्रुक तथा बनार्फ के नाम उल्लेखनीय हैं। अलबरूनी ने अपने भारत वर्णन में 1030 ई. में 'वासुदेव भागवत' का नामोल्लेख किया है। बल्लासेन ने अपने ग्रंथ 'दानसागर' में एक भागवत पुराण का उल्लेख किया है। बल्लासेन के कथन का संकेत श्रीमद्‌भागवत की ओर ही है। अत: इसका रचनाकाल 1050 ई. के पूर्व होना चाहिए। चूँकि मध्वाचार्य ने भागवत पुराण पर टीका लिखी थी, अत: इसे मध्वाचार्य के पहले की रचना माना जा सकता है। भारतीय परंपरा वेदव्यास को श्रीमद्भागवत का रचयिता मानती है। सभी पुराणों के रचयिता भी व्यास जी ही हैं। व्यास नाम के साथ तीन भिन्न-भिन्न अभिधान जुड़े हुए हैं- (1) वेदव्यास, (2) वादरायण व्यास और (3) कृष्ण द्वैपायन व्यास। कुछ लोग इन तीनों को अलग-अलग व्यक्ति मानते हैं, लेकिन अधिकांश लोग तीनों को एक ही व्यक्ति मानते हैं। श्रीमद्‌भागवत की सुशृंखलित शैली एवं संघटित रचना विधान को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक व्यक्ति की रचना होने के लक्षणों से युक्त है। हालाँकि रचयिता के विषय में कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपस्थित नहीं किए जा सकते हैं। भागवत के अंत: साक्ष्य के आधार पर ज्ञात होता है कि इसका रचना स्थल दक्षिण भारत है। इसके वर्णन दक्षिण भारत के नैसर्गिक रूप से अधिक मेल खाते हैं। उत्तर भारत का वर्णन प्रत्यक्षदर्शन की अपेक्षा श्रुति परंपरा से आया मालूम पड़ता है और उसमें उत्तरी भारत के दृश्य की अपेक्षा दक्षिण भारत का दृश्य ही अधिक प्रतिबिंबित होता है-

''वनौकस: प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युत:।
जलधारा गिरेनार्दानासन्ना ददृशे गुहा:।।
क्वाचिदनस्पातिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति।
निविश्य भागवन रमें कन्दमूलफलाशन:।।''

(श्रीमद्‌भागवत 10-20-27-28)

(भील-किरातादि जातियों का निवासस्थल और गिरिकंदराओं का बाहुल्य ब्रजभूमि की अपेक्षा दक्षिण भारत में ही है। नदी, पर्वतों, घने वनों खजूर आदि वृक्षों का आधिक्य दक्षिण प्रायदीप और विंध्याचल के आस-पास ही है। इन विविध वर्णनों के आधार पर इसका रचना स्थल दक्षिण भारत प्रतीत होता है।)

भक्ति आंदोलन का सूत्रपात जिस युग में हिंदी प्रदेश में होता है, उसे इतिहास में तुर्क-अफगान काल के नाम से अभिहित किया जाता है। यह युग बारहवीं शताब्दी से लेकर पंद्रहवीं शताब्दी तक चलता है और सोलहवीं शती के प्रथम चरण में इसका अंत होता है। तुर्क-अफगान जातियों का शासन होने के कारण ही इसे यह नाम दिया गया है। तत्पश्चात भारत पर मुगलों का शासन स्थापित होता है। इन दोनों विदेशी जातियों के शासन-काल में ही उत्तर भारत या हिंदी प्रदेश में भक्ति की निर्झरिणी प्रवाहित होती है। प्रारंभ होता है-तुगलकों के पराभव और सैयद लोदी वंश के उदय और विकास का क्रम चलता रहता है अंतिम मुगल सम्राटों तक। मुस्लिम विजेताओं की धर्म प्रचारक नीति को देखकर हिंदू समाज में आत्मरक्षा की प्रवृत्ति बड़ी तीव्रता के साथ जाग पड़ी। ब्राह्मणों ने जाति बंधन के शिकंजे को इतना कसा कि हिंदू धर्म का लचीलापन

समाप्त हो गया। कर्मणा आधारित जाति व्यवस्था जन्मना में बदल गई। स्थिति इतनी शोचनीय हो गई कि निम्न समझी जानी वाली जातियों में ही कई उपजातियाँ बन गईं। शूद्र जो निम्न वर्ण में थे, सभ्य समाज के सभी अधिकारों से वंचित रह गए। शताब्दियों तक इस दशा में रहने के कारण नीच समझी जाने वाली जातियों में विद्रोह का भाव नहीं आया था, परंतु मुसलमानों के संसर्ग ने उन्हें जागृत कर दिया। चूँकि मुसलमानों में कोई भेदभाव नहीं था, न कोई ऊँच न कोई नीच-मुसलमान होने पर छोटा से छोटा व्यक्ति भी सामाजिक दृष्टि से अपने को दूसरे मुसलमानों के बराबर समझ सकता था। निर्गुण और सूफी संतों के समन्वयात्मक सामाजिक व्यवहार ने भक्ति आंदोलन को दो-तीन सोपानों में आगे बढ़ाया।

हिंदी प्रदेश में वैष्णव भक्ति आंदोलन को जन आंदोलन का रूप तभी मिला, जब स्वामी रामानंद ने भक्ति प्रचार के लिए जनभाषा हिंदी को प्रथम बार स्थान दिया। रामानंद और उनके शिष्यों के द्वारा भक्ति के क्षेत्र में हिंदी को अपनाने से 'गाँवों की बोली' उनके ओजस्वी कंठों का बल पाकर बलवती हो उठी। तुलसी और सूर जैसे समर्थ हिंदी भक्त कवियों को जन्म देने का श्रेय रामानंद के उस उदार दृष्टिकोण को है। निराकार तथा साकार ब्रह्म को लेकर वैष्णव कवियों ने जो साहित्य सृजन किया। उस आधार पर भक्ति साहित्य को साहित्यकारों ने दो धाराओं निर्गुण धारा तथा सगुण धारा में विभक्त किया। जिन क्षेत्रों में कृष्णोपासकों का बाहुल्य था जहाँ कृष्ण काव्य को और जहाँ रामोपासकों की संख्या अधिक थी, वहाँ राम-काव्य का प्रणयन अधिक हुआ। इसीलिए कृष्ण लीला भूमि ब्रज प्रदेश (वृंदावन) में अधिकांश कृष्ण भक्ति काव्य 'ब्रजभाषा' में ही निर्मित हुआ। इसी प्रकार रामभक्ति साहित्य का विशेष प्रणयन 'अवधी' में हुआ। ब्रजभाषा के विकास में कृष्ण भक्त कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ब्रज और अवधी को उच्च साहित्यिक स्तर पर उठाने में वैष्णव आंदोलन का बड़ा हाथ रहा है। ब्रजभाषा में साहित्य का आरंभ उस समय हुआ, जब गोवर्धन में श्रीनाथ जी के मंदिर का निर्माण कर बल्लभाचार्य जी ने कीर्तन, भजन इत्यादि की व्यवस्था की। उनके आश्रय में महाकवि सूरदास तथा अन्य भक्तों ने ब्रजमंडल की स्थानीय बोली में गीत लिखे और गाए। राधाबल्लभ संप्रदाय के संस्थापक श्री हित हरिवंश, नाभादास, नरोत्तमदास और रसखान इत्यादि ने ब्रजभाषा को एक साहित्यिक भाषा के रूप में अपनाया। उनकी भाषा में संस्कृत और हिंदी की अन्य उपभाषाओं के शब्द ब्रजभाषा के रूप को परिमार्जित और परिष्कृत करते हैं। सूरदास ने ब्रजभाषा को इतना सुंदर, मधुर और आकर्षक बना दिया कि लगभग 400 वर्षों तक पश्चिमी उत्तर प्रदेश की कविता का सारा विराग, प्रेम, भजन भाव उसके द्वारा अभिव्यक्त हुआ। इसी प्रकार अवधी के विकास में रामभक्त कवियों ने बड़ा ही सराहनीय कार्य किया। रामभक्त तुलसी के पूर्व अवधी में जायसी और अन्य सूफी संतों/कवियों ने अपने आख्यानक काव्यों की रचना की। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' जैसे अमर काव्य लिखकर अवधी को सुसंस्कृत और मधुर बनाया। अन्य रामभक्तों ने भी अवधी के विकास में पर्याप्त योग दिया है। हिंदी वैष्णव काव्य की दोनों धाराओं - रामभक्ति काव्यधारा और कृष्णभक्ति काव्यधारा के संतों/कवियों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। तुलसी के पूर्व रामभक्त कवियों में गोस्वामी विष्णुदास का नाम उल्लेखनीय है। इस नाम के एक से अधिक भक्त हुए हैं। भक्तमाल के अनुसार कृष्णदास पयहारी के 23 शिष्यों में एक नाम विष्णुदास का भी है। तुलसी ने उस समय की सारी सामाजिक दुर्बलताओं को, सारी धार्मिक विडंबनाओं एवं कुरीतियों को एक समाज सुधारक एवं धर्मोपदेशक के रूप में समूल नष्ट करने का प्रयत्न किया, जिसमें वे पूर्ण रूप से सफल हुए। संतकाव्य धारा से प्रवाहित हिंदी के निर्गुणिया कवि कबीर, दादू, रैदास, रज्जब, पलटूदास आदि के साहित्य में लोक धर्म की अवहेलना की गई थी। सूफी प्रेममार्गी संत कवि कुतुबन, मंझन, जायसी आदि लौकिकता या अलौकिकता की छाप भर लगाकर रह गए थे। नाथों ने समाज को केवल भुलावा और बहकावा ही दिया था, जिससे जनता अंधी भेड़ बनी हुई तरह-तरह की करामातों को साधुता का चिह्न मानने लगी।

हिंदी में कृष्णकाव्य विविध कृष्णभक्ति संप्रदायों के अंतर्गत आने वाले कवियों के द्वारा निर्मित हैं। भक्ति संप्रदायों ने इन कवियों को काव्य रचना के लिए प्रोत्साहित किया। कृष्ण भक्तों की उपासना क्षेत्र में यद्यपि साध्य भी एकता थी, अर्थात सभी ने कृष्ण को या राधाकृष्ण के युगल रूप

को अपने आराध्य के रूप में ग्रहण किया था, फिर भी उनकी सेवा-विधि कृष्ण के विभिन्न रूपों संबंधी मान्यताओं में थोड़ा बहुत अंतर था। इसीलिए विभिन्न संप्रदायों की स्थापना हुई, जिनमें बल्लभ, राधा-बल्लभीय, गौड़ीय, निम्बार्क और हरिदासी संप्रदाय मुख्य हैं। अधिकांश हिंदी कृष्णभक्त कवि इनमें से किसी-न-किसी संप्रदाय से संबंधित थे। कुछ संप्रदाय मुक्त कृष्ण-भक्त कवि भी थे। कृष्ण-भक्त कवियों में महाकवि सूरदास हिंदी साहित्य गगन के तेजोमय सूर्य हैं। इनकी रचनाएँ भगवदभक्तों और साहित्यानुरागी रसिकजनों को असीमित आनंदित करती हैं। संगीतज्ञों के लिए सूर के पद मानों प्राण हैं। सूरदास कृत कुल 25 रचनाओं में सर्वाधिक चर्चा सूरसागर की होती है, क्योंकि इसे भी श्रीमद्‌भागवत की तरह द्वादश स्कंदों में विभाजित किया गया है। सूरसागर में प्रथम, नवम और दशम स्कंद के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध विशाल और महत्वपूर्ण हैं। शेष उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं। अष्टछाप के कवियों की तरह नंददास ने अनेक ग्रंथों की रचना की, जिनमें कुछ अब अनुपलब्ध हैं। रस मंजरी, गोवर्धन लीला और रास पंचाध्यायी बड़ी ही महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। मुसलमान कृष्ण-भक्त कवियों में 'रसखान' का नाम बड़े ही सम्मान के साथ लिया जाता है। डॉ. दीनदयाल गुप्त रसखान को अष्टछाप के कवियों के समकालीन मानते हैं, जबकि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी उनका जन्म 16वीं शती के मध्य मानते हैं। कृष्ण काव्य के इतिहास में राधाबल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक हितहरिवंश का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। हितहरिवंश जी का ब्रजभाषा और संस्कृत दोनों पर समान अधिकार था। अकबर के दरबार के श्रेष्ठ कवि रत्नों में अब्दुर्रहीम खानखाना, जो इतिहास प्रसिद्ध बैरम खां के पुत्र थे-की रचनाओं में 'मदनाष्टक' और 'रासपंचाध्यायी' दोनों ही कृष्णकाव्य के अंतर्गत आती हैं। रहीम के पदों में कृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन ब्रजभाषा में हुआ है। पदों की शब्द योजना संगीतात्मक है। भाव और भाषा की दृष्टि से ये पद सूरदास के पदों से मिलते हैं। इसी तरह अपनी केवल एक छोटी-सी रचना के बल पर नरोत्तमदास हिंदी के श्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में स्थान पाने वाले अद्वितीय कृष्ण-भक्त थे।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः भक्ति आंदोलन का बहुत ही विस्तृत और महत्वपूर्ण इतिहास रहा है। मध्यकाल जो प्रचुर मात्रा में भक्ति साहित्य की रचना का काल था, वह भक्ति आंदोलन की ही देन है। मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति आंदोलन को बहुत अधिक मात्रा में प्रभावित करने वाले दो प्रमुख प्रेरणास्रोत हैं - प्रबंधम और भागवत। प्रबंधम और भागवत को आधार मानकर अनेक वैष्णव संप्रदायों ने वैष्णव भक्ति के आकर्षक तत्वों का प्रतिपादन किया और उसे देशव्यापी और जीवंत बनाए रखा। मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति आंदोलन देशव्यापी रहा है। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप सृजित भक्तिमय वातावरण ने ही मध्ययुगीन सभी भारतीय भाषाओं के वैष्णव भक्ति साहित्य के निर्माण की आधार भूमि प्रस्तुत की। एक प्रकार से वैष्णव भक्ति आंदोलन ने सभी भारतीय भाषाओं को पनपने का अवसर दिया। भक्ति आंदोलन ने भारतीय जन-जीवन को जितना अधिक प्रभावित किया, उतना कोई दूसरा स्रोत नहीं कर सका। इसीलिए इसका प्रभाव बहुमुखी रहा है। भक्ति आंदोलन के माध्यम से संतों ने सामाजिक धरातल पर समानता और एकता स्थापित करने का महान कार्य किया। भारतवर्ष के इतिहास में यह बहुत बड़ा सामाजिक सुधार माना जाएगा। ❑

संदर्भ :

1. मध्यकालीन धर्म साधना - हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन, नई दिल्ली, 1956
2. हिंदी निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि-गोविंद त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन, कानपुर, 1961
3. भागवतदर्शन-हरवंशलाल शर्मा, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1963
4. हिंदी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि-विश्वंभरनाथ उपाध्याय, साहित्य रत्न भंडार, आगरा, 1961
5. मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास- रामरतन भटनागर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1962
6. तुलसीपूर्व राम साहित्य-अमरपाल सिंह, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968
7. सुर और उनका साहित्य-हरवंशलाल शर्मा, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1982
8. हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य पर पुराणों का प्रमाण-शशि अग्रवाल, हिंदुस्तानी एकाडेमी, इलाहाबाद, 2000

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 Peer Reviewed Journal
ISSN : 2321-4945 [UGC-CARE Listed]

भगिनी निवेदिता के चिंतन में भारतीय राष्ट्रवाद, शिक्षा और सांस्कृतिक चेतना

डॉ. ब्रजेश कुमार प्रसाद

सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी, उत्तर प्रदेश-221005
9559561761
brajeshk.prasad1@bhu.ac.in

शोध-सार :

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में भारत में जो राष्ट्रवादी चेतना विकसित हुई, वह केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के संघर्ष तक सीमित नहीं थी-उसके भीतर एक व्यापक सांस्कृतिक पुनर्जागरण, सामाजिक आत्मबोध और शैक्षिक पुनर्विचार की प्रक्रिया भी सक्रिय थी। इसी ऐतिहासिक संदर्भ में भगिनी निवेदिता का व्यक्तित्व विशेष महत्व प्राप्त करता है। आयरलैंड में जन्मीं मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल स्वामी विवेकानंद के संपर्क में आने के पश्चात भारत आईं और उन्होंने अपने जीवन को भारतीय समाज, संस्कृति और राष्ट्रीय पुनर्जागरण के कार्य में समर्पित कर दिया। भगिनी निवेदिता का योगदान केवल एक आध्यात्मिक अनुयायी के रूप में सीमित नहीं था; उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय शिक्षा, स्त्री-जागरण और सांस्कृतिक चेतना के प्रश्नों पर गंभीर विचार प्रस्तुत किए। उनके चिंतन में राष्ट्रवाद का अर्थ मात्र राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं था। उनके लिए राष्ट्रवाद सांस्कृतिक आत्मबोध, ऐतिहासिक स्मृति और नैतिक पुनर्निर्माण से जुड़ा हुआ विचार था। उन्होंने भारतीय संस्कृति को राष्ट्र की वास्तविक शक्ति के रूप में देखा और शिक्षा को उस माध्यम के रूप में समझा, जिसके द्वारा समाज अपनी सांस्कृतिक चेतना को नई पीढ़ियों तक पहुँचाता है। इस शोध-पत्र का उद्देश्य भगिनी निवेदिता के चिंतन में भारतीय राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय शिक्षा और सांस्कृतिक चेतना के परस्पर संबंधों का विश्लेषण करना है। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि निवेदिता का चिंतन भारतीय राष्ट्रवादी विचारधारा को एक व्यापक सांस्कृतिक और नैतिक आयाम प्रदान करता है। उनके विचार यह संकेत करते हैं कि राष्ट्र का निर्माण केवल राजनीतिक स्वतंत्रता से नहीं, बल्कि शिक्षा, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक आत्मविश्वास के माध्यम से भी होता है।

बीज शब्द :

भगिनी निवेदिता, स्वामी विवेकानंद, भारतीय राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय शिक्षा, सांस्कृतिक चेतना, नारी-जागरण, भारतीय पुनर्जागरण, स्त्री-शिक्षा, राष्ट्रवादी विचार, भारतीय संस्कृति।

मूल आलेख :

भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के इतिहास में अनेक ऐसे विचारक और सामाजिक कार्यकर्ता हुए, जिन्होंने राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन

व्यक्तित्वों में भगिनी निवेदिता का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनका जन्म 28 अक्टूबर, 1867 को आयरलैंड में हुआ था और उनका मूल नाम मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल था। प्रारंभिक जीवन में वे शिक्षण कार्य से जुड़ी रहीं और पश्चिमी बौद्धिक वातावरण में पली-बढ़ीं, किंतु स्वामी विवेकानंद से भेंट के पश्चात उनके जीवन में एक निर्णायक परिवर्तन आया। विवेकानंद के विचारों ने उन्हें भारत की आध्यात्मिक परंपरा और सांस्कृतिक विरासत की ओर आकर्षित किया। *भारत आने के पश्चात उन्होंने भारतीय समाज को समझने और उसके साथ जुड़ने का प्रयास किया। विवेकानंद ने उन्हें ''निवेदिता''*[1] नाम दिया जिसका अर्थ है—पूर्ण समर्पण। *''यह नाम केवल प्रतीकात्मक नहीं था, बल्कि उनके जीवन के उद्देश्य को भी व्यक्त करता था। उन्होंने स्वयं को भारतीय समाज की सेवा और राष्ट्रीय चेतना के जागरण के कार्य में समर्पित कर दिया।''* [2]

भगिनी निवेदिता का चिंतन भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि उन्होंने राष्ट्रवाद को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की आकांक्षा तक सीमित नहीं रखा। उनके विचारों में *''राष्ट्र एक सांस्कृतिक समुदाय है, जिसकी पहचान इतिहास, परंपरा और सामाजिक अनुभवों से निर्मित होती है।''* [3] भगिनी निवेदिता के विचारों का मूल आधार भारतीय संस्कृति के प्रति गहरा सम्मान और संवेदनशील समझ था। उन्होंने भारत को केवल एक उपनिवेशित समाज के रूप में नहीं देखा, बल्कि एक ऐसी सभ्यता के रूप में समझा जिसकी ऐतिहासिक परंपरा अत्यंत समृद्ध और बहुआयामी है। *भारतीय जीवन की इसी जटिल संरचना को उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि वेब ऑफ इंडियन लाइफ' में स्पष्ट किया।*[4] इस पुस्तक में उन्होंने भारतीय समाज को समझने का एक अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उनके अनुसार भारतीय जीवन को केवल पश्चिमी सामाजिक मानकों के आधार पर समझना संभव नहीं है। भारत की सामाजिक संरचना, पारिवारिक संबंध, धार्मिक परंपराएँ और सांस्कृतिक प्रतीक एक ऐसी जटिल व्यवस्था का निर्माण करते हैं, जिसे समझने के लिए भारतीय इतिहास और आध्यात्मिक परंपरा को ध्यान में रखना आवश्यक है।

उनका यह भी मानना था कि औपनिवेशिक शासन ने भारतीय समाज में एक प्रकार की मानसिक दासता उत्पन्न कर दी है। पश्चिमी शिक्षा और औपनिवेशिक प्रशासन के प्रभाव में भारतीयों के बीच यह धारणा विकसित हो गई थी कि उनकी संस्कृति और परंपरा आधुनिकता की कसौटी पर खरा नहीं उतरती। *निवेदिता ने इस दृष्टिकोण का विरोध किया और भारतीय समाज को उसके सांस्कृतिक आत्मविश्वास की याद दिलाने का प्रयास किया।*[5] स्वामी विवेकानंद के विचारों ने उनके चिंतन को गहराई से प्रभावित किया। विवेकानंद ने भारतीय समाज के पुनर्जागरण को सेवा, आत्मविश्वास और जनजागरण से जोड़ा था। उनका विश्वास था कि भारत की वास्तविक शक्ति उसकी जनता में निहित है। *निवेदिता ने इस विचार को अपने सामाजिक और शैक्षिक कार्यों में आगे बढ़ाया।*[6] उनके अनुसार राष्ट्र का निर्माण केवल राजनीतिक संस्थाओं के माध्यम से नहीं होता। राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसके सांस्कृतिक जीवन और सामाजिक चेतना में निहित होती है। *यदि समाज अपनी सांस्कृतिक परंपरा से कट जाता है तो उसकी राष्ट्रय चेतना भी कमजोर हो जाती है। इसीलिए उन्होंने भारतीय संस्कृति और इतिहास के अध्ययन को राष्ट्रीय पुनर्जागरण की प्रक्रिया का आवश्यक अंग माना।*[7]

निवेदिता के विचारों में भारतीय राष्ट्रवाद का स्वरूप व्यापक और बहुआयामी है। उनके लिए राष्ट्रवाद केवल औपनिवेशिक शासन के विरोध का विचार नहीं था। वह सांस्कृतिक आत्मबोध और सामाजिक उत्तरदायित्व से जुड़ा हुआ विचार था। उनके अनुसार भारत की एकता किसी एक भाषा या धर्म पर आधारित नहीं है, बल्कि उसकी सांस्कृतिक परंपरा और ऐतिहासिक स्मृति पर आधारित है। उन्होंने भारतीय समाज की विविधता को उसकी कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी सांस्कृतिक शक्ति के रूप में देखा। भारत की विभिन्न भाषाएँ, धर्म और सामाजिक परंपराएँ मिलकर एक ऐसी सांस्कृतिक संरचना का निर्माण करती हैं, जिसने इस देश को हजारों वर्षों तक एकजुट बनाए रखा है। इस प्रकार उनका राष्ट्रवाद समावेशी और सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध था। शिक्षा के प्रश्न पर भी भगिनी निवेदिता का दृष्टिकोण अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली की आलोचना करते हुए

कहा कि ऐसी शिक्षा जो विद्यार्थियों को अपने समाज और संस्कृति से अलग कर देती है, वह अधूरी है। *उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं होना चाहिए, बल्कि व्यक्ति के चरित्र, आत्मविश्वास और सामाजिक चेतना का विकास करना चाहिए।*[8]

उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा की ऐसी अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें इतिहास, संस्कृति और सामाजिक अनुभव को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो। *उनके विचार में शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को अपने देश की परंपराओं और सामाजिक वास्तविकताओं से परिचित कराना भी है।*[9] राष्ट्रीय शिक्षा के प्रश्न पर भगिनी निवेदिता का चिंतन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके विचार में शिक्षा केवल बौद्धिक प्रशिक्षण का माध्यम नहीं है, बल्कि वह समाज की सांस्कृतिक स्मृति और नैतिक मूल्यों को अगली पीढ़ियों तक पहुँचाने की प्रक्रिया भी है। यदि शिक्षा अपने समाज की ऐतिहासिक चेतना से कट जाती है, तो वह केवल तकनीकी प्रशिक्षण तक सीमित हो जाती है। *निवेदिता ने इसीलिए औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली की आलोचना की, क्योंकि वह भारतीय विद्यार्थियों को अपने समाज की वास्तविकताओं से दूर कर देती थी।*[10] उनका यह मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल प्रशासनिक कार्यों के लिए कर्मचारियों का निर्माण करना नहीं होना चाहिए। औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत विकसित शिक्षा प्रणाली मुख्यतः इसी उद्देश्य से संचालित थी। निवेदिता ने इस दृष्टिकोण का विरोध किया और कहा कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य व्यक्तित्व का निर्माण है। उनके अनुसार शिक्षा मनुष्य के भीतर आत्मविश्वास, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करती है। राष्ट्रीय शिक्षा के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने यह कहा कि शिक्षा को भारतीय जीवन की वास्तविकताओं से जुड़ा होना चाहिए। *भारतीय इतिहास, साहित्य, दर्शन और सांस्कृतिक परंपराएँ विद्यार्थियों की शिक्षा का महत्वपूर्ण हिस्सा बननी चाहिए। इसी के माध्यम से विद्यार्थी अपने समाज और राष्ट्र के साथ गहरा संबंध स्थापित कर सकते हैं।*[11] निवेदिता के विचारों में शिक्षा और राष्ट्रवाद के बीच गहरा संबंध दिखाई देता है। उनके अनुसार राष्ट्रीय चेतना का विकास शिक्षा के माध्यम से ही संभव है। यदि शिक्षा विद्यार्थियों को अपने इतिहास और संस्कृति के प्रति जागरूक बनाती है तो वह राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसी कारण उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता पर विशेष बल दिया।

स्त्री-शिक्षा के संदर्भ में भी भगिनी निवेदिता का दृष्टिकोण अत्यंत महत्वपूर्ण था। उन्होंने भारतीय स्त्रियों को राष्ट्र-निर्माण की एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में देखा। *उनके अनुसार स्त्रियाँ केवल परिवार की संरक्षिका नहीं होतीं, बल्कि वे समाज की सांस्कृतिक और नैतिक चेतना की वाहक भी होती हैं। इसीलिए स्त्री-शिक्षा को उन्होंने राष्ट्रीय पुनर्जागरण की प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग माना।*[12] भारत में अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने लड़कियों की शिक्षा के लिए विद्यालय की स्थापना की। यह केवल एक शैक्षिक प्रयास नहीं था, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का कार्यक्रम भी था। उनके अनुसार यदि स्त्रियाँ शिक्षित होंगी तो वे अपने परिवार और समाज में सकारात्मक परिवर्तन ला सकेंगी। इस प्रकार स्त्री-शिक्षा राष्ट्र के व्यापक विकास से जुड़ी हुई थी।[13] निवेदिता ने भारतीय स्त्रियों की भूमिका को केवल घरेलू क्षेत्र तक सीमित नहीं माना। उन्होंने यह कहा कि स्त्रियाँ समाज की सांस्कृतिक परंपराओं की संरक्षिका होती हैं। इसलिए यदि स्त्रियाँ जागरूक और शिक्षित होंगी, तो समाज की सांस्कृतिक चेतना भी अधिक सुदृढ़ होगी। इस दृष्टि से उनका नारी-विमर्श भारतीय राष्ट्रवादी विचारधारा से गहराई से जुड़ा हुआ था।

भारतीय संस्कृति के संदर्भ में भगिनी निवेदिता का दृष्टिकोण भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने भारतीय संस्कृति को केवल धार्मिक परंपराओं तक सीमित नहीं देखा। उनके अनुसार भारतीय संस्कृति का स्वरूप अत्यंत व्यापक है, जिसमें धर्म, दर्शन, कला, साहित्य और लोक-जीवन सभी शामिल हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति की व्याख्या करते हुए यह कहा कि भारतीय समाज की एकता का आधार उसकी सांस्कृतिक परंपरा है। *भारत की विविध भाषाएँ, धर्म और सामाजिक परंपराएँ एक ऐसी सांस्कृतिक संरचना का निर्माण करती हैं, जो इस देश को एक साथ जोड़ती है। इसी कारण उन्होंने भारतीय संस्कृति को राष्ट्र की मूल शक्ति के रूप में देखा।*[14] निवेदिता ने भारतीय

कला और सौंदर्यबोध की भी प्रशंसा की। उनके अनुसार भारतीय कला केवल सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि वह आध्यात्मिक अनुभव का भी माध्यम है। भारतीय मंदिर, मूर्तिकला और चित्रकला भारतीय समाज की धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना को अभिव्यक्त करते हैं। इस दृष्टि से भारतीय कला राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान का महत्वपूर्ण अंग है।

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि संस्कृति स्थिर नहीं होती। वह समय के साथ विकसित होती रहती है। इसलिए किसी भी समाज की सांस्कृतिक परंपरा को समझने के लिए उसके ऐतिहासिक विकास को समझना आवश्यक है। *भारतीय संस्कृति भी एक गतिशील परंपरा है, जिसने समय के साथ अनेक परिवर्तन स्वीकार किए हैं।* [15] निवेदिता का मानना था कि भारतीय समाज की सांस्कृतिक शक्ति उसके आध्यात्मिक दृष्टिकोण में निहित है। भारतीय सभ्यता ने सदैव मानवता, सहिष्णुता और आध्यात्मिकता को महत्व दिया है। यही कारण है कि भारत की सांस्कृतिक परंपरा ने विभिन्न धर्मों और विचारधाराओं को अपने भीतर समाहित किया है। इस संदर्भ में उन्होंने भारतीय धर्म और आध्यात्मिकता की व्याख्या करते हुए यह कहा कि भारतीय धर्म केवल पूजा-पद्धति तक सीमित नहीं है। वह जीवन-दर्शन है, जो मनुष्य को नैतिकता, सहिष्णुता और सेवा की प्रेरणा देता है। इस प्रकार भारतीय आध्यात्मिकता भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना का आधार बन जाती है।

निवेदिता के विचारों में राष्ट्रवाद, शिक्षा और संस्कृति के बीच गहरा संबंध दिखाई देता है। उनके अनुसार शिक्षा संस्कृति को संरक्षित करती है और संस्कृति राष्ट्रवाद को नैतिक आधार प्रदान करती है। *यदि शिक्षा संस्कृति से कट जाती है तो राष्ट्रवाद कमजोर हो जाता है। इसी प्रकार यदि राष्ट्रवाद संस्कृति से विहीन हो जाए तो वह केवल राजनीतिक नारा बनकर रह जाता है।* [16] इस प्रकार भगिनी निवेदिता का चिंतन भारतीय राष्ट्रवाद को एक व्यापक सभ्यतागत परिप्रेक्ष्य में स्थापित करता है। उनके विचार यह स्पष्ट करते हैं कि राष्ट्र का निर्माण केवल राजनीतिक स्वतंत्रता से नहीं होता। उसके लिए सांस्कृतिक आत्मविश्वास, सामाजिक चेतना और शिक्षा की सुदृढ़ व्यवस्था आवश्यक है। उनके विचारों में राष्ट्रवाद का नैतिक पक्ष भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे मानती थीं कि राष्ट्रप्रेम केवल भावनात्मक उद्घोष नहीं है, बल्कि सेवा, त्याग और सामाजिक उत्तरदायित्व के माध्यम से व्यक्त होता है। इसी कारण उन्होंने अपने जीवन को भारतीय समाज की सेवा के लिए समर्पित किया।

इस प्रकार भगिनी निवेदिता का चिंतन भारतीय राष्ट्रवादी विचारधारा को एक गहरी सांस्कृतिक और नैतिक दिशा प्रदान करता है। उनके विचार यह संकेत करते हैं कि किसी भी राष्ट्र की शक्ति केवल राजनीतिक संस्थाओं में नहीं होती, बल्कि उसकी सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक मूल्यों में निहित होती है। भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में भगिनी निवेदिता की दृष्टि केवल सैद्धांतिक नहीं थी; उसमें व्यावहारिक सक्रियता भी दिखाई देती है। उन्होंने यह समझा कि राष्ट्रवाद की वास्तविक शक्ति समाज के भीतर विकसित होने वाली चेतना में निहित होती है। यदि समाज के भीतर आत्मविश्वास, सांस्कृतिक गौरव और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है तो राष्ट्र का पुनर्निर्माण स्वाभाविक रूप से संभव हो जाता है। इसी कारण उन्होंने राष्ट्रवाद को केवल राजनीतिक आंदोलन के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की प्रक्रिया के रूप में समझा। उनके लेखन में बार-बार यह विचार सामने आता है कि भारत की सभ्यता का मूल आधार आध्यात्मिकता और नैतिकता है। भारतीय समाज की ऐतिहासिक संरचना में धर्म, दर्शन और सांस्कृतिक परंपराओं का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन परंपराओं ने भारतीय समाज को दीर्घकाल तक एकजुट बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। *निवेदिता ने इस ऐतिहासिक अनुभव को समझते हुए भारतीय राष्ट्रवाद को उसी सांस्कृतिक आधार पर स्थापित करने का प्रयास किया।* [17] निवेदिता का मानना था कि भारत की सांस्कृतिक एकता उसके विविध धार्मिक और सामाजिक अनुभवों के बावजूद बनी रही है। भारत में अनेक भाषाएँ, धर्म और सामाजिक परंपराएँ हैं, किंतु इन सबके भीतर एक साझा सांस्कृतिक चेतना भी विद्यमान है। यही सांस्कृतिक चेतना भारत की राष्ट्रीय पहचान का आधार बनती है। उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय समाज

की शक्ति उसकी सहिष्णुता और समन्वय की भावना में निहित है। भारतीय सभ्यता ने सदैव विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक परंपराओं को स्वीकार किया है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति का स्वरूप बहुलतावादी और समावेशी रहा है।

निवेदिता के विचारों में राष्ट्रवाद का यह सांस्कृतिक स्वरूप अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके लिए राष्ट्रवाद किसी एक जाति, भाषा या धर्म पर आधारित संकीर्ण विचार नहीं था, बल्कि वह एक ऐसी व्यापक सांस्कृतिक चेतना थी जो, समाज के विभिन्न वर्गों को एक साझा ऐतिहासिक अनुभव के माध्यम से जोड़ती है। इस संदर्भ में उन्होंने भारतीय इतिहास के अध्ययन पर भी विशेष बल दिया। उनके अनुसार किसी भी राष्ट्र की आत्मचेतना उसके इतिहास से निर्मित होती है। यदि समाज अपने इतिहास से अनभिज्ञ रहता है, तो उसकी राष्ट्रीय पहचान भी कमजोर हो जाती है। इसीलिए उन्होंने भारतीय इतिहास और सांस्कृतिक परंपराओं के अध्ययन को राष्ट्रीय शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग माना। भारतीय युवाओं के संदर्भ में भी निवेदिता के विचार उल्लेखनीय हैं। उन्होंने यह कहा कि राष्ट्र के भविष्य का निर्माण युवाओं के हाथों में होता है। यदि युवाओं के भीतर आत्मविश्वास, नैतिकता और राष्ट्रप्रेम की भावना विकसित की जाए तो समाज में सकारात्मक परिवर्तन संभव है। शिक्षा के माध्यम से ही यह कार्य किया जा सकता है।

निवेदिता ने भारतीय युवाओं को केवल आधुनिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही प्रेरित नहीं किया, बल्कि उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें अपने समाज की वास्तविकताओं को समझना चाहिए। भारतीय समाज की समस्याएँ, उसकी सांस्कृतिक परंपराएँ और उसका ऐतिहासिक अनुभव—इन सबका अध्ययन युवाओं के लिए आवश्यक है। उनके विचारों में सेवा का भी विशेष महत्व है। उन्होंने यह कहा कि राष्ट्रप्रेम का वास्तविक अर्थ समाज की सेवा है। यदि व्यक्ति अपने समाज के कमजोर और वंचित वर्गों की सहायता करता है तो वह राष्ट्र के निर्माण में योगदान देता है। इस प्रकार सेवा और राष्ट्रवाद के बीच गहरा संबंध स्थापित होता है। भारतीय समाज में सामाजिक असमानताओं और समस्याओं के प्रति भी निवेदिता सजग थीं। उन्होंने यह स्वीकार किया कि भारतीय समाज में अनेक चुनौतियाँ मौजूद हैं, किंतु उनका विश्वास था कि इन समस्याओं का समाधान भारतीय समाज की सांस्कृतिक और नैतिक शक्ति के माध्यम से ही संभव है। निवेदिता का चिंतन इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति की आलोचनात्मक व्याख्या करने का प्रयास किया। उन्होंने भारतीय परंपरा की प्रशंसा तो की, किंतु उसके भीतर मौजूद समस्याओं को भी स्वीकार किया। इस प्रकार उनका दृष्टिकोण संतुलित और विवेकपूर्ण था।

उनकी सांस्कृतिक दृष्टि में भारतीय सभ्यता केवल अतीत की स्मृति नहीं है, बल्कि वह एक जीवित और गतिशील परंपरा है। यह परंपरा समय के साथ विकसित होती रहती है और नए ऐतिहासिक अनुभवों को अपने भीतर समाहित करती है। इसीलिए उन्होंने भारतीय संस्कृति को आधुनिकता के विरोध में नहीं देखा, बल्कि उसे आधुनिकता के साथ संवाद करने वाली परंपरा के रूप में समझा। भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में निवेदिता का योगदान इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि उन्होंने पश्चिमी और भारतीय विचारधाराओं के बीच संवाद स्थापित करने का प्रयास किया। वे पश्चिमी शिक्षा और बौद्धिक परंपरा से परिचित थीं, किंतु उन्होंने भारतीय सभ्यता की विशिष्टता को भी समझा। इस प्रकार उनका चिंतन दो अलग-अलग सांस्कृतिक परंपराओं के बीच एक सेतु का कार्य करता है। उनके लेखन में भारत के प्रति गहरी संवेदना और सम्मान दिखाई देता है। उन्होंने भारत को केवल अध्ययन का विषय नहीं बनाया, बल्कि उसे अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। इस प्रकार उनका जीवन स्वयं भारतीय राष्ट्रवाद की एक जीवंत अभिव्यक्ति बन गया। निवेदिता के विचारों की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। समकालीन विश्व में जब राष्ट्रवाद के विभिन्न रूपों पर चर्चा हो रही है, तब निवेदिता का सांस्कृतिक और नैतिक राष्ट्रवाद एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है। उनका चिंतन यह संकेत देता है कि राष्ट्रवाद को संकीर्ण राजनीतिक विचार तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए। आज के संदर्भ में शिक्षा, संस्कृति और सामाजिक चेतना के प्रश्न पहले से अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। यदि शिक्षा केवल तकनीकी दक्षता तक सीमित रह जाती है तो समाज की

सांस्कृतिक पहचान कमजोर हो सकती है। इसी प्रकार यदि राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक नारे के रूप में रह जाए तो वह समाज को सकारात्मक दिशा प्रदान नहीं कर सकता। इस दृष्टि से भगिनी निवेदिता का चिंतन हमें यह समझने में सहायता करता है कि राष्ट्र का निर्माण एक दीर्घकालीन सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया है। इसमें शिक्षा, संस्कृति, नैतिकता और सामाजिक सेवा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

निष्कर्ष :

भगिनी निवेदिता आधुनिक भारत के राष्ट्रवादी पुनर्जागरण की एक महत्वपूर्ण चिंतक थीं। उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के संघर्ष के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे सांस्कृतिक आत्मबोध, शिक्षा और सामाजिक चेतना से जुड़ी हुई व्यापक प्रक्रिया के रूप में समझा। उनके विचारों में राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसकी सांस्कृतिक स्मृति, सामाजिक संवेदना और शिक्षा की व्यवस्था में निहित होती है। उन्होंने भारतीय संस्कृति को एक जीवित और सृजनात्मक परंपरा के रूप में देखा और यह दिखाया कि किसी भी समाज की पहचान उसकी ऐतिहासिक स्मृति और सांस्कृतिक चेतना से निर्मित होती है। शिक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि उन्होंने ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा की कल्पना की, जो व्यक्ति के चरित्र, सामाजिक उत्तरदायित्व और सांस्कृतिक पहचान को विकसित कर सके। स्त्री-शिक्षा और सामाजिक जागरण के क्षेत्र में उनके प्रयासों ने भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन को एक व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया। इस प्रकार भगिनी निवेदिता का चिंतन भारतीय राष्ट्रवाद को एक गहरी सांस्कृतिक और नैतिक दिशा प्रदान करता है जो आज भी प्रासंगिक है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. अमिया पी. सेन, सिस्टर निवेदिता ऑफ कलकत्ता : द मेकिंग ऑफ अ नेशनलिस्ट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2000, पृ.12
2. वही, पृ. 18
3. भगिनी निवेदिता, दि वेब ऑफ इंडियन लाइफ, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2009 (पुनर्मुद्रित संस्करण), पृ. 7
4. वही, पृ. 25
5. अमिया पी. सेन, सिस्टर निवेदिता ऑफ कलकत्ता : द मेकिंग ऑफ अ नेशनलिस्ट, पृ. 32
6. स्वामी विवेकानंद, विवेकानंद साहित्य, खंड-7, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2008 (पुनर्मुद्रित संस्करण), पृ. 112
7. भगिनी निवेदिता, दि मास्टर ऐज आई सॉ हिम, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2011, पृ. 54
8. वही, पृ. 61
9. भगिनी निवेदिता, हिंट्स ऑन नेशनल एजुकेशन इन इंडिया, तृतीय संस्करण, उद्बोधन कार्यालय, कोलकाता, 1923, पृ. 3
10. वही, पृ. 8
11. अमिया पी. सेन, सिस्टर निवेदिता ऑफ कलकत्ता : द मेकिंग ऑफ अ नेशनलिस्ट, पृ. 84
12. शंकरिप्रसाद बसु, निवेदिता लोकमाता, आनंद पब्लिशर्स, कोलकाता, 1997, पृ. 39
13. वही, पृ. 121
14. भगिनी निवेदिता, दि वेब ऑफ इंडियन लाइफ, पृ. 57
15. अमिया पी. सेन, सिस्टर निवेदिता ऑफ कलकत्ता : द मेकिंग ऑफ अ नेशनलिस्ट, पृ. 131
16. वही, पृ. 137
17. शंकरिप्रसाद बसु, निवेदिता लोकमाता, पृ. 146

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

प्रतिरोध की संस्कृति और प्रतिबंधित हिंदी साहित्य

डॉ. उपमा शर्मा

6 माइल नीयर रंगीत गर्ल्स हॉस्टल,
गंगटोक सिक्किम-737102
8101629551
upamasharma64@gmail.com

शोध-सार :

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध होता है। किसी भी समाज की समस्याओं से इतर जाकर साहित्य का सृजन करना, किसी भी साहित्यकार के लिए संभव नहीं होता। जब कभी साहित्यकार किसी भी समस्या से या प्रशासन के दमनात्मक व्यवहार से प्रभावित होकर साहित्य के माध्यम से उनके विरोध में अपनी आवाज उठाता है तो उस प्रतिरोधात्मक आवाज को दबाने के उद्देश्य से उन रचनाओं पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है, ताकि आम जनमानस तक उनकी आवाज न पहुँचे और उनकी कुर्सी पर आँच न आए। हिंदी साहित्य में ऐसी अनेक साहित्यिक रचनाएँ हैं, जिनके प्रकाशन पर प्रतिबंध लगाया गया। साहित्य का इतिहास लिखने वालों ने भी साहित्य में प्रतिबंधित साहित्य की अनुपस्थिति पर कुछ नहीं कहा और साहित्य के इतिहास को जाँचने वालों ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया। इतिहास बताता है कि प्रतिबंधित पुस्तकों के लेखक अक्सर अपने लेख को प्रकाशित करने से डरते थे, फिर भी नाम बदलकर नियमित रूप से अपने लेखन कार्य के माध्यम से आम व्यक्ति को जागरूक करने का कार्य करते रहते थे। अंग्रेजों ने भारतीयों के साहित्य के विकास को रोकने के लिए कई बाधाएँ उत्पन्न कीं, किंतु अनेकानेक प्रतिबंधों व अत्याचारों के बावजूद साहसी साहित्यकारों, पत्रकारों, संपादकों एवं प्रकाशकों ने वैचारिक क्रांति की मशाल को जलाए रखा। यह प्रतिबंधित साहित्य आज भी महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं। उक्त संदर्भ को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध-पत्र में प्रतिबंधित साहित्य के महत्व एवं उसकी प्रासंगिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द :

प्रतिबंधित साहित्य, प्रतिरोध, उपनिवेश, संस्कृति, ब्रिटिश, स्वतंत्रता।

मूल आलेख :

प्रतिबंधित साहित्य का उद्भव और विकास औपनिवेशिक काल से आरंभ माना जाता है। इस साहित्य का उद्देश्य था-सत्ता की कुनीतियों की आलोचना करना, उसकी कुव्यवस्था के खिलाफ बोलना, लिखना अथवा अभिव्यक्ति के किसी भी माध्यम से आम जनता को जागरूक करना रहा है। इसके अलावा स्वतंत्रता की चेतना का प्रसार व प्रचार करना भी इसका मुख्य लक्ष्य था। प्रतिबंधित साहित्य वह साहित्य है, जिसे अंग्रेजों द्वारा जब्त किया

गया। जब लेखकों की लेखनी के माध्यम से आम जनता को जागरूक करने का कार्य सुचारू रूप से होने लगा, तब प्रशासन को अपने अस्तित्व पर खतरा महसूस हुआ और अपने वर्चस्व को कायम रखने के उद्देश्य से उन लेखकों की रचनाओं से आम जनता को अवगत होने से रोकने हेतु प्रशासन द्वारा उनके साहित्य पर प्रतिबंध लगाए गए, ताकि वह लोग सत्ता में बने रह सकें। इस तरह प्रशासन द्वारा अभिव्यक्ति के स्वर को दबाने के उद्देश्य से दमनात्मक पद्धति को लागू किया गया, जो कि पूर्णत: आलोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित था। अंग्रेज कभी भी नहीं चाहते थे कि राष्ट्र मुक्ति की चेतना का भाव आम जनता के अंदर पनपे और वह जागरूक हो। इसको नियंत्रित करने के लिए वे तमाम कुनीतियों को समय-समय पर आवश्यकतानुसार लागू करते रहते थे और लेखकों के लेखन कार्यों पर अपनी पैनी दृष्टि बनाए रखते थे, ताकि सब कुछ नियंत्रित रखा जा सके। लेकिन विहंगम दृष्टि से देखा जाए तो भारतेंदु युग में जो आम जनता को जागरूक करने का कार्य आरंभ हुआ, उसका विस्तार हमें प्रेमचंद के साहित्य में दिखाई पड़ता है। साहित्य को आम जनता से जोड़ने का प्रयास एक ओर जहाँ भारतेंदु करते हैं तो उसे सामाजिक सरोकार से जोड़ने का कार्य प्रेमचंद के साहित्य में दिखाई पड़ता है, इसीलिए प्रेमचंद के साहित्य को यथार्थोन्मुखी साहित्य के अंतर्गत रखा गया है और जब उन्होंने ब्रिटिश प्रशासन के नंगे सच को अपनी कहानियों के माध्यम से उकेरने का कार्य किया तो उनके साहित्य पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

एन. जेराल्ड बैरियर की चर्चित प्रतिबंधित पुस्तक 'बैंड कंट्रोवर्सियल लिटरेचर एंड पॉलिटिकल कंट्रोल इन ब्रिटिश इंडिया' 1907-1947 में लिखा है कि *''बैरियर का मानना है कि औपनिवेशिक भारत में बांग्ला में 226, गुजराती में 158, हिंदी में 1391, हिंदुस्तानी में 320, मराठी में 185, अंग्रेजी में 273, पंजाबी में 224 और अन्य में 538 रचनाओं को ब्रिटिश शासन के द्वारा प्रतिबंधित किया गया था।''*[1] ये तो मोटा-मोटी प्रतिबंधित साहित्यों के आँकड़े हैं, अगर प्रतिबंधित साहित्यों की सूची पुन: एक बार तैयार की जाए तो नि:संदेह इन आँकड़ों से कई गुना अधिक प्रतिबंधित साहित्यों की सूची मिलेगी, जो आज तक इतिहास के पन्नों पर अंकित होने से रह गई हैं। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य की मुक्ति की आकांक्षा भी जुड़ी हुई है। समय और काल के सापेक्ष मनुष्य की मुक्ति की प्राथमिकताएँ हमेशा समयानुसार बदलती रहती हैं। प्रतिबंधित हिंदी साहित्य मुक्ति की आकांक्षा स्वाधीनता की चेतना के साथ जुड़ी हुई दिखाई देती है।

किसी भी युग का साहित्य अपने समाज से प्रभावित होता है और साहित्य के रूप में वंचित विषयों से पुन: अवगत कराता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि समाज और साहित्य का अन्योन्याश्रित संबंध है। किसी भी समाज, राज्य और राष्ट्र की उन्नति में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भी देश या राज्य की सामाजिक स्थिति, चिंतन, संघर्ष विचार प्रणाली इत्यादि को समझने व जानने के लिए वहाँ का समाजशास्त्र व साहित्य को जानना अति आवश्यक होता है। औपनिवेशिक दौर में प्रतिबंधित साहित्य हमारे लिए मुक्ति की चेतना जागृत करने का स्रोत था, तो वहीं प्रतिबंधित साहित्य आज के आधुनिक युग के इतिहास को समझने का साधन है।

''एन. जेराल्ड बैरियर ने प्रतिबंधित साहित्य को तीन श्रेणियों में विभाजन किया है-

1. जिसमें पहली श्रेणी के अंतर्गत धर्म संबंधी ब्रिटिश विरोध और धर्म निरपेक्ष राजनीति वाला साहित्य शामिल है।

2. दूसरी श्रेणी के अंतर्गत भारत भक्त लोगों की जीवनियाँ और अन्य संकलित रचनाएँ शामिल हैं।

3. तीसरी श्रेणी देशभक्ति से जुड़ी हुई कविताओं और गीतों की है।'' (डॉ. प्रभात कुमार मिश्र, प्रतिबंधित साहित्य, ई-पाठशाला, 2016)

अर्थात् ब्रिटिश शासक उस दौरान तमाम ऐसी रचनाओं पर प्रतिबंध लगा रहे थे, जो कहीं-न-कहीं आम जनता जनार्दन को राष्ट्र चेतना के प्रति जागृत करने का प्रयास कर रहे थे। देशभक्ति से जुड़ी हुई कविताएँ सीधे आम जनमानस को झकझोरने का कार्य कर रही थीं। तो वहीं

देखा जा सकता है कि लोकगीतों पर भी ब्रिटिश सरकार की पैनी दृष्टि थी। जब लेखकों ने दूसरे माध्यम से अपनी बात जनता तक पहुँचाने का कार्य किया, जिसका सीधा सरोकार लोक मानस से था एवं इसके माध्यम से साधारण जनता को राष्ट्र मुक्ति हेतु बहुत ही आसानी से जागरूक किया जा रहा था। कहीं-न-कहीं यह प्रयास बहुत ही प्रभावशाली था, जिसकी वजह से ब्रिटिश सरकार ने इस तरह के लोकगीतों को भी तत्काल प्रभाव से जब्त कर दिया।

ब्रिटिश शासन द्वारा निर्धारित प्रतिबंध के कुछ मानदंड थे, जो क्रमशः इस प्रकार हैं-

● सन 1857 के आंदोलन के समर्थन में लिखी हुई कोई रचना प्रकाशित नहीं हो सकती।

● अंग्रेजी राज्य के दमन और शोषण के खिलाफ लिखा जाने वाला कोई भी लेख या रचना प्रकाशित नहीं हो सकती।

● दुनिया के किसी भी देश के स्वाधीनता आंदोलन के समर्थन में लिखा हुआ कुछ भी प्रकाशित नहीं हो सकता।

● रूसी क्रांति और मार्क्सवाद के बारे में कुछ भी जानकारी देने वाली रचना प्रकाशित नहीं हो सकती।

अतः जो साहित्य इन परिधि के अंतर्गत आते थे, उनको जब्त किता जाता था और कई बार साहित्य के साथ-साथ साहित्यकारों को भी आर्थिक और शारीरिक दंड से गुजरना पड़ता था।

भारतीय अभिलेखागारों में अभी भी कई ऐसी साहित्यिक रचनाएँ हैं, जो कभी प्रतिबंधित की गई थीं, जिन्हें आज हिंदी साहित्य में शामिल करने की आवश्यकता है। अगर प्रतिबंधित साहित्य को हिंदी साहित्य में शामिल किया जाएगा तो निःसंदेह साहित्य के इतिहास की रूपरेखा में परिवर्तन होगा तथा उन महत्वपूर्ण प्रतिबंधित साहित्य को हाशिए से केंद्र में शामिल किया जा सकेगा। मुझे यह कहने में किंचित भी संकोच नहीं है कि एक बार फिर से साहित्येतिहास लेखन और इससे वंचित रह गई रचनाओं पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

प्रतिबंधित साहित्य पर बात करते हुए मैनेजर पांडेय कहते हैं कि -*''हिंदी में प्रतिबंधित साहित्य के ऐतिहासिक महत्व पर विचार की प्रवृत्ति बहुत दुर्लभ है। जिन लेखकों ने पाबंदी मुकदमा और जेल का खतरा उठाने के साहस के साथ ऐसी रचनाएँ लिखीं जो प्रतिबंधित थीं, उनके महत्व की पहचान करना आलोचना का एक राष्ट्रीय दायित्व है।''*[2]

किसी भी देश के साहित्य में प्रतिरोध का स्वर उस देश, राज्य और राष्ट्र की ताकत होती है। यह वही साहित्य होता है, जिससे किसी देश की सांस्कृति प्रगतिशीलता का बोध होता है। प्रतिबंधित साहित्य में आधुनिक अवधारणा के अंतर्गत साम्राज्यवाद के विरोध का स्वर सुनाई पड़ता है। साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार ने 1799 में प्रेस एक्ट लगाया, जिससे साम्राज्यवादी विरोध का स्वर थम सके पर ऐसा हुआ नहीं। लोकगीतों, कविताओं, कहानियों और नाटकों इत्यादि के माध्यम से लेखकों ने आमजनता को जागरूक किया तथा इन्हीं विधाओं को जनसंचार का माध्यम बनाकर राष्ट्र को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने का कार्य किया।

आज 21 वीं सदी की दहलीज पर खड़े होकर साम्राज्यवादी ताकत से लड़ने वाले अहिंसा के पुजारी गांधी और लोककंठ से उपजी प्रतिरोध की कविता की ताकत पर विश्वास करना मुश्किल जान पड़ता है, परंतु इन दोनों में आमजन में एकता स्थापित करने और स्वतंत्रता आंदोलन में बड़ी भूमिका अदा की। औपनिवेशिक दौर की पत्रिका 'सार सुधानिधि' के संपादक लिखते हैं- *''प्रजा की दुर्व्यवस्था का कारण क्या है? प्रजा की दुर्व्यवस्था का कारण सिवाय गवर्नमेंट संस्थापित राजस्व संग्रह प्रणाली के और कुछ हो ही नहीं सकता।''*[3]

''हो गईल कंगाल हो विदेसी तोर रजवा में
भारत के लोग आजु दाना बिनु तरसे भईया''[4]

आधुनिक काल में भारतेंदु उन प्रारंम्भक रचनाकारों में से हैं, जिन्होंने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ मुखर रूप से अपनी पीड़ा को जाहिर करते हुए नजर आते हैं। उनकी रचना 'भारत दुर्दशा'(1880) इसका जीता जागता

प्रमाण है। इसमें उन्होंने अपनी पीड़ा कुछ इस प्रकार जाहिर की है–

''रोवहु सब मिलिकै भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा देखी न जाई?॥''[5]

औपनिवेशिककालीन हिंदी साहित्य की भी यही दशा है। इसको और स्पष्ट रूप से समझने के लिए प्रतिबंधित गीत से एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''पंचों कान लगाकर सुन्न घर में राज लुटेरों का
पंचों कान लगाकर सुन्न घर में राज लुटेरों का।
दिन घौली डाका डलवाते,
घर बार की जफ्ती करवाते,
चकमा दे स्वामी फंसवाते
गुलछर्रे फिर आप उड़ाते॥''[6]

अत: इस पीड़ा को ब्रिटिश हुकूमत के प्रतिबंधन संबंधी कानूनों ने दुगुना कर दिया, जिसके मानदंड में ही उन्होंने 1857 से संबंधी कोई रचना प्रकाशित नहीं कराई। इस विद्रोह से संबंधित अनेक रचनाएँ प्रतिबंधित की गईं और अनेक रचनाएँ जब्त होने के भय से भयभीत होकर छपी ही नहीं। केवल कविता, कहानियों और लोकगीतों पर ही ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबंध नहीं लगाया गए, बल्कि ऐसे नाटकों पर भी प्रतिबंध लगाए गए, जो ब्रिटिश सरकार की कुनीतियों को उजागर करने के लिए लिखे जा रहे थे।

सत्येंद्र कुमार तनेजा ने सात जब्तशुदा हिंदी नाटकों को ''सितम की इंतिहा क्या है?'' नाम से संपादित किया है। उनके द्वारा संपादित नाटकों की सूची इस प्रकार है – 1. लक्ष्मण सिंह–कुली प्रथा (1916), 2. किशनचंद जेबा–जख्मी पंजाब (1922), 3. देवदत्त–शासन की पोल (1922), 4. पांडेय बेचन शर्मा उग्र–लाल क्रांति के पंजे में (1924), 5. गोबिंदराम–बरबादिय हिंद (1929), 6. अज्ञात–रक्त ध्वज (1931), 7. बुद्धिनाथ झा करैव–लवणलीला (1931) इत्यादि सभी नाटकों का रचनाकाल 1916 से 1931 तक का है या गांधी के भारत आगमन के बाद का है। इन नाटकों में निहित विषय–वस्तु भारतीय जनता का अंग्रेजी सरकार द्वारा शोषण के साथ ही महात्मा गांधी की गतिविधियों को भी समेटा गया है। इस संदर्भ में स्वयं सत्येंद्र कुमार तनेजा कहते हैं कि –*''जब्तशुदा साहित्य इसलिए जब्त हुआ, क्योंकि उसमें मुक्ति की ज्वाला धधक रही थी। देश की इस अमूल्य धरोहर को राष्ट्रीय संग्राम के परिप्रेक्ष्य में देखना परखना होगा। विद्रोह मूलक प्रकृति इस साहित्य की विशिष्टता है। इस साहित्य का मूल्यांकन करते समय उसके साथ न्याय तभी हो पाएगा, जब साहित्य के अतिरिक्त इतिहास राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र इत्यादि से जुड़े पहलुओं पर नडर रखी जाए। समकालीन राजनैतिक आंदोलन और उनके पीछे कार्य कर रही शक्तियों तथा उनके असर पर भी ध्यान देना होगा।''*[7]

भारत में प्रथम प्रतिबंधित नाटक दीनबंधु मित्र कृत 'नील दर्पण' (1860) था और इस कृति को 1876 में प्रतिबंध किया गया था, क्योंकि यह नाटक नील की खेती करने वाले किसानों के उत्पीड़न पर आधारित था, जिसे रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया, तदुपरांत मंच पर मंचन के उपरांत ब्रिटिश सरकार के अंदर डर का भाव आने लगा। जनता कहीं आक्रोश में न आ जाए तथा उनके अत्याचारों से अवगत न हो जाए, इस उद्देश्य से इस नाटक को जब्त किया गया।

इसी कड़ी में 'जख्मी पंजाब' नाटक उल्लेखनीय है। इस नाटक के माध्यम से भारत माता गांधी से कहती हैं – *''तो हे आर्य पुत्र! क्या अब भी कुछ विलंब है, स्वाधीनता जो मेरा जन्म अधिकार है, अब भी मिलनी दुश्वार है, क्या किसी की सेवा और मेहनत भी वृथा जा सकती है, आज की शाखा धतूर का फल ला सकती है?*
जो कुछ पास मेरे पूँजी इंग्लैंड पै वारा है।
अन्न के भंडार किए खाली बच्चों को भूखा मारा है।
गिन –गिन भेंट चढ़ाया है। बच्चों से क्या कुछ प्यारा है।
एक एकजिग्र का टुकड़ा भी दे देना किसे गंवारा है।''[8]

इस नाटक के माध्यम से भारत में ब्रिटिश शासन के अत्याचारों को दर्शाया गया है, साथ–ही–साथ जो हक हमारे बच्चों का था उससे भी वे लोग हमें वंचित रखते थे। हमारे बच्चे भूख से व्याकुल थे, तड़प रहे थे और अंग्रेज हमारे ही लोगों का हक मारकर खुद ऐशो–आराम की जिंदगी जी रहे थे। इस कृति के माध्यम से

जब लेखक अशिक्षित और शिक्षित दोनों वर्गों को जागरूक करने लगे और इसमें वे लोग कई हद तक सफल भी होने लगे तो ब्रिटिश सरकार ने भयभीत होकर ऐसी साहित्यिक रचनाओं और गतिविधियों पर प्रतिबंध लगा दिए, ताकि उनके खिलाफ, उनकी कुनीतियों और अत्याचोरों से आम जनता अवगत न हो और बगावत न कर सके।

प्रतिबंधित हिंदी नाटक कला और शिल्प की दृष्टि से भले ही कमजोर दिखाई देते हैं, पर इतिहास बोध की दृष्टि से इन नाटकों का पक्ष बहुत ही मजबूत है। इस दरमियान केवल नाटक विधा पर ही प्रतिबंध नहीं लगाए गए बल्कि उस दौर में जो पत्र-पत्रिकाएँ लोक-जागृत का कार्य कर रही थीं, उन पत्रिकाओं पर भी प्रतिबंध लगाए गए। जैसे – 'चाँद' पत्रिका के फाँसी अंक को अंग्रेजों द्वारा प्रतिबंधित किया गया था। 'हिंदू पंच' पत्रिका पर भी प्रतिबंध लगाया गया था, क्योंकि यह अंक 'बलिदान' पर केंद्रित था और इससे लोगों में राष्ट्र-मुक्ति का भाव जागृत हो सकता था, इसलिए इस तरह की पत्र – पत्रिकाओं पर भी अंग्रेजों द्वारा प्रतिबंध लगाया गया। गांधी द्वारा लिखे 'हिन्दू स्वराज' को भी जब्त किया गया था। समय-समय पर ब्रिटिश शासकों द्वारा भारतीय प्रेस पर भी विभिन्न प्रतिबंध लगाए गए। इन सबके बावजूद 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतीय समाचार पत्रों एवं साहित्य की आश्चर्यजनक प्रगति हुई। 1877 में प्रकाशित होने वाले विभिन्न भाषायी एवं हिंदी समाचार पत्रों की संख्या लगभग 169 हो गई तथा धीरे-धीरे इनकी प्रचार संख्या लगभग एक लाख तक पहुँच गई थी। भारतीय प्रेस जहाँ एक ओर उपनिवेशी नीतियों की आलोचना करता था, वहीं दूसरी ओर देशवासियों से अपनी एकता स्थापित करने का आह्वान भी करता था। प्रेस ने आधुनिक विचारों एवं व्यवस्था जैसे स्वशासन, लोकतंत्र, दीवानी अधिकार एवं औद्योगीकरण इत्यादि के प्रचार -प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अंग्रेजी राज्य में जिन पुस्तकों पर पाबंदी लगाई जाती थी, वह आज की फिल्मों पर लगाई गई पाबंदी की तरह नहीं हुआ करती है, जो प्रतिबंधित होने पर प्रसिद्ध हो जाया करती हैं। स्वाधीनता संग्राम के दौरान आम बोलचाल की भाषा में लेखकगण अपना लेखकीय कार्य करते थे, ताकि जन साधारण तक आसानी से संदेश पहुँच सके। लेकिन ब्रिटिश शासन एक ओर जहाँ भारतीय भाषाओं को अपमान की दृष्टि से देखता था, वहीं मातृभाषाओं में लिखे गए साहित्य से भी भयभीत रहता था। यही कारण है कि वह उस पर प्रतिबंध लगा देता था, क्योंकि प्रतिबंधित भी उसे किया जाता है, जिससे भय होता है। इस परिप्रेक्ष्य में गजेंद्र पाठक का कहना है कि-*''विडंबना यही है कि स्वाधीनता आंदोलन के दौरान क्रांतिकारी साहित्य का बहुत बड़ा हिस्सा लोक साहित्य से जुड़ा हुआ है और वह लोक साहित्य अपने देश की सभी मातृभाषा में मौजूद है।''*[9]

इसमें कहीं कोई दो राय नहीं है कि लोक साहित्य लोक मानस से ऊपजा हुआ ऐसा साहित्य है, जो लोक में हमेशा विद्यमान होता है और यह वहाँ के समुदाय के मातृभाषा में होने के कारण बहुत ही सुगमता से समझा जा सकता है। यहीं कारण है कि स्वाधीनता आंदोलन में लोकगीतों को विशिष्ट स्थान मिला।

निष्कर्ष :

यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक समुदाय का व्यक्ति अपने मातृभाषा में ही कठिन-से-कठिन विषय को आसानी से समझने में पारंगत होता है। यही कारण है कि स्वाधीनता आंदोलन के दौरान सभी लेखकों ने मातृभाषा का प्रयोग अधिक से अधिक किया है। उस दौर के लोकगीतों के माध्यम से भी राष्ट्र-मुक्ति के लिए लोगों को जागृत करने का प्रयास सफलतापूर्वक किया गया। भारतीय संदर्भ में प्रतिबंधित हिंदी कविता और लोकगीतों का स्वर साम्राज्यवादी ताकतों के विरोध के रूप में उभर कर आता है। तकनीक के इस विकसित दौर में जहाँ हमारे पास किसी भी तरफ की ज्यादती शोषण या अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए संचार के बहुत सारे माध्यम उपलब्ध हैं, तब भी स्वतंत्र होकर आज इस दौर में भी हम नहीं बोल सकते हैं। तो आप सोच सकते हैं कि उस दौर की क्या स्थिति होगी, जब अंग्रेजों के शासन काल में उस समय के लेखकों और पत्रकारों ने शासन के खिलाफ आवाज उठाई तथा तामम दमनात्मक पद्धतियों से उन्हें गुजरना पड़ा। उसके

पश्चात भी उन्होंने आम जनता को राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का कार्य नहीं छोड़ा।

आम जनभाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और लोकगीतों के माध्यम से लगातार जागरूक करने का कार्य करते रहे और उनको सफलता भी मिली। यही कारण था कि अंग्रेजों ने भयभीत होकर उनके लोकगीतों को भी जब्त किया। प्रतिबंधित गीतों में देश की चिंता इतनी व्यापक है कि भाषाओं की दीवारें टूटकर बिखरती हुई प्रतीत होने लगी। जिसका एक दृष्टांत इस प्रकार है–

''चिश्ती ने जिस जमी पे पैगाम हक सुनाया।
नानक ने जिस चमन में बदहत का गीत गाया
तातारियों ने जिसको अपना वतन बनाया
जिसने हेजाजियों से देश्ते अरब छुड़ाया
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही!'' [10]

इस गीत पर अंग्रेजी हुकूमत ने प्रतिबंध लगा दिया था। यह गीत भारत की भाषायी एकता और सांस्कृतिक इतिहास के सौंदर्य का जीवंत प्रमाण है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. देव नारायण द्विवेदी, भूमिका, मैनेजर पांडेय, देश की बात, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2013, पृ.08
2. यह किताब क्यों और कैसे ? लोकगीतों और गीतों में 1857, संकलन और संपादन : मैनेजर पांडेय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2015, नई दिल्ली पृ.28
3. सदानंद मिश्र, दक्षिणापथ प्रजा और गवर्नमेंट, नवजागरण कालीन पत्रिका भाग–1
4. यह किताब क्यों और कैसे ? लोकगीतों और गीतों में 1857, संकलन और संपादन : मैनेजर पांडेय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2015, पृ.39
5. भारतेंदु समग्र, सं–हेमंत शर्मा, प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, वाराणसी, 2002, पृ .461
6. कलम का जौहर यानी स्वराज्य देवी, स्वामी हरिशंकर, 1997, संस्कृति विभाग, उत्तर प्रदेश, पृ. 30
7. सितम की इंतिहा क्या है ?, सतेन्द्र कुमार झा, सातजब्तशुदा हिंदी नाटक, राष्ट्रीय नाटय विद्यालय, 2010 नई दिल्ली, पृ .32
8 . जख्मी पंजाब, किशनचंदजेबा, सत्येंद्र कुमार तनेजा, सितम की इंतिहा क्या है ?, सातजब्तशुदा हिन्दी नाटक, 2010 राष्ट्रीय विद्यालय, नई दिल्ली, पृ. 243
9. गजेंद्र पाठक, ईपीजी–पाठशाला, हिन्दी का प्रतिबंधित साहित्य और हिन्दी साहित्य का इतिहास, 2016
10. राजजनम शर्मा, इकबाल 'मेरा वतन' जब्तशुदा गीत : आजादी और एकता के तराने, 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ.11

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

नागार्जुन की काव्यगत विशेषताएँ : एक आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. पुष्पा सिंह

शोध-सार :

नागार्जुन हिंदी साहित्य के प्रगतिशील काव्यधारा के सिरमौर हैं। उनकी कविताएँ सामाजिक यथार्थ, वर्ग-संघर्ष, जनजीवन की पीड़ा, राजनीतिक विसंगतियों तथा मानवीय संवेदनाओं का जीवंत दस्तावेज प्रस्तुत करती हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में नागार्जुन के काव्य की प्रमुख विशेषताओं साम्यवादी दृष्टिकोण, मानवतावाद, यथार्थवाद, व्यंग्य, नारी-दृष्टि, प्रकृति-चित्रण, राष्ट्रीय चेतना आदि का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। यह अध्ययन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि नागार्जुन का काव्य केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम भी है।

बीज शब्द :

प्रगतिवाद, साम्यवादी दृष्टिकोण, मार्क्सवाद, यथार्थवाद, व्यंग्य, जनकवि, वर्ग-संघर्ष।

1. भूमिका :

नागार्जुन हिंदी साहित्य के प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। प्रगतिवादी कवियों ने सामाजिक विषमताओं, आर्थिक शोषण और राजनीतिक अन्याय के विरुद्ध सशक्त स्वर उठाया। नागार्जुन इस परंपरा के अग्रणी कवि हैं, जिन्हें 'जनकवि' के रूप में विशेष पहचान प्राप्त है।

उनके काव्य का मूल आधार समाज के उपेक्षित, दलित, शोषित एवं सर्वहारा वर्ग की संघर्षशीलता है। नागार्जुन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने केवल इन वर्गों को अपनी वाणी ही नहीं दी, बल्कि उनके साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर उनके संघर्षों में सक्रिय भागीदारी भी निभाई। उन्होंने जनआंदोलनों में भाग लिया, सत्ता के विरोध में आवाज उठाई, जिसके कारण उन्हें आलोचना, उत्पीड़न और कारावास तक का सामना करना पड़ा।

नागार्जुन का वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र था, किंतु साहित्यिक जगत में वे 'नागार्जुन' नाम से विख्यात हुए। उनका जन्म दीन-हीन कृषक कुल में हुआ था, उन्होंने गरीबी की यातना को बहुत ही करीब से देखा। यही कारण है कि कृषकों और श्रमिक वर्ग का दुख-दर्द उन्हें अपनी ओर खींचता है। उनका जीवन स्वयं संघर्षों से भरा हुआ था, जिसका प्रभाव उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। नरेंद्र सिंह के शब्दों में, *''नागार्जुन जानते हैं कि इस दुनिया में दो दुनिया हैं, एक गरीबों की, एक अमीरों की, एक शोषितों की, एक शोषकों की। बहुत*

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
मार्घेरिटा महाविद्यालय
तिनसुकिया, असम-786181
8299425535
puspasingh.dr@gmail.com

मामूली-सी लगने वाली बात आज भी सबसे महत्वपूर्ण बात है, सामाजिक आर्थिक विषमता को जितने जबर्दस्त और सीधे ढंग से नागार्जुन ने प्रस्तुत किया उतने जबरदस्त और सीधे ढंग से और किसी ने नहीं। इसके लिए कौशल की उतनी जरूरत नहीं, जितनी गरीबों को साथ मिली मुहब्बत और उनके हर दुख में तड़प उठने की, अपार क्षमता की जरूरत है। यही चीज नागार्जुन जैसे कवियों की हड्डियों की ताकत बनी हुई है।' [1]

2. साम्यवादी दृष्टिकोण :

नागार्जुन के काव्य में सामाजिक यथार्थ की अत्यंत गहरी और सजीव पकड़ दिखाई देती है। उन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों, अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा दलित-शोषित वर्ग के जीवन का न केवल सूक्ष्म अवलोकन किया, बल्कि उसे अपने अनुभवों की प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्त भी किया। यही कारण है कि उनका काव्य केवल कल्पना का परिणाम नहीं, बल्कि भोगे हुए यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति है।

आलोचक विश्वंभर मानव ने नागार्जुन की इसी विशेषता को रेखांकित करते हुए लिखा है—

''व्यक्तिगत दुख पर न रुक कर वे बार-बार व्यापक दुख पर प्रकाश डालते हैं और यह सच्चे कवि की पहचान है। अत: धरती, जनता और श्रम के गीत गाने वाले इस युग के संवेदनशील कवियों में नागार्जुन का नाम सदैव अमर रहेगा।'' [2]

नागार्जुन ने अपने काव्य के संबंध में कोई सैद्धांतिक भूमिका प्रस्तुत नहीं की, किंतु उनकी रचनाओं में व्यक्त विचारधारा स्पष्टत: साम्यवादी दृष्टिकोण से अनुप्राणित है। वे व्यक्तिगत जीवन-संघर्ष को व्यापक सामाजिक संघर्ष से जोड़ते हैं—

''कवि! मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का,
जीवन गुजरता प्रतिपल संघर्ष में,
मेरा क्षुद्र व्यक्तित्व—
रूद्र है, सीमित है,
आटा, दाल, नमक, लकड़ी के जुगाड़ में।'' [3]

इन पंक्तियों में कवि स्वयं को आम जनजीवन का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत करता है, जहाँ जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। यही संघर्षशीलता नागार्जुन के काव्य का मूल स्वर है।

नागार्जुन की कविताएँ सामाजिक यथार्थ की इसी ठोस भूमि पर निर्मित हैं। उनकी रचना-शैली पूर्णत: देशज, सहज और अनगढ़ है, जो कहीं-कहीं कबीर की फक्कड़ता और जनभाषा की सादगी का स्मरण कराती है। आधुनिकता के शहरीकरण के बीच उनका यह देशी परिवेश उन्हें विशिष्ट पहचान प्रदान करता है। इस संदर्भ में प्रेमशंकर का कथन उल्लेखनीय है—

''दोनों ही परंपरा में निष्णात होकर भी जीवन के नए संदर्भों से जुड़े हुए, सहज, देशज, कबीर की तरह फक्कड़ मनमौजी नागार्जुन का रचनासंसार अपनी अलग पहचान बनाता है।'' [4]

नागार्जुन की साम्यवादी दृष्टि केवल वैचारिक स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि वह गहरे मानवीय विश्वास से जुड़ी हुई है। वे मानते हैं कि शोषित और पीड़ित वर्ग ही भविष्य के परिवर्तन के वाहक हैं—

''आगामी युगों के मुक्ति सैनिक, कहाँ हो तुम?
निपीड़ित-शोषित मानवता के उद्धारक, कहाँ हो तुम?
....
हाँ, हाँ तुम्हारे ही अंदर तैयार हो रहे हैं
आगामी युगों के लिबरेटर।'' [5]

अत: स्पष्ट है कि नागार्जुन सामाजिक विषमता के प्रति पूर्णत: सजग कवि हैं। वे वर्ग-संघर्षऔर क्रांतिकारी चेतना के माध्यम से एक समतामूलक समाज-व्यवस्था की स्थापना के समर्थक हैं। उनका काव्य साम्यवादी विचारधारा का सजीव और प्रामाणिक प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें जनजीवन की पीड़ा, संघर्ष और परिवर्तन की आकांक्षा एक साथ अभिव्यक्त होती है।

3. मानवतावादी दृष्टिकोण :

नागार्जुन के काव्य में मानवतावादी चेतना अत्यंत व्यापक और सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुई है। वे मनुष्य को केंद्र में रखकर समाज का मूल्यांकन करते हैं और उनके लिए जाति, धर्म तथा वर्ग से ऊपर मानवता का सर्वोच्च स्थान है। नागार्जुन की दृष्टि में वही साहित्य सार्थक है, जो मानवता की बात करे और समाज के उपेक्षित एवं वंचित वर्गों की आवाज बने।

उनकी कविताओं—'खुरदरे पैर', 'आदम का तबेला', 'देना ओ गंगा मैया' आदि-में श्रमजीवी वर्ग के जीवन का अत्यंत मार्मिक और संवेदनात्मक चित्रण मिलता है। 'खुरदरे पैर' कविता में उन्होंने एक साधारण रिक्शा चालक के श्रम और संघर्ष को जिस गरिमा के साथ प्रस्तुत किया है, वह उनके मानवतावादी दृष्टिकोण का उत्कृष्ट उदाहरण है—

''एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन चक्र
कर रहे थे मात त्रिविक्रम वामन के पुराने पैरों को,
नाप रहे हैं धरती का अनहद फासला,
घंटों के हिसाब से ढोए जा रहे थे।''[6]

नागार्जुन के मानवतावाद का एक अन्य सशक्त उदाहरण उनके उपन्यास 'बाबा बटेशरनाथ' में भी मिलता है, जहाँ वे परोपकार और लोकमंगल को जीवन का वास्तविक उद्देश्य मानते हैं—

''जीने के लिए जीना, जीना नहीं है; परोपकार के लिए जीना ही जीना है।

अगर मेरी मृत्यु जनसाधारण के लिए लाभप्रद नहीं हो तो नहीं चाहिए मुझको यह जीवन।''[7]

यह कथन उनके व्यापक मानवीय दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है, जिसमें व्यक्तिगत हित से अधिक सामाजिक कल्याण को महत्व दिया गया है।

इस प्रकार नागार्जुन के काव्य में करुणा, सहानुभूति और संवेदनशीलता की गहरी धारा प्रवाहित होती है। उनका मानवतावाद केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि क्रियाशील है, जो उन्हें अन्य समकालीन कवियों से विशिष्ट और अधिक प्रासंगिक बनाता है।

4. वर्ग-संघर्ष और क्रांतिकारी चेतना :

नागार्जुन का काव्य संघर्ष और क्रांति की सशक्त चेतना से अनुप्राणित है। वे मानते हैं कि बिना संघर्ष के सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं है। उनकी कविताएँ शोषित और वंचित वर्ग को जागरूक करती हैं तथा उन्हें अपने अधिकारों के लिए संगठित होकर संघर्ष करने की प्रेरणा देती हैं।

सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि कवि के रूप में नागार्जुन संघर्ष को जीवन का मूल मंत्र स्वीकारते हैं। वे जुझारू और संघर्षशील व्यक्तियों की वंदना करते हुए समाज में व्याप्त दैन्य और पीड़ा के बीच क्रांतिकारी ऊर्जा का संचार करना चाहते हैं—

''निविड़ अवसाद से मन मूर्छित है,
तन जर्जर है— भूख-प्यास से,
व्यक्ति -व्यक्ति दुख-दैन्य ग्रस्त है,
दुविधा में समुदाय पस्त है,
लो मशाल, अब घर-घर को आलोकित कर दो।''[8]

इन पंक्तियों में कवि ने समाज की विषम परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करते हुए जनसामान्य से क्रांति का आह्वान किया है। यहाँ 'मशाल' प्रतीक है जागरण, संघर्ष और परिवर्तन का।

नागार्जुन की कविता में बार-बार यह स्वर मुखर होता है कि जनता को अन्याय, शोषण और अत्याचार के विरुद्ध एकजुट होकर संघर्ष करना चाहिए। वे क्रांति को केवल सैद्धांतिक अवधारणा नहीं, बल्कि एक व्यवहारिक और अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में देखते हैं, जो सामाजिक समानता और न्याय की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करती है। नागार्जुन का काव्य वर्ग-संघर्ष की चेतना को सुदृढ़ करता हुआ जनक्रांति की ओर अग्रसर होने का प्रेरक और ऊर्जस्वी संदेश प्रदान करता है।

5. शोषितों के प्रति सहानुभूति :

नागार्जुन सर्वहारा वर्ग के सच्चे प्रतिनिधि कवि हैं। उनके काव्य में शोषित, पीड़ित और वंचित जनजीवन के प्रति गहरी सहानुभूति और आत्मीयता दृष्टिगत होती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि उन्होंने स्वयं गरीबी, अभाव और संघर्षपूर्ण जीवन का अनुभव किया था—

''आ रहा हूँ पीता ! अभाव का आसव ठेठ बचपन से।''[9]

इस आत्मानुभूति ने उनके काव्य को अत्यंत प्रामाणिक और मार्मिक बना दिया है। वे केवल दर्शक नहीं, बल्कि उस जीवन के सहभागी हैं, जिसकी वे अभिव्यक्ति करते हैं।

'अकाल और उसके बाद' जैसी प्रसिद्ध कविता में उन्होंने ग्रामीण जीवन की त्रासदी, भूख और अभाव की भयावह स्थिति को अत्यंत संवेदनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है—

''कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास।
....
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद,
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद।''[10]

इन पंक्तियों में भूख और निर्धनता का जो हृदयविदारक चित्र उभरता है, वह पाठक के मन को गहराई से उद्वेलित कर देता है। यहाँ कवि अकाल और अकाल के बाद उत्पन्न समूचे ग्रामीण समाज की दारुण परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण हमारे समक्ष प्रस्तुत कर दिया है।

नागार्जुन की संवेदना मात्र सहानुभूति तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा में रूपांतरित हो जाती है। वे शोषणमुक्त समाज की स्थापना के पक्षधर हैं और अपने काव्य के माध्यम से इस दिशा में जनचेतना जगाने का प्रयास करते हैं।

6. शोषकों के प्रति आक्रोश और व्यंग्य :

नागार्जुन के काव्य में जहाँ एक ओर शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति मिलती है, वहीं दूसरी ओर शोषकों के प्रति तीव्र आक्रोश और व्यंग्य भी स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है। वे सत्ता, राजनीति और समाज में व्याप्त विसंगतियों पर निर्भीकता से प्रहार करते हैं।

उनकी कविता 'क्या हुआ आपको' में शासक वर्ग की स्वार्थपरता और नैतिक पतन पर तीखा व्यंग्य किया गया है—

''रानी महारानी आप,
नवाबों की नानी आप,
नफाखोर सेठों की अपनी सगी माई आप,
काले बाजारों की कीचड़ आप, काई आप।''[11]

इन पंक्तियों में कवि ने व्यंग्य के माध्यम से सत्ता और पूँजी के गठजोड़ को उजागर किया है। उनकी व्यंग्य-शक्ति इतनी प्रखर है कि समाज का कोई भी वर्ग, चाहे वह राजनीतिक नेतृत्व हो, पूँजीपति वर्ग हो या धार्मिक ठेकेदार- उससे अछूता नहीं रह पाता।

नागार्जुन की व्यंग्यात्मक शैली का एक अन्य सशक्त उदाहरण 'शासन की बंदूक' कविता में देखा जा सकता है—

''धन्य-धन्य वह, धन्य वह, शासन की बंदूक,
सत्य स्वयं घायल हुआ, गई अहिंसा चूक,
जहाँ-तहाँ गड़ने लगी शासन की बंदूक,
जली ठूँठ पर बैठकर गई कोकिला कूक,
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक।''[12]

यहाँ कवि ने सत्ता के दमनकारी स्वरूप और उसकी विडंबनाओं को व्यंग्यात्मक शैली में अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

स्पष्टत: नागार्जुन का व्यंग्य केवल हास्य या मनोरंजन तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक विसंगतियों को उजागर कर पाठक को सचेत और जागरूक बनाने का कार्य करता है। उनका व्यंग्य सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा देता है और अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना को सुदृढ़ करता है।

7. यथार्थवादी दृष्टिकोण :

नागार्जुन का काव्य पूर्णत: यथार्थवादी दृष्टिकोण पर आधारित है। वे जीवन के वास्तविक स्वरूप को बिना किसी आडंबर या अलंकरण के प्रस्तुत करते हैं। उनकी दृष्टि अत्यंत पैनी और संवेदनशील है, जो समाज के भीतरी सच को उजागर करती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जहाँ एक ओर देश में प्रगति और उत्सव का वातावरण दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर समाज का एक बड़ा वर्ग भूख, गरीबी और अभाव से जूझता हुआ नजर आता है। इस विडंबना को नागार्जुन ने अपनी कविता 'रजत जयंती' में अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है—

''नीचे निपट गरीबी, ऊपर ठाठ-बाट की रजत जयंती,
शर्म न आती, मना रहे हैं वे महँगाई की रजत जयंती,
अस्सी प्रतिशत दीन जनों की कष्ट कथा है रजत जयंती,
पर दुख-कातर तपोधनों की विकट व्यथा है रजत जयंती,
अमृत-मंथनी प्रवंचना की नयी प्रथा है रजत जयंती,
कथित कथन, चर्वित-चर्वण की मथी मथा है रजत जयंती॥''[13]

नागार्जुन की कविताओं में गाँव, खेत, किसान, मजदूर, गरीबी, भूख और संघर्ष का अत्यंत सजीव और यथार्थ चित्रण मिलता है। वे कल्पना के कृत्रिम संसार में नहीं, बल्कि वास्तविक जीवन की समस्याओं पर केंद्रित रहते हैं।

उनका यथार्थवाद केवल वर्णनात्मक नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिबद्धता से जुड़ा हुआ है। वे समाज की विसंगतियों को उजागर करते हुए परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। इसी कारण उनका काव्य एक सशक्त जनवादी और प्रतिबद्ध साहित्य के रूप में स्थापित होता है।

8. रूढ़ियों और अंधविश्वासों का विरोध :

नागार्जुन एक प्रतिबद्ध मार्क्सवादी कवि के रूप में परंपरागत रूढ़ियों, अंधविश्वासों और धार्मिक पाखंड के

कट्टर विरोधी हैं। उनके अनुसार आधुनिक मनुष्य की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि वह अब भी रूढ़िगत मान्यताओं, अंधविश्वासों और बाह्याडंबरों में जकड़ा हुआ है, जो उसकी प्रगति और स्वतंत्र चिंतन में बाधक हैं।

नागार्जुन जनसाधारण को इन जड़ मान्यताओं से मुक्त करने के लिए संकल्पबद्ध दिखाई देते हैं। वे व्यंग्यात्मक शैली में समाज की इस मानसिकता पर प्रहार करते हुए कहते हैं—

''यह खोंचूपन और चिंचियाते रहना हमारे खून में है। बने रहो श्रवण कुमार, उठाए जाओ पुरानी परंपराओं की बहंगी।''

नागार्जुन का मानना है कि धर्म के ठेकेदारों ने धर्म को शोषण का माध्यम बना लिया है। उन्होंने धर्म के नाम पर अपनी-अपनी 'दुकानें' खोल रखी हैं, जहाँ भोली-भाली जनता को अंधविश्वास और ढोंग के जाल में फँसाकर उसका शोषण किया जाता है। इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ समाज को भीतर से खोखला करती हैं।

इसी संदर्भ में कवि का स्पष्ट और निर्भीक कथन है—

''भूख ही सबसे बड़ा धर्म है, सबसे बड़ा देवता,
कलीमुद्दीन तो भूख की भट्ठी में खाक हो गया था।'' [14]

यहाँ नागार्जुन ने भूख जैसी मूलभूत समस्या को धर्म से भी ऊपर रखकर धार्मिक पाखंड पर करारा प्रहार किया है। वे जनता का आह्वान करते हुए रूढ़ियों से मुक्त होने का संदेश देते हैं-

''नदी कर ली पार, उसके बाद
नाव को लेता चलूँ क्यों पीठ पर मैं लाद॥'' [15]

इस प्रकार नागार्जुन ने अपनी कविताओं के माध्यम से जनसामान्य को जागरूक करने और उन्हें रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से मुक्त होने की प्रेरणा दी है। उनकी दृष्टि वैज्ञानिक, तर्कसंगत और प्रगतिशील है, जो उन्हें आधुनिक चेतना का सशक्त प्रतिनिधि बनाती है।

9. नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण :

नागार्जुन ने अपने काव्य में नारी को एक स्वतंत्र, संवेदनशील और मानवीय अस्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया है। वे नारी-शोषण के प्रबल विरोधी हैं तथा समाज में उसके सम्मानजनक और समान अधिकारों के पक्षधर हैं। उनके अनुसार, प्राचीन काल से ही नारी को 'शुचिता' और 'पातिव्रत्य' के नाम पर नियंत्रित और शोषित किया गया है, और यह प्रक्रिया आधुनिक समाज में भी विभिन्न रूपों में जारी है।

नागार्जुन नारी की सहजता, संवेदनशीलता और सहनशीलता का चित्रण करते हुए लिखते हैं—

''शिशु समान होती है नारी जाति,
मृदुमति, तरल स्वभाव,
शब्द-स्पर्श के प्रति अर्पित आप्राण,
पी जाती यह हलाहल चुपचाप,
खंडित करती भावुकता का मूल्य।'' [16]

नागार्जुन नारी के प्रति परंपरागत दृष्टिकोण का खंडन करते हुए एक नई, मानवीय और समतामूलक दृष्टि की स्थापना करते हैं। उनकी कविता 'पाषाणी' में वे राम के माध्यम से नारी के प्रति आदर्श आचरण का प्रतिपादन करते हैं—

''छूकर अंब तुम्हारे दोनों पाँव,
होता राघव राम प्रतिज्ञाबद्ध,
नारी के प्रति कभी न होगा क्रूर,
नहीं करेगा वह दूसरा विवाह,
कभी न मेरे अंत:पुर के मध्य होगा
षोडशियों का जमघट व्यर्थ,
नहीं करूँगा सपने में भी, अंब,
क्रय-क्रीत दास-दासी का अपमान।'' [17]

नागार्जुन की दृष्टि में नारी और प्रेम संबंधी मूल्य काम-केंद्रित या भोगवादी दृष्टिकोण से भिन्न, एक स्वस्थ मानवीय धरातल पर आधारित हैं। वे मानते हैं कि व्यक्ति और व्यक्ति के बीच संबंध समता, सम्मान और सह-अस्तित्व पर आधारित होने चाहिए, न कि शोषण या वर्चस्व पर। नागार्जुन की कविताओं में नारी केवल सौंदर्य का प्रतीक नहीं, बल्कि एक संघर्षशील, आत्मनिर्भर और सशक्त व्यक्तित्व के रूप में उभरती है। उनका यह दृष्टिकोण उन्हें प्रगतिशील कवियों की अग्रणी पंक्ति में स्थापित करता है।

10. राष्ट्रीय चेतना एवं साम्राज्यवाद का विरोध :

नागार्जुन के काव्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वर अत्यंत सशक्त और बहुआयामी रूप में अभिव्यक्त हुआ है। वे

अपने समय की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति पूर्णतः सजग कवि हैं। जनसामान्य की निरंतर बिगड़ती स्थिति, गरीबी, शोषण और असमानता को देखकर वे मौन नहीं रहते, बल्कि अपनी कविता के माध्यम से जनता को जागरूक करने और उनके भीतर प्रतिरोध की शक्ति भरने का प्रयास करते हैं।

नागार्जुन को अपने देश के प्रत्येक अंश से गहरा प्रेम है, जो उनकी निम्न पंक्तियों में स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है—

''खेत हमारे, भूमि हमारी, सारा देश हमारा है,
इसलिए तो हमको इसका चप्पा-चप्पा प्यारा है।''[18]

नागार्जुन संकीर्ण क्षेत्रीयता के विरोधी हैं और राष्ट्रीय एकता के पक्षधर हैं। वे राष्ट्रीय महानायकों के प्रति समान सम्मान और अखिल भारतीय दृष्टि की आवश्यकता पर बल देते हुए कहते हैं—

''स्थापित नहीं होगी क्या
लाला लाजपत राय की प्रतिमा मद्रास में?
दिखाई नहीं पड़ेंगे लखनऊ में सत्यमूर्ति?
सुभाष और जे.एम. सेनगुप्त क्या सीमित रहेंगे
भवानीपुर और श्यामबाजार की दुकान तक?
तिलक नहीं निकलेंगे पूजा से बाहर?''[19]

नागार्जुन की राष्ट्रीय चेतना केवल देशप्रेम तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें साम्राज्यवाद और शोषणकारी शक्तियों के प्रति तीव्र विरोध भी समाहित है। प्रगतिशील साहित्य की परंपरा के अनुरूप उनकी कविताएँ साम्राज्यवाद-विरोधी चेतना से ओत-प्रोत हैं। उनकी यह चेतना एक ओर मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित है तो दूसरी ओर भारतीय जनमानस की स्वतंत्रता और मुक्ति की आकांक्षा से भी जुड़ी हुई है।

इस संदर्भ में उनकी निम्न पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं—

''संत होंगे महासंत, कुसंत होंगे उपसंत,
स्वार्थी न होंगे, पर कीर्ति की लालसा का रहेगा न अंत,
ऊपर-ऊपर मूक क्रांति, विचार क्रांति, सम्पूर्ण क्रांति,
कंचन क्रांति, मंचन क्रांति, वचन क्रांति किंचन क्रांति,
फल्गु-सी प्रवाहित रहेगी भीतर-भीतर तरल मदिर भ्रांति।''[20]

इस प्रकार नागार्जुन का काव्य राष्ट्रीय चेतना, जनवादी दृष्टिकोण और साम्राज्यवाद-विरोधी भावना का सशक्त संगम प्रस्तुत करता है। उनकी राष्ट्रीयता संकीर्ण न होकर व्यापक, समावेशी और जनकल्याणकारी है, जो उन्हें एक प्रतिबद्ध और जागरूक जनकवि के रूप में स्थापित करती है।

11. प्रकृति-चित्रण :

नागार्जुन यद्यपि मुख्यतः जनकवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं और उनकी अधिकांश रचनाएँ सामाजिक यथार्थ तथा जनजीवन से संबद्ध हैं, तथापि उनकी प्रकृति-परक कविताएँ भी उनकी संवेदनशीलता का सशक्त प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। उन्होंने प्रकृति पर अपेक्षाकृत कम लेखन किया है, किंतु जितना भी लिखा है, उसमें प्रकृति के प्रति उनकी गहरी आत्मीयता और सूक्ष्म अनुभूति स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होती है।

उनकी प्रकृति-संवेदना कृत्रिम या कल्पनात्मक न होकर पूर्णतः यथार्थपरक और जीवन-सापेक्ष है। वे प्रकृति को उसी रूप में चित्रित करते हैं, जैसा उन्होंने स्वयं देखा और अनुभव किया है। 'नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएँ' में वर्णित निम्न पंक्तियाँ उनकी प्रकृति-सौंदर्य के प्रति गहन अनुरक्ति को व्यक्त करती हैं—

''रंग-बिरंगी, खिली-अधखिली, किसिम-किसिम की गंधों वाली,
यादों-स्वादों वाली ये मंजरियाँ तरुण आम की,
डाल-डाल, टहनी-टहनी पर झूम रही हैं....
चूम रही हैं कुसुमाकर को,
ऋतुओं के राजाधिराज को... ।''[21]

यद्यपि छायावादी कवियों को प्रकृति-चित्रण के लिए विशेष रूप से जाना जाता है, फिर भी नागार्जुन का प्रकृति-वर्णन किसी भी दृष्टि से उनसे कम प्रभावशाली नहीं है। उनकी विशेषता यह है कि वे साधारण से साधारण प्राकृतिक दृश्य को भी अपने अनुभव और संवेदना के माध्यम से असाधारण बना देते हैं।

उनकी प्रसिद्ध कविता 'बादल को घिरते देखा है' में प्रकृति का अत्यंत मनोहारी और दृश्यात्मक चित्रण मिलता है—

''अमल-धवल गिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है,

छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम कमलों पर
गिरते देखा है।''[22]

नागार्जुन की प्रकृति-संबंधी कविताओं में ग्राम्य जीवन की झलक, लोक-संस्कृति की गंध और धरती से गहरा जुड़ाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस प्रकार उनका प्रकृति-चित्रण न केवल सौंदर्यबोध को व्यक्त करता है, बल्कि जीवन के साथ उसकी अंत:संबद्धता को भी स्थापित करता है।

12. दाम्पत्य एवं वात्सल्य भाव :

नागार्जुन के काव्य में जहाँ एक ओर सामाजिक यथार्थ और जनसंघर्ष की तीव्र अभिव्यक्ति मिलती है, वहीं दूसरी ओर कोमल मानवीय भावनाओं विशेषत: दांपत्य प्रेम और वात्सल्य का अत्यंत मार्मिक और संवेदनशील चित्रण भी मिलता है। यह पक्ष उनकी बहुआयामी काव्य-प्रतिभा का परिचायक है।

यायावर जीवन जीने वाले नागार्जुन के व्यक्तित्व का एक कोमल पक्ष भी है, जो एकांत में अपनी पत्नी की स्मृति से भाव-विह्वल हो उठता है। प्रकृति के सौंदर्य में उन्हें अपनी प्रेयसी का आभास होता है—

''आँखें मूँद कर रहा मैं ध्यान,
लिखूँ क्या प्रेयसी, यहाँ का हाल?
आज उमड़ी घन-घटा को देखकर
मन यही करता है कि मैं भी
प्रियतमा का करूँ आह्वान—
कालिदास समान।''[23]

प्रवास के क्षणों में कवि अपने गाँव, स्वजनों और प्रेयसी की स्मृतियों से व्याकुल हो उठता है—

''तभी तो तुम याद आती, प्राण,
हो गया हूँ मैं— नहीं पाषाण!
याद आते स्वजन,
जिनकी स्नेह से भीगी अमृतमय आँख।''[24]

नागार्जुन के काव्य में वात्सल्य भाव का भी अत्यंत हृदयस्पर्शी चित्रण मिलता है। 'दंतुरित मुस्कान' कविता में उन्होंने पिता के स्नेह को अत्यंत सजीव और मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है—

''यह दंतुरित मुस्कान
मृतक में भी डाल देगी जान,
ज्देखते तुम इधर कनखी मार,
और होती जब आँखें चार,
तब तुम्हारी दंतुरित मुस्कान
मुझे लगती बड़ी ही छविमान।''[25]

इन पंक्तियों में बालक की निष्कपट मुस्कान और पिता के स्नेह का जो चित्र उभरता है, वह पाठक के हृदय को गहराई से स्पर्श करता है। यह वर्णन हमें सूरदास के वात्सल्य-चित्रण की स्मृति अवश्य कराता है, किंतु अंतर यह है कि वहाँ श्रीकृष्ण की लीलाएँ हैं, जबकि यहाँ एक सामान्य बालक के माध्यम से जीवन की सहज अनुभूति व्यक्त की गई है।

इस प्रकार नागार्जुन के काव्य में दाम्पत्य और वात्सल्य भावों की अभिव्यक्ति उनकी मानवीय संवेदना की गहराई को उद्घाटित करती है। यह पक्ष उन्हें केवल जनकवि ही नहीं, बल्कि एक संवेदनशील और पूर्ण मानवीय कवि के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

13. भाषा शैली :

नागार्जुन की भाषा-शैली उनकी काव्य-विशेषताओं में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उनकी भाषा सरल, सहज, स्वाभाविक तथा लोकभाषा के अत्यंत निकट है। उन्होंने संस्कृतनिष्ठ, कृत्रिम और क्लिष्ट भाषा के स्थान पर जनसाधारण की बोलचाल की भाषा को अपनाया, जिससे उनकी कविताएँ सीधे आम जनता के हृदय तक पहुँचती हैं।

नागार्जुन की भाषा में देशज शब्दों, लोक प्रचलित मुहावरों और ग्राम्य जीवन की गंध का सजीव समावेश मिलता है। यही कारण है कि उनकी कविताएँ केवल पढ़ी ही नहीं जातीं, बल्कि अनुभव की जाती हैं। 'हरिजन गाथा' कविता की निम्न पंक्तियाँ इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं—

''पैदा हुआ है दस रोज पहले अपनी बिरादरी में,
क्या करेगा भला आगे चलकर,
रामजी के आसरे जी गया अगर,
कौन-सी माटी गोड़ेगा,
कौन-सा ढेला फोड़ेगा।''[26]

इन पंक्तियों में 'रामजी के आसरे', 'माटी गोड़ना',

'ढेला फोड़ना' जैसे शब्द-प्रयोग हरिजन समुदाय के जीवन-संघर्ष, श्रम और यथार्थ को अत्यंत जीवंत ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

नागार्जुन की शैली में व्यंग्य, व्यंजना, प्रतीक और बिंबों का अत्यंत प्रभावशाली प्रयोग मिलता है। वे साधारण शब्दों के माध्यम से भी गहरे और तीखे अर्थ व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं। उनकी भाषा में एक ओर लोकजीवन की सहजता है तो दूसरी ओर वैचारिक तीक्ष्णता भी विद्यमान है।

इस प्रकार उनकी भाषा-शैली उन्हें विशिष्ट बनाती है और उन्हें जनकवि के रूप में प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

13. निष्कर्ष :

नागार्जुन हिंदी साहित्य के एक महान जनकवि हैं, जिनकी रचनाएँ सामाजिक यथार्थ, जनसंघर्ष और मानवीय संवेदनाओं का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत करती हैं।

उनका काव्य केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम है। उनकी प्रगतिशील चेतना, यथार्थवादी दृष्टिकोण और व्यंग्यात्मक शैली उन्हें हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नागार्जुन का काव्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था, और आने वाली पीढ़ियों के लिए भी प्रेरणास्रोत बना रहेगा। ❑

संदर्भ सूची :

1. नरेंद्र सिंह, सठोत्तरी हिंदी कविता में जनवादी चेतना, पृ. सं. 156
2. विश्वंभर मानव, 'नयी कविता : नये कवि'
3. 'नयी कविता : नये कवि', पृ. 138
4. प्रेमशंकर, समीक्षा, 1981, पृ. 35
5. 'तुमने कहा था', पृ. 93-94
6. नागार्जुन, 'खुरदरे पैर', युगधारा, पृ. 4)
7. बाबा बटेशरनाथ, पृ. 8
8. नागार्जुन, 'सतरंगे पंखों वाली', पृ. 28
9. नागार्जुन, 'युगधारा', पृ. 13
10. नागार्जुन, 'अकाल और उसके बाद', सतरंगे पंखों वाली, पृ. 30
11. नागार्जुन, 'क्या हुआ आपको', खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. 11
12. नागार्जुन, 'शासन की बंदूक', तुमने कहा था, पृ. 46
13. नागार्जुन, 'रजत जयंती', प्यासी पथराई आँखें, पृ. 131
14. नागार्जुन, 'तेरी खोपड़ी के अंदर', युगधारा, पृ. 102
15. नागार्जुन, 'कल्पना के पुत्र हे भगवान', हजार-हजार बाहों वाली, पृ. 92
16. नागार्जुन, 'युगधारा', पृ. 101
17. नागार्जुन, 'पाषाणी' युगधारा, पृ. 18
18. नागार्जुन, 'प्यासी पथराई आँखें', पृ. 13
19. नागार्जुन, 'प्यासी पथराई आँखें', पृ. 131
20. नागार्जुन, 'चुनी हुई रचनाएँ', पृ. 219
21. नागार्जुन, 'चुनी हुई रचनाएँ', पृ. 237
22. नागार्जुन, 'चुनी हुई रचनाएँ', पृ. 20
23. नागार्जुन, 'ऋतु चातकी संधि'
24. नागार्जुन, 'चुनी हुई रचनाएँ', पृ. 31
25. नागार्जुन, 'दंतुरित मुस्कान' युगधारा, पृ. 97
26. नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. 138

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945
Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

स्त्री-शिक्षा और आधुनिक भारतीय शिक्षा नीति

डॉ. रुचिरा वर्मा

अतिथि अध्यापिका, हिन्दी विभाग
गुरुचरण विश्वविद्यालय
सिलचर, असम-788005
9531056632
ruchira211@gmail.com

शोध-सार :

प्राचीन समय में स्त्री-शिक्षा की कोई विशेष व्यवस्था नहीं हो रही थी। जो व्यवस्था थी, वह सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था में समानता के उद्देश्य के अनुरूप नहीं थी। भारत क्या, समूचे विश्व में पुरुष प्रधान व्यवस्था ने स्त्री को घरेलू कामकाज एवं उद्योग की दृष्टि से ही सरेखित किया था। अपवादों को छोड़ा जा सकता है, जिसमें अनेक स्त्रियों ने अपनी योग्यता एवं क्षमता के बल पर अपने को सिद्ध किया। हालांकि उनको भी पर्याप्त संघर्ष करना पड़ा, किंतु आधुनिक काल में ऐसी स्थिति नहीं है, लोग जागरूक हो रहे हैं, स्त्रियाँ सचेत हो रही हैं। अर्थोपार्जन, योग्यता, कार्यकुशलता, विवेकशीलता, समानता तथा ज्ञान आदि के लिए पूरे विश्व के साथ भारत में भी स्त्री-शिक्षा का विस्तार एवं विकास हुआ है, यह देखा जा सकता है। वर्तमान काल की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था में भी बदलाव किए जा रहे हैं। हम चतुर्दिश दिशाओं में देख सकते हैं कि जिन कार्यों के लिए केवल पुरुष वर्ग को ही योग्य समझा जाता रहा है, उसमें भी सौ प्रतिशत तक परिवर्तन आ चुका है। इसका कारण स्वाधीनता के पश्चात लोक में स्त्री शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरुकता और भारतीय शिक्षा नीतियों को माना जा सकता है। वर्ष 1966 से लेकर वर्ष 2020 की शिक्षा नीतियों ने स्त्री शिक्षा को अधिक प्रभावकारी तरीके से, स्त्री की शैक्षिक योग्यता को बढ़ाने का प्रयास किया है और करेंगी।

बीज शब्द :

वैदिक सभ्यता, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली, मैकाले शिक्षा नीति, चार्ल्स वुड डिस्पैच, शिक्षा का इतिहास, राज्य शिक्षा समिति, कौशल विकास, व्यावसायिक गुणवत्ता प्रधान शिक्षा।

मूल आलेख :

हम जानते हैं कि प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा के अवशेष मिलते हैं, किंतु उसमें स्त्री शिक्षा की अनिवार्यता एवं औचित्य पर विशेष बल नहीं ही था। भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार ने कुछ हद तक शिक्षा को स्त्री-पुरुष दोनों के लिए विस्तार देने का प्रयास किया, लेकिन वहाँ भी माना जाता है कि चूँकि अंग्रेजों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा, अंग्रेजीयत की बाबूगिरी और उनके काम आ सकने वाले कर्मचारियों के निर्माण के ही मुख्य उद्देश्य से ही प्रेरित थी। इस लिहाज से स्त्री शिक्षा का बहुत अधिक विस्तार न हो सका। हालांकि मैकाले से लेकर चार्ल्स वुड और विवियम विलसन हंटर तक सभी ने भारत में स्त्री शिक्षा के

चिंताजनक स्थिति की ओर संकेत किया। हम देखें तो विलियम एडम्स की रिपोर्ट में यह चिमता स्पष्ट जाहिर की गई है कि भारत में महिला शिक्षा की हालत बहुत दयनीय है। इसके लिए प्राय: सभी ने जागरूकता एवं लोक में स्त्री-बुद्धि विकास के प्रति उदासीनता को कारण माना। विलियम एडम्स का मानना था कि *सहशिक्षा की व्यवस्था तो थी, लेकिन लोकमत, लोकविश्वास एवं कामकाज की घरेलू आवश्यकता तथा व्यवस्था के चलते स्त्री शिक्षा के प्रति बहुसंख्यक समाज का विशेष लगाव नहीं था और न ही इस प्रकार की कोई जागरूकता ही थी। इस कारण से कुछ ही महिलाएँ शिक्षित होती थीं अथवा शिक्षा के प्रति कुछ ही लोग एवं परिवार जागरूक होते थे।*[1] हालांकि यह सत्य है कि भारत में शिक्षा की सुचारू एवं समृद्ध व्यवस्था थी और वैश्विक शिक्षा व्यवस्था में यह श्रेष्ठ स्वरूप में स्थापित थी, जिसको नष्ट करने का काम अंग्रेजी शिक्षा ने ही किया। मुगलों अथवा इस्लामिक शासकों के आने के बाद भी वह परंपरा नष्ट नहीं हुई थी। यह अलग बात है कि उन्होंने अरबी-फारसी तथा मदरसा शिक्षा को स्थापित किया और बढ़ावा दिया। अगर गौर करें तो उनके यहाँ भी स्त्री की शिक्षा का कोई विशेष औचित्य नहीं था।

वैदिक काल से लेकर मुगलों तथा अंग्रेजों के आगमन तक स्त्री शिक्षा की कोई विशेष परंपरा नहीं दिखती और यह भी देखा जा सकता है कि अंग्रेजों द्वारा भारतीय शिक्षा पद्धति को बदलते हुए भी स्त्री शिक्षण के संबंध में लगभग वही स्थिति रही। वैदिक कालीन तथा रामायण-महाभारत काल से होते हुए बुद्धकाल तक कुछ विदुषी महिलाओं के नाम मिलते हैं, लेकिन इससे लोक में स्त्री शिक्षा को लेकर प्रचलित मान्यताओं का आकलन संभव नहीं है, क्योंकि प्रचलित नामों में केवल ऋषि, तपस्वी स्त्रियों, राज परिवार अथवा संपन्न परिवार की स्त्रियों जैसे - विश्ववारा, अपाला, घोषा, आत्रेयी, लोपामुद्रा, गोधा, व्रजाया, गार्गी, मैत्रेयी, पौलोमी, प्रतिधेयी, सुलभा, कौशल्या (महाराज दशरथ की पत्नी), तारा, धम्म-दिन्ना, किसा गौतमी, थेरी सोमा (बिंबिसार की पुत्री), खेमा (बिंबिसार की पत्नी), अनुपमा, सुजाता आदि का ही उल्लेख मिलता है। एक प्रकार से यह समानता की शिक्षा का स्वरूप नहीं था। सही अर्थों में देखा जाय तो कहीं भी स्त्री शिक्षा का बहुत अधिक समर्थन नहीं था। हालांकि वैदिक आचार सूत्र (आश्वलायन श्रोतसूत्र), पतंजलि के महाभाष्य, यमस्मृति, हारीत स्मृति आदि अनेक ग्रंथों का अवलोकन करेंगे तो संकेत मिलता है कि *कुमारी स्त्रियों को विद्या अवश्य ग्रहण करनी चाहिए और धर्म तथा नीति में उसे निष्णात होना चाहिए, क्योंकि विदुषी कन्या अपने तथा अपने पति के लिए कल्याणकारी होती है, इसलिए केवल पढ़ी लिखी कन्या का ही दान करना चाहिए।*[2] लेकिन स्त्री शिक्षा का यह स्वरूप बहुत अधित विस्तार नहीं प्राप्त करता, क्योंकि उनके विद्या अध्ययन को घरेलू कामकाज और उसके परिवेश आदि तक ही सीमित रखा गया। उनके लिए निर्धारित पाठ्यक्रमों में चौसठ महाविद्याओं का उल्लेख किया गया है, जिनका संबंध पारिवारिक देखभाल तथा पति सेवा तक सुनिश्चित किया गया। *इनमें गीत, नृत्य, वाद्य, नाट्य, फुलवारी लगाना, कताई-बुनाई रस्सी बटना, घरेलू हिसाब-किताब, पशु पालन, दूध मक्खन तेल आदि का काम, पाक कला, शृंगार कार्य को जानने जैसे कार्य ही प्रमुख हैं।*[3] सामाजिक दायित्वों, राजकीय कामकाज में हिस्सेदारी, आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी तथा अन्य ज्ञानात्मक शिक्षा में स्त्री की उपस्थिति निर्धारित करने वाली शिक्षा नगण्य प्रतीत होती है।

कुल मिलाकर आकलन किया जाय तो प्राचीन समय में स्त्री शिक्षा का वह स्वरूप नहीं था, जो लौकिक समाज में पुरुष के लिए था। आधुनिक काल में विलियम एडम्स ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि हिंदू अथवा मुसलमान दोनों समाज में स्त्री की दशा एक ही प्रकार की थी-*All the stablished native institutions of education exist for the benefits of the male sex only, and the whole of the female sex is systematically consigned to ignorance and left wholly without even the semblance of a provision for their instruction.*[4]

हम गौर करें तो भले ही भारतीय शिक्षा में स्त्री की इस स्थिति की चर्चा की गई, लेकिन अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था में भी कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। वर्ष 1882 के हंटर शिक्षा आयोग में संकेत किया गया कि स्त्री की

शिक्षा बहुत पिछड़ी हुई है और सरकार को इस दिशा में अधिक व्यय करना चाहिए। इस समय महिलाओं की कुल आबादी का 0.2 प्रतिशत ही शिक्षित थी। श्रीधरनाथ मुखर्जी इन सभी प्रक्रियों और नीतियों का अवलोकन करने के पश्चात बताते हैं कि *वर्ष 1902 तक बालिकाओं की शिक्षा के लिए कुल 12 कॉलेज, 467 माध्यमिक स्कूल, 5628 प्राथमिक स्कूल सक्रिय थे, जिनमें कुल चार लाख सैंतालिस हजार चार सौ सत्तर लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त कर रहीं थी।*[5] यह बहुत संतोष जनक स्थिति न थी लेकिन धीरे-धीरे ही सही लोक में स्त्री शिक्षा के प्रति जागरूकता में बढ़ोत्तरी होने लगती है। कुछ भारतीय तथा कुछ अंग्रेज सामाजिक चेतना वाले लोगों द्वारा भारत की सार्वजनिक शिक्षा में स्त्री के लिए भी जगह बनने लगी। श्रीधरनाथ मुखर्जी संकेत करते हैं कि *सब कुछ होते हुए भी आज (वर्ष- 1960 में) केवल 12 प्रतिशत भारतीय स्त्रियाँ शिक्षिता गिनी जाती हैं तथा गत सौ वर्षों में स्त्री शिक्षा बहुत ही धीरे-धीरे फैली।* [6] यह प्रतिशत का आंकड़ा भी वर्ष 1901 (महिला साक्षरता दर 0.8 प्रतिशत) से लेकर स्वाधीनता के समय की बीच हुई प्रगति और जागरूकता का परिणाम था। हालांकि यह स्थिति पर्याप्त सुधारपूर्ण थी, क्योंकि स्वाधीनता प्राप्ति के वर्ष 1947 में यह लगभग 6 प्रतिशत ही थी। सही मायने में भारत में स्त्री शिक्षा का वास्तविक सुधार, प्रसार एवं इसके प्रति जागरूकता स्वाधीनता के पश्चात ही आनी शुरू होती है।

संविधान की नीतियों में समानता के अधिकार के तहत सभी नागिरकों को शिक्षा के अधिकार दिए गये, जहाँ से स्त्री शिक्षा की स्थिति में परिवर्तन देखा जा सकता है। पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति के ठीक पूर्व श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में भारत सरकार ने वर्ष 1958 में स्त्री शिक्षा की राष्ट्रीय समिति का गठन किया, जिसने जनवरी 1959 में स्त्री शिक्षा के विस्तार को लेकर अनेक सुझाव सामने रखे, जो संक्षिप्त रूप से इस प्रकार हैं। *स्त्री शिक्षा को देश की समस्याओं में प्रमुख स्थान देना चाहिए, स्त्री और पुरुष के बीच विकसित विषमता को शीघ्रता से दूर करने का प्रयास करना चाहिए, केंद्र सरकार को स्त्री शिक्षा का भार स्वयं वहन करना चाहिए तथा राज्य सरकारों के मिलकर इसके विस्तार की योजना बनाकर एक निश्चित समय में पूरा करना चाहिए तथा राज्य सरकारों को भारत सरकार की स्त्री शिक्षा संबंधी नीतियों का पालन करने के लिए प्रोत्साहन तथा आर्थित अनुदान भी देना चाहिए, सभी राज्यों में स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए बालिका एवं स्त्री शिक्षा की राज्य समितियाँ स्थापित की जाएँ, ग्रामीण क्षेत्रों में इस कार्य के लिए विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।* [7]

इस समिति की सिफारिशों का नतीजा यह हुआ कि भारत सरकार ने 1960 के बाद स्त्री शिक्षा से संबंधित कार्यों के लिए महिला शिक्षा की एक राष्ट्रीय परिषद का गठन किया, जिसकी सिफारिशों को अमल में लाने के लिए सीधे शिक्षा मंत्रालय ने विशेष व्यस्थाएँ की तथा इन सभी नीतियों को तृतीय पंचवर्षीय योजना में शामिल कर लिया गया। भारत सरकार ने राज्य सरकारों के माध्यम से प्रत्येक राज्य के शिक्षा विभाग में एक उप-निर्देशक अथवा संयुक्त निर्देशक के नियुक्ति की व्यवस्था की। *तृतीय पंचवर्षीय योजना में बालिकाओं के घर से बाहर निकलने तथा विभिन्न कार्यक्रमों, व्यवस्थाओं में शामिल होने के लिए अधिक बल दिये जाने की बात की गई तथा उनके स्वास्थ्य पर भी विशेष ध्यान रखने की योजनाएँ बनाई गई। तीसरी योजना में स्त्री शिक्षा पर 175 करोड़ रुपये व्यय किए गये।*[8] इसके ठीक बाद कोठारी आयोग के सुझावों पर भारत की पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में लागू की जाती है, जहाँ से स्त्री शिक्षा में एक नवसुधार देखने को मिलता है। वह नीति यह मानती है कि महिलाएँ भी सामाजिक ढाँचे का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं, जिसका प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से भविष्य पर पड़ता है। इसलिए एक ओर तो वहाँ प्रौढ़ शिक्षा के रूप में स्कूली अवस्था से आगे बढ़ चुकी महिलाओं के शिक्षित होने की व्यवस्था की जाती है तो दूसरी ओर इसके साथ ही सामान्य रूप से बालकों के समानांतर बालिकाओं के लिए भी शिक्षा के प्रबंध को प्रभावकारी बनाने का प्रयास किया जाता है। नीति कहती है-*The education of girls should receive emphasis, not only on ground of social justice but also because it accelerates social transformation.*[9]

जैसा कि हम जानते हैं पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति

पूर्णरूपेण कोठारी आयोग (वर्ष 1964-66) के सर्वेक्षण, आकलन और सुझावों पर केंद्रित थी। ध्यान दें तो स्वाधीनता के लगभग 17 वर्ष बाद भारतीय शिक्षा के लिए एक ऐसी नीति बनती, जो भारतीय शिक्षा को पर्याप्त तीव्रता देने वाली होती है। कोठारी आयोग बड़े व्यापक तरीके से अपनी रिपोर्ट में स्त्री शिक्षा के महत्त्व को समझाती है, आकलन करती है तथा गंभीरता से सुझाव देती है। यह मानती है कि स्त्री शिक्षा की हालत अत्यंत दयनीय है। इसमें सुधार के लिए दो प्रकार से कार्य करने की आवश्यकता है। *पहला तो यह कि दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता वाली समिति के सुझावों को अपनाते हुए सरकार को विशेष कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता है।*[10]

दूसरा यह कि सरकार को स्त्री शिक्षा के सभी क्षेत्र के सभी स्तरों पर इसके लिए पूरी क्षमता से और विशेष कार्यक्रम के साथ कार्य करना होगा, इसके लिए राज्य तथा केंद्र दोनों सरकारों को ऐसे तंत्र का विकास करना होगा, जो महिलाओं के लिए औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम चला सकें, महिलाओं के घर से बाहर की भूमिका को बढ़ाने के लिए उनकी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उनके रोजगार तथा प्रशिक्षण पर आवश्यक बल देना होगा।[11]

प्राय: देखा गया कि अधिकांश नवयुवतियाँ दसवीं के बाद गृहिणी बनी रह जाती हैं अत: उनके लिए रोजगार की व्यवस्था में विस्तार करने की आवश्कता है, ताकि समाज में स्त्री की शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़े, इसके साथ ही उनके लिए शिक्षण, नर्सिंग, सामाजिक सेवा जैसे क्षेत्रों में अवसरों की उपलब्धता पर ध्यान देना होगा। देखा जाय तो प्रथम शिक्षा नीति 1968 का महिला साक्षरता से संबंधित पहला उद्देश्य स्त्री शिक्षा को पुरुष शिक्षा के समकक्ष बनाने का था।

दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति वर्ष 1986 में लागू होती है, जिसमें समसायिकता के हिसाब से अनेक सुधार अथवा बदलाव किए जाते हैं तथा वैश्विक आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में भारत वर्ष के सामाजिक, सांस्कृतिक चरित्र की सुदृढ़ता के लिए अनेक संकल्प लिए जाते हैं। इसी संकल्प में यह देखा गया कि भारत की जनसंख्या अति तीव्र गति से बढ़ती जा रही है, जिसके लिए पुरुषों से अधिक महिलाओं को जागरुक करना बहुत आवश्यक है। उन्हें अपने हित तथा अपने स्वास्थ्य एवं जीवन के प्रति विवेकशील बनाना अति आवश्यक है। इसका प्रमुख मार्ग शिक्षा से होकर ही गुजरता है। पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति में महिला शिक्षा को देशव्यापी स्तर पर शिक्षित बनाने के उद्देश्य तक देखा जा सकता है। दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के पहले खण्ड (भूमिका) में पिछली नीति का आकलन करते हुए यह संकेत किया गया है कि *आने वाले दशकों में जनसंख्या की बढ़ती हुई रफ्तार पर काबू पाना होगा, इस समस्या को हल करने के लिए में जो सबसे अहम् उपाय कारगर साबित हो सकता है, वह है महिलाओं का साक्षर और शिक्षित होना।*[12] समझा जा सकता है कि यहाँ उन महिलाओं के बारे में बात हो रही है, जो गाँव देहात जैसे दूर-दराज के इलाकों में रहती हैं या फिर शहरी इलाकों में भी हैं, लेकिन शिक्षा को अधिक महत्त्व नहीं देती। लब्बोलुआब यह कि अपने प्रति वे जागरुक नहीं होतीं। स्पष्ट है कि दूसरी शिक्षा नीति आने तक भी महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता अधिक नहीं होती है, जिससे वे अपने बारे में सोच सकें। बहुत कम ही जागरुक और शिक्षित महिलाएँ थीं, जो अपने स्वास्थ्य, परिवार, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता के बारे में सोचती थीं। दूसरी नीति को इसे और अधिक विस्तार देना था। वर्ष 1992 में इस नीति में विधि अनुसार संशोधन किया जाता है, जिसमें स्ववित्तपोषित संस्थानों को खोलने के साथ महिला शिक्षा में सुधार के लिए अनेक योजनाओं को बनाने के प्रावधान किए जाते हैं।

दूसरी शिक्षा नीति भाग चार में समानता की शिक्षा पर बात करते हुए महिलाओं को समाज में समानता के साथ स्थापित करने का उद्देश्य रखती है। वस्तुत: प्रत्येक शिक्षा नीति देश के सभी स्त्री-पुरुष के लिए होती है, लेकिन लाभ बहुत कम महिलाएँ ले पातीं हैं। इसलिए *विशेष रूप से पिछड़े लोगों में महिलाओं के विकास के लिए यह नीति शिक्षा को साधन के रूप में अपनाने का विशेष संकल्प लेती है, जो भाग चार के पैरा दो और तीन में इस प्रकार है।*[13] पैरा (4.2)-शिक्षा का उपयोग महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन के लिए एक साधन के रूप में किया जाएगा। अतीत से चली आ रही

विकृतियों एवं विषमताओं को खत्म करने के लिए शिक्षा व्यवस्था का स्पष्ट झुकाव महिलाओं के पक्ष में होगा। राष्ट्रीय शिक्षा-व्यवस्था ऐसे प्रभावी दखल करेगी जिनसे महिलाएँ, जो अब तक अबला समझी जाती रही हैं, समर्थ और सशक्त हों। नए मूल्यों की स्थापना के लिए शिक्षण संस्थानों के सक्रिया सहयोग से पाठ्यक्रमों तथा पठन-पाठन सामग्री की पुनर्रचना की जाएगी तथा अध्यापकों व प्रशासकों को पुन: प्रशिक्षित किया जाएगी। इस काम को सामाजिक पुनर्रचना का अभिन्न अंग मानते हुए इसे पूर्ण कृत संकाय होकर किया जाएगी। महिलाओं से संबंधित अध्ययन को विभिन्न पाठ्यचर्याओं के भाग के रूप में प्रोत्साहन दिया जाएगा और शिक्षा संस्थानों को महिला विकास के सक्रिया कार्यक्रम शुरू करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाएगा। पैरा (4.3)

महिलाओं में साक्षरता प्रसार को तथा उन रूकावटों को दूर करने को जिनके कारण लड़कियाँ प्रारंभिक शिक्षा से वंचित रह जाती हैं, सर्वोपरि प्राथमिकता दी जाएगी। विभिन्न स्तरों पर तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी पर खास जोर दिया जाएगा। लड़के और लड़कियों में किसी प्रकार का भेदभाव न बरतने की नीति पर पूरा जोर दिया अमल किया जाएगा, ताकि तकनीकी और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में पारंपरिक रवैयों के कारण चले आ रहे लिंगमूलक विभाजन (सैक्स स्टीरियोटाइपिंग) को खत्म किया जा सके तथा गैर-परंपरागत आधुनिक काम-धंधों में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ सके। इसी प्रकार मौजूदा और नई प्रोद्योगिकी में भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई जाएगी।

विचारणीय है कि भारतीय समाज में स्त्री के लिए शिक्षा के प्रति बने-बनाए नजरिए को विकसित करने तथा बदलने की आवश्यकता थी, जिसमें स्त्री की भूमिका ही महत्त्वपूर्ण थी। अभी भी कहीं न कहीं कमी और संकोच था। भारतीय संविधान के तहत महिलाओं कभी भागीदारी में हालांकि कोई भेदभाव नहीं था, लेकिन एक अवरोध अवश्य था। *एक प्रकार से यह सामाजिक-मानसिक प्रतिबंध था। उसे दूर करने की अनिवार्यता पर यह नीति बल देती है। यहाँ प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर प्रत्येक स्कूल में एक महिला अध्यापक की अनिवार्यता स्वीकार की गई साथ ही साथ ऐसी लड़कियाँ जो दिन के स्कूल में पूरे समय नहीं जा सकती थी उनके लिए व्यापक और व्यवस्थित औपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम को चलाने की व्यवस्था की गई।*[14] इन व्यवस्थाओं का ही परिणाम हुआ कि धीरे-धीरे हर स्तर पर बालिकाएँ घरों से बाहर निकलकर स्कूल गईं और उनके शैक्षित स्तर में पर्याप्त वृद्धि हुई। जनगणना 2011 के अनुसार तथा वर्तमान समय में महिला शिक्षा का दर 65 प्रतिशत से ऊपर जा चुकी है।

वर्ष 2020 में स्वाधीन भारत की तीसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू की जाती है, जो पिछली नीतियों की कमियों को पूर्ण करने तथा भारतीय शैक्षिक व्यवस्था को आधुनिक वैश्विक प्रगति तथा तकनीकी के अनुरूप करने के प्रयास के लिए बनाई गई है। वर्ष 1992 और वर्ष 2020 के भारतीय जीवन शैली, ज्ञान के प्रारूप और उसकी आवश्यकता में आमूलचूल परिवर्तन हो चुका है। शिक्षा व्यवस्था को सदैव कालानुसार परिवर्तित होने की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए वर्ष 2020 की शिक्षा नीति लागू की जाती है। पिछली नीतियों ने निश्चित रूप से महिला, परिवार तथा समाज के वैचारिक स्वरूप को बदलने का बहुत बड़ा कार्य किया जिससे महिलाएँ पढ़ने के साथ- साथ प्राय: सभी कार्यों में अपनी निपुणता दर्ज कर चुकी हैं। *केवल महिलाएँ ही नहीं योजना के प्रत्येक स्तर पिछली नीतियाँ सफल होती हैं, जिसे इस नीति की भूमिका में स्वीकार किया गया।*[15] हालांकि सभी स्थितियों के बाद भी यह नीति एकीकृत जिला शिक्षा सूचना प्रणाली (यू-डीआईएसई) 2016-17 के आँकड़ों के आधार पर यह मानती है कि *सामाजिक आर्थिक रूप से वंचित समूहों (एसईडीजी) की महिलाओं के नामांकन प्रारंभिक कक्षाओं से लेकर माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा में निरंतर गिरावट हो रही है।*[16] इस समस्या को दूर करने के लिए भारत सरकार अपनी इस शिक्षा नीति के तहत उन अवयवों की तलाश करने की ताकीद करती है, जिससे ऐसे समूह की बालिकाओं के शिक्षा से दूर होने के कारणों को सुलझाया जाय तथा उन्हें उच्च स्तर तक पहुँचने में मदद मिल सके। इसको सुनिश्चित करने के अनेक प्रावधान राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने चुने गए। जैसे -

स्वच्छता एवं शौचालय से संबंधित सुविधाएँ, साइकिल एवं नगद हस्तांतरण आदि।[17] ऐसे प्रावधान बालिकाओं की अनेक समस्याओं में मदद करेंगे, जिससे उनकी शिक्षा का मार्ग प्रशस्त होगा। यह समावेशी व्यवस्था सामाजिक रूप से उन्हें समानता प्रदान करेगा। इसके साथ ही यह नीति बालिकाओं के लिए खोले गये कस्तूरबा गाँधी विद्यालय को और अधिक सशक्त करने प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रकट करती है, ताकि सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़े समूह की बालिकाओं के लिए बारहवीं तक की उच्च स्तरीण गुणवत्ता की शिक्षा को और अधिक विस्तार प्राप्त हो सके। उच्च शिक्षा की संरचना में प्राय: महिलाएँ जो निचली कक्षाओं से आगे बढ़ जाती हैं, उनके लिए विशेष समस्या नहीं होती। स्त्री शिक्षा की मूल समस्या है कि बहुत कम संख्या में बालिकाएँ उच्च अथवा विश्वविद्यालयी शिक्षा तक पहुँचती हैं। इसके स्तर को सुधारने का कार्य दूसरी शिक्षा नीति ने तो किया ही, इस नीति में भी आरंभिक स्तर पर सह शिक्षा और विशेष स्कूलों के माध्यम से करने का ध्येय रखती है, जिसका परिणाम भविष्य में देखने को मिलेगा।

निष्कर्ष :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पूरी तरह से तकनीकी, प्रोद्योगिकीय संसाधन, डिजीटल इंफ्रास्ट्रक्चर, ऑनलाइन उपकरणीय व्यवस्था जैसे अवयवों के पूर्णत: अपनाने की बात करती है। निश्चित रूप से यह व्यवस्था सह शिक्षा अथवा महिला शिक्षा दोनों के लिए समकालीन अवस्था के साथ चलने वाला मार्ग सुनिश्चित करेगी। शिक्षा नीति में की जाने वाली सभी बातें निश्चयत: स्त्री के लिए भी उतनी ही हितकारी हैं, जितनी कि पुरुष के लिए। पहली और दूसरी शिक्षा नीतियों की पृष्ठभूमि में आगे बढ़ने वाली महिलाओं के शैक्षिक विकास के मार्ग को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पूरी प्रतिबद्धता के साथ आगे बढ़ाने का प्रयास करना चाहती है, जिससे महिलाओं के भीतर भी तकनीकी ज्ञान, सांचारिक संसार तथा प्रौद्योगिकीय संसाधनों के बीच और अधिक उपस्थिति दर्ज हो सके। हम कह सकते हैं कि स्वाधीन भारत की शिक्षा नीतियों के परिणाम संतोषजनक हैं, लेकिन वैश्विक धरातल पर और काम बाकी है, जिससे महिला शिक्षा में और विकास देखा जा सके। ❑

संदर्भ सूची :

1. जे. लाँग–एडम्स रिपोर्ट ऑन वर्माक्यूलर एजूकेशन इन बंगाल एंड बिहार, पृष्ठ – 131–33, होम सेक्रेटेरियट प्रेस, कलकत्ता, वर्ष– सन्, 1868
2. सीताराम चतुर्वेदी, भारतीय और यूरोपिय शिक्षा का इतिहास, पृष्ठ–51–52, हिंदी साहित्य कुटीर, काशी, प्रथम संस्करण, संवत्– 2011
3. मुनेश्वर प्रसाद, भारतीय शिक्षा का इतिहास भाग–1, पृष्ठ – 26, श्रीअजंता प्रेस लिमिटेड, पटना, प्रथम संस्करण, सन्, 1956
4. अनथनाथ बसु (संपादक) – रिपोर्ट्स आन दि स्टेट ऑफ एजुकेशन इन बेंगाल (वि. एडम्स), पृष्ठ–452, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, संस्करण–सन्, 1941
5. श्रीधरनाथ मुखर्जी, भारत में शिक्षा, पृष्ठ– 179, आर्य बुक डिपो, बड़ौदा, प्रथम संस्करण–सन् 1960
6. तदैव, पृष्ठ–178
7. बी.पी. जौहरी, भारतीय शिक्षा का इतिहास, पृष्ठ–477, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, षष्ठम् संस्करण–197
8. तदैव, पृष्ठ–478
9. नेशनल पालिसी ऑन एजुकेशन, 1968, पृष्ठ–41, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
10. कोठारी आयोग की रिपोर्ट, पृष्ठ–224, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण–1966
11. तदैव, पृष्ठ–224–225
12. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (संसोधन 1992), पृष्ठ–1, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
13. तदैव, पृष्ठ – 3–4
14. तदैव, पृष्ठ–6
15. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पृष्ठ–6, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
16. तदैव, पृष्ठ–38
17. तदैव, पृष्ठ–40

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

हरिशंकर परसाई की रचना-दृष्टि में कबीर के समाज-सुधारक रूप और गांधी के राष्ट्रपिता रूप का विरोधाभासी चित्रण

सीमा सिंह

शोधार्थी, हिंदी विभाग
मंगलायतन यूनिवर्सिटी
बेसवां अलीगढ़, उत्तर प्रदेश-202146
9999202337
Cimacing@gmail.com

शोध-सार :

यह शोध-पत्र हरिशंकर परसाई के व्यंग्य-साहित्य को कबीर की निर्गुण-समाज-सुधारक चेतना और गांधी की राष्ट्र-निर्माणवादी नैतिकता के संदर्भ में रखकर उनके विरोधाभासी और संश्लेषात्मक रूपों का विश्लेषण करता है। कबीर ने अपने युग में धार्मिक कर्मकांडों, आडंबरों और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध निर्भीक आवाज उठाई, वहीं गांधी ने बीसवीं शताब्दी में उसी चेतना को अहिंसा, सत्याग्रह और ग्राम-लोकतंत्र के रूप में पुनर्परिभाषित किया। परसाई की दृष्टि में यह दोनों परंपराएँ आदर्श तो हैं, किंतु इनका अंधानुकरण आधुनिक समाज में नया पाखंड भी रच सकता है। अतः परसाई अपने व्यंग्य के माध्यम से दोनों विचारधाराओं की सीमाओं को पहचानते हुए एक लोकतांत्रिक तर्कशीलता का मार्ग सुझाते हैं। यह अध्ययन दिखाता है कि परसाई का साहित्य आधुनिक भारत के नैतिक विवेक का पुनर्निर्माण करता है, जहाँ हँसी के भीतर गहरी मानवीय करुणा और सामाजिक आत्मालोचन की चेतना छिपी है।

बीज शब्द :

हरिशंकर परसाई, कबीर, महात्मा गांधी, समाज-सुधार और नैतिकता, व्यंग्य और आत्मालोचन, लोकतांत्रिक चेतना

1. परिचय :

हिंदी साहित्य के इतिहास में हरिशंकर परसाई (1924-1995) को व्यंग्य के जनक के रूप में जाना जाता है। उनके लेखन में समाज, धर्म, राजनीति और संस्कृति की विडंबनाओं का ऐसा यथार्थ चित्रण मिलता है, जो न केवल हास्य उत्पन्न करता है, बल्कि पाठक को भीतर तक सोचने पर विवश कर देता है (त्रिपाठी, 2011)। परसाई का व्यंग्य केवल उपहास नहीं, बल्कि नैतिक विवेक की साधना है- वे समाज में फैलती अंध-श्रद्धा, नैतिक पतन और राजनीतिक अवसरवाद को अपनी हँसी के माध्यम से बेनकाब करते हैं (मिश्र, 2005)।

दूसरी ओर, भारतीय चिंतन की दो महान परंपराएँ कबीर और गांधी परसाई की रचना-दृष्टि को गहराई से प्रभावित करती हैं। कबीर ने निर्गुण भक्ति के माध्यम से समाज-सुधार का कार्य किया। उन्होंने मूर्तिपूजा, जातिगत असमानता और धार्मिक दंभ के विरुद्ध जन-संवाद स्थापित किया (अग्रवाल, 2009)।

वहीं गांधी ने उसी चेतना को अहिंसा और सत्याग्रह की सामाजिक-राजनीतिक प्रणाली के रूप में रूपांतरित किया। उनके लिए राष्ट्रनिर्माण का आधार धर्म या सत्ता नहीं, बल्कि नैतिकता और श्रम-सम्मान था (गांधी, 1909)।

परसाई इन दोनों विचारधाराओं से संवाद करते हैं, परंतु उनका दृष्टिकोण आलोचनात्मक और द्वंद्वात्मक है। वे कबीर की तरह अंध-श्रद्धा का विरोध करते हैं, किंतु केवल निषेध में नहीं रुकते; वे गांधी की तरह नैतिकता का आग्रह करते हैं, पर उसे प्रतीकवाद या उपदेश तक सीमित नहीं रहने देते (वाजपेयी, 2005)। इस प्रकार, परसाई का व्यंग्य कबीर के नकारवाद और गांधी के संयमवाद के बीच एक तीसरी दृष्टि प्रस्तुत करता है-जहाँ विवेक, हँसी और आत्मालोचन समाज-सुधार के वास्तविक उपकरण बन जाते हैं (तिवारी, 2018)।

परसाई की यह रचना-दृष्टि आधुनिक भारत के उस संक्रमणकालीन यथार्थ को पकड़ती है, जहाँ धर्म राजनीति का उपकरण बन चुका है और नैतिकता केवल भाषणों में सीमित रह गई है। इसलिए उनका व्यंग्य केवल साहित्य नहीं, बल्कि नैतिक प्रतिरोध की सांस्कृतिक परियोजना है, जो कबीर की साखियों की चुभन और गांधी के कर्म की शांति, दोनों को अपने भीतर समाहित करता है। (शर्मा, 2015)।

2. साहित्य-समीक्षा :

परसाई की रचना-दृष्टि

हरिशंकर परसाई के साहित्य पर विद्यमान आलोचना-परंपरा हिंदी व्यंग्य की सबसे सशक्त धाराओं में गिनी जाती है। परसाई की रचना-दृष्टि को समझने के लिए आलोचकों ने तीन मुख्य बिंदुओं पर विमर्श किया है — (i) समाज-सुधार और नैतिक विवेक, (ii) भाषा-शैली और लोक-तर्क, तथा (iii) राजनीति और धर्म की विडंबनाओं पर उनका दृष्टिकोण।

नामवर सिंह (2010) ने परसाई के व्यंग्य को 'हिंदी गद्य का जनतांत्रिक रूप' कहा, जहाँ साहित्य जनजीवन के नैतिक प्रश्नों का सामना करता है। उनके अनुसार परसाई की हँसी में वही शक्ति है, जो कबीर के वचन में मिलती है- कटु सत्य को लोकभाषा में व्यक्त करने का साहस। इसी तरह विश्वनाथ त्रिपाठी (2011) मानते हैं कि परसाई की रचनाएँ गांधी की 'साधन-शुद्धि' की अवधारणा को व्यावहारिक सामाजिक आलोचना में बदल देती हैं। वे कहते हैं कि "परसाई की हँसी में नैतिक तर्क की दृढ़ता है, जो गांधी के सत्याग्रह की तरह असहयोग का रूप ले लेती है।"

गिरिराज किशोर (1994) ने परसाई को 'लोक नैतिकता का कथाकार' कहा। उनके अनुसार परसाई के यहाँ हास्य किसी व्यक्ति या संस्था पर नहीं, बल्कि मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्तियों पर प्रहार करता है - यही दृष्टि उन्हें कबीर की परंपरा से जोड़ती है। पुरुषोत्तम अग्रवाल (2009) के अध्ययन कबीर : कविता और संस्कृति में यह स्पष्ट किया गया है कि कबीर की निर्गुण चेतना केवल धार्मिक अस्वीकार नहीं, बल्कि नैतिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया थी। यही तत्व परसाई के व्यंग्य में नए समाज-शास्त्रीय संदर्भों में जीवित दिखाई देता है।

अशोक वाजपेयी (2005) ने परसाई की व्यंग्य-भाषा को गांधी के संवादों की तरह सरल किंतु गहन बताया है। वे लिखते हैं - "परसाई ने जिस सहज बोलचाल की भाषा में विचारों की गहराई व्यक्त की, वह गांधी के जन-संवाद का आधुनिक रूप है।" इसी प्रकार राजेश मिश्र (2005) का मत है कि परसाई का व्यंग्य 'नैतिक प्रतिरोध' का रूप लेता है, जो समाज के आत्म-मूल्यांकन की प्रक्रिया है। अल्पना तिवारी (2018) का विश्लेषण यह संकेत करता है कि परसाई का लेखन कबीर के नकार-भाव और गांधी के संयम-भाव दोनों का समन्वय करता है। वह कहती हैं कि "परसाई की हँसी में कबीर की तिक्तता और गांधी की करुणा दोनों एक साथ मौजूद हैं।"

हालाँकि, अधिकांश विद्यमान अध्ययनों ने इन तीनों-कबीर, गांधी और परसाई के विचारों के पारस्परिक संबंधों को अलग-अलग रूप में देखा है। ऐसा कोई गहन अध्ययन अब तक नहीं हुआ जो परसाई की रचना-दृष्टि को इन दोनों परंपराओं के विरोधाभास और संवाद के रूप में एकीकृत करे। यही वह शोध-अंतर (Research Gap) है, जिसे यह वर्तमान शोध-पत्र भरने का प्रयास करता है। अर्थात परसाई की व्यंग्य-दृष्टि को कबीर की समाज-सुधारक निर्गुण चेतना और गांधी की राष्ट्र-निर्माणवादी नैतिकता के बीच के वैचारिक द्वंद्व के रूप में समझना।

3. शोध के उद्देश्य और परिकल्पना :

यह शोध हरिशंकर परसाई की रचना-दृष्टि में कबीर और गांधी के वैचारिक रूपों की विरोधाभासी समानताओं की पहचान और विश्लेषण पर केंद्रित है। परसाई का व्यंग्य केवल हास्य नहीं, बल्कि सामाजिक तर्क, नैतिक विवेक और आत्मालोचन की एक सक्रिय प्रक्रिया है। अत: इस अध्ययन के उद्देश्य और परिकल्पना को निम्न प्रकार से निर्धारित किया गया है—

3.1 शोध के उद्देश्य :

- कबीर के समाज-सुधारक रूप और गांधी के राष्ट्रपिता रूप की वैचारिक संरचना का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- हरिशंकर परसाई के व्यंग्य-साहित्य में इन दोनों परंपराओं के विरोध, सामंजस्य और आलोचनात्मक द्वंद्व को स्पष्ट करना।
- यह समझना कि परसाई का व्यंग्य कैसे कबीर की नकारात्मक (निषेधात्मक) दृष्टि और गांधी की सकारात्मक (रचनात्मक) दृष्टि के बीच तीसरी नैतिक दृष्टि का निर्माण करता है।
- परसाई की भाषा, शैली और व्यंग्यात्मक तकनीक के माध्यम से समाज-सुधार के लोकतांत्रिक तर्क की पहचान करना।
- समकालीन समाज में परसाई के विचारों की प्रासंगिकता और प्रयोगात्मक मूल्य को रेखांकित करना।

3.2 शोध की परिकल्पना :

1. हरिशंकर परसाई की व्यंग्य-दृष्टि कबीर और गांधी दोनों से प्रभावित है, परंतु वह उन्हें आलोचनात्मक दृष्टि से पुनर्परिभाषित करती है।

2. परसाई के व्यंग्य में कबीर की निंदक-परंपरा और गांधी की साधन-शुद्धि—दोनों एक द्वंद्वात्मक संवाद के रूप में उपस्थित हैं।

3. कबीर का समाज-सुधार 'नकार के माध्यम से सृजन' है, जबकि गांधी का सुधार 'सत्य और संयम के माध्यम से पुनर्निर्माण'; परसाई इन दोनों का लोकतांत्रिक समन्वय प्रस्तुत करते हैं।

4. सैद्धांतिक और पद्धतिगत ढाँचा :

इस शोध में हरिशंकर परसाई की रचना-दृष्टि को समझने के लिए तीन प्रमुख पद्धतियाँ अपनाई गई हैं— द्वंद्वात्मक विधि, व्याख्यात्मक पद्धति, और नैतिक-राजनीतिक सिद्धांत।

4.1 द्वंद्वात्मक विधि :

यह विधि विरोधी विचारों के बीच संवाद और संश्लेष को पहचानती है। यहाँ कबीर के निर्गुण-कर्मकांड विरोध, गांधी के अहिंसा-हिंसा द्वंद्व और परसाई की भक्ति-नागरिकता के टकराव का विश्लेषण किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि अर्थ विरोधों के बीच से जन्म लेता है (सिंह, 2010)।

4.2 व्याख्यात्मक पद्धति :

हर्मेनेयूटिक पद्धति से परसाई की रचनाओं 'भूत के पाँव पीछे, विकलांग श्रद्धा का दौर, सदाचार का ताबीज' का सूक्ष्म अध्ययन किया गया है। इसमें भाषा, व्यंग्य और नैतिक दृष्टि की परतों का अर्थ-वाचन किया गया है, ताकि यह समझा जा सके कि परसाई का 'लोक-तर्क' हास्य के भीतर नैतिक चेतना कैसे उत्पन्न करता है (मिश्र, 2005; तिवारी, 2018)।

4.3 नैतिक-राजनीतिक सिद्धांत :

गांधी की साधन-शुद्धि, कबीर की निंदक-परंपरा और वेबर की उत्तरदायित्व की नैतिकता को इस अध्ययन में सैद्धांतिक आधार बनाया गया है। परसाई का व्यंग्य इन सिद्धांतों को आधुनिक समाज में पुनर्परिभाषित करता है—जहाँ हँसी आत्मालोचन और नैतिक दायित्व का प्रतीक बन जाती है (शर्मा, 2015)।

4.4 पद्धति की उपयुक्तता :

तीनों पद्धतियों का संयुक्त प्रयोग परसाई के साहित्य को उसकी विचारात्मक गहराई और सामाजिक अर्थ के साथ समझने में सहायक सिद्ध हुआ है, क्योंकि परसाई का व्यंग्य विचार, संवेदना और तर्क—तीनों के समन्वय से निर्मित है।

5. विश्लेषण :

यह अध्याय हरिशंकर परसाई की रचना-दृष्टि में कबीर के समाज-सुधारक रूप और गांधी के राष्ट्रपिता रूप के परस्पर विरोध और संवाद का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। परसाई का व्यंग्य इन दोनों परंपराओं के बीच से होकर एक ऐसी दृष्टि का निर्माण करता है, जिसमें

सत्य, नैतिकता और सामाजिक चेतना-तीनों एक साथ सक्रिय रहते हैं।

5.1 कबीर का समाज-सुधारक रूप :

कबीर भारतीय संत परंपरा के ऐसे कवि हैं, जिन्होंने धर्म, जाति और कर्मकांड के विरुद्ध तीखा प्रतिरोध किया। उनकी रचनाएँ सामाजिक समानता, आत्मानुभव और सत्य की खोज का प्रतीक हैं। उन्होंने समाज को यह सिखाया कि सच्चा धर्म पूजा-पाठ या बाह्य आडंबर में नहीं, बल्कि मानवता और विवेक में है। (अग्रवाल, 2009; द्विवेदी, 1958)।

हरिशंकर परसाई इस कबीरवादी दृष्टि को अपने व्यंग्य में आधुनिक रूप देते हैं। वे समाज के नए पाखंडों राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक की आलोचना करते हुए कबीर की 'निंदक नियरे राखिये' वाली परंपरा को जीवित रखते हैं। परसाई के लिए आलोचना विरोध नहीं, बल्कि सुधार का साधन है।

कबीर का समाज-सुधार नकार के माध्यम से सृजन है, जबकि परसाई उसी परंपरा को हँसी के माध्यम से आत्मालोचन में रूपांतरित करते हैं। दोनों ही इस बात पर विश्वास करते हैं कि समाज तब सुधरता है जब व्यक्ति भीतर से जागता है, न कि जब उस पर धर्म या सत्ता से सुधार थोपा जाए।

5.2 गांधी का राष्ट्रपिता रूप :

महात्मा गांधी भारतीय समाज में नैतिकता, सत्य और अहिंसा के प्रतीक हैं। उनके राष्टपिता रूप का अर्थ केवल राजनीतिक नेतृत्व नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और नैतिक

सारणी 1 : कबीर और परसाई के समाज-सुधारक रूप का तुलनात्मक विश्लेषण

पहलू	कबीर की दृष्टि	परसाई की दृष्टि
सुधार का आधार	आत्मानुभव और सत्य की खोज	तर्क, विवेक और सामाजिक आलोचना
विरोध का स्वर	कर्मकांड, जाति और धर्म-सत्ता का निषेध	धार्मिक और राजनीतिक पाखंड पर व्यंग्य
माध्यम	साखी, दोहा, लोकभाषा	व्यंग्य, कथा और संवाद
उद्देश्य	समाज में समरसता और आत्मशुद्धि	नागरिक विवेक और नैतिक सुधार
शैली की विशेषता	प्रतीकात्मक और लोकबोली	हास्य, विडंबना और तर्कशीलता

सारणी 2 : गांधी और परसाई की नैतिक दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

पहलू	गांधी की दृष्टि	परसाई की दृष्टि	संदर्भ
नैतिकता का आधार	सत्य, अहिंसा और आत्मसंयम	तर्कशील विवेक और सामाजिक उत्तरदायित्व	(गांधी, 1941; वाजपेयी, 2005)
साधन और उद्देश्य	साधन की शुद्धि ही लक्ष्य की शुद्धि है	साधन और लक्ष्य दोनों की परीक्षा आवश्यक	(नंदा, 1995; मिश्र, 2014)
राजनीति का स्वरूप	नैतिक आचरण पर आधारित जन-सेवा	सत्ता और आडंबर की आलोचना	(राधाकृष्णन, 1988; तिवारी, 2018)
समाज में हिंसा का रूप	शारीरिक और मानसिक हिंसा का विरोध	भाषायी, सांस्कृतिक और आर्थिक हिंसा का व्यंग्यात्मक अनावरण	(शर्मा, 2015; कुमार, 2020)
जनता की भूमिका	आत्मशुद्धि और सहयोग से परिवर्तन	आत्मालोचन और सामाजिक जागरूकता से सुधार	(परसाई, 1983; त्रिपाठी, 2011)

अनुशासन का आदर्श है। गांधी का मानना था कि ''राजनीति को धर्म से नहीं, बल्कि नैतिकता से प्रेरित होना चाहिए'' (गांधी, 1941)। उन्होंने राष्ट्र को केवल स्वतंत्रता नहीं, बल्कि सत्य, करुणा और आत्मसंयम की संस्कृति दी।

हरिशंकर परसाई ने अपने व्यंग्य में गांधी की इसी नैतिकता की परीक्षा आधुनिक भारत की परिस्थितियों में की। वे दिखाते हैं कि आज का समाज गांधी का नाम तो लेता है, पर उनके मूल विचारों से दूर चला गया है। उनके लेख 'भूत के पांव पीछे' और 'विकलांग श्रद्धा का दौर' इस बात को उजागर करते हैं कि अहिंसा और सत्य केवल भाषण का विषय बनकर रह गए हैं (मिश्र, 2005; तिवारी, 2018)। परसाई के व्यंग्य पात्र अक्सर 'नैतिकता' की बातें करते हैं, पर उनका आचरण इसके विपरीत होता है। इस विरोधाभास के माध्यम से परसाई यह दिखाते हैं कि गांधी की शिक्षाओं का अंधानुकरण बिना आत्म-सत्य के केवल दिखावा है।

गांधी के राष्ट्रपिता रूप में जहाँ आदर्श नैतिक अनुशासन का आग्रह है, वहीं परसाई उस आदर्श को व्यवहारिक यथार्थ की कसौटी पर परखते हैं। गांधी का 'साधन-शुद्धि' सिद्धांत परसाई के यहाँ 'व्यंग्य-शुद्धि' में बदल जाता है—जहाँ हँसी सत्य का हथियार बनती है और समाज अपने नैतिक दर्पण में स्वयं को देखना सीखता है।

5.3 परसाई की दृष्टि में विरोधाभास :

हरिशंकर परसाई की रचना-दृष्टि में कबीर और गांधी दोनों की विचारधाराएँ उपस्थित हैं, किंतु वे उन्हें न तो आदर्श रूप में स्वीकार करते हैं और न ही पूर्णत: अस्वीकार। परसाई का दृष्टिकोण द्वंद्वात्मक और आलोचनात्मक है। वे कबीर की भांति धार्मिक पाखंड और कर्मकांड की आलोचना करते हैं, पर केवल निषेध में नहीं रुकते; वे गांधी की तरह नैतिकता की बात करते हैं, पर नैतिकता को कर्महीन उपदेश में बदलने से भी बचाते हैं (तिवारी, 2018; शर्मा, 2015)। उनकी रचनाओं में यह विरोधाभास जीवंत रूप में उभरता है—जहाँ समाज कबीर की तरह धर्म का विरोध तो करता है, पर उसी समय नए पाखंड गढ़ता है; और जहाँ गांधी के अनुयायी सत्य-अहिंसा की बात करते हैं, पर सामाजिक व्यवहार में हिंसा और असमानता बनाए रखते हैं। परसाई का व्यंग्य इस विरोधाभास को केवल व्यंग्यात्मक नहीं, बल्कि नैतिक विमर्श में बदल देता है (मिश्र, 2014; कुमार, 2020)।

उनके अनुसार, कबीर का नकार यदि अकेला रह जाए तो समाज सुधार के स्थान पर अराजकता का कारण बन सकता है, और गांधी की करुणा यदि अंध-आदर्श बन जाए तो वह वास्तविकता से कट सकती है। इसलिए परसाई दोनों के बीच एक तीसरी राह प्रस्तुत करते हैं —

सारणी 3 : कबीर, गांधी और परसाई के विचारों में विरोधाभास का तुलनात्मक अध्ययन

विचार का पक्ष	कबीर की दृष्टि	गांधी की दृष्टि	परसाई की दृष्टि
समाज-सुधार का मार्ग	निषेध और नकार के माध्यम से सुधार	संयम और सत्याग्रह के माध्यम से सुधार	तर्क, हँसी और आत्मालोचन के माध्यम
धर्म का स्वरूप	मूर्तिपूजा और कर्मकांड का विरोध	नैतिक धर्म और सत्य की साधना	धार्मिक प्रतीकों का व्यंग्यात्मक पुनर्पाठ
नैतिकता का स्वरूप	आंतरिक आत्मबोध	साधन-शुद्धि और सामाजिक करुणा	व्यावहारिक नैतिकता और उत्तरदायित्व
समाज के प्रति दृष्टि	लोक में समानता और जागरूकता	सहयोग, सेवा और आत्मत्याग	विवेकपूर्ण नागरिकता और आलोचनात्मक चेतना
विरोधाभास का परिणाम	नकार में भी रचना का बीज	संयम में भी क्रांति की भावना	हँसी में भी नैतिक विवेक का उद्घाटन

जिसमें तर्क, विवेक और आत्मालोचन को समाज-सुधार का आधार माना गया है (त्रिपाठी, 2011; आलोक रंजन, 2021)।

परसाई के व्यंग्य का यह विरोधाभास ही उसकी शक्ति है- वे कबीर के निषेध और गांधी के संयम दोनों को एक जनतांत्रिक आत्मालोचन में रूपांतरित करते हैं। उनका व्यंग्य हमें यह सिखाता है कि सच्चा सुधार न तो केवल नकार से आता है और न केवल उपदेश से, बल्कि विवेकपूर्ण हँसी और सामाजिक उत्तरदायित्व से उपजता है।

5.4 परसाई का संश्लेषात्मक दृष्टिकोण :

हरिशंकर परसाई का साहित्य केवल विरोध या नकार का नहीं, बल्कि संश्लेष और पुनर्निर्माण का साहित्य है। उन्होंने कबीर की नकारात्मक चेतना और गांधी की रचनात्मक करुणा—दोनों को मिलाकर आधुनिक समाज के लिए एक तीसरी नैतिक दृष्टि प्रस्तुत की। परसाई की यह दृष्टि 'हँसी के भीतर विवेक' की परंपरा का विस्तार है, जहाँ व्यंग्य केवल आलोचना नहीं, बल्कि सुधार का साधन बनता है (वाजपेयी, 2005; आलोक रंजन, 2021)। परसाई के अनुसार, कबीर का विरोध समाज के भीतर छिपे पाखंड को उजागर करता है और गांधी की अहिंसा उस विवेक को आचरण में परिणत करती है। उन्होंने इन दोनों के विचारों को जोड़ते हुए 'लोकतांत्रिक आत्मालोचन' की अवधारणा विकसित की, यानी वह समाज जो स्वयं पर हँसने और अपनी त्रुटियों को स्वीकारने की क्षमता रखता है (मिश्र, 2014; सुशील कुमार, 2019)।

उनकी दृष्टि में यह संश्लेष तभी संभव है जब व्यक्ति के भीतर नैतिक विवेक और समाज के भीतर उत्तरदायित्व का भाव जीवित रहे। अतः परसाई का व्यंग्य किसी सिद्धांत की पुनरावृत्ति नहीं, बल्कि जीवंत संवाद की प्रक्रिया है- जिसमें कबीर का विद्रोह और गांधी का संयम, दोनों मिलकर आधुनिक विवेक की नींव रखते हैं (कुमार, 2020; त्रिपाठी, 2011)।

परसाई का संश्लेषात्मक दृष्टिकोण यह बताता है कि सच्चा समाज-सुधार केवल उपदेश या विरोध से नहीं, बल्कि तर्क, हास्य और नैतिक जागरूकता के समन्वय से संभव है। उन्होंने कबीर के साहस और गांधी की करुणा को मिलाकर एक ऐसा मानवीय साहित्य रचा जो आज के समय में भी लोकतंत्र का नैतिक दर्पण बना हुआ है।

6. चर्चा और समकालीन निहितार्थ :

हरिशंकर परसाई की रचना-दृष्टि आज के सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ में गहरी प्रासंगिकता रखती है। जिस प्रकार कबीर ने धार्मिक पाखंडों पर प्रहार किया और गांधी ने राजनीति को नैतिकता से जोड़ा, उसी प्रकार परसाई ने आधुनिक भारत में नैतिक पतन, भ्रष्टाचार और आडंबरपूर्ण धार्मिकता की तीखी आलोचना की। वे बताते हैं कि जब समाज प्रश्न पूछना बंद कर देता है तो लोकतंत्र अपनी आत्मा खो देता है (तिवारी, 2018)। कबीर की तरह वे भीतर से सुधार पर बल देते हैं और गांधी की तरह मानते हैं कि बिना साधन की शुद्धि के कोई भी उद्देश्य नैतिक नहीं हो सकता (शर्मा, 2015)। परसाई की दृष्टि यह सिखाती है कि समाज की स्थिरता शक्ति या प्रदर्शन से नहीं, बल्कि विवेक और करुणा से आती है। उनका साहित्य आधुनिक भारत के लिए एक नैतिक

सारणी 4 : कबीर, गांधी और परसाई के विचारों का संश्लेषात्मक तुलनात्मक विश्लेषण

पक्ष	कबीर की दृष्टि	गांधी की दृष्टि	परसाई का संश्लेषात्मक दृष्टिकोण
विचार का स्वरूप	निषेध और आत्मानुभव	संयम और सत्याग्रह	विवेक और आत्मालोचन का समन्वय
समाज-सुधार की पद्धति	नकार द्वारा जागरण	करुणा द्वारा परिवर्तन	हँसी और तर्क द्वारा नैतिक पुनर्निर्माण
लक्ष्य	धार्मिक समानता और आत्मशुद्धि	नैतिक राजनीति और ग्राम-लोकतंत्र	सामाजिक उत्तरदायित्व और नागरिक विवेक
साधन	लोकभाषा और अनुभवजन्य सत्य	सत्याग्रह और स्वावलंबन	व्यंग्य, हास्य और लोक-तर्क
परिणाम	आत्मचेतना का विकास	सामाजिक सह-अस्तित्व	विवेकपूर्ण लोकतंत्र का निर्माण

दिशा-सूचक है, जो यह संदेश देता है कि सच्चा राष्ट्र वही है जो आत्मालोचन और सुधार की क्षमता रखता है (मिश्र, 2014)।

7. निष्कर्ष और भावी संकेत :

हरिशंकर परसाई की रचना-दृष्टि भारतीय समाज के नैतिक और मानवीय विवेक से गहराई से जुड़ी है। उनका व्यंग्य केवल हास्य नहीं, बल्कि नैतिक जागरण और आत्मालोचन का माध्यम है। वे कबीर की तरह पाखंड और अंध-श्रद्धा पर प्रहार करते हैं तथा गांधी की तरह आत्मसंयम और नैतिक आचरण को समाज सुधार का आधार मानते हैं (त्रिपाठी, 2011; मिश्र, 2014)। परसाई के व्यंग्य में यह विरोध नहीं, बल्कि संश्लेष है- जहाँ कबीर का नकार और गांधी का संयम मिलकर आधुनिक जनतांत्रिक चेतना का निर्माण करते हैं। वे दिखाते हैं कि समाज तभी सुधरेगा जब वह अपने भीतर की नैतिक कमजोरियों को पहचान सके। भविष्य के शोध के लिए परसाई की दृष्टि को तुलसीदास, टॉल्स्टॉय और ऑरवेल जैसे चिंतकों से जोड़कर देखा जा सकता है, ताकि व्यंग्य की वैश्विक मानवतावादी भूमिका को समझा जा सके। अंततः, परसाई की हँसी हमें यह सिखाती है कि साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज में विवेक, करुणा और परिवर्तन की प्रेरणा देना है। ❑

संदर्भ सूची :

- अग्रवाल, पुरुषोत्तम। (2009). कबीर : कविता और संस्कृति. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
- अशोक वाजपेयी। (2005). हँसी की राजनीति. दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ।
- आलोक रंजन। (2021). परसाई के व्यंग्य में समाज और राजनीति का चित्रण. लखनऊ : भारतीय साहित्य भवन।
- गिरिराज किशोर। (1994). व्यंग्य की परंपरा और परसाई का योगदान. लखनऊ : हिंदी साहित्य परिषद।
- गांधी, मोहनदास करमचंद। (1909). हिंद स्वराज. अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन।
- गांधी, मोहनदास करमचंद। (1941). रचनात्मक कार्यक्रम. अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन।
- द्विवेदी, हजारीप्रसाद। (1958). कबीर. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
- नंदा, बी. आर.। (1995). गांधीजी की जीवनी. नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- नामवर सिंह। (2010). कहानी नई कहानी. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
- परसाई, हरिशंकर। (1974). भूत के पांव पीछे. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
- परसाई, हरिशंकर। (1983). विकलांग श्रद्धा का दौर. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- पुरुषोत्तम शर्मा। (2015). हरिशंकर परसाई का व्यंग्य-दर्शन. भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
- प्रभात त्रिपाठी। (2014). परसाई की हँसी और समाज का विवेक. प्रयागराज : साहित्य भवन।
- मिश्र, राजीव। (2005). आधुनिक हिंदी व्यंग्य की नैतिक परंपरा. वाराणसी : विश्वभारती प्रकाशन।
- मिश्र, अनीता। (2014). गांधीवादी मूल्यों की समकालीन प्रासंगिकता. नई दिल्ली : एटलस पब्लिशिंग।
- मंगलेश डबराल। (2006). व्यंग्य, समाज और प्रतिरोध की भाषा. दिल्ली : संवाद प्रकाशन।
- विश्वनाथ त्रिपाठी। (2011). व्यंग्य और लोक-नैतिकता. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
- शर्मा, रामनरेश। (2008). गांधी और आज का भारत. इलाहाबाद : भारतीय विद्या भवन।
- सिंह, विजय बहादुर। (2003). व्यंग्य साहित्य की नई दिशाएँ. भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
- तिवारी, सत्येन्द्र। (2018). हरिशंकर परसाई : समाज, व्यंग्य और नैतिकता. लखनऊ : हिंदी बुक डिपो।
- त्रिपाठी, दिनेश। (2011). लोकतंत्र में व्यंग्य की भूमिका. वाराणसी : साहित्य निकेतन।
- कुमार, अजय। (2020). परसाई की भाषा और लोक चेतना. जयपुर : संस्कृति प्रकाशन।
- राधाकृष्णन, एस.। (1988). भारतीय नैतिक चिंतन और गांधी का दर्शन. चेन्नई : विश्वभारती।
- सुशील कुमार। (2019). व्यंग्य और भारतीय जनतंत्र. नई दिल्ली : हिंदी साहित्य परिषद।
- वर्मा, नरेश। (2016). आधुनिक हिंदी व्यंग्य और सामाजिक यथार्थ. भोपाल : साहित्य लोक।
- जोशी, शंकरलाल। (2017). परसाई और समकालीन व्यंग्य का मनोवैज्ञानिक आयाम. जयपुर : प्रगति प्रकाशन।
- श्रीवास्तव, प्रमोद। (2012). हिंदी व्यंग्य साहित्य का समाजशास्त्र. दिल्ली: साहित्य भवन।
- तिवारी, प्रभाकर। (2019). गांधी, कबीर और आधुनिकता की पुनर्व्याख्या. वाराणसी : गंगानाथ पब्लिशिंग।
- पांडेय, गोपाल। (2020). परसाई का व्यंग्य और भारतीय नागरिकता का संकट. इलाहाबाद : अक्षर प्रकाशन।
- शर्मा, सुनीता। (2022). हरिशंकर परसाई और उत्तर-आधुनिक नैतिक विमर्श. नई दिल्ली : हिंदी अकादमी।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

रामराज्य, गांधी और आधुनिक यूटोपियन समाज : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. विजेता लक्ष्मी

राजीव गांधी नेशनल एविएशन यूनिवर्सिटी
आवासीय परिसर, ब्लॉक-ए
मकान नं.-204, फुरसतगंज, अमेठी
उत्तर प्रदेश, पिन-229302
7838134151
vijetahinduite@gmail.com

शोध-सार :

इस शोध आलेख में भारतीय राजनीतिक चिंतन में 'रामराज्य' की अवधारणा का विश्लेषण किया गया है, जो मूलतः वाल्मीकि रामायण और तुलसीदास के रामचरितमानस में वर्णित एक आदर्श शासन-व्यवस्था है। महात्मा गांधी ने इस प्राचीन धार्मिक रूपक को आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में पुनर्परिभाषित करते हुए इसे एक धर्मनिरपेक्ष, नैतिक और व्यावहारिक राजनीतिक आदर्श का स्वरूप दिया। आलेख यह प्रश्न उठाता है कि क्या गांधी का रामराज्य एक यूटोपिया था अथवा एक व्यावहारिक राजनीतिक कार्यक्रम और इसकी तुलना पश्चिमी यूटोपियन परंपरा, अर्थात् थॉमस मोर, प्लेटो, फूरिए और ओवेन, से करता है। अंत में, इसकी समकालीन प्रासंगिकता और सीमाओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द :

रामराज्य, यूटोपियन परंपरा, सत्य, अहिंसा, सामाजिक समरसता, ग्राम स्वराज्य, नैतिकता।

1. भूमिका :

भारतीय राजनीतिक चिंतन की दीर्घ परंपरा में 'रामराज्य' केवल एक धार्मिक प्रतीक नहीं, बल्कि एक राजनीतिक-नैतिक आदर्श है, जिसने सदियों से शासन, न्याय और सामाजिक व्यवस्था की कल्पना को गहराई से प्रभावित किया है। यह अवधारणा भारतीय जनमानस की सामूहिक स्मृति में इतनी गहरी रूप से अंतर्निहित है कि यह केवल धार्मिक आख्यान तक सीमित नहीं रही, अपितु राजनीतिक वैधता और शासकीय उत्तरदायित्व के मापदंड के रूप में भी प्रयुक्त होती रही है। मध्यकालीन भक्ति-काव्य से लेकर आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलन तक, रामराज्य की कल्पना ने शासन के औचित्य और सीमाओं को परिभाषित करने का कार्य किया।

महात्मा गांधी ने इस प्राचीन अवधारणा को आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में पुनर्परिभाषित करते हुए इसे एक धर्मनिरपेक्ष, नैतिक और व्यावहारिक राजनीतिक आदर्श का रूप दिया। यह कार्य अत्यंत जटिल था, क्योंकि एक ओर उन्हें धार्मिक प्रतीक की भावनात्मक शक्ति का उपयोग करना था, और दूसरी ओर उसे सांप्रदायिक संकीर्णता से मुक्त रखना था। यह आलेख रामराज्य की पारंपरिक अवधारणा, गांधी द्वारा की गई इसकी पुनर्व्याख्या, और आधुनिक

यूटोपियन (काल्पनिक आदर्श समाज संबंधी) चिंतन की परंपरा के साथ इसके संबंधों का विस्तृत विश्लेषण करता है। साथ ही यह केंद्रीय प्रश्न भी उठाया गया है कि क्या गांधी का रामराज्य वास्तव में एक यूटोपिया था या एक व्यावहारिक राजनीतिक कार्यक्रम अथवा इन दो श्रेणियों के बीच कोई तृतीय मार्ग।

अध्ययन की पद्धति मुख्यत: तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है। प्राथमिक स्रोतों में गांधी के स्वयं के लेखन, विशेषत: हिंद स्वराज तथा उनके पत्र-व्यवहार और भाषण, को आधार बनाया गया है, जबकि द्वितीयक स्रोतों में भीखू पारेख, डेनिस डाल्टन, राघवन अय्यर तथा जूडिथ ब्राउन जैसे विद्वानों के विश्लेषण सम्मिलित हैं। आलेख का दृष्टिकोण न तो रामराज्य को निर्विवाद आदर्श मानता है, न ही इसे पूर्णत: अव्यावहारिक स्वप्न के रूप में खारिज करता है; अपितु यह इसकी अंतर्निहित जटिलताओं और अंतर्विरोधों को सामने लाने का प्रयास करता है।

2. रामराज्य की पारंपरिक अवधारणा :

रामराज्य की अवधारणा का मूल स्रोत वाल्मीकि रामायण और तुलसीदास के रामचरितमानस में मिलता है। इसमें राम के शासनकाल को एक ऐसे आदर्श राज्य के रूप में चित्रित किया गया है जहाँ प्रजा सुखी, समृद्ध और निर्भय थी; न्याय निष्पक्ष था; और शासक प्रजा के कल्याण को अपना सर्वोच्च कर्तव्य मानता था। उत्तरकांड में वर्णित यह चित्रण एक प्रकार की आदर्शीकृत स्मृति है, जो वास्तविक ऐतिहासिक तथ्य से अधिक एक नैतिक प्रतिमान के निर्माण का प्रयास प्रतीत होती है।

इस अवधारणा में तीन प्रमुख तत्व स्पष्ट रूप से उभरते हैं :

- **धर्म पर आधारित शासन :** राजा का अधिकार ईश्वरीय सत्ता से नहीं बल्कि धर्म-पालन से प्राप्त होता है। राजा की वैधता उसके आचरण की नैतिकता पर निर्भर करती है, न कि वंशानुगत अधिकार पर।
- **प्रजा-कल्याण केंद्रित राज्य :** राजा प्रजा का सेवक है, स्वामी नहीं। यह स्वामी-सेवक संबंध का उलटाव शासन के पारंपरिक सत्तावादी मॉडल से एक महत्वपूर्ण प्रस्थान है।
- **नैतिक-सामाजिक समरसता :** समाज में वर्ण-व्यवस्था के बावजूद एक प्रकार की सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था की कल्पना की गई है, जिसमें प्रत्येक वर्ग अपने कर्तव्यों के पालन से संतुष्ट और सुरक्षित है।

यह अवधारणा मूलत: एक आदर्शीकृत राजतंत्र की कल्पना थी, जो वास्तविक ऐतिहासिक शासन-प्रणाली से अधिक एक नैतिक मानदंड के रूप में कार्य करती थी, जिससे शासकों के आचरण का मूल्यांकन किया जा सके। यहाँ एक महत्वपूर्ण आलोचनात्मक बिंदु यह है कि यह आदर्श अपने मूल रूप में वर्ण-व्यवस्था को चुनौती नहीं देता, अपितु उसे एक सामंजस्यपूर्ण और न्यायपूर्ण रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है, जो आधुनिक समतावादी दृष्टिकोण से एक गंभीर सीमा है, जिसकी चर्चा आगे आंबेडकर की आलोचना के संदर्भ में की जाएगी।

3. गांधी की रामराज्य की पुनर्व्याख्या :

गांधी ने रामराज्य शब्द का प्रयोग बार-बार किया, परंतु उन्होंने इसे सावधानीपूर्वक धार्मिक सांप्रदायिकता से मुक्त रखने का प्रयास किया। उनके लिए रामराज्य का अर्थ किसी विशेष धर्म के राजा का राज्य नहीं था, बल्कि यह एक नैतिक रूपक था। गांधी ने स्वयं स्पष्ट किया कि उनके रामराज्य में राम कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं अपितु 'ईश्वरीय राज्य' अथवा 'नैतिक सत्ता का राज्य' का प्रतीक है। उन्होंने इसे 'Sovereignty of the People based on pure moral authority' के रूप में परिभाषित किया।

यह पुनर्व्याख्या गांधी की व्यापक राजनीतिक रणनीति का अभिन्न अंग थी। उन्होंने यह भलीभाँति समझा था कि भारतीय जनमानस की धार्मिक चेतना अत्यंत गहरी है, और उसे पूर्णत: नकारकर आधुनिक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद की रचना संभव नहीं थी। इसके विपरीत, उन्होंने धार्मिक प्रतीकों को नैतिक-राजनीतिक भाषा में रूपांतरित करने का मार्ग चुना, एक ऐसी रणनीति जिसे कुछ विद्वानों ने 'religious idiom of politics' कहा है।

3.1 गांधी के रामराज्य के मुख्य आधार :

- **सत्य और अहिंसा :** राजनीतिक शक्ति का आधार बल नहीं, सत्य और अहिंसा होना चाहिए। गांधी

के लिए साधन और साध्य की पवित्रता अविभाज्य थी। अन्यायपूर्ण साधनों से प्राप्त न्यायपूर्ण लक्ष्य भी अंततः भ्रष्ट हो जाता है।

■ **सर्वोदय :** समाज के अंतिम व्यक्ति के उत्थान के बिना कोई भी व्यवस्था न्यायपूर्ण नहीं कही जा सकती। यह सिद्धांत जॉन रस्किन के to This Last से प्रेरित था, परंतु गांधी ने इसे भारतीय नैतिक परंपरा के साथ जोड़ दिया।

■ **ग्राम स्वराज्य :** सत्ता का विकेंद्रीकरण और गाँव को आत्मनिर्भर इकाई बनाना। गांधी का मानना था कि केंद्रीकृत राज्य-सत्ता स्वाभाविक रूप से हिंसा और शोषण की ओर प्रवृत्त होती है।

■ **ट्रस्टीशिप (न्यासिता) :** संपत्ति का स्वामित्व व्यक्तिगत न होकर सामाजिक न्याय की दृष्टि से एक नैतिक उत्तरदायित्व होना चाहिए। यह सिद्धांत पूंजी और श्रम के बीच के द्वंद्व को क्रांति के बिना, नैतिक रूपांतरण के माध्यम से सुलझाने का प्रयास था।

गांधी का रामराज्य इस प्रकार धार्मिक प्रतीक का राजनीतिक रूपांतरण था, एक ऐसा प्रयास जिससे भारतीय जनमानस की धार्मिक चेतना को राष्ट्रीय आंदोलन की नैतिक ऊर्जा में बदला जा सके। हिंद स्वराज (1909) में उन्होंने आधुनिक औद्योगिक सभ्यता की आलोचना करते हुए एक वैकल्पिक समाज-व्यवस्था की रूपरेखा प्रस्तुत की, जो रामराज्य के नैतिक ढाँचे से प्रेरित थी। हिंद स्वराज में आधुनिक सभ्यता की आलोचना केवल आर्थिक नहीं, अपितु सभ्यतामूलक थी। गांधी का तर्क था कि आधुनिक यंत्र-सभ्यता मनुष्य को उसकी आत्मिक शक्ति से विमुख कर देती है, और इसी विमुखता के विरुद्ध रामराज्य एक प्रत्युत्तर के रूप में खड़ा होता है।

4. आधुनिक यूटोपियन चिंतन के साथ तुलना :

पश्चिमी यूटोपियन परंपरा में थॉमस मोर का topia (1516), प्लेटो का Republic और बाद में चार्ल्स फूरिए तथा रॉबर्ट ओवेन के समाजवादी प्रयोग प्रमुख उदाहरण हैं। इन सभी में एक समान विशेषता है, अर्थात एक काल्पनिक, अक्सर अप्राप्य, आदर्श समाज की रचना, जो वर्तमान की आलोचना के रूप में कार्य करती है। मोर का यूटोपिया (topia) स्वयं इस विडंबना पर आधारित है कि शब्द 'यूटोपिया' का अर्थ ही 'कोई स्थान नहीं' है, अर्थात् आदर्श की कल्पना अपने मूल में अप्राप्यता को स्वीकार करती है।

गांधी का रामराज्य इस यूटोपियन परंपरा से कुछ विशेषताएँ साझा करता है, परंतु कुछ मूलभूत अंतर भी हैं, जिन्हें निम्न तालिका में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है :

विशेषता	**पश्चिमी यूटोपिया**	**गांधी का रामराज्य**
आधार	तर्कबुद्धि, सामाजिक अनुबंध	नैतिकता, धर्म, अंतरात्मा
प्राप्ति का साधन	क्रांति / संस्थागत पुनर्रचना	आत्म-शुद्धि, सत्याग्रह
केंद्र बिंदु	राज्य की संरचना	व्यक्ति का नैतिक रूपांतरण
स्थान-काल	अक्सर काल्पनिक द्वीप / भविष्य	अतीत के आदर्श का वर्तमान में पुनर्जागरण

यह अंतर महत्वपूर्ण है : जहाँ पश्चिमी यूटोपिया प्रायः संरचनात्मक है (संस्थाओं और नियमों के माध्यम से आदर्श समाज की रचना), गांधी का रामराज्य आंतरिक है। यह मानता है कि बाह्य संस्थाएँ तभी न्यायपूर्ण होंगी जब व्यक्तियों का नैतिक रूपांतरण हो। इस अर्थ में गांधी का दृष्टिकोण एक 'नैतिक यूटोपिया' अधिक है, 'संस्थागत यूटोपिया' कम। यह अंतर केवल सैद्धांतिक नहीं, अपितु कार्यनीतिक भी है : संस्थागत यूटोपिया प्रायः राज्य-सत्ता के अधिग्रहण और पुनर्गठन पर बल देते हैं, जबकि गांधी का मॉडल राज्य-सत्ता के क्रमिक क्षरण और व्यक्ति-समुदाय की नैतिक स्वायत्तता पर केंद्रित है।

इसके अतिरिक्त, फूरिए और ओवेन के समाजवादी यूटोपिया औद्योगिक उत्पादन के पुनर्गठन पर बल देते थे, जबकि गांधी की दृष्टि औद्योगीकरण के प्रति मूलतः संशयवादी थी। यह अंतर इस तथ्य को उजागर करता है कि गांधी का रामराज्य आधुनिकता-विरोधी नहीं था, बल्कि आधुनिकता की एक वैकल्पिक, स्वदेशी पुनर्कल्पना प्रस्तुत करता था, एक ऐसी आधुनिकता जिसका केंद्र तकनीकी प्रगति नहीं, अपितु नैतिक प्रगति थी।

5. क्या रामराज्य एक यूटोपिया है या व्यावहारिक कार्यक्रम ?

यह प्रश्न विद्वानों के बीच विवाद का विषय रहा है। भीखू पारेख जैसे विश्लेषकों का मत है कि गांधी का रामराज्य एक 'नियामक आदर्श' (regulative ideal) था, अर्थात यह कभी पूर्णत: प्राप्त नहीं हो सकता, परंतु यह दिशा-निर्देशक सिद्धांत के रूप में कार्य करता है, जिस तरह कांट का नैतिक आदर्श व्यावहारिक नैतिकता को दिशा देता है। यह व्याख्या रामराज्य को एक प्रकार की कांटीय 'regulative idea' के समकक्ष रखती है, एक ऐसा आदर्श जो यथार्थ में पूर्णत: साकार नहीं होता, परंतु निरंतर उसकी दिशा में प्रयास को प्रेरित करता रहता है।

डेनिस डाल्टन ने भी इसे एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखा है, अंतिम लक्ष्य के रूप में नहीं। यह दृष्टिकोण गांधी के स्वयं के कथनों से भी समर्थित होता है, जिन्होंने बार-बार यह स्पष्ट किया कि सत्य और अहिंसा की पूर्ण प्राप्ति मानवीय सीमाओं के कारण असंभव है, परंतु उनकी दिशा में निरंतर प्रयास ही सार्थक राजनीतिक जीवन की कसौटी है।

दूसरी ओर, गांधी ने स्वयं इसे पूर्णत: अव्यावहारिक स्वप्न नहीं माना। उनका मानना था कि व्यक्तिगत और सामुदायिक स्तर पर रामराज्य के तत्वों को आंशिक रूप से वर्तमान में भी जीवित किया जा सकता है, जैसा कि उन्होंने अपने आश्रमों (साबरमती, सेवाग्राम) में प्रयोग करके दिखाया। इन आश्रमों में सामूहिक श्रम, सादा जीवन, स्वावलंबन और अंतर-धार्मिक सहअस्तित्व के प्रयोग किए गए, जो रामराज्य के सिद्धांतों का व्यावहारिक परीक्षण-स्थल थे। इस दृष्टि से रामराज्य एक 'जीवित यूटोपिया' है, एक ऐसा आदर्श जो प्रयोगों के माध्यम से क्रमिक रूप से साकार होता है, भले ही पूर्णता कभी प्राप्त न हो।

यहाँ एक सूक्ष्म परंतु महत्वपूर्ण अंतर्विरोध भी दृष्टिगोचर होता है : यदि रामराज्य एक नियामक आदर्श है जो कभी पूर्णत: प्राप्त नहीं हो सकता, तो उसका राजनीतिक कार्यक्रम के रूप में मूल्यांकन कैसे किया जाए ? आश्रम-प्रयोग, अपनी सीमित सफलता के बावजूद, राष्ट्रीय स्तर पर रामराज्य की स्थापना के दावे को प्रमाणित नहीं कर सकते, क्योंकि एक छोटे, स्वेच्छा से एकत्रित समुदाय की गतिशीलता राष्ट्र-राज्य की जटिल, बहुलवादी और संघर्षपूर्ण वास्तविकता से भिन्न होती है। यह अंतर्विरोध गांधी के रामराज्य की सबसे गंभीर सैद्धांतिक चुनौतियों में से एक है।

6. आधुनिक समाज में रामराज्य की प्रासंगिकता :

स्वातंर्योत्तर भारत में रामराज्य की अवधारणा का उपयोग विभिन्न राजनीतिक धाराओं द्वारा भिन्न-भिन्न रूपों में किया गया, जिससे इसकी मूल नैतिक-सार्वभौमिक भावना कई बार विकृत भी हुई। यह आवश्यक है कि रामराज्य की गांधीवादी व्याख्या, जो समावेशी, बहुधर्मीय और नैतिक थी, को सांप्रदायिक अर्थों से अलग रखा जाए। गांधी स्वयं इस बात पर अत्यंत स्पष्ट थे कि उनका रामराज्य हिंदू राज्य नहीं अपितु 'सबका कल्याण' (सर्वोदय) पर आधारित नैतिक राज्य था, जिसमें मुसलमान, ईसाई, पारसी सभी समान रूप से सम्मानित होंगे।

आधुनिक संदर्भ में, गांधी के रामराज्य से तीन समकालीन सरोकार जुड़ते हैं, जिनकी संक्षिप्त चर्चा यहाँ प्रस्तुत है :

6.1 विकेंद्रीकरण और स्थानीय स्वशासन :

पंचायती राज व्यवस्था का सैद्धांतिक आधार गांधी के ग्राम स्वराज्य में निहित है। 73वें संविधान संशोधन (1992) के माध्यम से पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया, जिसे कुछ विद्वान गांधीवादी विकेंद्रीकरण के आंशिक संस्थागत साकार रूप के रूप में देखते हैं। तथापि, यह भी ध्यान देने योग्य है कि वास्तविक क्रियान्वयन में पंचायतों को पर्याप्त वित्तीय और प्रशासनिक स्वायत्तता नहीं मिल पाई है, जिससे गांधी की मूल कल्पना और वर्तमान यथार्थ के बीच एक महत्वपूर्ण अंतराल बना हुआ है।

6.2 टिकाऊ विकास :

हिंद स्वराज में औद्योगीकरण की आलोचना आज पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में नए अर्थ ग्रहण करती है। गांधी की यह चेतावनी कि असीमित भौतिक उपभोग

और औद्योगिक विस्तार पारिस्थितिक संतुलन को नष्ट कर देंगे, समकालीन पर्यावरणीय आंदोलनों, जैसे चिपको आंदोलन और नर्मदा बचाओ आंदोलन, में पुन: गूँजती है। यह दृष्टि गांधी को आधुनिक पारिस्थितिक राजनीतिक चिंतन (ecological political thought) का एक अग्रदूत मानने का आधार प्रदान करती है।

6.3 आर्थिक असमानता और ट्रस्टीशिप :

ट्रस्टीशिप का सिद्धांत आज की बढ़ती आर्थिक असमानता की समस्या के समाधान हेतु एक नैतिक वैकल्पिक प्रारूप प्रस्तुत करता है, भले ही इसका व्यावहारिक क्रियान्वयन सीमित रहा हो। समकालीन कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणाओं में न्यासिता के कुछ तत्वों की झलक देखी जा सकती है, परंतु इसकी स्वैच्छिक, गैर-बाध्यकारी प्रकृति के कारण यह वर्तमान आर्थिक संरचनाओं में मूलभूत परिवर्तन लाने में अब तक अक्षम रही है।

7. आलोचनात्मक मूल्यांकन :

गांधी के रामराज्य की आलोचना भी महत्वपूर्ण है और इसे तीन प्रमुख आयामों में विभाजित किया जा सकता है।

7.1 व्यावहारिक-संस्थागत सीमा :

पहला, इसकी अत्यधिक नैतिकतावादी प्रकृति इसे संस्थागत राजनीति में लागू करने के लिए अव्यावहारिक बनाती है, क्योंकि आधुनिक राज्य की जटिल प्रशासनिक, आर्थिक और सुरक्षा संबंधी आवश्यकताओं के लिए केवल नैतिक रूपांतरण पर्याप्त नहीं है। एक आधुनिक राष्ट्र-राज्य को कर-संग्रहण, राष्ट्रीय सुरक्षा, अंतरराष्ट्रीय कूटनीति और जटिल आर्थिक नियोजन जैसे कार्य करने होते हैं, जिनके लिए संस्थागत क्षमता और नौकरशाही दक्षता आवश्यक है, और ये दोनों गांधी के विकेंद्रीकृत, ग्राम-केंद्रित मॉडल में अपेक्षित ध्यान नहीं पातीं।

7.2 जातिगत संरचना की आलोचना :

दूसरा, डॉ. भीमराव आंबेडकर जैसे चिंतकों ने यह आलोचना की कि ग्राम-केंद्रित रामराज्य पारंपरिक जातिगत संरचनाओं को चुनौती देने में अपर्याप्त सिद्ध हो सकता है, क्योंकि भारतीय गाँव सामाजिक रूप से अक्सर असमानता और जातिगत भेदभाव का स्थल रहे हैं। आंबेडकर का यह तर्क विशेष रूप से तीक्ष्ण था कि गाँव को आत्मनिर्भर और सामंजस्यपूर्ण इकाई के रूप में रोमांटिक करना, वस्तुत: उसकी आंतरिक जातिगत पदानुक्रमित संरचना और अस्पृश्यता की वास्तविकता को छिपा देता है। उनका मानना था कि वास्तविक सामाजिक न्याय के लिए ग्राम-व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण नहीं, अपितु उसका मूलभूत पुनर्गठन आवश्यक है, एक ऐसा कार्य जिसके लिए सशक्त, केंद्रीकृत संवैधानिक राज्य की आवश्यकता होती है, न कि विकेंद्रीकृत ग्राम-स्वराज्य की।

7.3 धार्मिक प्रतीकवाद का राजनीतिक जोखिम :

तीसरा, धार्मिक प्रतीकों का राजनीतिक प्रयोग, चाहे कितनी भी सद्भावना से किया गया हो, दीर्घकाल में सांप्रदायिक विकृतियों का मार्ग खोल सकता है, जैसा उत्तर-गांधीवादी भारतीय राजनीति में देखा गया। गांधी का आशय रामराज्य को एक समावेशी, सर्वधर्म-सम्मत प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करना था, परंतु प्रतीकों का अर्थ-निर्धारण अंतत: उनके प्रयोगकर्ताओं के नियंत्रण से परे होता है। एक बार जब कोई धार्मिक रूपक राजनीतिक चर्चा का केंद्र बन जाता है, तो उसकी पुनर्व्याख्या और विनियोग उन समूहों द्वारा भी संभव हो जाता है जिनका उद्देश्य गांधी की मूल समावेशी भावना से सर्वथा भिन्न, अथवा विरुद्ध भी हो सकता है। यह जोखिम इस बात की ओर इशारा करता है कि नैतिक-राजनीतिक प्रतीकवाद का प्रयोग, चाहे वह कितना भी सुविचारित हो, एक अंतर्निहित अस्थिरता वहन करता है।

इन तीन आलोचनाओं के अतिरिक्त, एक चौथा बिंदु भी ध्यान देने योग्य है - गांधी के रामराज्य में स्त्री की स्थिति का प्रश्न अपेक्षाकृत अल्प-विकसित रहा। यद्यपि गांधी ने स्त्रियों की राजनीतिक सहभागिता को प्रोत्साहित किया, परंतु उनका रामराज्य-संबंधी चिंतन मुख्यत: पुरुष-केंद्रित शासन-व्यवस्था और गृहस्थ-धर्म की पारंपरिक संरचना के भीतर ही कार्य करता प्रतीत होता है, जिसकी आगे विस्तृत नारीवादी पुनर्व्याख्या की आवश्यकता बनी हुई है।

इन आलोचनाओं के बावजूद, गांधी के रामराज्य की यह विशेषता बनी रहती है कि यह राजनीति को नैतिकता से पृथक नहीं करता। यह आधुनिक यथार्थवादी (realist) राजनीतिक चिंतन के विपरीत एक प्रतिमान प्रस्तुत करता है, जहाँ साधन और साध्य दोनों की पवित्रता आवश्यक मानी जाती है। यह तनाव, अर्थात् आदर्शवाद और यथार्थवाद के बीच का तनाव, गांधी के संपूर्ण राजनीतिक चिंतन में व्याप्त है, और यही कारण है कि रामराज्य की अवधारणा आज भी विद्वानों के मध्य सक्रिय बहस का विषय बनी हुई है।

8. निष्कर्ष :

रामराज्य, गांधी के हाथों में, एक प्राचीन धार्मिक रूपक से एक आधुनिक नैतिक-राजनीतिक आदर्श में रूपांतरित हुआ। यह न तो पूर्णत: परंपरागत राजतंत्रीय अवधारणा है, न ही पश्चिमी ढंग की संरचनात्मक यूटोपिया; बल्कि यह एक विशिष्ट भारतीय यूटोपियन चिंतन-धारा का प्रतिनिधित्व करता है जिसका केंद्र बिंदु व्यक्ति का नैतिक रूपांतरण और समुदाय की आत्मनिर्भरता है। आधुनिक यूटोपियन समाज-चिंतन के साथ इसकी तुलना यह दर्शाती है कि जहाँ अधिकांश यूटोपिया संस्थागत पुनर्रचना पर बल देते हैं, गांधी का रामराज्य नैतिक पुनर्रचना को प्राथमिकता देता है।

यद्यपि यह आदर्श पूर्णत: कभी साकार नहीं हुआ और इसकी सीमाएँ भी स्पष्ट हैं, विशेषत: जातिगत संरचना की चुनौती, संस्थागत व्यावहारिकता की कमी, धार्मिक प्रतीकवाद का अंतर्निहित जोखिम और स्त्री-प्रश्न की अल्प-विकसित स्थिति, फिर भी समकालीन भारत और विश्व के सामने उपस्थित पारिस्थितिक, आर्थिक और सामाजिक संकटों के समाधान हेतु यह एक सार्थक वैचारिक संसाधन बना हुआ है। गांधी का रामराज्य, अंतत:, एक ऐसा आमंत्रण है जो हमें राजनीति और नैतिकता के बीच की विभाजक रेखा पर पुनर्विचार करने हेतु प्रेरित करता है, एक ऐसा कार्य जो आज, बढ़ती राजनीतिक यथार्थवादिता और नैतिक संशयवाद के युग में, पहले से अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. गांधी, मोहनदास करमचंद. हिंद स्वराज. नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद
2. तुलसीदास. रामचरितमानस, उत्तरकांड
3. वाल्मीकि. रामायण, युद्धकांड एवं उत्तरकांड
4. Parekh, Bhikhu. Gandhi's Political Philosophy: A Critical E&amination. University of Notre Dame Press,1989
5. Dalton, Dennis. Mahatma Gandhi: Nonviolent Power in Action. Columbia University Press, 1993
6. Pantham, Thomas, and Kenneth L. Deutsch (eds.). Political Thought in Modern India. Sage Publications,1986
7. Fischer, Louis. The Life of Mahatma Gandhi. Harper & Brothers, 1950
8. Pyarelal. Mahatma Gandhi: The Last Phase. Navajivan Publishing House
9. More, Thomas. Utopia. 1516
10. Ambedkar, B. R. What Congress and Gandhi Have Done to the Untouchables. 1945
11. Iyer, Raghavan. The Moral and Political Thought of Mahatma Gandhi. O & ford University Press,1973
12. Brown, Judith M. Gandhi: Prisoner of Hope. Yale University Press,1989

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

भारतेंदु की गजलों में प्रेम और भक्ति का स्वरूप

डालेश शर्मा

शोधार्थी, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
केंद्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू
राया-सुचानी (बागला), सांबा,
जम्मू-कश्मीर-181143
8626860063
sharmadalesh587@gmail.com

डॉ. शशिकांत मिश्र

शोध-निर्देशक, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
केंद्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू
राया-सुचानी (बागला), सांबा,
जम्मू-कश्मीर-181143
9030963026
shashi.hnd@cujammu.ac.in

शोध-सार :

हिंदी वांग्मय में प्राचीनता एवं नवीनता के संगम भारतेंदु हरिश्चंद्र ने साहित्यानुरागियों को वैविध्यपूर्ण दृष्टि प्रदान की। उनका सबसे वृहद प्रयास हिंदी साहित्य में गद्य का प्रादुर्भाव और उसमें खड़ी बोली हिंदी की सरल शैली को प्रयोग में लाना रहा। उन्होंने अनेक नई विधाओं से हिंदी साहित्य की भाव-भूमि को अवगत करवाया। साथ ही उसमें नवीन चेतना का भी विकास किया, जिसमें देशप्रेम, समाज-सुधार, सांस्कृतिक चिंतन आदि विषय रखे। गद्य की भाँति भारतेंदु ने पद्य में भी अनेक नए प्रयोग किए। उनकी कविताओं में भाषाई स्तर पर तो ब्रज समृद्ध रही, परंतु कहीं-कहीं खड़ी बोली हिंदी और उर्दू भी प्रयुक्त हुई। 'फूलों का गुच्छा', 'दशरथ विलाप', नए जमाने की मुकरियाँ जैसी रचनाएँ मुख्यतः खड़ी बोली में और उनकी ग़ज़लें हिंदी-उर्दू युक्त जनभाषा में दिखाई पड़ती हैं। इसका कारण सामान्य मनुष्य तक साहित्य की पहुँच विकसित करना था। उन्होंने ग़ज़लों में एक तरफ सात्विक प्रेम तो दूसरी ओर शुद्ध भक्ति का समागम किया, जिसके द्वारा राष्ट्र-प्रेम, प्रकृति-सौंदर्य, श्रृंगारिकता, दर्शनिकता और ईश-वंदना जैसी भावनाओं का प्रकटीकरण हुआ। प्रस्तुत शोध-पत्र में इसका सविस्तार विवेचन किया जाएगा।

बीज शब्द :

भारतेंदु की ग़ज़ल, ईश्वरानुराग, समर्पण, अनुभूति, अनुग्रह, पुष्टिमार्ग, सूफी मत, श्रृंगारिकता, क्षणभंगुरता।

मूल आलेख :

मानव जीवन की सार्थकता आनंद में है और इसका मूल उत्स प्रेम है। इसी प्रेम के माध्यम से ही मनुष्य स्वयं को बनाता और बिगाड़ता है। प्रेम के बिना जीवन शुष्क और निरर्थक है। प्रत्येक प्राणी आजीवन प्रेम की खोज में तत्पर रहता है और उसकी प्राप्ति से ही आनंद का अनुभव करता है। यह आनंद और कुछ नहीं, बल्कि संसार के नियंता उस निराकार ब्रह्म से साक्षात्कार ही है, जिसे दार्शनिकों ने भक्ति की संज्ञा दी है। इस भक्ति के बारे में नारद मुनि का कथन है- 'सा त्वस्मिन परम प्रेमरूपा' (नारद भक्ति सूत्र-3)। अर्थात् सचमुच वह परम सत्ता प्रेमरूप ही है। उसकी प्राप्ति हम अपने अंदर प्रेम तत्व का विकास कर ही कर सकते हैं। इस संदर्भ में जो अपने भीतर इसका जितना विकास कर सका, समझना चाहिए, वह भगवद् सत्ता के उतना ही सन्निकट पहुँचा। जहाँ तक लौकिक प्रेम की बात है, इस प्रेम में मुख्यतः दो प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं-

सुखमय और दु:खमय। प्रेमी जब संयोग के क्षणों में रहता है और प्रिय मिलन से सुख प्राप्त करता है तो वह सुखमय अनुभूति है। इसके विपरीत प्रेमी और प्रियतम बिछड़ जाते हैं और प्रिय वियोग से उनमें विरह का भाव उत्पन्न होता है तो वह दु:खमय अनुभूति है। इन दोनों भावों में प्रेम जब अपनी पूर्णावस्था को प्राप्त करता है तो वह आनंद बन जाता है। अत: यही इसका वास्तविक स्वरूप है। *''आनंद के रूप में ही प्रेम का उदय होता है और उसका यह रूप भीतर-भीतर बराबर बना रहता है।''* [1] इसी सापेक्ष्य मनुष्य में उच्च कोटि का भाव भक्ति है, जिसको आत्मसात करने से विभिन्न प्रकार के विकार समाप्त हो जाते हैं। भक्ति मानव जीवन की सिद्धि है, जिससे आंतरिक शुद्धि और शांति प्रकट होती है। यह वो साधना है, जिसमें अहं का विलय एवं परमानंद की प्राप्ति होती है। इसमें दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य जैसे विभिन्न भाव उत्पन्न होते हैं। यह भख्त के रूप-ध्यान और आस्था पर निर्भर करते हैं। भक्ति से मनुष्य उदार और कृतज्ञ बनता है। फलत: प्रेम और भक्ति दोनों ही मानव के मध्य पनपने वाले श्रेष्ठ भाव हैं। इनका केंद्र एक ही है-हृदय। ये हृदय से उपजे हैं, इसी कारण दोनों में सामीप्य है। जिस प्रकार प्रेम उचित-अनुचित नहीं देखता, उसी की अनुगामिनी भक्ति है, जो एकनिष्ठ होकर आपने आराध्य के प्रति आस्था-भाव से युक्त होती है। उसमें किसी भी प्रकार का द्वंद्व न रहकर अद्वैत चिंतन प्रकट होता है। तात्पर्य यह है कि प्रेम के बिना भक्ति अपूर्ण है, कबीरदास जी ने भी *''प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज दंभ-विचार''*[2] कहकर इसी ओर संकेत किया है कि प्रेम-रहित भक्ति मात्र आडंबर है।

प्रेम और भक्ति को जोड़ने वाले प्रमुख तत्व हैं- उच्च अनुभूति, निस्वार्थ श्रद्धा और अनन्य समर्पण। ये तीनों ही तत्व इसमें समाहित रहते हैं। प्रेम और भक्ति के मिलन से साधना उच्च और भाव गहन होते हैं। उसमें किसी भी प्रकार का द्वेष नहीं रहता। चाहे मिलन की अवस्था हो या विरह की, जब प्रेम उदात्त होता है तो भक्ति उसे समृद्ध करती है। इन दोनों के संयोग से साधारण मनुष्य हो या साधु दोनों अपनी-अपनी अनुभूति में श्रेष्ठ हो जाते हैं। यदि कोई प्रकांड भक्त है, परंतु उसमें प्रेम का अंश मात्र नहीं तो उसकी भक्ति नीरस है।

इनको मिलाने वाला दूसरा तत्व है- निस्वार्थ श्रद्धा। आचार्य शुक्ल कहते हैं- *''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।''* [3] इसी प्रकार प्रेम और भक्ति को जोड़ने वाला सेतु श्रद्धा है। जिस व्यक्ति के लिए हमारे भीतर श्रद्धेय भाव उद्‌भुत होते हैं, उसके प्रति ये दोनों स्वत: ही आ जाते हैं। श्रद्धा अर्थात किसी व्यक्ति-विशेष के कर्मों या गुणों से सीखना एवं अनुसरण करना, जिसके लिए प्राणी-मात्र का स्वार्थ-रहित होना अनिवार्य है। *''भक्त वे ही कहला सकते हैं, जो अपने जीवन का बहुत अंश स्वार्थ (परिवार वा शारीरिक सुख आदि) से विभक्त करके किसी के आश्रय से किसी ओर लगा सकते हैं। इसी का नाम है आत्मनिवेदन।''*[4] प्रेम में भी स्वार्थ की इति करना आवश्यक है, जिससे उसका आनंद प्राप्त किया जा सके। अत: निस्वार्थ श्रद्धा ही प्रेम और भक्ति में साम्य तत्व है।

तीसरा प्रमुख तत्व है - अनन्य समर्पण, जिसके बिना प्रेम अर्थहीन है। इसमें अपेक्षाओं से अधिक अर्पित करने का भाव निहित है। प्रेमी अभिलाषा-रहित भाव से अपनी प्रेयसी को चाहता है और अपना जीवन निछावर कर देता है। *''प्रेमी तो प्रेम कर चुका, उसका कोई प्रभाव प्रिय पर पड़े या न पड़े। उसके प्रेम में कोई कसर नहीं।''* [5] समर्पण में आपको दूसरे से कुछ प्राप्त हो ये संभव नहीं। यही प्रेम मातृभूमि के प्रति वीर का, पुत्र के प्रति माता-पिता का और आराध्य के प्रति भक्त का है। जब हम अनन्य भक्ति-भाव से अपने ईश की सेवा, अर्चना एवं ध्यान करते हैं तो वहाँ समर्पण स्वाभाविक रूप में आ जाता है। इसमें इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं और मन एकाग्र हो जाता है। राम जी के प्रति हनुमान जी का समर्पण इसी प्रकार है, जिसमें न लोभ है न निराशा, केवल परोपकार-परायण सेवा है। अतएव प्रेम और भक्ति में अनन्य समर्पण सदैव विद्यमान है। कबीरदास जी कहते हैं - *''मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा/ तेरा तुझको सौंपताँ, क्या लागै है मेरा।''*[6]

आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रणेता तथा साहित्य-प्रेमियों के प्रेरणास्पद भारतेंदु हरिश्चंद्र का साहित्य भी इसी प्रकार का है, जिसमें प्रेम और भक्ति प्रधान है।

''भारतेंदु पर वैष्णव साहित्य और मध्यकालीन श्रृंगार रस की धारा, दोनों का प्रभाव था।''[7] वे वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्गी वैष्णव संप्रदाय में दीक्षित हुए थे, जिसके अंतर्गत राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन किया जाता है। इसमें माधुर्य भक्ति-भावना निहित रहती है। *''पुष्टि मार्ग में आध्यात्मिकता और लौकिकता का अपूर्व समन्वय किया गया है।''*[8] इसके मध्य प्रेम प्रधान है और भक्ति अनुग्रह स्वरूप। इसी को वल्लभ जी के शुद्धाद्वैत दर्शन नाम से अभिहित किया गया है, जिसमें प्रवाह-मर्यादा-पुष्टि-शुद्ध चार प्रकार के मार्ग बताए गए हैं। इन्हीं के द्वारा भक्त अपने आराध्य श्री कृष्ण की भक्ति करते हैं और उनके जीवन प्रसंगों से उल्लसित होते हैं। इन चार मार्गों में भी वल्लभाचार्य जी ने शुद्ध भक्ति मार्ग को प्रमुखता दी है। *''यह अत्यंत दुर्लभ और सर्वोत्कृष्ट है। यह जीव के द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती; भगवान के द्वारा प्रदान किए जाने पर ही मिलती है। श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य आसक्ति और निरुपधि प्रेम ही इसका रूप है।''*[9] परिणामत: शुद्ध भक्ति इस संप्रदाय का अंतिम लक्ष्य है। यहाँ जीव परमात्मा के अनुग्रह से उनके सामीप्य हो जाता है। भारतेंदु की भक्ति-भावना पर भी वल्लभ जी के शुद्धाद्वैत दर्शन का प्रभाव था, वे उनको श्री कृष्ण का ही अवतार मानते थे। इसीलिए वे कहते हैं- *''हम तौ श्री वल्लभ ही को जानैं/ सेवन वल्लभ-पद-पंकज को वल्लभ ही को ध्यानैं।''*[10]

भारतेंदु ने अपनी पद्य रचनाओं में मुख्यत: कृष्ण की लीलाओं, मनोरम स्वरूप एवं जीवन दर्शन का माधुर्य भाव से वर्णन किया है। वह प्रियतम रूप में उनकी उपासना करते हैं, जहाँ वे सांसारिक बंधन को त्यागकर एक अनुपम सेवक के रूप में प्रभु अनुभूति में लीन हो जाते हैं। यथा-

''अरी सखी गाज परौ ऐसी लोक-लाज पैं, मदनमोहन सँग जान न पाई।
हौं तो झरोखे ठाढ़ी देखत ही कछु, आए इतै मैं कन्हाई ।।
औचक दीठ परी मेरे तन, हँसि कछु बंसी बजाई ।
'हरीचंद' मोहिं बिबस छोड़ि कै, तन मन धन प्रान लीनौ सँग लाई।।''[11]

हरिश्चंद्र जी ने हरि-स्मरण करते हुए कहीं गोपियों की व्याकुलता को अभिव्यक्त किया, तो कहीं राधा की आँखों में बसी मोहनी मूरत को दृश्यमान। उन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम-विहार को श्रृंगार रस के साथ चित्रित किया है, जिसमें भक्त आनंद का अनुभव करता है। यथा-

''जागे माई सुंदर स्यामा-स्याम।
कछु अलसात जँभात परस्पर टूटि रही मोतिन की दाम।
अधखुले नैन प्रेम की चितवनि आधे आधे वचन ललाम।''[12]

''भारतेंदु ने वैष्णव भक्तों का वर्णन करते हुए दिखलाया है कि यह मत विभिन्न जातियों, वर्णों और मतों के लोगों को प्रेम के आधार पर मिलाने वाला था।''[13] उन्होंने अपनी कविताओं में अनेक जगह सामाजिक एवं धार्मिक असमानता का खंडन किया। इसी कारण वे हिंदी नवजागरण में अग्रिम खड़े दिखाई देते हैं। उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के साथ परिवर्तनपूर्ण संगठित समाज की परिकल्पना की, जिसके लिए साहित्य का आश्रय लिया। फलस्वरूप उन्होंने भक्ति-युक्त प्रेम के आधार पर समाज में एकीकरण लाने का प्रयास किया। वह जब देश को असहाय और लाचार अवस्था में पाते हैं तो अपने इष्ट देव श्री कृष्ण से गुहार लगाते हैं कि वे हमें संपूर्ण विपत्तियों से छुटकारा दिलाएँ। यहाँ ईश्वर के प्रति स्नेहपूर्ण विश्वास दृष्टिगत होता है, यथा-

''कहाँ करुणानिधि केशव सोए!
जागत नेक न यदपि बहु बिधि भारतवासी रोए।''[14]

भारतेंदु की कविताओं की तरह ग़ज़ल में भी भक्तिमय-प्रेम दिखाई पड़ता है। उनकी ग़ज़लों पर पारंपरिक शैली का प्रभाव था। वे उर्दू ग़ज़लकारों का अनुसरण और उन्हीं की भाँति प्रेम निरूपण करते हैं। *''भारतेंदु की ग़ज़लों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि एक ओर वह ग़ज़ल के परंपरागत ढर्रे पर स्वयं को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास कर रहे थे तो दूसरी ओर हिंदी में ग़ज़ल कहने की शैली का सूत्रपात करते हुए, उसमें भक्ति का रंग भरने की चेष्टा से, स्वयं को आधुनिक ग़ज़लकार के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे।''*[15] वे रीति और आधुनिक काल के सेतु हैं, इसीलिए उनके साहित्य में इसका प्रभाव परिलक्षित होता है। उन्होंने लगभग जितनी भी ग़ज़लें लिखीं, वे उनके नाटक एवं काव्य-संग्रह में इधर-उधर मिल जाती

हैं। उनके द्वारा 'गुलज़ारे-पुरबहार' नामक एक ग़ज़ल-संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसमें उनकी कुछ ग़ज़लें संकलित हैं। उन्होंने अपना उपनाम 'रसा' रखा, जिसका प्रयोग इस विधा में बखूबी देखा जा सकता है। भारतेंदु की ग़ज़लों में शृंगार रस की प्रमुखता है। इसमें संयोग और वियोग दोनों पक्षों को बड़ी ही मार्मिकता से व्यक्त किया गया है। संयोग वर्णन करते समय वे प्रेम का चंचल एवं नादान रूप प्रस्तुत करते हैं, जिसमें प्रेमी के निकट आने पर प्रेमिका के भीतर लज्जा, संकोच व हिचकिचाहट जैसे मनोभावों का उदय होता है, उदाहरणत:-

''न बोसा लेने देते हैं न लगते हैं गले मेरे।
अभी कम-उम्र हैं हर बात पर मुझ से झिझकते हैं।''[16]

संयोग शृंगार में प्रेमिका के नेत्र तथा हावभाव से आकर्षण की प्रधानता रहती है। इस रूप-सौंदर्य के कारण प्रेम की व्याकुलता आरोहित होती है और मिलन हेतु हृदय लालायित हो जाता है-

''ग़ज़ब है सुरम: देकर आज वह बाहर निकलते हैं।
अभी से कुछ दिले मुज़तर पर अपने तीर चलते हैं।''[17]

संयोग में अभिलाषाएँ शांत नहीं, अपितु अधिक होती हैं, जैसे वे लिखते हैं-

''वस्ल में भी नहीं है चैन मुझे।
ख्वाहिश दिल जियाद: बढ़ती है।''[18]

कवि ने अपनी परिणय भावना व्यक्त करने के लिए प्रकृति का आश्रय भी लिया है, जिसमें मिलन एवं विरह दोनों अवस्थाएँ व्याप्त हैं-

''अजब जोबन है गुल पर आमदे फ़स्ले बहारी है।
शिताब या साक़िया ग़ुलरू कि तेरी यादगारी है।''[19]

इस प्रकार भारतेंदु के अनेक शेरों में बुलबुल, गुल, सेहरा, सागर प्रभृति प्रतीकों का प्रयोग किया है। इसमें विरह की विराटता एवं प्रेम की निष्ठुरता से उत्पन्न दु:ख युग्मता से दृश्यमान होता है-

''दश्त्-पैमाई का गर क़स्द मुकर्रर होगा।
हर सरे खार पए आबिला नश्तर होगा।
मैकदे से तेरा दीवाना जो बाहर होगा।
एक में शीशा और इक हाथ में साग़र होगा।''[20]

''असीराने क़फ़स सहने चमन हो याद करते हैं।
भला बुलबुल प यों भी ज़ुल्म ये सैयाद करते हैं।''[21]

ऐसे ही एक ग़ज़ल में शायर 'होली' नामक रदीफ़ का प्रयोग करके अपने बिछोह की आग को उससे जोड़ता है। यहाँ त्यौहार एक ओर उल्लास प्रतीक है, तो दूसरी ओर पुन: स्मृतियों के लौटने की निराशा-

''बख़्त ने फिर मुझे इस साल दिखाई होली।
सोजे फ़ुरक़त ज़ेबस मुझको न भाई होली।
शोलए इश्क़ भड़कता है तो कहता हूं 'रसा'।
दिल जलाने के लिए आह यह आई होली।''[22]

भारतेंदु का विरह उर्दू कवियों सा ही गहन तथा वास्तविक है, जिसमें आडंबर नहीं है। उसमें दिखावे से अधिक पीड़ा की अनुभूति है-

''दिल जलाया सूरते परवाना जब से इश्क़ में।
फ़र्ज तब से शमअ पर आँसू बहाना हो गया।''[23]

कवि द्वारा प्रकट ये वेदना तीव्र, स्वाभाविक एवं सच्ची है। जिस व्यथा का अनुभव प्रेमी करता है, उसमें अश्रु का बहना सहज है। वह एक जगह लिखते हैं कि चाहे प्रेम में व्याकुल होना कितना ही कष्टदायक हो, पर सच्चा प्रेमी पराजय में भी अजेय रहता है। वह अपनी दीवानगी के अवलंबन से पत्थर को भी द्रवित कर सकता है-

''हिला देंगे अभी ऐ संगे दिल तेरे कलेजे को।
हमारी आह आतिश-बार से पत्थर पिघलते हैं।''[24]

भारतेंदु की ग़ज़ल में अभिव्यक्त प्रेम का यह चरम रूप केवल शृंगारिकता से नहीं, अपितु ईश्वरीय प्रेम के कारण दिखाई पड़ता है। एक शेर दृश्यमान है, जिसमें प्रेमी ईश्वर से प्रेम के प्रारंभ की शुभकामना और मिलने से पूर्व की घबराहट हेतु विनम्र अनुनय करता है-

''इलाही ख़ैर कीजो कुछ अभी से दिल धड़कता है।
सुना है मंज़िले औवल की पहली रात भारी है।''[25]

''भारतेंदु की ग़ज़ल में ईश्वर के जिस स्वरूप का चित्रण मिलता है वह सूफी मत से प्रभावित दिखाई देता है।''[26] इस मत में परमात्मा सर्वव्यापी है एवं दृश्यमान जगत उसके अंतर्निहित। यहाँ जीव ईश्वर के अद्वितीय स्वरूप से ऐक्य होने के लिए लौकिक से अलौकिक की यात्रा करता है। इसके लिए गुरु, मार्गदर्शक और प्रेमिका

का आलंब लेकर वह उस परम तत्व की प्राप्ति में प्रयत्नशील रहता है। सूफी मत में प्रेम साक्षात ईश्वर का ही स्वरूप है। *''यद्यपि सूफी साधकों ने उपासना के लिए निराकार ब्रह्म को ही मान्यता दी है, किंतु उसकी उपासना प्रेम प्रधान होने के कारण उन्हें परम-ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए साकार का आश्रय लेना पड़ा है।''*[27] अत: सूफी मत में ईश्वरानुराग से ओत-प्रोत एकत्व का भाव उद्भव होता है। एक ग़ज़ल प्रस्तुत है, जिसमें कवि भक्ति के माध्यम से दृढ़ विश्वास का जागरण करता है। वह परमात्मा से एकात्म हो जाने के पश्चात सभी कष्टों को तुच्छ समझता है। इसका मुख्य कारण, उसके अंदर से माया का आवरण समाप्त हो जाना और उस अद्वैत-रूपी ईश्वर का साक्षात्कार अनुभूत होना है। यहाँ सूफी दर्शन सी भक्ति-भावना दृष्टिगत होती है-

''रहै न एक भी बेदादगर सितम बाकी।
रुके न हाथ अभी तक है दम में दम बाकी।
उठा दुई का जो परदा हमारी आँखों से।
तो काबे में भी रहा बस वही सनम बाकी।''[28]

वल्लभ के शुद्धाद्वैत में भी माया को हटाकर 'अद्वैत' अर्थात् शुद्ध रूप की बात की गई है। यहाँ आराध्य श्रीकृष्ण को माना गया है, जो सत्-चित्-आनंद के सादृश्य हैं। शुद्धाद्वैत में प्रकृति को मिथ्या नहीं कहा गया, क्योंकि इस संसार की प्रत्येक वस्तु परमात्मा का ही अंश है। इसी कारण सत् यानी 'आत्मा' तथा चित् 'प्रकृति' है तथा दोनों में अद्वैत भगवान के अनुग्रह द्वारा प्राप्त होता है, जिसे आनंद के नाम से अभिहित किया गया है। *''पुष्टिमार्ग' को साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण के शरीर में उद्भूत माना जाता है। इसीलिए इसके अनुयायी आत्म-समर्पण भाव से रसात्मक प्रेम द्वारा भगवान की आनंद-लीला में तल्लीन होने के इच्छुक होते है। यह एकमात्र भगवान की कृपा पर निर्भर है।''*[29] भारतेंदु ने अपनी एक ग़ज़ल में इस चिंतन को बखूबी प्रकट किया है। वह कहते हैं कि कृष्ण सर्वव्यापी हैं एवं उनकी दीप्ति हर जगह आभामान है। परंतु मनुष्य अपनी सीमित बुद्धि के कारण परमात्मा की उस अनंत शक्ति से अनभिज्ञ है, इसीलिए वेदों में 'नेति नेति' का संदेश दिया गया है, जिसके द्वारा बताया गया है कि ब्रह्म इंद्रीयातीत है तथा 'यह नहीं, यह नहीं' के निराकरण से अज्ञान तुल्य अंधकार की इति होती है-

''जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है।
उसी का सब है जलवा जो जहाँ में आशकारा है।
भला मख़लूक़ ख़ालिक़ की सिफ़त समझे कहाँ कुदरत।
इसी से नेति नेति ऐ यार वेदों ने पुकारा है।''[30]

वैष्णव की कृष्ण भक्ति में समर्पण की विशेषता है, जिसमें भक्त अपनी विकृति व सुकृति प्रभु को अर्पित कर देता है। उपर्युक्त ग़ज़ल के अंतिम शेर में शायर 'रसा' भी कहते हैं कि मुझमें सद्गुण या अवगुण जो कुछ भी हो, सब तुम्हारा है, क्योंकि मैं स्वयं तुम्हारा हूँ। यहाँ उनका समर्पण स्वाभाविकत: देखा जा सकता है, जिसके अंतर्गत भक्त मात्र आराध्य के श्री चरणों में स्थान पाना चाहता है। वे अपना सर्वस्व उस ब्रह्म को निछावर कर, उसमें लीन हो गया है-

''गुनह बख्शो रसाई दो 'रसा' को अपने कदमों तक।
बुरा है या भला है जैसा है प्यारे तुम्हारा है।''[31]

यदि हरिश्चंद्र जी की ग़ज़लों का सटीकता से विवेचन किया जाए, तो यह ज्ञात होता है कि उनमें प्रत्यक्षत: सूफी मत का प्रभाव है, लेकिन शुद्धाद्वैत दर्शन परोक्ष रूप में अनायास ही आ जाता है, जिसका मुख्य कारण उनका माधुर्य भक्ति-भाव से परिपूर्ण होना माना जा सकता है। *''यद्यपि सूफीयों का परम लक्ष्य प्रिय मिलन है, किंतु वे 'विरह' को प्रिय मिलन का एक आवश्यक सोपान मानते हैं।''*[32] शायर 'रसा' की ग़ज़लें भी इसी मत के सादृश्य चलती हैं, वे कहते हैं कि हमने निज व्यथा को इसलिए संभाल रखा है, ताकि इस संसार से वेदना समाप्त हो जाए। ये विरह निजी होकर भी समष्टिमय है, जिसे वे समाज-सापेक्ष मानकर यथोचित निवारण करने का प्रयास करते हैं। यहाँ शायर परमात्मा के मिलन से पूर्व उस 'आह' की भी इति कर देना चाहता है, जिससे कोई विकार इस सृष्टि में न रह जाए-

''रसा' ये रंज उठाया फ़िराक़ में तेरे।
रहे जहाँ में न आख़िर को आह हम बाकी।''[33]

इसी प्रकार भारतेंदु की भक्तिपरक ग़ज़लों में जीवन की सत्यता, क्षण-भंगुरता एवं धार्मिक अखंडता विद्यमान

है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि धन-वैभव सब क्षणिक हैं, मृत्यु के बाद कुछ भी साथ नहीं जाता। मनुष्य जिस आडंबर में लिप्त है, उसकी सत्यता मरणासन्न के समय ज्ञात होती है कि सब कुछ नश्वर है। यह देह, इसका मोह और इसकी लालसा सब धूल में समाहित हो जाएगी। यथा-

''दौलते दुनिया न काम आएगी कुछ भी बाद मर्ग।
है ज़मीं में ख़ाक क़ारूँ का ख़जाना हो गया।''[34]

ऐसा ही भाव उनकी एक अन्य ग़ज़ल में देखा जा सकता है, जहाँ वह सांसारिक मोह से भिन्न ईश्वरीयनुराग को महत्व देते हैं। उनका मानना है कि हमें सौंदर्य के दर्प या गोरखधंधों इत्यादि से मुक्त होकर ईश वंदना करनी चाहिए, क्योंकि यह काया क्षण-भंगुर है। उनके अनुसार सुधिजन का भी यही मत है, जो परमात्मा का है उसके लिए सुख व दु:ख दोनों अवस्थाएँ समान हैं। अतएव हमें प्रत्येक अवस्था में स्थितिप्रज्ञ हो भगवत्-लीला का आनंद उठाना चाहिए-

ग़ाफ़िल इतना हुस्न प गर्ग ध्यान किधन है तौबा कर।
आख़िर एक दिन सूरत यह सब मिट्टी में मिल जाएगी।
आरिफ़ जो हैं उनके हैं बस रंज व राहत एक 'रसा'।
जैसे वह गुज़री है यह भी किसी तरह निभ जाएगी।''[35]

इसी एकता एवं स्थिरता के आधार पर कवि धार्मिक अखंडता को भी दृष्टिगोचर करते हैं, जिसमें प्रेम के माध्यम से भेदभाव मिटाने का प्रयास किया गया है। यह इतना सामर्थ्यवान है कि इस अन्यायपूर्ण समाज में प्रत्येक मनुष्य को आदर्श शील 'राम' में परिवर्तित कर सकता है, यथा-

''इश्के बुताँ में जब दिल उलझा दीन कहाँ इसलाम कहाँ।
वाअज़ काली ज़ुल्फ़ की उल्फ़त सब को राम बनाएगी।'' [36]

इस तरह भारतेंदु की ग़ज़लों में प्रेम और भक्ति का अद्वितीय संगम है। उसमें इश्के-मजाज़ी से इश्के-हक़ीक़ी तक की यात्रा विद्यमान है, जो सूफी दर्शन से प्रभावित है। यदि हम ग़ज़ल के मूल स्वरूप की बात करें तो उसकी निर्मिति का आधार सांसारिक प्रेम के द्वारा आध्यात्मिक मार्ग की प्राप्ति करना रहा है। सूफियों ने जिस निराकार ईश्वर की प्रणति करनी चाही, उसके लिए चराचर जगत में व्याप्त वस्तुओं एवं साकार प्रेम को साधन बनाया। उनका उद्देश्य उस परम-तत्व का साक्षात्कार करना था, परंतु माया रूपी पर्दा इस मार्ग में बाधक बनता है; जिस हेतु साधक प्रेमिका या गुरु का सहारा लेता है। इससे अज्ञानता का नाश और ज्ञान का प्रकाश भीतर अनुभूत होता है। ग़ज़ल में यह सूफी मत अरबी-फ़ारसी साहित्य से होते हुए उर्दू, हिंदी तथा अन्य साहित्य तक पहुँचा। परिणामत: भारतेंदु ने भी जब प्रयोगधर्मिता की दृष्टि से ग़ज़ल लिखनी चाही, तब उनमें यह विचार स्वत: ही आ गया। वैसे उनकी प्रेममयी भक्ति का मुख्य कारण वल्लभ के वैष्णव संप्रदाय से संबंधित होना था। जिस प्रकार सूफी साधना में प्रेम को अवलंब माना गया है, उसी तरह पुष्टि भक्ति में भी इसकी प्रधानता है। दोनों ही जगह प्रेम वह आधार है, जिसके माध्यम से भक्त अपने ईश की अनुभूति कर सकता है। *''भगवान के प्रेममय रूप का रसास्वादन वही साधक कर सकता है, जो सदैव स्नेह सिंचित मन से उनका स्मरण करता रहे और अपना हृदय उनके रूप में लीन कर दे, तत्पश्चात ही वह नेत्रों से इष्टदेव का दर्शन करके परम आनंदमय स्थिति की प्राप्ति कर सकता है।''*[37] सूफियों और पुष्टिमार्गी भक्तों, दोनों के यहाँ इस प्रकार की आध्यात्मिक-भावना देखी जा सकती है। *''सूफियों के समान कुछ वैष्णव भक्त कवि भी अलौकिक प्रेम की प्राप्ति के लिए लौकिक प्रेम की आवश्यकता स्वीकार करते हैं।''*[38] इसमें शुद्धाद्वैत वैष्णव प्रमुख हैं, जिन्होंने कृष्ण के व्यक्त स्वरूप के द्वारा अव्यक्त को जानने का कार्य किया। उनकी रासलीला लौकिक पक्ष है, परंतु उससे प्राप्त आनंद से वे अलौकिक बन जाती हैं। *''वास्तव में यह जगत सुख के सौंदर्य की आसक्ति या प्रेम है, जो संचारी के रूप में आशा या अभिलाषा का उन्मेष करके, इस सुख-सौंदर्य को किसी अज्ञात या अव्यक्त क्षेत्र में ले जाकर पूर्ण करने की ओर प्रवृत्त करता है।''*[39] ब्रह्म प्रारंभ से ही पूर्ण हैं, अपूर्णता हमारी दृष्टि में है, जिस पर अज्ञानता का आवरण लगा हुआ है। यदि हम आसक्ति भाव से प्रभु का वंदन करेंगे, तब उस गुणातीत ब्रह्म-अनुग्रह के भागीदार बन पाएँगे। इसे ही ईश्वरानुराग

कहते हैं, जो केवल प्रभु की कृपा द्वारा संभव है। सूफी और पुष्टि मार्ग में इसी प्रकार का समन्वित मत देखा जा सकता है। यदि हम भारतेंदु की ग़ज़ल की बात करें तो उसमें भी इनका द्वय है। वह भक्ति रस से विभोर होकर उस परमेश्वर का नाद करते हैं। इसमें उनकी भाव-प्रवणता इतनी गहन दिखती है कि वे अपना सब कुछ निसार कर, तल्लीन हो जाते हैं। एक ग़ज़ल, जिसमें कवि परम-तत्व से जुड़ने के बाद काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसे विकारों से मुक्त हो जाता है। वह कहते हैं कि अब उन्हें किसी भी चीज का किंचित मात्र भी असर नहीं होता, वे सभी प्रकार के दिखावे एवं भेद-भाव से स्वतंत्र हैं। इसका कारण है, परब्रह्म से आसक्ति; क्योंकि वह स्वयं बंधन-रहित है। अतः अब उस अनन्य शक्ति को ग्रहण करने के पश्चात कवि निर्विकार है। उसमें स्वर्ग-नरक गमन का विचार भर भी नहीं, चूँकि उसने अपने सब पाप उन श्री चरणों में समर्पित कर दिए हैं-

''फसादे दुनिया मिटा चुके हैं हसूले हस्ती उठा चुके हैं।
खुदाई अपने में पा चुके हैं मुझे गले वह लगा चुके हैं।
नहीं नज़ाकत से हम में ताकत उठाएँ जो नाज़े हूरे जन्नत।
कि ना शमशीर पुर नज़ाकत हम अपने सर पर उठा चुके हैं।
नजात हो या सज़ा हो मेरी मिले जहन्नुम कि पाऊँ जन्नत।
हम अब तो उनके कदम प अपना गुनह भरा सिर झुका चुके हैं।''[40]

निष्कर्ष :

भारतेंदु भक्ति और प्रेम के समन्वित कवि हैं, जहाँ उन्होंने एक ओर ईश आराधना की, तो दूसरी तरफ प्रेम के शुद्ध रूप की व्याख्या। जिस आधार पर वे अपनी कविताओं में समरस तथा जागृत समाज की परिकल्पना कर सके। इसी भाँति उनकी ग़ज़लें भी भक्तिमय प्रेम का वर्णन करती हैं। उसमें पीड़ा, मिलन, मानवता, प्रकृति, देश-प्रेम, जीवन की क्षणभंगुरता आदि भावनाएँ अभिव्यक्त होती हैं। ये ग़ज़लें हिंदी साहित्य की निधि और आगामी ग़ज़लकारों के लिए प्रेरणादायी रही हैं, जिसमें रंग तो अवश्य उर्दू-फ़ारसी का है, परंतु भाव आधुनिक एवं भारतीय हैं। ❑

1. संपादक : सिंह, नामवर, रामचन्द्र शुक्ल रचनावली-खंड : 3, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, पहला संस्करण : 2016, पृष्ठ- 119
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, पच्चीसवाँ संस्करण : 2018, पृष्ठ-143
3. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, चिंतामणि, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, प्रयागराज-211 001, संस्करण : 2022, पृष्ठ-18
4. वही, पृष्ठ-19
5. वही, पृष्ठ-54
6. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, पच्चीसवाँ संस्करण : 2018, पृष्ठ-130
7. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, प्रकाशक = राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, ग्यारहवाँ संस्करण : 2017, पृष्ठ-137
8. सिंह, रसाल, हिन्दी साहित्य के इतिहास पर कुछ नोट्स, प्रकाशक : अक्षर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, एल-९ए, गली नं। 42, सादतपुर एक्सटेंशन, दिल्ली-110094, संस्करण : 2019, पृष्ठ-73
9. वर्मा, डॉ. रामकुमार, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001, संस्करण : 2014, पृष्ठ-203
10. संपादक : दास, ब्रजरत्न, भारतेन्दु ग्रन्थावली-दूसरा खण्ड, प्रकाशक : नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण : सं.1991, पृष्ठ-55
11. वही, पृष्ठ-47
12. वही, पृष्ठ- 52
13. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ, प्रकाशक = राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, ग्यारहवाँ संस्करण : 2017, पृष्ठ-140
14. दास, श्री ब्रजरत्न, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रकाशक : हिन्दुस्तान एकेडेमी, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण : 1962, पृष्ठ-271
15. बानो, डॉ. साएमा, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, प्रकाशक : कला प्रकाशन : बी. 33/33 ए-1, न्यू साकेत कालोनी, बी.एच.यू., वाराणसी-5, प्रथम संस्करण : 2013, पृष्ठ-65

16. संपादक : दास, ब्रजरत्न, भारतेन्दु ग्रन्थावली–दूसरा खण्ड, प्रकाशक : नागरी–प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण : सं.1991, पृष्ठ–847
17. वही
18. वही, पृष्ठ– 859
19. वही, पृष्ठ– 848
20. वही, पृष्ठ– 856
21. वही, पृष्ठ– 852
22. वही, पृष्ठ– 857
23. वही, पृष्ठ– 850
24. वही, पृष्ठ– 848
25. वही
26. बिंदलेश, वंदना, भारतेन्दु की गजलों का आलोचनात्मक अध्ययन, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, 4697/3, 21–ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002, पृष्ठ–83
27. तिवारी, डॉ. मुक्तेश्वर, मध्ययुगीन सूफी और संत साहित्य (एक तुलनात्मक अध्ययन), प्रकाशक : सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, 69, नया बैरहना, इलाहाबाद–211003, संस्करण : 1980, पृष्ठ–121
28. संपादक : दास, ब्रजरत्न, भारतेन्दु ग्रन्थावली– दूसरा खण्ड, प्रकाशक : नागरी–प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण : सं.1991, पृष्ठ–854
29. तिवारी, डॉ. मुक्तेश्वर, मध्ययुगीन सूफी और संत साहित्य (एक तुलनात्मक अध्ययन), प्रकाशक : सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, 69, नया बैरहना, इलाहाबाद–211003, संस्करण : 1980, पृष्ठ–29
30. संपादक : दास, ब्रजरत्न, भारतेन्दु ग्रन्थावली–दूसरा खण्ड, प्रकाशक : नागरी–प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण : सं.1991, पृष्ठ–851
31. वही
32. तिवारी, डॉ. मुक्तेश्वर, मध्ययुगीन सूफी और संत साहित्य (एक तुलनात्मक अध्ययन), प्रकाशक : सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, 69, नया बैरहना, इलाहाबाद–211003, संस्करण : 1980, पृष्ठ–69
33. संपादक : दास, ब्रजरत्न, भारतेन्दु ग्रन्थावली– दूसरा खण्ड, प्रकाशक : नागरी–प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण : सं.1991, पृष्ठ–854
34. वही, पृष्ठ–850
35. वही, पृष्ठ–855
36. वही
37. त्रिवेदी, सुशीला देवी, सूफी एवं कृष्ण भक्त–कवियों की प्रेम–पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन (अप्रकाशित शोध–प्रबंध), अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, वर्ष : 1968, पृष्ठ–164
38. वही, पृष्ठ– 254
39. संपादक : सिंह, नामवर, रामचन्द्र शुक्ल रचनावली– खंड : 3, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002, पहला संस्करण : 2016, पृष्ठ–301
40. संपादक : दास, ब्रजरत्न, भारतेन्दु ग्रन्थावली–दूसरा खण्ड, प्रकाशक : नागरी–प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण : सं.1991, पृष्ठ–856

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945
Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

गोपालदास नीरज : कविता, गीत और संवेदना के सम्राट

अनुराग सिंह

शोध-सार :

आलेख हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध कवि एवं गीतकार गोपालदास नीरज का काव्य-संसार, संवेदनात्मक दृष्टि तथा साहित्यिक योगदान का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है। गोपालदास नीरज ने साहित्यिक कविता और जनसामान्य की भावनाओं के बीच सेतु का कार्य किया, उनकी कविताओं और गीतों में प्रेम, करुणा, सामाजिक चेतना, मानवीय संवेदना तथा जीवन-दर्शन का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। लेख के माध्यम से नीरज के जीवन-संघर्ष, शिक्षा तथा साहित्यिक यात्रा का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि उन्होंने सरल, मधुर और जनभाषा में रचनाएँ लिखकर कविता को जनप्रिय बनाया। उनकी रचनाओं में आशावाद, प्रेम और मानवीय करुणा का स्वर प्रमुख है। 'कुछ सपनों के मर जाने से जीवन नहीं मरा करता है' जैसी पंक्तियाँ जीवन-संघर्ष में आशा और प्रेरणा का संदेश देती हैं।

आलेख में नीरज की सामाजिक चेतना पर विशेष प्रकाश डाला गया है। उन्होंने भ्रष्टाचार, आर्थिक विषमता, भुखमरी, शोषण, सांप्रदायिकता और जातिगत भेदभाव के विरुद्ध अपनी कविता के माध्यम से तीखा विरोध व्यक्त किया। उनके काव्य में मानवतावाद और प्रेम को सर्वोच्च मूल्य माना गया है। वे मनुष्य को ही साहित्य का केंद्र मानते थे। लेख में नीरज के 'मृत्युवाद' की भी चर्चा की गई है, जिसमें मृत्यु को दार्शनिक दृष्टि से समझने का प्रयास मिलता है। बाद में उनकी यह विचारधारा मानवतावाद की ओर विकसित होती दिखाई देती है। नीरज के फिल्मी गीतों की लोकप्रियता का भी उल्लेख किया गया है। उन्होंने 'तेरे मेरे सपने', 'मेरा नाम जोकर', 'प्रेम पुजारी', 'शर्मीली' आदि फिल्मों के लिए अनेक अमर गीत लिखे, जिनमें काव्यात्मकता और भावनात्मक गहराई दोनों विद्यमान हैं।

बीज शब्द :

हिंदी कविता, गीतकार, संवेदना, मानवतावाद, प्रेम, सामाजिक चेतना, करुणा, जीवन-दर्शन, प्रगतिशीलता, जनकवि, फिल्मी गीत, सामाजिक विषमता, आशावाद, मानवीय मूल्य, मृत्युवाद।

शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007
9654003558
asingh1@hindi.du.ac.in

मूल आलेख :

हिंदी काव्य-जगत में अनेक कवि हुए हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी से जनमानस के हृदय में गहरी छाप छोड़ी, किंतु गोपालदास नीरज का स्थान उन कवियों में अद्वितीय है, जिन्होंने साहित्यिक कविता और जनसामान्य की संवेदनाओं के

बीच सेतु का कार्य किया। उन्होंने न केवल साहित्य को अपनी मधुर एवं सहज भाषा में समृद्ध किया, बल्कि फिल्मी गीतों के माध्यम से आम जनता के हृदय में अमिट स्थान बनाया। गोपालदास नीरज की कविता केवल शब्दों की सजावट नहीं, बल्कि हृदय की अनुभूति का संगीत है। उनके काव्य में प्रेम, वेदना, जीवन-दर्शन, मानवीय करुणा और सामाजिक चेतना का अद्भुत समन्वय मिलता है। उनकी लेखनी में एक ऐसा भावलोक है, जो पाठक को भीतर तक झकझोर देता है, साथ ही जीवन से प्रेम करना भी सिखाता है। उन्होंने कविता को मंच और आम जन दोनों से जोड़ने का कार्य किया। उनकी कविताएँ न केवल गाई जाती हैं, बल्कि आत्मा में उतर जाती हैं। उनकी लेखनी में करुणा की धारा, प्रेम की मिठास और सामाजिक पीड़ा का गहन अनुभव मिलता है ।

गोपालदास सक्सेना 'नीरज' का जन्म 4 जनवरी, 1925 को उत्तर प्रदेश के इटावा जिले के पुरावली गाँव में हुआ था। उन्होंने इंटरमीडिएट तक की शिक्षा जनपद एटा से प्राप्त की और स्नातकोत्तर शिक्षा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से पूर्ण की। प्रारंभिक जीवन संघर्षपूर्ण रहा, किंतु साहित्य के प्रति अनुराग ने उन्हें हिंदी काव्य की ऊँचाइयों तक पहुँचा दिया। वे एक कुशल वक्ता, कवि, गीतकार और प्रोफेसर भी रहे। डॉ. नामवर सिंह, नीरज की भाषा-शैली पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं - *''नीरज की कविताएँ शास्त्रीय अनुशासन और लोकधर्मी संवेदना का संगम हैं । वह कवि है, जो कविता को मंच से फिर से जनप्रिय बना सका।''*[1] नीरज ने कविता को भावना की भाषा और गीत को जीवन की लय बना दिया। उनके गीतों में जीवन की कठिनाइयों, प्रेम की सूक्ष्मताओं, सामाजिक विषमताओं और आत्मिक संघर्षों की स्वाभाविक झलक मिलती है। नीरज की कविताओं का मूल स्वर है- संवेदना। यह संवेदना केवल किसी एक दिशा में नहीं, बल्कि बहुआयामी है। नीरज स्वंय कहते हैं कि-

''काँपती लौ, यह सिपाही, यह धुआँ यह काजल
उम्र सब अपनी इन्हें गीत बनाने में कटी,
कौन समझे मेरी आँखों की नमी का मतलब
ज़िंदगी वेद थी पर जिल्द बँधाने में कटी ।।''[2]

वे जहाँ प्रेम की कोमल अनुभूतियों को स्वर देते हैं, वहीं सामाजिक विसंगतियों पर भी पीड़ा और विरोध का स्वर मुखर करते हैं। नीरज के गीतों में करुणा, समर्पण, आशा और हताशा का अत्यंत सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण मिलता है। उनकी बहुचर्चित कविता की पंक्तियाँ -

''छिप-छिप अश्रु बहाने वालों, मोती व्यर्थ लुटाने वालों,
कुछ सपनों के मर जाने से जीवन नहीं मरा करता है।''[3]

यह गीत न केवल प्रेम की विफलता का चित्रण है, बल्कि आशावाद की शक्ति का प्रतीक भी है। इसमें नीरज यह संदेश देते हैं कि जीवन केवल एक व्यक्ति के साथ जुड़ा हुआ नहीं है; एक सपना टूटने पर दूसरे सपनों की संभावना जीवित रहती है। यह भावुकता को समर्पण और प्रेरणा में बदल देने वाली संवेदना है। नीरज के गीत प्रेम को केवल लौकिक नहीं, बल्कि आत्मिक अनुभव के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके गीतों में स्मृति, प्रतीक्षा, पीड़ा और आत्मीय मिलन की ध्वनि होती है -

''स्वप्न झरे फूल से,
मीत चुभे शूल से,
लुट गये सिंगार सभी बाग़ के बबूल से,
और हम खड़े खड़े बहार देखते रहे।
कारवाँ गुजर गया, गुबार देखते रहे!''[4]

यह पंक्ति प्रतीक है उस समाज की, जो निष्क्रिय बना रह जाता है, जबकि समय आगे बढ़ता जाता है। यह केवल विगत प्रेम या संबंध का चित्रण नहीं है, बल्कि बदलते समय में व्यक्ति और समाज की उदासीनता की ओर भी इशारा करती है। प्रेम के साथ-साथ यह सामाजिक चेतना और ऐतिहासिक बोध का भी प्रमाण है। 'नीरज' मूलत: गीतकार है, भावुकता उनके व्यक्तित्व का एक अंग है। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, आडंबर, रूढ़ियों और सांप्रदायिकता के विरूद्ध उनके मन में तीव्र आक्रोश है। पूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी शक्तियों से इनकों गहरा असंतोष है। वे निम्मवर्गीय समाज के दु:ख दर्द को अपना समझकर उनके प्रति काव्य में सहानुभूति भी व्यक्त करते हैं। आनंद प्रकाश दीक्षित लिखते हैं - *''वस्तुत: उनका स्वभाव स्वच्छंदतावादी कवि का है और इसलिए उनकी कविता का मिजाज भी भावुकतापूर्ण और आत्मपीडा*

बोध से युक्त है। स्वभाविक है कि उनकी कविता में उदासी और गमगीने के साथ मस्ती भी है।'' [5] नीरज ने अपनी वेदना और गहराई के द्वारा मानव को समझने का प्रयास किया है। शोषितों के प्रति इनका दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण है। समाजवादी स्वर और साम्राज्यवाद विरोधी स्वर उनके काव्य में दिखाई देते हैं। उनके सामाजिक प्रेम की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पंक्तियों में दिखाई देती है–

''है बहुत अँधियार अब सूरज निकलना चाहिए
जिस तरह से भी हो ये मौसम बदलना चाहिए
रोज़ जो चेहरे बदलते हैं लिबासों की तरह
अब जनाज़ा ज़ोर से उन का निकलना चाहिए
अब भी कुछ लोगो ने बेची है न अपनी आत्मा
ये पतन का सिलसिला कुछ और चलना चाहिए ।।'' [6]

उन्होंने भूख, बेकारी, अधर्म, अन्याय के विरोध में भी खुलकर लिखा है। वे पथ की कठिनाइयों से हार माननेवाले नहीं है। अपने मार्ग पर अविराम गति से बढ़ते जाने की उनमें अद्भुत क्षमता है। वे कहते है कि –

''हार न अपनी मानूंगा मैं
चाहे पथ में शूल बिछाओ
चाहे ज्वालामुखी बरसाओ,
किन्तु मुझे जब जाना ही है –
तलवारों की धारों पर भी, हँस कर पैर बढ़ा लूंगा मैं।'' [7]

नीरज मानव प्रेम के ही गायक है। उन्होंने लिखा है– *''मेरी मान्यता है कि साहित्य के लिए मनुष्य से बड़ा और दूसरा सत्य संसार में नहीं है और उसे पा लेने में ही उसकी सार्थकता है, जो साहित्य मनुष्य के सुख- दुःख में साथीदार नहीं उससे मेरा विरोध है। मैं अपनी कविता के द्वारा मनुष्य बनकर मनुष्य तक पहुँचना चाहता हूँ। वही मेरे यात्री का आदि है और वहीं अंत।''* [8]

''क्या करेगा प्यार वह भगवान को
क्या करेगा प्यार वह इंसान को
जन्म लेकर गोद में इंसान की
प्यार कर पाया न जो इंसान को ।।'' [9]

समाज की आर्थिक विषमता का एक दुष्परिणाम भुखमरी भी है। नीरज गरीबों और निर्वलों की दुर्दुशा देखकर क्रांतिकारी हो उठते हैं और ऐसे स्थान पर उनका का प्रगतिवादी रूप उभर कर सामने आया है। वे गरीबों के लिए दूसरा संविधान बनाने तक की वकालत करते हैं। वे मनुष्यों से इस आर्थिक विषमता के दुष्परिणाम भुखमरी से मरते देश को बचाने का आह्वान करते हैं –

''मैं देख रहा हूँ भूख उग रही है गलियों-बाजारों में
मैं देख रहा हूँ ढूँढ़ रही बेकारी कफन मजारों में
मैं देख रहा हूँ कला बन गई है तिजोरियों की चाँवी
मैं देख रहा हूँ इतिहास कैद है चाँदी की दीवारों में
मैं देख रहा मुट्ठी भर दाने पर बिकता सिंदूर खड़ा ।।'' [10]

धार्मिक सांप्रदायिकता के बार में नीरज के विचार कबीर जैसे ही हैं। उनके काव्य में सर्वत्र मानव की ही प्रतिष्ठा है। उनका कवि व्यक्तित्व सभी धर्मों एवं कर्मकांडों से ऊपर है। ईश्वर ने तो एक ही मनुष्य जाति पैदा की है और जाति-पाँति का भेदभाव उस ईश्वर का अनादर है। समाज में धर्म और कर्म की महत्ता है। कर्म को धर्म से भी बड़ा माना जाता है। कर्मकांड से भी बढ़कर और प्यार है। मगर, मनुष्य में प्रेम भावना विकसित होने लगे तो यह दुनिया ही स्वर्ग के समान हो सकेगी।

''जाति-पाँति से बड़ा धर्म है,
धर्म-ध्यान से बड़ा कर्म है,
कर्मकांड से बड़ा मर्म है,
मगर सभी से बड़ा यहाँ यह छोटा सा इंसान है,
और अगर वह प्यार करे तो धरती स्वर्ग समान है।'' [11]

हिंदी साहित्य में जिस तरह 'बच्चन' जी को 'हालावादी' कहा जाता है, उसी तरह नीरज जी को 'मृत्युवादी' कहा जाता है । कवि 'बच्चन' जी की हाला 'हालावाद' की प्रतीक थी, तो नीरज का मृत्युवाद कोई वाद न होकर मृत्यु संबंधी एक सशक्त विचार है। कवि नीरज के मृत्युसंबंधी विचार प्रारंभ में 1951 ई. में प्रकाशित 'बादर बरस गयो' नामक संग्रह में व्यक्त हुए। इसी संग्रह की 'मरण त्योहार', 'कब्र है धरती – कफन है आसमान' जैसे गीतों में कवि ने मृत्यु के विचार व्यक्त किए हैं। 1954 में प्रकाशित 'प्राणगीत' की 'जिंदगी थक गई – मौत चल रही', जैसे गीतों में यह विचार किया गया है। कवि की यह मृत्युवादी विचारधारा 'बादर बरस

गयो' से 'आसावरी' तक ही सीमित रही। इसके बाद इस विचारधारा को कवि ने पूर्णत: छोड दिया। कवि नीरज का मृत्युवाद अंत में मानवतावाद की ओर बढ़ता है।

''श्यामल यमुना के केशों में गंगा करती वास है,
भोगी अंचल की छाया में सिसक रहा संन्यास है,
म्हावर – मेंहदी, काजल – कंधी गर्व तुझे जिन पर बडा
मुट्ठी भर मिट्टी ही केवल इन सबका इतिहास है।''[12]

कवि नीरज की प्रेमभावना व्यापक है। उनका प्रेम नारी प्रेम से प्रारंभ होकर प्रकृति-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम के विविध सोपानों को पार करता हुआ विश्व-प्रेम तक फैला हुआ दिखाई देता है। इसी कारण हिंदी साहित्य में नीरज का मानवतावादी दर्शन उल्लेखनीय है, जिसके कारण उन्हें 'मानव प्रेम का गायक' कहा गया है। 'नीरज के लोकप्रिय गीत' यह काव्यसंग्रह 1967 ई. में प्रकाशित हुआ। नीरज ने स्वयं अपने 34 गीत संग्रहीत किए हैं। इस संग्रह में मुख्यत: 'आसावरी', 'प्राणगीत' तथा 'दर्द दिया है' इन संग्रहों के गीत संग्रहीत हैं। इसके अलावा 'नीरज के लोकप्रिय गीत' नाम से फिल्मी गीतों को संग्रह 1975 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह के गीत फिल्मों में गाए जाने के कारण काफी लोकप्रिय हुए। नीरज के फिल्मी गीत लेखन की शुरुआत 'नई उमरकी नई फसल' नामक फिल्म में गीत लिखकर हुई। इसमें इनकी कुछ कविताओं को लिया गया, जिसे मोहम्मद रफी ने गाया था। उसमें मुख्यत: 'कारवाँ गुजर गया' जैसे लोकप्रिय गीत के साथ-साथ 'देखती ही न दर्पण रहो प्राण तुम', 'आज की रात बड़ी नटखट है', 'जिस दिन तेरी याद न आई', आदि गीत सम्मिलित किए गए थे। नीरज जी ने 'तेरे मेरे सपने', 'मेरा नाम जोकर', 'प्रेम-पुजारी', 'शर्मीली' आदि फिल्मों के गीत लिखे हैं। 'तेरे मेरे सपने' फिल्म का निम्नलिखित गीत बहुत लोकप्रिय हुआ-

''जैसे राधाने माला जपी शाम की
मैने ओढ़ी चुनरिया तेरे नाम की।''[13]

राजकपूर कृत 'मेरा नाम जोकर' के लिए नीरज जी ने गीत दिया है, उसमें कवि दुनिया को सर्कस कहता है-

''कहता है जोकर सारा जमाना, आधी हकीकत आधा फसाना,

चश्मा उतारो, फिर देखो यारों, दुनिया नई है और चेहरा पुराना।''[14]

'प्यार' की काव्यात्मक काव्यात्मक परिभाषा देते हुए नीरज अपने एक फिल्मी गीत में कहते हैं –

''शोखियों में घोला जाए फूलों का शवाब,
उस में फिर मिलाई जाये, थोड़ी-सी शराब,
होगा यूँ नशा जो तैयार – वो प्यार है।''[15]

(फिल्म : प्रेम-पुजारी)

'नीरज के लोकप्रिय गीत' नामक संकलन में निम्नलिखित गीतों ने काफी लोकप्रियता प्राप्त की है –

''हैलो, आप यहाँ आये किसलिए? आपने बुलाया इसलिए,

आये हैं तो काम भी बताइये, पहले जरा आप मुस्कुराइये।।''[16]

(फिल्म : कल आज और कल)

''लिखे जो ख़त तुझे वो तेरी याद में, हजारों रंग के नजारे बन गये ।

सवेरा हो गया तो फूल बन गये जो रात आई तो सितारे बन गये ।।''[17]

(फिल्म : कन्यादान)

''ऐ भाई, ज़रा देख कर चलो, आगे ही नहीं पीछे भी, दाये

ही नहीं बाये भी, ऊपर ही नहीं नीचे भी।।''[18]

(फिल्म : मेरा नाम जोकर)

''खिलते हैं गुल यहाँ, खिल के बिखरने को
मिलते हैं दिल यहाँ, मिलके बिछुड़ने को।।''[19]

(फिल्म : शर्मीली)

गोपालदास नीरज हिंदी साहित्य की उस विशिष्ट परंपरा के प्रतिनिधि कवि हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं, गीतों और लेखनी के माध्यम से जनमानस के हृदय में संवेदना की अमिट छाप छोड़ी। उनका साहित्य केवल सौंदर्यबोध या छंद-माधुर्य तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसमें मानवीय पीड़ा, जीवन की विसंगतियाँ, प्रेम की अनिवार्यता और सामाजिक चेतना का विराट स्वरूप समाहित रहा है। वे न केवल एक कवि थे बल्कि एक संवेदनशील युगद्रष्टा भी थे, जिन्होंने समय की धड़कनों को अपनी लेखनी से स्पंदित किया। नीरज की काव्य-दृष्टि में जहाँ एक ओर छायावादी कोमलता और गीतात्मक सौंदर्य मिलता है, वहीं दूसरी ओर प्रगतिशील चेतना और यथार्थवादी दृष्टिकोण की स्पष्ट झलक भी देखी जा सकती है। उन्होंने प्रेम को केवल एक भावनात्मक आवेग न मानकर उसे एक मानवीय मूल्य, एक जीवन-दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया।

उनके गीतों में एक ऐसी भाव-प्रवणता होती है, जो सीधे हृदय में उतर जाती है। नीरज की कविता में समय, समाज और मनुष्य की पीड़ा का गहन चित्रण मिलता है। वे जीवन की कठिनाइयों से भागते नहीं, अपितु उन्हें अपनी रचनाओं में आत्मसात कर, संवेदनात्मक रूप में रूपांतरित करते हैं। उनकी कविता 'कारवाँ गुजर गया, गुबार देखते रहे' एक युग की चेतना बनकर उभरी, जिसमें उन्होंने जीवन की निरंतरता, समय के परिवर्तन और मनुष्य की लाचारी को अत्यंत करुणात्मक रूप में व्यक्त किया। इसी प्रकार उनके गीतों में प्रेम, विरह, सौंदर्य और दर्शन का जो संगम मिलता है, वह उन्हें हिंदी साहित्य में अद्वितीय बनाता है। फिल्मी गीतों के माध्यम से उन्होंने आमजन से सीधा संवाद स्थापित किया और साहित्य को जनभाषा तथा जनसंवेदना के निकट लाकर खड़ा किया। यह एक ऐसा कार्य था, जो समकालीन गीतकारों के लिए प्रेरणास्रोत बन गया।

नीरज की रचनाएँ समय-काल की सीमाओं को लाँघकर पाठकों और श्रोताओं के हृदय तक पहुँचने में सफल रही हैं। उन्होंने काव्य को एक दार्शनिक अंतर्दृष्टि दी, जिसमें जीवन के गूढ़ सत्य सरल और मधुर भाषा में व्यक्त हुए। यही कारण है कि वे जनकवि के साथ-साथ साहित्य के गंभीर अध्येताओं के भी प्रिय रहे। नीरज की भाषा में संस्कृतनिष्ठता के स्थान पर सरलता, प्रवाह और आधुनिक प्रयोगशीलता का सुंदर मेल मिलता है। वे क्लिष्टता के पक्षधर नहीं, बल्कि भाषा को जनभाषा के स्तर तक ले जाने वाले रचनाकार थे। उनकी कविताओं में प्रयुक्त प्रतीकों, बिंबों और उपमानों ने हिंदी कविता को एक नया संवेदनात्मक आयाम प्रदान किया। नीरज की रचनाएँ केवल भावनाओं का उद्गार नहीं, बल्कि एक प्रकार का जीवन-संवाद है।

निष्कर्ष :

अंततः गोपालदास नीरज हिंदी कविता के उस आलोक स्तंभ की तरह हैं, जिनकी रचनाएँ युगों तक हिंदी साहित्य को प्रकाशित करती रहेंगी। वे केवल कवि नहीं, संवेदना के सम्राट थे, जिन्होंने शब्दों में आत्मा का संचार किया। उनका साहित्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना उनके समय में था। वे हिंदी काव्य परंपरा में एक जीवित अनुभव हैं, जिनकी लेखनी में मनुष्य की पीड़ा, प्रेम, आशा और संघर्ष की संपूर्ण यात्रा समाहित है। ❑

संदर्भ सूची :

1. समकालीन हिंदी कविता का इतिहास - डॉ. नामवर सिंह, पृ. 75
2. नीरज : नीरज की पाती, किताब का आमुख पृ. 5
3. नीरज रचनावली कविता छिप-छिप अश्रु बहाने वालों - गोपालदास नीरज
4. कारवां गुजर गया, कविता, नीरज रचनावली - गोपालदास नीरज
5. नीरज मंच और कविता के बीच/समीक्षा - आनंद प्रकाश दीक्षित
6. है बहुत अँधियार अब सूरज निकलना चाहिए/गज़ल-गोपालदास नीरज
7. नीरज-नदी किनारे, पृ 30, दिल्ली 1946
8. नीरज, दर्द दिया है, भूमिका
9. नीरज-प्राणगीत, पृ. 1 क्या करेगा वह प्यार वह, दिल्ली 1961
10. नीरज रचनावली, खंड 3, पृ. 16
11. क्षेमेन्द्र सुमन-आज के लोकप्रिय हिंदी कवि नीरज, कविता - धरती स्वर्ग समान है, पृ. 72
12. आसावरी काव्य संग्रह पृ. 14, गोपालदास नीरज
13. पृ. 74 फिल्म, तेरे मेरे सपने, गीत रचनाकार गोपालदास नीरज
14. पृ. 77, फिल्म, मेरा नाम जोकर गीत रचनाकार गोपालदास नीरज
15. नीरज-नीरज के लोकप्रिय गीत - पृ. 61 फिल्म, प्रेम-पुजारी
16. पृ. 54, फिल्म, कल आज और कल गीत रचनाकार गोपालदास नीरज
17. पृ. 60, फिल्म, कन्यादान, गीत रचनाकार गोपालदास नीरज
18. पृ. 82, फिल्म, मेरा नाम जोकर, गीत रचनाकार गोपालदास नीरज
19. पृ. 76, फिल्म, शर्मीली

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

सांख्य शब्द का यथार्थ : सूत्रों का संयोजन

हिमाद्री शर्मा

शोधार्थी, संस्कृत विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय
गुवाहाटी-781014
8638391187
himadrisarmah@gauhati.ac.in

पपी कलिता

शोधार्थी, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय
गुवाहाटी-781014
6900767644
popykalita20@gmail.com

I. शोध-सार :

प्रस्तुत शोध-लेख में 'सांख्य' शब्द के व्युत्पत्तिगत अर्थ का अन्वेषण करने का प्रयास किया गया है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यह विचारणीय है कि क्या यह 'सांख्य' शब्द केवल भारतीय दर्शन की षड्दर्शन परंपरा में से एक है, अर्थात् क्या सांख्य दर्शन को ही सूचित करता है। इसके मूल अर्थ का निर्धारण करने के उपरांत यह समझना संभव होगा कि प्राचीन ग्रंथों में इस शब्द का विशिष्ट रूप से प्रयोग महर्षि कपिल की दर्शन-प्रणाली के निरूपण के लिए क्यों किया गया है। निश्चय ही इसके पीछे कोई उद्देश्य रहा होगा, जिसके आधार पर आज भी हम सांख्य शब्द का प्रयोग इस विशिष्ट दार्शनिक परंपरा के लिए करते हैं।

II. बीज शब्द :

सांख्य, कपिल, भारतीय दर्शन, योग, समकालीन दार्शनिक।

III. प्रस्तावना :

श्रेष्ठ इंसान केवल रोज़ी-रोटी कमाने के लिए नहीं बल्कि एक सफल जीवन जीने के लिए भी संघर्ष करता है, जबकि दूसरे जीव सिर्फ मरने तक जीने के लिए संघर्ष करते हैं। ज्ञान इंसान को हर दिन एक बेहतर रास्ता खोजने में मदद करता है। ज्ञान की यह प्यास और कुछ नहीं बल्कि फिलॉसफी की ओर शुरुआती कदम है, जहाँ 'फिलोस' का मतलब प्यार तथा 'सोफिया' का मतलब ज्ञान है, अर्थात् ज्ञान का प्यार। दर्शनशास्त्र सदैव उन प्रश्नों को समझने का प्रयत्न करता है, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मानव को प्रभावित करते हैं। जैसे – मनुष्य का वास्तविक स्वरूप क्या है? जगत् का स्वरूप क्या है? मृत्यु के पश्चात् मनुष्य कहाँ जाता है? क्या इस ब्रह्माण्ड का कोई स्रष्टा है? इस प्रकार दर्शन वहाँ उद्भूत होता है जहाँ समस्या विश्लेषण के रूप में प्रकट होती है, कभी परीक्षण के रूप में और संभवत: समाधान के रूप में भी। भारतीय साहित्य में फिलॉसफी को दर्शन कहा गया है, जो दृश् धातु से व्युत्पन्न है। इसका अर्थ है 'दृष्टि' अथवा 'दृष्टि का साधन'। यहाँ 'दृष्टि' का तात्पर्य है वास्तविकता का प्रत्यक्ष, तात्कालिक और अंतर्ज्ञानात्मक अवलोकन, सत्य का साक्षात् अनुभव तथा वे साधन भी सम्मिलित हैं जो यथार्थ [1] की प्राप्ति तक ले जाते हैं। जैसा कि कहा गया है – 'दृश्यते यथार्थतत्त्वमनेन इति दर्शनम्'।

सांख्य दर्शन के उद्भव का सटीक काल निर्दिष्ट करना कठिन है, परंतु यह निर्विवाद है कि भारतीय दार्शनिक परंपरा की यह सर्वाधिक प्राचीन प्रणाली है। सांख्य दर्शन का एक परंपरागत पक्ष रहा है, जिसमें महर्षि कपिल से लेकर अनेक

आचार्य जुड़े हुए थे। महर्षि कपिल ने सर्वप्रथम सांख्यसूत्र की रचना की, जिसमें उन्होंने सृष्टि, प्रलय तथा मोक्ष आदि से संबंधित इस प्रणाली के विविध पक्षों और दृष्टिकोणों का स्पष्ट विवेचन किया। सांख्य शब्द तथा इसके दार्शनिक अवयवों का उल्लेख वेद, उपनिषद, स्मृति, पुराण आदि अनेक प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में मिलता है।

भारतीय दर्शन को परवर्ती काल में व्यवस्थित रूप से दो भागों में विभाजित किया गया है – आस्तिक (जो वेदों के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं) [2] और नास्तिक (जो वेदों के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते)।[3] यद्यपि इन दोनों अवधारणाओं तथा इनके अंतर्गत आने वाले दर्शनों को लेकर अनेक वाद-विवाद हुए हैं, तथापि सर्वसम्मत रूप से यह स्वीकारा जाता है कि जहाँ एक ओर आस्तिक परंपरा में भारतीय दर्शन की छह प्रमुख प्रणालियाँ सम्मिलित हैं, वहीं दूसरी ओर नास्तिक परंपरा से तीन प्रमुख दार्शनिक प्रणालियाँ उत्पन्न हुईं। आस्तिक दर्शनों में – न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त सम्मिलित हैं तथा नास्तिक दर्शनों में – चार्वाक, जैन और बौद्ध परंपराएँ आती हैं। इन दार्शनिक प्रणालियों में सांख्य दर्शन आस्तिक शाखा से संबंधित होकर एक विशिष्ट और प्राचीन स्थान रखता है, जिसे महर्षि कपिल ने प्रतिपादित किया था।

IV. सांख्य शब्द का अर्थ :

सांख्य शब्द की व्युत्पत्ति 'ख्या' (ज्ञान) धातु से हुई है, जिसके पूर्व 'सम्' उपसर्ग जुड़ा है। इसका सामान्य अर्थ संख्याओं की गणना करना होता है। सांख्य शब्द का प्रथम प्रयोग श्वेताश्वेतरोपनिषद् में मिलता है। इस उपनिषद् में सांख्य शब्द का प्रयोग यह सूचित करने के लिए किया गया था कि परम सत्य की प्राप्ति सांख्य और योग के माध्यम से संभव है।[4] मत्स्यपुराण के अनुसार वह ग्रंथ जो सृष्टि के तत्त्वों की गणना करता है, उसे सांख्य कहा जाता है।[5] अमरकोष में इस शब्द का प्रयोग चिन्तन और गणना के अर्थ में किया गया है।[6] यहाँ गणना का आशय पच्चीस तत्त्वों तथा तीन प्रमाणों की गणना से है, जबकि चिन्तन का आशय आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया से है। सांख्य शब्द की उत्पत्ति ख्या धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'विशिष्ट ज्ञान'। इस दृष्टि से सांख्य का तात्पर्य है – विवेकपूर्ण ज्ञान।[7] चरकसंहिता में भी सांख्य शब्द का प्रयोग हुआ है, जहाँ इसका अर्थ चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्र करना है।[8] सांख्य दर्शन वस्तुत: ब्रह्माण्ड के ज्ञान की ओर एक व्यवस्थित और तात्त्विक अन्वेषण की प्रक्रिया है।

V. एक परंपरागत ज्ञानधारा के रूप में सांख्य :

सांख्य दर्शन का प्रवर्तक महर्षि कपिल को माना जाता है। उन्हें आदिविद्वान भी कहा जाता है। कपिल को एक सिद्ध (पूर्णता प्राप्त) भी माना जाता है और उनकी सिद्धि को जन्मसिद्धि का उदाहरण समझा जाता है, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि उन्हें जन्म के क्षण से ही पूर्णता प्राप्त थी। महाभारत के द्वादश अध्याय में कपिल को विशेष रूप से सांख्य के प्रवर्तक के रूप में देखा गया है, जहाँ उन्हें सांख्य दर्शन का वक्ता अर्थात् उपदेशक कहा गया है।[9] भागवतपुराण में कपिल को भगवान विष्णु का पाँचवाँ अवतार माना गया है, जिन्होंने परंपरागत रूप से सांख्य का ज्ञान अपने शिष्य आसुरी को प्रदान किया था।[10]

आसुरी को महर्षि कपिल का प्रथम शिष्य माना जाता है। योगभाष्य में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि आदिविद्वान् कपिल ने अपने महान् शिष्य आसुरी को सांख्य का ज्ञान प्रदान किया था।[11]

परंपरागत रूप से यह पवित्र ज्ञान आसुरी से 'षष्टितंत्र' का रचयिता पश्चशिख को हस्तांतरित हुआ। ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका से यह स्पष्ट होता है कि सांख्य की परंपरा शिष्य-परंपरा के माध्यम से पश्चशिख द्वारा आगे बढ़ाई गई। सत्तरवीं कारिका में यह उल्लेख है कि महर्षि कपिल द्वारा प्रवर्तित इस प्रणाली का परवर्ती काल में व्यापक प्रचार-प्रसार पश्चशिख ने ही किया था।[12]

सांख्यकारिका के रचयिता ईश्वरकृष्ण ने शिष्य-परंपरा के माध्यम से सांख्य का ज्ञान प्राप्त किया था। युक्तिदीपिका में उन सांख्य आचार्यों का उल्लेख मिलता है जो पश्चशिख और ईश्चरकृष्ण के मध्यकाल में प्रकट हुए। इनमें हारीत, बाद्धलि, कैरात, पौरिक, पश्चाधिकरण,

पतञ्जलि, वार्षगण्य, विंध्यवासी आदि सम्मिलित हैं। इसी कालखण्ड में, माथर ने अपनी माथरवृत्ति में कुछ आचार्यों का उल्लेख किया है, जैसे – भार्गव, उल्लूक, वाल्मीकि, हारीत, देवल आदि।[13] जयमङ्गला ग्रंथ में भी गार्ग, गौतम आदि ऋषियों को इस विशेष समयावधि के सांख्य-आचार्यों के रूप में चित्रित किया गया है।[14]

मेधातिथि की मनुसंहिता पर की गई टीका में विंध्यवासी नामक एक प्रसिद्ध सांख्य आचार्य का उल्लेख परिलक्षित होता है।[15]

VI. प्राचीन ग्रंथों में सांख्य :

सांख्य शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम श्वेताश्वेतरोपनिषद् में मिलता है, जहाँ इसे योग के साथ परम सत्य की प्राप्ति का साधन बताया गया है।[16] महाभारत में सांख्य और योग को सर्वाधिक प्राचीन ज्ञान माना गया है। यहाँ सांख्य का वर्णन अनेक स्थलों पर किया गया है। शान्तिपर्व में भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा है कि सांख्य सर्वाधिक गतिशील ज्ञान है और निश्चित रूप से ऐसा कोई अन्य ज्ञान नहीं है जो सांख्य से श्रेष्ठ हो।[17] श्रीमद्भगवद्गीता तथा भागवतपुराण में सांख्य[18] और सांख्यान[19] शब्दों का प्रयोग किया गया है। इन दोनों का प्रयोग समानार्थक रूप में हुआ है, जिसका अभिप्राय बुद्धि अथवा विवेक से है। यहाँ दो भिन्न प्रत्ययों का प्रयोग करते हुए बुद्धि या विवेक एक ही अर्थ को व्यक्त किया गया है।

सांख्य भारतीय दर्शन की सर्वाधिक प्राचीन प्रणालियों में से एक है, जिसका श्रेय महर्षि कपिल को दिया जाता है। सांख्य शब्द का मूल 'संख्या' है, जो सम् उपसर्ग सहित ख्या धातु से व्युत्पन्न है। शब्दकल्पद्रुम के अनुसार सम् उपसर्ग का प्रयोग पूर्णता के अर्थ में होता है और ख्या का अर्थ है ज्ञान।[20] अत: संख्या का अर्थ हुआ सम्यक्-ख्याति अथवा पूर्णज्ञान। चूँकि सांख्य शब्द संख्या से उत्पन्न है, इसलिए यह स्वाभाविक है कि संख्याओं की गणना सांख्य दर्शन की प्रमुख विशेषता है।

यदि सांख्य दर्शन के मुख्य विषयवस्तु का विवेचन किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि पच्चीस तत्त्वों का अस्तित्व इस दर्शन की शैक्षिक खोज का आधार है। महर्षि कपिल ने सांख्यसूत्र में (जो सांख्य परंपरा का प्रमुख ग्रंथ है) इन पच्चीस तत्त्वों का स्पष्ट उल्लेख किया है, जो सृष्टि-प्रक्रिया के आरम्भ हेतु आवश्यक माने गए हैं।[21] प्राचीन महाकाव्य महाभारत में भी इस सांख्य दर्शन को परिसंख्यानदर्शन कहा गया है, जहाँ पच्चीस तत्त्वों की गणना का उल्लेख मिलता है।[22] मत्स्यपुराण में सांख्य दर्शन नाम के पीछे के कारण का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यह दर्शन पच्चीस तत्त्वों का वर्णन करने हेतु संख्या अथवा गणना से सम्बद्ध है।[23] शाश्वत ब्रह्म ने इन्हीं तत्त्वों का प्रयोग करके इस ब्रह्माण्ड की रचना की। अमरकोष में संख्या शब्द का प्रयोग चिंतन और गणना के अर्थ में हुआ है।[24] यहाँ गणना का आशय पच्चीस तत्त्वों तथा तीन प्रमाणों की गणना से है, जबकि चिंतन का आशय आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया से है।

सांख्य दर्शन ने यह प्रतिपादित किया है कि दु:ख-निवृत्ति का श्रेष्ठ साधन है – 'व्यक्त' (प्रकृति), 'अव्यक्त' महादादि तत्त्वों का ज्ञान) और 'ज्ञ' (पुरुष अथवा आत्मा) के गहन ज्ञान की प्राप्ति।[25] सांख्य परंपरा ने स्पष्ट रूप से यह निरूपित किया है कि आत्मा और अनात्मा के विवेकपूर्ण ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति संभव है। सांख्य दर्शन अनुसार महादादि तत्त्वों का विकास क्रम :

स्रोत	**→उत्पन्न तत्त्व**	**→कार्य**
प्रकृति	→महत्त्व (बुद्धि)	→विवेक, निर्णय
महत्त्व	→अहंकार	→''मैं'' की भावना
अहंकार (सात्त्विक)	→मन + इन्द्रियाँ	→ज्ञान व क्रिया
अहंकार (तामसिक)	→तन्मात्राएँ	→सूक्ष्म गुण
तन्मात्राएँ	→महाभूत	→स्थूल तत्व (पृथ्वी, जल आदि)

VII. समकालीन साहित्य में सांख्य शब्द :

राधाकृष्णन के अनुसार सांख्य शब्द की उत्पत्ति ख्या धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'विशिष्ट ज्ञान'। इस दृष्टि से सांख्य का तात्पर्य केवल उस ज्ञान से है, जो विवेकपूर्ण जानने अथवा विवेकजन्य ज्ञान से संबंधित है।[26]

अरविन्द इस तन्त्र को सर्वाधिक विश्लेषणप्रधान दार्शनिक तंत्र के रूप में स्वीकार करते हैं। अपने ग्रन्थ 'Essays on Gita' में श्रीमद्भगवद्गीता से उद्धरण प्रस्तुत करते हुए वे यह मत प्रस्तुत करते है कि गीता सांख्य और योग को परस्पर विरोधी सिद्धांत नहीं मानती, अपितु उन्हें एक ही वेदान्तिक सत्य की ओर ले जाने वाले पूरक मार्गों के रूप में निरूपित करती है। उनके अनुसार सांख्य दर्शन दार्शनिक, बौद्धिक तथा विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि योग अंतर्ज्ञानात्मक, भक्तिपरक, आचरणप्रधान, नैतिक तथा संश्लेषणात्मक मार्ग है, जो अनुभव के माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति कराता है। गीता दोनों के मध्य किसी प्रकार का मौलिक भेद नहीं मानती, अपितु उन्हें एक साथ चलने वाले आत्म-साक्षात्कार के मार्ग के रूप में प्रस्तुत करती है।[27] अरविन्द ने सांख्य परम्परा को सत्य की दृष्टि और प्राप्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग बताया है, जो जगत् के तत्त्वों के पृथकीकरण और विवेचनात्मक विश्लेषण के माध्यम से ज्ञान प्रदान करता है। इस प्रकार अरविन्द का अभिप्राय है सांख्य परम्परा को विवेकज्ञान की परम्परा के रूप में निरूपित करना।

दयाकृष्ण अपनी पुस्तक 'Indian Philosophy : A Counter Perspective' में सांख्य शब्द के पारिभाषिक अर्थ पर विचार करते हुए फ्रैंकलिन एडगर्टन के कथन का उद्धरण देते हैं, जिसमें सांख्य को एक दार्शनिक पद्धति माना गया है, जो तर्कशील, अनुमानप्रधान तथा चिंतनशील है।[28] यह उद्धरण महाभारत के सन्दर्भ से प्रस्तुत किया गया है, जहाँ सांख्य शब्द को किसी तकनीकी दार्शनिक पद के रूप में नहीं, अपितु सामान्य ज्ञानवाचक प्रयोग रूप शब्द के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

VIII. निष्कर्ष :

सांख्य दर्शन भारतीय दार्शनिक परंपरा की अत्यंत प्राचीन और सुव्यवस्थित प्रणाली है, जिसका प्रवर्तन महर्षि कपिल द्वारा किया गया तथा जो शिष्य-परंपरा के माध्यम से आगे बढ़ा। आसुरी और पञ्चशिख से लेकर ईश्वरकृष्ण तक ने इस परंपरा में निरंतरता बनाए रखी। सांख्यकारिका, युक्तिदीपिका, माथरवृत्ति तथा जयमङ्गला जैसे ग्रंथों में विभिन्न आचार्यों का उल्लेख इस परंपरा की गहराई और व्यापकता को दर्शाता है। सांख्य का मूल आधार संख्या अथवा गणना है, जिसके अंतर्गत पच्चीस तत्त्वों का विवेचन किया जाता है। यही तत्त्व सृष्टि-प्रक्रिया और आत्मज्ञान की खोज का आधार हैं। महाभारत, मत्स्यपुराण, श्वेताश्वेतरोपनिषद् तथा अमरकोष में सांख्य का उल्लेख इसकी प्राचीनता और महत्व को प्रमाणित करता है। सांख्य दर्शन ने यह प्रतिपादित किया है कि दुःख-निवृत्ति का श्रेष्ठ साधन आत्मा और अनात्मा के विवेकपूर्ण ज्ञान से ही संभव है। व्यक्त, अव्यक्त और पुरुष के गहन ज्ञान के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। इस प्रकार सांख्य केवल गणना का दर्शन नहीं, बल्कि आत्म-साक्षात्कार और मुक्ति का साधन है। ❑

संदर्भ सूची :

1 'शब्दकल्पद्रुम', खण्ड II, पृष्ठ 689
2 'शब्दकल्पद्रुम', खण्ड I, पृष्ठ 198
3 'शब्दकल्पद्रुम', खण्ड II, पृष्ठ 874
4 'श्वेताश्वेतरोपनिषद्', VI.13
5 सांख्यं संख्यात्मकतत्वाच्च कपिलादिभिरुच्यते।'' — 'मत्स्य पुराण', III.29
6 चर्चा संख्या विचारणा — 'अमरकोष', I.V.II
7 एस. राधाकृष्णन, 'इण्डियन फिलॉसफी', खण्ड द्वितीय, पृष्ठ 249
8 'सांख्यैः संख्यातसंख्येयैः सहासींनं पुनर्वसुं।' — 'चरक संहिता', XIII.3
9 'सांखस्य वक्ता कपिलः परमऋषिः स उच्यते। 'महाभारत', XII.349.65
10 'पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतं।
प्रोवाचासुरवे सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयं।।', 'भागवत पुराण', I.III.10
11 'आदिविद्वान् निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्यात् भगवान् परमऋषिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच।', 'योग-भाष्य', I.25
12 'आसुरिरपि पञ्चशिखाय तेन च बहुधा कृतं तन्त्रं।' — 'सांख्यकारिका', 70

'कपिलादासुरिणा प्राप्तमिदं ज्ञानं। ततः पञ्चशिखेन तस्मात् भार्गवोलुकवाल्मीकि-हारीत-देवल-प्रवृतीनागतं। ततस्तेभ्यः ईश्वरकृष्णेन प्राप्तं।', 'माथरवृत्ति', 71

[14] 'पञ्चशिखस्तथा गर्ग-गौतम-प्रभृतिर्णरामतं ग्राम्या ईश्वरकृष्णनामानं परिव्राजकमित्यनया शिष्यपरम्परया।' 'जयमङ्गला', 71

[15] 'सांख्या अपि केचिन्नान्तराभवमिच्छन्ति विंध्यवासिप्रभृतयः।' — 'मेधातिथिभाष्यं', I.55

[16] 'तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञावा देवं मुच्यते सर्वपापैः।' — 'श्वेताश्वेतरोपनिषद्', VI.13

[17] 'नास्ति सांख्य समं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलं।
अत्र वह संशय मा भूत् ज्ञानं सांख्यं परं मतं।' — 'महाभारत', शान्तिपर्व, 316.2

[18] 'प्रोच्यन्ते गुणसांख्याने।' — 'श्रीमद्भगवद्गीता', XVIII.19

[19] 'नमो भागवते महापुरुषाय सर्वगुण सांख्यान।' — 'भागवत पुराण', स्कन्ध 5, अध्याय 17, श्लोक 17

[20] i. सं; शोभनार्थः/ समर्थः/ उत्कृष्टार्थः — 'शब्दरत्नावली', चतुर्थोपसर्गः; 'व्याकरण'। — 'शब्दकल्पद्रुम', पृष्ठा 266
ii. ख्या; ख्याति — उपर्युक्त ग्रन्थ, पृष्ठा 294
iii. ख्याति; प्रकाशः/ ज्ञानम् — उपर्युक्त ग्रन्थ।

[21] 'सत्त्व-रजस्-तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। प्रकृतेर्महान्, महतोऽहंकारः, अहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रिम्। तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि। पुरुष इति पञ्चविंशतिगणः।' — 'सांख्यसूत्र', I.61

[22] 'सांख्यदर्शनमेतावत् परिसंख्यानदर्शनम्।
सांख्यं प्रकरुते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते।
तत्त्वानि च चतुर्विंशत् परिसंख्याय तत्वतः।
सांख्याः सह प्रकृत्या तु निस्तत्त्वः पञ्चविंशकः।
पञ्चविंशोऽप्रबुद्धात्मा बुद्ध्यमान इति स्मृतः।
यदा तु बुद्ध्यतेऽत्मानं तदा भवति केवलः।' — 'महाभारत', शान्तिपर्व, 12.294.41–43

[23] 'सांख्यं संख्यात्त्वाच्च कपिलादिभिरुच्यते।
एत्तत्त्वात्मकं कृत्वा जगद्वेधा अजिजनत।' — 'मत्स्यपुराण', III.29

[24] 'चर्चा संख्या विचारणा।' — 'अमरकोष', I.V.II

[25] 'व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्।' — 'सांख्यकारिका', 2

[26] एस. राधाकृष्णन, 'इण्डियन फिलॉसफी', खण्ड II, पृष्ठा 249

[27] 'Essays on Gita', पृष्ठा 5

[28] दया कृष्ण, 'इंडियन फिलॉसफी : ए काउंटर पर्सपेक्टिव', पृष्ठा 147–148

IX. ग्रंथ सूची :

1. 'शब्दकल्पद्रुम', भाग 1, दिल्ली; चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
2. 'शब्दकल्पद्रुम', भाग 2, दिल्ली; चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
3. 'मत्स्यमहापुराण' हिन्दी अनुवाद सहित, 14वाँ संस्करण, कलकत्ता; गीता प्रेस, गोरखपुर
4. 'श्वेताश्वेतर उपनिषद्', मद्रास; श्री रामकृष्ण मठ, 1949
5 'अमरकोष', सम्पा. श्री मन्ना लाल 'अभिमन्यु', बनारस सिटी; मास्टर खेरीलाल एंड संस
6. राधाकृष्णन, एस. Indian Philosophy. खंड I. दिल्ली; ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, तृतीय संस्करण, 1997
7. राधाकृष्णन, एस. Indian Philosophy. खंड II. दिल्ली; ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नवम संस्करण, 2002
8. 'चरक संहिता' अंग्रेजी अनुवाद सहित, 4था संस्करण, वाराणसी; चौखम्बा ओरिएंटेलिया, 1998
9. 'भागवत-पुराण', भाग I. दिल्ली; मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा.लि., 1999
10. 'पातञ्जल योगदर्शनम्', व्यासभाष्य सहित, वाराणसी; चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
11. 'सांख्यकारिका' गौड़पाद भाष्य सहित, सम्पा. पं. धुंधिराज शास्त्री, वाराणसी; चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, द्वितीय पुनर्मुद्रित संस्करण, 2012
12. 'जयमङ्गला' शंकराचार्यकृत, प्रथम संस्करण, कलकत्ता; कलकत्ता ओरिएंटल सीरीज, 1926
13. 'सांख्यकारिका', 'माथरवृत्ति' (माथराचार्यकृत) तथा 'जयमङ्गला' (शंकराचार्यकृत), सम्पा. सत्कारी शर्मा वांगिया, वाराणसी; चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 1970
14. 'मनुस्मृति', मेधातिथि भाष्य सहित, सम्पा. गंगानाथ झा, बिब्लिओथेका इंडिका सीरीज, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, 1932
15. 'महाभारतम्', सम्पा. विष्णु एस. सुक्तांकर। खंड 1-4. पूना; भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, 1940
16. 'श्रीमद्भगवद्गीता', शंकरभाष्य सहित, 40वाँ संस्करण, कलकत्ता; गीता प्रेस, गोरखपुर
17. 'सांख्यसूत्र', अनिरुद्धवृत्ति सहित, संस्करण III, वाराणसी; रत्ना पब्लिकेशन, 1993
18. अरविन्दो, श्री. Essays on Gita. खंड XIII. पांडिचेरी; श्री अरविन्द आश्रम, 1970
19. दया कृष्ण, Indian Philosophy: A Counter Perspective. नई दिल्ली; ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1991

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

काशीनाथ सिंह की कहानियों में स्त्री चेतना

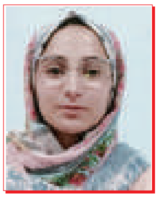

उजमा अहद
शोधार्थी, हिंदी विभाग
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी
फगवाड़ा, पंजाब-144411
9906898531/8082212966
zehrafatima1319@gmail.com

डॉ. बृजेंद्र कुमार अग्निहोत्री
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी
फगवाड़ा, पंजाब-144411
9918695656
brijendra.26912@lpu.co.in

शोध सार :

भारतीय समाज में बहुत समय तक पितृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रभाव रहा है, जिसमें स्त्री की भूमिका को घर और परिवार तक सीमित कर दिया गया था, लेकिन समय के साथ साथ स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सजग होती गयी जिस के परिणामस्वरूप पारंपरिक सोच में बदलाव आने लगा और साहित्य ने इस परिवर्तन को अभिव्यक्त करने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। काशीनाथ सिंह की कहानियाँ इस परिवर्तन की साक्षी है। उनकी कहानियाँ भारतीय समाज की समस्याओं को बड़ी गहराई के साथ अभिव्यक्त करती हैं। विशेष रूप से उन्होंने स्त्री चेतना के विविध आयाम जैसे संघर्ष, स्त्री जीवन की स्थिति, सामाजिक बंधन का सजीव चित्रण आदि जैसे कई तथ्य देखने को मिलता है। आम तौर पर जब हम कहानियाँ पढ़ते हैं, हमें कहानियों के पात्र अपने आस-पास के लगते हैं। लेकिन काशीनाथ सिंह ने पात्रों को इस तरह गढ़ा है कि पाठकों को वह पात्र न केवल अपने आस-पास के लगते हैं, बल्कि कई बार उनको पात्रों की समस्याएँ अपनी लगती हैं। वे दिखते हैं कि किस प्रकार से समाज स्त्री की पीड़ा, उसकी भावनाओं, उसके संघर्ष और संकट में पड़ने पर उसका उपहास का सामना करना पड़ता है।

मूल शब्द :

चेतना, स्त्री अधिकार, पितृसत्तात्मक समाज, स्त्री संघर्ष।

चेतना :

चेतना शब्द मानव जीवन का महत्वपूर्ण और व्यापक अर्थ वाला शब्द है। सामान्य रूप से चेतना का अर्थ समझ या जागरूकता से है। यह एक ऐसी मानसिक अवस्था, जिसके द्वारा मानुष अपने आस-पास की घटनाओं, परिस्थितियों और भावनाओं को समझने को समझ सकता है। दूसरे शब्दों में कहा जी तो यह एक ऐसी शक्ति है, जो व्यक्ति को सोचने, समझने और निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती हैं। चेतना शब्द संस्कृत के 'चित' धातु से बना है जिस का अर्थ समझन या जानना होता है। इसी लिए चेतना को अनीभूति और ज्ञान से जोड़ा जाता है। जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु, परिस्थिति या घटना के बारे में विचार करता है, उस स्थिति में यह कहा जाता है कि उसमें चेतना विद्यमान है।

सामाजिक संदर्भ में चेतना का अर्थ और भी व्यापक हो जाता है। समाज में रहने वाला व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन तक सीमित नहीं रहता है, बल्कि वह समाज की परिस्थितियों, समस्याओं को भी प्रभावित करता है। जब व्यक्ति समाज की समस्याओं के प्रति जागरूक होता है, उसे सामाजिक चेतना कहते हैं,

जो उसे समाज के विकास में योगदान देने के लिए प्रेरित करती है। रामदरश मिश्र के अनुसार–*''चेतना वह तत्व है, जिसमें ज्ञान का भाव और व्यक्ति क्रियाशील की अनुभूति है। जब हम किसी पदार्थ को जानते हैं तो उसके स्वरूप का ज्ञान होता है। साहित्य में चेतना का विषय बहुत महत्व रखता है। साहित्यकार अपने अनुभवों के माध्यम से समाज की वास्तविकता को उजागर करता है। जब कोई साहित्यकार अपनी रचनाओं में समाज की समस्याओं को प्रस्तुत करता है, तब वह पाठकों में जागरूकता उत्पन्न करने का काम करता है। इस कारण साहित्य सामाजिक चेतना को विकसित करने में महतीपूर्ण भूमिका निभाने का काम करता है।''*[1] चेतना का एक महतीपूर्ण रूप स्त्री चेतना भी है। स्त्री चेतना से आशय उस जागरूकता से है, जिसके माध्यम से स्त्री अपने सम्मान, अपने अस्तित्व और अपने अधिकारों के प्रति सजग होती है। यह चेतना स्त्री को सामाजिक असमानताओं और सामाजिक बंदनों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रेरित करती है।

सामाजिक चेतना :

सामाजिक चेतना सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक मूल्यों के कारण जो नया बोध उत्पन्न होता है, उसे सामाजिक चेतना कहते हैं। सामाजिक चेतना से आशय उस समझ से है, जिसके द्वारा व्यक्ति समाज की समस्याओं मूल्यों को समझता है। जब व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर समाज के बारे सोचने लगता है, तब उसमें सामाजिक चेतना का विकास होता है। सामाजिक चेतना व्यक्ति को सामाजिक समस्याएँ–जैसे भेदभाव, स्त्री शोषण, असमानता आदि जैसी समस्याओं को समझने की क्षमता प्रदान करती है कि समाज में इन समस्याएँ किस प्रकार से एक व्यक्ति के जीवन को प्रभावित कर रही है और जब लोग इन समस्याओं के प्रति जागरूक रहेंगे, तभी समाज में परिवर्तन आ सकता है।

सामाजिक चेतना का विषय साहित्य में विशेष महत्व रखता है। समाज की वास्तविकता को उजागर करने में साहित्यकार का बहुत बड़ा योगदान रहता है। जब लेखक समाज की समस्याओं, संघर्ष का चित्रण करता है, तब वे सामाजिक चेतना को व्यक्त कर रहा होता है। इस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ–साथ समाज को दिशा देने का काम भी करता है। सामाजिक चेतना का महत्वपूर्ण पहलू व्यक्ति को संवेदनशील बनाना भी होता है। जब व्यक्ति में सामाजिक चेतना विकसित हो जाती है, तब वह दूसरों के प्रति सहानुभूति की भावना रखता है। इससे समाज में सद्भाव और मानवता की भावना का विकास होता है। इसके अतिरिक्त समाज में न्याय और समानता को स्थापित करने के लिए भी सामाजिक चेतना आवश्यक है।

रत्नाकर पांडे के अनुसार – *''जब कोई नूतन विचारधारा समाज में प्रविष्टि होती है और निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ती है तो सामाजिक विचारधारा जागृति होती है। इसी जागृति को सामाजिक चेतना कहा जाता है।''*[2]

धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार – *''चेतना वह स्थिति है, जो जीवों को अपने और अपने आस–पास के वातावरण की जानकारी देती है। सामाजिक चेतना का विकास सामाजिक संवाद और नैतिकता से होता है, यह समाज के लिए नैतिकता, सद्भाव और सामाजिक सुधार की नींव है।''*[3] कहा जा सकता है कि समाज में व्याप्त समस्याओं के प्रति जागरूक होना और उन समस्याओं का समाधान खोजना ही सामाजिक चेतन है।

काशीनाथ सिंह की कहानियों में स्त्री चेतना :

काशीनाथ सिंह जी ने अपनी कहानियों में स्त्री से संबंधित हर समस्या को चित्रित किया–जैसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था, मानसिक पीड़ा, स्त्री का अकेलापन आदि ही क्यों न हो। सबसे अधिक प्रभाव इनकी कहानियों में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रभाव ही देखी जा सकती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था वह व्यवस्था है, जिसमें समाज का नियंत्रण मुख्य रूप से पुरुषों के हाथ में दिया जाता है। इस में स्त्री से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पुरुष के आदेशों का पालन करे और इस का परिणाम यह निकलता है कि पुरुष स्वयं को स्त्री से श्रेष्ठ समझने लगता है और उसके साथ अमानवीय व्यवहार करने लगता है। जैसे 'सूचना' कहानी में देखा जा सकता है कि स्त्री मुसीबत के समय में भी मनोरंजन का पात्र बना दी जाती है। जहाँ लोगों को स्त्री की सहायता के बारे में सोचना चाहिए, वहाँ वह स्त्री की परेशानी को किस तरह मनोरंजन का साधन बनाया जाए–इस पर ध्यान केंद्रित करते हैं। सब

की निगाह उस लड़की पर है। *''वह तरह-तरह की आवाजें निकाल रहे हैं, सीटियाँ बजा रहे हैं, और ठहाके लगा रहे हैं, यार माल तो बड़ा पटका है।''*[4] पुरुषों द्वारा सड़क पर स्त्रियों पर सीटियाँ बजाना, फब्तियाँ कसना, और अपशब्दों का प्रयोग करना स्त्री के प्रति पुरुषों की असंवेदनशीलता को दिखाता है, साथ ही यह भी दर्शाता है कि स्त्री चाहे किसी भी वर्ग की क्यों न हो-उसे उसे दैनिक जीवन में कई तरह की मानसिक, सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यहाँ तक कि सार्वजनिक स्थानों पर भी स्त्री सुरक्षित नहीं है, जो कि एक सामान्य बात नहीं है। यहाँ पुरुषों की मानसिकता बहुत कुछ स्पष्ट कर रही है – जैसे औरत के बारे में पुरुषों का दिमाग केवल शारीरिक संबंध बनाने तक ही सीमित है। जहाँ भारत जैसे देश में हम पुरुषों को महिलाओं के अधिकारों, उनकी सुरक्षा आदि पर भाषण देते हुए देखते हैं, दूसरी ओर वही पुरुष घर की चारदीवरी के अंदर राक्षस का रूप धरण करते हुए पाए जाते हैं। वास्तविकता कही जाए तो महिलाएँ पुरुषों से कहीं पर भी सुरक्षित नहीं हैं। इसका श्रेय हमारे आदरणीय समाज को जाता है, जिसने पुरुषों को इतना महिलाओं पर हावी कर दिया है कि आने वाले सौ सालों में भी स्त्री के प्रति पुरुष की मानसिकता पूरी तरीके से बदली हुई नहीं पाई जा सकती है। 'सुख' कहानी में भोला बाबू जैसे पात्र के माध्यम से देखने को मिलता है कि प्रकार से पुरुष स्त्री के सोचने और समझने की शक्ति को भी अपने अनुसार चलाना चाहता है। यदि वह पुरुष के हिसाब से चीजों को नहीं सोचती-समझती है तो उस गधे और खच्चर की संज्ञा दी जाती है। भोला बाबू का सूर्यास्त का दृश्य देखने और ऐसा अनुभव होना जैसे ऐसा दृश्य पहली बार देख रहा होता हो। *''वह अपने पत्नी को भी यह दृश्य देखने को बुलाता है और पूछता है कि उसे क्या दिख रहा है। वह कहती है उसे सड़क पर ईंटों से लदे खच्चर दिख रहे हैं। औरत की जात। खच्चर और गधे के सिवा देख ही क्या सकती हो? तो देखने को क्या कहते हो? कुछ नहीं जाकर माँड़ पसाओ और आटा गूँथो।''*[5] इसका मतलब यह नहीं है कि स्त्री की सोच वास्तव में ऐसी है, बल्कि यह हमारे समाज की वास्तविकता को उजागर करता है जिस ने स्त्री को सीमित दायरे और सीमित अनुभवों में रहने के लिए मजबूर किया है। गधा और खच्चर यहाँ श्रम, साधारण जीवन और बोझ के प्रतीक हैं, जो स्त्री मरते दम तक उठाती रहती है। यहाँ यह बात भी सिद्ध होती है कि पुरुष स्त्री को केवल भोजन बनाने का साधन मात्र मानता है, जिसे जीवन और प्राकृतिक सौंदर्य की समझ नहीं है। 'हस्तक्षेप' कहानी में स्त्री को कुचली हुई अवस्था में दिखाया गया है। जंगी जैसे पात्र के द्वारा दिखाया गया है कि किस प्रकार से पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को न केवल घर के अंदर ही प्रताड़ित नहीं किया जाता है, बल्कि सार्वजनिक स्थानों पर भी उसे मार पीट कर लोगों के लिए मनोरंजन का साधन भी बनाया जाता है। जंगी का पीटते-पीटते सड़क पर पत्नी को ले आना अत्याचार की क्रूर स्थिति को उजागर करता है। इस घटना का दुखद पक्ष यह है कि सभी लोग उसे पीटते हुए देखते हैं, लेकिन उसे बचाने के बजाय लोगों इस दृश्य को अपने दुख भुलाने का साधन मात्र मान मजा लेने लगते है। यहाँ तक कि कहानी में आए पात्र 'लड़का' बाजार में लगी भीड़ को हटाता है, ताकि जंगी को प्रदर्शन के लिए जगह मिले। यहाँ समाज की अमानवीयता को उजागर किया गया है कि किस प्रकार स्त्री के प्रति दया का भाव खतम हो चुका है। लड़का जब कहता है कि *''शाबाश चचा, वाह रे चचा, अरे हाँ-हाँ, पेट नहीं पेट बचाकर। हाँ इस तरह इस तरह कोई खतरा नहीं।''*[6]

यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि युवा पीढ़ी तक भी इस अमानवीयता का असर पड़ गया है और घरेलू हिंसा का कारण बन जाता है। आगे चलकर ऐसे ही युवक अपनी माँ, बहन, बेटी खासकर के अपनी पत्नियों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करते दिखाई देते हैं। इसका मुख्य कारण यही होता है कि वह सोचते हैं कि जब समाज में ऐसा होता आया और हमसे पहले भी लोग इस तरह की हिंसा करते आए हैं, जब उन्हें किसी ने कुछ नहीं किया तो हमें भी कोई कुछ नहीं कर सकता है और स्त्री मरते दम तक प्रताड़ित होती रहती है। कहानी में स्त्री का चरित्र केवल पीड़ित महिला के रूप में ही नहीं, बल्कि एक संघर्ष करती महिला के रूप में भी दिखाया गया है, जो अपने ऊपर होने वाले अत्याचार को का विरोध करते

दिखाई देती है। वह जंगी से अपने बचाव के लिए भिड़ भी जाती है। उसका अपनी सुरक्षा के लिए भिड़ जाना यह संकेत करता है कि स्त्री अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध करने की क्षमता भी रखती है।

निष्कर्ष :

अत: कहा जा सकता है कि स्त्री चेतना का अर्थ केवल स्त्रियों की समस्याओं को उजागर करना ही नहीं, बल्कि उनके अधिकारों, आत्मसम्मान और स्वतंत्रता के प्रति लोगों को जागरूक करना भी है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है, बल्कि घरेलू काम काज की ही अपेक्षा की जाती है। स्त्रियों को गंभीरता से लेने के बजाय उन्हें कमतर समझा जाता है। उनके फैसले, उनके विचारों को भी महत्व नहीं दिया जाता है, जिसका परिणाम यह निकलता है कि उसकी व्यक्तिगत पहचान खो जाती है और उसका जीवन केवल जिम्मेदारियों तक सीमित होकर रह जाता है। अब यदि अगर हम स्त्री सुरक्षा की बात करें स्त्री केवल घर में ही नहीं, बल्कि सार्वजनिक स्थानों पर भी सुरक्षित महसूस नहीं करती है। सार्वजनिक स्थानों पर भी महिलाओं का सुरक्षित न होना सामान्य बात नहीं है। इसके कारण कई महिलाएँ न केवल मानसिक तनाव का शिकार होती दिखाई देती हैं, बल्कि उनके मन में डर और असुरक्षा की भावना पैदा हो जाती है। इस असुरक्षा और डर के पीछे समाज की पितृसत्तात्मक मानसिकता का महत्वपूर्ण योगदान है। समाज ने लंबे समय तक पुरुषों को समाज चलाने का अधिकार देकर इस असमानता को बनाए रखा है। इन सभी परिस्थितियों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्त्री की समस्याएँ परिवार तक ही सीमित नहीं रही हैं, बल्कि समाज में रहने वाले लोगों की सोच में घर कर गई हैं। यहाँ यह बात कहनी आवश्यक लगती है कि सरकार का काम केवल कानून बनाना ही नहीं, बल्कि समाज को सुरक्षा प्रदान करना भी होता है। ऐसी स्थिति में सरकार का यह दायित्व बनता है कि स्त्री की सुरक्षा को सुनिश्ति करे, साथ ही सामाजिक जागरूकता के माध्यम से स्त्री के प्रति सम्मान की भवन भी जगाए। ❑

संदर्भ सूची :

1. मिश्र, रामदरश, साहित्य संदर्भ और मूल्य,ज्ञानपूर्णा प्रकाशन, जयपुर,1960
2. पांडे, रत्नाकर.हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, 2003, पृ.160
3. वर्मा,धीरेन्द्र, हिंदी साहित्य कोश, ज्ञानमंडल लिमीटेड,वाराणसी 1963, पृ.316
4. सिंह, काशीनाथ, आदमीनामा प्रकाशन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023 पृ.14
5. सिंह, काशीनाथ, लोग बिस्तरों पर, प्रकाशन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003 पृ. 48
6. सिंह, काशीनाथ, लोग बिस्तरों पर, प्रकाशन,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ.106

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

कामायनी : मनु के द्वंद्व से उपजा सृजन बिंदु

ऋषिकेश कुमार

शोध-सार :

जयशंकर प्रसाद की अमर कृति 'कामायनी' हिंदी साहित्य में मानव-चेतना, भावबोध और सृजनात्मक द्वंद्व का अद्वितीय आख्यान प्रस्तुत करती है। यह काव्य केवल पौराणिक कथा का पुनर्पाठ नहीं, बल्कि मनुष्य के अंतर्मन में घटित होने वाले जटिल मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक संघर्षों का रूपक है। 'मनु' का चरित्र यहाँ एक सामान्य मानव का प्रतीक बनकर उभरता है, जो बुद्धि और भावना, तर्क और संवेदना, अहं और समर्पण के मध्य निरंतर द्वंद्व से गुजरता है। प्रस्तुत शोध-पत्र 'कामायनी : मनु के द्वंद्व से उपजा सृजन बिंदु' इसी अंतर्द्वंद्व को सृजनात्मक ऊर्जा के मूल स्रोत के रूप में देखने का प्रयास करता है। मनु के भीतर उत्पन्न संघर्ष न केवल उसकी व्यक्तिगत यात्रा को दिशा देता है, बल्कि व्यापक रूप से मानव सभ्यता के विकास की प्रक्रिया को भी इंगित करता है। जयशंकर प्रसाद ने इस कृति के माध्यम से यह स्थापित किया है कि सृजन का मूल आधार द्वंद्व है- वह द्वंद्व, जो मनुष्य को समन्वय के लिए प्रेरित करता है।

बीज शब्द :

कामायनी, द्वंद्व, महाकाव्य, समासोक्ति, अन्योक्ति, आख्यान, यांत्रिकी, भौतिकता, मानवतावाद, समरसता, समूहवाद, विरोधाभास।

प्रस्तावना :

कामायनी जयशंकर प्रसाद की महाकाव्यात्मक रचना है, जो वर्ष 1936 में लिखी गई। इसमें उन्होंने पौराणिक/ ऐतिहासिक कथानकों के माध्यम से युग के समकालीन और शाश्वत प्रश्नों पर विचार किया है। इसकी रचना पंद्रह सर्गों में हुई है - चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, निर्वेद, संघर्ष, स्वप्न, दर्शन, रहस्य, आनंद। डॉ. नगेंद्र ने इसे भावात्मक महाकाव्य की संज्ञा दी है, क्योंकि यह रूढ़ अर्थों में महाकाव्य ना होकर, आधुनिक अर्थों में महाकाव्य है। इसमें घटनाओं और पात्रों की संख्या अत्यंत कम है तथा विचार और संवाद की प्रमुखता है। रचना के प्रमुख पात्र मनु, श्रद्धा, इड़ा और मानव हैं। समासोक्ति और अन्योक्ति दोनों काव्य के लक्षणों को धारित करता है। इसके पात्र किसी-न-किसी भाव के रूपक हैं और घटनाएँ सर्वकालिक घटनाओं की भाँति आने वाले कल की सूचना देते हुए प्रतीत होती हैं। यह महाकाव्य द्वंद्व से घिरे परिवेश का कसावपूर्ण वर्णन करता है। इसकी रचना जितनी जटिल है, विधान वैसा ही व्यापक तथा महत्वाकांक्षी। इसमें एक ओर मानव संस्कृति के विकास का आख्यान है तो दूसरी ओर आदिम मनुष्य का उतरोत्तर जटिल और

शोधार्थी, हिंदी विभाग
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय,
अल्मोड़ा, उत्तराखंड-263601
9990995208
Rishikesh1499@gmail.com

संघनित होता हुआ रूप है। कवि यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि कैसे मनुष्य मृगया - युग और कृषि युग को पार करता हुआ वर्तमान यांत्रिकी युग में आन पहुँचता है, और इस यांत्रिकी युग के क्या खतरे हैं तथा उसका अतिक्रमण कैसे संभव है। इसी तरह इसको भी व्याख्यायित करता है कि मनुष्य का अंत:करण आदिम प्रभुत्व और आधिपत्य से भरा हुआ है कैसे ईर्ष्याग्रस्त होता है और फिर कैसे मनु का अहं का भाव श्रद्धा के साहचर्य के प्रेम की महिमा धीमे-धीमे सिखाता है।

इस प्रकार मानव कल्याण को केंद्र में रखकर कवि ने रचना को सृजित किया है, जो कथानक की जटिलता को दोहरे स्तर पर उभारता है - एक तरफ नेतृत्व (मनु) को शक्तिशाली यानी संबल होने के महत्व पर बल है तो दूसरी तरफ इस संबलता का मनुष्यता के कल्याण में प्रयोग करने की बात कही गई है, हालाँकि यह आरंभिक सर्ग है। जैसे-जैसे हम आगामी सर्गों की तरफ बढ़ते हैं, प्रश्नों की सूक्ष्मता और सघन होती है और कई आंगिक प्रश्न जुड़ते जाते हैं। स्त्री स्वातंत्र्य, वर्गीय स्थिति, बौद्धिक और भौतिक विकास की अतिशयता और समन्वय की समस्या भी जुड़ जाती हैं। कर्मण्यता पर केंद्रित कामायनी का जीवन लक्ष्य सदैव कर्मशील रहना है, यही तत्व हमें निराशा के गर्त से बाहर निकालता है और नवीन उपलब्धियों से हमारे जीवन को पूर्णता प्रदान करता है - *''कर्म का भोग, भोग का कर्म / यही जड़ का चेतन आनंद।''*[1]

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक का दौर देखें तो वह भी उसी नैराश्य से गुजर रहा था। अत: सर्जना की आवश्यकता तत्कालीन भारतीय समाज और उसके नेतृत्व को भी थी, जिसका एक सुखात्मक उद्घोष इस पंक्ति से होता है:-

''ले लिया भार अपने सिर पर मनु ने यह अपना विषय आज

''हंस पड़ी उषा प्राची नभ में देखे नर अपना राज काज।''[2]

इसीलिए प्रतिनिधि साहित्य में कामायनी की स्थिति विशिष्ट है, उसमे अपने युग की स्थिति से कितने संघर्ष है, वर्तमान से जितनी शिकायतें हैं,, वह इस अनुपात में अन्यत्र दिखाई नहीं पड़ती हैं। प्रथम सर्ग चिंता से ही मनु का मानसिक संघर्ष का आरंभ हो जाता है, जिसका शमन आनंद सर्ग में होता है। अत: इस महाकाव्य का संपूर्ण कथानक ही संघर्ष के धरातल पर अपनी रचनात्मकता को सार्थक करता है। इसी विषमता विकास का मूल रहस्य भी स्वीकार किया है:-

''विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पंदित विश्व महान
यही दुख सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुकर गान।''[3]

अत: रचनाकारों से संसार को एकपक्षीय दृष्टि से नहीं देखा, उसमें मौजूद सभी जीवन तथ्यों के प्रति गंभीरता से विचार से किया। उन्होंने विषमता को कष्टप्रद मान कर उसका त्याग नहीं किया, बल्कि उससे सुंदर जीवन का मार्ग खुलता है - इस तथ्य को भी उन्होंने उसी गंभीरता से स्वीकार किया। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रसाद साहित्य का सत्-चित् आनंद और मुक्तिबोध साहित्य का सत्-चित् वेदना को कामायनी में नवीन तरीके से साधा गया है। इसलिए बच्चन सिंह लिखते हैं कि *''कामायनी में उठाई गईं समस्याओं का हल प्रसाद ने अपने ढंग से दिया है। वह शुद्ध मानवतावादी हल हैं, संभवत: आज के संदर्भ में सर्वाधिक प्रासंगिक।''*[4] यह युगधर्मिता कामायनी के शिल्प में भी उपस्थित है, जिसको लेकर राम स्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं - *''कामायनी आधुनिक हिंदी काव्य में अर्थ और अनुभव की अद्वैत प्रक्रिया का बेजोड़ उदाहरण है। उसके बिंबों की आसाधारण रचना शक्ति में उसकी सामान्य वर्णन भाषा की शिथिलता विलुप्त हो जाती है।''*[5]

इससे स्पष्ट होता है कि कामायनी अपनी संपूर्णता में कई प्रश्नों को सामने लाती है, जिसका गहराई से अवलोकन वर्तमान की परिस्थितियों को समझने में सहायक हो सकता है। अत: छायावाद जीन कारणों से प्रासंगिक है, उसका एक महत्वपूर्ण कारण कामायनी है ।

''ऊष्मा का अभिनव अनुभव था
ग्रह तारा नक्षत्र अस्त थे।
दिवा रात्रि के संधिकाल में
ये सब कोई नहीं व्यस्त थे।
ऋतुओं के स्तर हुए तिरोहित
भूमंडल रेखा विलीन सी

निराधार उस महादेश में
उदित सचेतना नवीन सी।''[6]

इस प्रकार हम स्पष्टत: देखते हैं कि प्रसाद का साहित्य द्वंद्व से समरसता की यात्रा की तरफ उर्ध्वमुखी होता है। जीवन खंड से अनुभवों को उन्होंने युग की कसौटी पर कस कर कामायनी की दार्शनिक भूमिका तयार की, जहाँ पर मनु की व्यथा और श्रद्धा की सहजता से नए तरह के मानव आदर्श की नींव डाली गई। कामायनी की आरंभिक पंक्ति 'एक पुरुष भरे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह' से ही से ज्ञात हो जाता है कि महाकाव्य जिस रस्सी के सहारे अपनी परिणति को प्राप्त करेगा उसमें वेदना एक अंतर्निहित तत्व होगा।

इसी के आधार पर मानव जीवन के इतिहास का आरंभ और उसकी वर्तमान स्थिति के वर्णन के माध्यम से कवि ने आदिम मनुष्य का उतरोत्तर जटिल और संघटित होते रूप को दर्शाया है। और मनु इस पूरी प्रक्रिया के केंद्र में है, जिसके माध्यम से कवि दिखता है कि मनुष्य मृगया युग और कृषि युग को पार करता हुआ वर्तमान यांत्रिक युग में आ पहुँचा है, और इस यांत्रिक युग के क्या खतरे हैं तथा उसका अतिक्रमण कैसे संभव है। श्रद्धा से मिलने से पूर्व मनु मृगया युग में जीवन व्यतीत कर रहा है। श्रद्धा की आत्मीयता कृषि युग के साथ है, जबकि इड़ा यांत्रिक युग की पहचान है, जो जितनी समस्याओं का हल करती है, उससे अधिक उत्पन्न करती है।

कैसे आदिम एकांत से अहं भाव का विकास होता है और पुन: उसका तिरोभाव समरसता में होना ही कामायनी का महाकाव्यात्मक अवदान है। इसी बात को युगीन स्थिति से समझना हो तो रीतिकालीन साहित्य / समाज के समकक्ष है, जो अंध:पतन से युक्त था, जहाँ विदेशी पराधीनता ने पैर पसार रखा था और देश की आबादी गुलामी के लबादे को ओढ़े हुए निष्क्रिय बैठी थी। किंतु श्रद्धा और इड़ा का आगमन उस नव चेतना का सूचक है, जिससे भारत के मानस में राष्ट्रीय जागृति होती है और वह देश वत्सल भाव संपूर्ण समर्पण के साथ अग्रमुख होता है।

यही कारण है कि जिसे हम छायावाद कहते हैं, उसकी विशेषताएँ पहली बार सबसे अधिक प्रसाद के ही काव्य में स्पष्ट होती है और उसका चरम विकास भी प्रसाद के काव्य में दिखाई पड़ता है। यही परिणति प्रसाद काव्य की कलासिकीय गरिमा है कि वे काव्य भावना से उत्तेजना का नहीं, मंथन का संदेश देते हैं। कामायनी का नायक मनु इसी मंथन से जीवन दर्शन गढ़ता है, जैसे श्रद्धा और मनु जो दो विरोधी वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं–उनका मिलन कराकर प्रसाद ने समरसता का दर्शन दिया। मनु और श्रद्धा का मिलन दो स्त्री चरित्रों में एक का चयन न देख कर व्यक्तिवाद पर समूहवाद का चयन नारी और पुरुष के समरस मिलन से सर्जना के अंकुर के रूप में लेना चाहिए। श्रद्धा का चरित्र वस्तुत: मनु के द्वंद्व का समाधान ही है। जहाँ भी मनु युग से परेशान होता है, वह संघर्ष से पराजित महसूस करता है, वहाँ श्रद्धा उत्साह का नदी बन कर निर्जन होते मनु के उत्साह में उर्वरता का संदेश देती है। जैसे–

''दुख के पिछली रजनी बीच
विकसित हुआ है कि नवल प्रभात
एकपर्दा यह झीना नील
छिपाये है जिसमें सुख गात।''[7]

मनु का द्वंद्व देश के तत्कालीन मनोस्थिति का ही अंकन है, एक तरफ जहाँ भारतवर्ष विदेशी पराधीनता के अधीन था, दूसरी तरफ सांस्कृतिक स्तर पर भी पश्चिमी और भारतीय मूल्यों का संघर्ष व्याप्त था, जिसे लेकर विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिखते हैं कि *''प्रसाद जिस काल की उपज हैं, वह मूल्यों के विघटन और बिखराव का काल है। पश्चिम और पूरब के मूल्यों में द्वंद्व का काल है। उस समय भारतीय समाज पर पश्चिम के मूल्य हावी हो रहे थे। प्रसाद ने लक्ष्य किया और एक प्रतिनिधि भारतीय लेखक के दायित्व का निर्वाह करते हुए भारतीय मूल्य की स्थापना का प्रयास किया।''*[8]

इस महाकाव्य में उपस्थिति विरोधाभास ही इसका रचनात्मक उत्स बनता है, कामायनी का नायक मनु अमरों का वंशज है, जो मर गए हैं। इसी विरोधाभास से कामायनी का आरंभ होता है और, 'अमर मरेगा क्या' वाक्य जीवन की नश्वरता को सूचित करते हुए सृजनशीलता की पराकाष्ठा को प्रतिष्ठित करता है। देवता की संतान मनु चिंता वैषम्य जैसे भाव को अंगीकार नहीं कर पाता

और नीरवता अवसाद जैसे मनोस्थिति का शिकार बनता है। जैसा इस पंक्ति से व्यक्त है –

''यहाँ सतत संघर्ष, विफलता ,
कोलाहल का यहाँ राज है;
अंधकार में दौड़ लग रही ,
मतवाला यह सब समाज है।''[9]

अतीत का मोह और सुरम्य भविष्य के निर्माण की चिंता मनु को प्रथम सर्ग से ही व्यथित करती है। श्रद्धा और इड़ा उसकी व्यथा का निराकरण है, जिससे होकर मनु नवनिर्माण करता है। शक्ति संचयन के आधारशिला पर खड़ा कामायनी का चिंतन भला अवसाद को कब तक धारण कर सकता था। जिस अवसाद और राजनीतिक विफलता से देश गुजर रहा था, उस स्थिति में साहित्य भी यदि नीरवता की चादर ओढ़ लेता तो साहित्य की संवेदनशीलता और निर्माण शक्ति पर प्रश्न चिह्न लगता और वह पलायनवादी कहलाता। अत: प्रलय की स्थिति से उबारकर कामायनी आगे की तरफ बढ़ती है, जहाँ सृजनात्मक भविष्य उसका स्वागत करता है। हालाँकि ऐसा नहीं है कि कामायनी में सृजन का ही अंकन है, महाकाव्य का एक तिहाई सर्ग मनु के स्थिति से पलायन पर भी केंद्रित है। वासना सर्ग से लेकर निर्वेद सर्ग तक मनु निरंतर जीवन के वास्तविक उद्देश्य को खोकर विपथ में जाते दिखाई पड़ते हैं। मनु के अंदर मौजूद स्व केंद्रित वृत्ति उसे द्वंद्व में डाल देता है। उनके देव संस्कृति के बीज उनका मूल स्वभाव में परिणत होने लगता है, जिससे समता और समन्वय की जगह विषमता का सृजन होता है, जिसका शमन श्रद्धा के माध्यम से होता है। इसे ही डॉ. नगेंद्र *''संस्कृति विज्ञान और राजनीति का समन्वय कहते हैं।''*[10]

निष्कर्ष :

कामायनी में मनु का द्वंद्व केवल एक व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक विडंबना नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव-सभ्यता के विकास, उसके सांस्कृतिक संक्रमण और मानवीय चेतना के क्रमिक उत्कर्ष का प्रतीक है। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जयशंकर प्रसाद ने द्वंद्व को विनाशकारी न मानकर सृजन का अनिवार्य प्रेरक तत्त्व सिद्ध किया है। मनु के भीतर बुद्धि-भावना, अहं-समर्पण, भोग-त्याग, कर्म-निवृत्ति तथा परंपरा-आधुनिकता के संघर्ष अंतत: श्रद्धा के माध्यम से समन्वित होकर मानवतावादी जीवन-दृष्टि का निर्माण करते हैं। यही समन्वय व्यक्ति को आत्मविस्मृति से आत्मबोध तथा निराशा से सृजनशील कर्म की ओर अग्रसर करता है। प्रसाद का यह दृष्टिकोण अपने समय की राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और वैचारिक चुनौतियों का उत्तर होने के साथ-साथ समकालीन वैश्विक संकटों में भी समान रूप से प्रासंगिक है। कामायनी का मूल संदेश यह है कि जीवन का विकास विरोधों के निषेध में नहीं, बल्कि उनके रचनात्मक रूपांतरण में निहित है। इसलिए मनु का द्वंद्व अंतत: मानव-कल्याण, समरसता, सक्रिय कर्म और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की आधारभूमि बनकर उभरता है। इस प्रकार कामायनी भारतीय चिंतन-परंपरा में सृजन, समन्वय और मानव-मूल्यों के दार्शनिक महाकाव्य के रूप में आज भी अपनी कालजयी प्रासंगिकता सिद्ध करती है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2017, पृष्ठ 35
2. वही, पृष्ठ 39
3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, आधुनिक कविता यात्रा, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2019 पृष्ठ 31
4. सिंह, बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, पटना, वर्ष 2020, पृष्ठ 341
5. वही, 342
6. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, आधुनिक कविता यात्रा, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2019 पृष्ठ 35
7. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद, आधुनिक हिंदी कविता, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2019, पृष्ठ 30
8. वही, पृष्ठ 22
9. वाजपेयी, नंददुलारे, जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2022, पृष्ठ 65
10. सिंह, बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, पटना, वर्ष 2020, पृष्ठ 150

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

'अल्मा कबूतरी' : स्त्री चेतना के जागरण में शिक्षा का महत्व

मनीषा मोरांग

सहायक प्राध्यापक
लखीमपुर बालिका महाविद्यालय
खेलमाटी, नॉर्थ लखीमपुर
असम-787031
9101614671
morangmanisha9@gmail.com

शोध-सार :

मैत्रेयी पुष्पा द्वारा रचित अल्मा कबूतरी उपन्यास कबूतरा जनजाति की जिंदेगी पर आधारित एक बहुचर्चित उपन्यास है। 'अल्मा कबूतरी' कबूतरा जनजाति जो जन्म से ही अपराधी कही जाती है, यह उन असहाय जीवन की संघर्ष कथा है। इस उपन्यास में दो कथा धाराएं साथ साथ प्रवाहित होती है, पहली तो कबूतरा जनजाति के लोगों की इसमें भी मुख्य रूप से भूरी, कदमबाई और अल्मा के जीवन संघर्ष की और दूसरी तथाकथित सभ्य समाज द्वारा इन लोगों पर की गई शोषण की। एक तो स्त्री को हमेशा से ही अपनी अस्तित्व की लड़ाई लड़नी पड़ती है, पितृसत्तात्मक समाज में नारी को कठपुतली के समान जीवन व्यतीत करना पड़ता है। कहा जाता है कि जनजाति समाज में नारी की स्थिति तथाकथित सभ्य समाज से बेहतर है यह समाज मातृ प्रधान समाज है, परंतु जब अल्मा कबूतरी जैसे उपन्यास को पढ़ा जाता है और जमीनी स्तर का यथार्थ देखा जाता है, तब पता चलता है कि स्त्री की स्थिति इस समाज में भी शोषणीय है। स्त्री होने के नाते और एक तथाकथित अपराधी जाति की सदस्य होने के नाते इन पात्रों को हर दिन अपने अस्तित्व की दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ती है। कबूतरा समाज में स्त्रियाँ आर्थिक रूप से भले ही आत्मनिर्भर हों, पर वे यौन, मानसिक और सामाजिक शोषण से मुक्त नहीं है। इस उपन्यास में स्त्री चेतना के स्वर उन पात्रों के माध्यम से प्रकट होते हैं, जो परिस्थिति से समझौता नहीं करती, बल्कि उसे चुनौती देती है, शिक्षा को हथियार बनाकर और संघर्ष को जीवन का मार्ग बनाकर जूझती है। यह शोध पत्र अल्मा कबूतरी उपन्यास में चित्रित स्त्री संघर्ष, चेतना और शिक्षा के महत्व को विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का एक प्रयास है।

बीज शब्द :

अल्मा कबूतरी, कबूतरा जनजाति, नारी चेतना, शोषण, संघर्ष, शिक्षा, यथार्थ।

प्रस्तावना :

प्रतिभासंपन्न लेखिका मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में भोगे हुए जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति की जाती है। लेखिका का आत्मांश है यह वाक्य *''मैं जो देखती हूँ वही लिखती हूँ, और मैं जो समझती हूँ वही लिख देती हूँ।''*[1] उनका साहित्य किसी कल्पना लोक का नहीं, बल्कि उस जमीन का दस्तावेज है, जहाँ समाज के लोगों की पीड़ा, संघर्ष और आकांक्षाएँ विद्यमान हैं। हालाँकि लेखिका

आदिवासी समुदाय से नहीं हैं, पर इन कबूतरा लोगों को उन्होंने बहुत करीब से देखा है और समझा है। इस उपन्यास में झाँसी, ललितपुर, टीकमगढ़ आदि इलाकों में बसी कबूतरा जनजाति के लोगों को आधार बनाया गया है। कबूतरा जनजाति को औपनिवेशिक भारत में 'आपराधिक जनजाति' घोषित कर दिया गया था। आजादी के बाद भले ही यह बंधन हटा दिया गया हो, लेकिन सामाजिक दृष्टिकोण में कोई खास परिवर्तन नहीं आया। इन्हें तथाकथित मुख्यधारा में स्थान नहीं मिला और इनके साथ निरंतर भेदभाव व हिंसा होती रही। परंतु वास्तविकता यह है कि कज्जा (तथाकथित सभ्य समाज) लोग भी अपराध करते हैं, पर उन्हें कोई दोष नहीं देता। कबूतरा यदि अपराध करते हैं तो अपने जीवन निर्वाह के लिए, यह उनकी मजबूरी है। कबूतरा घोषित अपराधी हैं, इसलिए उन्हें न तो मजदूरी मिलती है न उनके पास खेती के लिए जमीन है, उनके जीविका का कोई साधन नहीं है। यही कारण है की कबूतरा चोरी करते हैं, उनकी स्त्रियाँ चोरी करती हैं, शराब बनाती हैं और जरूरत पड़ने पर देह का भी समर्पण करती हैं। कज्जा लोग इसी कमजोरी का फायदा उठाते हैं और इन पर जुल्म करते है और उन्हें अछूत मानते हैं। इस उपन्यास के केंद्र में नारी चेतना का स्वर विशेष रूप से गूँजता है-भूरी, कदमबाई और अल्मा जैसी स्त्रियों के माध्यम से, जो न केवल शोषण का विरोध करती हैं, बल्कि शिक्षा को आत्म-रक्षा और मुक्ति का मार्ग बनाती हैं।

विषय-वस्तु का निरूपण :

यह उपन्यास तीन पीढ़ियों की स्त्री की दास्तान है। इन स्त्रियों की जीवन से उनके संघर्ष और स्त्री चेतना के स्वर का अनुमान लगाया जा सकता है। कदमबाई स्वतंत्र चेतना की स्त्री है। कदमबाई पति के मौत के बाद मंसाराम से अनैतिक संबंध में राणा को जन्म देती है, वो एक ऐसी स्त्री है, जो अपने बेटे के लिए सब कुछ सहती है, समझौता करती है, अपने पति के हत्यारे को अपना सब कुछ सौंप देती है, लेकिन उसे चोर डाकू बनने नहीं देती, कदमबाई रूढ़ि से हटकर राणा को पढ़ाती है। कथा के आरंभ में दिखाई देता है कि कदमबाई राणा को चोरी कला सिखाना चाहती है, पर राणा चोरी या कुल की धंधे की ओर विमुख है। उसके मन में शिक्षा की चाह है। राणा के पढ़ने की चाह, चोरी की अनिच्छा और सिपाही बनने का अथाह आग्रह समझकर विधवा माँ परेशान होती है। अपनी व्यथाओं को खुलकर कहने के लिए कदम को कोई सहारा नहीं है। राणा के मनोभाव देखकर कदम परेशान होती है, वह कहती है-*''रोज दाल-रोटी खिलाकर उजले कपड़े पहनाए। राजाबाबू-सा बेटा किसे अच्छा नहीं लगता ? पोथी-पाटी थामकर मदरसे भेजे। कज्जिन माँ को तरह साँझ तक राणा की बाट देखे। बेटा यह सब करने के लिए हमारे पास न हिम्मत न फुरसत ! उपाय भी नहीं उदासी है बस।''* [2] पर कदमबाई राणा के लिए जीने की ताकत जुटाती है। उसकी पूरी जिंदगी का भरोसा उस पर है, कहती है-*''मैं तेरी दुबली देह और भोले चेहरे को देखकर जीने की ताकत जुटाती रही रे.. अपनी भूख-प्यास में नहीं, तेरी चिंता में जिंदा रहती।''* [3] और बाद में जब भूरी का समूचे दुनिया के खिलाफ जाने की हिम्मत देखती है, तब उसमें साहस आता है और तब वह अपने डर के दायरे से बाहर निकल कर दुनिया के खिलाफ जाकर राणा के लिए नई जिंदेगी गढ़ने का हौसला पाती है। उसके हाथ में छुरी-कटार की जगह कलम किताब पकड़ाती है। सामाजिक चुनौतियों का सामना करते हुए अपनी बिरादरी के पढ़े-लिखे रामसिंह के पास भेज देती है। कदमबाई में यह हिम्मत कहीं-न-कहीं भूरी को देखकर ही आई है। उसका बस एक ही सपना है - *''कदमबाई रामसिंह के साये में बेटे की तस्वीर देख रही है। तस्वीर किसी नदी के किनारे एकांत या सुनसान जंगल में पेड़ों के नीचे रोने की नहीं, गाँवों में जमी सत्ताओं से टकराने की है। वो छिपने का नहीं लड़ने का सपना देखने लगी है।''*[4] विधवा कदमबाई आजीविका के लिए खूब प्रयत्न करती है। गृहस्थी संभालने के लिए वह जंगल की लकड़ियाँ बीनकर और गाय-भैंस के गोबर चुराकर उपेले बनाकर बेचती है। ऐसी हीन हालत में भी वह मंसाराम से मदद नहीं लेती है। पुत्र राणा की देखभाल करने के लिए वह चोरी करके धन कमाती है। विधवा कदमबाई इतनी स्वाभिमानी है कि पेट भर खाने के लिए रोटी तक उसके पास नहीं है तो भी अपने भूख की बात किसी से न कहने का आदेश पुत्र को देती है।

''उस कज्जा को अपनी भूख-प्यास नहीं बतानी, समझा?''[5] पर नियति को कुछ और ही मंजूर होता है। राणा के शिक्षित होने पर भी अपने जीवन में प्रेमिका अल्मा के नष्ट होने से पागल-सा व्यवहार करता है, जिससे कदमबाई को वैधव्य के साथ निजी पुत्र के पागलपन को भी झेलना पड़ता है। कदमबाई के संघर्षपूर्ण जीवन आदिवासी विधवाओं की दयनीय हालत को दर्शाते है।

भूरी इस उपन्यास की एक गौण पात्र है, परंतु वह एक बहुत ही प्रभावशाली चरित्र है। भूरी तमाम परिस्थितियों के बावजूद पुरुषप्रधान समाज में अकेली अलग सोच रखने वाली स्त्री है। भूरी मुक्ति की कामना रखती है, जहाँ कबूतरा जनजाति की तमाम स्त्रियों ने शोषण को अपनी नियति मान ली थी। वहाँ भूरी जैसी स्त्रियाँ थीं जो अपने जीवन से संतुष्ट न थीं विद्रोह करना। वह अपने बेटे राम सिंह को पढ़ाना-लिखना चाहती थी। ऐसे सामाजिक परिवेश में जहाँ जीवित रहना ही सबसे मुख्य लक्ष्य होता है, वहाँ भूरी ने शिक्षा के अर्थ को समझा। जहाँ एक तरफ पति की मृत्यु के बाद पत्नी सती हो जाती है, वहाँ भूरी सती नहीं होती है और अपनी साहसिकता का परिचय देती है, पुत्र राम सिंह को शिक्षा देने का निर्णय लेती है। लेखिका लिखती है - *''बस्ती की सबसे म्हली माँ थी भूरी, जिसने अपने बेटे को कुल्हाड़ी-डंडा न थमाकर पोथी-पाटी पकड़ाई।''*[6] कबूतरा बिरादरी के लोगों का भूरी पर बहुत दबाव था, पर उसने ना कहना सीख लिया था, क्योंकि वह यह जानती थी कि यदि उसका बेटा भी कबूतरा जीवन का बोझ ढोता रहा तो उसका भविष्य अंधकारमय होगा। इसलिए भूरी बदनामी का बोझ उठाने को तैयार हो गई और एक समय ऐसा भी आया कि माफी को ही हथियार बना लिया भूरी ने। देवता और शैतान की दुनिया एक हो गई उसके लिए, यदि ऐसा न होता तो मासिक धर्म के दिनों में चार दिन दलसिंह की कोठरी में बंद रहने वाली भूरी उस कज्जा की छाती में कटार घोंप देती या खुद को मार डालती, लेकिन उसने धैर्य रखा। उसे पता था कि इस राह पर चलना है तो बेबसी और बदनामी के काँटों से गुजरना ही होगा। रामसिंह की नन्हीं उँगलियाँ जैसे उसके घावों पर स्याही का मरहम बन जाती है। घायल देह के बावजूद भूरी अपने संकल्प पर डटी रही। समय उसकी परीक्षा लेता रहा, पर वह कभी हार नहीं मानी। भूरी समझ रही थी कि बेटे के उजाले भरे भविष्य का रास्ता उसकी देह से होकर ही जाएगा, इसलिए उसने देह का भी समर्पण कर दिया और गर्भ न ठहरे, इसके लिए रुखरी चबाया करती थी। बिरादरी के लोगों ने उसे हर तरह की गालियाँ दी थीं, पर भूरी कबूतरा समाज की उस परंपरा को तोड़ रही थी, जो सदियों से चली आ रही थी। लोगों को लगता था कि वह पूरे समाज की जड़ें काट रही है और विवाह-संस्कार जैसे रिवाजों को खत्म करने पर तुली हुई है। बिरादरी के अनुसार उसकी सजा जल-समाधि या अग्नि-परीक्षा थी। पर भूरी ने पहले ही कह दिया था कि वह परीक्षा के योग्य नहीं है, क्योंकि वह अपवित्र है। उसे मारने का अथक प्रयास किया गया, पर भूरी इन कठिन परिस्थितियों का सामना करती गई। भले ही वह खुद पढ़-लिख न सकी हो, पर अपने बेटे को उसने हमेशा यह सिखाया कि विद्या ही जीवन में सबसे बड़ा अस्त्र है। उसका सपना था कि उसका बेटा इस कबूतरा समाज की बेड़ियों को तोड़कर बाहर निकले। भूरी की यह संघर्ष-गाथा कदमबाई के लिए प्रेरणा बन गई और साथ में भूरी की इसी साहसिकता के कारण पोती अल्मा को भी पर्याप्त मात्रा में शिक्षा की सुविधाएँ मिल गईं।

अल्मा इस उपन्यास की मुख्य नायिका है। अल्मा भले ही कबूतरा जनजाति की थी, लेकिन पिता रामसिंह ने उसका पालन-पोषण कज्जा समाज के तौर-तरीके से किया था। इसके बावजूत समाज उसको सभ्य और शिक्षित मानने को तैयार नहीं होता। बाप का कर्ज उतारने के बदले उसे गिरवी रखा जाता है। यह कबूतरा में आम चलन है - *''अल्मा तू गिरवी धरी है, समझे रहना। इसमें बुराई भी नहीं। हम कबूतरा में तो यह चलन रहा है-जेवर, गहन, बासन और बेटी मुसीबत के समय काम आते हैं।''*[7] स्त्री को जिस समाज में एक वस्तु से अधिक कुछ नहीं समझा जाता हो, वहाँ किन किन अत्याचारों को सहन करना पड़ता होगा-कल्पना भी नहीं की जा सकती। वास्तव में देखा जाए तो रामसिंह की मृत्यु के बाद अल्मा का असल संघर्ष शुरू हुआ। अल्मा का संघर्ष किसी भी अकेली रहने वाली स्त्री के संघर्ष

जैसा ही है। अंतर केवल इतना है कि अल्मा पर 'कबूतरी' का लेबेल लगा हुआ है, जिसे वो चाहकर भी मिटा नहीं पाती। अल्मा राणा से प्रेम करती है। शादी करना चाहती है, पर नियति उन्हें एक होने नहीं देता। सूरजभान की कैद में अल्मा का बलात्कार होता है, जिसके कारण अल्मा का गर्भपात हो जाता है – *''गर्भ में राणा के अंग के गोले थे–चार महीने। दारु के नशे में लड़खड़ाते सूरजभान ने ऐसी ताकत से भोग संभोग किया कि अल्मा खून की पोखर हो गई। बलिष्ठ शरीर में खरोंचें पड़ीं, तब क्या कामांधता कम हो गई। वह दोगुनी ताकत से भिड़ गया था।''* [8] नारी को नियंत्रित करने के लिए पुरुष बलात्कार जैसे घृणित कार्य को अपनाता है। राजेंद्र यादव लिखते हैं–*''स्त्री अपनी बौद्धिक या अन्य उपलब्धियों के लिए जितनी हायतौबा मचाती रहे, पुरुष की जिद है कि साम, दाम, दंड, भेद से वह उसे कमर, कूल्हे, नितंब छातियों से ऊपर नहीं उठने देगा।''* [9] पुरुष व्यवस्था नारी को हमेशा बंधन में रखना चाहती है, तभी तो अल्मा के विरोध करने पर उसका शारीरिक शोषण किया जाता है। प्रत्येक समाज की सामाजिक व्यवस्था नारी को सिर्फ वस्तु के रूप में मानती आई है। पितृसत्तात्मक समाज में नारी सदियों से उपेक्षित होकर जीवन बिताने पर विवश होती आ रही है। लेखिका ने कबूतरा नारियों के अस्तित्व एवं अस्मिता के दर्द को अल्मा के माध्यम से यथार्थ रूप में चित्रित किया है। सूरजभान की कैद से जैसे–तैसे भाग निकली ही थी अल्मा, फिर सूरजभान के चमचा नत्थू द्वारा पकड़ी जाती है। नत्थू वकील हरिसिंह के साथ मिलकर अल्मा को सूरजभान के राजनैतिक प्रतिद्वंद्वी समाज कल्याण मंत्री श्रीरामशास्त्री के यहाँ पहुँचा देता है। यहाँ भी अल्मा को भोग्या के रूप में ही देखा जाता है। श्रीरामशास्त्री को खुश करने के लिए अल्मा को निर्वस्त्र कर उसके सामने पेश किया जाता है। उधर अल्मा के सारे कपड़े चिथड़े–चिथड़े कर सूरजभान और परसराम फिर से बलात्कार करते हैं। समाज कल्याण के लिए कार्य करने वाला मंत्री श्रीरामशास्त्री भी अल्मा का शारीरिक शोषण करता है। पर इस बार अल्मा खड़ी हो जाती है। वह मन में एक गंभीर संकल्प लेती है, न चाहते हुए भी अनेक बार दैहिक समर्पण करती है और अपने नंगेपन को छुपाने के बजाय नंगेपन को हथियार बनाती है। इसी स्त्री देह को वो श्रीरामशास्त्री की पत्नी के रूप में समर्पित कर देती है। ऐसा लगता है कि उसने परिस्थिति के सामने घुटने टेक दिए हैं, लेकिन ऐसा नहीं है, वो जीती है। सब कुछ सहते हुए भी पढ़ी–लिखी लड़की की भाँति बड़ी सतर्कता से अपनी आजादी के मौके तलाशती है। लेखिका लिखती हैं – *''अल्मा मौके की तलाश में थी। घर में रह रही सर्पिणी से बड़ा शत्रु कोई नहीं होता। जंग के दुश्मन तो भले दुश्मन से ज्यादा कुछ नहीं होते। श्रीरामशास्त्री एक दिन इस बात को याद करेगा। अल्मा ने अगले दांव की तैयारी शुरू कर दी। वो कमजोर भावनाओं से खेल खेलने लगी।''* [10] अल्मा अत्याचारों से टूटती जरूर है, लेकिन बिखरती नहीं है और अंततः अपनी परिस्थिति पर विजय प्राप्त कर लेती है। इसीलिए उपन्यास के अंत में श्रीरामशास्त्री की पत्नी के रूप में अन्याय करने वाले, अघोषित अपराधी कज्ज लोगों पर शासन करने के लिए वह तैयार होती है। खबर छपती है –*''श्रीरामशास्त्री के निधन के कारण बबीना विधानसभा सीट के लिए सत्तारूढ़ पार्टी की ओर से श्रीरामशास्त्री निकटतम सहयोगी और निष्ठावान गाइड अल्मा उम्मीदवार होंगी।''* [11]

अत: अंत में यह कहा जा सकता है भूरी ने कबूतरा समाज में जिस विद्रोह के बीज डाले थे, उसे कदमबाई ने आकार दिया और अल्मा ने अपनी शिक्षा और संघर्ष के बल पर इस विद्रोह को एक मुकाम तक पहुँचाया है। यह विद्रोह कबूतरा स्त्री की मुक्ति का पथ है। साथ में तथाकथित मुख्यधारा के लोगों को चुनौती भी देती है कि जनजाति स्त्रियाँ असल में बहुत वीर और सशक्त हैं, क्योंकि उनकी जड़ें झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की वंशज से हैं।

निष्कर्ष :

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' केवल कबूतरा जनजाति के जीवन–संघर्ष का चित्रण नहीं, बल्कि विशेष रूप से आदवासी स्त्रियों के अस्तित्व की लड़ाई और शोषण के विरुद्ध उनकी मुखर चेतना का सशक्त दस्तावेज है। यह शोधपत्र अल्मा कबूतरी उपन्यास में चित्रित स्त्री संघर्ष और शिक्षा के महत्व को विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास स्थापित करता

है कि कबूतरा जनजाति किस प्रकार तथाकथित सभ्य समाज (कज्जा) द्वारा निरंतर भेदभाव और हिंसा का शिकार होती है। विशेष रूप से कबूतरा स्त्रियाँ, अपराधी जाति की सदस्य होने के साथ-साथ स्त्री होने के नाते दोहरी चुनौती का सामना करती है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के बावजूद वे यौन, मानसिक और सामाजिक शोषण से मुक्त नहीं हैं। भूरी ने अपने बेटे रामसिंह को शिक्षा देकर सदियों पुरानी कबूतरा परंपरा को चुनौती दी है। उसकी यह दृढ़ता दर्शाती है कि कैसे कुछ स्त्रियाँ अपनी नियति को स्वीकार करने के बजाय उसे बदलने का साहस रखती हैं। कदमबाई, जो विधवा होने के बावजूद अपने बेटे राणा को चोर-डाकू बनने से बचाने के लिए प्रयास करती है और उसे शिक्षा का मार्ग दिखाती है, विधवाओं की दयनीय स्थिति के बावजूद उनकी स्वाभिमानी और संघर्षशील भावना को उजागर करती है। अल्मा, शिक्षित होने के बावजूद अपनी 'कबूतरी' पहचान के कारण समाज में उपेक्षा और शोषण का शिकार होती है। उसके साथ हुए बलात्कार और शारीरिक शोषण यह प्रमाणित करते हैं कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को मात्र एक वस्तु के रूप में देखा जाता है। हालाँकि, अल्मा हार नहीं मानती, वह अपनी कमजोरी को ही अपनी शक्ति बनाती है और सतर्कता से अपनी आजादी के मौके तलाशती है। श्रीरामशास्त्री की पत्नी बनकर राजनीति में प्रवेश करना उसका परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने का प्रतीक है, जहाँ वह स्वयं को एक भोग्या से सशक्त शासक के रूप में स्थापित करती है। मैत्रेयी पुष्पा ने इन पात्रों के माध्यम से दिखाया है कि कैसे विपरीत परिस्थितियों में भी स्त्रियाँ अपने अस्तित्व के लिए लड़ सकती हैं, शोषण का विरोध कर सकती हैं और शिक्षा को अपनाकर अपने भाग्य की नियंता बन सकती हैं। यह उपन्यास न केवल कबूतरा जनजाति के यथार्थ को सामने लाता है, बल्कि नारीवादी संघर्ष और सशक्तिकरण के एक प्रबल स्वर को भी प्रस्तुत करता है। ❑

संदर्भ सूची :

1. पुष्पा, मैत्रेयी, अल्मा कबूतरी, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सातवाँ संस्करण. 2021
2. वही, पृ. 61,
3. वही, पृ. 63,
4. वही, पृ. 111
5. वही, पृ. 243,
6. वही, पृ. 42,
7. वही, पृ. 75,
8. वही, पृ. 296,
9. वही, पृ. 327,
10. वही, पृ. 369,
11. वही, पृ. 390

सहायक ग्रंथ :

1. पटेल, डॉ. ऋचा. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास एक अनुशीलन, नई दिल्ली, नमन प्रकाशन, 2012
2. दीक्षित,दया. मैत्रेयी पुष्पा तथ्य और सत्य,नई दिल्ली : सामयिक बुक्स, 2010
3. चेरियन, लेबी, मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में समसामयिक समस्याओं का अध्ययन, कानपुर : साहित्य रत्नाकर, 2021
4. कालिया, ममता, स्त्री विमर्श का यथार्थ, किताबवाले, 2015
5. गुप्ता, रमणिका, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, सामयिक प्रकाशन, 2023

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

लीलाधर जगूड़ी के काव्य में लोक और अभिजात्य का समन्वय

गणेश प्रसाद

शोधार्थी, हिंदी विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल
(केंद्रीय) विश्वविद्यालय
श्रीनगर, उत्तराखंड-246174
8006235483
ganeshbhatt833@gmail.com

शोध-सार :

प्रस्तुत अध्ययन आधुनिक हिंदी कविता के महत्वपूर्ण कवि लीलाधर जगूड़ी के काव्य में लोक और अभिजात्य तत्वों के समन्वय का विश्लेषण करता है। जगूड़ी की कविता एक ओर लोकजीवन की सहजता, बोलचाल की भाषा, ग्रामीण संवेदना, जनअनुभव और सांस्कृतिक परंपराओं से जुड़ी हुई है, वहीं दूसरी ओर उसमें बौद्धिकता, दार्शनिक चेतना, शहरी अनुभव और अभिजात्य सौंदर्यबोध का भी सशक्त समावेश मिलता है। उनकी काव्य-दृष्टि लोक की जमीन से उठकर समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक यथार्थ को अभिव्यक्त करती है। कवि लोकभाषा, प्रतीकों और मिथकों के माध्यम से जटिल जीवन-सत्य को सरल किंतु प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार लीलाधर जगूड़ी का काव्य लोक और अभिजात्य के द्वंद्व को समाप्त कर दोनों के बीच एक सृजनात्मक संतुलन स्थापित करता है। यह समन्वय उनकी कविता को व्यापक पाठक-वर्ग से जोड़ते हुए उसे गहन वैचारिक ऊँचाई भी प्रदान करता है।

बीज शब्द :

लोक चेतना, अभिजात्य तत्व, समन्वय, आधुनिक हिंदी कविता, सांस्कृतिक संवेदना।

मूल आलेख :

'लोक' शब्द का अर्थ है जनसामान्य, साधारण जनता या समाज का वह वर्ग जो परंपराओं, रीति-रिवाजों और सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ा होता है। लोक में आम लोगों का जीवन, उनकी सोच, आस्थाएँ, विश्वास, व्यवहार, कला, साहित्य और संस्कृति शामिल होती है।

साहित्य और संस्कृति के संदर्भ में लोक का अर्थ उन लोगों से है, जो अपनी परंपराओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से आगे बढ़ाते हैं, जैसे - लोकगीत, लोककथा, लोकनृत्य, लोककला आदि।

लोक और अभिजात्य की अवधारणा :

लोक और अभिजात्य समाज की दो भिन्न लेकिन परस्पर संबद्ध सांस्कृतिक अवधारणाएँ हैं, जिनके माध्यम से सामाजिक संरचना, साहित्य और संस्कृति को समझा जाता है। लोक की अवधारणा जनसामान्य से संबंधित है। इसमें सामान्य लोगों का जीवन, उनकी भाषा, परंपराएँ, रीति-रिवाज, विश्वास, आस्थाएँ और

सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ सम्मिलित होती हैं। लोक-संस्कृति स्वाभाविक, सामूहिक और परंपरागत होती है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से आगे बढ़ती है। लोक साहित्य में लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें, लोकोक्तियाँ और लोकनाट्य प्रमुख हैं। इसमें सहजता, भावनात्मकता और जीवन की वास्तविक अनुभूति दिखाई देती है। इसके विपरीत, अभिजात्य की अवधारणा समाज के शिक्षित, संपन्न और विशिष्ट वर्ग से जुड़ी होती है। अभिजात्य संस्कृति लिखित, शास्त्रीय और संस्थागत स्वरूप लिए होती है। इसका संबंध विद्वानों, राजसत्ता, उच्च शिक्षा और शास्त्रीय परंपराओं से माना जाता है। अभिजात्य साहित्य में परिष्कृत भाषा, कलात्मक सौंदर्यबोध, बौद्धिकता और संरचित शिल्प का विशेष महत्व होता है। लोक और अभिजात्य के बीच मुख्य अंतर उनकी उत्पत्ति, अभिव्यक्ति और ग्राह्यता में दिखाई देता है। जहाँ लोक संस्कृति जन-जीवन से स्वत: उत्पन्न होती है, वहीं अभिजात्य संस्कृति विशेष वर्ग द्वारा सृजित और संरक्षित होती है। फिर भी, दोनों एक-दूसरे से पूर्णत: अलग नहीं हैं। समय-समय पर लोक तत्व अभिजात्य साहित्य और कला को समृद्ध करते हैं और अभिजात्य परंपराएँ लोक में स्थान पाती हैं। अत:, लोक और अभिजात्य की अवधारणाएँ समाज की सांस्कृतिक विविधता और समृद्धि को समझने में सहायक हैं तथा दोनों के संतुलन से ही साहित्य और संस्कृति का समग्र विकास संभव होता है। लीलाधर जगूड़ी समकालीन हिंदी कविता में लोक (लोक) और शास्त्रीय (शास्त्रीय) परंपराओं के अद्‌भुत समन्वय के कारण एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनकी कविता भारतीय सांस्कृतिक चेतना से गहरे रूप में जुड़ी हुई है, जहाँ लोकजीवन की सहजता शास्त्रीय साहित्यिक सौंदर्यबोध की बौद्धिक गहराई के साथ सहअस्तित्व मे दिखाई देती है। स्थानीय बोलियों, मौखिक परंपराओं और दैनिक जीवन के अनुभवों को परिष्कृत काव्यात्मक संरचनाओं, दार्शनिक चिंतन और शास्त्रीय प्रतीकों के साथ संयोजित करके जगूड़ी एक ऐसी काव्य-स्वर रचना करते हैं, जो सामाजिक और सांस्कृतिक सीमाओं को पार करती है। *यह समन्वय उनकी कविता को सामान्य पाठकों के लिए सहज बनाता है तथा साथ ही विद्वानों और आलोचकों को भी गहराई से आकर्षित करता है, जिससे जनसामान्य और साहित्यिक गरिमा के बीच की दूरी समाप्त होती है।*[1] जगूड़ी की कविता में लोक और शास्त्रीय तत्वों का समन्वय कोई सतही संयोजन नहीं है, बल्कि यह जीवनानुभव और साहित्यिक चेतना से उपजा एक स्वाभाविक और सजीव संयोग है। उनकी रचनाओं मे ं लोक तत्व क्षेत्रीय बिंबों, बोलचाल की भाषा, मिथकों, अनुष्ठानों तथा ग्रामीण जीवन की लय के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं, जबकि शास्त्रीय तत्व सुसंयमित काव्य अनुशासन, प्रतीकात्मक गहराई और प्राचीन भारतीय चिंतन की अंतर्ध्वनियों के रूप में उपस्थित रहते हैं। *जगूड़ी न तो लोक संस्कृति को कच्चा सामग्री मानते हैं और न ही शास्त्रीय परंपरा को जड़ ढाँचा, बल्कि दोनों को गतिशील संवाद में रखकर अर्थ की बहुस्तरीय संरचना निर्मित करते हैं।* [2]

जगुड़ी जी की समन्वयवादी दृष्टि :

जगूड़ी के काव्य में लोक और शास्त्रीय समन्वय को स्वतंत्रता के बाद के भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के संदर्भ में समझा जाना आवश्यक है। सामाजिक परिवर्तन के प्रति सजग कवि के रूप में वे लोक परंपराओं के माध्यम से सांस्कृतिक स्मृति और सामूहिक पहचान को सुरक्षित रखते हैं, वहीं शास्त्रीय तत्वों के द्वारा समकालीन यथार्थ को शाश्वत दार्शनिक दृष्टि प्रदान करते हैं। इस द्वैध दृष्टिकोण के कारण पर्यावरण ह्रास और नैतिक पतन जैसे विषयों पर सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े रहते हुए सार्थक टिप्पणी करने में सक्षम होते हैं। *इस प्रकार उनकी कविता परंपरा और आधुनिकता के बीच एक सशक्त सांस्कृतिक संवाद बन जाती है।*[3]

जगूड़ी की कविता की एक प्रमुख विशेषता उसका सौंदर्यात्मक और भाषिक सामंजस्य है। लोकभाषा की सहजता, कहावतें और रूपक स्वाभाविक रूप से शास्त्रीय भाषा की परिष्कृत अभिव्यक्ति में घुल-मिल जाते हैं, जिससे काव्य में लयात्मक संतुलन उत्पन्न होता है। यह शैलीगत समन्वय उनकी भाषिक दक्षता को प्रमाणित करता है, जिसके माध्यम से वे साधारण अनुभूतियों को गहन विचारों का माध्यम बना देते हैं। *लोकलय से उत्पन्न संगीतमयता और शास्त्रीय संरचना की गरिमा मिलकर उनकी कविता को विशिष्ट सौंदर्य प्रदान करती है।*[4]

लीलाधर जगूड़ी की कविता में लोक और शास्त्रीय

तत्वों के समन्वय का अध्ययन आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास को समझने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उनकी काव्यदृष्टि यह स्पष्ट करती है कि पारंपरिक सांस्कृतिक रूपों को समकालीन काव्य संरचनाओं में किस प्रकार नवजीवन दिया जा सकता है। *यह समन्वय न केवल साहित्यिक विरासत को संरक्षित करता है, बल्कि उसे भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी प्रासंगिक बनाता है।*[5] जगूड़ी की कविता का अध्ययन सांस्कृतिक निरंतरता, साहित्यिक नवाचार और लोक चेतना तथा शास्त्रीय परंपरा के सजीव अंतर्संबंध को समझने की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है।

1. लीलाधर जगूड़ी की कविता में लोक और शास्त्रीय तत्वों की प्रकृति तथा उनके पारस्परिक समन्वय का विश्लेषण करना।

2. जगूड़ी के काव्य में लोकजीवन, परंपराओं और सांस्कृतिक चेतना के शास्त्रीय सौंदर्यबोध के साथ संयोजन को समझना।

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक एवं व्याख्यात्मक शोध पद्धति पर आधारित एक साहित्यिक समीक्षा है। इस शोध मे प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों का समन्वित और व्यवस्थित उपयोग किया गया है, जिससे लीलाधर जगूड़ी के काव्य में निहित लोक और अभिजात्य तत्वों का गहन विश्लेषण संभव हो सके।

इस अध्ययन के अंतर्गत प्राथमिक स्रोतों के रूप में लीलाधर जगूड़ी के प्रमुख काव्य-संग्रह, जैसे - 'नाटक जारी है' तथा 'शंखमुखी शिखरों पर' का सूक्ष्म पाठ-विश्लेषण किया गया है। इन काव्य-संग्रहों की कविताओं में प्रयुक्त लोक-तत्वों, जैसे लोकभाषा, लोकबिंब, लोकजीवन और ग्रामीण संवेदना के साथ-साथ अभिजात्य तत्वों दार्शनिक दृष्टि, शास्त्रीय चेतना और आधुनिक बौद्धिक विमर्श की पहचान कर उनके पारस्परिक संबंधों का अध्ययन किया गया है।

द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत लीलाधर जगूड़ी पर उपलब्ध आलोचनात्मक ग्रंथो शोध-पत्रों, साहित्यिक पत्रिकाओं तथा समीक्षाओं का अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त समकालीन हिंदी कविता में लोक और अभिजात्य के संबंध में हुए विमर्शों को संदर्भ सामग्री के रूप में ग्रहण किया गया है, जिससे शोध को सैद्धांतिक और आलोचनात्मक आधार प्राप्त हो सके।

विश्लेषण की दृष्टि से इस अध्ययन में विषयवस्तु विश्लेषण, प्रतीकात्मक एवं बिंबात्मक विश्लेषण तथा तुलनात्मक दृष्टि का प्रयोग किया गया है। यहाँ लोक और अभिजात्य को परस्पर विरोधी ध्रुवों के रूप में नहीं, बल्कि उनके समन्वय और अंतर्संबंध के रूप में देखा गया है। इस शोध का प्रमुख उद्देश्य यह स्थापित करना है कि लीलाधर जगूड़ी का काव्य लोक और अभिजात्य को विरोध में नहीं, बल्कि पूरक और संवादात्मक तत्वों के रूप में प्रस्तुत करता है।

परिणाम :

सन् 1964 में लीलाधर शर्मा के नाम से जगूड़ी का पहला कविता संग्रह शंखमुखी शिखरों पर प्रकाशित हुआ। प्रकृति, गीत और नयी कविता के लयात्मक गति से युक्त कात्य संग्रह है शंखमुखी शिखरों पर। इस संग्रह की समीक्षा करते हुए प्रख्यात कवि प्रयाग शुक्ल ने 'कल्पना' पत्रिक में एक नये शब्द का प्रयोग करते हुए कहा था कि लीलाधर शर्मा की ये कविताएँ घरू मोह की भी कविताएँ हैं। घरू मोह शब्द प्रयागजी ने नॉस्टेलिजया के लिए इस्तेमाल किया था। *जगूड़ी ने ब्राह्मण होने की पहचान मिटाने के लिए खुद को शर्मा की जगह जगूड़ी बना दिया। यह ग्रामवाची नाम है।*[6] शंखमुखी शिखरों परश् से नाटक जारी है की ओर आने पर शर्मा का जगूड़ी हो जाना एक स्वाभाविक विकास है। इस काव्य संग्रह में प्राकृतिक काव्यबोध से उत्पन्न अनुभूतियाँ संकलित है। प्रकृति वर्णन के साथ प्रेम कावर्णन भी इस संग्रह की कविताओं में है। शंखमुखी शिखरों पर में संगृहीत एक कविता है श्रृंखलित प्यार। इसमें कवि का कथन है कि प्यार एक ऐसी वस्तु है, जो जंजीरों से बँधा हुआ या श्रृंखलित है। उसे आसानी से नहीं तोड़ सकता है। इस संग्रह की कविताओं में पर्वतीय प्रकृति का वर्णन भी है। जगूड़ी की कविता में प्रकृति चित्रण समकालीन जीवन के द्वंद्वों और कुंठाओं से परिपूर्ण है। मानव जीवन की विडम्बनाओं का वर्णन कवि ने प्रकृति के माध्यम से किया गया है। *जगूड़ी की प्रकृति विषयक रचनाएँ अपने प्रयोगों की नव्यता, भाव भंगिमा की विविधता, तटस्थ*

चित्रण और सूक्ष्म रूपांकन के कारण अत्यन्त विशिष्ट बन गई है। [7]

जगूड़ी हर भाव दशा को प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से नया एवं उपयुक्त रंग देने में समर्थ हुए हैं। जगूड़ी ने स्त्री की विवश मानसिकता को बड़ी रोचक ढंग से व्यक्त किया है। कवि की नारी संबंधी दृष्टि यथार्थ चेतना पर आधारित है। नारी मन की विवशताओं को यथार्थ के धरातल पर व्यक्त करता है। संतोष कुमार का वक्तव्य ठीक है, जगूड़ी को शासन के चरित्र की गुफाओं का पूरा अंदाजा हैं, क्योंकि यह अपाहिज बनाने वाली साजिरों पहले से अधिक अन्धकार और साँपों का पहरा देकर सहानुभूति के जंजीर में बाँधना चाहती हैं। इसलिए अत्याचारियों के दानवी करतूतों को बदलने का संकल्प आवश्यक है। *कवि ने राष्ट्रीय एकता अखण्डता को बनाये रखने केलिए एक क्रांति छोड़ दी है।* [8]

'चोटी से घाटी तक हिल रही होंगी
अँधेरे की टाँगें
सो रहा होगा सारा गाँव
दरवाड़ की थपका रही होंगी
चीड़ों की आवारा साँसो
ओबरे में बज रही होगी
गाय के गले की घंटी
जब कोई बैल उसे छेड़ता होगा
गले बँधी साँकल से वे हैं या नहीं?
किंतु मैं अवश्य क्षुब्ध हूँ.....
तुषार भीगे स्लेटी छतों के ढलाव
टप टप टप टपक रहे
कच्चे आँगन में।' [9]

इस कविता में ओबरे में (पहाड़ी मकानों की पहली मंजिल, जिनमें पशु रहते हैं) बँधे हुए पशु हैं मगर वे अपने बारे में वहाँ कुछ नहीं सोच रहे हैं, लेकिन उनके बारे में ऊपर के कमरे वाला सोच रहा है। दूसरी मंजिल में कमरे के भीतर जो आदमी है वह घरेलू यादों से पीड़ित है और कामेच्छा का प्रादुर्भाव उसकी कोशिकाओं मे जोर मार रहा है। लगता है कि जैसे कच्चे कगार की तरह वह ढह पड़ेगा। यहाँ बजती हुई घंटी गाय के गले में है। घंटी बजती है और ऊपर वाला और ज्यादा सपने में चला जाता है। कुछ लोग कह सकत हैं कि श्रृंखलित प्यार की इसी गाय की मृदुलता ओढ़कर 'स्वप्नभंग' नामक कविता के बैल सपना देख रहे हैं। *ओबरे में अगर गाय के गले की घंटी बजी तो जगूड़ी के अनुमान उनकी कल्पना पर सवार हो जाते थे। यही बात 'स्वप्न भंग' कविता तक पहुँचते हुए एकदम उलट जाती है। बैल के गले की घंटी बजती है और उस एक आवाज पर सारा स्वप्नभंग हो जाता है।* [10]

पशुओं के गले में बाँधी जानेवाली घंटी का जो भी अतीत था, जो भी समाजशास्त्र हो, लेकिन घंटियाँ साधारणत: उन्हें चमत्कृत करने केलिए ही बाँधी जाती है। 'घंटी' पशु को खोने से बचाने में मदद के लिए सबसे पहले बाँधी गयी होगी। यह अलंकृत उतना नहीं करती जितना कि अगर पशु खो जाए तो उसकी ढूँढ़ में सहायता करती है। अब मनुष्य की पहचान खो गयी है। आदमी के अंदर आत्मा की एक घंटी थी, जो छीन गयी है। अब हम एक दूसरे को निजी अपरिचय में जानते हैं यह संबंधों का एक नया संकट है।

'शंखमुखी शिखरों पर' की कविताएँ पहाड़ी प्रकृति में रमे और थमे उस मनुष्य की सोच लगती हैं, जो किशोर उम्र की दहलीज पार कर रहा है और घर से बाहर की दुनिया में होते हुए भी केवल अपने ही घर को देख रहा है। प्रकृति का सान्निध्य और जीवन के स्वत: स्फूर्त सरल मोड़ इस संग्रह की कविताओं में अक्सर दिख जाते है। [11]

'नाटक जारी है' 1972 में प्रकाशित हुआ काव्य संग्रह है, जिसमें 64 के बाद की कविताएँ हैं। इन कविताओं में अर्थ का एक असंगठित संसार है। एक अराजक भाषा और विन्यास से पाठक की मुठभेड़ है और अंतत: इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि यहाँ शिल्प भी वस्तु है। कवि शुरू से ही अपने शिल्प ही नहीं, अपने विषय की समस्याग्रस्तता को भी भाषा में चिह्नित करने का प्रयास करते रहते हैं।

''भाषा के जमे हुए पानी में सुराख बनाते हुए
मैं सोचता हूँ यह तिप-तिप नदी कैसे होगी।''[12]

इसमें जगूड़ी की 15 कविताएँ संकलित है। लीलाधर जगूड़ी की कविताएँ आज के भारतीय मनुष्य

की पीड़ाओं को निर्भयता की हद से गुजरती हुई सजीव नाटकीयता में परिवर्तित करती है। जगूड़ी की कविता पारिवेशिक विद्रुपताओं और विकृतियों के विरूद्ध संवेदनशील कवि मन की प्रतिक्रियात्मक अभिव्यरिक्त है। लंबी-चौड़ी वक्तृताओं के स्थान पर किसी विचार या सिद्धांत का संक्षिप्त रूप में प्रतिपादन नाटकीय तत्व है, जिसमें कथ्य में गत्यात्मकता एवं चित्रमयता समाविष्ट हो जाती है। इस काव्य संग्रह के बारे में धूमिल ने एक पत्र लिखा - इस संग्रह की भाषा खरगोश से भी ज्यादा कोमल है, लेकिन कविताओं को अगर कई बार पढ़ा और सहलाया जाए तो पता चलता है कि खरगोश की हड्डियाँ स्टेनलेस स्टील की शैली में ढले हुए अनुभव के सुदृढ़ प्लास्टिक से बनी हैं। एक तरह से तुमने मुझे शिल्प परिवर्तन की चुनौती दी है (जो तुम कहते भी रहते हो) और मैं तुम्हारे इस सन्देश को स्वीकार करता हूँ। *बधाई मेरी नाटक जारी है, की कविताएँ एक बेरोजगार युवक की कविताएँ हैं, जो भाषा और आशय के दृष्टिकोण में उग्र, अस्थिर और बेचैनी दिखती हैं।* [13]

व्यक्ति ही समूह और समूह ही व्यक्ति है। सारी कल्पनाओं के केंद्र में एक युवा मन बार बार खुद को ही रखकर सोचता है। इसी प्रकार अजब कोलाहल भरा उद्धत अकेलापन नाटक जारी है, में हम देख सकते हैं। नाटक जारी है में ऐसे कई मुहावरे है, जो उस समय के भौंचक्का, लुटे-पिटे आदमी का चित्र दिखाते हैं। इसमें एक पंक्ति इसप्रकार है टिकट घर होने से रोक ही जाना चाहिए आपका ध्यान। *विचलित और बिखरावपूर्ण स्थितियों के लिए टिकट घर हो जाने वाला मुहावरा, युगीन स्वभाव को नये सिरे से पकड़ने की कोशिश लगता है।* [14]

इस संग्रह की 15 कविताओं से अधिकांश कविताएँ लंबी है। प्रस्तुत काव्य संग्रह की समस्त कविताएँ समकालीन परिवेश की विद्रुपताओं और विसंगतियों का कलात्मक दस्तावेज है। इसके नामकरण भी अलग है, परंतु ये एक ही परिवेश की विभिन्न स्थितियों की ज्ञापक हैं। बिंब एकदम अप्रयुक्त, नये पाये हुए और अनगढ़ टेढ़ेपन के साथ अलग से दिखते हैं। आज के महौल म समस्त उपलब्धियों का केंद्रबिंदु अर्थ है। आज अर्थ ही सर्वोपरि है। जगूड़ी का विश्वास है कि आर्थिक विवशता से उपजी मर्मान्तक स्थिति का दायित्व राजनीतिक नेताओं पर है। कवि कहता है कि यदि तुम्हारे पास पैसा है तो तुम बूट की ठोकर से सारी व्यवस्था को चला सकते हो। इस उदाहरण देखिए -

'होता ऐसा है। जो जैसा है। उसी रूप में पैसा है।
अगर तुम्हारे पास भी वह हो
तो तुम सारी व्यवस्था को बूट की ठोकर से चला सकते हो।' [15]

इस कविता संग्रह के टेलीफोन पर कविता में वर्तमान देश की राजनीतिक, पारिवारिक और सामाजिक स्थितियों का वर्णन टेलीफोन पर वार्तालाप के रूप में किया गया है। 'दुनिया की क्या खबर है?

अरे यहाँ -
यहाँ तो हर घर मे साँप का डर है
न कोई इधर है न कोइ उधर है। बस यही एक कसर है।
कुर्बानी का न सिर है। न धड़ है। अच्छा, उधर बहुत गड़बड़ है?' [16]

राजनीतिक नेताओं के बारे में उनका व्यंग्य इस प्रकार हैं-

'नेता इस देश का सही तर्क है
जहाँ पर सबका बड़ा गर्क है वह मकान है'
उनके कंधों पर देश है (मूर्ख सिर नहीं)
'और जेब में कोई केश है। उनकी एक ही आदत है
कि आज भी और कल भी उनका कहीं स्वागत है।' [17]

जात पाँत के आधार पर सांप्रदायिक उपद्रव होते हैं, आबाद बस्तियां जात उजड़ती हैं और सांस्कृतिक गातिविधियाँ भंग हो जाती है। जात-पाँत के कारण आम जनता पीड़ा और पराजय बोध के एहसास से दंशित होती है जात-पाँत के आधार पर देश और समाज की क्षति हुई है। जगूड़ी इस पीड़ा को अत्यंत गहराई से इन पंक्तियों द्वारा व्यक्त करते हैं -

'कोई यकीन करे या न करे।
बाजार से थोड़ा हिंदुत्व लेकर हर बार दम तोड़ते हुए।
किसी की दीवारों पर पड़ रही है।
छतमेरे दिमाग पर पड़ रही है।' [18]

जात-पाँत का एहसास पारस्परिक मेलजोल का

अवरोधक है, मानवीय मूल्यों का भंजक है और सामाजिक एकता का विनाशक है। सांप्रदायिक आधार पर हुए देश विभाजन पर केदारनाथ अग्रवाल की मानसिकता से इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

'आह, धरती बंट गयी है
एक हिन्दुस्तान अब दो हो गया है
आदमी का दिल कलेजा कट गया है।
मंदिरों के देव, मस्जिदो के खुदा।
दो वैरियों से लड़ रहे हैं
आह, धरती बंट गयी है।'[19]

जगूड़ी ने उस ईश्वरीय शक्ति के प्रति अनास्था प्रकट की है, जो मंदिर में प्रतिष्ठित है और जिसकी पूजा करने का अधिकार केवल कतिपय धनवान व्यक्तियों को है –

'मंदिर के लगभाग मे घुसा हुआ ईश्वर
तीस रुपए तक वाला ईश्वर।
मुझसे नहीं खरीदा जा सकेगा' [20]

ईश्वर और धर्म की कल्पना सामाजिक शोषण प्रक्रिया के मूल में है। जगूड़ी ने किसी काल्पनिक पराशक्ति पर आश्रित होने के स्थान पर वास्तव में सामाजिक संघर्ष को श्रेय दिया है। ईश्वर कभी भी मध्यस्थ बनकर अपने संघर्ष को समाप्त नहीं करते। उनकी प्रतीक्षा में कमजोर व्यक्ति अनवरत अत्याचार सहकर उसे और अधिक संवृद्ध करता है। ऐसी स्थिति में अमानुषिक कृत्यों से उपजा अंधकार प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर हो जाता है। जगूड़ी ने नाटक जारी है कृति में यह प्रस्तुत करता है कि जिंदगी में चाहे जितनी बेतरतीबी हो : किसी अवतार के अवतरण की संभावना निराधार है –

'उस रास्ते से।
जहाँ से अब किसी अवतार की संभावन नहीं।
तुम देख सकते हो घरों मे भरे हुए पुर्जे।
कहीं फिट नहीं हो पा रहे हैं।' [21]

आज ईश्वर की मूर्तियों और चित्रों के नाम पर सर्वत्र एक व्यावसायिक दृष्टिकोण है, जिसके कारण मूल्य–संस्थापन मे कोई भूमिका नहीं बनती। मंदिर में तो प्रभु मूर्ति का पूजन अर्चना होता ही था, अब कुछ व्यापारी लोगों ने प्रभू के चित्रों को कलेंडरों, जूतों और घड़ियों पर भी प्रदर्शित कर दिया है। धर्म की आड़ में मानवीय संस्कृति के लोककल्याणकारी सत्यों की जो दुर्गति हुई हो, वह आज भी मौजूद है। चुनाव प्रणाली की निरर्थकता के बारे में कवि इस प्रकार व्यक्त करता है।

'हर जगह देखा–देखी की चोट है
समझ और सहमति से बाहर औसत आदमी
गलत उम्मीदवार का सुरक्षित वोट है।' [22]

सांसद निर्वाचन से पूर्ण नेतागण जो दावों, वक्तव्यों और संशोधित मूल्यों की बात करते थे, उसे क्रियात्मक रूप देना तो दूर ही रहता है।

नाटक जारी है इस संग्रह की सबसे महत्वपूर्ण लंबी कविता है। जीवन रूपी नाटक हमेशा जारी रखता है। उस नाटक में प्रत्येक पात्र बदल बदलकर आता है और अपना कर्तव्य निभाकर लौट जाता है। व्यक्ति अपनी पहचान को और गहरा करने केलिए इस नाटक में उपयुक्त कपड़ों में प्रकट होता है। जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है, वह दुर्घटनाओं में फँस जाता है। उसका जीवन दिशाहीन एवं व्यर्थ हो जाता है। जीवन रूपी नाटक के पर्दा उठने पर हम इस तथ्य से अवगत नहीं होंगे कि किस मोड़ पर मृत्यु हमारी इंतजार कर रही है। मृत्यु और जन्म इस नाटक में एक के बाद एक आते ही रहते है। कवि ने आदमी की बुरी हालत के कारण व्यवस्था और शोषण की पद्धतियों को दोषी और जिम्मेदार ठहराया है। लीलाधर जगूड़ी हिंदी में अकविता आंदोलन के प्रमुख हस्ताक्षर रहे हैं। उनके कविता संग्रह 'नाटक जारी है' यह प्रयास पर्याप्त मात्रा में है।

इस संग्रह में सामाजिक जीवन की विसंगतियों के साथ–साथ उनकी समझ अकवितावादी आंदोलनों से ग्रस्त थी। कविता को जगूड़ी ने आँसू भरी आँखों का दरख्वास्त कहा है, जिसमें जीवन का दैन्य, उपेक्षा प्रवाहित होता है। उनकी कविता आशावादी है। 'नाटक जारी है' की अनेक कविताओं में कवि अकवितावादी मुद्रा अपनाता है, जिसमें अश्लीलता और असंयम है। नारी संबंधी मुद्दों को वहाँ से गंभीरता से नहीं लेते। राजनीति में सबसे अधिक असंगतियाँ हैं, इसलिए स्वातन्त्र्योत्तर काल में यह सबसे अधिक व्यंग्य का शिकार हुई है। कवि हड़ताल और प्रजातंत्र की विफलता तथा नेताओं की मौकापरस्ती पर टूट पड़ता है। चारित्रिक दृष्टि से हमारा देश गिरा हुआ है।

कहीं भी अनुशासन, नियमितता और सही आचरण दृष्टिगत नहीं होता। स्वेच्छाचरण और छल प्रपंच के कारण आदमी अब छोटा हो गया है।

'दुनिया मेज पर ऊँची। पेटभर गहरी हो गई थी।
छोटा सिर्फ आदमी हुआ
ऐसा करते हैं कि इस देश का एक नक्शा बनाते है।'[23]

'नाटक जारी है' प्रस्तुत काव्य संग्रह कोई दार्शनिक ही नही है, वरन् आज के आदमी की नियति से बढ़कर कुछ भी है। प्रस्तुत काव्य संग्रह में समकालीन परिवेश में व्याप्त अंतर्द्वंदों, संघर्षों, भूख से पीड़ित अनुभवों को काव्य रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कवि ने जातिगत, धार्मिक एवं सामाजिक सद्भाव को कायम रखने के लिए कवि ने विद्रोही स्वर में अपने भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है –

'अपनी-अपनी जाति के।
गिरोह में घुसकर।
एक के ऊपर एकबमके रहते हैं।
गरीब की मनोदशा, भूख, बेकारी, शोषण आदि विषयों की चर्चा की है।' [24]

कवि ने राजनीतिक चेतना एवं पूँजीवादी व्यवस्था को बिल्कुल निजी संवाददाता द्वारा नामक कविता के द्वारा इस प्रकार व्यक्त करते है।

हर दिशा की ओर नहीं घुमायी जा सकती खिड़की
इसलिए मैं छत पर खड़ा हूँ'' [25]

खलनायक शीर्षक कविता के माध्यम से कवि सर्वहारा वर्ग का पक्ष लेता है आम आदमी के साथ घटित होने वाली घटना, देश की विषमता ग्रसित स्थिति का अवलोकन को अनैतिक कविता में कवि ने भूख की शक्ति मनुष्यता से गिरते मानव की दयनीय स्वरूप को प्रकट किया है। 'घर बुलाते हुए टेलीफोन पर' आदि कविताओं में यथार्थ का नग्न रूप का खुलासा किया है तथा भ्रष्टाचार का फलती-फूलती खेती को रोके जाने वाले कदम उठाने की बात कही है। साथ ही भ्रष्टतंत्र की पोल खोलने के लिए युवा वर्ग को आगे की बात कही है, जो कि आधुनिक संदर्भों में सही तथा बेजोड लगती है। लीलाधर जगूड़ी की कविता समकालीन हिंदी काव्य में लोक और अभिजात्य के समन्वय का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करती है। लोक उनके लिए केवल ग्रामीण जीवन का चित्रण नहीं, बल्कि मानवीय अनुभवों की आधारभूमि है। वे लोकजीवन की साधारण घटनाओं, वस्तुओं और अनुभवों को कविता का विषय बनाकर उन्हें व्यापक दार्शनिक अर्थ प्रदान करते हैं। दूसरी ओर, अभिजात्य तत्व उनके काव्य को वैचारिक ऊँचाई देते हैं। आधुनिकता, अस्तित्ववाद, सामाजिक विडंबनाएँ और बौद्धिक प्रश्न उनकी कविताओं को केवल भावात्मक नहीं, बल्कि चिंतनशील बनाते हैं। यह अभिजात्यता लोक से कटकर नहीं आती, बल्कि लोक अनुभवों से ही विकसित होती है। जगूड़ी की विशेषता यह है कि वे लोक को भावुकता और अभिजात्य को दुरूहता से बचाते हैं। उनकी कविता में दोनों तत्व एक-दूसरे को संतुलित करते हैं। यही कारण है कि उनकी कविताएँ जनसामान्य के लिए सहज और विद्वानों के लिए विचारोत्तेजक बन जाती हैं। इस प्रकार लीलाधर जगूड़ी का काव्य यह सिद्ध करता है कि लोक और अभिजात्य के बीच कोई अनिवार्य द्वंद्व नहीं है; साहित्य में इनका समन्वय ही सृजनात्मकता और सामाजिक प्रासंगिकता को सुदृढ़ करता है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध-पत्र में निर्धारित उद्देश्यों के आलोक में यह स्पष्ट रूप से निष्कर्षित किया जा सकता है कि लीलाधर जगूड़ी की कविता में लोक और शास्त्रीय तत्वों का समन्वय केवल शिल्पगत प्रयोग नहीं, बल्कि उनकी समग्र काव्य-दृष्टि का मूल आधार है। प्रथम उद्देश्य के अनुसार जगूड़ी के काव्य में लोक-जीवन, लोक-भाषा, ग्रामीण अनुभूति, पर्वतीय प्रकृति, घरेलू स्मृतियाँ और जन-सामान्य की पीड़ाएँ जिस प्रकार अभिव्यक्त होती हैं, वे शास्त्रीय सौंदर्यबोध, गहन प्रतीकात्मकता और आधुनिक काव्य-शिल्प से जुड़कर एक नई काव्यात्मक संरचना का निर्माण करती हैं। 'शंखमुखी शिखरों पर' में प्रकृति, प्रेम और स्मृति का लोकात्मक संसार जहाँ गीतात्मक लय और भाव-संवेदनाओं से युक्त है, वहीं उसमें शास्त्रीय अनुशासन, बिंब-योजना और गूढ़ अर्थ-स्तर भी विद्यमान हैं। इस प्रकार लोक और शास्त्रीय तत्व परस्पर विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक के रूप में उभरते हैं। द्वितीय उद्देश्य की दृष्टि से यह अध्ययन प्रमाणित करता है कि

जगूड़ी के काव्य में लोकजीवन, परंपराएँ और सांस्कृतिक चेतना आधुनिक शास्त्रीय सौंदर्यबोध के साथ गहरे स्तर पर संयोजित हैं। उनकी काव्य-दृष्टि न तो लोक में सीमित है और न ही शास्त्रीयता में आबद्ध; बल्कि दोनों के अंत:संलयन से वह एक ऐसी संवेदनशील, विद्रोही और मानवीय कविता रचते हैं, जो समकालीन समाज की विडंबनाओं, पीड़ाओं और संभावनाओं को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करती है। इस प्रकार जगूड़ी का काव्य हिंदी साहित्य में लोक-शास्त्रीय समन्वय का एक महत्वपूर्ण और विशिष्ट प्रतिमान स्थापित करता है। ❑

संदर्भ :

1. लीलाधर जगूड़ी, (1964), शंखमुखी शिखरों पर, नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन। 1(3), 3-38A
2. जगूड़ी, लीलाधर, (1972), नाटक जारी है, नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन 4 (5), 4-22
3. शुक्ल, प्रयाग, (1965), लीलाधर जगूड़ी की कविता में 'घ मोह' की संवेदना, कल्पना, 13 (4), 12-45
4. धूमिल, (1973), लीलाधर जगूड़ी को पत्र। पूर्वग्रह, 6 (2), 45-47A
5. कुमार, संतोष, (1988), समकालीन हिंदी कविता चेतना और संघर्ष, इलाहाबाद लोकभारती प्रकाशन। 4(6), 31-37A
6. सिंह, नामवर, (1995), आधुनिक हिंदी कविता और लोकबोध, वाराणसी ज्ञानमंडल लिमिटेड। 31(5), 23-38A
7. पांडेय, रमेश, (2002), हिंदी कविता में लोकसंस्कृति, नई दिल्ली वाणी प्रकाशन। 10 (4), 12-31b
8. शुक्ल, रामस्वरूप, (2020), उत्तर-आधुनिक हिंदी कविता प्रवृत्तियाँ और विमर्श. नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन। 4(1), 45-22
9. अनुभव के आकाश में चाँद लीलाधर जगूडी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं 1994 3(1), 23-34b
10. इस यात्रा में लीलाधर जगूड़ी, साहित्य भारती दिल्ली, प्र.सं 1983 2(1), 56-672W
11. ईश्वर की अध्यक्षता में लीलाधर जगूड़ी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं 1999 4(3), 34-48A
12. बाबर का मुँह विज्ञापन से ढका है-लीलाधर जगूड़ी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं 2008 5(2), 55-89
13. घबराए हुए शब्द - लीलाधर जगूड़ी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं 1981 3(2), 67-89 .
14. जितने लोग उतने प्रेम लीलाधर जगूड़ी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं 2013 2(1), 34-47A
15. भय भी शक्ति देता है - लीलाधर जगूड़ी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं 1991 2(1), 45-47A
16. बची हुई पृथ्वी लीलाधर जगूडी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं - 1977 6(2), 45-47A
17. महाकाव्य के बिना लीलाधर जगूड़ी, किताबघर, नई दिल्ली, प्र.सं 1995 3(2), 67-35
18. नाटक जारी है - लीलाधर जगूड़ी, किताबघर, नई दिल्ली, प्र. सं 1972 4(1), 67-89b
19. रात अब भी मौजूद है - लीलाधर जगूड़ी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं 1975 3(1), 67471A
20. आलोचना की पहली किताब विष्णुखरे, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 11- नई दिल्ली, प्र.सं -1983 6(2), 45-47A
21. कल सुनना मुझे, धूमिल, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, 1999 6(2), 45-67
22. कवि कर्म और काव्य भाषा डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 3(1), 547A
23. कविता और संघर्ष चेतना यश गुलाटी, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1980 4(2), 15-47A
24. कविता का पूरा दृश्य डॉ. माधव हाडा, वागदेवी प्रकाशन, बिकानेर, 1992 5(3), 56-78
25. नयी कविताएँ - एक साक्ष्य रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, प्र.सं -1990 2(2), 42-47A
26. नयी कविता की भाषिक संरचना सरिता वैघ, हिमाचल पुस्तक भण्डार, दिल्ली, प्र.सं -1993 3(2), 45-78

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

पुस्तक समीक्षा

प्रो. प्रदीप के शर्मा की पुस्तक 'संस्कृति-पथ के पथिक'

समीक्षक : डॉ. मुकेश कुमार
हिंदी विभाग
चौधरी रणबीर सिंह यूनिवर्सिटी, जींद
हरियाणा-126102
✆ 9896004680 ✉ drmkhindi@gmail.com

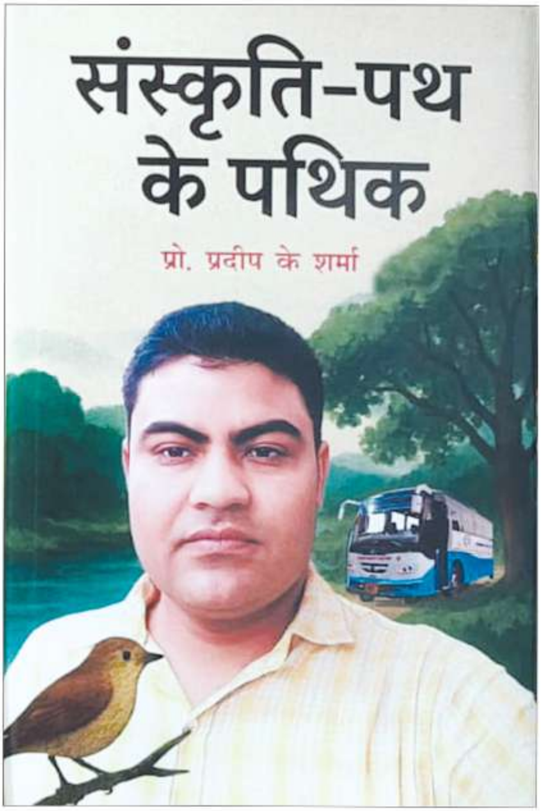

पुस्तक : **संस्कृति-पथ के पथिक**
लेखक : **प्रो. प्रदीप के शर्मा**
प्रकाशन वर्ष : **2026**
प्रकाशक : **विकास बुक कंपनी**
नयी दिल्ली -110002
मूल्य : **600/-**

'संस्कृति स्मारकों में नहीं, संस्कारों में जीवित रहती है; और विकास लांबा जैसे सामान्य दिखने वाले कर्मयोगी अपने आचरण से उसे प्रतिदिन साकार करते हैं।'

भारतीय संस्कृति केवल ग्रंथों, मंदिरों, तीर्थों और ऐतिहासिक स्थलों में ही नहीं बसती, बल्कि वह उन लोगों के जीवन और व्यवहार में भी दिखाई देती है जो अपने कर्त्तव्य को निष्ठा, विनम्रता और संवेदनशीलता के साथ निभाते हैं। जब कोई व्यक्ति अपने व्यवहार से दूसरों के जीवन को स्पर्श करता है, तब वह स्वयं संस्कृति का वाहक बन जाता है। **प्रो. प्रदीप के शर्मा** द्वारा लिखित पुस्तक **'संस्कृति-पथ के पथिक'** इसी सत्य को अत्यंत सहज और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। यह केवल एक यात्रा-वृत्तांत या संस्मरण नहीं है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना, मानवीय मूल्यों और जीवन-दृष्टि का जीवंत दस्तावेज है। पुस्तक का केंद्र एक साधारण-सा दिखाई देने वाला व्यक्ति है जो सीटीयू का परिचालक विकास लांबा। किंतु लेखक ने अपने अनुभवों के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि साधारण दिखने वाले लोग भी असाधारण मानवीय गुणों के कारण समाज के लिए प्रेरणा बन सकते हैं। यह पुस्तक आठ यात्राओं के अनुभवों पर आधारित है। इन यात्राओं में वृंदावन, बैजनाथ, नैनीताल, देवभूमि हिमाचल, अयोध्या, ऋषिकेश, हरिद्वार, प्रयागराज और अन्य सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्थलों का वर्णन मिलता है। इन स्थानों का महत्त्व केवल धार्मिक या पर्यटन की दृष्टि से नहीं है, बल्कि ये भारतीय सभ्यता, संस्कृति और आध्यात्मिक परंपरा के प्रतिनिधि केंद्र हैं। लेखक इन यात्राओं के माध्यम से पाठक को भारत की सांस्कृतिक विविधता, धार्मिक आस्था, प्राकृतिक सौंदर्य और राष्ट्रीय एकता का अनुभव कराते हैं। किंतु इन समस्त यात्राओं के बीच एक ऐसा सूत्र है जो सभी को जोड़ता है, और वह है

विकास लांबा का व्यक्तित्व, जो एक बस परिचालक हैं। सामान्यत: परिचालक का कार्य यात्रियों के टिकट बनाना, यात्रा की व्यवस्था संभालना और बस संचालन में सहयोग देना माना जाता है। लेकिन इस पुस्तक में वह केवल एक कर्मचारी नहीं, बल्कि यात्रियों के मार्गदर्शक, सहयोगी, मित्र और संवेदनशील सहयात्री के रूप में उभरकर सामने आते हैं। उनका व्यवहार यह बताता है कि कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता; उसे करने वाले की निष्ठा और दृष्टिकोण ही उसे महान बनाता हैं। पुस्तक में वर्णित यात्राओं के दौरान उनका व्यवहार यात्रियों के प्रति अत्यंत विनम्र और आत्मीय दिखाई देता है। वे यात्रियों की सुविधा का ध्यान रखते हैं, उनकी समस्याओं को समझते हैं और हर संभव सहायता के लिए तत्पर रहते हैं। आज के समय में जब स्वार्थ और प्रतिस्पर्धा की भावना बढ़ती जा रही है, तब ऐसा व्यवहार समाज के लिए प्रेरणादायक है। उनका व्यक्तित्व हमें यह सिखाता है कि संवेदनशीलता और मानवता किसी भी व्यक्ति की सबसे बड़ी पूँजी होती है। वृंदावन की यात्रा का वर्णन करते हुए लेखक केवल धार्मिक वातावरण का चित्रण नहीं करते, बल्कि उस आध्यात्मिक अनुभूति को भी सामने लाते हैं जो भारतीय संस्कृति की आत्मा है। श्रीकृष्ण की लीला-स्थली वृंदावन में भक्ति, प्रेम और समर्पण का वातावरण दिखाई देता है। इस यात्रा के दौरान विकास लांबा यात्रियों के लिए केवल एक परिचालक नहीं रहते, बल्कि ऐसे सहयात्री बन जाते हैं जो सभी को सहजता और अपनत्व का अनुभव कराते हैं। उनकी यह भूमिका यात्रा को केवल एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने की प्रक्रिया न बनाकर एक सांस्कृतिक अनुभव में बदल देती है। नैनीताल की यात्रा प्रकृति और सौंदर्य का अद्‌भुत संसार प्रस्तुत करती है। पर्वतों, झीलों और हरियाली के बीच लेखक को भारत की प्राकृतिक धरोहर का अनुभव होता है। इस यात्रा में भी उनका अनुशासित और सहयोगी व्यवहार यात्रियों को सुरक्षा और विश्वास का अनुभव कराता है। यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि पर्यटन और यात्रा केवल दर्शनीय स्थलों को देखने तक सीमित नहीं होती, बल्कि उसमें साथ चलने वाले लोगों का व्यवहार भी यात्रा की स्मृतियों को आकार देता है। देवभूमि हिमाचल का वर्णन भारतीय संस्कृति और प्रकृति के अद्‌भुत संगम को सामने लाता है। हिमालय की गोद में बसे मंदिर, नदियाँ और पर्वत भारतीय आध्यात्मिक परंपरा के प्रतीक हैं। यहाँ लेखक अनुभव करते हैं कि भारत की संस्कृति केवल पुस्तकों में नहीं, बल्कि जनजीवन में जीवित है। विकास लांबा का व्यवहार इस सांस्कृतिक चेतना को और अधिक अर्थपूर्ण बना देता है। वे यात्रियों के प्रति जिस धैर्य और सम्मान का परिचय देते हैं, वह भारतीय संस्कृति के मूल मूल्यों,सेवा, सहिष्णुता और सद्‌भाव का प्रत्यक्ष उदाहरण है। अयोध्या की यात्रा विशेष रूप से राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना से जुड़ी हुई है। भगवान राम की जन्मभूमि केवल एक धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि भारतीय समाज के आदर्शों और मूल्यों का प्रतीक है। मर्यादा, त्याग, कर्त्तव्य और लोकमंगल की भावना भारतीय संस्कृति में राम के माध्यम से प्रतिष्ठित हुई है। लेखक जब अयोध्या की यात्रा का वर्णन करते हैं तो उसके साथ-साथ परिचालक के व्यक्तित्व में भी इन्हीं मूल्यों की झलक दिखाई देती है। उनका कर्तव्यनिष्ठ व्यवहार यह संदेश देता है कि आदर्श केवल इतिहास या धर्मग्रंथों तक सीमित नहीं हैं; वे आज भी हमारे जीवन में जीवित रह सकते हैं। ऋषिकेश और हरिद्वार की यात्राएँ भारतीय अध्यात्म, योग और गंगा संस्कृति का परिचय कराती हैं। गंगा केवल एक नदी नहीं, बल्कि भारतीय जीवन का प्रतीक है। उसके तट पर विकसित सभ्यता ने भारतीय संस्कृति को गहराई प्रदान की है। इन यात्राओं में लेखक को आध्यात्मिक शांति और सांस्कृतिक गौरव का अनुभव होता है। इसी बीच विकास लांबा का संयमित और सेवाभावी स्वभाव इस अनुभव को और अधिक समृद्ध बना देता है। वे यात्रियों की आवश्यकताओं को समझते हैं और बिना किसी अपेक्षा के उनकी सहायता करते हैं। यह भावना भारतीय संस्कृति के 'सेवा परमोधर्म:' सिद्धांत को चरितार्थ करती है। प्रयागराज की यात्रा भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम केवल नदियों का संगम नहीं, बल्कि विविध परंपराओं, विचारों और संस्कृतियों का भी संगम है। लेखक इस यात्रा के माध्यम से भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी भावना को रेखांकित करते हैं। परिचालक

का व्यवहार भी इसी समन्वय का उदाहरण है। वे सभी यात्रियों के साथ समान व्यवहार करते हैं और किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करते। यह गुण आज के समाज में अत्यंत आवश्यक है। पुस्तक का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसमें एक साधारण कर्मचारी को असाधारण मानवीय मूल्यों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। विकास लांबा का चरित्र युवाओं के लिए विशेष रूप से प्रेरणादायक है। आज का युवा वर्ग अनेक चुनौतियों और आकर्षणों के बीच अपना मार्ग खोज रहा है। ऐसे समय में उनका व्यक्तित्व यह संदेश देता है कि सफलता केवल ऊँचे पद प्राप्त करने में नहीं, बल्कि अपने कार्य को ईमानदारी, संवेदनशीलता और समर्पण के साथ करने में है। उनकी विनम्रता यह सिखाती है कि व्यक्ति का वास्तविक सम्मान उसके पद से नहीं, बल्कि उसके व्यवहार से मिलता है। उनकी संवेदनशीलता यह बताती है कि दूसरों की समस्याओं को समझना और उनकी सहायता करना मानवता का सबसे बड़ा गुण है। उनका अनुशासन यह प्रेरणा देता है कि कर्तव्यनिष्ठा जीवन की सफलता का आधार है तथा सहयोगी स्वभाव यह संदेश देता है कि समाज में सद्‌भाव और एकता बनाए रखने के लिए परस्पर सहयोग आवश्यक है। पुस्तक का एक व्यापक उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना को मजबूत करना भी है। जिन स्थलों की यात्राओं का वर्णन इसमें किया गया है, वे भारत की सांस्कृतिक एकता के प्रतीक हैं। उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों की यात्राओं के माध्यम से लेखक यह अनुभव कराते हैं कि विविधताओं के बावजूद भारत की आत्मा एक है। भाषा, वेशभूषा, खान-पान और रीति-रिवाजों में भिन्नता होने पर भी भारतीय संस्कृति सबको एक सूत्र में बाँधती है। विकास लांबा का व्यक्तित्व इसी राष्ट्रीय एकता का मानवीय रूप है।

यह पुस्तक ज्ञान, भक्ति और संवेदनशीलता के त्रिवेणी-संगम का सुंदर उदाहरण है। ज्ञान हमें अपने अतीत, संस्कृति और समाज को समझने की दृष्टि देता है। भक्ति हमें आत्मिक शांति और नैतिक शक्ति प्रदान करती है। संवेदनशीलता हमें दूसरों के दु:ख-सुख से जोड़ती है। इन तीनों मूल्यों का समन्वय ही एक आदर्श नागरिक और श्रेष्ठ मनुष्य का निर्माण करता है। विकास लांबा का जीवन और व्यवहार इन मूल्यों की जीवंत अभिव्यक्ति है। आज जब समाज में भौतिक उपलब्धियों को सफलता का प्रमुख मानदंड माना जाने लगा है, तब यह पुस्तक हमें याद दिलाती है कि मानवीय मूल्य ही जीवन की वास्तविक संपत्ति हैं। विनम्रता, सेवा, सहयोग, संवेदनशीलता और कर्तव्यनिष्ठा जैसे गुण व्यक्ति को समाज में सम्मान दिलाते हैं और उसे सच्चे अर्थों में सफल बनाते हैं। उनका का चरित्र इसी सत्य का प्रमाण है।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि 'संस्कृति-पथ के पथिक' केवल यात्रा संस्मरण नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीय चेतना और मानवीय मूल्यों की यात्रा है। प्रो. प्रदीप के शर्मा ने अपनी सहज और संवेदनशील लेखनी के माध्यम से यह दिखाया है कि जीवन के साधारण अनुभव भी असाधारण प्रेरणा का स्रोत बन सकते हैं। सीटीयू परिचालक विकास लांबा जैसे व्यक्तित्व हमें यह विश्वास दिलाते हैं कि भारतीय संस्कृति आज भी जीवित है और वह हमारे व्यवहार, संवेदनाओं तथा कर्तव्यनिष्ठ जीवन में दिखाई देती है। यह पुस्तक विशेष रूप से युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणास्रोत है, क्योंकि यह उन्हें ज्ञान, भक्ति, सेवा, संवेदनशीलता, मानवता और राष्ट्रप्रेम के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है। वास्तव में विकास लांबा केवल एक बस परिचालक नहीं, बल्कि संस्कृति-पथ के ऐसे पथिक हैं जो अपने व्यवहार से समाज को बेहतर और अधिक मानवीय बनाने का संदेश देते है और यही मानवता उनके व्यक्तित्व में झलकती है। देखिए – ''साधारण कर्म में असाधारण संस्कृति की अभिव्यक्ति ही 'संस्कृति-पथ के पथिक' पुस्तक का मूल संदेश है।'' लेखक प्रो. प्रदीप के शर्मा ने सीटीयू बस की एक सामान्य-सी यात्रा को अपने संवेदनशील दृष्टिकोण से असाधारण साहित्यिक संस्मरण का रूप प्रदान किया है। परिचालक श्री विकास लांबा के विनम्र, कर्तव्यनिष्ठ और मानवीय व्यवहार को शब्दों में अंकित कर उन्होंने न केवल साहित्य की मानवीय परंपरा को समृद्ध किया है, बल्कि एक प्रकार का पुण्यकर्म भी संपन्न किया है। यह यात्रा संस्मरण आज के युवा वर्ग के लिए भी प्रेरणास्रोत है, जो यह संदेश देता है कि सच्ची महानता पद या प्रतिष्ठा में नहीं, बल्कि अपने कर्त्‌तव्य के प्रति निष्ठा, सदव्यवहार और मानवीय संवेदनाओं में निहित होती है। ❑

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

ভক্তি সাহিত্যত আধিপত্য আৰু প্ৰান্তীয়কৰণ বিৰোধী চেতনা

ড° শিখা দেৱী নাথ

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
মাধবদেৱ বিশ্ববিদ্যালয়
নৰিগাওঁ, অসম - ৭৮২১০৬
৮৬৩৮৮৭৯৪৭
sikhanath121@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

খ্ৰীষ্টীয় ষষ্ঠ শতিকামানৰ পৰা খ্ৰীষ্টীয় সপ্তদশ-অষ্টদশ শতিকামানলৈকে মধ্যযুগত ভাৰতবৰ্ষত হোৱা এটা বৃহৎ ধৰ্মীয় আৰু সামাজিক আন্দোলন হৈছে ভক্তি আন্দোলন। এই আন্দোলনটো আছিল হিন্দু ধৰ্মৰ আধ্যাত্মিকতাবাদী আৰু সংস্কাৰ ধৰ্মী আন্দোলন। আন্দোলনটোৰ পটভূমিত আছিল বৈষম্য আৰু দমনমূলক হৈ পৰা কিছুমান ধৰ্মীয় আচাৰ-ৰীতি। সেই ধৰ্মীয় আচাৰ-ৰীতিবিলাকে জাতি-বৰ্ণ-লিংগ ভিত্তিক সামাজিক প্ৰান্তীয়কৰণৰ সৃষ্টি কৰিছিল। ভক্তি আন্দোলনৰ গুৰি ধৰোতা ভক্ত কবিসকলে ধৰ্মীয় সংস্কাৰ সাধন আৰু সাহিত্য সৃষ্টিৰ জৰিয়তে ধৰ্মৰ নামত চলা বৈষম্য আৰু অৱদমনৰ বিৰুদ্ধে শক্তিশালীভাৱে বিৰোধিতা কৰি সকলো মানুহকে ধৰ্মীয় আচাৰত সম স্থান দি সামাজিক সমতা প্ৰতিষ্ঠাৰ চেষ্টা কৰিছিল। ভক্তি আন্দোলনৰটোৰ উদ্দেশ্য যিহেতু ধৰ্মীয় গণতান্ত্ৰিকতা আছিল সেয়েহে স্বাভাৱিকভাৱে আন্দোলনকেন্দ্ৰিক সাহিত্যৰাজিতো সেই ভাৱধাৰা প্ৰকাশিত হৈছে। ভাৰতবৰ্ষৰ বিভিন্ন ৰাজ্যৰ ভক্তি আন্দোলনৰ ভক্ত কবিসকলৰ ৰচনাৰাজিত স্পষ্টভাৱে অৱদমন আৰু বৈষম্য বিৰোধী চেতনা প্ৰতিফলন লক্ষ্য কৰা যায়। এই গৱেষণা পত্ৰখনত ভক্তিআন্দোলন আৰু আন্দোলনকেন্দ্ৰিক সাহিত্যৰাজিৰ মাজেৰে ধৰ্মৰ নামৰ সৃষ্টি হোৱা আধিপত্য আৰু বৈষম্য বিৰুদ্ধে প্ৰতিৰোধী চেতনা কেনেদৰে প্ৰকাশ হৈছে সেয়া 'প্ৰতিৰোধ অধ্যয়ন' শীৰ্ষক তাত্ত্বিক আধাৰত বিষয়-বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰে অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

ভক্তি-আন্দোলন, ভক্তি-সাহিত্য, আধিপত্য, প্ৰান্তীয়কৰণ, প্ৰতিৰোধ।

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

আধিপত্য হৈছে ধাৰণা বা মতাদৰ্শৰ নিৰ্মাণ তথা সাধাৰণীকৰণৰ জৰিয়তে সৃষ্টি কৰা এক কৰ্তৃত্ব। ক্ষমতাশালী শ্ৰেণীৰ সামাজিক আধিপত্য স্থাপনত 'ধৰ্ম'ই বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। 'ধৰ্ম' নামেৰে স্বীকৃত কিছুমান বিশেষ বাগ্‌ধাৰাই কিছুমান আধিপত্যযুক্ত নীতি-নিময় সৃষ্টি কৰি বিশেষ বৰ্ণ, সম্প্ৰদায় আৰু লিংগক সমাজৰ মূল সুঁতিৰ পৰা আঁতৰাই ৰাখে। এই প্ৰক্ৰিয়াক প্ৰান্তীয়কৰণ বোলা হয়। মধ্যযুগৰ ভাৰতৰ ভক্তি আন্দোলনৰ পটভূমি বিচাৰ কৰি চালে দেখা যায় যে আধিপত্যকামী হৈ উঠা হিন্দুধৰ্মৰ কিছু ধৰ্মীয় বাগ্‌ধাৰাই সৃষ্টি কৰা জাতিগত অৱদমন, প্ৰান্তীয়কৰণ তথা সামাজিক বিশৃংখলতাৰ লগতে বৌদ্ধ আৰু জৈন ধৰ্মত সৃষ্টি হোৱা দুৰাচাৰ দূৰীকৰণৰ প্ৰচেষ্টাৰে ভাৰতবৰ্ষত ভক্তি আন্দোলন আৰু ভক্তি সাহিত্যৰ সৃষ্টি হৈছিল। প্ৰথমে দক্ষিণ ভাৰতত আৰম্ভ হোৱা আন্দোলনটো ক্ৰমান্বয়ে সমগ্ৰ দেশতে বিস্তাৰিত হৈ পৰি ভাৰতীয় জাতীয় জীৱন আৰু ভাৰতীয় সাহিত্যত এক নতুন ধাৰাৰ সৃষ্টি কৰিছিল।

ভক্তি আন্দোলনটোৰ লগত সম্পৰ্কিত ত্ৰয়োদশ শতিকাৰ পৰা ষষ্ঠদশ শতিকালৈকে ৰচিত হোৱা ভক্তি সাহিত্যৰাজিৰ মূল লক্ষ্য আছিল কোনো বিশেষ বৰ্ণ বা ধৰ্মৰ একক আধিপত্যৰ বিৰোধিতাৰে সমাজত সমতা প্ৰতিষ্ঠা কৰা। এখন সমাজত যেতিয়াই আধিপত্যৰ সৃষ্টি হয় তাৰ লগতে আধিপত্যৰ বিৰুদ্ধে প্ৰতিৰোধৰো সৃষ্টি হয়। গতিকে, ভক্তি আন্দোলনটোক ধৰ্ম আধাৰত সৃষ্টি হোৱা তথা কঠোৰ হৈ উঠা জাতিভেদ প্ৰথা তথা সামাজিক প্ৰান্তীয়কৰণ বিৰুদ্ধে এক শক্তিশালী আধ্যাত্মিক প্ৰতিৰোধ বুলিব পৰা যায়। এই প্ৰতিৰোধে হিন্দু ধৰ্মক নতুন ৰূপত প্ৰতিষ্ঠা কৰি সকলো মানুহকে জাতি-বৰ্ণ, লিংগ নিৰ্বিশেষে সম-মৰ্যাদা প্ৰদান কৰি এখন ধৰ্মীয় আৰু সামাজিক সমতা ভিত্তিক সমাজ প্ৰতিষ্ঠা কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

ভক্তি সাহিত্যত আধিপত্য আৰু প্ৰান্তীয়কৰণ বিৰোধী চেতনা শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনৰ উদ্দেশ্য হৈছে -

১. ভক্তি আন্দোলনৰ পটভূমিত সৃষ্টি হোৱা সাহিত্যৰাজিৰ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে আধিপত্যৰ বিৰুদ্ধে প্ৰতিৰোধৰ প্ৰতিফলন সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা।

২. নাৰীৰ প্ৰান্তীকৰণৰ বিৰুদ্ধে ভক্তি সাহিত্যৰাজিত কেনেধৰণেৰে প্ৰতিৰোধৰ প্ৰতিফলন হৈছে বিচাৰ কৰি চোৱা।

০.২ অধ্যয়নৰ তাত্ত্বিক আধাৰ আৰু পদ্ধতি ঃ

এই অধ্যয়নৰ তাত্ত্বিক আধাৰ হৈছে প্ৰতিৰোধ অধ্যয়ন (Resistance Studies)। আধিপত্য আৰু প্ৰান্তীয়কৰণৰ লগত জড়িত হৈ থকা এটা ধাৰণা হ'ল প্ৰতিৰোধ (Resistance)। *মিচেল ফুকোৱে লিখিছিল ক্ষমতাৰ সম্পৰ্কবোৰ য'ত থাকে, তাতেই প্ৰতিৰোধো থাকে।*[১] প্ৰতিৰোধ হৈছে এনে এক প্ৰক্ৰিয়া, যি এক নিৰ্দিষ্ট শক্তি, বল, নীতি অথবা শাসনৰ একাধিপত্যক বিৰোধিতা কৰে। সেই দিশৰ পৰা প্ৰতিৰোধ অনা আধিপত্যকামী সামাজিক আচৰণ, মনোভাৱ আৰু প্ৰভাৱশালীকোনো শক্তিক দুৰ্বল কৰাৰ বাবে নিৰ্দেশিত ক্ৰিয়া বুলিব পাৰি।

প্ৰতিৰোধ বহু ৰূপযুক্ত হয়। উদাহৰণস্বৰূপে— ব্যক্তিগত প্ৰতিৰোধ, ৰাজহুৱা নাগৰিক প্ৰতিৰোধ, সমালোচনামূলক প্ৰতিৰোধ, ছদ্মবেশী প্ৰতিৰোধ ইত্যাদি। প্ৰতিৰোধৰ এই ৰূপবোৰক প্ৰধানকৈ দুটা ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি। সেই দুটা ভাগ হ'ল — প্ৰত্যক্ষ (স্পষ্ট) আৰু প্ৰচ্ছন্ন (অন্তৰ্নিহিত,আবৃত্ত) প্ৰতিৰোধ। প্ৰত্যক্ষ প্ৰতিৰোধত প্ৰতিৰোধকাৰীয়ে স্পষ্টভাৱে ক্ষমতা আৰু অন্যায়ক প্ৰশ্ন কৰে। এই প্ৰতিৰোধতে ব্যক্তিগত প্ৰতিৰোধ, ৰাজহুৱা বা সামূহিক প্ৰতিৰোধ, সমালোচনামূলক প্ৰতিৰোধ আদিবোৰ অন্তৰ্নিহিত হৈ থাকে। ব্যক্তিগত প্ৰতিৰোধৰ ক্ষেত্ৰত কোনো ব্যক্তিয়ে ব্যক্তিগতভাৱে ক্ষমতাক প্ৰশ্ন, প্ৰত্যাহ্বান জনায়। সমালোচনাত্মক প্ৰতিৰোধে আধিপত্যযুক্ত বাগ্‌ধাৰাবোৰক সমালোচনাৰ জৰিয়তে প্ৰত্যাহ্বান জনায়। বিক্ষোভ, ধৰ্মঘট, বৰ্জন আদিৰ জৰিয়তে ক্ষমতাক ৰাজহুৱাভাৱে প্ৰত্যাহ্বান জনোৱা কাৰ্যবোৰক সামূহিক প্ৰতিৰোধ বোলা হয়। বহুসময়ত প্ৰতিৰোধ প্ৰশ্ন, বিক্ষোভ, বিপ্লৱ আৰু অন্যান্য সংগঠিত, সামূহিক ৰূপবোৰৰ দৰে দৃশ্যমান, সুস্পষ্ট আৰু ৰাজনৈতিক নহ'বও পাৰে। কিন্তু আনুগত্য বিৰোধী এনে অস্পষ্ট,অৰাজনৈতিক ক্ৰমশঃ কাৰ্যশীল হ'বলৈ গৈ থকা কাৰ্য আৰু আচৰণসমূহো প্ৰতিৰোধ। এনে প্ৰতিৰোধকে প্ৰচ্ছন্ন প্ৰতিৰোধ বোলা হয়। প্ৰচ্ছন্ন প্ৰতিৰোধক জেমচ স্কট (James Scott)-এ তেওঁৰ *The Weapons of the Weak:Everyday form of Peasant Resistance* (1985) শীৰ্ষক গ্ৰন্থত 'দৈনন্দিন প্ৰতিৰোধ' বুলি উল্লেখ কৰিছে।[২] প্ৰতিৰোধ সম্পৰ্কীয় উল্লিখিত বিভিন্ন মতবাদ, প্ৰকাৰ বিভাজনবোৰৰ আধাৰত ক'ব পাৰি যে প্ৰতিৰোধ এটা গতিশীল আৰু বহুমাত্ৰিক প্ৰক্ৰিয়া। সমাজ-সভ্যতাৰ ইতিহাসৰ সকলো স্তৰতে প্ৰত্যক্ষ অথবা প্ৰচ্ছন্নভাৱে ইয়াৰ উপস্থিতি লক্ষ্য কৰা যায়। প্ৰতিৰোধৰ পৰিণতি ইতিবাচক আৰু নেতিবাচক দুইধৰণৰে হ'ব পাৰে। প্ৰতিৰোধৰ সম্পৰ্কীয় অধ্যয়নেই হ'ল প্ৰতিৰোধ অধ্যয়ন।

গৱেষণা পত্ৰখনৰ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি হ'ল বিষয়-বিশ্লেষণ পদ্ধতি।

০.৩ ভক্তি আন্দোলন, ভক্তিসাহিত্য আৰু প্ৰতিৰোধ চেতনা ঃ

ভক্তি আন্দোলনৰ কবিসকলক সগুণ আৰু নিৰ্গুণ নামেৰে দুটা ধাৰাত বিভক্ত কৰা হয়। নিৰ্গুণ ধাৰাৰ সন্ত কবিসকলৰ ৰচনাত জাতিগত আধিপত্য, মূৰ্তি পূজা আৰু ধাৰ্মিক আড়ম্বৰতা বিৰোধী চেতনাৰ প্ৰকাশ পৰিলক্ষিত হয়। নিৰ্গুণ ধাৰাৰ কবিসকলৰ ভিতৰত সন্ত কবি কবীৰ দাস,গুৰুনানক, দাদু দয়াল, নামদেৱ, তুকাৰাম আদি উল্লেখযোগ্য। এই কবিসকলে ভক্তিধৰ্ম প্ৰচাৰৰ মাধ্যমেৰে 'ধৰ্ম' নামেৰে জাতি বা বৰ্ণৰ আধাৰত সৃষ্ট সামাজিক বৈষম্য তথা প্ৰান্তীয়কৰণৰ বিৰোধিতা কৰিছিল। সন্ত কবিসকলৰ আধিপত্য বিৰোধী প্ৰতিৰোধী চেতনা তেওঁলোকৰ কাব্যৰ

বিষয় প্ৰসংগ তথা ভাষিক অভিব্যক্তি দুয়োটা দিশেৰে প্ৰতিফলিত হৈছে।

ভাষিক অভিব্যক্তিৰ ক্ষেত্ৰত দেখা যায় যে ভক্তি আন্দোলনৰ সন্ত কবিসকলে সাধাৰণতে উচ্চবৰ্ণৰ ভাষা আৰু জটিল ভাষা হিচাপে স্বীকৃত সংস্কৃত ভাষাৰ ধৰ্ম শাস্ত্ৰসমূহৰ মূল তত্ত্ব তথা আদৰ্শনীয় ধাৰণাবোৰক লৈ জনসাধাৰণৰ ভাষাৰে কাব্য ৰচনা কৰি ধৰ্মীয় তত্ত্বক সাধাৰণ জনসাধাৰণৰ বোধগম্য কৰি তুলি তেওঁলোকৰ ধৰ্মৰ কেন্দ্ৰলৈ অনাৰ প্ৰচেষ্টা কৰিছিল। উদাহৰণস্বৰূপে অসমত ভক্তি আন্দোলন গুৰি ধৰোতা শংকৰদেৱে সকলো মানুহে বুজিব পৰা ধৰণেৰে জনসাধাৰণৰ কথিত ভাষা আৰু মৈথিলী ভাষাৰ সংমিশ্ৰনত 'ব্ৰজাৱলী' নামৰ বিশেষ সাহিত্যিক ভাষাৰ এটাৰ সৃষ্টি কৰি সাহিত্য ৰচনা কৰিছিল। সাধাৰণ জনসাধাৰণৰ সংস্কৃত ভাষাৰ দুৰ্বোধ্যতাক সুবিধা হিচাপে গ্ৰহণ কৰি এটা শ্ৰেণীয়ে নিজৰ স্বাৰ্থৰ অনুকূলে শাস্ত্ৰ হিচাপে প্ৰণয়ন কৰা আধিপত্যযুক্ত কিছু ধাৰণাৰ বিপৰীতে জনসাধাৰণৰ বোধগম্য ভাষাত শাাস্ত্ৰৰ নীতি-কথা, তত্ত্ব আদি অনুবাদ কৰি আধ্যাত্মিক সাধনৰ পথ সকলোৰে বাবে মুকলি কৰি দিয়া এই পদক্ষেপক এক প্ৰতিৰোধ হিচাপে অভিহিত কৰিব পাৰি। শংকৰদেৱৰ অনুগামী ভক্তি আন্দোলনৰ কবি মাধৱদেৱ, অনন্ত কন্দলী আদিৰ মাজতো এনে ভাষিক চেতনাৰ প্ৰতিফলন লক্ষ্য কৰা যায়। অনন্ত কন্দলীয়ে সাধাৰণ মানুহৰ বাবে দুবোধ্য সংস্কৃত ভাষাত লিখাৰ পৰিৱৰ্তে সাধাৰণ মানুহ বুজিব পৰা ভাষাত *মধ্য দশমৰ* অনুবাদ কৰি লিখিছিল —

শ্লোক সংস্কৃত লিখিবাক ভাল জানি
তথাপি কৰিলোঁ পদ বন্ধ
স্ত্ৰী শূদ্ৰ আদি যত জানোক পৰম তত্ত্ব
শ্ৰৱণত মিলয় আনন্দ।।

ৰাম সৰস্বতীয়েও কোচ ৰজা নৰনাৰায়ণৰ আদেশত স্ত্ৰী-শূদ্ৰই বুজিব পৰাকৈ মহাভাৰতৰ পদ ৰচনা কৰাৰ কথা জনা যায়। অসমৰ দৰে ভাৰতবৰ্ষৰ অন্যান্য ঠাইতো খ্ৰীষ্টীয় ত্ৰয়োদশ শতিকাৰ পৰা যোড়শ শতিকাৰ ভিতৰত প্ৰান্তীয় আঞ্চলিক ভাষাসমূহত ভক্তি আন্দোলনকেন্দ্ৰিক সাহিত্যৰ সৃষ্টি হৈছিল। উত্তৰ ভাৰতত হিন্দী ভাষাত কবীৰদাস আৰু সুৰদাসে পুৰাণৰ অনুবাদ, গীত, পদ আদি পশ্চিম ভাৰতৰ গুজৰাটত ভক্ত কবি নৰসিংহ মেহেতাই গুজৰাটী ভাষাত, দক্ষিণ ভাৰতত মালয়ালম, তেলেগু, কানাড়া আদি ভাষাত সন্ত কবিসকলে কাব্য ৰচনা কৰিছিল।

ভক্ত কবিসকলৰ কাব্যৰ বিষয়বস্তুও আছিল ধৰ্মীয় আধিপত্য তথা সামাজিক বৈষম্যৰ বিৰোধী। সন্ত কবি কবীৰদাসে অৰ্থহীন গোড়ামী, জাতিগত বৈষম্যৰ বিৰোধিতা কৰি লিখিছিল—

একেই ছাল, হাড়, মল, মূত্ৰ। একেই তেজ,গুহ্যদ্বাৰ।
বিন্দু একেই, যাৰে সৃষ্ট সকলোটি। বামুণ কোন কোনবা শূদিৰ?[৩]

কবীৰৰ দৰেই পঞ্জাৱত গুৰু নানক, গুজৰাটত দাদুদয়াল, মহাৰাষ্ট্ৰত নামদেৱ, তুকাৰাম আদি ভক্তি আন্দোলনৰ সন্ত কবিসকলৰ কাব্যত উচ্চবৰ্ণ প্ৰসূত ধৰ্ম গুৰুসকলে প্ৰৱৰ্তন কৰি থৈ যোৱা ধৰ্মীয় আধিপত্যৰ ধাৰণা ভাঙি সমাজৰ সকলো শ্ৰেণীৰ লোককে ধৰ্মৰ কেন্দ্ৰত স্থান দিয়াৰ কথা উল্লেখ আছে। উদাহৰণস্বৰূপে, সন্ত নামদেৱে মাৰাঠী ভাষাত জাতিভেদৰ বিৰুদ্ধে লিখিছিল এনেদৰে—

জাতিত নোহোৱা যিয়ে, গাখীৰৰ একেটি বৰণ
বামুণ ওলাল তুমি ক'ৰ, আমিনো কেনেকে শূদিৰ?[৪]

শিখ সন্ত গুৰু নানকৰ দ্বাৰা প্ৰচাৰিত ধৰ্মীয় মতাদৰ্শৰ মূল মন্ত্ৰ আছিল একতা। জাতি -বৰ্ণ, ধৰ্ম, লিংগ নিৰ্বিশেষে সকলোকে একতা আৰু সমতাৰ আদৰ্শৰে সমস্থান দিয়া গুৰু নানকৰ ৰচনাসমূহ সংকলিত হোৱা *গুৰু গ্ৰন্থ চাহিব*ত থকা প্ৰথমটো শব্দ হ'ল 'ইক' (Ik) অৰ্থাৎ 'এক'। জাতি আৰু শ্ৰেণীভিত্তিক আধিপত্যৰ বিৰোধিতাৰে সমতাৰ প্ৰসংগ এই গ্ৰন্থত এনেদৰে আছে—

ঈশ্বৰ সচেতন সত্তাই সকলোকে একেদৃষ্টিৰে চায়,
যিদৰে বতাহ ৰজা আৰু দুখীয়া ভিক্ষাৰীৰ দুইজনৰ ফালে একেদৰে বয়।[৫]

অসমত ভক্তি আন্দোলনৰ সময়ছোৱাত ৰচিত সাহিত্যৰাজিৰ বিষয়-বস্তু বিচাৰ কৰি চালে দেখা যায় যে আধিপত্য বিৰোধী গণতান্ত্ৰিক চেতনা শংকৰদেৱ আৰু অন্যান্য বৈষ্ণৱ কবিসকলৰ সাহিত্যৰাজিৰ অন্যতম বৈশিষ্ট্য। এক নিৰ্দিষ্ট ধৰ্ম অথবা ধৰ্মীয় মতাদৰ্শক উচ্চ হিচাপে প্ৰতিষ্ঠা কৰি অন্য ধৰ্মক তুচ্চ জ্ঞান কৰা আধিপত্যযুক্ত ধাৰণাৰ বিপৰীতে সৰ্ব ধৰ্মৰ প্ৰতি এক উদাৰ মনোভাৱ গ্ৰহণ কৰি শংকৰদেৱে লিখিছিল—

পৰৰ ধৰ্মক নিহিংসিবা কদাচিত।
কৰিবা ভূতকো দয়া সকৰুণ

শংকৰদেৱে একেবাৰে তৃণমূল স্তৰৰ পৰা সমাজ-সংস্কাৰ কৰিব বিচাৰিছিল। ধৰ্মৰ ওপৰত এটা বৰ্ণৰ একক কৰ্তৃত্ব সামাজিক ভেদাভেদৰ এটা অন্যতম কাৰক বুলি তেওঁ অনুভৱ কৰিছিল। সেইবাবে ধৰ্মীয় ক্ষমতা আৰু কৰ্তৃত্বৰ

বিকেন্দ্রীকৰণক সমাজ-সংস্কাৰৰ প্ৰধান উপায় হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছিল। শংকৰদেৱৰ ৰচিত *কীৰ্তন* পুথিখনক এনে সাম্য আৰু গণতান্ত্ৰিক আদৰ্শৰ বাহক বুলিব পৰা যায়। সমাজে অস্পৃশ্য হিচাপে গণ্য কৰা শ্মশানত শৱদাহ কৰা চণ্ডালকো শংকৰদেৱে সমাজৰ মূলসুঁতিৰ মানুহ হিচাপে স্বীকৃতি দি একান্তভাৱে হৰিনাম ল'লে চণ্ডালকো ব্ৰাহ্মণৰ শাৰীত থব পাৰি বুলি এনেদৰে লিখিছিল—

যিটো চণ্ডাল কায় বাক্য মনে
সদায়ে সুমৰে হৰি
আছে বাহ্ণ ব্ৰত যিটো ব্ৰাহ্মণৰ
সিটো শ্ৰেষ্ঠ তাতো কৰি।

শংকৰদেৱৰ অন্যান্য সাহিত্যকৃতিসমূহতো এনেদৰে সমতাৰ চেতনা প্ৰকাশ হোৱা দেখা যায়। তেওঁৰ সমসাময়িক আন বৈষ্ণৱ কবিসকসলকো ভক্তিৰ আন্দোলনৰ সমতা আৰু গণতান্ত্ৰিক চেতনাই প্ৰভাৱিত কৰাৰ ফলত তেওঁলোকৰ সাহিত্যৰ মাজতো একেধৰণৰ আধিপত্য বিৰোধী চেতনা পৰিস্ফুত হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। শংকৰদেৱৰ শিষ্য মাধৱদেৱৰ দ্বাৰা ৰচিত *নামঘোষা* পুথিখন অসমীয়া বৈষ্ণৱ সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ আন এখন উল্লেখযোগ্য পুথি। ধৰ্ম আচৰণত যে কোনো ভেদাভেদৰ স্থান নাই, বৰ্ণ নিৰ্বিশেষে সকলোৱে হৰিনাম *কীৰ্তন*ৰ জৰিয়তে ভগৱানৰ লগত যোগসূত্ৰ স্থাপন কৰিব পাৰে সেই আদৰ্শ 'নামঘোষা'ত প্ৰকাশিত হৈছে।

ধৰ্মীয় আধিপত্যই বৰ্ণভিত্তিক প্ৰান্তীয় নিৰ্মাণ কৰাৰ লগতে লিংগ ভিত্তিক প্ৰান্তীয়কৰণো সৃষ্টি কৰে। গণতান্ত্ৰিক তথা সমতাৰ আদৰ্শ সন্নিৱিষ্ট ভক্তি সাহিত্যৰাজিৰ মাজেৰে লিংগ প্ৰান্তীয়কৰণৰ বিৰোধিতা আৰু নাৰীক সামাজিক মৰ্যাদা প্ৰদানৰ প্ৰসংগও প্ৰতিফলিত হৈছে। এই ক্ষেত্ৰত ভক্তি আন্দোলনটোৰ লগত জড়িত কেইগৰাকীমান মহিলা সন্তৰ নাম বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। সেই সন্ত নাৰীসকলে গীত, কবিতাৰ জৰিয়তে ঈশ্বৰৰ প্ৰতি প্ৰেম আৰু স্বাধীনতাৰ আকাংক্ষাৰ কথা প্ৰকাশ কৰি ব্ৰাহ্মণিক পিতৃতন্ত্ৰক প্ৰত্যাহ্বান জনাইছিল। ভক্তি আন্দোলনৰ এনে এগৰাকী নাৰী সন্ত কবি আছিল মীৰাবাঈ। নিজৰ পাৰ্থিৱ বিবাহক অস্বীকাৰ কৰি কৃষ্ণৰ প্ৰতি পৰম ভক্তি আৰু প্ৰেমেৰে ৰচনা কৰা মীৰাবাঈৰ গীত আৰু কবিতাসমূহৰ মাজেৰে স্বাধীনতাৰ আকাংক্ষা প্ৰকাশ হৈছে এনেদৰে—

মই অকল গিৰিধৰক (কৃষ্ণ) চিনো।
তেওঁ মোৰ পিতৃ, স্বামী, আত্মীয় সকলো।[৬]

নাৰীক সামাজিক নিয়ম-শৃংখলাৰ বান্ধোনেৰে ঘৰৰ চাৰিসীমাৰ মাজতে আবদ্ধ কৰি থোৱা সময়তে এগৰাকী বিবাহিত নাৰীয়ে সমাজ স্বীকৃত স্বামীক পৰিত্যাগ কৰি ভগৱানক নিজৰ সৰ্বস্ব জ্ঞান কৰি আত্মসমৰ্পণ কৰাতো এক প্ৰকাৰৰ পিতৃতান্ত্ৰিক আধিপত্য বিৰোধী প্ৰতিৰোধ বুলিব পৰা যায়।

ভক্তি আন্দোলনৰ আন এগৰাকী উল্লেখযোগ্য সন্ত নাৰী কবি হ'ল লাল দেদ (লালেশ্বৰী)। তেওঁ কঠিন শৈৱ দৰ্শনক সংস্কৃত জ্ঞানী পণ্ডিতসকলৰ পৰিসীমাৰ পৰা সাধাৰণ কাশ্মিৰী জনসাধাৰণৰ মাজলৈ লৈ আনিছিল। লাল দেদৰ ৰচনাসমূহ 'ৱখ' (Vakhs) হিচাপে পৰিচিত। কাশ্মিৰী ভাষা-সাহিত্যত লাল দেদৰ 'ৱখ' সমূহৰ বিশেষ গুৰুত্ব আছে। নাৰীৰ ক্ষেত্ৰত থকা সামাজিক-পাৰিবাৰিক বাধা অতিক্ৰম কৰা প্ৰতিৰোধী মনোভংগীৰ উদাহৰণ তেওঁৰ ৰচনাত এনেদৰে পোৱা যায়—

মই লালে কপাহ ফুলৰ দৰে ফুলিবলৈ ওলাই আহিলোঁ। চাফাই কৰ্মীসকলে অবাঞ্চিত ময়লাবোৰ আঁতৰাবলৈ মোক হাজাৰটা টোকৰ মাৰিলে।

সূতা কাটি থকা মহিলাসকলে মোক সূতা কটা চকাসদৃশ যন্ত্ৰৰ তীক্ষ্ণ বেজীটোৰ ওপৰৰ পাতল সূতা এডাল কৰি তুলিলে। সেই সূতাডালেৰে শিপিনীয়ে তাঁতশালত কাপোৰ বলে।[৭]

উল্লিখিত নাৰী সন্ত দুগৰাকীৰ লগতে আক্কা মহাদেৱী, জনা বাঈ আদি ভক্তি আন্দোলনৰ আন নাৰী সন্তসকলৰ ৰচনাসমূহো ভক্তি সাহিত্যৰ ইতিহাসত উল্লেখযোগ্য।

মহিলা সন্তসকলৰ উপৰিও ভক্তি আন্দোলনৰ পুৰুষ সন্তসকলেও ধৰ্ম আচৰণত নাৰীৰ অধিকাৰ আৰু সম মৰ্যাদাৰ কথা তেওঁলোকৰ ৰচনাৰ মাজেৰে প্ৰকাশ কৰিছিল। উদাহৰণস্বৰূপে গুৰুনানকে নাৰীৰ বিৰুদ্ধে প্ৰচলিত কুসংস্কাৰ আৰু শোষণৰ বিৰুদ্ধে মাত মাতি নাৰীক সম-অধিকাৰ আৰু মৰ্যাদা দিয়াত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল।

অসমত ক্ষেত্ৰতো ভক্তি আন্দোলন আৰু বৈষ্ণৱ সাহিত্যত নাৰীৰ অৱস্থান এক মনকৰিবলগীয়া দিশ। ভক্তি আন্দোলনত নিহিত ধৰ্মীয় গণতান্ত্ৰিকতাই নাৰীক পুৰুষৰ সমানে ধৰ্মত অংশগ্ৰহণ কৰাৰ পৰিৱেশ সৃষ্টি কৰিছিল। সেয়েহে বৈষ্ণৱ সাহিত্যতো নাৰীৰ মৰ্যাদাপূৰ্ণ চিত্ৰণ দেখা যায়। শংকৰদেৱক এই ক্ষেত্ৰত আদৰ্শ হিচাপে গণ্য কৰিব পাৰি। নাৰীৰ শৈক্ষিক আৰু ধৰ্মীয় অধিকাৰৰ কথা শংকৰদেৱে এনেদৰে লিখিছে—

স্ত্ৰী শূদ্ৰ অন্ত্যজাতি তাকো শিক্ষা দিবামতি

শংকৰদেৱৰ প্ৰথমখন অংকীয়া নাট *পত্নীপ্ৰসাদত* পিতৃতান্ত্ৰিক সমাজ ব্যৱস্থাত নাৰীৰ অসহায় অৱস্থা আৰু নাৰী-মুক্তিৰ চেতনা প্ৰকাশিত হৈছে। নাটখনৰ কাহিনীমতে বিপ্ৰপত্নীসকলক কৃষ্ণক সাক্ষাৎ কৰিবলৈ যোৱাত তেওঁলোকৰ স্বামীসকলে বাধা দিছে। সেই বাধা নেওচি সেই নাৰীসকলে কৃষ্ণক সাক্ষাৎ কৰিবলৈ যোৱা কথাটোৱে নাৰীমুক্তি ধাৰণাটোৰ ইংগিত বহন কৰিছে। এগৰাকী বিপ্ৰ নাৰীক স্বামীয়ে ঘৰত আবদ্ধ কৰি থোৱা বাবে তেওঁ কৃষ্ণৰ চৰণ চিন্তি আত্মহত্যা কৰিছে। নাৰীৰ স্বাধীনতাত পুৰুষে হস্তক্ষেপ কৰাৰ বাবে আত্মহত্যা কৰা নাৰী চৰিত্ৰৰ চিত্ৰণে পুৰুষ আধিপত্যৰ বিৰুদ্ধে নাৰীৰ প্ৰতিবাদৰ কথাকে প্ৰতিফলিত কৰে। সেই সময়ৰ সামন্তীয় সমাজ ব্যৱস্থাৰ মাজত থাকিও শংকৰদেৱে নাৰী সম্পৰ্কীয় সামন্তীয় ধ্যান-ধাৰণা ভাঙিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল। সেইদৰে শংকৰদেৱৰ অনুগামী বৈষ্ণৱ কবি অনন্ত কন্দলী আৰু ৰাম সৰস্বতীয়ে স্ত্ৰী-শূদ্ৰই বুজাকৈ ক্ৰমে ভাগৱত আৰু মহাভাৰতৰ পদ অনুবাদ কৰাৰ কথাই নাৰীৰ ধৰ্মীয় অধিকাৰৰ প্ৰসংগক প্ৰতিফলিত কৰিছে।

০.৪ উপসংহাৰ ঃ

মধ্যযুগীয় ভক্তি সাহিত্য ধৰ্মীয় তথা আধ্যাত্মিক প্ৰতিৰোধী চেতনাৰ আধাৰত গঢ় লৈ উঠিছিল। 'ধৰ্ম'ৰ ধাৰণাটোত দুটা আংগিক জড়িত হৈছে থাকে। এটা হৈছে ধৰ্ম সম্পৰ্কীয় তাত্ত্বিক ধাৰণা আনটো হৈছে মানব নিৰ্মিত 'ধৰ্ম' নামেৰে সাধাৰণীকৃত হোৱা কিছুমান নীতি-নিয়ম। এই নীতি-নিয়মবোৰ কেতিয়াবা প্ৰশ্নাতীত হিচাপে পৰিগণিত হৈ বৰ্ণ, লিংগ আদি পৰিচয়ৰ ভিত্তিত সামাজিক বৈষম্য তথা প্ৰান্তীয়কৰণৰ কাৰক হৈ পৰে। ভক্তি আন্দোলনটো আৰম্ভ হোৱাৰ লগে লগেই সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষতে বিভিন্ন ৰাজ্যৰ ভক্তি আন্দোনলৰ গুৰু তথা কবিসকলে ধৰ্মৰ গণতান্ত্ৰিক সংস্কাৰ আৰু আঞ্চলিক ভাষাত সাম্য ভাৱযুক্ত সাহিত্য ৰচনাৰ মাজেৰে এক সামাজিক সংস্কাৰ আন্দোলন গঢ়ি তুলিছিল। ভক্তি আন্দোলনকেন্দ্ৰিক এই প্ৰতিৰোধক ক্ষমতাক তীব্ৰভাৱে প্ৰত্যাহ্বান জনোৱা ধৰ্মঘট, বিক্ষোভ আদিৰ দৰে প্ৰত্যক্ষ প্ৰতিৰোধ বুলিব নোৱাৰি। কিন্তু এই ধৰ্মীয়-সামাজিক আন্দোলনটো আৰু সাহিত্যৰাজিত অন্তৰ্নিহিত হৈ থকা ধৰ্মীয় সমতা আৰু বৈষম্য তথা প্ৰান্তীয়কৰণৰ বিৰোধী চেতনা এক সুস্পষ্ট লক্ষ্যযুক্ত কাৰ্যকৰী প্ৰতিৰোধ বুলি পাৰি। জেমচ জেমচ স্কটে কোৱাৰ দৰে এই আন্দোলনটোক শক্তিশালী ৰূপত অনুশীলন হোৱা 'দৈনন্দিন প্ৰতিৰোধ' প্ৰতিৰোধ বুলিও ক'ব পাৰি। এনে প্ৰতিৰোধৰ বাবেই তথাকথিত নিম্নবৰ্ণ হিচাপে অৱহেলিত হৈ থকা লোকসকলে সামাজিক তথা ধৰ্মীয় মৰ্যাদা লাভৰ জৰিয়তে নিজৰ সামাজিক প্ৰান্তীক অৱস্থানৰ উত্তৰণ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। ❑

প্ৰসংগ সুত্ৰ ঃ

১। "As soon as their power relation, their is of resitance", Michel Foucault, *History of Sexuality*,p.224
২। James Scott,*The Weapons of the Weak: Everyday form of Peasant Resistance*,p...198
৩। নীৰাজনা মহন্ত বেজবৰা (অনু.), *দলিত সাহিত্য*, মূল ঃ শ্ৰীমাতাপ্ৰসাদ, পৃ. ৮
৪। উল্লিখিত, পৃ.৯
৫। *Dharma International*, https://www.sikhdharma.org/tolerence-equality,24.04.2024
৬। Wasia, 'Lal DeB and Meerabai : A feminist Perspective', *National Conference Cum Workshop on Recent Trends in Technical Language & Communication : Emerging Requirements,*21st-22nd April 2017,p.1-13,,Retrieved from:www.conferenceworld.in
৭। Dr.Shafqat Altaf, 'Feminist Undertones in the Poetic Utterences of Lal Ded', *International Research Journal of Management Sociology & Humanity*,Vol.13.Issue5,2022,p.115-119,Retrieved from :https://www.academia.edu/85983051

প্ৰসংগ গ্ৰন্থ আৰু পত্ৰিকা ঃ

ইংৰাজী

Foucault, Michel.*History of Sexuality.*Pantheon Books,1978

Scoot,James.*The Weapons of the Weak: Everyday form of Peasant Resistance.*Yale University Press,London 2013

অসমীয়া

শ্ৰীমাতাপ্ৰসাদ, *দলিত সাহিত্য*, নীৰাজনা মহন্ত বেজবৰা (অনু.), প্ৰথম প্ৰকাশ অসমীয়া বিভাগ, ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়,১৯৯৬

উল্লিখিত পত্ৰিকা ঃ

Dr.Shafqat Altaf, 'Feminist Undertones in the Poetic Utterences of Lal Ded', *International Research Journal of Management Sociology & Humanity*,Vol.13.Issue5,2022,p.115-119,Retrieved from :https://www.academia.edu/85983051

Wasia, 'Lal DeB and Meerabai : A feminist Perspective', *National Conference Cum Workshop on Recent Trends in Technical Language & Communication : Emerging Requirements,*21st-22nd April 2017,p.1-13,,Retrieved from:www.conferenceworld.in

Sikh Dharma International, https://www.sikhdharma.org/tolerence-equality,24.04.2024

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945
Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

অসমৰ পিতল শিল্প ঃ এটি আলোচনা

ড° প্ৰতুল ডেকা

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
দৰং মহাবিদ্যালয় (স্বায়ত্তশাসিত)
তেজপুৰ, শোণিতপুৰ (অসম)-৭৮৪০০১
৯৯৫৭৩২০১৪৩
pdeka1998@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

লোক শিল্প বুলি ক'লে সাধাৰণতে লোকজীৱনত ব্যৱহাৰৰ উপযোগীকৈ যিবোৰ বস্তু পৰম্পৰাগতভাৱে প্ৰস্তুত কৰি লোৱা হয় সেইবোৰক বুজা যায়। লোক শিল্পকলা মূলতঃ গ্ৰাম্য সমাজৰ ভেটিত প্ৰতিষ্ঠিত। গ্ৰাম্য সমাজৰ অনাখৰী লোকসকলৰ হাতত ই সুন্দৰ ৰূপত প্ৰতিফলিত হয়। লোক শিল্পই ব্যক্তি জীৱনৰ প্ৰয়োজনীয়তা পূৰণ কৰাৰ উপৰি সামূহিক জীৱনৰ প্ৰয়োজনীয়তাও দূৰ কৰে। অসমত প্ৰচলিত লোক শিল্পসমূহক বিভিন্নজন সংস্কৃতিবিদে বিভিন্ন ধৰণেৰে শ্ৰেণীবিভাজন কৰিছে যদিও প্ৰধানভাৱে মৃৎ শিল্প, বয়ন শিল্প, বাঁহ-বেতৰ শিল্প, কাঠ শিল্প, ধাতু শিল্প এইকেইটা প্ৰধান ভাগত ভগাব পাৰি। এই প্ৰধান ভাগকেইটাৰ অন্তৰ্গত ধাতু শিল্পসমূহৰ এক উল্লেখযোগ্য শিল্প হৈছে পিতল শিল্প। পিতল হৈছে এবিধ সংকৰ ধাতু। তাম আৰু দস্তা নিৰ্দিষ্ট অনুপাতত মিহলাই পিতল তৈয়াৰ কৰা হয়। অসমৰ কামৰূপ জিলাৰ অন্তৰ্গত হাজো অঞ্চল পিতল শিল্পৰ বাবে বিখ্যাত। হাজোৰ উপৰি বৰপেটা জিলাৰ সৰ্থেবাৰী আৰু ইয়াৰ ওচৰৰ বণিয়াকুছি, ৰাউলী, আমৃখোৰা অঞ্চলত আৰু নলবাৰী জিলাৰ মুগকুছি অঞ্চলতো পিতলৰ সামগ্ৰী যথেষ্ট পৰিমাণে প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়। লোকসাহিত্যতো পিতলৰ সামগ্ৰীসমূহৰ উল্লেখ থকা কথাই এই শিল্পটোৰ প্ৰাচীনত্বৰ উমান দিয়ে। পিতল শিল্পৰ লগত জড়িত বিভিন্ন কথা এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

লোক শিল্প, পিতল শিল্প, সমাজ জীৱন।

০.০০ অৱতৰণিকা

০.০১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

লোক শিল্পৰ এটা প্ৰধান বিভাগ হ'ল ধাতু শিল্প। বিভিন্ন ধাতু আৰু ইয়াৰ পৰা নিৰ্মাণ কৰি উলিওৱা সামগ্ৰীবোৰেই হৈছে ধাতু শিল্পৰ অন্তৰ্গত। কাঁহ, পিতল, লো, সোণ, ৰূপ ইত্যাদি ধাতুবোৰৰ পৰা দৈনন্দিন জীৱনত ব্যৱহৃত বিভিন্ন সামগ্ৰী তৈয়াৰ কৰি ল'ব পাৰি। ধাতু শিল্পক দৈনন্দিন জীৱনত মূল্যবান সম্পদৰূপে গণ্য কৰা হয়। *শাস্ত্ৰমতে সোণৰ থালত আহাৰ গ্ৰহণ কৰিলে দৃষ্টিশক্তি বৃদ্ধি পায়, ৰূপৰ থালত পিত্ত নাশ হয়, কাঁহে মেধা শক্তি বৃদ্ধি কৰে আৰু পিতলৰ থালত খালে বায়ু বৃদ্ধি হয়।*[১]

লোক শিল্পৰ অন্তৰ্গত ধাতু শিল্পৰ এটা অন্যতম ভাগ হৈছে পিতল শিল্প। পিতলেৰে নিৰ্মিত শিল্পই হৈছে পিতল শিল্প। পিতল শব্দটো সংস্কৃত 'পিত্তল' শব্দৰ পৰা বিকশিত হৈছে। পিতলৰ অভিধানগত অৰ্থ এনেধৰণৰ—

১। *চন্দ্ৰকান্ত অভিধানৰ মতে, হালধীয়া বৰণৰ এবিধ ধাতু।* [২]

২। *হেমকোষৰ মতে, হালধীয়া বৰণৰ এবিধ ধাতু (তাম আৰু দস্তাৰ মিশ্ৰণেৰে*

তৈয়াৰী এইবিধ সংকৰ ধাতু বাচন, ঘৰ সজোৱা বস্তু, মূৰ্তি আদি বনোৱাত ব্যৱহাৰ হয়।)[৩]

৩। *The Chambers Dictionaryৰ মতে, An alloy of copper and Zinc.*[৪]

৪। *Merriam Websterৰ মতে, an alloy consisting essentially of copper and zinc in variable propertions.*[৫]

কাঁহৰ দৰে পিতল এবিধ সংকৰ (Alloy) ধাতু। তাম (copper) আৰু দস্তা (zinc) নিৰ্দিষ্ট অনুপাতত লগ লগাই পিতল ধাতু তৈয়াৰ কৰা হয়। গড়শালত ৭০ শতাংশ তাম আৰু ৩০ শতাংশ দস্তা মিহলাই পিতল তৈয়াৰ কৰা হয়। *সুৰগা দিলে পিতলৰ মিশ্ৰণটো গলোৱাত সহজ হয়। তদুপৰি সুৰগাই বস্তুটো মলিন কৰাতো সহায় কৰে।*[৬] পিতল দেখাত হালধীয়া, সোণৰ নিচিনা আৰু তামৰ দৰে কঠিন। বৰ্তমান সময়ত পিতলৰ টুকুৰাতকৈ আধুনিক যন্ত্ৰপাতিৰে নিৰ্মিত পিতলৰ চাকহে ব্যৱহাৰ কৰা হয়।

০.০২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

পিতল শিল্প অসমীয়া ভৌতিক সংস্কৃতিৰ অন্তৰ্গত লোক শিল্পৰ এক প্ৰধান অংগ। পিতলেৰে নিৰ্মিত সামগ্ৰীসমূহে অসমীয়া সমাজ জীৱনক সমৃদ্ধিশালী কৰি তুলিছে। বিয়া, উৎসৱ-পাৰ্বণ আৰু ধৰ্মীয় ক্ষেত্ৰত পিতলেৰে নিৰ্মিত সামগ্ৰীসমূহৰ ব্যৱহাৰ আছে। পিতলৰ সামগ্ৰী নিৰ্মাণ কৰিয়েই এচাম লোকে জীৱিকা নিৰ্বাহ কৰি আছে। পিতল শিল্পৰ বিষয়ে প্ৰণালীবদ্ধ আৰু বিজ্ঞানসন্মত অধ্যয়ন কৰাই ইয়াৰ প্ৰধান উদ্দেশ্য।

০.০৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

বিষয়বস্তু অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰত মূলতঃ বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। তথ্য আহৰণৰ উৎস হিচাপে ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ন আৰু বিভিন্ন প্ৰাসংগিক পুথিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.০৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

পিতল শিল্পৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিবলৈ যাওঁতে মূলতঃ পিতল শিল্প আৰু অসমত ইয়াৰ প্ৰচলন সম্পৰ্কীয় আলোচনাই মুখ্য স্থান পাইছে। লগতে পিতলৰ সামগ্ৰী নিৰ্মাণ প্ৰণালী, নিৰ্মিত সামগ্ৰী, লোক সাহিত্যত পিতলৰ সামগ্ৰীৰ উল্লেখ, সমাজ জীৱনত পিতলৰ সামগ্ৰীৰ ব্যৱহাৰ বিষয়ক আলোচনা এই অধ্যয়নৰ পৰিসৰৰ অন্তৰ্গত।

১.০০ সমাজ জীৱনত পিতলৰ সামগ্ৰীৰ ব্যৱহাৰ ঃ

অসমৰ সামাজিক জীৱনত পিতল শিল্পই এক বিশেষ ভূমিকা পালন কৰিছে। কাঁহৰ সমান্তৰালভাৱে পিতলৰ সামগ্ৰীসমূহ অসমীয়া সমাজ জীৱনত ব্যৱহৃত হৈ আহিছে। সভা-সমিতি বা ৰাজহুৱা অনুষ্ঠানত গণ্য-মান্য ব্যক্তিক শৰাইৰে মান ধৰাটো অসমীয়া সমাজৰ এক পৰম্পৰাগত নিয়ম। দেশ-বিদেশৰ পৰা অহা সন্মানীয় ব্যক্তিসকলকো শৰাই আৰু জাপিৰে সম্বৰ্ধনা জনোৱা হয়। পিতলৰ গছা আৰু চাকি ধৰ্মীয় মঠ-মন্দিৰ, মণিকূট, নামঘৰ আদিৰ অপৰিহাৰ্য সামগ্ৰী। বিয়া দিয়া কইনাজনীৰ লগত পিতলৰ কলহ আৰু চৰিয়া দিয়াটো এটা পৰম্পৰাগত নিয়মত পৰিণত হৈছে। পূজা-পাৰ্বণত পিতলৰ সামগ্ৰী ব্যৱহৃত হৈ আহিছে। বৰ্তমান সময়ত পিতলেৰে নিৰ্মিত কলপাত আৰু দোৰোলা পূজা-পাৰ্বণত যথেষ্ট পৰিমাণে বৃদ্ধি পাইছে। ঠাইবিশেষে বিয়াৰ দিনা পানী তুলিবলৈ যাওঁতে দুণৰিত চাকি জ্বলাই লৈ যোৱা নিয়ম প্ৰচলিত আছে। বিয়া আৰু অন্যান্য ধৰ্মীয় অনুষ্ঠানত পিতলেৰে নিৰ্মিত লোটা আৰু কলহত পানী ভৰাই অনা হয়।

২.০০ পিতল শিল্পৰ ইতিহাস ঃ

পিতল শিল্প প্ৰথমে ক'ত উৎপন্ন হৈছিল সেই সম্পৰ্কে প্ৰকৃত তথ্য পোৱা নাযায়। 'George Newnes London'ৰ পৰা প্ৰকাশিত *'Popular Encyclopaedia'*ত উল্লেখ কৰা অনুসৰি খৃঃপূঃ পঞ্চম শতিকাতে পিতল আৱিষ্কাৰ হৈছিল। *গ্ৰীক আৰু ৰোম সাম্ৰাজ্যত ই আনুপাতিকভাৱে বেছি মূল্যবান আছিল। কিন্তু ভাৰতবৰ্ষত সুদূৰ অতীতৰে পৰা ঘৰুৱা পাত্ৰৰ বাবে পিতল ব্যৱহাৰ হৈ আহিছে।*[৭] পিতল শব্দটো সংস্কৃত 'পিত্তল' শব্দৰ পৰা বিকশিত হোৱা কথাটোৱে সংস্কৃত ভাষা উদ্ভৱ হোৱাৰ আগতে যে পিতল শিল্পৰ প্ৰচলন আছিল তাকে সূচায়। *নৃতত্ত্ববিদ এডৱাৰ্ড বাৰ্ণেট টাইলাৰৰ মতে নৱপ্ৰস্তৰ যুগতে পৰৱৰ্তী কালৰ লোক শিল্পকলাৰ সূত্ৰপাত হয় বুলি লোৱা সিদ্ধান্তৰ পৰা পিতল শিল্পও সেই সময়ৰ ওচৰা-উচৰিকৈ উৎপত্তি হোৱা বুলি অনুমান কৰিব পাৰি।*[৮] *প্ৰাগৈতিহাসিক যুগত পিতলক 'Calamine' বুলি কোৱা হৈছে আৰু প্ৰাচীন কালত গ্ৰীচ, ৰোম আৰু চীনদেশৰ লোকসকলে মুদ্ৰা তৈয়াৰ কৰা কামত ইয়াক ব্যৱহাৰ কৰিছিল।*[৯] বুৰঞ্জী সমূহত উল্লেখ কৰা অনুসৰি পিতলৰ বাচন লো আৰু কাঁহৰ বাচনৰ পিছতহে প্ৰৱৰ্তিত হয়। সেয়ে কাঁহ প্ৰস্তুত হোৱাৰ পৰৱৰ্তী সময়ত পিতল

প্ৰস্তুত হৈছে বুলি অনুমান কৰিব পাৰি।

অসমলৈ তাম, পিতল, কাঁহ আদি ধাতুবোৰৰ কিছু খাচী-জয়ন্তীয়া পাহাৰ অঞ্চলৰ পৰা আৰু নেপাল, তিব্বতৰ ফালৰ পৰা আহিছিল।[১০] খ্ৰী. নৱম-দশম শতিকামানত পিতলেৰে নিৰ্মিত বৌদ্ধ মূৰ্ত্তি কেইটামান আৱিষ্কৃত হৈছিল। অসমীয়া লিখিত সাহিত্যৰ প্ৰথম নিদৰ্শন চৰ্যাপদত ঘণ্টা, নেপূৰ, কোহাল আদি কাঁহ পিতলেৰে গঢ়া বাদ্যযন্ত্ৰৰ উল্লেখ আছে। প্ৰাক শংকৰী যুগৰ অসমীয়া সাহিত্যত ধাতুৰ পৰা নিৰ্মিত মহৰী, ঘণ্টা, কালি ইত্যাদি বাদ্যযন্ত্ৰৰ উল্লেখ আছে। এই বাদ্যযন্ত্ৰবোৰ পিতলেৰে নিৰ্মিত বুলি অনুমান কৰিব পাৰি। আহোম ৰাজত্বকালত উত্তৰ ভাৰতৰ পৰা পিতলৰ পাত অসমলৈ অনা হৈছিল। কিন্তু পিতলৰ কাম কৰা বৃত্তিগত জাতি আছিল বুলি ধাৰণা কৰিব নোৱাৰি। পিছৰ পৰ্যায়ত মৰিয়াসকল পিতল শিল্পৰ লগত জড়িত হৈ পৰে। বংগদেশৰ মুছলমান ৰজা নছৰত চাহৰ নিৰ্দেশত ১৫৩২ চনত তুৰ্বক খানে কৰা অসম আক্ৰমণত যিসকল মুছলমান সৈন্যক বন্দী কৰা হৈছিল তেওঁলোকেই হৈছে মৰিয়া। আহোম স্বৰ্গদেউ চুহুংমুং বা দিহিঙীয়া ৰজাৰ ৰাজত্বকালত বন্দী হোৱা এই লোকসকলৰ পিতল শিল্পৰ জ্ঞান আছিল। উত্তৰ পশ্চিম ভাৰতত তেওঁলোকক 'ঠাঠাৰ' বোলা হৈছিল। ৰজাই এই বন্দী লোকসকলক ঘাঁহ খুওৱা, আলিবন্ধা আৰু পুখুৰী খন্দা, খেতি কৰা আদি কামত নিয়োজিত কৰিছিল যদিও কোনো ক্ষেত্ৰতে তেওঁলোকে পাৰদৰ্শিতা দেখুৱাব নোৱাৰিছিল। তেতিয়া চুহুংমুং বা দিহিঙীয়া ৰজাই তেওঁলোকক সাত মোন পিতল আনি বাচন তৈয়াৰ কৰিবলৈ নিৰ্দেশ দিছিল। "মৰিয়াসকলে অসমত পিতল শিল্পক যি আয়তন দিলে, তাৰ আগতে পিতলৰ ব্যৱহাৰ সীমিত আছিল আৰু যিখিনি সামগ্ৰী পিতলেৰে নিৰ্মাণ কৰা হৈছিল, সেইখিনি পিতল গলাই সাঁচত ঢালি কৰা সঁজুলিহে আছিল। তেওঁলোকে কমাৰশালৰ দৰে শাল পাতি নিয়াৰি ব্যৱহাৰ কৰি পিতলৰ কাম কৰিছিল। *তদুপৰি একো একোটা ডাঙৰ পাত্ৰ বা সামগ্ৰী নিৰ্মাণ কৰোতে অংশবিলাক গলা পিতলেৰে জোৰা লগাই লোৱাৰ পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰিছিল।*[১১]

প্ৰাচীন অসমত দুই ধৰণেৰে পিতলৰ সামগ্ৰী প্ৰস্তুত কৰা পদ্ধতি আছিল। প্ৰথম পদ্ধতি অনুসৰি তাম (Copper) আৰু দস্তা (Zinc) নিৰ্দিষ্ট অনুপাতত মিহলাই গলাই লৈ পিতল প্ৰস্তুত কৰি তাক মাটিৰ সাঁচত ঢালি দিছিল। মঠ-মন্দিৰত ব্যৱহৃত বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ মূৰ্ত্তি আৰু ঘৰত ব্যৱহৃত কিছু সামগ্ৰী এনে পদ্ধতিৰে সাজি উলিওৱা হৈছিল। আন এক পদ্ধতি অনুসৰি পিতল জুইত তাপ দি হাতুৰীৰে কোবাই কোবাই কিছুমান সামগ্ৰী তৈয়াৰ কৰিছিল। টৌ, চৰিয়া, গাগৰি, শৰাই, কলহ ইত্যাদি সামগ্ৰীবোৰ এনে পদ্ধতিৰে সজোৱা হৈছিল। বৰ্তমান সময়ত অসমৰ পিতল শিল্পক্ষেত্ৰত দ্বিতীয় পদ্ধতিবিধৰ প্ৰয়োগ কৰি পিতলৰ বাচন তৈয়াৰ কৰি আহিছে। মৰিয়াসকল অসমত থাকিবলৈ লোৱাৰ আগতে প্ৰথম পদ্ধতিটোৰেহে সামগ্ৰী গঢ়া হৈছিল।

অবিভক্ত কামৰূপ জিলাৰ অন্তৰ্গত হাজো, সৰ্থেবাৰী আৰু মুগকুছিতহে বৰ্তমান পিতল শিল্পৰ গঢ়শাল পোৱা যায়। আহোম স্বৰ্গদেউ চুহুংমুঙৰ দিনতে প্ৰায় ১২ ঘৰ মান মৰীয়া লোক আহি হাজোত থিতাপি লৈছিল। তেওঁলোকে গঢ়শাল পাতি পিতলৰ বাচন তৈয়াৰ কৰিছিল। ১৫৮৩ খৃঃত কোঁচ ৰজা নৰনাৰায়ণৰ ভায়েক চিলাৰায়ৰ পুত্ৰ ৰঘুদেৱে হাজোৰ মাধৱ মন্দিৰ পুনৰ নিৰ্মাণৰ বাবে পাইক ব্যৱস্থা প্ৰৱৰ্তন কৰিছিল। তেতিয়া ৰজাই মৰীয়াসকলক পিতলৰ বাচন যোগান ধৰাৰ দায়িত্ব অৰ্পণ কৰিছিল। মৰীয়াসকলৰ সমান্তৰালভাবে হিন্দু সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকলেও বৰ্তমান সময়ত হাজোত পিতলৰ বাচন তৈয়াৰ কৰিবলৈ লৈছে।

প্ৰাচীন কালত পিতল শিল্পৰ লগত জড়িত শিল্পীসকলে কোনো অভাব অনুভব কৰা নাছিল। ফলস্বৰূপে তেওঁলোকে শিল্পটোত নিজকে সম্পূৰ্ণৰূপে নিয়োগ কৰি উৎকৃষ্ট মানৰ সামগ্ৰী প্ৰস্তুত কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। কিন্তু মহাজন শ্ৰেণীৰ শোষণৰ ফলস্বৰূপে শিল্পটোৰ যথেষ্ট অৱনতি হৈছিল। উপযুক্ত মজুৰীৰ অভাৱ, কেঁচামালৰ উৰ্দ্ধমুখী দাম, প্ৰকৃত মূল্য দিব পৰা বজাৰৰ অভাৱ, চৰকাৰৰ অৱহেলা ইত্যাদি বিভিন্ন কাৰণে শিল্পটোক মৃত্যুৰ গৰাহলৈ ঠেলি দিছিল। মহাজন শ্ৰেণীৰ শোষণৰ পৰা মুক্তি পাবলৈ ১৯৫২ চনৰ ৩ ছেপ্তেম্বৰত '*Hajo Brass Utensils Workers co-operative Industrial Society*' নামৰ সমবায় প্ৰতিষ্ঠান এটিৰ জন্ম দিছিল। কিন্তু পিছৰ পৰ্যায়ত এই সমবায়খন তিষ্ঠি নাথাকিল। ১৯৫৬ চনত হাজোৰ

ভৰালীটোলাৰ শিল্পীসকলে মিলিত হৈ '*Hajo Industrial Multipurpose Co-operative Society Ltd*' নামেৰে আন এখন সমবায় প্ৰতিষ্ঠানৰ জন্ম দিছিল যদিও এইখনো ভংগ হৈ যায়। ১৯৯৮ চনৰ ১৮ ডিচেম্বৰ তাৰিখে হাজোৰ আটাইবোৰ শিল্পী পোন প্ৰথমবাৰৰ বাবে মিলিত হৈ '*হাজো পিতল শিল্পী সংঘ*' নামে এটি অনুষ্ঠানৰ জন্ম দিছিল। পিছলৈ সুদক্ষ নেতৃত্বৰ অভাবত এই অনুষ্ঠানটিও ধ্বংসৰ মুখলৈ গতি কৰে। ফলস্বৰূপে শিল্পীসকলে মহাজন সকলৰ তত্ত্বাৱধানত শিল্পটো আগবঢ়াই নিয়ে, যাৰ বাবে বৰ্তমানেও তেওঁলোক অত্যন্ত শোষিত হৈ আহিছে। হাজোৰ পিতল শিল্পীসকলৰ অন্যতম চানেকি হৈছে—*অসম ৰাজ্যিক সংগ্ৰহালয়ত থকা ৫ মিঃ ৭০ ছেঃমিঃ বহল, ৪১ ছেঃমিঃ ওখ চৰিয়াটো, হয়গ্ৰীব মাধৱ মন্দিৰ আৰু কেদাৰ মন্দিৰৰ বৃহৎ ডবা ২ টা, বৰপেটা সত্ৰৰ শৰাই দুখন, কমলাবাৰী সত্ৰৰ চৰিয়া ইত্যাদি।*[১২]

হাজোৰ মুছলিম পট্টী অঞ্চলত ২০০৬ চনত '*হাজো মুছলিম পট্টী পিতল কাৰিকৰ সন্থা*' নামেৰে এটি অনুষ্ঠানৰ জন্ম হৈছিল আৰু বৰ্তমানেও এই অনুষ্ঠানটোৱে কাৰ্যনিৰ্বাহ কৰি আছে। শিল্পীসকলৰ গঢ়নি বানচ নিৰ্ধাৰণ, অভাৱ-অভিযোগ নিষ্পত্তি, নীতি নিৰ্ধাৰণ, গঢ়শালত কাম কৰা সময় নিৰ্ধাৰণ ইত্যাদি কাৰ্যসমূহ সম্পাদন কৰাই এই অনুষ্ঠানৰ মূল লক্ষ্য। সন্থাৰ নীতি অনুযায়ী প্ৰতি শুক্ৰবাৰ আৰু কোনো স্থানীয় ব্যক্তিৰ মৃত্যু হ'লে গঢ়শাল বন্ধ ৰখা হয়।

হাজোৰ পিতল শিল্পীসকলে দুই ধৰণেৰে কেঁচামাল সংগ্ৰহ কৰি পিতলৰ বাচন তৈয়াৰ কৰে। এচাম শিল্পীয়ে নিজাববীয়াকৈ পিতলৰ চাক কিনি আনি তাৰে বাচন গঢ়াই ব্যৱসায়ীৰ (পিতল শিল্পীসকলৰ ভাষাত আৰবদাৰী) হাতত বিক্ৰী কৰে। আন এচাম শিল্পীয়ে মহাজনৰ পৰা পিতলৰ চাকবোৰ গঢ়নিৰ বাবদ আনে। বাচনবোৰ নিৰ্মাণ হোৱাৰ পিছত সেইবোৰ মহাজনক গতাই দিয়ে আৰু তাৰ বাবদ মহাজনৰ পৰা গঢ়নি বানচ লাভ কৰে। *বৰ্তমান সময়ত হাজোত মৰীয়া সম্প্ৰদায়ৰ প্ৰায় ৩৬০ ঘৰ আৰু হিন্দু সম্প্ৰদায়ৰ ৩ ঘৰ মানুহ এই শিল্পটোৰ লগত জড়িত হৈ আছে। মুঠ ৭০০ মান শিল্পী বৰ্তমান এই শিল্পটোক প্ৰধান বৃত্তি হিচাপে লৈ জীৱিকা নিৰ্বাহ কৰি আছে।*[১৩]

সৰ্থেবাৰী অঞ্চলৰ পিতল শিল্প বুলি ক'লে মূলতঃ শৰাই শিল্পকহে জনা যায়। সৰ্থেবাৰীৰ দাঁতিকাষৰীয়া গাঁও বণিয়াকুছি, হালধিবাৰী, লাছিমা, আমৃখোৰা, বেঙাপাৰা, চিনাদী, কামাৰপাৰাত এই শিল্পটোৰ প্ৰচলন আছে। আনুমানিক ১৮৫০ চন মানৰ পৰা এই শিল্পটো সৰ্থেবাৰী অঞ্চলত প্ৰচলিত আছিল। সৰুক্ষেত্ৰী মৌজাৰ হালধিবাৰীত জগন্নাথ দেৱৰ কনিষ্ঠ পুত্ৰ কপিলদেৱে সত্ৰ স্থাপন কৰিছিল। তেওঁ পিতলৰ কাম-কাজত অভিজ্ঞ এজন ব্যক্তিক সত্ৰৰ মূল দায়িত্ব অৰ্পণ কৰিছিল। এই ব্যক্তিগৰাকীয়ে সত্ৰৰ বাবে আৱশ্যকীয় শৰাই, গছা, চাকি আৰু আন আন পিতলৰ সামগ্ৰী তৈয়াৰ কৰি সত্ৰৰ কাম-কাজত ব্যৱহাৰ কৰিছিল। সেই সময়ৰ পৰা হালধিবাৰীত পৰ্যায়ক্ৰমে পিতলৰ নানান সামগ্ৰী তৈয়াৰ কৰা এচাম শিল্পীৰ জন্ম হয়। কুৰি শতিকাৰ মাজভাগত সৰুক্ষেত্ৰীৰ জননায়ক বাপুৰাম দাসে শিল্পটোৰ প্ৰসাৰত বিশেষ আগভাগ লয়। সৰ্থেবাৰীৰ পিতল শিল্পীসকলৰ অন্যতম চানেকি হৈছে—*সৰ্থেবাৰী গাঁৱৰ তামুলীথেৰ চুপাৰ কীৰ্ত্তন ঘৰৰ পিতলৰ দুৱাৰ, বণিয়াকুছিৰ জগন্নাথদেৱৰ সত্ৰৰ মণিকুটৰ পিতলৰ চাল ইত্যাদি।*[১৪]

বৰ্তমান সময়ত পিতল শিল্পীসকলৰ জীৱনলৈ এক অশনি সংকেত নামি আহিছে। কেঁচামালৰ উৰ্দ্ধমুখী দাম, মহাজন শ্ৰেণীৰ শোষণ, উপযুক্ত মজুৰিৰ অভাৱ, প্ৰকৃত মূল্যৰ বজাৰৰ অভাৱ, চৰকাৰৰ অৱহেলা ইত্যাদি বিভিন্ন কাৰণত শিল্পটো ধ্বংসৰ মুখলৈ গতি, কৰিছে। পিতল শিল্পৰ শিল্পীসকলৰ বৰ্তমানৰ দুৰৱস্থাৰ আন এটি কাৰণ হৈছে আওপুৰণি পদ্ধতিৰ প্ৰয়োগ। বৰ্তমান সময়ত মুৰাদাবাদত আধুনিক যন্ত্ৰপাতি প্ৰয়োগ কৰি কম খৰছতে সুন্দৰ চানেকিৰ বাচন নিৰ্মিত হৈছে। এই বাচনবোৰে বৰ্তমানৰ বজাৰখন দখল কৰা বাবে আওপুৰণি পদ্ধতিৰে কৰা খৰছী বস্তুবোৰৰ চাহিদা কমি আহিছে।

৪.০০ পিতলৰ সামগ্ৰী নিৰ্মাণ প্ৰণালী ঃ

কাঁহৰ লগত পিতলৰ সামগ্ৰী নিৰ্মাণ প্ৰণালীৰ যথেষ্ট মিল আছে। পিতলৰ সামগ্ৰী নিৰ্মাণ কৰা ঠাইখিনিক গঢ়শাল বোলা হয়। পিতলৰ সামগ্ৰী নিৰ্মাণ কৰা কেইটামান স্তৰ আছে। সেয়া হৈছে —

১। **প্ৰথম স্তৰ ঃ** পিতল শিল্পীসকলে মহাজনৰ পৰা চাক পিতলবোৰ কিনি আনে অথবা গঢ়নিৰ বাবদ আনে।

২। **দ্বিতীয় স্তৰ ঃ** চাক পিতলবোৰ তৈয়াৰ কৰিব খোজা বাচনটোৰ নিৰ্দিষ্ট জোখত কাটি লোৱা হয়। এই পিতলবোৰ বৰ্গাকৃতিৰ আৰু ঘূৰণীয়া এই দুই ধৰণৰ থাকে। কম্পাছৰ সহায়ত বাচনটোৰ নিৰ্দিষ্ট অংশবোৰৰ জোখ লৈ সেই অনুপাতে কাটিৰে (চাক পিতল কটা এবিধ আহিলা) কাটি উলিওৱা হয়।

৩। **তৃতীয় স্তৰ ঃ** কাটি লোৱা পিতলৰ টুকুৰাবোৰ হাতুৰীৰে মৰিয়াই মৰিয়াই চিধা কৰি লোৱা হয়। কোনো অংশত যদি গাঁত কৰিবলগা হয় তেন্তে কাঠৰ টুকুৰা এটাত গাঁত খুলি লৈ তাত পিতলৰ চাকবোৰ থোৱা হয় আৰু কোবাই কোবাই গাঁত কৰা হয়।

৪। **চতুৰ্থ স্তৰ ঃ** নিৰ্মাণ কৰিব লগা সামগ্ৰী এটাৰ বিভিন্ন অংশ কাটি লোৱাৰ পিছত পায়েনৰ সহায়ত অংশবোৰ জোৰা লগোৱা হয়।

৫। **পঞ্চম স্তৰ ঃ** জোৰা লগোৱা অংশবোৰ কিছু সময় পিছত ভাটিত তাপ লাগিবলৈ দিয়া হয় আৰু নিয়াৰিত থৈ জোৰা লগোৱা অংশখিনি হাতুৰীৰে কোবোৱা হয়।

৬। **ষষ্ঠ স্তৰ ঃ** সামগ্ৰীবিধৰ বিভিন্ন অংশ কোবাই কোবাই মিহি কৰা হয় আৰু কিছুমান চানেকি বছা হয়।

৭। **সপ্তম স্তৰ ঃ** নিৰ্মাণ হোৱা সামগ্ৰীবিধ এছিড পানীৰে ধুই পৰিষ্কাৰ কৰা হয়।

৮। **অষ্টম স্তৰ ঃ** নিৰ্মিত সামগ্ৰীটোৰ উজ্জ্বলতা বৃদ্ধিৰ বাবে কুন্দত সামগ্ৰীবিধ বহুৱাই বাগীৰ সহায়ত চাফা কৰা হয় আৰু ৰেতিৰ সহায়ত কোণবোৰ মিহি কৰা হয়।

৯। **অন্তিম স্তৰ ঃ** সামগ্ৰীবিধৰ বিভিন্ন অংশত প্ৰয়োজন অনুপাতে ফুল কটা হয় আৰু বিভিন্ন ডিজাইন দিয়া হয়। তেতিয়া সামগ্ৰীবিধ ব্যৱহাৰৰ উপযোগী হৈ পৰে।

৫.০০ পিতলৰ সামগ্ৰী নিৰ্মাণত ব্যৱহৃত সঁজুলি ঃ

পিতল শিল্প নিৰ্মাণত ব্যৱহৃত সঁজুলিসমূহ হৈছে-

(ক) নিয়াৰি ঃ ঘূৰণীয়া আকৃতিৰ এটুকুৰা লো। ইয়াৰ ওপৰত থৈ বাচন সমূহৰ আকৃতি কৰিবৰ কাৰণে হাতুৰীৰে কোবোৱা হয়।

(খ) হাতুৰী ঃ চাক পিতলসমূহ কোবাই সামগ্ৰীৰ গঢ় দিবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা এবিধ আহিলা। বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ হাতুৰী এই শিল্পৰ নিৰ্মাণ কাৰ্যত ব্যৱহৃত হয়। সেয়া হৈছে গল কোবোৱা হাতুৰী, মাথলী হাতুৰী, দ হাতুৰী, বৰ হাতুৰী, টচমাৰা হাতুৰী, কেওচ দিয়া হাতুৰী, একঠেঙীয়া হাতুৰী, কাণহেচো হাতুৰী, আহ লোৱা হাতুৰী, চৰুৱা হাতুৰী, চৰ কেওচ দিয়া হাতুৰী ইত্যাদি।

(গ) ঢেকা ঃ পিতলৰ সামগ্ৰীসমূহ চেপেটা হ'লে ইয়াত সুমুৱাই হাতুৰীৰে কোবাই মেৰামতি কৰা হয়।

(ঘ) চাট্‌লি বা চাতুলি ঃ লো আৰু তীখাৰে নিৰ্মিত সঁজুলি। সামগ্ৰীসমূহ তৈয়াৰ হোৱাৰ পিছত জোৰাবোৰ কোবাই মিহি কৰাৰ ক্ষেত্ৰত ব্যৱহাৰ কৰা হয়। চাটলি বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ— খৰকা চাট্‌লি, বৰ চাট্‌লি, ফেটি চাট্‌লি, মাথা চাট্‌লি ইত্যাদি।

(ঙ) ৰেতি ঃ লো আৰু তীখাৰে নিৰ্মিত এবিধ সঁজুলি। সামগ্ৰী সমূহ নিৰ্মাণ হোৱাৰ পিছত ৰেতিৰে ঘঁহি ঘঁহি মিহি কৰা হয়। ইয়াক ঠাইবিশেষে ৰেত আৰু ফাইল নামেৰেও জনা যায়।

(চ) কুন্দ ঃ কাঠ আৰু ৰছীৰে নিৰ্মিত এবিধ আহিলা। সামগ্ৰীবিধ মিহি কৰিবলৈ আৰু ফুল কাটিবলৈ কুন্দ ব্যৱহাৰ কৰা হয়।

(ছ) মুহী ঃ বহল মুখৰ মাটিৰ সৰু পাত্ৰ।

(জ) ভাটি ঃ জুই জ্বলাবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা এবিধ সঁজুলি। বৰ্তমান কিছুমান শিল্পীয়ে আধুনিক যন্ত্ৰপাতিৰে জুই জ্বলাবলৈ ধৰিছে।

(ঝ) কাঠ ঃ কাঠ এটুকুৰাত খোলনি কৰা হয়। সামগ্ৰীবিধ দ কৰিবলৈ হ'লে তাত কোবাই দ কৰা হয়।

(ঞ) পায়েন ঃ পিতল আৰু দস্তাৰ লগত সুৱাগা লগ লগাই তৈয়াৰ কৰা এবিধ আঠা। তিনিভাগ পিতলৰ গুড়ীৰ লগত এভাগ দস্তা মিহলাই পায়েন প্ৰস্তুত কৰা হয়। ইয়াৰ সহায়ত সামগ্ৰীবিধৰ দুটা অংশ জোৰা লগোৱা হয়।

(ট) আফৰ ঃ গঢ়শালত গঢ়া সামগ্ৰীবিধত জোৰা লগাবলৈ আফৰত দি কোবোৱা হয়।

(ঠ) আকে ঃ তীখাৰে নিৰ্মিত এবিধ সঁজুলি। ঘূৰণীয়া বস্তু মিহি কৰাৰ ক্ষেত্ৰত এইবিধ সঁজুলি ব্যৱহৃত হয়।

(ড) গাজ (কাটি) ঃ লো অথবা তীখাৰে নিৰ্মিত এবিধ সঁজুলি। চাক পিতলবোৰ কাটিবলৈ গাজ ব্যৱহাৰ কৰা হয়।

(ঢ) লোৱাল ঃ লো অথবা তীখাৰে নিৰ্মিত এবিধ সঁজুলি। ইয়াৰ সহায়ত পিতলৰ সামগ্ৰীসমূহ পৰিষ্কাৰ কৰা হয়।

(ণ) সৰাহ ঃ লো অথবা তীখাৰে নিৰ্মিত চেপেনাসদৃশ এবিধ আহিলা। জুইত গলোৱা সামগ্ৰীবোৰ চেপি আনিবলৈ সৰাহ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। সৰাহ বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ— পোন সৰাহ, আঁকোৰা সৰাহ, পাত সৰাহ, গাল সৰাহ, বেজীমুখীয়া সৰাহ, কমাৰী সৰাহ ইত্যাদি।

(ত) বাগী ঃ বটালীৰ নিচিনা সৰু আকৃতিৰ ফুল কাটিবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা এবিধ আহিলা।

(থ) খন্তা ঃ নিৰ্মিত সামগ্ৰীবোৰ পৰিষ্কাৰ কৰিবলৈ

এইবিধ আহিলা ব্যৱহাৰ কৰা হয়।

(দ) কম্পাছ ঃ লোৰে নিৰ্মিত এবিধ আহিলা। চাক এখন ঘূৰণীয়াকৈ কাটিবলৈ পোন প্ৰথমে কম্পাছেৰে আঁকি লোৱা হয়।

(ধ) বুলি ঃ ফুল কটা আৰু নিৰ্মাণ কৰা সামগ্ৰীবিধৰ ওপৰত নাম লিখিবলৈ এইবিধ আহিলা ব্যৱহৃত হয়।

(ন) বেলমূৰি ঃ ওপৰভাগ তীখা আৰু বাকী অংশ লোৰে নিৰ্মিত এবিধ আহিলা। সামগ্ৰীবিধত আঠা লগোৱাৰ পিছত বেলমূৰিত থৈ কোবোৱা হয়।

(প) আকোৰা ঃ হাতুৰীৰ লেখীয়া এবিধ আহিলা। ইয়াৰ সহায়ত কলহৰ ওপৰ অংশ নিৰ্মাণ কৰা হয়।

৬.০০ পিতলৰপৰা নিৰ্মাণ হোৱা সামগ্ৰী ঃ

পিতল শিল্পীসকলে ধৰ্মীয় কাৰ্যত আৰু দৈনন্দিন জীৱনত ব্যৱহৃত বিভিন্ন ধৰণৰ সামগ্ৰী নিৰ্মাণ কৰে। তেওঁলোকে নিৰ্মাণ কৰা এনে সামগ্ৰীসমূহ হৈছে-

(ক) ধৰ্মীয় কাৰ্যত ব্যৱহৃত সামগ্ৰী ঃ

কলচী ঃ মন্দিৰ, নামঘৰ আদিত সৌন্দৰ্য বৰ্ধনৰ বাবে কলহ বা কলডিল আকৃতিৰ নিৰ্মিত সামগ্ৰী।

ডবা ঃ মন্দিৰ, নামঘৰ আদিত সন্ধিয়া সময়ত বজোৱা এবিধ বাদ্য

গছা ঃ মন্দিৰ, নামঘৰ আদিত চাকি দিবৰ বাবে ব্যৱহৃত সামগ্ৰী।

চাকি ঃ মাটিৰ চাকিৰ আকৃতিত পিতলেৰে নিৰ্মিত সামগ্ৰী।

শৰাই ঃ জ্যেষ্ঠজনক মান ধৰিবলৈ আৰু দেৱতাক নৈবেদ্য দিবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা এবিধ সামগ্ৰী।শৰাই এখনত কলচি, হাইৰা, দাইলা, ঢাকোন, চুলা, গল, পতি, কাপ, চোলা, পায়েৰা ইত্যাদি বিভিন্ন অংশ থাকে। শৰাই বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ— জালিকটা শৰাই, চকা শৰাই জালিকটা পাতৰি শৰাই, ৰঙা শৰাই, সঁফুৰা শৰাই, দ'ল শৰাই, বনকৰা শৰাই ইত্যাদি।

কলপাত ঃ কলপাতৰ আগটোৰ নিচিনা পিতলেৰে নিৰ্মিত সামগ্ৰী।

দোৰোলা (দোনা) ঃ কলগছৰ পৰা নিৰ্মিত দোলাৰ লেখীয়া পিতলেৰে তৈয়াৰী এবিধ সামগ্ৰী।

ধূনা বাটি ঃ মন্দিৰত ধূনা জ্বলাবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা এবিধ সঁজুলি।

নাগাৰা ঃ নাগাৰা নামৰ পাঠকসকলে এইবিধ বাদ্য ব্যৱহৃত কৰাৰ লগতে মন্দিৰ, নামঘৰত নাম প্ৰসংগৰ সময়ত এই বাদ্যবিধ বজোৱা হয়।

(খ) ৰন্ধা আৰু খোৱা-বোৱাত ব্যৱহৃত সঁজুলি ঃ

টৌ ঃ বস্তু ভৰাই থব পৰা এবিধ ডাঙৰ পাত্ৰ।

হেতা ঃ ভাত ৰন্ধা এবিধ সামগ্ৰী

চৰিয়া ঃ হাত ধুবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা এবিধ পাত্ৰ।

কলহ ঃ পেট ডাঙৰ, ডিঙি ঠেক পানী আনিবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা এবিধ পাত্ৰ।

গাগৰী ঃ চুটি ডিঙি আৰু দীঘলীয়া গাৰে এবিধ পিতলৰ কলহ।

লোটা ঃ পানী খাবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা এবিধ পাত্ৰ।

থাল ঃ ঘূৰণীয়া আকৃতিৰ বহল এবিধ পাত্ৰ।

খৰাহী ঃ ঘূৰণীয়া আকৃতিৰ মাজত ফুটা থকা এবিধ পাত্ৰ। চাউল আৰু অন্যান্য সামগ্ৰী ধুবলৈ ইয়াক ব্যৱহাৰ কৰা হয়।

টেকেলী ঃ পানী গৰম কৰিবৰ বাবে ব্যৱহৃত এবিধ সঁজুলি।

গিলাচ ঃ পানী খাবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা এবিধ পাত্ৰ।

চামুচ ঃ বস্তু খাবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা এবিধ পাত্ৰ।

ট্ৰে ঃ আলহী-অতিথিক চাহ-জলপান দিবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা পাত্ৰ।

কাঢ়নী ঃ বিয়া আৰু অন্যান্য উৎসৱ পাৰ্বনত ৰন্ধা ভাত কাঢ়িবলৈ এইবিধ আহিলা ব্যৱহৃত হয়।

(গ) বিয়াত ব্যৱহৃত সামগ্ৰী ঃ

দুণৰি ঃ বিয়াত পানী তুলিবলৈ যাওঁতে ব্যৱহৃত এবিধ পাত্ৰ।

বটা ঃ কটা তামোল থোৱা এবিধ পাত্ৰ। বিয়াত দৰা বা কইনাই বটা লৈ অভ্যাগতক তামোল পাণ যাঁচে।

(ঘ) অন্যান্য কাৰ্যত ব্যৱহৃত সামগ্ৰী ঃ

জাপি ঃ সৌন্দৰ্য বৰ্ধনৰ বাবে বাঁহৰ জাপিৰ লেখীয়া পিতলেৰে তৈয়াৰী এবিধ সামগ্ৰী।

টেমি ঃ চূণ ৰখা সৰু পাত্ৰ

ভোগজৰা ঃ পেটত নলী থকা এবিধ দীঘলীয়া লোটা।

থালি ঃ বস্তু ভৰাই থ'বলৈ ব্যৱহাৰ কৰা এবিধ আহিলা।

ওপৰত উল্লিখিত এই সামগ্ৰীসমূহৰ উপৰিও প্ৰাচীন কালত কঁৰিয়া, দোন, বেলা ডালিচৰিয়া, ডেগ, হাত খুন্দনা, হেংদান-তৰোৱালৰ খাঁপ, চেপা খুন্দনা, কালি, তামুলী পীৰা, কটাৰীৰ ডাব ইত্যাদি বিভিন্ন সামগ্ৰী নিৰ্মাণ কৰা হৈছিল। বৰ্তমান সময়ত ইয়াৰ চাহিদা নাই বাবে এইবোৰ সামগ্ৰী নিৰ্মাণ কৰা নহয়।

উপসংহাৰ ঃ

পিতল শিল্পই অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ দৈনন্দিন প্ৰয়োজনীয়তা পূৰণ কৰাৰ লগতে নান্দনিক সৌন্দৰ্যও ফুটাই তুলিবলৈ সক্ষম হৈছে। কিন্তু বৰ্তমান সময়ত এই শিল্পটোৰ প্ৰতি যথেষ্ট ভাবুকি আহিছে। কেঁচামালৰ অভাৱে এই শিল্পৰ লগত জড়িত লোক সকলক জুৰুলা কৰি পেলাইছে। জুইৰ তাপ আৰু ক'লাধোঁৱাৰ মাজত থাকি দিনটো কাম কৰিবলগীয়া হোৱা বাবে বহু লোকে নানা বেমাৰত পৰে, ফলত আধাতে তেওঁলোকে শিল্পটো বাদ দিবলগীয়া হয়। তদুপৰি বজাৰত উপলব্ধ ষ্টীল আৰু প্লাষ্টিকৰ সামগ্ৰীবোৰ কম দামতে উপলব্ধ হোৱা বাবেও শিল্পটোৰ প্ৰতি যথেষ্ট ভাবুকিৰ সৃষ্টি হৈছে। সেইদৰে মুৰাদাবাদৰ পৰা অহা আধুনিক যন্ত্ৰপাতিৰে নিৰ্মিত পিতলৰ সামগ্ৰীবোৰ কম খৰচী হোৱা বাবে মানুহে সহজে সেই সামগ্ৰীবোৰ আকোঁৱালি লৈছে। চৰকাৰেও এই শিল্পটোৰ প্ৰতি অনীহা প্ৰকাশ কৰা দেখা যায়। সেয়ে তেওঁলোকে শিল্পটোৰ প্ৰতি আগ্ৰহী হৈ শিল্পটোক কিছু উন্নতমানৰ কৰি গঢ়ি তুলিব পাৰিলেহে শিল্পটো বৰ্তি থাকিব আৰু ই নিশ্চয় অসমৰ অৰ্থনৈতিক ক্ষেত্ৰত অৰিহণা যোগাব পাৰিব বুলি আশা কৰিব পাৰি। ❑

প্ৰসঙ্গ সূত্ৰ ঃ

১. দাস, যুগল ঃ অসমৰ লোককলা, পৃ. ৬১
২. গোস্বামী, মালিনী (মুখ্য সম্পা.) আৰু অন্যান্য (সম্পা.) ঃ চন্দ্ৰকান্ত অভিধান, পৃ. 565
৩. বৰুৱা, হেমচন্দ্ৰ (সম্পা.) ঃ হেমকোষ, পৃ. ৮৩২
৪. Brookes, Ian; Micheel Munro (ed.) : The Chambers Dictionary, p. 186
৫. উৎস ঃ ইন্টাৰনেট
৬. তথ্যদাতা ঃ হৰিপ্ৰসাদ বৰ্মন, পুৰুষ, ৫০ বছৰ, আমৃখোৱা, বৰপেটা
৭. তালুকদাৰ, ধ্ৰুৱকুমাৰ ঃ অসমৰ লোক-শিল্পকলা, পৃ. ৫৩
৮. চৌধুৰী, ধ্ৰুৱজ্যোতি আৰু অৰুণ দাস (সম্পা.) ঃ মণিকূট, দ্বিজেন ভৰালীৰ প্ৰবন্ধ 'হাজোৰ পিতল শিল্প ঃ ইয়াৰ ইতিহাস', পৃ. ১৪২
৯. Deka, Ananta : Bell and Brass Metal Industries in Assam, p. 95
১০. শইকীয়া, নগেন ঃ অসমীয়া মানুহৰ ইতিহাস, পৃ. ২২৮
১১. উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ২২৯
১২. চৌধুৰী, ধ্ৰুৱজ্যোতি আৰু অৰুণ দাস (সম্পা.) ঃ পূৰ্ব উল্লিখিত গ্ৰন্থ, দ্বিজেন ভৰালীৰ পূৰ্ব উল্লিখিত প্ৰবন্ধ, পৃ. ১৪৩
১৩. তথ্যদাতা ঃ ৰাজীৱ আলী, হাজো, কামৰূপ (গ্ৰাম্য)
১৪. ডেকা, বিচিত্ৰ (সম্পা.) ঃ স্মৃতিগ্ৰন্থ, কিশোৰ শিকদাৰৰ প্ৰবন্ধ 'সৰুক্ষেত্ৰীৰ কুটীৰ শিল্প', পৃ. ১০৬

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১. কলিতা, সমীন। *হাজো অঞ্চলৰ ইতিহাস*। গুৱাহাটী ঃ চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০০৭। মুদ্ৰিত।
২. গোস্বামী, মালিনী মুখ্য সম্পা.। *চন্দ্ৰকান্ত অভিধান*। গুৱাহাটী ঃ গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয় প্ৰকাশন বিভাগ, গুৱাহাটী। ২০১২। মুদ্ৰিত।
৩. চৌধুৰী, ধ্ৰুৱজ্যোতি; দাস, অৰুণ। সম্পা.। *মণিকূট*, ৬৫ তম অসম সাহিত্য সভা, হাজো অধিবেশনৰ স্মৃতিগ্ৰন্থ। হাজো, ১৯৯৯। মুদ্ৰিত।
৪. ডেকা, বিচিত্ৰ। সম্পা.। *স্মৃতিগ্ৰন্থ, পঞ্চগ্ৰাম ৰাস মহোৎসৱ মহা জয়ন্তী*। বণিয়াকুছি, ২০১২। মুদ্ৰিত।
৫. তালুকদাৰ, ধ্ৰুৱকুমাৰ। *অসমৰ লোক শিল্পকলা ঃ গুৱাহাটী* ঃ বাণী মন্দিৰ, ২০১১। মুদ্ৰিত।
৬. দাস, প্ৰকাশ। *হাজোৰ সুবাস*। হাজো, (কামৰূপ) ঃ প্ৰফুল্ল প্ৰকাশ, ২০১৭। মুদ্ৰিত।
৭. দাস, যুগল। *অসমৰ লোককলা*। গুৱাহাটী ঃ অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ১৯৬৮। মুদ্ৰিত।
৮. বৰুৱা, হেমচন্দ্ৰ; বৰুৱা দেৱানন্দ। সম্পা.। *হেমকোষ*। গুৱাহাটী ঃ হেমকোষ প্ৰকাশন। ২০১৩। মুদ্ৰিত।
৯. মিলি, ৰত্নেশ্বৰ, গোহাঁই, পুণ্যলতা। সম্পা.। *অসমৰ লোককলা*। ধেমাজি ঃ কিৰণ প্ৰকাশন, ২০১৫। মুদ্ৰিত।
১০. শইকীয়া, নগেন। *অসমীয়া মানুহৰ ইতিহাস*। গুৱাহাটী ঃ কথা পাব্লিকেছন, ২০১৩। মুদ্ৰিত।
১১. Brookes, Ian; Michael Munro. ed. : *The Chambers Dictionary*, 13th Edition, London : Chambers Harrap Publishers Ltd. 2014. Print.

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

অসমীয়া লোকগীতত অসমৰ ইতিহাস সন্ধান

ড° মন্মী বৰুৱা

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
ডি.হ.সু. কানৈ মহাদ্যালয় (স্বায়ত্তশাসিত)
ডিব্ৰুগড়, অসম-৭৮৬০০১
৯৮৫৯১২২২১০
mbaruah96@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

অসমৰ লোক সংগীতসমূহ অসমৰ লোক সাহিত্যৰ ঐশ্বৰ্যময় সম্ভাৰ। লোক সাহিত্যৰ মাজতে লোক জীৱনৰ ইতিহাস আৰু লোক মনৰ বৰ্ণিল অভিজ্ঞতা, কল্পনা, শিল্পানুভূতি আৰু বুদ্ধিমত্তা সংমিশ্ৰিত হৈ আছে। ড° লীলা গগৈয়ে অসমীয়া সাহিত্যৰ ভঁৰালত লোক সাহিত্য 'মাণিকী মধুৰী জহা হৈ খুন্দ খাই আছে' বুলি কৈ গৈছে। লোক সাহিত্যৰ বুকুতেই সমৃদ্ধ হৈ আছে অসমৰ সমাজ জীৱনৰ বুৰঞ্জী। সাধাৰণতে আমাৰ বুৰঞ্জীসমূহত ৰাজ্য,ৰজা-মহাৰজা আৰু ৰাজনীতিৰ বিষয়েহে তথ্য পোৱা যায়, সামাজিক জীৱনৰ বিষয়ে বিশেষ তথ্য উপলব্ধ নহয়। সেয়েহে মধ্যযুগৰ অসমৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ বিষয়ে জানিবলৈ হ'লে লোকসাহিত্যৰ অধ্যয়ন কৰাটো অতি প্ৰয়োজনীয়। অসমীয়া অধিক সংখ্যক লোকগীত বুৰঞ্জীৰ কোনো ব্যক্তি বা ঘটনাক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত হৈছিল। বিশেষকৈ বুৰঞ্জীমূলক মালিতাসমূহপৰা বুৰঞ্জীৰ বহু মূল্যৱান সমল আহৰণ কৰিব পাৰি। সেইদৰে অসমৰ বিহু গীত আৰু বনগীত সমূহ অসমৰ বহু কেইখন চৰ্চিত ৰণ, অসমৰ কেইবাখনো আধুনিক চহৰ গঠন, ব্ৰিটিছৰ অসমত নতুন শাসন পদ্ধতি, অসমত চাহ কোম্পানী গঠন, নগৰীয়া সভ্যতাৰ আগমণ, ভাপৰ জাহাজৰ চলাচল, অসমৰ বিভিন্ন প্ৰান্তত ৰেলসেৱাৰ প্ৰৱৰ্তন ইত্যাদি বিষয়ক বুৰঞ্জীৰ বহু সমলেৰে সমৃদ্ধ হৈ আছে।

সেয়েহে প্ৰস্তাৱিত আলোচনা পত্ৰত অসমৰ লোকগীত সমূহৰ মাজত অসমৰ ইতিহাসৰ সমল সন্ধান কৰিবলৈ যত্ন কৰা হ'ব আৰু অসমৰ ইতিহাসৰ লগতে মধ্য যুগৰ অসমৰ সমাজ, সংস্কৃতি তথা অৰ্থনৈতিক দিশৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা হ'ব। আমাৰ আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে বিশ্লেষণাত্মক আৰু প্ৰয়োজন সাপেক্ষে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হ'ব। ইয়াৰ উপৰি অধ্যয়নৰ বাবে পুথিভঁৰালকে সাৰ কৰি লোৱা হ'ব।

সূচক শব্দ ঃ

লোকগীত, ইতিহাস, বিহুগীত, অসম।

১.০ অৱতৰণিকা ঃ

১.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

অসমৰ লোক সংগীতসমূহ অসমৰ লোক সাহিত্যৰ ঐশ্বৰ্যময় সম্ভাৰ। লোক সাহিত্যৰ মাজতে লোক জীৱনৰ ইতিহাস আৰু লোক মনৰ বৰ্ণিল অভিজ্ঞতা, কল্পনা, শিল্পানুভূতি আৰু বুদ্ধিমত্তা সংমিশ্ৰিত হৈ আছে। ড° লীলা গগৈদেৱে অসমীয়া সাহিত্যৰ ভঁৰালত লোক সাহিত্য মাণিকী মধুৰী জহা হৈ খুন্দ খাই আছে বুলি কৈছে। লোক সাহিত্যৰ বুকুতেই সমৃদ্ধ হৈ আছে অসমৰ সমাজ জীৱনৰ বুৰঞ্জী। সাধাৰণতে আমাৰ বুৰঞ্জীসমূহত ৰাজ্য,ৰজা-মহাৰজা আৰু ৰাজনীতিৰ বিষয়েহে তথ্য পোৱা যায়, সামাজিক জীৱনৰ বিষয়ে বিশেষ তথ্য উপলব্ধ নহয়। সেয়েহে মধ্যযুগৰ অসমৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ

বিষয়ে জানিবলৈ হ'লে লোকসাহিত্যৰ অধ্যয়ন কৰাটো অতি প্ৰয়োজনীয়। অসমীয়া অধিক সংখ্যক লোকগীত বুৰঞ্জীৰ কোনো ব্যক্তি বা ঘটনাক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত হৈছিল। বিশেষকৈ বুৰঞ্জীমূলক মালিতাসমূহপৰা বুৰঞ্জীৰ বহু মূল্যৱান সমল আহৰণ কৰিব পাৰি। সেইদৰে অসমৰ বিহু গীত আৰু বনগীত সমূহ অসমৰ বহু কেইখন চৰ্চিত ৰণ, অসমৰ কেইবাখনো আধুনিক চহৰৰ গঠন, ব্ৰিটিছৰ অসমত নতুন শাসন পদ্ধতি, অসমত চাহ কোম্পানী গঠন, নগৰীয়া সভ্যতাৰ আগমণ, ভাপৰ জাহাজৰ চলাচল, অসমৰ বিভিন্ন প্ৰান্তত ৰেলসেৱাৰ প্ৰৱৰ্তন ইত্যাদি বিষয়ক বুৰঞ্জীৰ বহু সমলেৰে সমৃদ্ধ হৈ আছে। অসমীয়া লোক সংগীতত অভিনৱ বিষয়বস্তুৰ প্ৰতিফলন ঘটাৰ লগতে অসমৰ ঐতিহ্যৰাজিৰো সংৰক্ষণ ঘটিছে।

সেয়েহে প্ৰস্তাৱিত আলোচনা পত্ৰত "অসমীয়া লোকগীতত ইতিহাসৰ সন্ধান" শীৰ্ষক বিষয়টি আলোচনা কৰা হ'ব।

১.২ অধ্যয়নৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

* "অসমীয়া লোকগীতত ইতিহাসৰ সন্ধান" শীৰ্ষক বিষয়টি অধ্যয়নৰ মূল উদ্দেশ্য হৈছে- অসমীয়া লোকগীতত ইতিসৰ সমলসমূহ কিদৰে সংৰক্ষিত হৈ আছে ইয়াৰ সন্ধান কৰা।

* লোকগীতসমূহো যে ঐতিহ্য সংৰক্ষণৰ এক মাধ্যম হ'ব পাৰে, সেই কথা স্পষ্ট ৰূপত দাঙি ধৰা।

১.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু পৰিসৰ ঃ

প্ৰস্তাৱিত অধ্যয়ন পদ্ধতি মূলত বিশ্লেষণাত্মক হ'ব। অসমীয়া লোকগীতত ইতিহাসৰ সন্ধান বিষয়টো অধ্যয়ন কৰিবলৈ যাওঁতে এইক্ষেত্ৰত অধ্যয়ন পদ্ধতি বিশ্লেষণধৰ্মী হ'ব। অসমীয়া লোকগীতৰ বিস্তৃত পৰিসৰৰ বাবে সকলো লোকগীতকেই আলোচনাৰ মাজলৈ অনা সম্ভৱ নহয়। অধ্যয়নৰ সুবিধাৰ বাবে প্ৰস্তাৱিত আলোচনা পত্ৰত কেৱল অসমীয়া লোকগীতৰ ওপৰত এক বিহংগম অৱলোকন কৰা হৈছে।

১.৪ পূৰ্বকৃত অধ্যয়নৰ সমীক্ষা ঃ

অসমীয়া সাহিত্যত বৰ্তমানলৈকে "অসমীয়া লোকগীতত ইতিহাসৰ সন্ধান " শীৰ্ষক বিষয়টি পোনপটীয়া ৰূপত অতি কম সংখ্যক আলোচনা বা গৱেষণা হোৱা দেখা যায়।

অসমীয়া জন সাহিত্য ঃ ড° প্ৰফুল্ল দত্ত গোস্বামী
অসমীয়া গীতি সাহিত্য ঃ মহেশ্বৰ নেওগ
অসমীয়া লোকসাহিত্য ঃ ড° প্ৰসাদ কুমাৰ বৰুৱা

২.০ অসমীয়াৰ লোকগীতত অসমৰ ইতিহাস সন্ধান ঃ

সাধাৰণ অৰ্থত লোক-সংস্কৃতি বুলি কলে সাধাৰণ জনসাধাৰণৰ সংস্কৃতি। লোকগীত সমূহো লোক সমাজৰ সৃষ্টি। লোকসাহিত্যৰ মূল শিপা ডাল লোকগীততেই প্ৰোথিত। লোক সমাজৰ চৌদিশৰ চিনাকী পৃথিৱীখনৰ বিভিন্ন ঘটনা-পৰিঘটনাৰ সৈতে নিজৰ আৱেগ-অনুভূতি, অভিজ্ঞতাক ৰসোত্তীৰ্ণ কৰাৰ প্ৰৱণতাৰ ফলতেই এই লোক গীত -মাতসমূহ সৃষ্টি হৈ আহিছে। অসমীয়া লোক গীতসমূহত অসমৰ সমাজ জীৱনৰ লগতে ইতিহাসৰ পাতৰ বিভিন্ন ঘটনা-পৰিঘটনাৰ সন্ধেদ পোৱা যায়। অসমৰ বুৰঞ্জীসমূহ অসমৰ ৰজা-মহাৰজাসকলৰ কাৰ্য-কলাপৰ বিৱৰণেৰে সমৃদ্ধ। অসমৰ সমাজ জীৱন, সাংস্কৃতিক-অৰ্থনৈতিক জীৱনৰ কথা প্ৰত্যক্ষ ৰূপত লিপিৱদ্ধ নাই। কিন্তু অসমীয়া লোকগীতসমূহ বুৰঞ্জীমূলক ঘটনা, ব্যক্তি বা পৌৰাণিক আখ্যানসমূহক লৈয়েই ৰচনা কৰা হৈছিল।

২.১ অসমীয়াৰ লোকগীতত ইতিসৰ বীৰ-বীৰাঙ্গনা

(ক) বুৰঞ্জীমূলক মালিতা

ইতিহাসৰ ঘটনা বা কিম্বদন্তীক কেন্দ্ৰ কৰি সৃষ্টি কৰা কাল্পনিক লোক গীত সমূহক বুৰঞ্জীমূলক মালিতা বা বেলাড বুলি অভিহিত কৰা হয়। মালিতাসমূহত অসমৰ ইতিহাসৰ বহু কেইজন ৰজা-মহাৰজা, বীৰ-বীৰাঙ্গনাৰ বীৰোচিত কাহিনী অংকন কৰা হৈছে। অতি প্ৰাচীন মালিতা ৰূপে জনসমাজত সমাদৃত এটি মালিতা হ'ল নাহৰৰ মালিতা। হৰকান্ত সদৰামিনৰ বাঁহগড়ীয়া বুঢ়াগোঁহাইৰ বুৰঞ্জীত নাহৰৰ কাহিনী লিপিৱদ্ধ হৈ আছে। যোড়শ শতিকাত খোৰা ৰজা ৰাজপাটত বহে আৰু এওঁৰ দুগৰাকী কুঁৱৰী আছিল। কুঁৱৰীৰ মৃত্যুৰ পিছত এগৰাকী লিগিৰীক বিয়া কৰায়। এই ৰাণীৰ কোনো সতি-সন্ততি নোহোৱাত নাহৰক তুলি লয়। নাহৰে কোঁৱৰ সন্মান লাভ কৰি শাসন ভাৰ লৈ অত্যাচাৰী হৈ উঠে। পিছত অত্যাচাৰী নাহৰক বৰগোহাঁয়ে দিহিঙৰ পাৰত হত্যা কৰে।

মহং বেহাব নেলাগে চেনামুৱা
নেখাওঁ ডুখুৰীয়া লোণ,
কৰবাত কেনেবাকৈ পৰ্বত খহি মৰিব
তোৰ লগত মৰিব কোন?
হেৰ বুঢ়ী পাখৰী মৰাণৰ জীয়াৰী
নাহৰক কটালে কোনে?

জালি কোমোৰা যেন নাহৰ চেনামুৰা
কি জগৰত মৰালে প্ৰাণে?

অসমৰ বুৰঞ্জীৰ পাতত লিপিৱদ্ধ হৈ থকা এটা উল্লেখযোগ্য ঘটনা তথা অসমীয়া জনমানসত সতী ৰূপে সমাদৃত জয়মতী কুঁৱৰীৰ আত্ম বলিদানৰ ঘটনাক লৈ সৃষ্টি হোৱা মালিতা হ'ল জয়মতী কুঁৱৰীৰ মালিতা।

হাবিত কান্দিলে হয়কলি চৰায়ে
চিটিকাৰ মুখলৈ চাই,
জেৰেঙা পথাৰত কান্দে জয়মতী
চাউদাঙৰ মুখলৈ চাই।
তোমালৈ চেনেহ মোৰ আছিল শাহু আই
লাই-লেচাইত আছিল আশা,
সকলো সুখতে বিধতাই বঞ্চিলে
মোৰ নাই কৰ্মত লেখা।

বুৰঞ্জীপ্ৰসিদ্ধ মণিৰাম দেৱানৰ ইংৰাজ প্ৰীতিক লৈ কৰা উপলুঙা, পিছলৈ বিদেশী চৰকাৰে মণিৰাম দেৱানক ফাঁচী দিয়াৰ বৰ্ণনাৰে ৰচনা কৰা হৈছে মণিৰাম দেৱানৰ মালিতা।

সোণৰ ধোঁৱাধোৱাত খালি ঐ মণিৰাম
ৰূপৰ ধোঁৱাখোৱাত খালি,
কিনো ৰজাঘৰত দোৰোহ আচৰিলি
ডিঙিত চিপ্‌জৰী ললি।

স্বাধীনতা সংগ্ৰামী বুলি পৰিচিত মণিৰাম দেৱানৰ প্ৰতি সাধাৰণ প্ৰজাৰ বৰ ভাল ভাৱ নাছিল। কাৰণ প্ৰথমৰস্থাত মণিৰামে বিট্ৰিছক অসমত গজগজীয়াকৈ বহিবলৈ বাট মুকলি কৰি দিছিল। সেয়েহে সাধাৰণ প্ৰজাই মণিৰামৰ পৰিৱৰ্তে পিয়লি ফুকনকহে প্ৰকৃত স্বাধীনতা সংগ্ৰামী বুলি ভাবিছিল।

মণিৰামক মাৰিলি ভালকে কৰিলি
পিয়ালিক মাৰিলি কিয়,
সেইনো কথা শুনি ৰংপুৰৰ আমোলাৰ
আকাশে উৰি গ'ল জীৱ

অসম বুৰঞ্জীত উল্লিখিত বদন বৰফুকন আৰু পূৰ্ণানন্দ বুঢ়াগোঁহাইৰ মাজত হোৱা বিবাদৰ ফলত বদনে মান আনি অসম দেশ আক্ৰমণ কৰাৰ ইতিহাস প্ৰসিদ্ধ ঘটনাটি লৈ ৰচিত হৈছে বৰফুকনৰ মালিতা। মালিতাটিত মানৰ উপৰ্যুপৰি আক্ৰমণ কৰি অসমৰ প্ৰজা সাধাৰণৰ ওপৰত কৰা অমানুষিক অত্যাচাৰৰ সুদীৰ্ঘ বৰ্ণনা থকা বাবে এই মালিতাটি যথেষ্ট দীঘলীয়া।

আনিবি বৰফুকনক ডিঙ্গৰাত ভৰাই
ভাল মুখেৰে মাতিম
ধৰি দিব পাৰিলে ফুকন তোকে পাতিম।

সেইদৰে ৰাজেশ্বৰ সিংহৰ দিনৰ চিকণ গোসাঁইৰ বৰ্ণনাৰে মালিতা, মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহৰ সময়ত গৌৰীনাথ সিংহৰ ৰাজত্ব কালত বধ কৰা বাখৰ বৰাৰ কাহিনীৰে বাখৰ বৰাৰ মালিতা আদি বুৰঞ্জী ঘটনা সম্বলিত বিভিন্ন মালিতা পোৱা যায়।

২.২. অসমীয়া লোকগীতত ইতিহাসপ্ৰসিদ্ধ বিদ্ৰোহ, ৰণ তথা ইতিহাসপ্ৰসিদ্ধ ঠাই, দ'ল, পুখৰী আদিৰ বৰ্ণনা ঃ

অসম বুৰঞ্জীত বিভিন্ন যুঁজৰ বৰ্ণনাৰে সমৃদ্ধ হৈ আছে। মালিতা, বিহুগীত, বনগীত সমূহত এনে যুঁজৰ উল্লেখ পোৱা যায়। সেইদৰে ৰঙিয়াত ইংৰাজৰ আমোলত তহচিলদাৰ ৰূপে নিযুক্তি লাভ কৰা ৰাধানাথে সেই অঞ্চলৰ কৃষকৰ ওপৰত অত্যাচাৰ চলাই আৰু ফলত কৃষকৰ মাজত বিদ্ৰোহ আৰম্ভ হয়। ইয়াৰ পৰিণতিত ৰঙিয়াৰ ডাকবঙলাত গুলিয়াগুলিও হয়।

গাছ লাতা ছজনা
দোণৰ মাটিত খাজনা
লৱে দহ টাকা দহ আনা।
ৰাধানাথ তহছিলদাৰ
গাছ লাতা ছজনা
অতিকে অধৰ্ম্মী,
ৰাইজক বান্ধি বান্ধি মাৰে।

ইতিহাসপ্ৰসিদ্ধ মায়ামৰীয়া বা মোৱামৰীয়া ৰণৰ ৰণুৱাই ৰণলৈ সাজু হওঁতে বিভিন্ন ধৰণৰ গীত ৰচনা হৈছিল-

এই ধেনু এই কাঁড় ডেকাদেউ ধেনু ধৰ
মুলুং মাৰিবলৈ যাওঁ।
ভালকৈ গুৰি ধৰ মটকৰ ডেকাদেউ
ভৰা গিয়াতিৰে নাও।।

'তুংখুঙীয়া বুৰঞ্জী' ত এনেধৰণৰ ৰণলৈ সাজু হওঁতে গোৱা গীত, মৰাণ সৈন্যই হাতত টোকোন লৈ মাটিত খুন্দি খুন্দি নাম গোৱাৰ বৰ্ণনা আছে।

অষ্টভুজে সপ্তভুজে চতুৰ্ভুজে
তাৰে দাই তাকে কাটে,
তাৰে হিলৈ তাকে মাৰে।

কছাৰী-আহোমৰ যুঁজৰ বহু বিৱৰণ অসম বুৰঞ্জীত পোৱা যায়। **১৫৩৮** শকত বুদ্ধি স্বৰ্গনাৰায়ণৰ ৰাজত্ব কালত ৰহাৰ ওচৰত কছাৰী-আহোমৰ এখন তয়া-ময়া ৰণৰ বৰ্ণনা

আছে। স্বৰ্গদেৱে ৰহাৰ কাষৰ কছাৰী ৰাজ্য দখল কৰি সোন্দৰ মৰাণ বুঢ়াগোহাঁইক তাতে থাপি থয়। বনগীতত ইয়াৰ উল্লেখ পোৱা যায়-

সোন্দৰ বৰগোঁহাই ৰণলৈ ওলালে
আটাই ঘুণে খোৱা ধেনু।

শিৱসাগৰ অঞ্চলত প্ৰচলিত গীতবিলাকত বিশেষকৈ ডিবৰু আৰু শদিয়াৰ ৰণৰ সঘন উল্লেখ পোৱা যায়।

ডিবৰুৰ ৰণখন শদিয়াত লাগিলে
মিৰিয়নী কান্দিলে ডালত।

নাজিৰা মৌজাৰ অন্তৰ্গত মেলাহী পথাৰত বিদ্ৰোহী সকল একত্ৰিত হৈ কিদৰে প্ৰস্তুতি চলাইছিল তাৰ আভাসো আছে বনগীতত।

মেলাহী পথাৰত বৰডবা বাজিলে
গঞাই কাণে পাতি শুনে,
কেঁচাইখাতি গোসানীৰ আগত আঠুলৈ
ৰাইজক শপত দিলে।

বনগীত,বিহুগীতসমূহত আহোম ৰাজতন্ত্ৰৰ কঠীয়াতলী ৰংপুৰ নগৰৰ ৰংঘৰ, ৰূপহী পথাৰ, গৌৰীসাগৰ, পুখুৰী, দ'ল দেৱালয়ৰ সঘন উল্লেখ পোৱা যায়।

পুখুৰী খনালে ভালকে কৰিলে
পাৰতে বন্ধালে দ'ল
দ'লকো বন্ধালে জেউতি চৰালে
জাকত জিলিকা হ'ল।

২.৩. অসমীয়া লোকগীতত ইংৰাজ শাসন, ৰেল, চাহ বাগিছা, বিট্ৰিছৰ চাহ কোম্পানী আদি ভিন্ন প্ৰসংগ ঃ

আহোম ৰাজত্বৰ অৱসানৰ লগে লগে ব্ৰিটীছৰ ৰাজত্ব আৰম্ভ হয়। শাসন পদ্ধতি সলনি হ'ল, যান-বাহন আহিল, যন্ত্ৰ আহিল। মানৰ আক্ৰমণে জুৰলা কৰা অসমীয়া ৰণুৱা মানুহৰ চৰিত্ৰত লগ দিয়ে এটি নতুন বৈশিষ্ট্য- সোৰোপালি। মিলছ্ চাহাবৰ প্ৰতিবেদনৰ অনেক ঠাইত অসমীয়াৰ এলাহ সোৰোপালিৰ কথা উনুকিয়াই গৈছে নতুনকৈ অহা কেএগ্ৰা গোলা , জাকিট চোলা, বজাৰৰ সুতা আদিৰ আধিপত্যৰ কথা বিহু গীত, বনগীত বিলাকত উল্লেখ আছে। বিশেষকৈ বনগীত বিলাকত বিদেশী বস্তুৰ বজাৰ এখন তৈয়াৰ কৰাত উজনি অসমৰ ডিব্ৰুগড় চহৰখন আগৰণুৱা আছিল যে সেই কথাৰো উল্লেখ আছে।

লোৰকে বিন্ধিলে লোৰৰে মামৰে
ছাতি-নালক বিন্ধিলে ঘুণে।
আমি যে যাওঁগে ডিবৰু জিলালৈ
আনি দিম বজাৰৰ সুতা

ব্ৰিটীছে অসমত কানিৰ প্ৰচলন কৰি অসমীয়া মানুহক দেশ গঠনৰ চিন্তাৰ পৰা আঁতৰাই ৰখাৰ তথা সোৰোপা কৰাৰ ব্যৱস্থা কৰিছিল। বিহু গীতসমূহত ব্ৰিটীছৰ এই বুদ্ধিৰ কথাও পোৱা যায়।

শিৱসাগৰত শুকাব আফুকানি ওলাব
আফিঙত পাতিব জোকা
কোম্পানী বাগিচা সদাগৰী কৰিব
ডেকা ল'ৰা কৰিব বুঢ়া।

ব্ৰিটিছ কোম্পানীয়ে অসমত চাবুৱাত প্ৰথমখন চাহবাগিছা আৰু ১৮৩৯ চনত অসম টি কোম্পানী গঠন কৰাৰ পৰাই অসমখন ক্ৰমাৎ চাহ বাগিছাই ছানি ধৰিলে। মিলছৰ প্ৰতিবেদনত উল্লেখ আছে যে এই কোম্পানী সমূহৰ অধীনত অসমৰ শিৱসাগৰ, দৰং আদিৰ বহু সংখ্যক লোক তথা বাহিৰৰপৰা আমদানি কৰা বঙালী কেৰাণী-মহৰীয়ে কাম কৰিছিল।

চাহাব আহি আহি বাগিছা খুলিলে
মুৰত চৰু হেন টুপী,
কুলিৰ ছোৱালীক মেমনী কৰিলে
মুখত চেলেউডাল হুপি।
অসমৰ দেশতে বঙালী সোমালে
দেখিছোঁ বঙালীৰ ভেম,
বঙালী বাবুলৈ নেযাবা লাহৰী
নুবুজা বঙালীৰ প্ৰেম।

২.৪. অসমীয়া লোকগীতত ডিব্ৰুগড়ৰ ইতিহাস সন্ধান ঃ

প্ৰাচ্যতত্ত্ববিদ মহেশ্বৰ নেওগে কৈছিল যে বিহুনাম আৰু বনঘোষাবোৰতো অসমৰ সমাজ জীৱনৰ বহু অপ্ৰকাশ্য আৰু গোপন অধ্যায়েই লুকাই আছে। বিশেষকৈ বিহুনাম আৰু বনঘোষাবোৰত অসমৰ প্ৰথমখন আধুনিক চহৰ ডিব্ৰুগড়ে বিশেষ গুৰুত্ব লাভ কৰিছিল। দেওধাই অসম বুৰঞ্জীত উল্লেখ থকা অনুসৰি ১৫২৩ চনত আহোম আৰু চুতীয়াৰ মাজত হোৱা সংঘৰ্ষৰ সময়ত আহোম সেনাই চুতীয়া সেনাক বাধা দিবৰ বাবে ডিব্ৰু নদীৰ মুখত এটা গড় মৰাইছিল আৰু সেই গড়টো ডিব্ৰুমুখৰ গড় বুলি জনাজাত আছিল। বিহুনামত এই ডিবৰুৰ বিষয়ে উল্লেখ আছে।

ডিবৰুৰ ৰণখন শদিয়াত লাগিলে
মিৰিয়নী কান্দিলে ডালত।

আহোম সকলৰ সুদীৰ্ঘ ছশ বছৰীয়া শাসনকালত

বৰ্তমানৰ ডিব্ৰুগড় চহৰখন ডিবৰু, ডিব্ৰুমুখ আদি নামেৰে পৰিচিত আছিল। আহোম ৰাজতন্ত্ৰৰ পতনৰ পাছতে ব্ৰিটিছৰ ঔপনিৱেশিক যুগত প্ৰথমখন আধুনিক চহৰ ডিব্ৰুগড়ত আধুনিকতাই পোহাৰ মেলাৰ লগে লগে চহৰখনত সাজ-পোছাক, বিলাসী সামগ্ৰীৰ আগমন অৰ্থাৎ নতুনকৈ হাট-বজাৰ বহাৰ কথাও বিহু নাম সমূহত লিপিৱদ্ধ আছে-

আমি যে যাওঁগৈ ডিবৰু জিলালৈ
আনি দিম বজাৰৰ সূতা,
তুমি বৈয়ে ল'বা ৰিহাকৈ মেখেলা,
মোকে বৈয়ে দিবা চোলা।
ডিবৰু জিলাতে আছে জাকিট চোলা
সেইটোৰে শুৱাব তোক।
ডিবৰু শুৱনি দীঘলী বজাৰ এ
শিৱসাগৰ শুৱনী দ'ল।

ডিব্ৰুগড় নতুন পণ্যৰ হাট-বজাৰেৰে ভৰা ঠাই বুলি লোক সাহিত্যই দিয়া তথ্য অশুদ্ধ হ'বই নোৱাৰে। মিলছৰ প্ৰতিবেদনত ১৮৬৩ চনত ডিব্ৰুগড়তপ্ৰথমখন বৃহৎ গেলামালৰ দোকান প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰ কথা আছে।

১৮৮২ চনত ডিব্ৰুগড়ত ৰে'লৰে ৰ্ৰকশ্বপ স্থাপন কৰা হয় আৰু দীঘল ৰে'লপথ নিমাৰ্ণ কৰে। ডিব্ৰুগড়ৰ ৰিহাবাৰী ষ্টেছনৰপৰা লাহোৱাললৈ পৰীক্ষামূলকভাৱে ৰে'ল চলাই চায়া উজনি অসমৰ মানুহৰ বাবে ডিব্ৰুগড়ত প্ৰথমটো 'ষ্টেছন' স্থাপন কৰে। আধুনিকতাৰ বতাহজাকে ডিব্ৰুগড় চহৰখনক বাৰুকৈ জোকাৰি যোৱাত বহু ডেকা ল'ৰাই ডিব্ৰুগড় হেন চহৰখনক এৰি যোৱাৰ কথাও ভাবিলে-

ৰিহাবাৰী ইষ্টেশ্যন তিনি কুঠলীয়া
ওপৰে লগোৱা টিন।
লুইত পাৰ হ'লো দিখৌ পাৰ হলো
জিৰালো কলিয়াবৰত
তোমাকে বিচাৰি এৰো ঘৰ-বাৰী
নেথাকোঁ ডিবৰুগড়ত।

বিট্ৰিছসকলে ছলে বলে কৌশলে আহোম ৰাজ্য হস্তগত কৰাৰ পূৰ্বৰপৰাই উজনি অসমৰ প্ৰাকৃতিক সম্পদ লুণ্ঠনেৰে, আন্তজাৰ্তিক বাণিজ্যৰ প্ৰসাৰ কৰিবলৈ সন্ধান কৰি থকা ঠাইখনেই আছিল - ডিব্ৰুগড়। ১৮৪৮ চনত ডিব্ৰুগড়লৈ ভাপ জাহাজ চলাচল কৰাই এই পদক্ষেপক আগুৱাই নিবলৈ উঠি-পৰি লাগিছিল। বিহুগীত-বনঘোষাত জাহাজ অহাৰ ভিন্ন তথ্য পোৱা যায়।

নৈয়ো গুমেগুমায় কোম্পানীৰ জাহাজ ঐ
ঢেঁকীনো গুমেগুমায় থোৰা।

অৱশ্যে বিহুনাম-বনগীতবোৰত জীৱন্ত হৈ থকা ডিব্ৰুগড় চহৰখনৰ বহু ঐতিহ্য যেনে - দীঘলী বজাৰ, পেৰী পাৰ্ক, সেন্দুৰী আলি, ডিব্ৰুগড় দুৰ্গ আদি ১৯৫০ চনত হোৱা ভূমিকম্পৰ ফলত ব্ৰঐপুত্ৰৰ বুকুত হেৰাই গ'ল। ঔপনিৱেশিক যুগৰ ঐতিহ্যৰ স্মাৰক বুলিবলৈ কাছাৰী ঘৰ, কাৰাগাৰ আদি দুটামানহে ৰৈ গ'ল।

৩.০ উপসংহাৰ ঃ

অসমীয়া লোকগীত সমূহত অসম বুৰঞ্জীৰ এছোৱা কালৰ ধাৰাবাহিক ইতিহাস ৰক্ষিত হৈছে। এই গীতসমূহত বুৰঞ্জীৰ বাস্তৱতা ৰক্ষিত হৈছে বুলি ডাঠি ক'ব নোৱাৰিলেও এইবোৰৰ পৰা বুৰঞ্জীৰ বহু মুল্যৱান সমল আহৰণ কৰিব পাৰি। নব্য শিক্ষিত এচাম মানুহে এই লোকগীত সমূহক অনাদৰ-অৱহেলা কৰিলেও এচাম শিপা সন্ধানী শিক্ষিতলোকে লোকগীতসমূহৰ প্ৰকৃত ঐশ্বৰ্য আৰু গুৰুত্ব উপলব্ধি কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে আৰু উচ্চস্তৰীয় চৰ্চা-গৱেষণা হোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। আলোচ্য বিষয়টিত এক বিহংগম অৱলোকনহে কৰা হৈছে। ভৱিষ্যতে বিস্তৃত অধ্যয়ন-বিশ্লেষণৰ সম্ভাৱনা আছে। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

গগৈ, লীলা ঃ বিহুগীত আৰু বনঘোষা, ১৯৬৯
গোস্বামী, প্ৰফুল্ল দত্ত ঃ অসমীয়া জন সাহিত্য, বাণী প্ৰকাশ, পঞ্চম সংস্কৰণ, ১৯৯৪
গোস্বামী, প্ৰফুল্ল দত্ত ঃ বাৰ মাহৰ তেৰ গীত, সাহিত্য অকাদেমি, নতুন দিল্লী, ১৯৯৪
দাস, দিলীপ কুমাৰ ঃ লোক সংস্কৃতিৰ সঁফুৰা, লয়াৰ্ছ, ডিচেম্বৰ, ২০০৫
দাস, নাৰায়ণ (সম্পা) ঃ অসমৰ সংস্কৃতি কোষ, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৯
নেওগ, মহেশ্বৰ ঃ অসমীয়া গীতি সাহিত্য, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ১৯৮৭, তৃতীয় প্ৰকাশ
বৰদলৈ, নিৰ্মলপ্ৰভা ঃ অসমৰ লোকসংস্কৃতি, বীণা লাইব্ৰেৰী, তৃতীয় প্ৰকাশ, ১৯৮৭
বৰুৱা, প্ৰহ্লাদ কুমাৰ ঃ অসমীয়া লোকসাহিত্য, অসম সাহিত্য সভা, ডিব্ৰুগড়, ২০০১
শৰ্মা, নবীনচন্দ্ৰ ঃ পুৰণি অসমীয়া সাহিত্যৰ আলোকৰেখা, বীণা লাইব্ৰেৰী, ১৯৮৭
শৰ্মা, নবীনচন্দ্ৰ ঃ অসমীয়া লোকসংস্কৃতিৰ আভাস, বাণী প্ৰকাশ, পঞ্চম প্ৰকাশ, ২০১১

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

ৰাজাবালা দাসৰ তিনিকুৰি দহবছৰৰ স্মৃতি আত্মজীৱনীত সমসাময়িক সমাজ জীৱন, নাৰীৰ স্থিতিৰ প্ৰতিফলন

ড° তাম্ৰপালি ৰাজকোঁৱৰ

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

দেশ বা সমাজৰ প্ৰগতিত পুৰুষৰ লগতে নাৰীৰ ভূমিকাও বিশেষভাৱে গুৰুত্বপূৰ্ণ। গতিকে শৈক্ষিক দিশৰ লগতে অন্যান্য সকলো দিশতে নাৰীৰ শক্তিশালী অংশগ্ৰহণ হোৱাটো নিতান্ত প্ৰয়োজন। কিন্তু প্ৰাৰম্ভিক পৰ্যায়ত সমাজত নাৰীৰ স্থিতি কিমান দুৰ্বল আছিল সেয়া সৰ্বজনবিদিত। অসমীয়া সমাজতো নাৰীয়ে নিজৰ মৌলিক প্ৰয়োজনসমূহ লাভ কৰাৰ বাবে বিভিন্ন প্ৰত্যাহ্বানৰ সন্মুখীন হ'বলগীয়া হোৱাৰ লগতে সংগ্ৰামো কৰিবলগীয়াত পৰিছিল। ঊনবিংশ শতিকাৰ নৱজাগৰণে সমগ্ৰ ভাৰতৰ সমাজ জীৱনলৈ আমূল পৰিৱৰ্তন আনিলে। নাৰী শিক্ষাৰ প্ৰয়োজনীয়তা সম্পৰ্কত সৰ্বত্ৰ আলোচনা, চৰ্চা আৰু পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰা দেখা পোৱা গ'ল। অসমতো বৃটিছৰ লগতে অহা মিছনেৰিসকলৰ প্ৰচেষ্টাত মহিলাসকলৰ শিক্ষা গ্ৰহণৰ বাবে বিদ্যালয় স্থাপন হ'বলৈ লৈছিল। কিছুমান প্ৰগতিশীল পুৰুষৰ লগতে কেইগৰাকীমান বিশেষ মহিলা ক্ৰমে ৰাজাবালা দাস, ইন্দিৰা মিৰি আদিয়ে নাৰীৰ সামাজিক আৰু শৈক্ষিক দিশৰ উন্নয়নত বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছিল।

এই আলোচনা পত্ৰত ৰাজাবালা দাসে তেওঁৰ আত্মজীৱনী তিনিকুৰি দহবছৰৰ স্মৃতিত সমসাময়িক সমাজ জীৱনত নাৰীৰ স্থিতি কেনেকুৱা আছিল আৰু তেওঁ কিদৰে এই সকলো প্ৰত্যাহ্বান নেওচি কলিকতাত অধ্যয়ন কৰিবলৈ যোৱাৰ লগতে প্ৰথম অসমৰ মহিলা মহাবিদ্যালয় প্ৰতিষ্ঠাতা হৈছিল - সেয়া বিশ্লেষণ কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ব। অধ্যয়নৰ পদ্ধতি হিচাপে বিষয় বিশ্লেষণ পদ্ধতি আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

আত্মজীৱনী, তিনিকুৰি দহবছৰৰ স্মৃতি, সমাজ জীৱন, নাৰীৰ স্থিতি, নাৰী সৱলীকৰণ।

০.০ প্ৰস্তাৱনা ঃ

মানুহৰ জীৱনটো বিচিত্ৰ অভিজ্ঞতাৰ সমষ্টি। এই অভিজ্ঞতাক যেতিয়া কলাত্মক ৰসত সিক্ত কৰি নিজা ভাষাৰে সাহিত্য ৰূপ দিয়া হয় তেতিয়া ইয়াক 'আত্মজীৱনীমূলক ৰচনা' হিচাপে আখ্যা দিয়া হয়। পুৰুষ আৰু নাৰী উভয়ে নিজৰ নিজৰ সামৰ্থ্য, চিন্তা, অভিজ্ঞতাৰ ভিত্তিত জীৱনটো পৰ্যবেক্ষণ কৰে। গতিকে প্ৰত্যেকৰে ওচৰত লাভ কৰা অভিজ্ঞতাৰ ভিত্তিত জীৱনটো সম্পৰ্কে দুটা কথা সকলোৰে লগত ভগাই ল'বলৈ তথ্য গোট খায়। অৱশ্যে এই তথ্য সকলোৱে ভগাই ল'বলৈ ইচ্ছা বা আগ্ৰহ প্ৰকাশ নকৰিবও পাৰে। কিন্তু যিসকলে এই আগ্ৰহ কৰে তেওঁলোকৰদ্বাৰা লিপিবদ্ধ অভিজ্ঞতাৰ সমষ্টিয়ে একোটা নিৰ্দিষ্ট সময়ৰ সমাজৰ ছবি সকলোৰে আগত দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হয়।

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
পণ্ডিত দীনদয়াল উপাধ্যায় আদৰ্শ মহাবিদ্যালয়, দলগাঁও
দৰং, অসম-৭৮৪১১৬
৮৭২৪০৪১৮৫২
tamrapaliraj21@gmail.com

ঊনবিংশ শতিকাত অসমীয়া সাহিত্যত আত্মজীৱনী ৰচনাৰ আৰম্ভণি ঘটিছিল। *ৰচনাকালৰ ফালৰপৰা অসমীয়া সাহিত্যত প্ৰথম আত্মজীৱনী সোণামুৱাৰ সদৰামীন হৰকান্ত শৰ্মা মজুমদাৰ বৰুৱাৰ আত্মজীৱনী হ'লেও প্ৰকাশকালৰ দিশৰপৰা প্ৰথম অসমীয়া আত্মজীৱনী হ'ল লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ মোৰ জীৱন সোঁৱৰণ।*[১]

ইয়াৰ ৰচনাকাল আছিল ১৯৪৪ চন। অসমীয়া ভাষাত প্ৰকাশ পোৱা দ্বিতীয়খন আত্মজীৱনী হ'ল পদ্মনাথ গোহাঞি বৰুৱাৰ মোৰ সোঁৱৰণী (১৯৭১)। ইয়াৰ পিছৰপৰা অসমীয়া সাহিত্যত আত্মজীৱনী ৰচনাৰ এক পৰম্পৰা আৰম্ভ হ'ল। অসমীয়া সাহিত্যত মহিলা ৰচিত প্ৰথম আত্মজীৱনী হ'ল ৰাজাবালা দাসৰ তিনিকুৰি দহবছৰৰ স্মৃতি। এইখন আত্মজীৱনী কেইবাটাও কাৰণত প্ৰাসংগিক। কাৰণ পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজ ব্যৱস্থাৰ অংশ হৈও সেই সমাজৰ সকলো পৰম্পৰাগত ৰক্ষণশীল নীতি-নিয়মক নিজৰ আত্মজীৱনীত লিপিবদ্ধ কৰি তেখেতে সমাজখনত সেইসময়ত থকা নাৰীৰ স্থিতিৰ এক অৱলোকন দাঙি ধৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছিল।

গতিকে অসমত প্ৰথমখন মহিলা মহাবিদ্যালয় প্ৰতিষ্ঠা কৰোঁতা ৰাজাবালা দাসৰ আত্মজীৱনীত সেইসময়ৰ অসমীয়া সমাজ জীৱনত নাৰীৰ সামাজিক আৰু শৈক্ষিক স্থিতি কিদৰে বৰ্ণিত হৈছে সেয়া আলোচনা পত্ৰত বিশ্লেষণ কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

ঊনবিংশ শতিকাৰ পূৰ্বৰ অসমীয়া সমাজত মহিলাৰ সামাজিক আৰু শৈক্ষিক স্থিতি সম্পৰ্কে বিভিন্ন অধ্যয়ন হোৱা পৰিলক্ষিত হয় যদিও সেই সমাজৰে অংশীদাৰ হৈ বাস্তৱত বিভিন্ন অভিজ্ঞতাৰ সন্মুখীন হোৱা কোনো মহিলাৰদ্বাৰা ৰচিত আত্মজীৱনীত সেই সময়ৰ নাৰীৰ সামাজিক, শৈক্ষিক দিশৰ স্থিতিৰ বৰ্ণনা পূৰ্বতে পৰিলক্ষিত হোৱা নাছিল। গতিকে ৰাজাবালা দাসে তিনিকুৰি দহবছৰৰ স্মৃতি শীৰ্ষক আত্মজীৱনীত সেই সময়ৰ সমাজৰ অংশ হিচাপে নাৰীৰ স্থিতি কিদৰে পৰ্যবেক্ষণ কৰিছিল, তাক লৈ তেওঁৰ দৃষ্টিভংগী কেনেকুৱা আছিল সেয়া বিশ্লেষণ কৰাই এই অধ্যয়নৰ মূল উদ্দেশ্য।

০.২ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

অসমত প্ৰাৰম্ভিক পৰ্যায়ত মহিলাৰ শিক্ষা তথা নাৰী সমবলীকৰণৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষ উদ্যোগ গ্ৰহণ কৰাসকলৰ ভিতৰত অন্যতম হ'ল ৰাজাবালা দাস। গতিকে জীৱনৰ বিভিন্ন অভিজ্ঞতাৰে সমৃদ্ধ ৰাজাবালা দাসে আত্মজীৱনীত সেই সময়ৰ চিত্ৰণ যিদৰে কৰিছে সেয়াই জাতিটোৰ, সমাজখনৰ এক বিশেষ সময়কো প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। গতিকে উল্লিখিত দিশৰপৰা এই অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে বুলি ক'ব পাৰি।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

ৰাজাবালা দাসৰ তিনিকুৰি দহবছৰৰ স্মৃতি শীৰ্ষক আত্মজীৱনীত সমকালীন অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ প্ৰতিফলন- শীৰ্ষক অধ্যয়নৰ বাবে ৰাজাবালা দাসৰ আত্মজীৱনী তিনিকুৰি দহবছৰৰ স্মৃতিকে অধ্যয়নৰ পৰিসৰৰ ভিতৰত সামৰা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

ক) বিষয় বিশ্লেষণ পদ্ধতি ঃ

সাহিত্য পাঠ এটাৰ বিষয়বস্তু, গঠন আৰু কাৰ্যকাৰিতা সম্পৰ্কে সাহিত্য অধ্যয়নৰ এই পদ্ধতিত আলোচনা কৰা হয়। পাঠ এটিৰ সকলোধৰণৰ অৰ্থ অৰ্থাৎ আক্ষৰিক অৰ্থৰপৰা আৰম্ভ কৰি আভ্যন্তৰীণ অৰ্থ, প্ৰতীক, মূল্যবোধ সকলো অধ্যয়ন কৰা হয়। এই বিষয় বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰ আধাৰত কৰ্ণফুলিৰ পাৰত' গ্ৰন্থখনৰ পদ্ধতিগত এক অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

খ) বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি ঃ

এই পদ্ধতিৰ সহায়ত সাহিত্য পাঠটো ক'ত, কিদৰে, কেনেধৰণৰ পৰ্যবেক্ষণ, লিপিবদ্ধ, বিশ্লেষণ কৰিছে সেই সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা হ'ব।

১.০ মূল আলোচনা প্ৰৱেশ ঃ

আত্মজীৱনীখনৰ উদ্দেশ্য অংশতে ৰাজবালা দাসে উল্লেখ কৰিছে- *'লিখিকাৰ তিনি দহ বছৰজোৱা জীৱনকালত অসমীয়া নাৰী সমাজৰ প্ৰগতি আৰু পৰিৱৰ্তন সম্পৰ্কে এটা বাস্তৱ ছবি দাঙি ধৰা।'*[২]

লেখিকাৰ গ্ৰন্থখন প্ৰকাশ হৈ ওলাইছিল ১৯৭১ চনত। গতিকে তাৰে প্ৰায় তিনিকুৰি বছৰৰ আগতে অসমীয়া সমাজত নাৰীৰ সামাজিক আৰু শৈক্ষিক স্থিতি কেনেকুৱা আছিল তাৰ এক বাস্তৱ ছবি লেখিকাই আত্মজীৱনীখনৰ মাজেদি প্ৰকাশ কৰিব বিচাৰিছে। তলত একাদিক্ৰমে সেয়া আলোকপাত কৰা হ'ল -

(গ) নাৰীৰ শৈক্ষিক স্থিতি ঃ

স্বাধীনতা পূৰ্বকালীন ভাৰতীয় সমাজৰ সকলো ঠাইতে সকলো স্তৰৰ সকলো নাৰীয়ে শিক্ষা গ্ৰহণৰ ক্ষেত্ৰত ৰক্ষণশীল চিন্তা-আদৰ্শৰ লগতে অন্যান্য বহু সমস্যাৰ, সংগ্ৰামৰ সন্মুখীন হ'বলগীয়া হৈছিল। ছোৱালীক পঢ়া-শুনাৰ

জৰিয়তে শিক্ষিত কৰাৰ সলনি ঘৰুৱা কাম-বনত পাৰ্গত কৰি তুলিলেহে ছোৱালীৰ শিক্ষা সম্পূৰ্ণ হোৱা বুলি সমাজে সেই সময়ত বিশ্বাস কৰিছিল। পঢ়া-শুনা কৰিবলৈ বিচৰা ছোৱালীয়ে সমাজৰপৰা উৎসাহ পোৱাৰ সলনি সমালোচনাৰহে সন্মুখীন হৈছিল। দুই-এক পৰিয়ালে ছোৱালীক একেবাৰে নিৰক্ষৰ কৰি ৰখাতকৈ দুটামান শ্ৰেণীলৈকে পঢ়োৱাৰ পক্ষপাতী আছিল যদিও সমাজৰ ভয়ত তেওঁলোকে সেয়াও কৰিবলৈ সাহস কৰিব পৰা নাছিল। ডিব্ৰুগড়ত ১৯১৮ চনত প্ৰথমবাৰৰ বাবে ছোৱালীৰ কাৰণে চৰকাৰী ছোৱালী হাইস্কুল বিদ্যালয় খোলাৰ কথা লেখিকাই প্ৰসংগক্ৰমে উল্লেখ কৰিছে। কিন্তু খোজকাঢ়ি, আলিবাটেৰে তেনে বিদ্যালয়লৈ যোৱাটো সমাজৰ সম্ভ্ৰান্ত বহু পৰিয়ালৰ লগতে লেখিকাৰ নিজৰ পৰিয়ালে যে ভাল পোৱা নাছিল সেয়া তেওঁ গ্ৰন্থখনত স্বীকাৰ কৰিছে। তেওঁলোকে ঘৰুৱা কামত ছোৱালীক পাৰ্গত কৰাতহে বিশেষ গুৰুত্ব দিছিল- *"ভাল শিপিনী আৰু ভাল গৃহিণীৰ কামত অৰ্হতা লাভ কৰিলেই পাত্ৰী হিচাপে ছোৱালীৰ গুণ বাঢ়ে বুলি পিতৃ-মাতৃয়েও বিশ্বাস কৰিছিল।"*[৩]

উচ্চ শিক্ষা গ্ৰহণৰ ক্ষেত্ৰত সেইসময়ৰ মহিলাই যিবিলাক প্ৰত্যাহ্বানৰ সন্মুখীন হ'বলগীয়াত পৰিছিল তাকো লেখিকাই ইয়াত বিতংভাৱে উল্লেখ কৰিছে। সেইসময়ত ছোৱালীয়ে স্কুললৈ পঢ়িবলৈ যোৱাটোৱে যে সমাজৰ চকুত নিন্দনীয় আছিল সেয়া পূৰ্বতেই উল্লেখ কৰা হৈছে। গতিকে উচ্চ শিক্ষাৰ কাৰণে কলিকতালৈ কোনো ছোৱালী যোৱাতো সমাজখনৰ বাবে সেইসময়ত এক ভাবিব নোৱৰা কথা আছিল। নিজৰ আশে-পাশে পঢ়িবলৈ অসমৰ বাহিৰলৈ যোৱা ছাত্ৰীসকলৰ প্ৰতি সমাজখনৰ ধাৰণা দেখি লেখিকাই নিজকে সমাজৰ চকুত সেই অৱজ্ঞাৰ দৃষ্টি চাব বিচৰা নাছিল। গতিকে ককায়েকৰ লগত কলকাতালৈ পঢ়িবলৈ যোৱা লেখিকাই সমাজৰ উপলুঙা দৃষ্টি সহিব নোৱাৰি গৰম বন্ধৰ পিছত পঢ়া আধৰুৱা কৰি ঘৰলৈ উভটি অহাৰ কথা গ্ৰন্থখনত স্বীকাৰ কৰিছে এনেদৰে, "বাইদেউহঁতকো (পেহীদেউৰ জীয়েক) স্কুলত পঢ়া দেখি আমাৰ সমাজৰ মানুহে তেওঁবিলাকক উপলুঙাৰ চকুৰে চাইছিল। মোকো অসমত তেনেকৈ ভাবিলে মোৰ খুব বেয়া লাগিব। মোৰ কথা মই ৰাখিলো। বন্ধৰ পিছত মই আৰু কলিকতাত পঢ়িবলৈ ন'গলো।" (৯ পৃ.)

অন্য ছোৱালীৰ দৰে লেখিকাৰো এটা সময়ত ঘৰত বিয়াৰ কথা বতৰা চলিবলৈ আৰম্ভ কৰিছিল। কিন্তু তেওঁৰ বিয়াক লৈ পৰিয়াৰে মাজতে বিভিন্ন মতানৈক্য হোৱা দেখা পাই ৰাজাবালা দাসে পুনৰ পঢ়া-শুনা কৰাৰ কথা ভাবিলে। কিন্তু কলিকতালৈ পুনৰ যাবলৈ তেওঁ পৰিয়ালৰপৰা সন্মতি পোৱা নাছিল। ঘৰতে তেওঁ ভিনিয়েক বিষ্ণুপ্ৰসাদ দুৱৰা আৰু জ্যেষ্ঠ ভ্ৰাতৃ ডাক্তৰ লক্ষ্মী প্ৰসাদ চলিহাদেৱৰ সহযোগত অধ্যয়ন কৰিবলগা হৈছিল। ভাৰতৰ বাহিততো বাদেই, অসমৰ সীমামূৰীয়া ৰাজ্যতো উচ্চ শিক্ষা লাভ কৰিবলৈ যাবলৈ অসমৰ ছাত্ৰসকলেই য'ত বিভিন্ন গালি, বাধাৰ সন্মুখীন হ'বলগীয়াত পৰিছিল তাত মহিলাৰ বাবে এই বাধা অতিক্ৰম কৰা আৰু অধিক যে জটিল আছিল সেয়া লেখিকাৰ বৰ্ণনাৰ পৰাই উমান পাব পাৰি। উদাহৰণস্বৰূপে ৰাজাবালা দাস আৰু তেওঁৰ ভনীয়েকে প্ৰথম অৱস্থাত কলিকতাৰ বেথুনত স্থান লাভ কৰা নাছিল। যাৰ বাবে তেওঁলোকে বিহাৰৰ গিৰিধি ছোৱালী স্কুলত নামভৰ্তি কৰিব লগা হ'ল। তেওঁলোক পঢ়িবলৈ বুলি বিহাৰলৈ যাবলৈ ওলোৱাৰ খবৰ পোৱাৰ লগে লগে গোটেই সমাজখনে এই কথাটো লৈ কিদৰে ইচ্ আস কৰিছিল সেয়া লেখিকাৰ স্মৃতিপটত গভীৰভাৱে খোদিত হৈ আছিল। 'মাক-বাপেকহাল নিশ্চয় বলিয়া হৈছে' জাতীয় মন্তব্য কৰাৰ কথাও লেখিকাই শুনা বুলি প্ৰসংগক্ৰমে উল্লেখ কৰিছে। বিহাৰৰ গিৰিধি হাইস্কুলত এটা বছৰ শিক্ষাগ্ৰহণ কৰাৰ পিছত ৰাজাবালা দাসে ১৯১৫ চনত কলিকতাৰ বেথুনৰপৰা প্ৰথম বিভাগত মেট্ৰিক পৰীক্ষা পাছ কৰে। এনেদৰে অসমৰ বাহিৰত আহি শিক্ষা গ্ৰহণ কৰি সফলতা লাভ কৰা বাবে অসম চৰকাৰৰ ফালৰ পৰা তেওঁক বিশ টকাৰ বৃত্তিও প্ৰদান কৰা হৈছিল। ৰাজাবালা দাসৰ ভগ্নীয়েও ইয়াৰ পৰাই মেট্ৰিক পৰীক্ষাত অৱতীৰ্ণ হৈছিল।

ৰাজাবালা দাসে পৰীক্ষাত দেখুওৱা সফলতাই অসমত থকা অভিভাৱক সকলৰ মনতো তেওঁলোকৰ ছোৱালী সন্তানক বাহিৰলৈ পঢ়িবলৈ পঠোৱা চিন্তাই লাহে লাহে ক্ৰিয়া কৰিব ধৰা বুলি লেখিকাই উল্লেখ কৰিছে। অৱশ্যে ৰাজাবালা দাসৰ আগতে দুই-এগৰাকী ছাত্ৰী কলিকতালৈ পঢ়িবলৈ নোযোৱা নহয়। ইয়াৰ ভিতৰত লেখিকাই উল্লেখ কৰা অনুসৰি গুণাভিৰাম বৰুৱাৰ দুই জিয়ৰী গৌৰীপ্ৰভা আৰু শশীপ্ৰভাই গিৰিধৰ স্কুলত পঢ়িবলৈ গৈছিল। গৌৰীপ্ৰভাই বি.এ পাছ কৰি ডিব্ৰুগড়ৰ ছোৱালী হাইস্কুলত সহকাৰী শিক্ষয়িত্ৰী হিচাপে শিক্ষক জীৱন আৰম্ভ কৰি পৰৱৰ্তী সময়ত এই বিদ্যালয়ৰ প্ৰধান শিক্ষয়িত্ৰী হিচাপে পদত নিযুক্ত হৈছিল। মন কৰিবলগীয়া যে অসমৰ প্ৰথম মহিলা স্নাতক সুখলতা

দুৱৰা আৰু সুধালতা দুৱৰা ৰাজাবালা দাসতকৈ এক শ্ৰেণীৰ ওপৰত পঢ়ি আছিল। এনেদৰে বাহিৰত অধ্যয়ন কৰিবলৈ গৈ মেধাৰ পৰিচয় দিয়া ছাত্ৰীসকলৰ বাতৰিয়ে গোলাঘাট, যোৰহাটৰ বহু যুৱতীক বেথুন স্কুলত শিক্ষা গ্ৰহণৰ বাবে যাবলৈ উৎসাহিত কৰিছিল।

সামাজিক স্থিতি ঃ

ক) বাল্য বিবাহৰ প্ৰচলন ঃ

সেইসময়ত সমাজত ছোৱালীৰ কন্যাকাল প্ৰাপ্ত হোৱা মানেই বিয়া দিয়াৰ উপযুক্ত হোৱা বুলি গণ্য কৰা হৈছিল। প্ৰস্তুতিও সেই অনুসৰি চলোৱা হৈছিল। অৱশ্যে বামুণৰ ছোৱালীৰ কন্যাকাল হোৱাৰ পূৰ্বতে 'ধৰম বিয়া' হোৱাৰ নিয়ম। এনে নহ'লে ছোৱালীৰ পৰিয়াল সমাজৰপৰা এঘৰীয়া কৰাৰ নিয়ম প্ৰচলিত আছিল। গতিকে কন্যাকাল হোৱাৰ বহু পূৰ্বে ব্ৰাহ্মণ সম্প্ৰদায়ৰ ছোৱালীবোৰক বিয়া দিয়াৰ যো-জা কৰা হৈছিল সেয়া লাগিলে আদহীয়া অথবা বৃদ্ধই নহওঁক কিয়, এনে কাৰণতে বহুতে অকাল বৈধব্যৰ যন্ত্ৰণা ভোগ কৰিবলগাত পৰিছিল। কন্যাকাল প্ৰাপ্ত হোৱাৰ পিছত প্ৰতিগৰাকী ছোৱালীৰ জীৱন কঠোৰ নিয়ম-শাসনৰ মাজক আৱদ্ধ হৈ পৰে। ছোৱালীবিলাকেও বিনা প্ৰতিবাদে সকলোবিলাক নিয়ম বিনা চৰ্তে মানি ল'বলৈ বাধ্য হৈছিল। তেওঁলোকৰ ওচৰত প্ৰতিবাদ কৰিবলৈ, প্ৰশ্ন কৰিবলৈ কোনোধৰণৰ অৱকাশে ৰখা নহৈছিল।

বিয়াৰ বাবে ছোৱালীৰ বাবে শিক্ষিত হোৱাৰ সলনি সেইসময়ৰ সমাজত তাঁত সূতা বব জনাটো বাধ্যতামূলক আছিল। তাঁত বব নাজানিলে ছোৱালীৰ বিয়া হোৱাই কঠিন আছিল। বিয়াৰ পূৰ্বতে ঘৰতে মাকৰপৰা ছোৱালী এজনীয়ে তাঁত বোৱাৰপৰা ঘৰুৱা অন্য সকলো কাম শিকি ল'বলগীয়াত পৰিছিল। ১৯২৬ চনত 'অসম মহিলা সমিতি' প্ৰতিষ্ঠা কৰা হৈছিল। এই সমিতিয়ে অসমত 'সাৰদা বিল' কাৰ্যকৰী কৰা তথা 'বাল্য বিবাহ' প্ৰতিৰোধ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত গ্ৰহণ কৰা গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকাই কিদৰে অসমৰ সমাজ জীৱনত প্ৰতিক্ৰিয়াৰ সৃষ্টি কৰিছিল সেয়া ৰাজাবালা দাসে আত্মজীৱনীত বিস্তৃতভাৱে উল্লেখ আছে।

খ) ৰাজহুৱা স্থানত ওলোৱা-সোমোৱাৰ ক্ষেত্ৰত থকা বাধ্যবাধকতা ঃ

লেখিকাই আত্মজীৱনীত উল্লেখ কৰা অনুসৰি সৰুৰেপৰা ছোৱালী এজনীয়ে কঠোৰ শাসনৰ মাজত ডাঙৰ-দীঘল হ'বলগীয়া হৈছিল। ছয়-সাত বছৰ বয়সলৈকে ছোৱালীয়ে স্ব-ইচ্ছাত মুকলিমূৰীয়াকৈ উমলি-জামলি ঘূৰি ফুৰিব পৰাৰ স্বাধীনতা আছিল। ঘৰৰ পিছফালৰ চোতাল বা সন্মুখৰ পদূলিলৈকে যোৱাতো কোনো বাধা-নিষেধ নাছিল। কিন্তু ছোৱালী এজনীয়ে যেতিয়া কন্যাকাল প্ৰাপ্ত হয় তেতিয়া তাইৰ স্বাধীনতা সম্পূৰ্ণৰূপে লোপ পায়। ৰাজহুৱা ক্ষেত্ৰত মুকলিকৈ অহা-যোৱাৰ ক্ষেত্ৰত মহিলাসকলৰ বাবে সেইসময়ত কঠোৰ নিয়ম সমাজে বলৱৎ কৰিছিল।

তিৰোতাসকলে আত্মীয়-স্বজনৰ বিয়া-বাৰু বা ফুৰিবলৈ গ'লে তেওঁলোকে চৈ দিয়া গৰু গাড়ী বা চাৰিওফালৰপৰা বন্ধ ঘোঁৰা গাড়ীতহে যাব পাৰিছিল। খোজকাঢ়ি ওচৰ-চুবুৰীয়াৰ ঘৰলৈ যাবলগীয়া হ'লেও বৰজাপিৰ তলতহে তেওঁলোক গৈছিল -

"মানুহ এজনে বৰ জাপিটো কাষে কাষে ধৰি যায়, তাৰ ওচৰে ওচৰে তিৰোতাসকলে খোজকাঢ়ি যায়। একেলগে দুই বা তিনিগৰাকীমান তিৰোতাহে যাব পাৰিছিল।"

ভাৰতৰ সকলো স্থানতে নাৰীৰ ওপৰত সেইসময়ত একেধৰণৰ বাধা নিষেধ থকাৰ কথা লেখিকাই গ্ৰন্থত দিয়া বেথোন স্কুলৰ শাসন প্ৰণালীৰপৰাই ল'ব পাৰি। লেখিকাই উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে, "স্কুলত বাহিৰৰ বাৰাণ্ডাত ছোৱালীক ওলাই যাবলৈ দিয়া নহৈছিল। স্কুলত ছাত্ৰীসকলক অনা নিয়া কৰিবলৈ চাৰিখন ডাঙৰ ডাঙৰ বাছ আছিল যিবিলাক ঘোঁৰাৰে টনা হৈছিল। বন্ধ দিনত হোষ্টেলৰ ছোৱালীবিলাকক এই বাটেদিয়ে বিভিন্ন ঠাইলৈ ফুৰাবলৈ নিয়াৰ ব্যৱস্থা কৰা হৈছিল।"

ৰাজাবালা দাসে পৰৱৰ্তী সময়ত শিক্ষা গ্ৰহণ কৰা ডাৱচেচ কলেজৰ নিয়ম-নীতি কিছু শিথিল আছিল। তিনি-চাৰিজনী ছোৱালী মিলি তেওঁলোকে বজাৰ কৰিবলৈ যাবলৈ পাৰিছিল। অৱশ্যে সন্ধিয়াৰ আগে আগে তেওঁলোক ঘূৰি আহিব লাগিছিল।

বাহিৰলৈ ওলাই যোৱাৰ ক্ষেত্ৰত বাধা থকাৰ দৰে কোনোধৰণৰ ৰাজহুৱা অনুষ্ঠানত পুৰুষৰ সমানে মহিলাৰ অংশগ্ৰহণতো সেইসময়ত সমগ্ৰ ভাৰততে যথেষ্ট কঠোৰ নিয়ম আছিল। কলিকতাত অধ্যয়নত অসমীয়া ছাত্ৰসকলে এটি ক্লাব গঠন কৰি ধ্যান-ধাৰণা, ভাব বিনিময়ৰ এক মাধ্যম সৃষ্টি কৰিবৰ প্ৰয়াস কৰিছিল। তেওঁলোকে এই অনুষ্ঠানলৈ কলিকতাত সেইসময়ত অধ্যয়নত ছাত্ৰীসকলকো নিমন্ত্ৰণ কৰিছিল। কিন্তু তেওঁলোকে পাৰিবাৰিক বাধাৰ বাবে সেই মিটিঙত অংশগ্ৰহণ কৰিব পৰা নাছিল। ক'বলৈ গ'লে

বৌদ্ধিক ক্ষেত্ৰত মহিলাসকলক ভাবৰ আদান-প্ৰদান কৰাৰ পৰা একপ্ৰকাৰ বিৰত ৰখা হৈছিল।

গ) বিধৱাসকলৰ জীৱন যন্ত্ৰণা ঃ

লেখিকাই সেই সময়ত বিধৱাসকলৰ জীৱনৰ যি বিষাদ-যন্ত্ৰণা সেয়াও নিজৰ চাৰিওকাষৰ অভিজ্ঞতাৰ আধাৰত প্ৰসংগক্ৰমে গ্ৰন্থখনত উল্লেখ কৰিছে। স্বামীৰ বিয়োগৰ পিছত বিধৱা এগৰাকীয়ে উকা বস্ত্ৰ পৰিধান, নিৰামিষ আহাৰ গ্ৰহণ, দিনটোত মাত্ৰ এবাৰ আহাৰ গ্ৰহণ, ব্ৰত পালন আদি বিভিন্ন কঠোৰ নিয়ম পালন কৰিবলগা হৈছিল। লেখিকাই আত্মজীৱনীত সেয়া উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে, "বামুণৰ বিধৱাৰ কি যে যন্ত্ৰণা। বিধৱা হোৱাৰ দিনৰেপৰা ছোৱালীয়ে নিজৰ সুখ-সম্ভোগ, ভৱিষ্যত জীৱনৰ আশা-আকাংক্ষা সকলো বিসৰ্জন দিব লগাত পৰে। বামুণৰ বিধবাই উকা বস্ত্ৰ পৰিধান, নিৰামিষ আহাৰ, এক সন্ধ্যা ভোজন ব্ৰত মানিবলৈ বাধ্য হৈ পৰে।" (২০ পৃ.)

স্বামীৰ মৃত্যুৰ পিছত বিধৱাসকলৰ নাৰী হিচাপে, নিজৰ জীৱন বুলি কোনোধৰণৰ আশা-আকাংক্ষা থকাৰ কথা সেইসময়ৰ সমাজখনে কল্পনাও কৰিব পৰা নাছিল। কোনো নাৰী যদি বিধৱা হোৱাৰ পিছত দুৰ্ভাগ্যবশতঃ স্বামীৰ ঘৰত থাকিব লগা হয় তেন্তে স্বামীৰ পৰিয়ালবৰ্গই বিধৱাগৰাকীৰ ওপৰত কেনে অবৰ্ণনীয় অত্যাচাৰ চলায় সেয়া লেখিকাই নিজৰ ওচৰ-চুবুৰীয়াৰ কন্যাৰ ক্ষেত্ৰতে ওচৰৰপৰা প্ৰত্যক্ষ কৰা বুলি গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে।

ঘ) স্বাধীনতা, অসহযোগ আন্দোলনত অংশগ্ৰহণ ঃ

অন্য কোনো সভা-সমিতিত পুৰুষৰ সমানে অংশগ্ৰহণৰ ক্ষেত্ৰত পাৰিবাৰিক বা সামাজিকভাৱে বাধা আৰোপ কৰিলেও স্বাধীনতা আন্দোলনৰ সময়ছোৱাত মহিলাৰ অংশগ্ৰহণৰ ক্ষেত্ৰত লেখিকাই কোনোধৰণৰ বাধা নিষেধাজ্ঞা আৰোপ কৰা প্ৰত্যক্ষ কৰা নাছিল। ১৯২১ চনত অসহযোগ আন্দোলনৰ সময়ত ভাৰতৰ অন্যান্য প্ৰান্তৰ মহিলাৰ দৰে কলিকতাত অধ্যয়নত অসমীয়া মহিলাই কিদৰে অংশগ্ৰহণ কৰি নিজৰ বৰঙণি যোগাইছিল তাৰ আভাস লেখিকাৰ গ্ৰন্থখনৰ মাজেদি পোৱা যায়। কাৰণ এই আন্দোলনৰ কাম-কাজৰ খতিয়ান ল'বলৈ মহাত্মা গান্ধী কলিকতালৈ আহি বিখ্যাত বেৰিষ্টাৰ চিত্তৰঞ্জন দাসৰ ঘৰত আলহী হিচাপে আছিল। গান্ধী অহা গম পাই কলিকতাৰ অসমীয়া ছাত্ৰীসকল তেওঁক সাক্ষাৎ কৰিবলৈ গৈছিল। তেওঁ ছাত্ৰীসকলক স্কুল-কলেজৰ কাম-কাজক সাময়িকভাৱে অসহযোগ কৰি দেশৰ স্বাধীনতা যুঁজত আত্মসমৰ্পণ কৰিবলৈ উপদেশ দিছিল। চিত্তৰঞ্জনৰ ঘৰত হোৱা মহিলাৰ সভাত গান্ধীয়ে চিত্তৰঞ্জন দাসৰ সৰু জীয়েকক ওচৰলৈ মাতি উপস্থিত সকলো মহিলাৰ আগত নিজৰ আ-অলংকাৰ স্বৰাজ যজ্ঞৰ কাৰণে আহুতি দিবৰ বাবে আহ্বান জনাইছিল। সেইদিনা সভাত উপস্থিত থকা বহু মহিলা-যুৱতীৰপৰা কিছু গহণা গোট খোৱা বুলি লেখিকাই উল্লেখ কৰিছে" (৩৫ পৃ.)

মহাত্মা গান্ধী ডিব্ৰুগড়লৈ আহোঁতে ৰাজাবালা দাস ডিব্ৰুগড়ত নিজ গৃহতে আছিল। মহাত্মা গান্ধী অসমলৈ আহিব বুলি জানি তেওঁলোকে কলিকতাৰপৰা আহি এই সভাত অংশগ্ৰহণ কৰিছিল। গান্ধীৰ লগত সেইসময়ত মহম্মদ আলি আৰু চৌকত আলিও আহিছিল। ৰাজাবালা দাসে প্ৰত্যক্ষ কৰা অনুসৰি ডিব্ৰুগড়ৰ এই ৰাজহুৱা সভাত মহিলাৰ সেই অংশগ্ৰহণ সমগ্ৰ অসমৰ ভিতৰতে প্ৰথম আছিল- "সিদিনা মহাত্মাৰ ৰাজহুৱা সভা ডিব্ৰগড়ৰ আহ্বান কৰা হৈছিল মোৰ মনত আছে, ঘৰৰ গৃহস্থসকলে গৃহিণীসকলক মহাত্মাৰ মিটিঙত যোগদান দিবলৈ বাধা দিয়া নাছিল। সেয়াই বোধকৰোঁ প্ৰথম আমাৰ দেশত তিৰোতাসকলে ৰাজহুৱা সভাত যোগদান কৰিবলৈ সুযোগ লাভ কৰিছিল।" (৪১পৃ.)

মহাত্মা গান্ধীয়ে সকলোৰে আগত কলিকতাৰপৰা বি.এ পাছ কৰি অসহযোগ আন্দোলনত অংশগ্ৰহণ কৰিবলৈ অহা দেখি সকলোকে এই আন্দোলনত সক্ৰিয়ভাৱে অংশগ্ৰহণ কৰিবলৈ আহ্বান জনায়। মহাত্মা যোৱাৰ পিছত ডিব্ৰুগড়ত কংগ্ৰেছ কমিটি গঠন হৈছিল। মহিলা শাখাৰ সম্পাদিকা হিচাপে ৰাজাবালা দাসক নিযুক্তি দিয়া হৈছিল। তেখেতে চহৰ-গাঁৱে ঘূৰি সকলো মহিলাক অসহযোগ আন্দোলন সম্পৰ্কে সজাগ আৰু অংশগ্ৰহণৰ বাবে ওলাই অনাৰ দায়িত্বভাৰ চম্ভালিব লগাত পৰিছিল। ৰাজাবালা দাসে ঘোঁৰা গাড়ীত উঠি মেলে মিটিঙে অংশগ্ৰহণ কৰিছিল। এনেদৰে মিটিঙ কৰি ঘূৰি ফুৰাৰ ক্ষেত্ৰত তেওঁৰ পিতৃ-মাতৃ বৰ বেছি সুখী নহ'লেও জ্যেষ্ঠ ভ্ৰাতৃৰ সহযোগত তেখেতে এই কাৰ্যত মনোনিৱেশ কৰিব পাৰিছিল। গাড়ী চালকৰ উপৰি অৱশ্যে অন্য মহিলা দুই-এগৰাকীও মাজে সময়ে এনে সভাত তেওঁৰ লগত গৈছিল। আন্দোলনৰ কাম-কাজৰ বুজ ল'বলৈ মদন মোহন মালব্যজী ডিব্ৰুগড়লৈ আহোঁতে মহিলাৰ হৈ এক ভাষণ প্ৰদান কৰিবৰ বাবে ৰাজাবালা দাসক দায়িত্ব দিয়া হৈছিল। মালব্যজীয়ে ৰাজাবালাৰ বক্তৃতাত মুগ্ধ হৈ তেওঁক উচ্চ শিক্ষাৰ বাবে বেণাৰস হিন্দু বিশ্ববিদ্যালয়ত অধ্যয়নৰ বাবে আৰু এক

কামৰো ব্যৱস্থা কৰি দিছিল। কিন্তু ৰাজাবালাৰ পিতৃ-মাতৃ এই বিষয়ত ঘোৰ বিৰোধী আছিল। তেওঁলোকে তাৰ সলনি ৰাজাবালাৰ বিয়াৰ দিশটোকহে অধিক গুৰুত্ব দিছিল। অসহযোগ আন্দোলন আৰু মহাত্মা গান্ধীৰ নেতৃত্বৰ প্ৰভাৱত অসমত মহিলাসকলে পুৰুষৰ সমানে কেৱল ৰাজহুৱা সভাতে অংশগ্ৰহণ কৰিবলৈ ওলাই অহা নাছিল তেওঁলোকে নিজা উদ্যোগত ঘৰৰ বাহিৰত কাম কৰিবলৈও আগবাঢ়ি আহিবলৈ সক্ষম হৈছিল। গান্ধীৰ আদৰ্শক শিৰোগত কৰি ডিব্ৰুগড়ৰ আমোলাপট্টিত তিৰোতাসকলৰ মাজত এটা সূতা কটা কাপোৰ বোৱা কেন্দ্ৰ খোলা হৈছিল। যিটো ঘৰত সেই কেন্দ্ৰটো খোলা হৈছিল সেয়া বিনা পাৰিশ্ৰমিকত ডিব্ৰুগড়ৰ গোলাপ দুৱৰাই দান কৰিছিল। দুপৰীয়া খাই-বৈ উঠি তিৰোতাসকলে তাত লাহে লাহে সূতা কাটিবলৈ আহিবলৈ ল'লে। ইয়াৰ ফলশ্ৰুতিত ডিব্ৰুগড়ত কেইবাটাও সূতা কটা কেন্দ্ৰ খোলা হৈছিল। এনে অংশগ্ৰহণে তেওঁলোকক দলীয় ৰূপত কোনো কামত অংশগ্ৰহণ কৰাৰ, নেতৃত্ব প্ৰদান আদি বিভিন্ন বিষয়ত নতুন অভিজ্ঞতাৰে সমৃদ্ধ কৰিছিল বুলি ক'ব পাৰি। পৰৱৰ্তী সময়ত ৰাজাবালা দাস ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ লগত ওতঃপ্ৰোতভাৱে জড়িত হৈ পৰিছিল। ঘৰৰ বিৰোধিতাৰ পিছতো তেখেতে ১৯২৩ চনত গয়াত অনুষ্ঠিত হোৱা কংগ্ৰেছৰ সভাত অসমৰ মহিলা প্ৰতিনিধি হিচাপে যোগদান কৰিছিল।

ঙ) দৃঢ়তাৰে নিজা মত প্ৰকাশ ঃ

শিক্ষাৰ অধিকাৰ লাভ তথা মুকলিকৈ চলন-ফুৰণৰ ক্ষেত্ৰতে যি সময়ত প্ৰতিগৰাকী নাৰীয়ে সংগ্ৰাম কৰিবলগীয়া হৈছিল সেইসময়ত নিজৰ ইচ্ছা-অনিচ্ছাৰ কথা আন দহজনৰ আগত দৃঢ়তাৰে প্ৰকাশ কৰাটো এক অসাধাৰণ কথাই আছিল। ৰাজাবালা দাসে খ্ৰীষ্টান ধৰ্মত শৰণ ল'বলৈ প্ৰত্যাখ্যান কৰি এইক্ষেত্ৰত নিজৰ সবল ব্যক্তিত্ব পৰিচয় দিবলৈ সক্ষম হৈছিল। মিছনেৰীসকলে যিহেতু খ্ৰীষ্টান ধৰ্ম প্ৰচাৰ কৰাকে মূল উদ্দেশ্য হিচাপে লৈ ভাৰতত প্ৰৱেশ কৰিছিল গতিকে য'তে সুবিধা পায় তাতে তেওঁলোকে মানুহক খ্ৰীষ্টান ধৰ্মত দীক্ষিত কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছিল। অধ্যয়নৰ সময়ত বেথুন স্কুলৰ চিষ্টাৰ আইৰিণীয়ে ৰাজাবালা দাসক খ্ৰীষ্টান ধৰ্মত শৰণ ল'বলৈ আহবান জনাইছিল। কিন্তু ৰাজাবালা দাসে কোনোধৰণৰ ভয়-ভীত নোহোৱাকৈ যি ধৰণে চিষ্টাৰ আইৰিণীৰ প্ৰস্তাৱক সাদৰৰে নাকচ কৰিছিল সেয়াই শিক্ষাৰ জৰিয়তে ৰাজাবালাৰ মনত সৃষ্টি হোৱা আত্মবিশ্বাসৰ কথাকে সূচায়।

ৰাজাবালা দাসৰ নিৰ্ভীক মনটোৰ পৰিচয় আন এটা ঘটনাৰপৰা পাব পাৰি। অসহযোগ আন্দোলনৰ সময়ত বিভিন্নজনৰ লগতে ৰাজাবালাৰ ভ্ৰাতৃ ৰজনীকান্ত বৰুৱাও অন্যতম আছিল। আন্দোলনকাৰী হিচাপে ৰজনীকান্ত বৰুৱাই কাৰাবাসো খাটিব লগা হৈছিল। এই সন্দৰ্ভতে এদিন ৰাতিপুৱাতে ৰাজাবালাৰ পিতৃ নথকা অৱস্থাত পুলিচ আহি তালাচী কৰিবলৈ বিচৰাত ৰাজাবালা দাসে সাহসেৰে পুলিচৰ সন্মুখত থিয় হৈ ডাৰোগাক ঘৰৰ ভিতৰলৈ সোমোৱাৰপৰা ওভটাই পঠাইছিল।

কিন্তু কিছুমান ক্ষেত্ৰত থকা নিজৰ দুৰ্বলতা ৰাজাবালা দাসে আত্মজীৱনীত নিজে উল্লেখ কৰিছে। কংগ্ৰেছ কমিটিৰ মহিলা শাখাৰ সম্পাদিকা হিচাপে দায়িত্ব লৈ কাম কৰি থাকোঁতে বিভিন্ন সভাত অস্পৃশ্যতা বৰ্জন সম্পৰ্কীয় বিষয়তো তেওঁলোকে বক্তৃতা দিবলগীয়া হৈছিল। কিন্তু এনে সভাসমূহত বক্তৃতা দিয়াৰ সময়ত ৰাজাবালা দাসে সদায়ে এক অস্বস্তিত ভুগিছিল। কাৰণ অস্পৃশ্যতা বিষয়ত চিন্তাৰ গভীৰতা যে তেওঁৰ সংকীৰ্ণ আছিল সেয়া তেওঁ নিজে স্বীকাৰ কৰিছে- "..সেই সময়ত মোৰ মনৰ অৱস্থা কেনেকুৱা হৈছিল মইহে বুজিছিলো। মই নিজেই সেই সময়ত সেই বিষয়ে উদাৰ হ'ব পৰা নাছিলো।" (৩৮ পৃ.)

চ) অসম মহিলা সমিতি গঠন ঃ

কেইগৰাকীমান সক্ৰিয় অসমীয়া মহিলাৰ উদ্যোগত ১৯২৬ চনত অসম মহিলা সমিতি প্ৰতিষ্ঠা কৰা হৈছিল। এইক্ষেত্ৰত দুৰ্গাপ্ৰভা বৰা, চন্দপ্ৰভা বৰুৱা, স্বৰ্ণলতা শইকীয়া, শশীপ্ৰভা হাজৰিকা আদিয়ে এইক্ষেত্ৰত লোৱা নেতৃত্বক ৰাজাবালা দাসে আত্মজীৱনীত বিশেষভাৱে উল্লেখ কৰিছে। এই সমিতিৰ কাৰ্যভাৰ চম্ভালিবলৈ অন্য বিষয়ববীয়াৰ লগতে ৰাজাবালা দাসকো সম্পাদিকাৰ দায়িত্ব অৰ্পণ কৰা হৈছিল। এই সমিতিৰদ্বাৰা বহুতো উন্নয়নমুখী কাম সমাপণ কৰা হৈছিল। মহিলাসকলৰ বাবে সূতা কটা, তাঁত বোৱা আদিৰ ব্যৱস্থা এই সমিতিৰদ্বাৰা কৰোৱা হৈছিল।

কটন কলেজত প্ৰাৰম্ভিক অৱস্থাত ছোৱালীৰ বাবে হোষ্টেলৰ ব্যৱস্থা নাছিল। উজনি অসমৰ বহু কেইগৰাকী ছাত্ৰীয়ে পঢ়িবলৈ আহি কলেজ কৰ্তৃপক্ষক থকাৰ অসুবিধাৰ কথা জনোৱাত তেওঁলোকে এইক্ষেত্ৰত কোনো সহায় কৰিব নোৱাৰো বুলি কৈছিল। তেতিয়া ছাত্ৰীকেইগৰাকীয়ে মহিলা সমিতিৰ কাষ চপাত সমিতিৰি সদস্যসকলে আগভাগ লৈ সমিতিৰ সভানেত্ৰীৰ বাসভৱনত সেই ছোৱালীকেইগৰাকীক ৰাখিবৰ কাৰণে হোষ্টেলৰ ব্যৱস্থা কৰি দিছিল।

অসমৰ মহিলা সমিতিয়ে সাৰদা আইনৰ সপক্ষে থিয় হৈ অসমতো চৈধ্য বছৰৰ পূৰ্বে ছোৱালীৰ বিয়া নোহোৱাৰ নিয়মক কাৰ্যকৰী কৰিবলৈ সজোৰে এক আন্দোলন গঢ়ি তুলিছিল আৰু সফলো হৈছিল। ৰাজাবালা দাস সমিতিত থাকোঁতেই তেওঁলোকে গুৱাহাটীত এখন বিয়া 'সাৰদা আইন'ৰ ভয় দেখুৱাই কিদৰে বন্ধ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল সেয়া আত্মজীৱনীত লেখিকাই গুৰুত্বসহকাৰে উল্লেখ কৰিছে। লেখিকাই বৰ্ণনা কৰা অনুসৰি মহিলা সমিতিয়ে আৰম্ভ কৰা আন্দোলনৰ প্ৰভাৱতে গুৱাহাটীত বাল্য বিবাহ বহু পৰিমাণে সেইসময়ত শিথিল হৈ পৰিছিল।

পৰৱৰ্তী সময়ত অসম মহিলা সমিতি নিখিল ভাৰত মহিলা সভাৰ লগত যোগদান কৰা নকৰাক লৈ অসম মহিলা সমিতিৰ সদস্যসকলৰ মাজতে মতান্তৰ ঘটাত ৰাজাবালা দাসে সেই সমিতিৰপৰা আঁতৰি আহি সুকীয়া মহিলা সমিতিৰ শাখা খুলি নিখিল ভাৰত মহিলা সভাৰ লগত চামিল হৈছিল। এই সমিতিখনৰ নাম ৰখা হৈছিল নিঃ মঃ সমিতি শাখা। ৰাজাবালা দাসে ষ্টেণ্ডিং কমিটিৰ সদস্যা হৈ দুবাৰকৈ নিখিল ভাৰত মহিলা স ভাৰ বছৰেকীয়া সভাত যোগদান কৰিছিল। এই নিঃ মঃ সমিতিৰ শাখাই উদ্যোগ লোৱা কামসমূহৰ ভিতৰত পাণবজাৰ ছোৱালী হাইস্কুলৰ চৌহদত নিৰ্মাণ কৰা 'ছোৱালী হোষ্টেল' বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। অৱশ্যে পৰৱৰ্তী সময়ত প্ৰথমে স্থাপিত অসম মহিলা সমিতিয়ে নিঃ ভাঃ মহিলা সভাৰ অন্তৰ্ভুক্ত হ'ব বিচৰাত অসমৰ দুইখন প্ৰাদেশিক মহিলা সমিতিক একেলগ কৰি নিঃ ভাঃ মহিলা সভাৰ লগত চামিল কৰা হৈছিল।

ছ) স্ত্ৰী-শিক্ষা সম্প্ৰসাৰণৰ বাবে ব্যৱস্থা গ্ৰহণ ঃ

মহিলা সমিতিৰ দায়িত্বভাৰ এৰাৰ পাছত ৰাজাবালা দাসে অসমত স্ত্ৰী শিক্ষা বিস্তাৰৰ ক্ষেত্ৰত কাম কৰাৰ বাবে আগবাঢ়ি আহে। ইয়াৰ প্ৰথম পদক্ষেপ হিচাপে তেখেতে পাণবজাৰ ছোৱালী স্কুলৰ কাৰ্যকৰী কমিটিৰ সম্পাদিকা হিচাপে দায়িত্বভাৰ গ্ৰহণ কৰি স্কুলখনৰ উন্নয়নত আত্মনিয়োগ কৰে। তেওঁৰ নেতৃত্বতে স্কুলখনৰ ঘৰ-দুৱাৰৰ উন্নতি সাধনৰ বাবে ৰাইজৰপৰা টকা সংগ্ৰহ কৰি কেইবাটাও নতুন ঘৰ নিৰ্মাণ কৰা হয়। বিদ্যালয়ত ছাত্ৰীৰ সংখ্যা বৃদ্ধি কৰিবৰ বাবে আৰু দূৰৈৰ ছাত্ৰীয়ে যাতে কোনো অসুবিধা নোহোৱাকৈ সহজে বিদ্যালয়লৈ অহা-যোৱা কৰিব পাৰে তাৰ বাবে এখন ডাঙৰ স্কুল বাছৰো ব্যৱস্থা কৰা হৈছিল। যাৰ ফলত অহা-যোৱাৰ অসুবিধাৰ বাবে যিবোৰ ছোৱালীয়ে এটা সময়ত বিদ্যালয়লৈ আহিবলৈ বিচৰা নাছিল, সেই ছোৱালীবিলাকক অভিভাৱকে নিজেই স্কুললৈ পঠিয়াবলৈ বিচৰা হ'ল। পৰৱৰ্তী সময়ত ৰাজাবালা দাস স্কুলখনৰ প্ৰধান শিক্ষয়িত্ৰীৰ পদতো অধিষ্ঠিত হৈছিল। এইখিনিতে উল্লেখযোগ্য যে স্কুলৰ কাৰণে পুঁজি সংগ্ৰহ কৰা, চৰকাৰী স্কুলৰ কাৰণে গ্ৰাণ্ট বঢ়োৱা আদি বিভিন্ন কামত ৰাজাবালা দাসৰ স্বামী ডাক্তৰ দাসৰো বিশেষ অৰিহণা থকা বুলি লেখিকাই গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে। ক্ৰমান্বয়ে ৰাজাবালা দাসৰ নেতৃত্বত পাণবজাৰ ছোৱালী হাইস্কুল দোপতদোপে আগবাঢ়ি যাব ধৰিছিল। ছাত্ৰীৰ সংখ্যা বৃদ্ধিৰ সমান্তৰাল ভাৱে গ্ৰেজুৱেট শিক্ষয়িত্ৰীৰ সংখ্যাও বৃদ্ধি পাইছিল। ইয়াতে ইন্দিৰা মিৰিয়েও সেইসময়ত শিক্ষকতা কৰা কথাটো লেখিকাই প্ৰসংগক্ৰমে উল্লেখ কৰিছে।

মেট্ৰিকুলেশ্যন পাছ কৰাৰ পিছত বহু ছাত্ৰীয়ে ইচ্ছা থকাৰ পিছতো উচ্চ শিক্ষাৰ কথা ভাবিব পৰা নাছিল। কাৰণ কটন কলেজত আসনৰ সংখ্যা সীমিত হোৱাৰ লগতে বহু অভিভাৱকে ল'ৰাৰ লগত সমানে ছোৱালীক পঢ়াবলৈ সেইসময়ত অনিচ্ছুক আছিল। তদুপৰি সেইসময়ত মাত্ৰ অৱস্থাসম্পন্ন পৰিয়ালেহে ছাত্ৰীক কলিকতা, বেনাৰস আদি ঠাইত শিক্ষাগ্ৰহণৰ বাবে পঠিয়াব পাৰিছিল। এনেবোৰ কাৰণতে ছোৱালী মহাবিদ্যালয় এখন স্থাপনৰ পৰিকল্পনা ৰাজাবালা দাসৰ মনত খোপনি পুতিছিল আৰু অনেক শ্ৰম, ত্যাগ আৰু প্ৰচেষ্টাৰ অন্তত ১৯৩৯ চনৰ ১৬ জুলাইত ছোৱালী মহাবিদ্যালয়ৰ প্ৰথম ক্লাছ আৰম্ভ কৰা হৈছিল। পাণবজাৰ স্কুলত আৰম্ভ হোৱা এই মহাবিদ্যালয়ৰ নাম পোনতে 'গুৱাহাটী ছোৱালী কলেজ' আছিল। পাণ বজাৰ স্কুলৰপৰা মেট্ৰিক পাছ কৰা ননী বৰুৱা আৰু শ্ৰী বাসন্তী লাহিড়ী এই মহাবিদ্যালয়ৰ প্ৰথম দুগৰাকী ছাত্ৰী আছিল বুলি লেখিকাই গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে। এই মহাবিদ্যালয় স্থাপনৰ ক্ষেত্ৰত ৰাজাবালা দাসক সহায় কৰা ব্যক্তিসকলৰ ভিতৰত শ্ৰী কনকচন্দ্ৰ দাস, শ্ৰী ৰমেশ চাংকাকতি, শ্ৰী ৰজনী শৰ্মা, শ্ৰী বিশ্বেশ্বৰ শৰ্মা, নলিনী দাসগুপ্তৰ নাম কৃতজ্ঞতাসহ লেখিকাই গ্ৰন্থত স্বীকাৰ কৰিছে। কলেজখন কলিকতা বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অন্তৰ্ভুক্ত কৰাৰ ক্ষেত্ৰত সেই সময়ৰ বিশ্ববিদ্যালয়ৰ ইন্সপেক্টৰ সতীশ ঘোষে দহ হাজাৰ টকা কলেজৰ পুঁজি হিচাপে দেখুৱাৰ কথা কৈছিল। নহ'লে মহাবিদ্যালয়খন বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অন্তৰ্ভুক্ত নহ'ব। মহাবিদ্যালয়খন কলিকতা বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অন্তৰ্ভুক্ত কৰাৰ ক্ষেত্ৰত ৰাধাকান্ত সন্দিকৈ আৰু তেওঁৰ পত্নীৰ অৱদানৰ কথা লেখিকাই আত্মজীৱনীখনত বিস্তৃত ৰূপত বৰ্ণনা কৰিছে। প্ৰথমে দহ হাজাৰ দি কলেজখন বিশ্ববিদ্যালয়ৰ

অন্তৰ্ভুক্ত কৰাৰ পিছত সন্দিকৈয়ে উদ্ভিদ বিজ্ঞান খুলিবলৈ সাহাৰ্য প্ৰদান কৰাৰ লগতে ছাত্ৰীসকলৰ বাবে কেইবাটাও স্ক'লাৰশ্বিপৰো ব্যৱস্থা কৰিছিল। সন্দিকৈ পৰিয়ালৰ এই নিঃস্বাৰ্থ সেৱাৰ বাবে পৰৱৰ্তী সময়ত কলেজখনৰ নাম 'সন্দিকৈ কলেজ' কৰা হ'ল বুলি লেখিকাই গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে। এই কলেজখন প্ৰতিষ্ঠাৰ জৰিয়তে ৰাজাবালা দাসে মহিলাৰ শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত এক অগ্ৰণী পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰিলেও কলেজখন প্ৰতিষ্ঠাৰ বাবে তেখেতে বহু সমালোচনাৰো সন্মুখীন হ'বলগীয়াত পৰিছিল। লেখিকাই আত্মজীৱনীত উল্লেখ কৰা অনুসৰি বহুতৰ বাবে ছোৱালী কলেজ এখন প্ৰতিষ্ঠা কৰাটো এটা অবাঞ্চনীয় কাম আছিল। 'Handique women's college is white elephant' বুলি কাককত ডাঙৰ ডাঙৰ শিৰোনামেৰে বাতৰি ওলোৱাৰ কথাও লেখিকাই প্ৰসংগক্ৰমে উল্লেখ কৰিছে। বহুতে আকৌ কোনো স্নাতক ডিগ্ৰীধাৰী অধ্যক্ষই চলোৱা মহাবিদ্যালয়ত কিয় অধ্যয়ন কৰিব বুলিও মন্তব্য কৰা লেখিকাই শুনিবলৈ পাইছিল। অৱশ্যে পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ত অধ্যক্ষ পদত কৰ্মৰত হৈ থাকোঁতেই তেখেতে স্নাতকোত্তৰ ডিগ্ৰী গ্ৰহণ কৰি সমালোচক সকলক উচিত প্ৰত্যুত্তৰ দিছিল। কলা শাখাৰে আৰম্ভ হোৱা মহাবিদ্যালয়খনত লেখিকাৰ কাৰ্যকালতে বিজ্ঞান শাখাও মুকলি কৰা হৈছিল।

২.০ উপসংহাৰ ঃ

'ৰাজাবালা দাসৰ তিনিকুৰি দহবছৰৰ স্মৃতি শীৰ্ষক আত্মজীৱনীত সমকালীন অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ প্ৰতিফলন' - শীৰ্ষক অধ্যয়নৰ জৰিয়তে তলত দিয়া সিদ্ধান্তসমূহত উপনীত হ'ব পাৰি—

অসমীয়া সাহিত্যত প্ৰথম আত্মজীৱনী ৰচয়িতা হিচাপে ৰাজাবালা দাসে তেওঁৰ গ্ৰন্থত প্ৰধানকৈ তেওঁৰ সমসাময়িক সমাজ জীৱনৰ বিভিন্ন স্থিতি বিশেষকৈ শৈক্ষিক আৰু সামাজিক জীৱনটো বিস্তৃত ৰূপত দাঙি ধৰিছে।

ব্যক্তিগত জীৱনৰ দুখ-যন্ত্ৰণাক স্থান দিয়াতকৈ ৰাজাবালা দাসে আত্মজীৱনীত নিজৰ সামাজিক জীৱনটো দাঙি ধৰাতহে বিশেষ গুৰুত্ব দিছিল। ঊনবিংশ শতিকাত সমাজত নাৰীৰ দুৰ্বল স্থিতি লৈ চাই সেই সমাজৰ অংশ হিচাপে লেখিকাৰ বিৱৰণত যিদৰে শক্তিশালী, প্ৰতিবাদীমুখী বৰ্ণনাই স্থান পাব লাগিছিল সেয়া কিন্তু ইয়াত দেখিবলৈ পোৱা নাযায়। নাৰীক লৈ সেইসময়ৰ সমাজত হোৱা বিভিন্ন অন্যায়-অবিচাৰ, কু-সংস্কাৰ, ছোৱালী মহাবিদ্যালয় স্থাপনৰ সময়ত তেওঁ সন্মুখীন হোৱা বিভিন্ন সমালোচনা আদিৰ কথা মাত্ৰ তেখেতে উল্লেখহে কৰিছে। কোনোধৰণৰ প্ৰতিবাদ বা ইয়াক লৈ তেওঁ কিবা প্ৰশ্ন কৰাৰ কথা আত্মজীৱনীখনৰ ক'তো দেখা নাযায়। বৰঞ্চ এগৰাকী সাধাৰণ বৰ্ণনাকাৰী হিচাপেহে প্ৰত্যক্ষ কৰা সকলো ঘটনা তেওঁ আত্মজীৱনীখনত সংযোজিত কৰিছে।

মহিলা মহাবিদ্যালয় স্থাপন কৰাৰ জৰিয়তে ছোৱালী শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত এক নৱজাগৰণ অনাৰ প্ৰয়াস কৰিলেও বিদ্যালয়, মহাবিদ্যালয়ত পোনতে শিক্ষা গ্ৰহণৰ বিষয় হিচাপে পোনতে গাৰ্হস্থ্য বিজ্ঞান বিষয়কহে প্ৰাধান্য দিয়া কথাটোৱে সেইসময়ত পুৰুষৰ সমানে মহিলাই সকলো বিষয় অধ্যয়ন কৰিবলৈ যে অপাৰগ সেই সংকীৰ্ণ মানসিকতাৰ পৰিচয়কে দাঙি ধৰে। ৰাজাবালা দাসো এই চিন্তাৰ পৃথক নাছিল, যাৰ বাবে তেখেতে বিদ্যালয়ত নাৰীসুলভ শিক্ষাহে প্ৰদানক অগ্ৰাধিকাৰ দিছিল।

উল্লিখিত দিশত কিছু দুৰ্বলতা পৰিলক্ষিত হ'লেও পুৰুষে ৰচনা কৰা আত্মজীৱনীৰ আধিপত্যৰ সময়ছোৱাত প্ৰথম মহিলা আত্মজীৱনী হিচাপে ৰাজাবালা দাসৰ তিনিকুৰি দহবছৰৰ স্মৃতি শীৰ্ষক আত্মজীৱনী অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ এছোৱা সময়ৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ দলিল বুলি অভিহিত কৰিব পাৰি। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

মুখ্য উৎস ঃ

দাস, ৰাজাবালা, তিনিকুৰি দহ বছৰৰ স্মৃতি, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৭১

গৌণ উৎস ঃ

বৰা, জুনু, ঊনবিংশ শতিকাৰপৰা বিংশ শতিকালৈ, পূৰ্বায়ন প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, মাৰ্চ, ২০২৪

আলোচনী ঃ

পূজাৰী, অনুৰাধা শৰ্মা, সাতসৰী (সম্পা.), বিংশ বছৰ, একাদশ সংখ্যা, জুন, ২০২৫

ইণ্টাৰনেটৰ তথ্যসূত্ৰ ঃ

1. http://hdl.handle.net/10603/267724
2. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/479704

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 Peer Reviewed Journal
ISSN : 2321-4945 [UGC-CARE Listed]

হোমেন বৰগোহাঞিৰ 'অস্তৰাগ' ঃ এক পৰ্যালোচনা

ড° নন্দিতা গোস্বামী

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
ৰহা মহাবিদ্যালয়
নগাঁও-৭৮২১০৩
৯৯৫৭৯৯৫৪৫৫
nanditanita@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যলৈ অৰদান আগবঢ়োৱা উপন্যাসিকসকলৰ ভিতৰত হোমেন বৰগোহাঞি অন্যতম। ১৯৬৩ চনৰ পৰা ২০০৩ চনলৈকে তেখেতৰ বাৰখন উপন্যাস প্ৰকাশ হয়। উপন্যাসসমূহ হ'ল— সুবালা (১৯৬৩), তান্ত্ৰিক (১৯৬৭), কুশীলব (১৯৭০), হালধীয়া চৰায়ে বাওধান খায় (১৯৭৩), পিতাপুত্ৰ (১৯৭৫), তিমিৰ তীৰ্থ (১৯৭৫), অস্তৰাগ (১৯৮৬), বিষন্নতা (২০০০) এদিনৰ ডায়েৰি (২০০৩) আদি। এই উপন্যাসসমূহৰ ভিতৰত 'অস্তৰাগ' উপন্যাসখনে অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যৰ ভিতৰত এক বিশেষ স্থান দখল কৰিছে। ১৯৮৬ চনত প্ৰকাশ পোৱা অস্তৰাগ উপন্যাসখন বৰগোহাঞিৰ এখন ভাৱ-প্ৰধান উপন্যাস। উপন্যাসখনৰ প্ৰধান বিষয়বস্তু মানুহৰ বৃদ্ধকাল। বৃদ্ধকালৰ শাৰীৰিক, মানসিক যন্ত্ৰণাই প্ৰধান বিষয় হিচাপে স্থান পাইছে। তাৰ মাজেৰে বৃদ্ধকালৰ নিঃসঙ্গতা, প্ৰজন্মৰ সংঘাত, গ্ৰাম্যজীৱন, নগৰীয়া জীৱনৰ বৰ্ণনা, প্ৰাকৃতিক সৌন্দৰ্যতা, পৰিবৰ্তিত সমাজজীৱন, মানুহৰ মনৰ অন্তঃদ্বন্দ্ব, প্ৰকৃতিবাদী ভাবধাৰা ইত্যাদি বিভিন্ন বিষয় উপন্যাসখনত অৱতাৰণা কৰিছে। আমাৰ এই আলোচনাত উপন্যাসখনত উক্ত বিষয়সমূহ কেনেদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে সেই বিষয়ে সামগ্ৰিক আলোচনা আগবঢ়োৱা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ

বৃদ্ধকাল, মানসিক যন্ত্ৰণা, প্ৰজন্ম, গ্ৰাম্যজীৱন, প্ৰকৃতিবাদ।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু উৎস ঃ

হোমেন বৰগোহাঞিৰ 'অস্তৰাগ' ঃ এক পৰ্যালোচনা শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে মূলতঃ বিষয়বস্তুৰ বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে আৰু মুখ্য উৎস হিচাপে হোমেন বৰগোহাঞিৰ "অস্তৰাগ" উপন্যাসখন লোৱা হৈছে। গৌণ উৎস হিচাপে অন্যান্য প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থৰ সহায় লোৱা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

হোমেন বৰগোহাঞিৰ "অস্তৰাগ" ঃ এক পৰ্যালোচনা শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে 'অস্তৰাগ' উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত সমাজ বাস্তৱতা তথা মানুহৰ বাৰ্ধক্যৰ বাস্তৱ দিশসমূহ অধ্যয়নৰ পৰিসৰত সামৰি লোৱা হৈছে।

অৱতৰণিকা ঃ

'অস্তৰাগ' বাস্তৱক ভিত্তি কৰি ৰচিত এখন উপন্যাস। উপন্যাসৰ কাহিনী পৰম্পৰাগত কাহিনী প্ৰধান উপন্যাসৰ দৰে নহয়। 'বৃদ্ধ মনস্তত্ত্ব'ই হ'ল উপন্যাসৰ মূল বিষয়বস্তু। মানৰ জীৱনৰ বৃদ্ধকালৰ সমস্যা, দুখ যন্ত্ৰণাক বিষয়বস্তু হিচাপেলৈ

উপন্যাসখন ৰচিত। আৰু তাৰ মাজেৰে বৃদ্ধকালৰ নিঃসঙ্গতা, প্ৰজন্মৰ সংঘাত, গ্ৰাম্যজীৱন, নগৰীয়া জীৱনৰ বৰ্ণনা, প্ৰাকৃতিক সৌন্দৰ্যতা, পৰিবৰ্তিত সমাজজীৱন, মানুহৰ মনৰ অন্তঃদ্বন্দ্ব, প্ৰকৃতিবাদী ভাবধাৰা ইত্যাদি বিভিন্ন বিষয় উপন্যাসখনত অৱতাৰণা কৰিছে। এজন সূক্ষচেতনা সম্পন্ন অধ্যাপকৰ বৃদ্ধ পিতৃকলৈ হোৱা অনুভুতিৰ নিৰ্মোহ বিশ্লেষণ উপন্যাসত দেখিবলৈ পোৱা যায়। ঔপন্যাসিকে উপন্যাসখনত বিষয়বস্তুক মনোবিশ্লেষণাত্মক দৃষ্টিৰে বাখ্যা কৰিছে।

উপন্যাসৰ বিষয়বস্তুৰ পৰ্যালোচনা ঃ

উপন্যাসখনৰ কাহিনী আৰম্ভ হৈছে দিলীপ নামৰ কলেজৰ নিষ্ঠাৱান অধ্যাপক এজনলৈ অহা এখন টেলিগ্ৰামৰ বিষয় অৱতাৰণাৰ জৰিয়তে। দিলীপ এখন কলেজৰ অধ্যাপক, তেওঁ কলেজলৈ যাবলৈ সাজু হোৱা সময়তে কলিংবেলটো বাজি উঠে। বে'লৰ শব্দ শুনি দিলীপ বিৰক্ত হয়। কোনোবা আহি তেওঁৰ সময় নষ্ট কৰিব ফলত সময়ত গৈ তেওঁ ক্লাছটো নাপাব। কিন্তু ঘৈণীয়েকৰ পৰা গম পাই তেওঁলৈ এখন টেলিগ্ৰামহে আহে। তাত লিখা আছিল তেওঁৰ দেউতাকৰ অসুস্থতাৰ বাবে তেওঁক ঘৰলৈ মাতি পঠাইছে। টেলিগ্ৰামখন পাই দিলীপৰ মনত এক মিশ্ৰিত অনুভূতিৰ সৃষ্টি হয়। একে সময়তে তেওঁ স্বস্তি আৰু হতাশ অনুভৱ কৰিলে। স্বস্তি অনুভৱ কৰিলে তেওঁৰ দেউতাক জীয়াই আছে বুলি আৰু হতাশ হ'ল দেউতাকৰ বাৰ্ধক্যৰ যন্ত্ৰণাৰ বাবে। এবছৰৰ আগতে দিলীপে দেউতাকৰ মৃত্যু হোৱাটো কামনা কৰিছিল। "সেইবাবে ঘৰৰ পৰা ঘূৰি অহাৰ দিন ধৰি দিলীপে প্ৰায় প্ৰতিদিনে মনে মনে প্ৰাৰ্থনা কৰিছে মৃত্যুৱে যেন ইমানতে বাৰ্ধক্যৰ এই চৰম যন্ত্ৰণা আৰু অৱমাননাৰ পৰা দেউতাকক ৰক্ষা কৰে। অতি সোনকালেই এখন টেলিগ্ৰামে যেন তেওঁলৈ দেউতাকৰ মৃত্যুৰ বাতৰি কঢ়িয়াই আনে।" (বৰগোহাঞি, হোমেন, *অস্তৰাগ*, এপ্ৰিল, ১৯৮৯, পৃ.৪) সেয়ে দেউতাকৰ মৃত্যুৰ আগৰ যন্ত্ৰণাময় জীৱনৰ বাতৰি অহা বাবে তেওঁ হতাশ হয়। খবৰটো পাইও দিলীপ অধৈৰ্য্য নহ'ল। তেওঁ দুটামান ক্লাছ কৰি আহিবলৈ আৰু গাড়ীৰ টিকটৰ খবৰ ল'বলৈ ওলায়।

দেউতাকৰ মৃত্যু হৈছে বুলি ভাবি দিলীপৰ মনটো পাতল লাগে। আকৌ এই ভাব অহাৰ পিছতে তেওঁৰ মনলৈ অপৰাধবোধো আহে। আনহাতে বাছৰ টিকট নাপাইও তেওঁ স্বস্তি অনুভৱ কৰে। দেউতাকৰ মৃত্যু কামনা কৰি তেওঁ নিজকে দোষী বুলি অনুভৱ কৰে। দিলীপৰ মনৰ এনে অনুভূতিৰ দৰে একে অনুভূতিৰ উদয় হোৱা কাৰ্তিক বসু নামৰ উকীলজনৰ ওচৰলৈ গৈ তেওঁৰ দোষী যেন লগা ভাবটোৰ পৰা মুক্ত হ'ব বিচাৰিছে। দিলীপে কাৰ্তিক বসুক গ্যেটেৰ লগত একে বুলি ৰিজালে। গ্যেটেও কাৰ্তিক বসুৰ দৰে মৃত্যু শৰ্যাত পৰি থকা মাকৰ ওচৰলৈ যাবলৈ ইচ্ছা কৰা নাছিল। কাৰ্তিক বসুৱে দিলীপৰ পৰা গ্যেটেৰ কথা শুনি শান্তি পাই ক'লে — "মই হয়তো দেউতাক খুব ভাল পাইছিলোঁ কাৰণেই ৰোগ আৰু জৰাই চিনিব নোৱাৰাকৈ সলনি কৰা তেওঁৰ শৰীৰটো চাবলৈ সাহস কৰা নাছিলোঁ।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১১) কাৰ্তিক বসুৰ স্বীকাৰোক্তিয়ে দিলীপক সান্ত্বনা দিব নোৱাৰিলে, ঘৰলৈ উভতি গৈ নিজৰ ভাবধাৰাক নিজেই আত্মসমালোচনা কৰিব ধৰিলে। দিলীপে বাছৰ টিকট নাপাই স্বস্তি অনুভৱ কৰিছিল "অন্ততঃ দিলীপে ঘণ্টাৰ কাৰণে মই এটা অপ্ৰিয় আৰু যন্ত্ৰণাদায়ক দৃশ্য দেখিব লগা হোৱাৰ পৰা নিস্কৃতি পালোঁ। বাৰ্ধক্যৰ হাতত জীৱনৰ এই কৰুণ আৰু অপমানজনক পৰাজয়ৰ দৃশ্য চাবলৈ মোৰ ইচ্ছা নাই, সাহস নাই, মানসিক প্ৰস্তুতি নাই।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১২)

দিলীপৰ শক্তিশালী দেউতাকৰ ওপৰত ভীষণ খং উঠে— "বুঢ়া হৈ দেউতাকে যেন এটা ডাঙৰ অপৰাধ কৰিছে, এটা ক্ষমাৰ অযোগ্য অপৰাধ।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১৩) দিলীপে ঘৰ গৈ পোৱাৰ আগতেই দেউতাকৰ মৃত্যু হোৱাটো আশা কৰিছে — "সমগ্ৰ জগত সুখ-নিদ্ৰাত নিমগ্ন থকাৰ সময়ত কেৱল মোৰ দেউতাইহে নিদ্ৰাহীন ৰাতিৰ ভয়ঙ্কৰ অন্ধকাৰত প্ৰাণদণ্ডত দণ্ডিত আচামীৰ দৰে সম্পূৰ্ণ অকলশৰে মৃত্যুৰ কাৰণে প্ৰতীক্ষা কৰি থাকিব, তেতিয়া মই আকুলভাবে প্ৰাৰ্থনা কৰোঁ যে আজিৰ ৰাতিটোৱেই যেন দেউতাৰ জীৱনৰ শেষ ৰাতি হয়। - দেউতাকৰ সেই পৰাজয়ৰ দৃশ্য চাবলৈ তেওঁৰ বিন্দুমাত্ৰ ইচ্ছা নাই। নিজৰ পৰা এই সত্যটো গোপন কৰি আৰু লাভ নাই যে দিলীপ গৈ ঘৰ পোৱাৰ আগতেই দেউতাকৰ মৃত্যু হ'লে তেওঁ যেন ৰক্ষাই পৰিব।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১৪)

উপন্যাসখনত দিলীপৰ মনৰ এই দোধোৰ-মোধোৰ অৱস্থাৰ মাজতে চন্দ্ৰ নামৰ এটা চৰিত্ৰৰ অৱতাৰণা কৰিছে।

চন্দ্ৰ আছিল এজন উচ্চ পদস্থ চৰকাৰী বিষয়া। চন্দ্ৰইও দিলীপৰ আগত কয় — বৃদ্ধ দেউতাকৰ লগত ৰাতি উজাগৰে থাকিব লগা হোৱা বাবে বিৰক্তি অনুভৱ কৰাৰ কথা। চন্দ্ৰৰ দেউতাকৰ বৃদ্ধকালৰ শোচনীয় অৱস্থা দেখি দিলীপৰ পুতেকেও ক'বলৈ সংকোচ কৰা নাই—"মানুহ ইমান বুঢ়া বয়সলৈকে জীয়াই থকা উচিত নহয়। নিজেও খুব কষ্ট পায়, আনকো দিয়ে।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.২০)

দিলীপে সিদ্ধান্ত লয় দেউতাকক গাঁৱৰ ঘৰৰ পৰা তেওঁৰ ঘৰলৈ লৈ আহিব আৰু দেউতাকক এনেদৰে শুশ্ৰূষা কৰিব তেওঁ যেন পৃথিৱীৰ পৰা অভিমান লৈ আতৰি যাব নালাগে — "পৃথিৱীৰ পৰা চিৰবিদায় লোৱাৰ সময়ত দেউতাকে কেতিয়াও মনত এই অভিমান লৈ যাব নালাগিব যে যিখন পৃথিৱীক তেওঁ পৰম আবেগ আৰু ব্যাকুলতাৰে ভাল পাইছিল, সেই পৃথিৱীয়ে তেওঁক আবৰ্জনাৰ নিচিনাকৈ দলিয়াই পেলাব পাৰিলেই ৰক্ষা পৰে।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.২১ পৃ.)

দিলীপে দেউতাকৰ ওচৰলৈ গৈ গ'ম পালে কালীৰাম পণ্ডিতৰ শুশ্ৰূষাত তেওঁ কিছু সুস্থ হৈছে। কালিৰাম পণ্ডিতৰ বিষয়ে তেওঁক তেওঁৰ ভতিজাকে মনত পেলাবলৈ যত্ন কৰিছে।

এই কাহিনীৰ মাজতে উপন্যাসিকে বৰবাইদেউ নামৰ এটা চৰিত্ৰৰ অৱতাৰণা কৰিছে। দিলীপৰ মনলৈ পুৰণি স্মৃতিবোৰ ভাহি উঠিল— স্কুলত একেখন বেঞ্চত বহা ল'ৰাটোৰ কথা, কালিৰাম পণ্ডিতৰ মুখৰ ভাবটোৰ কথা, দিলীপহঁতৰ ঘৰলৈ অহা দেউতাকৰ সূৰ্য ককাইদেউৰ কথা, শৈশৱত নিজৰ বাৰীখনৰ লগত জড়িত স্মৃতিৰ কথা।

দিলীপে দেউতাকক ঘৰলৈ লগত লৈ যাব বিচৰাত প্ৰথমে দেউতাক মান্তি হোৱা নাছিল। পিছত তেওঁক দিলীপে লগত লৈ আহে। নগৰৰ পৰিৱেশত পুত্ৰ-বোৱাৰীৰ সান্নিধ্যই তেওঁক সুখ দিব নোৱাৰিলে। নগৰীয়া মানুহৰ চিন্তাধাৰাৰ লগত পৰিচিত হৈ তেওঁ সুখ নাপালে। পুত্ৰ, বোৱাৰী, নাতিৰ সান্নিধ্যতো তেওঁ নিঃসঙ্গতা অনুভৱ কৰিলে। তেওঁক ঘৰত থৈ আহিবলৈ দিলীপক কাকূতি কৰিব ধৰিলে। অৱশেষত তেওঁ স্মৃতি শক্তি লোপ হোৱা বেমাৰত আক্ৰান্ত হ'ল। দিলীপৰ ঘৰতে তেওঁৰ মৃত্যু হ'ল। মৃত্যুৰ সময়তো তেওঁ — "দুল - - মই ঘৰলৈ —" বুলি কৈ মৃত্যুক আকোঁৱালি লয়।

উপন্যাসখনৰ চৰিত্ৰৰাজি ঃ

উপন্যাসখনৰ প্ৰধান চৰিত্ৰ দিলীপ আৰু দেউতাক। এই চৰিত্ৰ দুটাৰ লগতে বিষয়বস্তু আগবঢ়াই নিয়াত সহায় কৰা আন চৰিত্ৰসমূহ হ'ল — দিলীপৰ পত্নী সাবিত্ৰী, পুত্ৰ কুনাল, জীয়েক অদিতি, উকীল কাৰ্তিক বসু, চন্দ্ৰ, ডাক্তৰ শৰ্মা, কালিৰাম পণ্ডিত, সূৰ্য ককাইদেউ, মথুৰা পণ্ডিত, বৰ বাইদেউ, টুনিৰাম, দিলীপৰ সম্বন্ধীয় ভতিজা, তৰবৰী আদি।

দিলীপ উপন্যাসখনৰ প্ৰধান চৰিত্ৰ। তেওঁ কলেজ এখনৰ অধ্যাপক, নিয়মানুবৰ্ত্তিতা বজাই ৰাখি ভালপোৱা ব্যক্তিত্বৰ অধিকাৰী দিলীপ। "পদে পদে ঘড়ীৰ কাঁটাৰ নিৰ্দেশ মানি চলা তেওঁৰ অভ্যাস।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১) দেশী-বিদেশী সাহিত্যৰ জ্ঞানেৰে ভৰপূৰ দিলীপ। কলেজলৈ যাবৰ সময়ত কলিং বেলটো বজাৰ বাবে সেয়ে তেওঁ অতিষ্ঠ হৈছে। কোনোবা আহি তেওঁৰ কলেজৰ ক্লাছটো সময়মতে পোৱাত ব্যাঘাত সৃষ্টি কৰিব। তেওঁৰ পৰিপাটি গুণৰ বাবে মাজে মাজে পত্নীৰ লগতো মনোমালিন্য হয়। দিলীপৰ চৰিত্ৰটোত উপস্থাপিত কৰিছে মানসিক দোদুল্যমানতা, এই বৈশিষ্ট্যই চৰিত্ৰটোৰ ব্যক্তিত্ব সুন্দৰকৈ প্ৰকাশ পাইছে। টেলিগ্ৰামখন পাই দিলীপৰ মনলৈ অহা স্বস্তি আৰু হতাশাৰ ভাবে দিলীপৰ মানসিক অন্তঃদ্বন্দ্ব প্ৰকাশ কৰাত উপন্যাসিক সফল হৈছে। দিলীপে দেউতাকৰ অসুখ বুলি খবৰ দিয়া টেলিগ্ৰামখন পোৱাৰ পিছত সেইদিনা বাছত টিকট নাপাই মনে মনে বিৰাট স্বস্তি অনুভৱ কৰিছিল— "অন্ততঃ চৌৱিশ ঘণ্টাৰ কাৰণে মই এটা অপ্ৰিয় আৰু যন্ত্ৰণাদায়ক দৃশ্য দেখিব লগা হোৱাৰ পৰা নিস্কৃতি পালো। বাৰ্ধক্যৰ হাতত জীৱনৰ এই কৰুণ দৃশ্য চাবলৈ মোৰ ইচ্ছা নাই, সাহস নাই, মানসিক প্ৰস্তুতি নাই।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১২)

দেউতাকৰ দুখৰ অৱসান ঘটিবলৈ দিলীপে দেউতাকৰ মৃত্যু কামনা কৰে — "সমগ্ৰ জগত সুখ নিদ্ৰাত নিমগ্ন থকাৰ সময়ত কেৱল মোৰ দেউতাইহে নিদ্ৰাহীন ৰাতিৰ ভয়ঙ্কৰ অন্ধকাৰত প্ৰাণদণ্ডত দণ্ডীত আচামীৰ দৰে সম্পূৰ্ণ অকলশৰে মৃত্যুৰ কাৰণে প্ৰতীক্ষা কৰি থাকিব, তেতিয়া মই আকুলভাবে প্ৰাৰ্থনা কৰোঁ যে আজিৰ ৰাতিটোৰেই যেন দেউতাৰ জীৱনত শেষ ৰাতি হয়।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১৪)

মানুহৰ বৃদ্ধকালৰ যন্ত্ৰণাময় জীৱন দিলীপে মানি ল'বলৈ টান পায়। সেয়ে তেওঁ দেউতাকৰ যন্ত্ৰণাময় জীৱনৰ অৱসান ঘটি মৃত্যুৰ কামনা কৰে। তেওঁ অনুভৱ কৰে — "জীৱন আৰু মৃত্যুৰ মধ্যৱৰ্ত্তী প্ৰায়ান্ধকাৰন'-মেন্‌ছ লেণ্ডত

বাস কৰা বুঢ়াবোৰ বাৰু এই কথা জানে নে যে তেওঁলোকৰ প্ৰাণাদিক পুত্ৰ কণ্যায়ো এসময়ত তেওঁলোকৰ মৃত্যু কামনা কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰে? (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.২১)

শেষত দিলীপে প্ৰকৃতিৰ নিয়ম মানি ল'বলৈ বাধ্য হয়। তেওঁ ভাবে— "ময়ো এদিন বুঢ়া হ'ম— দিলীপে মনে মনে ভাবিলে— ময়ো সেই ন'-মেন্‌ছ লেণ্ডৰ পৰম নিঃসঙ্গতাৰ মাজত অপেক্ষা কৰি ৰ'ম মৃত্যুৰ কাৰণে। সেই সময়ত যদি কেনেবাকৈ মোৰ মনত পৰে যে মোৰ পুত্ৰ-কণ্যা আৰু আত্মীয়স্বজনে অধীৰ হৈ অপেক্ষা কৰিছে মোৰ মৃত্যুৰ কাৰণে, মই মৰিলেই সকলো ৰক্ষা পৰে—"

(প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.২১)

দিলীপৰ মনত বাৰ্ধক্যৰ কণ্টকময় জীৱনৰ প্ৰতি খেদ দূৰ হয়। তেওঁ দেউতাকৰ মৃত্যুৰ সময়লৈকে কাৰো প্ৰতি খেদ নৰখাকৈ বিদায় দিয়াৰ কথা ভাবিলে—"পৃথিৱীৰ পৰা চিৰ বিদায় ল'বৰ সময়ত দেউতাকে কেতিয়াও মনত এই অভিমান লৈ যাব নালাগিব যে যিখন পৃথিৱীক তেওঁ পৰম আবেগ আৰু ব্যাকুলতাৰে ভাল পাইছিল, সেই পৃথিৱীয়ে তেওঁক আবৰ্জনাৰ নিচিনাকৈ দলিয়াই পেলাব পাৰিলেই ৰক্ষা পৰে। (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.২১)

দিলীপৰ অন্তঃদ্বন্দ্ব উপন্যাসিকে সুন্দৰভাবে উপস্থাপন কৰিছে। তেওঁ প্ৰকৃতিৰ লগত প্ৰকৃতিৰ সকলো বস্তু মিলি অনন্তধাৰা প্ৰৱাহিত হৈ থকা বুলি অনুভৱ কৰে — "মৃত্যুৰ পিছত মাটিত মিলি যোৱাটো কেতিয়াও জীৱনৰ চিৰ সমাপ্তি নহয়। জীৱন আকৌ জাগি উঠিব মাটিৰ বুকুৰ পৰা, নৱ নৱ ৰূপান্তকৰ মাজেদি চিৰ প্ৰৱাহিত হৈ থাকিব জীৱনৰ অনন্তধাৰা।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৭৩)

দিলীপে আনহাতে প্ৰকৃতিত মিলি যোৱাটো জীৱনৰ চিৰসমাপ্তি নহয় বুলি ভাবিও আকৌ নতুনকৈ চিন্তা কৰিছে— "মই মৰিব খোজোঁ — দিলীপে নিজকে ক'লে— কাৰণ মৃত্যু আছে বুলিয়েই জীৱন ইমান সুন্দৰ আৰু প্ৰাৰ্থনীয়; কিন্তু মই মৰিব নোখোজোঁ, কাৰণ মোৰ মাজত মূৰ্ত হৈ উঠা চৈতন্যৰ চিৰবিলুপ্তি মই কেতিয়াও নিবিচাৰোঁ। কোন জ্ঞানৰ আলোকত মোৰ এই চিৰন্তন দ্বন্দ্বৰ নিৰসন হ'ব?"

(প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৭৪-৭৫)

দিলীপে দেউতাকক নগৰলৈ লৈ আহিছে। দিলীপে মানুহৰ বাৰ্ধক্য অৱস্থা মানি লৈছে। বাৰ্ধক্যৰ অসহনীয় অৱস্থাৰ মাজেৰেও মানুহে যাতে শান্তিৰে মৃত্যু লাভ কৰিব পাৰে তাৰ বাবে মৃত্যুপথৰ যাত্ৰীবোৰক সেই অনুভৱ প্ৰদান কৰিবলৈ সুবিধা দিব লাগে বুলি দিলীপে অনুভৱ কৰিছে। সেয়ে দেউতাকক তেনেদৰে ৰাখিবলৈ ঘৈণীয়েক সাবিত্ৰীক অনুৰোধ কৰিছে—"দেউতাৰ বাৰ্ধক্যই মোক জীৱন সম্পৰ্কে বহু কথা নতুনকৈ ভাবিবলৈ বাধ্য কৰিছে। মই এতিয়া ভাবিছো যে জীয়াই থকা মানুহবোৰে মৰাবোৰক এনেভাবে পৃথিৱীৰ পৰা বিদায় দিয়া উচিত যেন—তেওঁলোকৰ কোনেও এই পৃথিৱীখনক এখন নৰক বা এই জীৱনটোক এটা অভিশাপ বুলি ভাবি পৃথিৱীৰ পৰা শেষ মেলানি মাগিব লগা নহয়। তেতিয়াহে জীৱিতসকলৰ কাৰণেও জীৱনটো অৰ্থপূৰ্ণ হৈ থাকিব।" (১১৫-১১৬ পৃ.)

উপন্যাসিকে দিলীপৰ চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তে জীৱন সম্পৰ্কে মানুহৰ অন্তৰৰ ভাব চিন্তাক ৰূপায়িত কৰিছে — "মানুহ আহিব আৰু যাব কিন্তু যিটো বস্তু অনন্তকাল অজৰ অমৰ হৈ থাকিব সেইটো হ'ল এই সুন্দৰ ভুবন আৰু ৰহস্যময় জীৱনৰ প্ৰতি মানুহৰ সুগভীৰ প্ৰেম। সেই প্ৰেমৰ মাজতেই তুমি চিৰকাল জীয়াই থাকিবা। (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১২৬)

দিলীপৰ দেউতাক উপন্যাসখনৰ আন এটা উল্লেখযোগ্য চৰিত্ৰ। এই চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তে মানৱ জীৱনৰ বৃদ্ধকালৰ বাস্তৱচিত্ৰ ৰূপ দিছে। নতুন প্ৰজন্ম আৰু পুৰণি প্ৰজন্মৰ মাজত সংঘাত, গাঁও আৰু নগৰৰ মানুহৰ মানসিকতাৰ বৈপৰীত্য, বৃদ্ধকালৰ অনুভৱ আদি চৰিত্ৰটোক অৱলম্বন কৰি উপস্থাপন কৰিছে।

দিলীপে দেউতাকক নগৰলৈ লৈ যাবলৈ ইচ্ছা কৰাত দেউতাকে নতুন পৰিৱেশৰ প্ৰতি অনীহা প্ৰকাশ কৰিছে। তেওঁৰ মতে বৃদ্ধকালৰ যন্ত্ৰণা সহ্য কৰিব পাৰিব কিন্তু তেওঁৰ পৰিচিত ঠাইখনৰ বিচ্ছেদ সহ্য কৰিব নোৱাৰে—"যিবোৰ মানুহ আৰু যিবোৰ পশু পক্ষী আৰু গছ লতাৰ মাজতে মই জীৱনটো কটালো, যিখন ঠাইৰ বেলি ওলোৱা আৰু মাৰ যোৱা চাই চাই মই অভ্যস্ত হ'লো — সেইখন ঠাইতে মোৰ চিনাকি দৃশ্যবোৰ চাই চাই আৰু চিনাকি মাত কথাবোৰ শুনি শুনিয়ে মই শেষবাৰলৈ চকু মুদিব খোজোঁ। কোনো অচিনাকি ঠাইলৈ গৈ মই পৃথিৱীৰ পৰা শেষ বিদায় ল'ব নোখোজোঁ। বাৰ্ধক্যৰ যন্ত্ৰণা সহ্য কৰিবলৈ মোৰ শক্তি আছে; কিন্তু জীৱনৰ এই গধূলি পৰত তিৰাশী বছৰৰ চিনাকি গাঁওখন আৰু ঘৰখনৰ পৰা বিচ্ছেদ সহ্য কৰিবলৈ মোৰ শক্তি নাই।"

(প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৫৯)

অনিচ্ছা স্বত্বেও দিলীপৰ লগত দেউতাক নগৰলৈ

আহে। নতুন ঠাইখনত মৰমেৰে আৱৰি ৰখা নাতি বোৱাৰীৰ মাজত তেওঁ শান্তি নাপাই। গাঁৱৰ মানুহখিনিৰ দৰে নিভাঁজ মৰম তেওঁলোকৰ মাজত বিচাৰি ফুৰে। তেওঁ বিচাৰে প্ৰাণৰ স্পৰ্শ আৰু বাৰ্ধক্যৰ শূণ্যতা দূৰ কৰিব পৰা সঙ্গ-সুধা।

নগৰৰ মানুহৰ মানসিকতাও দিলীপৰ দেউতাকৰ মাধ্যমেৰে উপন্যাসিকে উপস্থাপন কৰিছে। বাৰ্ধক্য সম্পৰ্কে নগৰৰ মানুহৰ চিন্তাধাৰাত তেওঁ শংকিত হয়। নগৰৰ আধুনিক মানুহৰ বাবে "বাৰ্ধক্য যেন আধুনিক মানুহৰ চকুত এটি অপৰাধ।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৮৮) এই ভাৱধাৰা সম্পৰ্কে জ্ঞাত হৈ দিলীপৰ দেউতাকৰ মনটোত এটি অপৰাধবোধে আমনি কৰিবলৈ ধৰিলে তেওঁ গাঁওখনলৈ, ঘৰখনলৈ ওলটি যাবলৈ হাহাকাৰ কৰে। নগৰৰ কৃত্ৰিমতাৰ পৰা আঁতৰি গাঁৱত আপোন জ্ঞান কৰা সকলৰ মৰম চেনেহৰ মাজত আৱদ্ধ হৈ থাকিব বিচাৰিছে।

দিলীপৰ দেউতাকৰ মানসিক অন্তঃদ্বন্দ্ব উপন্যাসখনত সুন্দৰকৈ প্ৰকাশ কৰিছে। তেওঁ ভাবে—"এজন মৃত্যু পথযাত্ৰী অতি বৃদ্ধ মানুহ যে তেওঁলোকৰ ওপৰত আমৰণ বোজা হ'বলৈ আহিছে সেই কথা জানি বাৰু বোৱাৰীয়েকে কি ভাবিছে? কথাষাৰ মনলৈ অহাৰ লগে লগেই এটা ভীষণ অস্বস্তিত দিলীপৰ দেউতাকৰ মনটো ধৰফৰাই উঠে।"

(প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৯১)

দিলীপৰ দেউতাকক পুতেকৰ ঘৰৰ সুখ সুবিধাই সন্তোষ দিব পৰা নাই। তেওঁৰ আপোন ঠাইখনৰ স্মৃতিয়ে আমনি কৰিছে তাঁলৈ যাবলৈ উদ্বাউল হৈছে — "পুতেকৰ ঘৰৰ বিপুল আৰামৰ জীৱনো কিবা এটা বিশেষ বস্তুৰ অভাৱত তেওঁৰ কাৰণে বিবৰ্ণ আৰু নিৰানন্দ হৈ উঠিছে।" — তেওঁ ছাটি ফুটি কৰি মৰিছে, তেওঁৰ ঘৰৰ আলিবাটৰ সিপাৰৰ এজাৰ গছকেইজোপা চাবলৈ, বোৱাল গছজোপাৰ ডালত বহি নাচি থকা ফেচুলুকা চৰাই কেইজনী চাবলৈ, গধূলিৰ পৰত গৰুৰ হেম্বেলনি শুনিবলৈ, তেওঁৰ মৰমৰ মেকুৰীজনীক আদৰ কৰিবলৈ, গাঁৱৰ মানুহৰ হুঁটা মাত-কথাবোৰ শুনিবলৈ, গধূলিৰ স্নিগ্ধ অন্ধকাৰত আকাশৰ তৰাবোৰৰ অনন্ত নীৰৱতাৰ ভাগ ল'বলৈ।"

(প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৯৩)

অৱশেষত নিজৰ আপোন ঘৰখনলৈ যাবলৈ আশা কৰি কৰিয়েই দিলীপৰ দেউতাকৰ মৃত্যু হয়। এনেদৰে দিলীপৰ দেউতাকৰ জৰিয়তে বৃদ্ধকালৰ স্বৰূপ চিত্ৰিত কৰিছে।

দিলীপৰ পত্নী সাবিত্ৰীয়ে উপন্যাসখনৰ কাহিনী বিকাশত সহায় কৰিছে। তেওঁক উপন্যাসখনৰ আৰম্ভণিতেই উপস্থাপন কৰিছে — দিলীপৰ দেউতাকক শুশ্ৰূষা কৰাত সাবিত্ৰীয়ে অৱহেলা কৰা নাই। দিলীপৰ কথাত তেওঁৰ উগ্ৰতা আৰু অসন্তুষ্টি প্ৰকাশ পাইছে — "তোমাৰ দেউতাৰাক সুখত ৰাখিবৰ কাৰণে মানুহে কৰিব পৰা কোনো কামেই আমি কৰিবলৈ বাকী ৰখা নাই - আজিকালিৰ কোনো চহৰীয়া শিক্ষিতা বোৱাৰীয়ে সিমানখিনি নকৰে।"

(প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৭৬)

কুনাল আৰু অদিতিৰ চৰিত্ৰৰ জৰিয়তে দিলীপৰ দেউতাকৰ চৰিত্ৰটোৰ বিকাশত সহায় কৰিছে আৰু নৱপ্ৰজন্মৰ বৃদ্ধলোকৰ প্ৰতি থকা মানসিকতাক উপস্থাপন কৰিছে — দিলীপৰ বন্ধু চন্দ্ৰৰ দেউতাকৰ বৃদ্ধ অৱস্থাৰ যন্ত্ৰণা দেখি কুনালে এনেদৰে ক'বলৈ সংকোচ কৰা নাই — 'মানুহ ইমান বয়সলৈকে জীয়াই থকা উচিত নহয়। নিজেও খুব কষ্ট পায়, আনকো দিয়ে। (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.২০)

কাৰ্তিক বসু চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তে বৃদ্ধকালৰ শাৰীৰিক যন্ত্ৰণাক সহজভাবে ল'ব নোৱাৰা এজন ব্যক্তিৰ মানসিকতা উপস্থাপন কৰিছে। তেওঁ বৃদ্ধ দেউতাকৰ শাৰীৰিক যন্ত্ৰণাই পীড়া কৰা অৱস্থা চাবলৈ সাহস কৰিব নোৱাৰে। তাৰ বাবে তেওঁ অপৰাধবোধ কৰে — "মই যে দেউতাক মৃত্যু শৰ্য্যাত চাবলৈ যোৱা নাছিলোঁ যাব পৰা নাছিলোঁ তাৰ কাৰণে এটা ভীষণ অপৰাধবোধ-পাপৰ্বোধ বুলি ক'লৈহে বোধহয় বেছি শুদ্ধ হ'ব — মোৰ মনত স্থায়ীভাবে বাঁহ বান্ধিবলৈ ধৰিছিল।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১১)

চন্দ্ৰ চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তেও বাৰ্ধক্যক সহজভাবে নলৈ অপৰাধবোধত ভোগা ব্যক্তিৰ স্বৰূপ চিত্ৰিত কৰিছে। তেওঁ বৃদ্ধকালৰ যন্ত্ৰণাত ভোগা দেউতাকৰ শুশ্ৰূষা কৰি মাজে মাজে বিৰক্ত হৈছে — "বৃদ্ধ দেউতাক শুশ্ৰূষা কৰিব লগা হোৱাৰ কাৰণে মাজে মাজে মই প্ৰচণ্ড অপৰাধবোধ অনুভৱ কৰোঁ। (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.২০)

কালিৰাম পণ্ডিত চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তে নিঃস্বাৰ্থ সমাজকৰ্মী হিচাপে চিত্ৰিত কৰিছে। যিয়ে আনৰ দুখৰ সমভাগী হৈ দেহেকেহে সহায় কৰাত ব্ৰতী হয়। এই

চৰিত্ৰটোৱে সমাজৰ এচাম মানুহক প্ৰতিনিধিত্ব কৰিছে যাৰ মাজত মৰম চেনেহৰ অভাৱ নাই। সকলোৱে মৰমত নিঃস্বাৰ্থভাবে বান্ধ খাই থাকিব পাৰে। যাৰ কাষলৈ বৃদ্ধকালৰ নিঃসঙ্গতাও আহিবলৈ সুবিধা নাপায়—তেওঁৰ মুখেৰে এইদৰে উপস্থাপন কৰিছে—"দুল; মই এতিয়া সত্তৰৰ দেওনাত ভৰি দিছোঁ। বুঢ়া হৈছোঁ কিন্তু বুঢ়া হ'বলৈ মোৰ ভয় লগা নাই। পো-বোৱাৰীৰ শ্ৰদ্ধা-ভক্তি আৰু সেৱা শুশ্ৰূষাই মোৰ জীৱনটো ভৰাই ৰাখিছে।" বলোৰাম ঠিকাদাৰ চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তে উচ্চ আকাংক্ষাত ব্যস্ত থকা সন্তানৰ পিতৃৰ বৃদ্ধকালৰ নিঃসঙ্গতাবোধৰ ছবি চিত্ৰিত কৰিছে — "অভাৱ বুলিবলৈ ঠিকাদাৰৰ একোৱেই নাই, তাতে পুতেকহঁতেও মাহে শ-শ টকা পঠাই থাকে। কিন্তু বুঢ়া বয়সত মানুহৰ যিটো বস্তুৰ আটাইতকৈ দৰকাৰ সেইটোৱেই তেওঁলোকৰ আটাইতকৈ ডাঙৰ অভাৱ। 'দেউতা কেনে আছে' বা 'দেউতা আজি কি খাবলৈ মন গৈছে' বুলি সুধিবলৈ কাষত এটা পুতেক নাই। গা-মূৰ বেয়া লাগিলে চেনেহৰ মাত এষাৰ দিবলৈ কাষত এজনী বোৱাৰী নাই, — "মুঠতে মৰিশালী যেন নিৰ্জন ঘৰখনত মৃত্যুৰ কাৰণে বাট চাই থকাৰ বাহিৰে তেওঁলোকৰ আৰু কৰিবলৈ আন একো কাম নাই।"

(প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৫৭)

মথুৰাপণ্ডিত চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তে বাৰ্ধক্যৰ পীড়াত স্মৃতি শক্তি হেৰুওৱা মানুহৰ জীৱনৰ বাস্তৱ ছবি চিত্ৰিত কৰিছে। ডাঃ শৰ্মা চৰিত্ৰটোৰ মাধ্যমেৰে উপস্থাপন কৰিছে মানুহ যে প্ৰকৃতিৰ দাস আৰু প্ৰকৃতিৰ বিধান যে মানুহে চলিবলৈ বাধ্য। "মানুহ যিমানেই বুদ্ধিমান নহওক কিয় - প্ৰকৃতিৰ চিৰন্তন আৰু ৰহস্যময় প্ৰজ্ঞাৰ তুলনাত মানুহৰ মেধা অতি তুচ্ছ আৰু নগণ্য। জীৱনৰ অৰ্থ আৰু মহত্ব উপলব্ধি কৰিবলৈ হ'লে আমি প্ৰকৃতিৰ বিধান মানি চলিব লাগিব।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১১৪)

'সূৰ্য' নামৰ চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তেও সমাজহিতৈষী ব্যক্তিৰ স্বৰূপ চিত্ৰিত কৰিছে। এই চৰিত্ৰসমূহৰ উপৰিও উপন্যাসৰ কাহিনীৰ বিকাশ লাভ কৰাত সহায় কৰিছে বৰবাইদেউ, টুনিৰাম, দিলীপৰ সম্বন্ধীয় ভতিজা, তৰবৰী আদি চৰিত্ৰসমূহে।

উপন্যাসখনৰ মূল বিষয় হিচাপে স্থান পাইছে মানুহৰ বাৰ্ধক্যই সৃষ্টি কৰা শাৰীৰিক মানসিক জটিলতা। এই বিষয়টোৱে প্ৰধান স্থান পোৱাৰ লগতে আন আন আনুষংগিক বিষয়েও উপন্যাসখনত স্থান পাইছে তলত সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ'ল —

বৃদ্ধকালৰ স্বৰূপ চিত্ৰণ ঃ

উপন্যাসখনত মানুহৰ বৃদ্ধকালৰ শাৰীৰিক মানসিক অৱস্থাৰ স্বৰূপ প্ৰতিফলিত কৰিছে। দিলীপৰ দেউতাকৰ বৃদ্ধকালক প্ৰধান্য দি আন কেইবাজনো ব্যক্তিৰ বৃদ্ধকালৰ অৱস্থা চিত্ৰিত কৰিছে।বৃদ্ধকালত শাৰীৰিক দুৰ্বলতাৰ বাবে নিজে একো কাম কৰিব নোৱাৰা অৱস্থাৰ সৃষ্টি হয়। তেওঁলোকে বিচাৰে মৰমৰ মাত এষাৰ আৰু আনৰ পৰা গুৰুত্ব। মানুহৰ সঙ্গত থাকি অতীত ৰোমন্থন কৰি আনন্দ লাভ কৰে। কিন্তু কৰ্মব্যস্ত মানুহৰ মাজত বৃদ্ধলোকক সময় দিবলৈ আহৰি নাথাকে। সেয়ে বৃদ্ধকালছোৱাত বহু ব্যক্তি নিঃসঙ্গতাই লগৰী হৈ পৰে। 'অস্তৰাগ' উপন্যাসখনত বৃদ্ধকালৰ এনে অৱস্থাকে ৰূপ দিছে দিলীপৰ দেউতাক, মথুৰাপণ্ডিত, কাৰ্তিক বসুৰ দেউতাক, চন্দ্ৰৰ দেউতাক আদি চৰিত্ৰৰ মাজেৰে।

বৃদ্ধকালৰ শাৰীৰিক অৱয়বৰ সলনিৰ বাস্তৱ চিত্ৰ উপস্থাপনত কৰিছে এনেদৰে—"দিলীপে আগবাঢ়ি গৈ দেউতাকৰ বিছনাৰ কাষত থিয় দিলেগৈ আৰু তেওঁৰ মুখৰ ফালে কিছু সময় চাই থাকিল। মুখৰ যিখিনি ঠাইত চকু থকাৰ কথা তাত দুটা ডাঙৰ গাঁত হৈছে। চকু দুটা ইমান দলৈ বহি গৈছে যে তাক যেন আৰু দেখাই নাযায়। গাল দুখনো বহি গৈ দুটা ডাঙৰ গাঁত হৈছে। সোলা মুখখনে সামান্য মেল খাই থাকি গোটেই মুখখনকে এনে এটা অসহায় দুৰ্বল ৰূপ দিছে —" (৫২ পৃ.)

বৃদ্ধ বয়সত শাৰীৰিক দুৰ্বলতাৰ বাবে মানুহে নিজে একো কাম কৰিব নোৱাৰা হয় শাৰীৰিক অসুস্থতাৰ এই চিত্ৰ এনেদৰে বৰ্ণনা কৰিছে — "এটা উৎকট দুৰ্গন্ধ আহি দিলীপৰ নাকত লাগিল। দিলীপে দুয়োখন হাতেৰে দুইপাত দুৱাৰ ঠেলা মাৰি দিয়াৰ লগে লগে দেখিলে—নিজৰ বিষ্ঠাত লেটি লৈ দেউতাক বিছনাত অৰ্ধচেতন অৱস্থাত পৰি আছে আৰু তেওঁ সম্পূৰ্ণ নগ্ন। (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১০৮)

মথুৰা পণ্ডিতৰ বৃদ্ধ অৱস্থাৰ বৰ্ণনা এনেদৰে দিছে — মানুহজনৰ দুই চকুৰ কোণত ফেচকুৰি জমা হৈছে ; গালত জমা হোৱা থপ্‌থপীয়া মেদবোৰ মৌ-বিছনীৰ দৰে ওলমি পৰিছে ; তলৰ ওঠখন ওলমি মুখখন সামান্য মেল খাই

পৰিছে আৰু মেলা মুখৰ ফাঁকেদি লেলাউটি ওলাই আহি দুই কোৰাৰিয়েদি বাগৰি পৰিছে। (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১০৫) বৃদ্ধকালৰ মানুহৰ মানসিকতাকো উপ্যনাসখনত চিত্ৰিত কৰিছে। বৃদ্ধবয়সত মানুহে নিজৰ চৌপাশৰ পৰিৱেশ সলনি হোৱাৰ আশা নকৰে। যিটো পৰিৱেশত অভ্যস্ত হৈ পৰে সেই পৰিৱেশটোৱেই তেওঁলোকৰ কাম্য। দিলীপৰ দেউতাকে আপোন ঘৰখন আৰু চৌপাশৰ পৰিৱেশ এৰি বৃদ্ধ বয়সত দিলীপৰ লগত নতুন পৰিৱেশলৈ যাবলৈ অমান্তি হৈছে—“উপজিবৰে পৰা আজি এই তিৰাশী বছৰ বয়সলৈকে যিখন ঠাইত যিবোৰ মানুহ আৰু যিবোৰ পশু-পক্ষী আৰু গছ লতাৰ মাজতে মই জীৱনটো কটালো যিখন ঠাইৰ বেলি ওলোৱা আৰু মাৰ যোৱা চাই চাই মই অভ্যস্ত হ'লো—সেইখন ঠাইতে মোৰ চিনাকি দৃশ্যবোৰ চাই চাই আৰু চিনাকি মাত কথাবোৰ শুনি শুনিয়ে মই শেষবাৰলৈ চকু মুদিব খোজোঁ। কোনো অচিনাকি ঠাইলৈ গৈ মই পৃথিৱীৰ পৰা শেষ বিদায় ল'ব নোখোজোঁ। বাৰ্ধক্যৰ যন্ত্ৰণা সহ্য কৰিবলৈ মোৰ শক্তি আছে; কিন্তু জীৱনৰ এই গধূলি পৰত তিৰাশী বছৰৰ চিনাকী গাঁওখন আৰু ঘৰখনৰ পৰা বিচ্ছেদ সহ্য কৰিবলৈ মোৰ শক্তি নাই।” (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৫৯) বৃদ্ধকালৰ অনুভৱ উপন্যাসখনত সুন্দৰ উপস্থাপন কৰিছে। বৃদ্ধ বয়সত নতুন পৰিৱেশত থকাৰ প্ৰতি অনিচ্ছাৰ কথা প্ৰকাশ কৰিছে। দিলীপৰ দেউতাকে নিজৰ স্মৃতি বিজড়িত ঠাইখনলৈ উভতি যাবলৈ ব্যাকুল হৈ পৰিছে—‘যিবোৰ সুখ আনন্দৰ লগত তেওঁ গোটেই জীৱন ধৰি অভ্যস্ত। শিক্ষিত পো-বোৱাৰী আৰু অতি মাৰ্জিত নাতি-নাতিনীৰ লগত জুখি মাখি ভদ্ৰ ভাষাৰে কথা পাতি পাতি তেওঁৰ প্ৰাণ কণ্ঠাগত হ'বৰ উপক্ৰম হৈছে—তেওঁৰ প্ৰাণটোৱে হাহাকাৰ কৰি মৰিছে, গাঁৱৰ সহজ-সৰল চহা মানুহবোৰে কথাই কথাই নানা দিহা-পটন্তৰ দি হুঁতা মাতেৰে কোৱা কথাবোৰ শুনিবলৈ—তেওঁৰ প্ৰাণ ব্যাকুল হৈ উঠিছে গাঁৱৰ গধূলিৰ কোমল নীৰৱতাৰ মধুৰ বাণী শুনিবলৈ। বিছনাত বহি শুই কেৱল কিতাপ পঢ়ি-পঢ়ি, কিংবা নিজৰ লগত কথা পাতি পাতি তেওঁৰ ভীষণ আমনি লাগিছে। তেওঁ এক বিপুল তৃষ্ণা অনুভৱ কৰিছে তেওঁৰ গাঁৱৰ ঘৰত পুৰা-গধূলি তেওঁৰ ওচৰলৈ অহা মানুহবোৰৰ লগত সুখ-দুখৰ কথা পাতি সিহঁতৰ তুচ্ছ দীনহীন জীৱনৰ হাঁহি কান্দোনৰ অংশ ল'বলৈ। (৯২ পৃ.)

বৃদ্ধলোকৰ নিঃসঙ্গতাৰ ছবিও উফন্যাসখনত সুন্দৰকৈ চিত্ৰিত কৰিছে। মানুহৰ উচ্চকাংখা আৰু নিজক প্ৰতিষ্ঠাৰ প্ৰচেষ্টাত সময়ৰ অভাৱত, আত্মীয় স্বজনৰ মাজত ব্যৱধান আহি পৰে। সন্তানে বৃদ্ধ পিতৃ-মাতৃক সময় দিব নোৱাৰাত সেইসকল লোকে নিঃসঙ্গতাৰ বলী হ'ব লগা হয়। এই নিঃসঙ্গতাৰ ছবিও উপন্যাসখনত চিত্ৰিত কৰিছে — বলোৰাম ঠিকাদাৰৰ ঘৰৰ পৰিৱেশৰ বৰ্ণনাৰ জৰিয়তে বৃদ্ধকালৰ নিঃসঙ্গতাবোধৰ চিত্ৰ ৰূপায়ণ কৰিছে — “একালৰ বৃন্দাবন একালত পৰে চন—ঠিক তেনেকুৱা। অভাৱ বুলিবলৈ ঠিকাদাৰৰ একোৱেই নাই, তাতে পুতেকহঁতেও মাহে শ, শ টকা পঠাই থাকে। কিন্তু বুঢ়া বয়সত মানুহৰ যিটো বস্তুৰ আটাইতকৈ দৰকাৰ সেইটোৱেই তেওঁলোকৰ আটাইতকৈ অভাৱ। ‘দেউতা কেনে আছে' বা দেউতা আজি কি খাবলৈ মন গৈছে' বুলি সুধিবলৈ কাষত এটা পুতেক নাই; গা-মূৰ বেয়া লাগিলে চেনেহৰ মাত এষাৰ দিবলৈ কাষত এজনী বোৱাৰী নাই; তেওঁলোকৰ শেষৰ দিনকেইটা সাৰ্থক কৰি তুলিবলৈ নাতি-নাতিনীৰ হাঁহি-কান্দোন আৰু নাচন বাগনৰ শব্দ নাই, মুঠতে মৰিশালি যেন নিৰ্জন ঘৰখনত মৃত্যুৰ কাৰণে বাট চাই থকাৰ বাহিৰে তেওঁলোকৰ আৰু কৰিবলৈ আন একো কাম নাই।” (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৫৭)

বৃদ্ধলোকৰ প্ৰতি নৱপ্ৰজন্মৰ চিন্তাধাৰাৰ প্ৰতিফলন আৰু প্ৰজন্মৰ সংঘাত উপন্যাসখনৰ মাজেৰে নতুন আৰু পুৰণি প্ৰজন্মৰ মনস্তত্বৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে। নৱপ্ৰজন্মৰ চিন্তাধাৰাৰ লগতে বৃদ্ধসকলৰ চিন্তাধাৰাৰ অমিলৰ বাবেই অন্তঃদ্বন্দ্বৰ সন্মুখীন হয়। দিলীপৰ দেউতাকৰ জৰিয়তে উপন্যাসখনত নতুন আৰু পুৰণি প্ৰজন্মৰ মাজত সংঘাত চিত্ৰিত কৰিছে। নৱপ্ৰজন্মৰ দৃষ্টিত বৃদ্ধলোকসকলৰ প্ৰতি থকা ধাৰণা এনেদৰে চিত্ৰিত কৰিছে — চন্দ্ৰৰ দেউতাকৰ বৃদ্ধকালৰ শাৰীৰিক অসুস্থতা দেখিব কুণালে এনেদৰে ক'বলৈ সংকোচ কৰা নাই— “বুঢ়াজনৰ পৰা চন্দ্ৰ খুৱাহঁতৰ গোটেই মানুহ ঘৰৰে বৰ কষ্ট হৈছে। কেচুঁৱাৰ নিচিনাকৈ গোটেই দিনটো তেওঁক নানাৰকমৰ সেৱা-শুশ্ৰূষা কৰি থাকিব লগা হয়। বুঢ়াজন মৰিলেই যেন মানুহঘৰ ৰক্ষা পৰে। তেওঁলোকে যদি সঁচাকৈয়ে তেনেকৈ ভাবিছে তেন্তে তাৰ কাৰণে তেওঁলোকক অকনো দোষ দিব নোৱাৰি। মানুহ ইমান বুঢ়া বয়সলৈকে জীয়াই থকা উচিত নহয়। নিজেও খুব কষ্ট পায়, আনকো কষ্ট দিয়ে।” (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.২০)

দিলীপৰ দেউতাকৰ চিন্তাধাৰা দেখি কুনালে কৈছে— "ককাদেউতাৰ আচল প্ৰব্লেম হৈছে জেনেৰেশ্যন গেপ।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৭৭)

দিলীপৰ দেউতাকৰ জৰিয়তেও প্ৰজন্মৰ সংঘাত প্ৰতিফলিত কৰিছে। দিলীপৰ দেউতাকৰ মতে নৱ প্ৰজন্মই জানিব লগা কথা হ'ল পুৰণি সাহিত্য, ঐতিহ্যৰ কথা। কিন্তু নিজৰ সভ্যতা সংস্কৃতিৰ প্ৰতি অজ্ঞ নৱপ্ৰজন্মক দেখি দিলীপৰ দেউতাক আচৰিত হয়—তেওঁ সেয়ে কুনালক কৈছে — "তোমালোকৰ লগত কথা পাতি এই কেইদিনতে মই ভালকৈ বুজি পাইছো যে তোমালোকে ইংলণ্ডৰ বিষয়ে ইংৰাজ ল'ৰা-ছোৱালীতকৈ বা ৰাছিয়াৰ বিষয়ে ৰাছিয়ান ল'ৰা-ছোৱালীতকৈ বেছি কথা জানা ; কিন্তু নিজৰ দেশৰ বিষয়ে একো কথাই নাজানো। সেই কাৰণেহে মই মাজে মাজে তোমোলোকক কওঁ যে তোমালোকে যি ভাষাত কথা কোৱা সেই ভাষা মই বুজিবলৈ টান পাওঁ। (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৮০)

নৱ প্ৰজন্মৰ পুৰণি প্ৰজন্মৰ প্ৰতি আত্মীয়তাৰ উপলব্ধি আৰু প্ৰাণৰ পৰশ কম। এই কথা এনেদৰে চিত্ৰিত কৰিছে — "সিহঁতৰ চকুত দিলীপৰ দেউতাক পৃথিৱীৰ যিকোনো এজন বুঢ়া মানুহ মাত্ৰ। তাৰ বেছি একো নহয়। দিলীপৰ নিৰ্দেশ মানি সিহঁতে ককাদেউতাকক সঙ্গ দিবলৈকো চেষ্টা কৰিব। কিন্তু এই গোটেইবোৰৰ মাজত অনুপস্থিত থাকিব সেই আচল বস্তুটো—প্ৰাণৰ পৰশ—যিটো বস্তুৰেই এতিয়া দিলীপৰ দেউতাকৰ প্ৰয়োজন আটাইতকৈ বেছি।"

(প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৬২)

গ্ৰাম্য জীৱন ধাৰাৰ চিত্ৰণ ঃ

উপন্যাসখনৰ মাজেৰে গ্ৰাম্য সমাজৰ লগতে প্ৰকৃতিৰ নৈসৰ্গিক চিত্ৰও চিত্ৰিত কৰিছে—গাঁৱৰ মানুহৰ সহজ-সৰল জীৱন যাত্ৰা। য'ত দেখা যায় আনৰ দুখ-কষ্টৰ সমভাগী হোৱা লোক। তেনে লোকৰ প্ৰতিনিধি হিচাপে চিত্ৰিত কৰিছে কালীৰাম পণ্ডিত। দিলীপৰ দেউতাকক তেওঁ নিঃস্বাৰ্থভাবে দিনে ৰাতিয়ে শুশ্ৰূষা কৰিছে। দিলীপৰ ভতিজা ল'ৰাটোৰে কৈছে—"পণ্ডিতে ককাদেউতাৰ ভৰি-পঠানত কঠ এখনত বহি কলমটিয়াব লাগিছে। ককাদেউতাক পৰ দি গোটেই ৰাতিটো তেওঁ উজাগৰে থাকে, সেই কাৰণে দিনৰ ভাগত তেওঁ এনেকৈয়ে টোপনিখিনি পূৰাই লয়।" (২৩ পৃ.)

গ্ৰামীণ জীৱনৰ চিকিৎসা ব্যৱস্থাৰ ছবিখনো উপন্যাসখনত উপস্থাপন কৰিছে—"নামত যদিও এখন চৰকাৰী হাস্পতাল আছিল, কিন্তু বছৰটোৰ বাৰ মাহৰ ভিতৰত দহমাহেই তাত কোনো ডাক্তৰ নাছিল— গাঁৱলীয়া মানুহে আধুনিক ডাক্তৰী চিকিৎসা ল'ব নুখুজিছিল। কাৰোবাৰ কিবা টান বেমাৰ হ'লেই মানুহে প্ৰথমে ঢাপলি মেলিছিল বামুণ-গণক কিংবা মঙলতীৰ ওচৰলৈ। সকামে-নিকামে ফল দিয়া নেদেখিলেহে মানুহে গাঁৱলীয়া বেজ জ্ঞানীৰ ওচৰ চাপিছিল। তেওঁলোকে কেৱল ভাগ্যক ধিয়াই ৰোগীৰ বিছনাৰ কাষত বহি পাল পাতি পাতি পৰ দিছিল।"

(প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৩৭)

উপন্যাসখনত গাঁৱৰ প্ৰাকৃতিক পৰিৱেশৰ বৰ্ণনা এনেদৰে চিত্ৰিত কৰিছিল— "বেলি ডুব যোৱাৰ লগে লগেই চাৰিওফালৰ হাবি-বননিৰ মাজৰ পৰা অসংখ্য বিচিত্ৰ কীট-পতঙ্গই সমস্বৰে চিঞৰিবলৈ আৰম্ভ কৰি ৰাতিৰ পৃথিৱীখনৰ ওপৰত সিহঁতৰ আধিপত্য ঘোষণা কৰে ; বাৰীৰ পিছফালৰ বাঁহনিত শিয়ালবোৰে একেলগে হোৱা দি উঠে। শেষবাৰলৈ পথাৰ এৰাৰ আগতে গাইগৰুবোৰে ডাঙৰ ডাঙৰকৈ হেম্বেলিয়াই পোৱালীবোৰক মাতে; নামঘৰত কোনোবাই দবা কোবাই মানুহবোৰকো যেন আন এখন জগতলৈ মাতে। আকাশত এটা দুটাকৈ তৰা ওলাবলৈ ধৰে ; গোটেই গাঁওখনৰ ঘৰে ঘৰে কৰ্মশ্ৰান্ত মানুহবোৰৰ ঘৰৰ পিৰালিত বা চোতালত বহি কৃতজ্ঞচিত্তে গধূলিৰ এই শান্তিখিনি উপভোগ কৰে।"

(প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৮৩)

গ্ৰাম্য সমাজৰ কৰ্মময় দৈনন্দিন জীৱনৰ ছবিও সুন্দৰভাবে উপস্থাপন কৰিছে। দিলীপে নগৰলৈ উভতি যোৱাৰ আগদিনা গাঁওখন চাবলৈ গৈ দেখা দৃশ্যবোৰৰ বৰ্ণনাৰ মাজেৰে গ্ৰাম্য সমাজৰ কৰ্মময় জীৱনৰ ছবি এনেদৰে চিত্ৰিত কৰিছে— "ফাগুণ মাহৰ পুৱাৰ উজ্বল সোণালী ৰ'দত গোটেই গাঁওখন জলমল কৰিছে। কাৰোবাৰ গোহালিত ঘৰৰ জীয়ৰী বা বোৱাৰীয়ে গাখীৰ খীৰাইছে। ছয়-সাত বছৰীয়া ছোৱালীকেইজনী মানে বোকোচাত কেঁচুৱা বান্ধি এঘৰৰ পদূলিত থিয় হৈ কিবা এটা গহীন বিধৰ আলোচনাত মগ্ন হৈ পৰিছে। বাটৰ কাষৰ ৰাজহুৱা পকা নাদত কেইবাগৰাকী তিৰোতাই কেহেলি-কেন্দেলি কৰি কাপোৰ ধুইছে। এঘৰৰ বাৰীত বোৱাৰী এজনীয়ে এড়ি পলুক খুৱাবৰ কাৰণে এৰাপাত বুটলিছে। আন এঘৰত

আকৌ ঘৰৰ বুঢ়ীগৰাকীয়ে হাতত খৰাহি এটা লৈ বনশাক বুটলি ফুৰিছে। বাটৰ সিপাৰৰ খাৰৈত জাবৰ পেলাবলৈ আহি বোৱাৰী এজনীয়ে দিলীপক দেখি ওৰণিখন টানি ঠাইতে বহি পৰিছে। দুঘৰমানত বোৱাৰী-জীয়ৰী মিলি বিহুৰ গামোচাৰ কাৰণে তাঁত বাটি কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিছে।" (৬৮ পৃ.)

গ্ৰাম্য জীৱন ধাৰাত মানুহৰ মাজত থকা নিভাঁজ প্ৰেমৰ ছবিও উপন্যাসখনত প্ৰকাশ পাইছে। যি প্ৰেমৰ সুখ ধন ঐশ্বৰ্যইও দিব নোৱাৰে— দিলীপৰ দেউতাকে অন্ধকাৰ বাৰাণ্ডাখনত অক'লে অক'লে বহু সময় বহি থকা স্বত্বেও দিলীপৰ পত্নী বা পুত্ৰ কোনেও তেওঁক এবাৰো ভিতৰলৈ মাতিবলৈ প্ৰয়োজনবোধ নকৰা দেখি দিলীপৰ দেউতাকৰ বাৰে বাৰে নিজৰ ঘৰখনলৈ গাঁওখনলৈ মনত পৰে য'ত পোৱা যায় প্ৰাণৰ পৰশ সঙ্গ সুখ— "তেওঁৰ অভিমান হৈছিল এই বুলি ভাবি যে আবেলিৰে পৰা সাঁজ লাগি ভগাৰ পৰলৈকে তেওঁ শিলৰ মূৰ্ত্তিৰ দৰে একেথৰে অন্ধকাৰ বাৰান্দাত বহি থকা দেখিও কোনেও তেওঁক এবাৰো ভিতৰলৈ মাতিবৰ প্ৰয়োজন অনুভৱ কৰা নাই। বাৰে বাৰে তেওঁৰ নিজৰ ঘৰখনলৈ মনত পৰিছিল। লগুৱা-লিগিৰাবোৰৰ লগত তেওঁৰ তেজৰ সম্পৰ্ক নহ'লে কি হ'ব, কিন্তু প্ৰাণৰ সম্পৰ্ক ইমান গভীৰ হৈ উঠিছিল যে তেওঁক বাহিৰত এনেকৈ অকলশৰে বহি থকা দেখিলে কানুৰ মাকে ইমানপৰে এশবাৰমান তেওঁক ভিতৰলৈ যাবলৈ বুলি ধমক দিলেহেঁতেন বা ৰবিলালে ওচৰতে বহি লৈ লাগ বান্ধ নোহোৱা বাৰে ভচহু কথা কৈ তেওঁক সঙ্গ দিবলৈ চেষ্টা কৰিলেহেঁতেন। কিন্তু নিজৰ পো-বোৱাৰীৰ ঘৰলৈ আহি তেওঁৰ এনেহে অৱস্থা হৈছে যে তেওঁ আছে নে নাই কাৰো খবৰেই নাই। ঘড়ীৰ কাটা ধৰি ইয়াত তেওঁ গা-ধোৱাৰ সময়ত গৰম পানী পায়, খোৱাৰ সময়ত খাবলৈ পায়, বেমাৰত শয্যাশায়ী হৈ থাকিলে নিপুণ শুশ্ৰূষাও পায় অৰ্থাৎ হাস্পাতালৰ পেয়িং ওৱাৰ্ডত কিংবা এটা ব্যয়বহুল নাছিংহোমত পাব পৰা সকলো সুবিধা আৰু পৰিচৰ্যাই ইয়াত পোৱা যায়। পোৱা নাযায় কেৱল প্ৰাণৰ স্পৰ্শ, বাৰ্ধক্যৰ শূণ্যতা দূৰ কৰিব পৰা সঙ্গ-সুধা। (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৮১)

গাঁৱৰ সমাজত মানুহৰ মাজত আত্মীয়তাৰ সম্পৰ্ক বেছি, সকলোৱে সকলোৰে সুখ-দুখৰ সমভাগী। বৃদ্ধাৱস্থাৰ নিঃসঙ্গতাই গ্ৰাম্য সমাজত পীড়া কৰিব নোৱাৰে — কালীৰাম পণ্ডিতৰ বক্তব্যৰে এই চিত্ৰ ফুটি উঠিছে— "মোৰ যেতিয়া মৰিবৰ সময় আহিব, তেতিয়া মই পো-বোৱাৰী, নাতি-নাতিনী আৰু গাঁৱৰ মানুহৰ মৰম-চেনেহৰ মাজত শেষ বাৰলৈ চকু মুদিম। মোৰ পিতা, মোৰ ককা, মোৰ আজোককা, মোৰ আজোককাৰ আজোককা পুৰুষৰ পিছত পুৰুষ ধৰি আমাৰ গাঁৱলীয়া খেতিয়ক সমাজৰ সকলোৱেই এনেকৈয়ে জীৱন কটাইছিল আৰু এনেকৈয়ে মৰিছিল।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৫৪ পৃ.)

সমাজৰ পৰিবৰ্ত্তিত ৰূপৰ চিত্ৰণ ঃ

সময়ৰ লগে লগে সমাজ এখনলৈও পৰিবৰ্ত্তন আহে। সেই পৰিবৰ্ত্তিত ৰূপৰ ছবিও উপন্যাসখনৰ মাজেৰে চিত্ৰিত কৰিছে। যিমানেই জনগণ শিক্ষিত হয় উচ্চাকাংক্ষা বাঢ়ি যায়। ফলত আত্মনিৰ্ভৰশীল হ'বলৈ কৰা প্ৰচেষ্টাত ব্ৰতী হওঁতে আত্মীয় স্বজনৰ লগত দূৰত্ব কমি যায়। গ্ৰাম্য জীৱনৰ পৰা আঁতৰি গৈ নগৰত প্ৰতিষ্ঠিত হোৱাৰ হেপাহেও সমাজখনলৈ পৰিবৰ্তন আনে। এই পৰিবৰ্তনৰ ফলত মানুহৰ মাজত সম্পৰ্কৰ দূৰত্ব বাঢ়ি যায়। আন্তৰিক সম্বন্ধৰ অভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। এই আন্তৰিক সম্বন্ধৰ সংশয়ৰ ছবি কালিৰাম পণ্ডিতৰ মুখেৰে উপন্যাসিকে এনেদৰে উপস্থাপন কৰিছে— মোৰ যেতিয়া মৰিবৰ সময় আহিব, তেতিয়া মই পো-বোৱাৰী নাতি-নাতিনী আৰু গাঁৱৰ মানুহৰ মৰমচেনেহৰ মাজত শেষ বাৰলৈ চকু মুদিম। কিন্তু মোৰ ল'ৰাহঁতে ঠিক তেনেকৈয়ে জীৱনটো শেষ কৰিবলৈ পাবনে নাপাব সেই কথা মই আৰু আজি খাটাংকৈ নাজানো।"

(প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৫৪)

নগৰমুখী যাত্ৰাৰ প্ৰতিচ্ছবি আৰু জনমানসৰ চিন্তাধাৰাৰ অৱলোকন উপন্যাসখনত উপস্থাপিত কৰিছে। গাঁৱৰ জনগণে উচ্চ শিক্ষা লাভ কৰি নগৰত সংস্থাপিত হোৱাৰ প্ৰয়াস কৰে। যিসকলে সেই প্ৰচেষ্টাত সফল হ'ব নোৱাৰে তেওঁলোক জীৱনক লৈ সন্তুষ্ট নহয়। জনমানসৰ এই পৰিবৰ্ত্তিত চিন্তাধাৰা এনেদৰে উপস্থাপন কৰিছে— "আজিকালি গাঁৱৰো বেছিভাগ মানুহৰ ল'ৰাই উচ্চশিক্ষা লাভ কৰি চহৰবাসী হৈছে ; কোনোবা হয়তো কেৰাণী-মহৰী, কোনোবা হাকিম-মুনচুপ, ডাক্তৰ-উকীল ইত্যাদি। যি সেইবোৰ একো হ'ব পৰা নাই সিও হয়তো পান দোকান এখন দিয়েই বা কাৰোবাৰ ঘৰত লগুৱা হৈয়েই চহৰবাসী হৈছে ; তথাপি কাৰো গাঁৱত থাকিবলৈ মন নাই। টিকা

চেলাই পথাৰত হাল বাবলৈ আৰু কোনেও নিবিচাৰে। সকলোৱে গাঁৱৰ পৰা চহৰলৈ পলাব খোজে। যিবোৰ নিৰুপায় হৈ গাঁৱতে থাকিবলৈ বাধ্য হৈছে। সিহঁতৰ মনত অকণো সুখ নাই, আনন্দ নাই। সিহঁতৰ নিজৰ মনতো সুখ নাই, মাক-বাপেকৰ মনতো সুখ নাই। জীৱনৰ প্ৰতিযোগিতাত হাৰি যোৱাৰ অপমানত সিহঁতে সদায় তলমূৰ কৈ থাকে। সিহঁতৰ যিবোৰ ভাই-ককাই বা বন্ধু-বান্ধৱে ধোবাই ধোৱা কাপোৰ পিন্ধি বছৰত বিহুৱে সংক্ৰান্তিয়ে এবাৰ বা দুবাৰ গাঁৱৰ ঘৰলৈ আহে, সিহঁতক দেখি গাঁৱলীয়া কেইটা ঈষাত জ্বলি পুৰি মৰে।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৫৫)

গ্ৰাম্যজীৱন আৰু নগৰীয়া জীৱনৰ সম্পৰ্কৰ প্ৰতিচ্ছবি উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত কৰিছে। দিলীপৰ দেউতাকে অনুভৱ কৰে নগৰত যেন গাঁৱৰ মানুহৰ দৰে আত্মীয়তাৰ অভাৱ। নিঃসঙ্গতাই আমনি কৰে—"পুতেকৰ ঘৰত থাকি তেওঁৰ অকণো ভাল লগা নাই। নিজৰ পো-বোৱাৰী আৰু নাতি-নাতিনীৰ লগত থাকিও তেওঁ এনে এক বিপুল শূণ্যতা আৰু নিঃসঙ্গতা অনুভৱ কৰিছে—যি ধৰণৰ শূণ্যতা আৰু নিঃসঙ্গতা তেওঁ গাঁৱৰ নিজৰ ঘৰত লগুৱা-লিগিৰীবোৰৰ মাজত থাকিও অনুভৱ কৰা নাছিল। বোৱাৰীয়েকে ঘড়ীৰ কাটা চাই নিৰ্দ্দিষ্ট সময়ত চাহ-ভাতৰ যোগান ধৰে আৰু দিনটোত দুবাৰকৈ নিৰ্দ্দিষ্ট সময়ত তেওঁৰ সুবিধা-অসুবিধাৰ খবৰ লয় ; কুণাল আৰু অদিতিয়ে সদায় আবেলি পৰত খন্তেক সময় তেওঁৰ ওচৰত বহেহি আৰু কথা পাতিবলৈ অপ্ৰাণ চেষ্টা কৰে। সিহঁতৰ কথা বাৰ্তা আৰু আচৰণ ভাবিব নোৱৰা ধৰণে মাৰ্জ্জিত। গাঁৱলীয়া মানুহৰ অনভ্যস্ত কাণত অভিনয় যেনেই লাগি যায়। — সিহঁতৰ সেই তুহিন-শীতল ভদ্ৰতাৰ অন্তৰালত ঔচিত্যবোধ যিমান প্ৰবল তাৰ তুলনাত মমত্ববোধ প্ৰায় শূণ্য বুলিয়ে ক'ব পাৰি।"

(প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৮৭)

"বাৰ্ধক্য যেন আধুনিক মানুহৰ চকুত এটা অপৰাধ।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৮৫) নগৰৰ মানুহে ঘৰত বুঢ়া শাহু-শহুৰ থাকিলেও ছোৱালী বিয়া নিদিয়ে— এনে আত্মীয়তাৰ অভাৱ থকা নগৰীয়া জীৱনৰ চিত্ৰ এনেদৰে প্ৰকাশ কৰিছে—"আজিকালিৰ আধুনিকা ছোৱালীয়ে শাহু-শহুৰ নোহোৱা নিজঞ্জাল ঘৰ এখনহে পছন্দ কৰে। সেই কাৰণে ছোৱালীৰ মাক-বাপেকেও পৰাপক্ষত বুঢ়া মাক-বাপেক নথকা বা থাকিলেও মাক-বাপেকৰ পৰা আঁতৰি বেলেগে ঘৰ পাতি থকা ল'ৰালৈহে ছোৱালী দিবলৈ ইচ্ছা কৰে।"

(*প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ*, পৃ.৯০)

কিন্তু গ্ৰাম্য সমাজত আত্মীয়তাৰ পৰশত সকলোৱে সকলোৰে সুখ-দুখৰ সমভাগী। বৃদ্ধকালৰ নিঃসঙ্গতাই গ্ৰাম্য পৰিৱেশত থকা ব্যক্তিক স্পৰ্শই কৰিব নোৱাৰে। কালীৰাম পণ্ডিতে গাঁৱত থাকি সেই নিঃসঙ্গতা উপলব্ধি কৰিব লগা হোৱা নাই। তেওঁ অকলশৰীয়া অনুভৱ কৰিবলৈ সুবিধাই নাপায়। পো-বোৱাৰী নাতি-নাতিনীৰ মৰমৰ আবেশত তেওঁ ধন্য। সেয়ে পণ্ডিতে কৈছে—"দুল, মই এতিয়া সত্তৰৰ দেওনাত ভৰি দিছোঁ। বুঢ়া হৈছোঁ। কিন্তু বুঢ়া হ'বলৈ মোৰ ভয় লগা নাই। পো-বোৱাৰীৰ শ্ৰদ্ধাভক্তি আৰু সেৱা শুশ্ৰূষাই মোৰ জীৱনটো ভৰাই ৰাখিছে। পুৱা শৰ্য্যা ত্যাগ কৰাৰ লগে লগে বোৱাৰীয়ে বা গাভৰু নাতিনীজনীয়ে মুখ ধুবলৈ লোটা-গামোচা যতনাই দিয়ে—জাৰৰ দিনত চোতালত বহি যেতিয়া মিঠা ৰ'দ গাত লওঁ, নাতি-নাতিনীবোৰে মোৰ গায়ে-মূৰে বান্দৰ বগোৱা দিয়ে। গা ধুই নাম প্ৰসঙ্গ কৰি যেতিয়া জলপান খাবলৈ বহো, নাতি-নাতিনীবোৰে মোৰ চাৰিওফালে পৰুৱাৰ দৰে লমা বান্ধে। — জাৰৰ দিনত জুহালৰ গুৰিত বহি নাতি-নাতিনীবোৰক ৰামায়ণ মহাভাৰতৰ কাহিনী কৈ শুনাওঁ বা সিহঁতৰ জেউৰ ভাঙোঁ। দিনটো কেনেকৈ পাৰ হৈ যায় মই ক'বই নোৱাৰোঁ। — বুঢ়া হৈ অহাৰ পৰা লগে দেখিছো যে গোটেই গাঁওখনৰ মানুহেই মোৰ নিজৰ ল'ৰা-ছোৱালীৰ নিচিনা হৈ পৰিছে।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ,৫৩-৫৪ পৃ.)

মানুহৰ মনৰ অন্তঃদ্বন্দ্বৰ বাস্তৱ প্ৰতিফলন ঃ

উপন্যাসখনত দিলীপ চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তে মানুহৰ মনত চলি থকা অন্তঃদ্বন্দ্বৰ সুন্দৰ ভাৱে প্ৰতিফলিত কৰিছে। দিলীপে দেউতাকৰ অসুখ বুলি লিখা টেলিগ্ৰামখন পাই এফালে স্বস্তি আৰু আনফালে হতাশ অনুভৱ কৰিছে। স্বস্তি অনুভৱ কৰিছিল দেউতাক এতিয়াও জীয়াই আছে বুলি আৰু হতাশ হৈছিল শৰ্যাগত যন্ত্ৰণাই পীড়া কৰা দেউতাকৰ মৃত্যু নোহোৱা বাবে। দিলীপে আশা কৰিছিল মৃত্যুৰ দ্বাৰা দেউতাকৰ যন্ত্ৰণাময় জীৱনৰ অৱসান ঘটক—"মৃত্যুৱে যেন ইমানতে বাৰ্ধক্যৰ এই চৰম যন্ত্ৰণা আৰু অৱমাননাৰ পৰা দেউতাকক ৰক্ষা কৰে। অতি সোনকালেই এখন টেলিগ্ৰামে যেন তেওঁলৈ দেউতাকৰ মৃত্যুৰ বাতৰি কঢ়িয়াই আনে।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৪-৫) দিলীপে

দেউতাকৰ যন্ত্ৰণাময় বাৰ্ধক্য চাব বিচৰা নাই। "বাৰ্ধক্যৰ হাতত জীৱনৰ কৰুণ আৰু অপমানজনক পৰাজয়ৰ দৃশ্য চাবলৈ মোৰ ইচ্ছা নাই, সাহস নাই, মানসিক প্ৰস্তুতি নাই।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৭) সেয়ে দেউতাকৰ শাৰীৰিক কষ্টৰ অৱসান ঘটাব বাবে মৃত্যু কামনা কৰিছে। এনেদৰে ভাবি দিলীপে অপৰাধ কৰিছে বুলি ভাবে— "এটা গোপন অপৰাধবোধে দিলীপক দংশন কৰিবলৈ ধৰিলে।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১৪) দিলীপৰ দেউতাকৰ জৰিয়তেও মানুহৰ মাজত চলি থকা অন্তঃদ্বন্দ্ব উপস্থাপন কৰিছে। দিলীপৰ দেউতাকে পুত্ৰ বোৱাৰী নাতিৰ মাজত থাকিও নিজকে অকলশৰীয়া অনুভৱ কৰিছে। "পুতেকৰ ঘৰৰ বিপুল আৰামৰ জীৱনো কিবা এটা বিশেষ বস্তুৰ অভাৱত তেওঁৰ কাৰণে বিবৰ্ণ আৰু নিৰানন্দ হৈ উঠিছে। — পৰম কামনাৰ বস্তুবোৰ হ'ল গাঁৱলীয়া প্ৰকৃতিৰ সেই তুচ্ছ নগণ্য দৃশ্যবোৰ আৰু গাঁৱৰ সহজ-সৰল মানুহবোৰ যিবোৰৰ লগত জীৱনৰ সুদীৰ্ঘ তিৰাশীটা বছৰ ধৰি তেওঁৰ প্ৰাণৰ নিবিড় সম্পৰ্ক গঢ়ি উঠিছিল। সেইদিনা প্ৰায় গোটেই ৰাতি তেওঁৰ টোপনি নাহিল। জীৱনৰ গধূলি পৰত পৃথিৱীৰ পৰা চিৰবিদায়ৰ মুহূৰ্ত্তত, সকলো মানুহেই কি মোৰ নিচিনাকৈ অনুভৱ কৰে?" — এনেদৰে দিলীপৰ দেউতাকৰ মনৰ মাজত চলি থকা দ্বন্দ্ব উপস্থাপন কৰিছে।

প্ৰকৃতিবাদী ভাবধাৰা প্ৰকাশ ঃ

অস্তৰাগ উপন্যাসখনত প্ৰকৃতিবাদী ভাবধাৰা প্ৰকাশ পাইছে। উপন্যাসখনৰ প্ৰধান বিষয়বস্তু মানুহৰ বৃদ্ধকাল। বৃদ্ধকালৰ শাৰীৰিক, মানসিক যন্ত্ৰণা প্ৰধান বিষয় হিচাপে স্থান পাইছে। উপন্যাসখনৰ প্ৰধান চৰিত্ৰ দিলীপে দেউতাকৰ বৃদ্ধ অৱস্থাক সহজভাৱে ল'ব পৰা নাছিল। দেউতাকৰ এই যন্ত্ৰণাৰ পৰা মুক্তি পাবৰ বাবে তেওঁ দেউতাকৰ মৃত্যু কামনা কৰিছিল। দিলীপৰ মনৰ এই অন্তঃদ্বন্দ্ব, সংশয়ৰ পৰা উপশম পাবৰ বাবে তেওঁৰ বন্ধু উকীল কাৰ্তিক বসু, চন্দ্ৰ আৰু ডাঃ শৰ্মাৰ লগত হোৱা মত বিনিময়ৰ জৰিয়তে তেওঁ শেষত বুজি পায় মানুহৰ জীৱন পৰিক্ৰমাৰ স্বৰূপ। দিলীপৰ মনত উদয় হোৱা সেই দৃষ্টিভংগীৰ মাজেৰেই উপন্যাসখনত প্ৰকৃতিবাদী দৃষ্টিভংগীৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে।

প্ৰকৃতিবাদৰ জন্ম হৈছিল ফ্ৰান্সত। "অষ্টাদশ শতিকাৰ ফৰাচী এমিলজোলা আছিল এই মতবাদৰ প্ৰভাৱশালী প্ৰবক্তা আৰু এই মতবাদ সাহিত্যত প্ৰয়োগ কৰোতা।" *(২৩ পৃ. সাহিত্যবাদ বৈচিত্ৰ)* এমিলজোলাই তেওঁৰ উপন্যাসত প্ৰকৃতিবাদী লক্ষণ প্ৰকাশ কৰে। "প্ৰকৃতিবাদে বিশ্বাস কৰে যে প্ৰকৃতি জীৱন তথা বিশ্বজগত যিদৰে নিজস্ব নিয়মৰ দ্বাৰা নিয়ন্ত্ৰিত মানুহৰ জীৱনো তাৰ সামাজিক পটভূমি, পৰিৱেশ আৰু অৱস্থাৰ দ্বাৰা নিয়ন্ত্ৰিত।" *(২৩ পৃ. সাহিত্যবাদ বৈচিত্ৰ)* "মানুহৰ উৎপত্তি প্ৰকৃতিৰ পৰা আৰু প্ৰকৃতিয়েই তেওঁৰ সকলো নিৰ্ধাৰণ কৰে; তেৰো প্ৰকৃতিৰেই এটা অংশ বা অংগ— এনে বিশ্বাসতেই সাহিত্যৰ এই আন্দোলনক জোলাই প্ৰকৃতিক আখ্যা দিছিল।" *(২৯ পৃ. উপন্যাস আৰু অসমীয়া উপন্যাস)* "সত্যক হুবহু ৰূপত প্ৰতিফলিত কৰা প্ৰকৃতিবাদীসকলৰেই ধৰ্ম" *(১৩৭ পৃ. উপন্যাস আৰু অসমীয়া উপন্যাস)*

'অস্তৰাগ' উপন্যাসখনত প্ৰকৃতিবাদৰ এই বৈশিষ্ট্যসমূহ প্ৰতিফলিত হৈছে। উপন্যাসখনত দিলীপৰ দেউতাকৰ বাৰ্ধক্যৰ শাৰীৰিক অক্ষমতাক এনেদৰে হুবহু ৰূপত প্ৰতিফলিত কৰিছে—"কেইবাদিনো ধৰি তেওঁৰ অবিৰামভাৱে জ্বৰ। খোৱাত তেওঁৰ ইমান অৰুচি হৈছে যে একেৰাহে তিনিদিন ধৰি বোলে তেওঁৰ পেটলৈ খুদকণ এটাও যোৱা নাই। অত্যাধিক দুৰ্বলতাৰ কাৰণে তেওঁ আনকি চকু দুটাও মেলিব নোৱাৰে। শৌচ কেইবাদিনো ধৰি বন্ধ, কিন্তু অৰ্ধচেতন অৱস্থাত তেওঁ মাজে মাজে প্ৰস্ৰাৱ কৰে। তেওঁৰ নাকত প্ৰথমেই আহি লাগিলহি প্ৰস্ৰাৱৰ গোন্ধটো— যিটো গোন্ধ এবছৰৰ আগতেই তেওঁ পাই গৈছিল। দিলীপৰ মনত এনেহে ভাব হ'ল যেন এবছৰ ধৰি দেউতাকে নিজৰ প্ৰস্ৰাৱতেই লেটি লৈ আছে।" মানুহৰ উৎপত্তি প্ৰকৃতিৰ পৰা আৰু প্ৰকৃতিয়েই তেওঁৰ সকলো নিৰ্ধাৰণ কৰে। তেৰো প্ৰকৃতিৰে এটি অংশ বা অংগ বুলি প্ৰকৃতিবাদৰ এই বৈশিষ্ট্যটো উপন্যাসনত পৰিলক্ষিত হৈছে—"অনন্তকাল ধৰি প্ৰকৃতিৰ জীৱনলৈ বসন্ত বাৰে বাৰে আহিব, কিন্তু তেওঁৰ, নিজৰ জীৱনৰ যি বসন্ত ইতিমধ্যেই পাৰ হৈ গ'ল সি আৰু কোনোদিনেই ঘূৰি নাহে। কিন্তু ... হঠাৎ কিবা এটা ভাবি দিলীপে চাৰিওফালে আকৌ এবাৰ চকু ফুৰাই চালে ... কিন্তু মই কিয় ভাবিছো যে মোৰ জীৱনলৈ আৰু কোনো বসন্ত ঘূৰি নাহিব? মৰণৰ পিছত মোৰ দেহটো মাটিৰ লগত সমুলি মিহলি হৈ যাব হয়, কিন্তু সিটো চিৰকাল মাটি হৈ নাথাকে, পৃথিৱীৰ গৰ্ভৰ পৰা মই এদিন আকৌ ওলাই আহিম এডাল ঘাঁহ হৈ, এটা ফৰিং হৈ, এপাহ কপৌফুল হৈ, এখন নৈ হৈ — ঋতুচক্ৰৰ অন্তহীন আৱৰ্তনৰ মাজেদি ময়ো

অনন্তকাল ধৰি অংশ লৈ থাকিম প্ৰকৃতিৰ বিচিত্ৰ জীৱন লীলাত।" (বৰগোহাঞি, হোমেন, *অস্তৰাগ*, পৃ.৭২-৭৩) প্ৰকৃতিৰ নিয়ম মতেই যে পৃথিৱীত মানুহ, জীৱ-জন্তু সকলো পৰিচালিত দিলীপৰ দেউতাকৰ অনুভৱৰ মাজেৰে এনেদৰে উপস্থাপিত কৰিছে—"যেয়ে যি নামেৰেই নামাতক কিয় এই বিশ্বভুৱন যে এক পৰম শক্তিৰ বহিঃপ্ৰকাশ মাত্ৰ সেই বিষয়ে মোৰ মনত কোনো সন্দেহ নাই—সেই শক্তিক পিতা বুলি বা ত্ৰাতা বুলি স্মৰণ কৰাৰ বা প্ৰাৰ্থনা কৰাৰ কোনো অৰ্থ নাই, তুমি প্ৰাৰ্থনা কৰা বা নকৰা, সেই শক্তিয়ে আপোন ইচ্ছামতে কাম কৰি যাব।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ,পৃ. ৯৬) ডাঃ শৰ্মাই দিলীপক কোৱা কথাৰ জৰিয়তেও উপন্যাসখনত প্ৰকৃতিবাদৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে— "মানুহ যিমানেই বুদ্ধিমান নহওক কিয়—প্ৰকৃতিৰ চিৰন্তন আৰু ৰহস্যময় প্ৰজ্ঞাৰ তুলনাত মানুহৰ মেধা অতি তুচ্ছ আৰু নগণ্য। জীৱনৰ অৰ্থ আৰু মহত্ব উপলব্ধি কৰিবলৈ হ'লে আমি প্ৰকৃতিৰ বিধান মানি চলিব লাগিব।" (প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.১১৪)

এনেদৰে উপন্যাসখনত মানুহৰ বাৰ্ধক্যৰ বাস্তৱতাই উপন্যাসখনত কৰুণ ভাবৰ সৃষ্টি কৰিছে। উপন্যাসখন পঢ়ি উঠি পাঠকৰ মনলৈ নিজৰ বৃদ্ধকালৰ জটিলতাৰ প্ৰতি ভাব নহাকৈ নাথাকে। উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত ভাবধাৰাই, সুন্দৰ উপস্থাপনেৰে 'অস্তৰাগ' উপন্যাসখনে এখন শ্ৰেষ্ঠ উপন্যাসৰ স্থান লাভ কৰিছে। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

দাস, অমল চন্দ্ৰ (সম্পা.) ঃ অসমীয়া উপন্যাস পৰিক্ৰমা, বনলতা, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, মে' ২০১২

বৰগোহাঞি, হোমেন, ঃ অস্তৰাগ, প্ৰকাশক অৰুণ পুৰকায়স্থ, শ্ৰীভূমি পাবলিচিং,কোম্পানী,মহাত্মা গান্ধী ৰ'ড দ্বিতীয় সংস্কৰণ- এপ্ৰিল, ১৯৮৯

দাস, দুলাল চন্দ্ৰ (সম্পা.) ঃহোমেন বৰগোহাঞিৰ সাহিত্য আৰু সাধনা, সম্প্ৰীতি, গুৱাগাটী-১৪

শৰ্মা, গোবিন্দ প্ৰসাদ ঃ উপন্যাস আৰু অসমীয়া উপন্যাস, প্ৰকাশক ঃ অনন্ত হাজৰিকা, বনলতা, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১

বৰা, জয়ন্ত কুমাৰ ঃহোমেন বৰগোহাঞিৰ উপন্যাসৰ শিল্প বৈভৱ, প্ৰকাশক, অসম পাবলিচিং কোম্পানী, কলেজ হোষ্টেল ৰোড, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-৭৮১০০১

লাগাচু নিবেদিতা (সম্পা). ঃ হোমেন বৰগোহাঞি সাহিত্য আৰু সান্নিধ্য প্ৰকাশক ঃ পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ হাতীবৰুৱা মৌচুমী

নাথ, ভনিতাঃ (সম্পা) আধুনিক অসমীয়া উপন্যাস, প্ৰকাশক ঃ পূৰ্বায়ন প্ৰকাশন, প্ৰথম প্ৰকাশ, চেপ্তেম্বৰ, ২০২৫

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

অসমীয়া স্থানচ্যুতিকেন্দ্ৰিক উপন্যাসত প্ৰতিফলিত মানসিক আঘাত (ট্ৰমা) ৰ চিত্ৰণ ঃ এক অধ্যয়ন

প্ৰীতম দুৱৰা

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-৭৮১০০১
৮৬৩৮৫০৭৭২৭
preetamduarah22@gmail.com

ড° অম্বেশ্বৰ গগৈ

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-৭৮১০০১
৭০০২৯১২৫৪২
ambeswar@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

প্ৰস্তাৱিত গৱেষণাপত্ৰখনিত অসমীয়া স্থানচ্যুতিকেন্দ্ৰিক উপন্যাসত প্ৰতিফলিত মানসিক আঘাত (ট্ৰমা) ৰ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়নৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। অতীজৰে পৰা ৰাজনৈতিক অস্থিৰতা, অৰ্থনৈতিক বিপৰ্যয়, সামাজিক বিৱৰ্তন তথা প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগৰ দৰে বিবিধ কাৰকৰ ফলশ্ৰুতিত মানুহে ধাৰাবাহিকভাৱে স্বভূমিৰ পৰা আন ঠাইলৈ প্ৰব্ৰজন কৰি আহিছে। এনেদৰে মূল শিপাৰ পৰা বিচ্ছিন্ন হোৱা লোকসকলে নতুন ভৌগোলিক তথা সামাজিক-সাংস্কৃতিক পৰিৱেশৰ সৈতে অভিযোজন কৰাৰ প্ৰক্ৰিয়াত পৰিচয়ৰ সংকট, সাংস্কৃতিক সংঘাত, আৰ্থিক অনিশ্চয়তা আৰু বিচ্ছেদবেদনাৰ দৰে জটিল সমস্যাৰ মুখামুখি হয়। স্মৃতি আৰু বাস্তৱৰ এই দ্বান্দ্বিকতাই স্থানচ্যুত ব্যক্তিসকলৰ মানসপটত এক গভীৰ প্ৰভাৱ পেলাবলৈ সক্ষম হয়, যিয়ে পৰৱৰ্তী সময়ত এক দুৰ্বিসহ মানসিক আঘাত বা ট্ৰমাৰ সৃষ্টি কৰে। স্থানচ্যুত লোকসকলৰ এই যন্ত্ৰণাময় জীৱনৰ অভিজ্ঞতা সাহিত্যৰ বিভিন্ন বিধাসমূহৰ জৰিয়তে প্ৰকাশ হোৱা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। অসমীয়া সাহিত্যত, বিশেষকৈ উপন্যাসত এই স্থানচ্যুতিৰ ফলস্বৰূপে সন্মুখীন হোৱা ট্ৰমা বিষয়ক কেন্দ্ৰ কৰি বিভিন্নজন ঔপন্যাসিকে সৃষ্টিশীল ৰূপত উপন্যাস ৰচনা কৰি উলিয়াইছে। এই গৱেষণা পত্ৰখনিত নিৰ্বাচিত তিনিখন উপন্যাস ক্ৰমে -- ড. দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ ‘উপত্যকাৰ পৰা উপত্যকালৈ’ (২০০২), ৰুদ্ৰাণী শৰ্মাৰ ‘কাঁহিবুনৰ মালিতা’ (২০১৭) আৰু অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ ‘জছনাৰ ঝিটাছ’ (২০২২)ৰ জৰিয়তে উক্ত বিষয়টিৰ আলোচনা আগবঢ়োৱা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

স্থানচ্যুতি, ট্ৰমা, মাতৃভূমিৰ স্মৃতি, পৰিচয় সংকট, বিচ্ছেদ, উপন্যাস।

অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

মানৱ সভ্যতাৰ ইতিহাসত স্থানচ্যুতি (Displacement) এক মৰ্মন্তুদ আৰু বহুমাত্ৰিক পৰিঘটনা, যাৰ গৱেষণাধৰ্মী অধ্যয়নৰ অপৰিহাৰ্য গুৰুত্ব আছে। স্থানচ্যুতিকেন্দ্ৰিক অভিজ্ঞতাই কেৱল সমাজ বা ইতিহাসকেই প্ৰভাৱিত নকৰে, বৰঞ্চ ই ব্যক্তিমানসত এক চিৰস্থায়ী মনো-আঘাত বা ট্ৰমা (Trauma) ৰ সৃষ্টি কৰে। ৰাজনৈতিক উৎপীড়ন, নৃগোষ্ঠীয় সংঘাত অথবা উন্নয়নমূলক প্ৰকল্পৰ দৰে কাৰকৰ ফলত যেতিয়া মানুহে নিজৰ গৃহভূমি ত্যাগ কৰিবলৈ বাধ্য হয়, তেতিয়া তেওঁলোকৰ অন্তঃজগতত যি যন্ত্ৰণাদায়ক স্মৃতি আৰু অস্তিত্ব সংকট ৰ উন্মেষ ঘটে, তাক সূক্ষ্মভাৱে বিশ্লেষণ কৰাৰ প্ৰাসংগিকতা আছে।

অন্যহাতে সাহিত্যৰ দাপোণত প্ৰতিফলিত হোৱা এই স্থানচ্যুত লোকসকলৰ আখ্যানসমূহে সমাজৰ প্ৰান্তীয় শ্ৰেণীৰ সেই নিগূঢ় দৃষ্টিভংগীক প্ৰশ্ৰয় দিয়ে, যিয়ে

মূলসুঁতিৰ ইতিহাসত প্ৰায়ে ঠাই পাবলৈ অসমৰ্থ হয়। যিহেতু নিৰ্বাচিত উপন্যাসকেইখনৰ কেন্দ্ৰীয় বিষয়বস্তুত আছে এনে দুৰ্ভগীয়া লোকসকলৰ জীৱন-যন্ত্ৰণা আৰু তেওঁলোকৰ মানসপটত অংকিত অবিস্মৰণীয় ট্ৰমা, সেয়েহে সামাজিক বৈষম্য, শোষণ আৰু প্ৰতাৰণাৰ প্ৰকৃত স্বৰূপ উন্মোচনৰ স্বাৰ্থত এই উপন্যাসকেইখনৰ আধাৰত স্থানচ্যুতি আৰু ট্ৰমা বিষয়ক আলোচনাৰ গুৰুত্ব অপৰিসীম।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

"অসমীয়া স্থানচ্যুতিকেন্দ্ৰিক উপন্যাসত প্ৰতিফলিত মানসিক আঘাত (ট্ৰমা) ৰ চিত্ৰণ ঃ এক অধ্যয়ন" শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনিৰ উদ্দেশ্য হ'ল --

(১) স্থানচ্যুতিৰ প্ৰসংগ অসমীয়া উপন্যাসত কিদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে বিচাৰ কৰা।

(২) স্থানচ্যুতিৰ ফলত সন্মুখীন হোৱা ট্ৰমাৰ সম্পৰ্কে অসমীয়া উপন্যাসৰ জৰিয়তে বিচাৰ-বিশ্লেষণ কৰা।

(৩) ট্ৰমাৰ দ্বাৰা আলোচ্য উপন্যাসকেইখনৰ চৰিত্ৰসমূহ কিদৰে প্ৰভাৱিত হৈছে সেই বিষয়ে আলোচনা কৰা।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

উক্ত গৱেষণা পত্ৰখনিত অধ্যয়নৰ পৰিসৰ হিচাপে স্থানচ্যুতি (Displacement) আৰু ট্ৰমা (Trauma) -- দুয়োটা বিষয়কে সামৰি লোৱা হৈছে। ইয়াৰ লগতে এই বিষয় দুটিৰ প্ৰায়োগিক দিশৰ ক্ষেত্ৰত সাহিত্যৰ এক জনপ্ৰিয় বিধা উপন্যাসক সামৰি লোৱা হৈছে। এই অধ্যয়নৰ পৰিসৰে নিজ পৰিসীমাৰ ভিতৰত আৱদ্ধ কৰা নিৰ্বাচিত উপন্যাসকেইখন হ'ল - ড° দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ 'উপত্যকাৰ পৰা উপত্যকালৈ' (২০০২), ৰুদ্ৰাণী শৰ্মাৰ 'কাঁহিবুনৰ মালিতা' (২০১৭) আৰু অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ 'জছনাৰ ঝিটাছ' (২০২২)।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

এই গৱেষণাত মূলত বৰ্ণনামূলক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে। বৰ্ণনামূলক পদ্ধতিৰ মাধ্যমেৰে গৱেষণাৰ বিষয়বস্তু আৰু সংগৃহীত তথ্যসমূহ সুস্পষ্টভাৱে উপস্থাপন কৰা হৈছে। বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায়ত বিভিন্ন তত্ত্ব আৰু দৃষ্টিভংগীৰ বিশ্লেষণ কৰি নিজস্ব সিদ্ধান্তত উপনীত হ'বলৈ চেষ্টা কৰা হৈছে।

গৱেষণাৰ সময়ত তথ্য উদ্ধৃতি আৰু উল্লেখৰ ক্ষেত্ৰত (MLA Handbook (9th edition)- ৰ নিয়ম মানি চলা হৈছে।

তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

গৱেষণা কৰ্মটিত মুখ্য আৰু গৌণ দুয়ো প্ৰকাৰৰ তথ্য ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। মুখ্য উৎসকেন্দ্ৰিক সমল হ'ল আলোচনালৈ অনা নিৰ্বাচিত উপন্যাসকেইখন। আনহাতে গৌণ সমল হিচাপে মূল বিষয়ৰ লগত জড়িত প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থ, আলোচনী, প্ৰবন্ধ আৰু গৱেষণা পত্ৰিকাৰ সহায় লোৱা হৈছে।

মূল আলোচনা ঃ

সাম্প্ৰতিক সময়ৰ এটি গুৰুত্বপূৰ্ণ অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰ হৈছে 'ট্ৰমা' বিষয়ক অধ্যয়ন। ট্ৰমা হৈছে এক ভীতিজনক বা যন্ত্ৰণাসংকুল অভিজ্ঞতাৰ ফলত ব্যক্তিবিশেষে সন্মুখীন হোৱা এক গভীৰ শাৰীৰিক-মানসিক অস্থিৰতা। ইয়াৰ দ্বাৰা ব্যক্তিবিশেষে নিজৰ অস্তিত্ববোধ, আৱেগ আৰু মনস্তাত্ত্বিক স্থিতিৰ ওপৰত নিয়ন্ত্ৰণ হেৰুৱাবলৈ বাধ্য হয়। এনে অৱস্থাই ব্যক্তিৰ আভ্যন্তৰীণ আত্মোপলব্ধি, সংবেদন আৰু অভিজ্ঞতাৰ পূৰ্ণ অৰ্থবোধক প্ৰভাৱিত কৰি মনস্তাত্ত্বিক সংকোচন আৰু অস্তিত্বজনিত আতংকৰ সৃষ্টি কৰে। ইয়াৰ ইংৰাজী প্ৰতিশব্দ হৈছে 'Trauma'। ইংৰাজী 'Trauma' শব্দটিৰ পৰিভাষা হিচাপে অসমীয়া ভাষাত 'মানসিক আঘাত' শব্দটিৰ ব্যৱহাৰ কৰা দেখা যায়। অৱশ্যে দৈনন্দিন জীৱনৰ প্ৰায়োগিক পৰিসৰত 'ট্ৰমা' শব্দটো অত্যন্ত স্বাচ্ছন্দ্য আৰু মুক্তভাৱে ব্যৱহৃত হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। 'ট্ৰমা' শব্দটি গ্ৰীক ভাষাৰ পৰা উদ্ভৱ হৈছে, যাৰ অৰ্থ হ'ল 'আঘাত' বা 'ক্ষত'। প্ৰথমাৱস্থাত, ট্ৰমা শব্দটো শাৰীৰিক আঘাতৰ বৰ্ণনাৰ ক্ষেত্ৰত ব্যৱহৃত হৈছিল।১৮৬০ দশকলৈকে ইয়াৰ ব্যৱহাৰ মূলতঃ চিকিৎসাশাস্ত্ৰ আৰু শাৰীৰিক প্ৰেক্ষাপটতে সীমাবদ্ধ আছিল। পৰৱৰ্তী সময়ত অৰ্থাৎ ১৮৬৬ চনত লণ্ডনৰ ইউনিভাৰ্ছিটি কলেজ অৱ হস্পিটেলৰ শল্যচিকিৎসা বিভাগৰ অধ্যাপক জন এৰিক এৰিক্সনে (John Eric Erichsen) প্ৰথমবাৰৰ বাবে 'ট্ৰমা' শব্দটিক বৈজ্ঞানিক পৰিসৰত ব্যৱহাৰ কৰে (Bourke 2)। ঊনবিংশ শতিকাৰ শেষ আৰু বিংশ শতিকাৰ আৰম্ভণিত ই শাৰীৰিক ক্ষেত্ৰৰ সীমাৰেখা অতিক্ৰম কৰি মানসিক তথা মনোবৈজ্ঞানিক আঘাতৰ ক্ষেত্ৰলৈ বিস্তৃতি লাভ কৰে।

স্নায়ুবিজ্ঞানী জিন মাৰ্টিন চাৰকটে (Jean Martin Charcot) ট্ৰমাৰ সম্পৰ্কে আধুনিক মনোবৈজ্ঞানিক চিন্তাধাৰাৰে এক ঐতিহাসিক দিশ উন্মোচিত কৰে। তেওঁ পোনপ্ৰথমবাৰৰ বাবে মানসিক বিকাৰৰ ক্ষেত্ৰত ট্ৰমাৰ ভূমিকা সুনিৰ্দিষ্টভাৱে ব্যাখ্যা কৰি দেখুৱায়। তেওঁৰ মতে

এই মানসিক বিকাৰ কোনো কল্পনাপ্ৰসূত বিকলন নহয়, বৰঞ্চ স্নায়ু ব্যৱস্থাৰ ওপৰত ট্ৰমাজনিত অভিজ্ঞতাৰ গভীৰ প্ৰভাৱৰ এক জৈৱ-মানসিক ফলাফল। তেখেতৰ অমৰকৃতি 'Lectures on the Diseases of the Nervous System' (১৮৮৫)ত তেওঁ 'Traumatic Hysteria' ৰ স্নায়ুবৈজ্ঞানিক গঠন আৰু মানসিক লক্ষণসমূহৰ পৰস্পৰ সম্পৰ্ক বিশ্লেষণ কৰি দেখুৱাইছে। তেওঁ কৈছে, "Hysteria is not an imaginary malady; it is a functional disorder produced by a shock upon the nervour system" (Charcot 278)। ইয়াৰ দ্বাৰা তেওঁ হিষ্টেৰিয়াক ট্ৰমাৰ ফলত উদ্ভূত স্নায়ু কাৰ্যবিকৃতি (Neuropathological Dysfunction) হিচাপে সংজ্ঞায়িত কৰিছে। চাৰকৰ্টৰ এই চিন্তাধাৰা পৰৱৰ্তী সময়ত মনোবিশ্লেষণাত্মক তত্ত্বৰ ভিত্তি হিচাপে পৰিগণিত হয়। চাৰকৰ্টৰ পৰৱৰ্তী সময়ত তেওঁৰ শিষ্য পিয়েৰ জেনেটে (Pierre Janet) ট্ৰমা-মনোবিজ্ঞান বিষয়ক ক্ষেত্ৰখনত বিস্তৃতভাৱে আলোচনা আগবঢ়ায়। তেখেতে ব্যক্তিত্ব গঠন আৰু আচৰণৰ ধাৰাত ট্ৰমাজনিত অভিজ্ঞতাৰ গভীৰ প্ৰভাৱ সম্পৰ্কে বিশ্লেষণ কৰে। তেওঁ ট্ৰমাৰ ফলত উদ্ভূত স্মৃতিসমূহক অনমনীয় (Inflexible) তথা অপৰিবৰ্তনীয় (Immutable) ৰূপে অভিহিত কৰি উল্লেখ কৰে যে এইধৰণৰ স্মৃতি সাধাৰণ স্মৃতিৰ পৰা সম্পূৰ্ণ ভিন্ন। তেওঁ কৈছে,"Traumatic memories are rigid, automatic and inaccessible to conscious will." (Janet 361)। ইয়াৰ লগতে তেওঁ উল্লেখ কৰিছে যে ব্যক্তিয়ে নিজৰ ইচ্ছাশক্তিৰ দ্বাৰা জীৱনৰ ঘটনাসমূহৰ সাধাৰণ স্মৃতি পুনৰ উদ্ধাৰ বা পুনঃস্মৰণ কৰিবলৈ সক্ষম হয় আৰু এইবোৰ স্মৃতিয়ে ব্যক্তিত্বৰ গঠন বা মানসিক সুষমাত কোনো স্থায়ী অভিঘাত সৃষ্টি নকৰে, কিন্তু ট্ৰমাজনিত স্মৃতিসমূহ স্বতঃস্ফূৰ্তভাৱে উদ্ভূত হয় আৰু এইবিলাক মানসিক পৃষ্ঠৰ গভীৰ স্তৰত স্থায়ীভাৱে প্ৰতিষ্ঠিত হয়।

ট্ৰমাৰ মানসিক প্ৰভাৱ আৰু স্বভাৱ বিশ্লেষণৰ ক্ষেত্ৰত গভীৰ আৰু পদ্ধতিগত অধ্যয়ন আগবঢ়োৱা অন্য এজন প্ৰতিষ্ঠিত মনোবিজ্ঞানী হৈছে ছিগমুণ্ড ফ্ৰয়েড (Sigmund Freud)। তেখেতৰ ১৮৯৫ চনত জ'চেফ ব্ৰেউৰাৰৰ (Joseph Breuer) সৈতে যৌথভাৱে প্ৰকাশিত 'Studies on Hysteria' গ্ৰন্থখনত প্ৰকাশ কৰিছে যে হিষ্টেৰিকেল লক্ষণসমূহ প্ৰায় সেই অভিজ্ঞতাৰ পৰা উদ্ভৱ হয় যিবোৰ ৰোগীয়ে সম্পুৰ্ণভাৱে চেতনাত একীভূত কৰিব নোৱাৰে। তেওঁ গ্ৰন্থখনত এনেদৰে উল্লেখ কৰি কৈছে, "Hysterical symptoms are always derived from a traumatic experience which is not fully integrated into consciousness." অৰ্থাৎ ট্ৰমাজনিত স্মৃতি ব্যক্তিবিশেষে নিজৰ ইচ্ছাৰে নিয়ন্ত্ৰণ কৰিব নোৱাৰে, এইবোৰ স্বয়ংক্ৰিয়ভাৱে উপস্থিত হয় (Freud, Breuer)। ই চেতনাৰ দ্বাৰা নিয়ন্ত্ৰিত নহয়, যাৰ ফলত ই মানসিক চাপ আৰু সমস্যাৰ কাৰণ হিচাপে ধৰা দিয়ে। ফ্ৰয়েডে তেখেতৰ দ্বাৰা ৰচিত অন্য এখন গ্ৰন্থ 'Beyond the Pleasure Principle' (১৯২৪)ত কৈছে, "Traumatic experiences may leave a residue which resists the pleasure principle, manifesting as repetition compulsion." (Freud 13)। অৰ্থাৎ তেওঁ ক'ব বিচাৰিছে যে ট্ৰমাজনিত অভিজ্ঞতাই মানুহৰ মনত গভীৰভাৱে থিতাপি লৈ থাকে। এনে স্মৃতি বা অভিজ্ঞতাই মানুহক সচেতনভাৱে সুখী হোৱাত বাধা প্ৰদান কৰে। ফলত মানুহে অনিচ্ছাৰে এক দুখজনক বা যন্ত্ৰণাদায়ক অভিজ্ঞতাৰ বাৰম্বাৰ মুখামুখি হ'ব লগা হয়, যাক ফ্ৰয়েডে 'পুনৰাবৃত্তিমূলক প্ৰবৃত্তি' (Repetition Compulsion) বুলি অভিহিত কৰিছে।

মনোবিজ্ঞানৰ দৰে সমাজতাত্ত্বিক অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰখনতো ট্ৰমা এক গুৰুত্বপূৰ্ণ বিশ্লেষণৰ বিষয় হিচাপে বিবেচিত হৈছে। বিংশ শতিকাৰ দ্বিতীয়াৰ্ধৰ পৰা সমাজতাত্ত্বিকসকলে এই ধাৰণাটোক মানসিক ক্ষেত্ৰৰ পৰা সামূহিক আৰু সাংস্কৃতিক পৰিসৰত বিস্তাৰিত কৰে। সমাজতাত্ত্বিকসকলৰ দৃষ্টিকোণত ট্ৰমা হৈছে এক সামূহিক আৰু সাংস্কৃতিক প্ৰক্ৰিয়া, যিয়ে ব্যক্তি আৰু সমাজ দুয়োকে গভীৰভাৱে প্ৰভাৱিত কৰে। ই মানসিক বেদনা, সামাজিক গঠন আৰু সাংস্কৃতিক স্মৃতিৰ মাজত এক আন্তঃসম্পৰ্ক স্থাপন কৰে। এই দৃষ্টিভংগী অনুযায়ী ট্ৰমা কেৱল ব্যক্তিগত মনোবৃত্তি নহয়। ই এক সামাজিক নিমাৰ্ণৰ পৰিঘটনা, যিয়ে মানুহৰ পৰিচয়, ইতিহাস আৰু মূল্যবোধৰ স্বৰূপ গঠনত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে। কাই এৰিকচনে (Kai Erikon) তেখেতৰ 'Everything in its path: Destruction of Community in the Buffalo Creek Flood' (১৯৭৬) গ্ৰন্থখনত প্ৰথমবাৰৰ বাবে 'সামূহিক ট্ৰমা' (Collective Truma) ৰ ধাৰণা উপস্থাপন কৰে। তেওঁ কৈছে, "Collective trauma is a blow to the basic issues of social life that damage the bonds attaching people together." (Erikon 153)। অৰ্থাৎ ট্ৰমা হৈছে সামাজিক জীৱনৰ মূল গঠনক আঘাত কৰা এক গভীৰ অভিঘাত, যিয়ে মানুহৰ মাজৰ

সামাজিক বন্ধন ধ্বংস কৰে। এই দৃষ্টিকোণত ট্ৰমা কেৱল ব্যক্তিগত মানসিক আঘাত নহয়, ই এক সমাজৰ সজীৱ গঠনৰ ভাঙনি ৰূপ। কেথী কাৰুথে (Cathy Caruth) তেখেতৰ 'Unclaimed Experience : Trauma, Narrative and History' গ্ৰন্থখনত সাহিত্যিক আৰু সাংস্কৃতিক তত্ত্বৰ দৃষ্টিৰে ট্ৰমাক বিশ্লেষণ কৰিছে। তেওঁৰ মতে ট্ৰমা এনে এক অভিজ্ঞতা, যিয়ে চেতনা আৰু স্মৃতিৰ সীমা অতিক্ৰম কৰে আৰু ইতিহাস, ভাষা আৰু সমাজত পুনৰাবৃত্তি ৰূপে প্ৰতিফলিত হয় (Caruth 91)। অন্যহাতে পোলেণ্ডৰ বিখ্যাত সমাজবিজ্ঞানী পিঅ'টৰ ষ্টম্পকাই (Piotr Sztompka) তেখেতৰ 'European Journal of Social Theory' নামৰ পত্ৰিকাখনত প্ৰকাশিত 'Cultural Truma : The Other face of Social Change' নামৰ প্ৰবন্ধটিত দ্ৰুত সামাজিক পৰিবৰ্তনে মানসিক আৰু সাংস্কৃতিক অস্থিৰতা আনে আৰু সেই আঘাতেই সমাজত একধৰণৰ সাংস্কৃতিক ট্ৰমা সৃষ্টি কৰে বুলি মত পোষণ কৰিছে (Sztompka)।

ট্ৰমা অৰ্থাৎ মানসিক আঘাত মানুহৰ জীৱনত সংঘটিত ভয়ংকৰ, অসহায়তাপূৰ্ণ বা নিয়ন্ত্ৰণহীন অভিজ্ঞতাৰ ফলত সৃষ্টি হয়। এইধৰণৰ অভিজ্ঞতাই ব্যক্তিৰ মানসিক স্থিতি, আচৰণ, অনুভূতি আৰু চিন্তাশক্তিত গভীৰ প্ৰভাৱ পেলায়। ফলস্বৰূপে ব্যক্তিবিশেষৰ মানসিক গাঁথনি (Psychi Structure) ক্ৰমে বিশৃংখল হৈ পৰে। যাৰ বাবে তেওঁ নিজৰ দৈনন্দিন জীৱনৰ ব্যৱস্থাপনা তথা সামাজিক, পাৰিবাৰিক আৰু ব্যক্তিগত দায়িত্বসমূহ সম্পাদন কৰিবলৈ প্ৰয়োজন হোৱা মানসিক স্থিতি আৰু মনোবল হেৰুৱাই পেলায়। সংঘটিত কোনো ঘটনাৰ প্ৰকৃতি, তীব্ৰতা আৰু অৱধি অনুসৰি ট্ৰমাজনিত কাৰকসমূহক বিভিন্ন শ্ৰেণীত ভাগ কৰিব পৰা যায়। 'The Diagnostic and Statistical Manual of Mental Disorders' (DSM-IV) ৰ সংশোধিত পাঠত সম্ভাব্য ট্ৰমাজনিত ঘটনাসমূহৰ এক সুস্পষ্ট তালিকা প্ৰস্তুত কৰা হৈছে। আমেৰিকান চাইকিয়াট্ৰিক এচ'চিয়েচনৰ (American Psychiatric Association) মতে, যেতিয়া কোনো ব্যক্তিয়ে বাস্তৱ বা সম্ভাব্য মৃত্যু, গম্ভীৰ শাৰীৰিক আঘাত, নিজৰ বা অন্যজনৰ দেহৰ ৰক্ষাৰ ওপৰত ভাবুকি অনুভৱ কৰে তেতিয়া ট্ৰমাৰ উৎপন্ন হয় ('DSM-IV-TR')। DSM-IV সংস্কৰণে ট্ৰমাক এক বহিৰাগত ঘটনা হিচাপে বিবেচনা কৰিছে। কিন্তু তাৰ পৰৱৰ্তী সংস্কৰণ অৰ্থাৎ DSM-V ত ট্ৰমাৰ মানসিক আৰু সামাজিক পৰিসৰ অধিক বিস্তৃত ৰূপত সংজ্ঞায়িত কৰা হয়। DSM-V ত 'PTSD' (Post Traumatic Stress Disorder) অৰ্থাৎ ট্ৰমা উত্তেজনাজনিত মানসিক ৰোগক 'Trauma and Stressor Related Disorder' নামৰ এক নতুন শ্ৰেণীত স্থান দিয়া হয়। ইয়াত ট্ৰমাৰ সংজ্ঞা অধিক বিস্তৃত কৰি 'Criterion A' ত চাৰিধৰণে উল্লেখ কৰা হয় --

(১) ট্ৰমাজনিত ঘটনাৰ প্ৰত্যক্ষ অভিজ্ঞতা।

(২) অন্যজনৰ ওপৰত সংঘটিত ঘটনাৰ প্ৰত্যক্ষ কৰা।

(৩) ঘনিষ্ঠ ব্যক্তিৰ ওপৰত হোৱা ট্ৰমাজনিত ঘটনাৰ সম্পৰ্কে জ্ঞাত হৈ লাভ কৰা মানসিক আঘাত।

(৪) কোনো ঘটনাৰ পুনৰাবৃত্তিৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা ট্ৰমা।

এই অনুসৰি ট্ৰমাৰ চিনাক্তকৰণৰ বাবে মানসিক প্ৰতিক্ৰিয়া বাধ্যতামূলক নহয়, বৰঞ্চ বাস্তৱ বা সম্ভাব্য ঘটনাও ইয়াৰ মূল কাৰক হ'ব পাৰে। পৰৱৰ্তী সংস্কৰণ 'DSM-V-TR' (২০২২)ত এই সংজ্ঞাটো অধিক স্পষ্টীকৰণৰ সৈতে পুনৰায় প্ৰকাশ কৰা হয়। এই সংস্কৰণৰ মতে, "Trauma means death, threatened death, actual or threatened serious injury, or actual or threatened sexual violence"(American Phychiatric Association, 2022,326)। তাৰোপৰি এই সংস্কৰণত উল্লেখ কৰা হৈছে যে শিশুৰ ক্ষেত্ৰত অভিভাৱকৰ নিৰ্যাতন, গৃহহিংসাৰ সাক্ষীকৰণ, যৌন হিংসা, অৱহেলা আদি ট্ৰমাৰ মূল কাৰক। অন্যহাতে ইলেক্ট্ৰনিক মাধ্যম, টেলিভিজন বা চলচিত্ৰৰ মাধ্যমে দেখা ভয়ংকৰ দৃশ্য ট্ৰমা সৃষ্টিৰ প্ৰধান কাৰক হিটাপে গণ্য কৰা হৈছে। সেইদৰে 'চাইকগাইডছ ডট কম' (Psychguides.com) এ ট্ৰমাৰ মূল কাৰক হিচাপে প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগ, প্ৰবাস বা স্থানচ্যুতি, আত্মীয়জনৰ মৃত্যু, গুৰুত্বৰ আঘাত নাইবা ৰোগ, যৌন নিৰ্যাতন, ধৰ্ষণ, ঘৰুৱা হিংসা, হিংসাত্মক আচৰণৰ সাক্ষী আদি বিষয়সমূহৰ কথা উল্লেখ কৰিছে ('Some common source')।

সাম্প্ৰতিক সময়ত স্থানচ্যুতি আৰু ট্ৰমা -- দুয়োটা বিষয়ে অন্যান্য ক্ষেত্ৰসমূহৰ লগতে সাহিত্য ক্ষেত্ৰখনতো বিশেষ স্থান পাবলৈ সক্ষম হৈছে। বিশেষকৈ উদ্বাস্তু সাহিত্য (Refugee Literature), ডায়াস্পোৰিক সাহিত্য (Diasporic Literature) আৰু দলিত তথা আদিবাসী সাহিত্যত এই বিষয়দ্বয়ৰ এক গভীৰ আৰু বহুমুখী উপস্থাপন পৰিলক্ষিত হয়। এই সাহিত্যিক ধাৰাসমূহে স্থানচ্যুতিৰ ফলত উদ্ভৱ হোৱা মানসিক বিখণ্ডিতকৰণক অতিশয়

সংবেদনশীলতাৰে চিত্ৰায়িত কৰিছে। আচলতে সাহিত্যই ট্ৰমাক কেৱল কোনো ব্যক্তিবিশেষৰ ব্যক্তিগত আৱেগিক যন্ত্ৰণা হিচাপে সীমাবদ্ধ কৰি নাৰাখি, ইয়াক এক সামূহিক সামাজিক-ঐতিহাসিক অভিজ্ঞতা (Socio-historical Experience) হিচাপে চিহ্নিত কৰে। যিবোৰ ঐতিহাসিক পৰিঘটনাই (যেনে - দেশ বিভাজন, গোষ্ঠীগত সংঘাত বা ৰাজনৈতিক নিৰ্যাতন) একোটা বিশাল জনসমষ্টিক নিজৰ শিপাৰ পৰা বিচ্ছিন্ন হ'বলৈ বাধ্য কৰায়, সেই ঐতিহাসিক সত্যসমূহ সাহিত্যৰ পৃষ্ঠাত ট্ৰমাৰ একো একোটা দস্তাবেজ হৈ প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়। গল্প, উপন্যাস আৰু কাহিনী আদিৰ আধাৰত সৃষ্ট স্থানচ্যুত চৰিত্ৰসমূহৰ মাধ্যমেৰে সাহিত্যিকে পাঠকক ট্ৰমাৰ সেই নিৰ্মম গভীৰতাৰ সৈতে পৰিচয় কৰায় দিয়ে, য'ত ঘৰ হেৰুওৱাৰ বেদনা আৰু নতুন পৰিৱেশত নিজক প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰ অস্তিত্ববাদী সংগ্ৰাম একাকাৰ হৈ পৰে। এই চৰিত্ৰসমূহে বহন কৰা স্মৃতিৰ বোজা (Burden of Memory) আৰু পৰিচয়ৰ সংকট (Identity Crisis) আধুনিক সাহিত্যৰ এক অপৰিহাৰ্য অংগ হৈ পৰিছে।

ভাৰতীয় সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনলৈ মন কৰিলে দেখা যায় যে ভাৰতৰ উপনিৱেশিক অতীত, ১৯৪৭ চনৰ দেশবিভাজন, প্ৰবাসী জীৱন আৰু আধুনিক উন্নয়ন প্ৰকল্প আদি বিষয়বোৰৰ যোগেদি স্থানচ্যুতিয়ে ভাৰতীয় সাহিত্যত কেন্দ্ৰীয় স্থানেৰে নিজকে উপস্থাপন কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। দেশবিভাজনৰ ফলশ্ৰুতিত ঘটা স্থানচ্যুতিৰ যন্ত্ৰণা মাণ্টোৰৰ 'টোবাটেক সিং' আৰু ভীশন সাহিনীৰ 'তমশ' ত স্পষ্টকৈ প্ৰকাশ পাইছে। সেইদৰে উন্নয়নমূলক প্ৰকল্পৰ ফলত ঘটা স্থানচ্যুতি বা আদিবাসীসকলৰ পৰিচয় সংকটৰ জীৱনগাঁথা মহাশ্বেতা দেৱীৰ 'দ্ৰৌপদী', 'পাল্থেৰ টিগাৰ' ত প্ৰতিফলিত হৈছে। বিদেশত বসবাস কৰা ভাৰতীয়মূলৰ প্ৰবাসী সাহিত্যিক ঝুম্পা লাহড়ী, চিত্ৰা বেনাৰ্জী, দিবা কৰণী, অনীতা দেশাই আদি লেখকসকলৰ ৰচনাত স্থানচ্যুতিৰ ফলত সন্মুখীন হোৱা বিভিন্ন সমস্যাসমূহৰ লগতে মানসিক আঘাতৰ চিত্ৰণ সুন্দৰভাৱে প্ৰকাশ লাভ কৰা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে।

উত্তৰ-পূব ভাৰতত অৱস্থিত অসম ভৌগোলিক দিশৰ পৰা কেইবাখনো বিদেশী ৰাষ্ট্ৰৰ সৈতে সংযুক্ত হৈ আছে যদিও প্ৰাক্ স্বাধীনতা আৰু স্বাধীনোত্তৰ কালৰ অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যত এই স্থানচ্যুতি প্ৰসংগৰ প্ৰত্যক্ষ উপস্থাপন দেখিবলৈ পোৱা যায়। দেবেন্দ্ৰনাথ আচাৰ্যৰ 'জঙ্গম', উমাকান্ত শৰ্মাৰ 'এজাক মানুহ এখন অৰণ্য', অৰুণ শৰ্মাৰ 'আৰ্শীবাদৰ ৰং', দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ 'উপত্যকাৰ পৰা উপত্যকালৈ', 'উদ্ভাসিত উপকূল', ৰীতা চৌধুৰীৰ 'মাকাম', অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ 'ফেলানী', 'জছনাৰ ঝিটাছ', নন্দিতা দেৱীৰ 'বঙল বহুদূৰ', ৰুদ্ৰাণী শৰ্মাৰ 'কাঁহিবুনৰ মালিতা' আদি উপন্যাসত স্থানচ্যুতিৰ লগতে ইয়াৰ ফলত সন্মুখীন হোৱা ট্ৰমাৰ আংশিক প্ৰভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। ইয়াৰে নিৰ্বাচিত তিনিখন উপন্যাসক কেন্দ্ৰ কৰি উক্ত বিষয়টি অসমীয়া উপন্যাসত কেনেদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে তলত আলোচনা কৰা হৈছে।

দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ দ্বাৰা ৰচিত 'উপত্যকাৰ পৰা উপত্যকালৈ' নামৰ উপন্যাসখনত স্থানচ্যুতিৰ প্ৰসংগ দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। উপন্যাসখনত দেশবিভাজনৰ পৰিণতিত পূৰ্ব-পাকিস্তান অৰ্থাৎ বাংলাদেশৰ পৰা অসমলৈ স্থানান্তৰিত বঙালী সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকলৰ ঐতিহাসিক প্ৰব্ৰজন আৰু তাৰ ফলত তেওঁলোকৰ মানসিক জগতত সৃষ্টি হোৱা অস্তিত্বৰ সংকট তথা গভীৰ মনস্তাত্ত্বিক অভিঘাতৰ এক বাস্তৱধৰ্মী ছবি দাঙি ধৰা হৈছে। মাতৃভূমি ত্যাগ কৰি অসমৰ বদৰপুৰ, হাফলং, লামডিং, নগাঁও আদি বিভিন্ন ঠাইত আশ্ৰয় গ্ৰহণ কৰা এই ছিন্নমূল মানুহখিনিৰ জীৱন যন্ত্ৰণা, শৰণাৰ্থী শিবিৰৰ বিভীষিকাময় অভিজ্ঞতা, আত্মীয়-স্বজনৰ পৰা হোৱা বিচ্ছেদৰ বেদনা তথা পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ত নতুন পৰিৱেশত সন্মুখীন হোৱা চৰম আৰ্থিক বিপৰ্যয় আৰু অস্তিত্ব ৰক্ষাৰ দুৰ্বাৰ প্ৰত্যাহ্বানৰ চিত্ৰায়নেই হৈছে উপন্যাসখনৰ মূল উপজীব্য। উপন্যাসখনত কালকিশোৰ, শৈল্যবালা, কালিবুঢ়ী, ৰাধাৰাণী, নিৰঞ্জন আদি চৰিত্ৰসমূহ সেই ছিন্নমূল জনসমষ্টিৰ একো একোটা সজীৱ প্ৰতিনিধি, যিয়ে নিজ প্ৰাণৰক্ষাৰ তাগিদাত মাতৃভূমিৰ মোহ ত্যাগ কৰি স্থানচ্যুতিৰ মৰ্মান্তিক যন্ত্ৰণাক আকোঁৱালি ল'বলৈ বাধ্য হৈছে।

মানসিক অভিঘাত বা ট্ৰমা সৃষ্টিৰ নেপথ্যত হিংসাত্মক পৰিৱেশ বা সাম্প্ৰদায়িক সংঘৰ্ষই এক অন্যতম নিৰ্ণায়ক কাৰক হিচাপে ক্ৰিয়া কৰে। এনে দুৰ্বিসহ পৰিস্থিতিয়ে ব্যক্তিক নিজৰ আদিভূমিৰ পৰা বিচ্যুত বা স্থানান্তৰিত হ'বলৈ বাধ্য কৰি এক মৰ্মান্তিক মনস্তাত্ত্বিক যন্ত্ৰণাৰ সৃষ্টি কৰে। এই হিংসাত্মক পৰিঘটনাসমূহে কেৱল ব্যক্তিবিশেষকে নহয়, বৰঞ্চ একো একোটা সামাজিক গোষ্ঠীক অনিৰ্দিষ্ট বিভীষিকাৰ গ্ৰাসলৈ ঠেলি দিয়ে। নিৰন্তৰ বিপন্নতাৰ আশংকাই ভুক্তভোগীৰ মনত যি তীব্ৰ নিৰাপত্তাহীনতাৰ জন্ম দিয়ে, তাৰ ফলত তেওঁলোকৰ পৰিচিত চৌপাশৰ পৰিৱেশটোৱেই এক অসুৰক্ষিত আৰু বৈৰী স্থানলৈ ৰূপান্তৰিত হয়। মনোবিজ্ঞানী লেনোৰ টেৰে (Lenore

Terr) তেখেতৰ 'Too Scared to Cry: Psychic Trauma in Childhood' গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে যে, ট্ৰমা হ'ল কোনো এক আকস্মিক, অপ্ৰত্যাশিত আৰু অতিশয় তীব্ৰ আৱেগিক পৰিঘটনাৰ পৰিণতিত মানসপটত সৃষ্টি হোৱা এক প্ৰচণ্ড জোকাৰণি, যিয়ে ব্যক্তিৰ নিৰাপত্তাৰ ধাৰণাটোক সমূলি ধূলিস্যাৎ কৰি তেওঁক এক অনিশ্চিত আৰু ভীতিগ্ৰস্ত অৱস্থালৈ নিক্ষেপ কৰে (Terr 8)। উপন্যাসখনত ট্ৰমাৰ এই দিশটো অত্যন্ত মৰ্মস্পৰ্শী ৰূপত প্ৰতিফলিত হৈছে। ভাৰত স্বাধীনতাৰ সন্ধিক্ষণত ছিলেটৰ অন্তৰ্ভুক্তি সন্দৰ্ভত অনুষ্ঠিত গণভোটৰ পৰিণতিত অঞ্চলটো পাকিস্তানৰ অন্তৰ্ভুক্ত হোৱাত সেই ঠাইত বসবাস কৰা ভাৰতৰ সমৰ্থকসকলৰ মাজত তীব্ৰ অনিশ্চয়তা আৰু অস্থিৰতাই দেখা দিয়ে। বিশেষকৈ একাংশ মুছলমানলোকৰ উগ্ৰ সাম্প্ৰদায়িক আচৰণে কুলাউৰা, আমিৰগঞ্জ, ব্ৰহ্মপালী আদি অঞ্চলত যুগ যুগ ধৰি বসবাস কৰি অহা হিন্দুধৰ্মী লোকসকলৰ মনত গভীৰ নিৰাপত্তাহীনতা আৰু আতংকৰ সৃষ্টি কৰে। ফলস্বৰূপে, জন্মভূমিৰ প্ৰতি থকা নিবিড় টান আৰু আত্মৰক্ষাৰ তাগিদাৰ মাজত সৃষ্টি হোৱা এক দ্বান্দ্বিক অৱস্থাই তেওঁলোকক মানসিক যন্ত্ৰণাৰ চৰম সীমালৈ লৈ যায়। উপন্যাসখনৰ মুখ্য চৰিত্ৰ কালিকিশোৰ জৰিয়তে এই দিশটো স্পষ্ট হৈ উঠিছে --

"কালিকিশোৰে বাগৰ সলালে। তথাপি তেওঁৰ টোপনি নাহিল। বাৰে বাৰে দিনটোৰ কথাবোৰ তেওঁৰ মনত পৰিবলৈ ধৰিলে। মানুহবোৰে গাঁও এৰি যোৱাৰ কথা চিন্তা কৰাৰ কথা তেওঁৰ মনত বাৰে বাৰে ঘূৰ্ণিপাক খাবলৈ ধৰিলে.."(বৰকাকতী, ৫৮)।

ট্ৰমাজনিত স্মৃতিৰ পুনঃপৌনিক আৱৰ্তন এজন ব্যক্তিৰ বাবে অত্যন্ত যন্ত্ৰণাদায়ক অভিজ্ঞতা। চিকিৎসাবিজ্ঞানৰ পৰিভাষাত ইয়াক 'ইন্ট্ৰুছিভ থট্‌ছ' (Intrusive Thoughts) বা 'ফ্লেছবেক' (Flashback) হিচাপে চিহ্নিত কৰা হৈছে। কোনো ভয়াৱহ বা মৰ্মান্তিক দুৰ্ঘটনাৰ সন্মুখীন হ'লে মানৱ মগজুত ইয়াৰ এক স্থায়ী আৰু গভীৰ ক্ষতৰ সৃষ্টি হয়। এনে ঘটনাৰ দৃশ্যৰাজীয়ে ভুক্তভোগীৰ মানসপটত অহৰহ ক্ৰিয়া কৰি থকাৰ ফলত তেওঁলোকে বৰ্তমানৰ বাস্তৱিক পৰিস্থিতিৰ সৈতে নিজকে একাত্ম কৰিবলৈ অসমৰ্থ হয়। অতীতৰ বিষাদময় স্মৃতিৰ ৰোমন্থনে তেওঁলোকক এক চৰম হতাশাগ্ৰস্ততাৰ দিশলৈ ঠেলি দিয়ে, যাৰ পৰিণতিত বিভীষিকাময় দুঃস্বপ্ন আৰু অনিদ্ৰাৰ দৰে মনোব্যাধিয়ে গা কৰি উঠে।প্ৰখ্যাত মনস্তাত্ত্বিকবিদ কেথি কাৰুথে (Cathy Caruth) তেওঁৰ 'Unclaimed Experience : Trauma, Narrative and History' শীৰ্ষক গ্ৰন্থত ট্ৰমাক এক 'বিলম্বিত অভিজ্ঞতা' (Belated Experience) হিচাপে আখ্যা দিছে। তেওঁৰ কৈছে যে ট্ৰমা এনে এক মানসিক অৱস্থা য'ত এটা ভয়াৱহ ঘটনা ঘটাৰ মুহূৰ্তত মনৰ দ্বাৰা তাক সম্পূৰ্ণভাৱে ধাৰণ কৰিব পৰা নাযায়, যাৰ পৰিণতিত ই পৰৱৰ্তী সময়ত নিয়ন্ত্ৰণহীনভাৱে মনলৈ ঘূৰি আহে (Caruth 4)। উপন্যাসখনৰ বিভিন্ন অধ্যায়ত ট্ৰমাৰ এই জটিল দিশটো অত্যন্ত নিপুণভাৱে ঔপন্যাসিকে তুলি ধৰিছে। কলিকতাৰ 'গ্ৰেট কিলিঙ' আৰু তাৰ প্ৰভাৱত সংঘটিত হোৱা নোৱাখালীৰ সাম্প্ৰদায়িক সংঘৰ্ষৰ পটভূমিত উপন্যাসখনৰ বিভিন্ন চৰিত্ৰ কালিকিশোৰ, শৈল্যবালা, কল্যাণী আৰু সুবীৰৰ জীৱনত মানসিক আঘাতে কেনেদৰে গভীৰ সাঁচ বহুৱাবলৈ সক্ষম হৈছে সেয়া অতি মন কৰিবলগীয়া। এনে ভয়ংকৰ পৰিৱেশত তেওঁলোকে নিজৰ প্ৰাণ ৰক্ষা কৰিবলৈ সমৰ্থ হৈছে যদিও নিজৰ ভাতৃ তথা স্বামী শ্যামকিশোৰৰ নৃশংস হত্যাৰ প্ৰত্যক্ষদৰ্শী হোৱাৰ হেতু তেওঁলোকৰ চেতনাত সেই ঘটনাই এক স্থায়ী মানসিক আঘাত হিচাপে স্থিতি লোৱা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। দেশ বিভাজনৰ সময়ত ছিলেটক কেন্দ্ৰ কৰি সৃষ্টি হোৱা অস্থিৰতাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত কালিকিশোৰৰ মনত পূৰ্বতে নোৱাখালীত ঘটা সেই বিভীষিকাময় দিনবোৰৰ বিষাদ স্মৃতিয়ে কাতৰ কৰি তুলিছে -

"যোৱা নিশা দক্ষিণৰ দিগবলয়ত দেখা জুইৰ ৰঙচুৱা আভাই কালিকিশোৰক নোৱাখালীৰ উত্তৰ অঞ্চলৰ এই ভয়াবহতাৰ কথাই মনত পেলাই দিছিল। পাটীত পৰাৰ পাছতো তেওঁৰ টোপনি অহা নাছিল। কাষত শুই থকা শৈল্যবালাক তেওঁ এই কথাৰ একো আভাস দিয়া নাছিল" (বৰকাকতী, ০৬)।

সেইদৰে অসমলৈ স্থানান্তৰিত হোৱাৰ পাছত অসমত সংঘটিত ভাষা আন্দোলনক কেন্দ্ৰ কৰি ঘটা হিংসাত্মক পৰিৱেশৰ মাজত ভতিজা সুবীৰ কলেজৰ পৰা ঘৰলৈ উভতি অহাত পলম হোৱা কাৰ্যই কালিকিশোৰৰ মনত পুনৰ সেই নোৱাখালীৰ ধ্বংসাত্মক স্মৃতিয়ে আছন্ন কৰি তোলা উপন্যাসখনত দেখিবলৈ পোৱা গৈছে --

"কালিকিশোৰৰ মনত পৰিল - সুবীৰে পাঁচবছৰ বয়সতেই নোৱাখালীৰ দাংগাৰ সময়ত তেওঁৰ কোঁচত

উঠিয়েই জুই-ছাই আৰু মানুহৰ চিঞৰ-বাখৰৰ মাজে মাজে শ্ৰীৰামপুৰৰ গাঁৱৰ মাজেৰে পলাইছিল। সি চাৰিওফালে অবাক হৈ চাইছিল”(বৰকাকতী, ২০৭)। কালিকিশোৰৰ দৰেই পত্নী শৈল্যবালা চৰিত্ৰটিৰ জৰিয়তে ট্ৰমাৰ এই বিলম্বিত প্ৰতিক্ৰিয়া উপন্যাসখনত প্ৰকাশ পোৱা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। বিশেষকৈ অসমৰ বিদেশী বহিষ্কাৰ আন্দোলনৰ উত্তাল সময়ছোৱাত তেওঁলোকৰ ঘৰৰ চোতালত এজন অচিনাকি আঘাতপ্ৰাপ্ত মুছলমান সম্প্ৰদায়ৰ ব্যক্তিক প্ৰত্যক্ষ কৰাৰ লগে লগে শৈল্যবালাৰ মনত তাহানিৰ নোৱাখালীৰ সেই দুবিৰ্ষ কালখণ্ডই পুনৰ সজীৱ ৰূপত ধৰা দিছে -

“শৈল্যবালাই কল্যাণীলৈ চাই চাই নোৱাখালীৰ দাংগাৰ কথাৰ ভাবি আছিল। সেই সময়ত শৈল্যবালা আছিল ন-বোৱাৰী। তেওঁলোক শ্ৰীৰামপুৰৰ শ্যামকিশোৰৰ ঘৰত ফুৰিবলৈ গৈয়েই দাংগাৰ সন্মুখীন হৈছিল। তেওঁৰ মনত পৰিল কেনেকৈ দীঘল দাড়িৰ বুঢ়া মুছলমান মানুহটোৱে ডেকা পুতেকহঁত উলটি অহাৰ আগতে তেওঁলোকক বোৰ্খা পিন্ধাই ছাই আৰু জুইৰ মাজে মাজে পলুৱাই নি ৰে’লত তুলি পঠাইছিল” (বৰকাকতী, ২৮১)।

বলপূৰ্বক বা অনিচ্ছাকৃত স্থানচ্যুতিৰ ফলত আত্মীয়-স্বজনৰ পৰা হোৱা বিচ্ছেদে ব্যক্তিবিশেষৰ মানসপটত এক গভীৰ মানসিক আঘাতৰ সৃষ্টি কৰে। প্ৰখ্যাত মনোবিজ্ঞানী ভিক্টৰ ফ্ৰাঙ্কলে (Viktor Frankl) তেওঁৰ কালজয়ী গ্ৰন্থ 'Man's Search for Meaning' ত নাজী কনচেণ্ট্ৰেচন কেম্পৰ বিভীষিকাময় অভিজ্ঞতাৰ আধাৰত এই মানসিক সংকটৰ দিশটো গভীৰভাৱে বিশ্লেষণ কৰিছে। ফ্ৰাঙ্কলৰ মতে, আত্মীয়ৰ পৰা বিচ্ছেদ হোৱা ব্যক্তিয়ে ভৱিষ্যতৰ প্ৰতি আস্থা হেৰুৱাই পেলায় আৰু ইয়াৰ ফলত তেওঁৰ আধ্যাত্মিক তথা মানসিক স্থিৰতা বিপৰ্যস্ত হৈ এক চৰম মানসিক অৱক্ষয়ৰ সূত্ৰপাত ঘটে (Frankl 81)। আলোচ্য উপন্যাসখনতো এই বিষয়টি অত্যন্ত সংবেদনশীলতাৰে প্ৰকাশ পাইছে। কুলাউৰাৰ সাম্প্ৰদায়িক সংঘৰ্ষৰ বলি হৈ জন্মভূমি ত্যাগ কৰা হিন্দুধৰ্মী বাঙালী লোকসকলে অসম অভিমুখে কৰা যাত্ৰাপথত যি দুৰ্বিষহ আৰু বিপদসংকুল পৰিস্থিতিৰ সন্মুখীন হৈছিল, সেই ঘটনা তেওঁলোকৰ বাবে আছিল চৰম যন্ত্ৰণাদায়ক। এনে সংকটকালত নিজৰ অতি আপোনজনৰ পৰা বিচ্ছিন্ন হোৱা ঘটনাই তেওঁলোকৰ মানসিক জগতত গভীৰ ক্ষতৰ সৃষ্টি কৰিছিল। উপন্যাসখনৰ কালীবুঢ়ী চৰিত্ৰটি এনে এক মানসিক বিসংগতি বা ট্ৰমাৰ বলি হোৱা এক কৰুণ প্ৰতিচ্ছবি। একাংশ মুছলমান সম্প্ৰদায়লোকৰ নৃশংস অত্যাচাৰত সৰ্বস্ব হেৰুৱাই জীৱন ৰক্ষাৰ তাগিদাত মাতৃভূমি ত্যাগ কৰি নিৰাপদ স্থানলৈ যাত্ৰা কৰোঁতে যাত্ৰাপথত প্ৰথমে কন্যা মায়া আৰু পৰৱৰ্তী সময়ত পুত্ৰ প্ৰমথৰ পৰা বিচ্ছিন্ন হোৱা ঘটনাই বুঢ়ীৰ মনত অপূৰণীয় বিচ্ছেদৰ বেদনা সৃষ্টি কৰে। আত্মীয়ৰ এই আকস্মিক বিচ্ছেদে তেওঁৰ জীয়াই থকাৰ আদিম প্ৰবৃত্তি আৰু আশা নিৰ্বাপিত কৰাৰ লগতে পুত্ৰ-কন্যাৰ স্মৃতিয়ে তেওঁক প্ৰতিটো মুহূৰ্ততে এক মৰ্মভেদী মানসিক যন্ত্ৰণাৰ চক্ৰবেহুত আৱদ্ধ কৰি ৰখা পৰিলক্ষিত হৈছে -

“কেম্পৰ মাজত মাছ দেখি শৈল্যবালাৰ দুচকু জিলিকি উঠিল। কালিদাসী বুঢ়ীয়ে মাছ বাচিবলৈ লৈ গ’ল। কিন্তু তাইৰ মাছ বাচোতে মায়া আৰু প্ৰমথলৈ মনত পৰি চকুলো ববলৈ ধৰিলে” (বৰকাকতী, ১০২)।

তদুপৰি উপন্যাসখনৰ প্ৰধান চৰিত্ৰ কালিকিশোৰৰ জৰিয়তে আত্মীয়ৰ পৰা হোৱা বিচ্ছেদৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা মানসিক ট্ৰমাৰ এক ব্যঞ্জনাময় চিত্ৰ প্ৰকাশ পাইছে। নিজৰ আজন্ম পৰিচিত জন্মভূমি ত্যাগ কৰি অসমৰ কৰিমগঞ্জ, পিংচৰা আৰু কঠিয়াতলি আদি ভিন্ন প্ৰান্তত নিজকে আৰ্থিকভাৱে প্ৰতিষ্ঠিত কৰিবলৈ কৰা সংগ্ৰামৰ মাজতো কালিকিশোৰে কুলাউৰাত এৰি থৈ অহা পৈতৃক গৃহ আৰু খুৰাক চৰিত্ৰচন্দ্ৰৰ স্মৃতি মনৰ পৰা মচি পেলাব পৰা নাই। কুলাউৰাৰ স্মৃতিয়ে তেওঁক অহৰহ খেদি ফুৰে; সেয়েহে ক’ৰবাত কুলাউৰাৰ প্ৰসংগ উত্থাপন হ’লে বা নিজ জন্মভূমিৰ কোনো শৰণাৰ্থী লোকৰ সৈতে সাক্ষাৎ হ’লে তেওঁ আবেগিক হৈ পৰে আৰু অতি ব্যাকুলতাৰে আত্মীয় তথা জন্মভূমিৰ বাতৰি লবলৈ চেষ্টা কৰে। বিশেষকৈ উপন্যাসখনত কালিকিশোৰ আৰু হৰিবিলাসৰ মাজত হোৱা কথোপকথনৰ সময়ত প্ৰকাশ পোৱা কালিকিশোৰৰ মানসিক স্থিতি আৰু বিষণ্ণতাই তেওঁৰ অন্তৰৰ গভীৰত থকা মাতৃভূমি বিচ্ছেদৰ যন্ত্ৰণাটোক স্পষ্ট কৰি তোলে -

“কালিকিশোৰৰ চাৎকৰে কুলাউৰাৰ কথা মনত পৰিল। কুলাউৰাৰ আহল-বহল ঘৰ, চোতাল, চৌহদ, ঠাকুৰ-ঝি পুখুৰী তিৰোতা মানুহৰ বাবে পিছ-চোতাল আৰু পুখুৰী, চৌহদৰ চজিনাগছ, দূৰৰ আমবাগান আৰু বাঁহনি, সেউজীয়া গছ-গছনিৰ মাজেৰে লুংলুঙীয়া বাট-পথ, শিঙিনালা আৰু সাগৰসদৃশ আকালুকী হাৱৰ আৰু তাত ভাহিথকা নাও। এটা শান্ত-শীতল শিহৰণ যেন

কালিকিশোৰৰ মূৰৰ পৰা ভৰিলৈকে পাৰ হৈ গ'ল। এয়াই জনমভূমি, এয়াই জনমভূমিৰ স্মৃতি”(বৰকাকতী, ১৪৬)।

বিশিষ্ট মনোবিজ্ঞানৰ গৱেষক মিল্লাৰ (Miller) আৰু ৰাস্মুচেনে (Rasmussen) শৰণাৰ্থীসকলৰ মানসিক স্বাস্থ্যৰ ওপৰত চলোৱা অধ্যয়নৰ আধাৰত ৰচিত 'The Mental Health of Refugees : Ecological and Cultural Perspectives' শীৰ্ষক প্ৰবন্ধটিত স্থানচ্যুত লোকসকলে সন্মুখীন হোৱা মনস্তাত্ত্বিক আঘাতৰ (Trauma) কাৰকসমূহৰ এক তথ্যসমৃদ্ধ বিশ্লেষণ আগবঢ়াইছে। তেওঁলোকৰ মতে, আশ্ৰয় শিবিৰৰ অভাৱৰ-অনাটন আৰু দুৰ্বিষহ পৰিৱেশে শৰণাৰ্থীসকলৰ মনত গভীৰ মানসিক বিকৃতিৰ সৃষ্টি কৰে। গৱেষকদ্বয়ে যুক্তি দৰ্শাইছে যে এজন শৰণাৰ্থী বা স্থানচ্যুত ব্যক্তি কেৱল অতীতৰ যন্ত্ৰণাদায়ক অভিজ্ঞতাৰ দ্বাৰাই আক্ৰান্ত নহয়, বৰঞ্চ আশ্ৰয় শিবিৰৰ বৰ্তমান জীৱনত যি খাদ্যৰ নাটনি বা অনিদ্ৰাৰ দৰে দৈনন্দিন মানসিক চাপৰ সন্মুখীন হয়, সেইবোৰেহে তেওঁলোকৰ মানসিক স্বাস্থ্যৰ অধিকতৰ অৱনতি ঘটায় (Mollica 11)। আলোচ্য উপন্যাসখনত এই তাত্ত্বিক দিশটোৰ এক বলিষ্ঠ প্ৰতিফলন ঘটা পৰিলক্ষিত হয়। এক স্বচ্ছল তথা সম্ভ্ৰান্ত পৰিয়ালত জন্মগ্ৰহণ কৰা কালিকিশোৰে যেতিয়া সৰ্বস্ব ত্যাগ কৰি অসমৰ কৰিমগঞ্জৰ শৰণাৰ্থী শিবিৰত আশ্ৰয় ল'বলগীয়া হয়, তেতিয়া তেওঁৰ জীৱনলৈ এক চৰম বিপৰ্যয় নামি আহে। শিবিৰৰ সেই অমানুষিক পৰিৱেশত খাদ্যৰ তীব্ৰ সংকট আৰু শোৱাৰ অনুপযুক্তস্থানে তেওঁৰ স্বাভাৱিক নিদ্ৰা হৰণ কৰাৰ লগতে এক অসহনীয় মানসিক চাপৰ সৃষ্টি কৰে। পূৰ্বৰ আঢ্যৱন্ত জীৱনৰ বিপৰীতে শিবিৰৰ এই নিদাৰুণ অভাৱবোৰে কালিকিশোৰৰ মনস্তত্ত্বত যি যন্ত্ৰণাদায়ক ট্ৰমাৰ সৃষ্টি কৰিছে, সেয়া ঔপন্যাসিকে এনেদৰে দাঙি ধৰিছে -

“ ভাত-দাইল আৰু ভাজিৰ অনুষ্টুপীয়া আহাৰত কালিকিশোৰৰ পেট নভৰিল। দুৰ্ঘোৰ টোপনিত শুই পৰা শ্ৰান্ত-ক্লান্ত শাৰী শাৰী মানুহবোৰৰ মাজত কালিকিশোৰ বহুসময় চকুমেলি পৰি থাকিল। সৰুৰে পৰা আহল-বহল পালেঙত শোৱা কালিকিশোৰে মাটিত পৰা পাতল বিছনাখনত আন মানুহৰ মাজত থেপাথেপিকৈ বাগৰি বাতাৱৰণটো মানসিকভাৱে গ্ৰহণ কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিলে। ৰাধাৰাণীৰ কথাও মনত পৰিল। তাইৰ বিৰাগ ভাবৰ কাৰণ কালিকিশোৰে বুজি উঠিল। তথাপি ৰাধাৰাণীৰ পুত্ৰহাৰা কাহিনীত যাত্ৰাত প্ৰত্যক্ষ হোৱা অভিজ্ঞতাৰ পাছত কোনো বৈচিত্ৰ্য দেখা নাপালে”(বৰকাকতী, ৯৯)।

অৰুপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ ‘জছনাৰ ঝিটাছ’ উপন্যাসখনতো সমধৰ্মী বিষয়বস্তুৱে প্ৰত্যক্ষভাৱে প্ৰকাশ পাইছে। উপন্যাসখনৰ পটভূমি হৈছে প্ৰাক্ স্বাধীনতাকালৰ সময়ছোৱা। বৃটিছ চৰকাৰে অসমৰ চাহ-বাগিচালৈ শ্ৰমিক হিচাপে ভাৰতৰ বিভিন্ন ঠাইৰ পৰা অনা আদিবাসী লোকসকলৰ স্থানচ্যুত জীৱনৰ কৰুণগাঁথা এই উপন্যাসখনৰ মূল বিষয়বস্তুত সন্নিৱিষ্ট হৈছে। উপৰোক্ত উপন্যাসকেইখনৰ দৰেই ‘জছনাৰ ঝিটাছ’ তো স্থানচ্যুতি বিষয়ৰ লগত জড়িত ভালেমানকেইটা দিশ প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়। উপন্যাসখনৰ আৰম্ভণিতে বগা চাহাবৰ শোষণ, প্ৰকৃতিৰ তাণ্ডৱলীলা যেনে বানপানী, খৰাং, দুৰ্ভিক্ষ আদি এশ এবুৰি সমস্যাৰে জৰ্জৰিত এই আদিবাসী শ্ৰমিক লোকসকলে একোটা সুচল জীৱনৰ আশাত নিজ জন্মভূমি এৰি অসমলৈ স্থানান্তৰিত হোৱা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। ষ্টুৱাৰ্ট হল (Stuart Hall) এ তেখেতৰ ‘Cultural Identity and Diaspora’ শীষক প্ৰবন্ধটিত প্ৰবাসীৰ সম্পৰ্কে ধাৰণা দিবলৈ গৈ স্থানচ্যুতিৰ বিষয়ে আলোচনা আগবঢ়াইছে। তেঁওৰ মতে প্ৰবাসী অৱস্থা বা স্থানচ্যুতি হৈছে বহুমুখী সামাজিক আৰু ঐতিহাসিক প্ৰতিক্ৰিয়াৰ ফলশ্ৰুতি। ই বিশেষকৈ দাসত্ব,উপনিবেশিক শাসন আৰু বিশ্বায়নৰ দৰে ঘটনাৰ সৈতে জড়িত। এই প্ৰতিক্ৰিয়াসমূহে মানুহক নিজৰ স্বভূমি ত্যাগ কৰি উন্নত জীৱন আৰু সুযোগৰ সন্ধানত অন্য ঠাইলৈ স্থানান্তৰিত হ'বলৈ প্ৰেৰণা দিয়ে (Rutherford 235)। উপন্যাসখনৰ প্ৰধান নাৰী চৰিত্ৰ দুৰ্গীৰ মনৰ জৰিয়তে এই দিশটো ফুটি উঠিছে -

“আৰকাঠিয়াৰ কথাবোৰে তাইৰ চকুৰ আগলৈ আনি দিয়া জলমলিয়া সপোনটোহে তাইৰ বুকুত খেৰ কুটা গোটাই বাহ লৈ আছে। এখন শাক-পাচলি লগাব পৰা সৰু বাৰীৰে সৈতে এখন ঘৰ, সপ্তাহে সপ্তাহে পোৱা বাগানৰ ৰেচন, কেঁচা টকা, বেমাৰ হ'লে ঔষধ, চাহ-বাগানৰ সুখ-শান্তিৰে ভৰা কাম। মানুহকনো আৰু কি লাগিছে? ... (কলিতা ১৭)।

স্থানচ্যুতিৰ ফলশ্ৰুতিত নিজ জন্মভূমি ত্যাগ কৰি অচিন পৰিৱেশত আশ্ৰয় লোৱা প্ৰব্ৰজিতলোকসকলে নতুন ঠাইত নানা যাতনাময় অভিজ্ঞতাৰ মুখামুখি হ'ব লগা হয়। বিশেষকৈ শোষণ-নিষ্পেষণ, মাতৃভূমিৰ স্মৃতি, আত্মীয়-স্বজনৰ পৰা বিচ্ছিন্নতা আৰু অস্তিত্ব সংকট আদি সমস্যাসমূহে তেওঁলোকৰ মনস্তাত্ত্বিক জগতখনত এক বিৰূপ ক্ৰিয়া কৰা পৰিলক্ষিত হয়। ‘জছনাৰ ঝিটাছ’

উপন্যাসখনত চৰিত্ৰসমূহৰ মানসিক ঘাত-প্ৰতিঘাতৰ জৰিয়তে এই দিশসমূহ স্পষ্টভাৱে প্ৰতিফলিত হোৱা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। উপন্যাসখনত ছোটনাগপুৰৰ পৰা অসমৰ চাহ বাগিচালৈ আমদানিকৃত শ্ৰমিকসকলৰ কষ্টকৰ যাত্ৰাৰ চিত্ৰ স্পষ্টকৈ প্ৰকট হৈ উঠিছে। জাহাজৰ ষ্টিমাৰৰ ওপৰত অমানৱীয়ভাৱে নূন্যতম সুবিধা প্ৰদান নকৰাকৈ কঢ়িয়াই অনা সেই শ্ৰমজীৱী লোকসকলৰ ওপৰত চৰ্দাৰসকলে অবাধ স্বাধীনতা প্ৰদৰ্শন কৰি শোষণ- অত্যাচাৰ কৰাৰ লগতে মহিলাসকলৰ ওপৰত যৌন উৎপীড়ন চলাইছিল। অস্বাস্থ্যকৰ পৰিৱেশত হাইজা, কলেৰা আদি বেমাৰ হৈ মৃত্যু হোৱা লোকক জাহাজৰ পৰা পানীত পেলাই দিয়া হৈছিল। আনকি মুমূৰ্ষু অৱস্থাত থকা ৰোগীক জাহাজৰ পৰা নদীৰ কাষৰ হাবিত এৰি অহা হৈছিল। জাহাজত অহা সহযাত্ৰীসকলৰ এনে দুৰ্দশা প্ৰত্যক্ষ কৰিও বাকীসকল যাত্ৰীয়ে মৌনতাৰে সেইবোৰ প্ৰত্যক্ষ কৰিছিল। সেইদৰে নৌকাযাত্ৰাৰ অন্তত নিজ গন্তব্য স্থান আঠাৰিঘাট চাহ বাগিচাত উপস্থিত হোৱাৰ পাছতো বগাচাহাবৰ শোষণৰ পৰা হাত হাৰিব পৰা নাছিল। বগা চাহাবৰ ঔপনিৱেশিক শোষণ আৰু পশুসদৃশ শ্ৰমৰ হেঁচাত তেওঁলোকৰ জীৱন কোঙা হৈ পৰিছিল। বগাচাহাবৰ এনে অত্যাচাৰৰ বিৰোধিতা নকৰি নিৰন্তৰভাৱে সহ্য কৰাৰ ফলত সেই ঘটনাই তেওঁলোকৰ মানসপটত বিশেষ ক্ৰিয়া কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। উপন্যাসখনত ঔপনিৱেশিক শোষণৰ এই নগ্ন স্বৰূপটো দশৰথৰ মৃত্যুৰ প্ৰসংগৰে স্পষ্ট হৈ উঠিছে। বগাচাহাবৰ নিৰ্মম চাবুকৰ আঘাতত দশৰথৰ যি কৰুণ মৃত্যু ঘটিল, সেই ঘটনাই উপন্যাসখনৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ দুৰ্গীৰ মনোজগতত এক গভীৰ জোকাৰণিৰ সৃষ্টি কৰিলে। এনে পাশৱিক অত্যাচাৰ প্ৰত্যক্ষ কৰিও দুৰ্গীয়ে সেয়া অন্তৰৰ নিভৃত কোণত দমিত কৰি ৰাখিবলৈ বাধ্য হৈছিল, যাৰ ফলত এক তীব্ৰ মানসিক অস্থিৰতাই তাইক আচ্ছন্ন কৰি পেলাইছিল। দশৰথৰ মৃত্যুৰ সেই বিভীষিকাময় স্মৃতিয়ে দুৰ্গীক বাৰে বাৰে বিচলিত আৰু অশান্ত কৰি তুলিছিল। তাইৰ অন্তৰত পুঞ্জীভূত হৈ থকা এই অব্যক্ত বেদনা আৰু নিৰৱ ক্ষোভক ঔপন্যাসিকাই লোকসংগীতৰ মাজেৰে এনেদৰে উপস্থাপন কৰি দেখুৱাইছে -

"...দুৰ্গীয়ে মিঠা ৰজনজনাই যোৱা মাতটোৰে গাই উঠিল। গান গাইছিল নে তাই কান্দিছিলহু গানেই গাইছিল, এইবোৰ গান আৰু কান্দোনৰ মাজতনো কি বেলেগটো আছে? বুকুখন পাতলাবলৈকে এই গানবোৰ সিহঁতে মুখে মুখে ৰচি পেলাইছিল, তাকে শিকি লৈছিল দুৰ্গীয়ে।

'বড় চায়েবেৰ বড় ঘঁড়া
ছট চায়েবেৰ ছট ঘঁড়া
চাবুক মাৰে জড়া জড়া।

হাড়িয়াৰ নিচাতকৈয়ো বেছিকৈ ধৰে তাইক গান আৰু নাচৰ নিচাই। তাই নতুনকৈ শিকি লোৱা গানটো গাইছিল আৰু নাচিছিল" (কলিতা, ৬৮)।

আকস্মিকভাৱে সংঘটিত কোনো দুৰ্যোগে মানুহৰ মনস্তত্ত্বত এক সুদূৰপ্ৰসাৰী তথা নেতিবাচক প্ৰভাৱ পেলায়। যিহেতু এনে অনাকাংক্ষিত পৰিস্থিতিৰ মুখামুখি হ'বলৈ ব্যক্তিৰ কোনো পূৰ্ব-মানসিক প্ৰস্তুতি নাথাকে, সেয়েহে মানুহৰ মস্তিস্কই এই তাৎক্ষণিক আঘাতক যথোচিতভাৱে বিশ্লেষণ কৰিবলৈ অসমৰ্থ হয়। এই সন্দৰ্ভত বিখ্যাত মনোবিজ্ঞানী জুজিথ হাৰমান (Judith Herman) এ তেওঁৰ কালজয়ী গ্ৰন্থ "Trauma and Recovery" ত উল্লেখ কৰিছে, Traumatic events are overwhelming, precisely because they undermine the determinate sense of self-protection and control. অৰ্থাৎ, ট্ৰমাজনিত ঘটনাসমূহ ইমানেই প্ৰবল যে ই ব্যক্তিৰ আত্মৰক্ষা আৰু নিয়ন্ত্ৰণৰ সুনিশ্চিত ধাৰণাটোক নিঃশেষ কৰি পেলায় (Herman 33)। এনে সন্ধিক্ষণত নিজৰ লগতে আপোনজনৰ সুৰক্ষা নিশ্চিত কৰিব নোৱাৰাৰ যি চৰম অসহায়তা, সি ব্যক্তিৰ মনত এক স্থায়ী অনিৰাপত্তাৰ আৱহ সৃষ্টি কৰে। এই মানসিক অৱস্থাৰ ফলত ব্যক্তিগৰাকী প্ৰায়েই সেই ভয়াৱহ স্মৃতিৰ ৰোমন্থন বা দুঃস্বপ্নৰ চিকাৰ হয়। ট্ৰমা বিশেষজ্ঞ বেছেল ভ্যান ডাৰ কোল্ক (Bessel van der Kolk) ৰ মতে, এনে পৰিস্থিতিত মগজুৱে অতীতৰ আঘাতক বৰ্তমান বুলি অনুভৱ কৰে। তেওঁৰ মতে, "Trauma results in a fundamental reorganization of the way mind and brain manage perceptions. It changes not only how we think and what we think about, but also our very capacity to think." অৰ্থাৎ, ট্ৰমাই মগজুৰ ধাৰণা গ্ৰহণ কৰা পদ্ধতিটোকে সলনি কৰি দিয়ে। ই কেৱল আমাৰ চিন্তাই নহয়, বৰঞ্চ চিন্তা কৰাৰ সামৰ্থ্যকো প্ৰভাৱিত কৰে (Kolk 21)। ইয়াৰ পৰিণতিত ব্যক্তিগৰাকী এক ধৰণৰ অতি-সজাগতা (Hypervigilance) ৰ চিকাৰ হয়, যিয়ে তেওঁৰ মনস্তাত্ত্বিক চাপ বৃদ্ধি কৰি মানসিক সুস্থিৰতা বিঘ্নিত কৰে। উপন্যাসখনত দচাৰু চৰিত্ৰটিৰ জৰিয়তে এই দিশটো স্পষ্টভাৱে প্ৰকাশ পাইছে। চৰম দৰিদ্ৰতাৰ কৱলৰ পৰা

পৰিত্ৰাণ পাবলৈ নিজ জন্মভূমি পৰিত্যাগ কৰি 'সোণৰ অসম' লৈ স্থানান্তৰিত হোৱা দচাৰুৱে চাহ বাগিচাত কৰ্মৰত অৱস্থাত এক অনাকাংক্ষিত সন্ধিক্ষণৰ মুখামুখি হয়। বৃটিছ পৰিচালক পেৰিটন চাহাবক এক বিষধৰ সৰ্পৰ আক্ৰমণৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ গৈ দচাৰুৱে অনিচ্ছাসত্ত্বেও সেই সৰ্পটোক নিধন কৰিবলৈ বাধ্য হয়। পৰম্পৰাগতভাৱে দেৱতা জ্ঞান কৰা সৰ্পক নিজ হাতেৰে হত্যা কৰা এই ঘটনাই দচাৰুৰ মনস্তত্ত্বত এক গভীৰ অপৰাধবোধ আৰু আৱেগিক বিসংগতিৰ সৃষ্টি কৰে। ধৰ্মীয় বিশ্বাস অনুসৰি পত্নী দুৰ্গী আৰু অন্যান্য শ্ৰমিকসকলৰ সহযোগত প্ৰায়শ্চিতমূলক পূজা-অৰ্চনাৰ আশ্ৰয় লৈছিল যদিও এই ঘটনাই তেওঁৰ অন্তৰ্নিহিত সত্তাত এক সুস্থিৰ মানসিক ট্ৰমাৰ সাঁচ বহুৱায়। ইয়াৰ পৰিণতিত দচাৰুৰ স্বাভাৱিক জীৱনশৈলী ব্যাহত হয় আৰু তেওঁ ক্ৰমান্বয়ে বিসংগতিপূৰ্ণ আচৰণ কৰিবলৈ ধৰে। এই বিভীষিকাময় পৰিৱেশৰ পৰা মুক্তিৰ বাবে তেওঁৰ মনত নিজ গৃহভূমিলৈ প্ৰত্যাৱৰ্তনৰ এক তীব্ৰ নষ্টালজিক ব্যাকুলতা জাগ্ৰত হয়। উপন্যাসখনৰ বিভিন্ন অধ্যায়ত দচাৰুৰ এই মানসিক বিপৰ্যয়ৰ মৰ্মস্পৰ্শী ছবি ঔপন্যাসিকে এনেদৰে প্ৰকাশ কৰিছে -

"দচাৰুৰ এই কথাবোৰলৈ একেবাৰে মন-কাণ নাই। দেওতা সাপক গুৰুৱে দিয়া মন্ত্ৰপূত কাড়েৰে মৰাৰ পাছৰে পৰা কি যে হ'ল মানুহটোৰহে তাৰ বাগানৰ পৰা একেবাৰে মন উঠি গৈছে। দুৰ্গীক সদায়ে কৈ থাকে সি তাৰ জন্মপোৱা ৰঙা মাটিৰ দেশখনলৈ ঘূৰি যাব। তাত সি গৈ আকৌ তীৰখেল খেলিবগৈ। তাত কোনেও তাক তীৰ মাৰিবৰ বাবে বন্দুক, চাবুক নেদেখুৱায়। সি তীৰ-ধনুক লৈ আকৌ জংঘললৈ যাব। তাৰ বাপ-দাদাৰ মাটিত ভুট্টা চাস কৰিবগৈ। একবেলা এক মুঠ খাই সিহঁত জীয়াই থাকিব। সিহঁতৰ নিজৰ দেশত ল'ৰা আৰু ছোৱালী হ'ব। পাত তোলা আৰু কোদাল পাৰা নহ'ব। সি দুৰ্গীৰ পেটত চাহাবৰ গোলামৰ জন্ম নিদিয়ে। সি দুৰ্গীক লৈ এদিন বাগিচাৰ পৰা পলাব.." (কলিতা ১৪৫)।

"..দুৰ্গী বহি পৰিলগৈ তাইৰ বেজেৰুৱা মুখৰ তীৰন্দাজ মৰদৰ কাষত। দুৰ্গীয়ে জানে তাৰ মন এতিয়া এখন শালবনত। সি কান্ধত ধনুক-তীৰ লৈ শালবনত ঘূৰি-ফুৰিছে। হয়তো এটা বন মুৰ্গীৰ চোপ লৈছে। সি চাগৈ শালগছ এজোপাত নিশানা বান্ধি মাটি ৰঙৰ ডেকা এজাকক তীৰ চলাবলৈ শিকাইছে। চাৰিওকাষৰ বৰা চাহাবক কেন্দ্ৰ কৰি ঘটি থকা কাজ-কাৰবাৰবোৰলৈ তাৰ একো মন-কাণ নাই। সি চিলমিল টোপনিত পৰিছে। এনেকৈয়ে থাকে দুৰ্গীৰ তীৰন্দাজ। এই শোবে,এই সাৰ পায়। সি যেন এটা সপোনতহে থাকে" (কলিতা, ১৪৮)

আত্মীয়ৰ সৈতে বিচ্ছেদ অথবা মৃত্যুৱে মানুহৰ মনস্তত্ত্বত এক গভীৰ আৰু অপৰিমেয় মানসিক আঘাতৰ সৃষ্টি কৰে। যেতিয়া কোনো ব্যক্তিয়ে নিজৰ আপোনজনৰ আকস্মিক বিয়োগৰ বাতৰি লাভ কৰে অথবা সেই শোকাবহ দৃশ্যৰ প্ৰত্যক্ষদৰ্শী হয়, তেতিয়া তেওঁৰ মানসিক জগতখনত এক প্ৰচণ্ড জোকাৰণিৰ সৃষ্টি হয়। এনে আৱেগিক বিপৰ্যয়ৰ ফলত ব্যক্তিজনৰ স্বাভাৱিক আচৰণত বিসঙ্গতিয়ে দেখা দিয়ে। তেনে ব্যক্তি চৰম বিৰক্তি, অনিদ্ৰা আৰু দুঃস্বপ্নৰ দৰে মানসিক চিকাৰৰ সন্মুখীন হ'বলগীয়া হয়। বিখ্যাত মনোবিজ্ঞানী জন বাউলবীয়ে (John Bowlby) তেওঁৰ কালজয়ী গ্ৰন্থ 'Attachment and Loss' (Vol 3,1980) ত উল্লেখ কৰিছে যে প্ৰিয়জন হেৰুৱাটো মানৱ জীৱনৰ আটাইতকৈ মৰ্মান্তিক অভিজ্ঞতাৰ ভিতৰত অন্যতম। তেওঁৰ মতে, এই বিচ্ছেদ কেৱল শোকৰ মাজতে আৱদ্ধ হৈ নাথাকে, বৰঞ্চ ই মানুহৰ মনত তীব্ৰ অস্তিত্বমূলক উদ্বেগ (Anxiety) আৰু ক্ৰোধৰো (Anger) উদয় ঘটায় (Bowlby 445)। আলোচ্য উপন্যাসখনতো এই বিষয়টি দুৰ্গী চৰিত্ৰটিৰ জৰিয়তে স্পষ্টভাৱে প্ৰকাশ হোৱা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। ছোটনাগপুৰৰ পৰা স্বামী দচাৰুৰ সৈতে এক নিৰাপদ আৰু নিশ্চিত ভৱিষ্যতৰ স্বপ্ন বুকুত বান্ধি দুৰ্গীয়ে অসমৰ চাহ বাগিচালৈ প্ৰব্ৰজন কৰিছিল। আঠাৰিঘাট চাহ বাগিচাত ঔপনিৱেশিক শাসকৰ চৰম শোষণ আৰু নিৰ্যাতনৰ মাজত দিন অতিবাহিত কৰিবলগীয়া হোৱা দুৰ্গীৰ জীৱনলৈ চৰম বিপৰ্যয় নামি আহে, যেতিয়া স্বামী দচাৰুৰ মনস্তাত্ত্বিক যন্ত্ৰণাৰ ফলত অকাল মৃত্যু ঘটে। দচাৰুৰ এই আকস্মিক বিয়োগে দুৰ্গীক এক দুৰ্বিষহ নিসংগতাবোধ আৰু মানসিক ৰিক্ততাৰ মাজলৈ ঠেলি দিয়ে, যাৰ ফলত তেওঁ নিজৰ স্বাভাৱিক জীৱনশৈলী হেৰুৱাই এক ধৰণৰ উন্মাদসদৃশ অৱস্থাত উপনীত হয়। উপন্যাসখনত দুৰ্গীৰ মনৰ অৱস্থা ঔপন্যাসিকে এনেদৰে দাঙি ধৰিছে -

"...মাজে মাজে দুৰ্গীৰ উশাহ বন্ধ হৈ যাব যেন লাগে... সপোনতে তাই পাত টুকাই, ফেক্টৰিত কয়লা আৰু ধূলিৰ মাজত পাত বাছে। প্ৰায়ে তাই চাহ গছৰ পাহিবোৰৰ মাজত, সেই তীৰন্দাজ ডেকাৰ ছবিৰে সজাই লোৱা নীচ লাইনৰ ছয় নম্বৰ গলিৰ তিনি নম্বৰ কামৰাৰ পিৰালিত বহি গান

গাই থাকে। সাৰ পাই উঠি তাই সদায়ে ভয় লগাকৈ গোঙাই থাকে, বহু সময়লৈকে ভৰিৰ কঁপনি কমি নাযায়। কৰাল মাৰে জিভা, ডিঙি শুকাই যায়। সাৰ পাই তাই বহু সময় 'আপনা কামৰা'ত বহি থাকে। কেতিয়াবা কান্দে, কেতিয়াবা আঙুলি ফুটাই, কেতিয়াবা নিজৰ চুলিয়ে আজোৰে " (কলিতা ২৩৩)।

উপন্যাসখনৰ পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ত দেখা যায় যে তীব্ৰ আৰ্থিক অনাটন আৰু নিৰাশ্ৰয়ী অৱস্থাৰ পৰা পৰিত্ৰাণ বিচাৰি দুৰ্গীয়ে চাহ বাগিচাৰ পৰিচালক ফ্ৰেজাৰৰ ৰক্ষিতা হিচাপে জীৱন অতিবাহিত কৰিবলৈ বাধ্য হয় আৰু তিনিটা সন্তানৰ মাতৃ হয়। কিন্তু হাইজা মহামাৰীত আক্ৰান্ত হৈ পুত্ৰ কুশৰ বিয়োগে তেওঁৰ অন্তৰ্নিহিত মাতৃসত্তাত পুনৰ এক মৰ্মন্তুদ আৱেগিক আঘাত সানে -

" ...দুৰ্গী মেমৰ হাততে কুশৰ দুৰ্বল মাতটো নিস্তব্ধ হৈ গৈছিল। সি গাঁতত সোমোৱা চকুৰে তাইলৈ একেথৰে চাই আছিল, এবাৰ বৰ সৰু মাতেৰে মাতিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল- মাথু তাইৰ হাততে ল'ৰাটো নোহোৱা হৈ গৈছিল। দুৰ্গীৰ বুকুৰ পৰা উজাই আহিছিল এটা কান্দোন। দুৰ্গীয়ে কান্ধত এটা স্পৰ্শ অনুভৱ কৰিছিল। লব পাছফালে থিয় দি আছে। তাৰ মুখখন শেঁতা পৰি গৈছে, চকুৰ পৰা পানী পৰিছে। দুৰ্গীয়ে তাইৰ গহীন বৰকৈ কথা-বতৰা নোকোৱা ল'ৰাটোক সাবটি ধৰিছিল " (কলিতা ৩২৩)।

স্থানচ্যুত লোকসকলক মাতৃভূমিৰ স্মৃতিয়ে গভীৰভাৱে জুৰুলা কৰে। কাৰণ এই স্মৃতি তেওঁলোকৰ অস্তিত্ব আৰু পৰিচয়ৰ মূল আধাৰ। স্থানচ্যুতিৰ পিছত এই স্মৃতি কেতিয়াবা নষ্টালজিয়া ৰূপে থিয় দিয়ে, যিয়ে তেওঁলোকক মানসিকভাৱে অতীতলৈ টানি নিয়ে আৰু বৰ্তমানৰ বাস্তৱতাৰ সৈতে দূৰত্ব সৃষ্টি কৰে। বহু সময়ত এনে স্মৃতিয়ে তেওঁলোকক নতুন ঠাইৰ সৈতে সম্পূৰ্ণ ৰূপত মিলি যোৱাৰ ক্ষেত্ৰত বাধা সৃষ্টি কৰে। ছালমান ৰাছদী (Salman Rushdie) এ তেখেতৰ 'Imaginary Homelands : Essays and Criticism' নামৰ গ্ৰন্থখনত কৈছে যে নিৰ্বাসিত বা প্ৰব্ৰজিত লোকসকল অনবৰতে মাতৃভূমিৰ স্মৃতিৰে সিক্ত হৈ থাকে। তেওঁলোকে অতীতলৈ উভতি যাবলৈ চেষ্টা কৰে যদিও সেই অতীত বাস্তৱ হ'ব নোৱাৰে।তেওঁৰ মতে ই মানুহৰ মনত গঢ় লৈ উঠা কল্পনাৰ দেশ (Rushdie 10)। উক্ত উপন্যাসখনৰ কেইবাটাও অধ্যায়ত এই মাতৃভূমিৰ স্মৃতিয়ে চৰিত্ৰসমূহক কাতৰ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে -

"দুৰ্গীৰ স্পষ্ট মনত আছে। চোট্টি মেলাৰ আদিবাসী মানুহৰ তীৰ খেলা সেই অঞ্চলত বিখ্যাত। ....তীৰ খেলত বাধা নাই। দচাৰু তীৰন্দাজৰ সেইদিনা সাজেই বেলেগ আছিল। পিন্ধিছিল হালধীয়া ধুতী। ....চুলিত আছিল গুঁজি লোৱা কাঠৰ ফণী। সেইদিনা দচাৰু যেন হৈ পৰিছিল সাক্ষাৎ মাৰং বুৰু। ....দচাৰুৱে সঁচাকৈয়ে তীৰেৰে সী পেলাইছিল লক্ষ্য কৰি আঁৰি থোৱা মাছৰ ছবিখনৰ চকুৰ মণিটো। দুৰ্গী আনন্দত জঁপিয়ায় পাগলী হৈ গৈছিল। সেইদিনা ৰাতিয়ে দচাৰুৰ বাপেকে তাক বিয়াৰ কথা কৈছিল। তাৰ এসপ্তাহৰ পাছতে দুৰ্গীৰ বিয়া হৈছিল" (কলিতা ৭৩)।

স্থানচ্যুত লোকসকলে সন্মুখীন হোৱা এটা গভীৰ সমস্যা হ'ল পৰিচয় সংকট। একে সময়তে দুটা পৃথক সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক পৰিৱেশৰ মাজত নিজকে আগুৱাই নিয়াৰ ফলশ্ৰুতিত তেওঁলোকে পৰিচয় সংকটত ভোগে। হোমি কে ভাভাই 'The Location of Culture' গ্ৰন্থখনত কৈছে, "In the processes of cultural translation, the hybrid identity of the diasporic subject is never fixed but constantly negotiated between the demands of historical memory and the imperatives of social adaptation" অৰ্থাৎ প্ৰবাসী বা স্থানচ্যুত লোকসকলৰ পৰিচয় সদায় এক মধ্যস্থ অৱস্থাত থাকে। য'ত তেওঁলোকৰ মাতৃভূমিৰ ঐতিহাসিক স্মৃতি আৰু নতুন ঠাইৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক উপাদানসমূহ মিশ্ৰিত হৈ পৰিচয় গঠন কৰে, তেনে পৰিচয় একমুখী বা স্থিৰ নহয়। তেওঁলোকে নিজৰ মাতৃভূমি আৰু নতুন ভূমিৰ বিভিন্ন পৰিস্থিতিৰ মাজত সামঞ্জস্যতা বজাই ৰাখিবলৈ চেষ্টা কৰে (Bhabha 2)। উপন্যাসখনতো এই পৰিচয় সংকট বিষয়টোৰ উত্থাপন হোৱা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। আঠাৰিঘাট চাহ-বাগিচাৰ কুলী হিচাপে দিন পাৰ কৰা দুৰ্গীয়ে স্বামী দচাৰুৰ মৃত্যুৰ পিছত বগা চাহাব ফ্ৰেজাৰৰ ৰক্ষিতা হিচাপে পৰৱৰ্তী জীৱন অতিবাহিত কৰে। ফ্ৰেজাৰৰ তিনিটাকৈ সন্তানৰ মাতৃ হৈও দুৰ্গীয়ে সেই বগাচাহাবৰ সমাজখনত স্থান পাবলৈ সক্ষম নহ'ল। অন্যহাতে দুৰ্গীয়ে অসমীয়া সংস্কৃতিক সম্পূৰ্ণভাৱে গ্ৰহণ কৰি লৈছে যদিও বগাচাহাবৰ ৰক্ষিতা তথা বাগানৰ কুলী হোৱাৰ বাবে পৰম্পৰাগত অসমীয়া সমাজখমত স্থান পাবলৈ অসক্ষম হৈছে। আৰু অৱশেষত নিজ কুলী সমাজখনৰ পৰাও তাই বহিষ্কৃত হ'ব লগা হৈছে -

"দুৰ্গীৰ মনলৈ এটা কোনোদিনে নহা প্ৰশ্ন আহিল।

তাই কাৰ মানুহ? কোন তাই? তাই সেই ৰঙামাটিৰ দেশখনৰ মানুহ? ....তাই তীৰন্দাজ দচাৰুৰ ঘৈণী আছিল। তাই এদিন ৰাতি বৰা বঙলাৰ চিৰিটোৱে সেই কোঠাটোলৈ সোমাই গ'ল। ....ল'ৰা এহালৰ মাক হ'ল। তাই বৰুৱানীৰ আদব-কায়দা নিজৰ কৰি ল'লে। তাই বৰুৱানীৰ দৰে থাপনাৰ আগত কীৰ্তন পঢ়ে, বৰুৱানীৰ দৰে কাপোৰ পিন্ধে। ....চাহাবে কৈ গৈছে তাই বগা চাহাবৰ ফালৰ মানুহ। চাহাবৰ বিচনাৰ তিৰোতা। তাই এতিয়া দুৰ্গীমেম "(কলিতা, পৃ.২৭৬)।

সেইদৰে ৰুদ্ৰাণী শৰ্মাৰ 'কাঁহি বুনৰ মালিতা' উপন্যাসখনত ঊনবিংশ শতিকাৰ শেষভাগৰ পৰা অসমলৈ স্থানচ্যুতি ঘটা বংগমূলীয় মুছলমানসকলৰ দুখ-ব্যাথাৰে ভৰা জীৱনৰ ছবি চিত্ৰিত হৈছে। উপন্যাসখনত দেশ বিভাজন, অসম আন্দোলন আদি ৰাজনৈতিক সমস্যাৰ সমান্তৰালভাৱে স্থানচ্যুত বংগীয়মূলৰ মুছলমানসকলৰ সংঘাতপূৰ্ণ জীৱন, আত্মপৰিচয়ৰ সংকট, থলুৱা সমাজ-সংস্কৃতিৰ সৈতে সম্প্ৰীতি আদি অনেক দিশসমূহ প্ৰকাশ পাইছে। দেশ বিভাজনৰ পূৰ্বৰ কালছোৱাত পূৰ্ববংগৰ পৰা অসমলৈ প্ৰব্ৰজন কৰা এটি মুছলমান পৰিয়ালৰ ধাৰাবাহিকভাৱে তিনিটা প্ৰজন্মৰ জীৱন-সংগ্ৰামৰ আখ্যান এই উপন্যাসখনত জীৱন্ত ৰূপত প্ৰতিফলিত হৈছে। মানৱ সভ্যতাৰ অগ্ৰগতি আৰু জন-প্ৰব্ৰজনৰ ধাৰা একেটা মুদ্ৰাৰে ইপিঠি-সিপিঠি; তথাপি অনিয়ন্ত্ৰিত প্ৰব্ৰজনে বহুক্ষেত্ৰত এখন ৰাষ্ট্ৰৰ অৰ্থনৈতিক ভূ-খণ্ড আৰু ৰাজনৈতিক স্থিতিত অনাকাংক্ষিত জটিলতাৰ সূত্ৰপাত কৰে। বিংশ শতিকাৰ দ্বিতীয় দশকৰ পৰা অসমলৈ ধাবমান হোৱা এই অবিৰত প্ৰব্ৰজনৰ সোঁতে অসমীয়া সমাজ-জীৱনলৈ গভীৰ অস্তিত্বৰ সংকট তথা বিপৰ্যয় নমাই আনিছিল। বিশেষকৈ ১৯০৫ চনৰ বংগ-ভংগৰ পৰৱৰ্তী সময়ছোৱাত এই প্ৰব্ৰজনৰ গতি অধিক প্ৰবল হৈ উঠে। এনে এক প্ৰব্ৰজিত পৰিয়ালৰ জীৱন-বৃত্তক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই উপন্যাসখনৰ কাহিনী-বিন্যাস গঢ় লৈ উঠিছে। উক্ত উপন্যাসখনত তিনিধৰণে মানসিক অভিঘাতৰ ধাৰণা প্ৰতিফলিত হোৱা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। প্ৰথমতে, অনিচ্ছাকৃতভাৱে হোৱা স্থানচ্যুতিৰ ফলত ব্যক্তিৰ মানসত সৃষ্টি হোৱা গভীৰ আৱেগিক প্ৰতিক্ৰিয়া। দ্বিতীয়তে, নিজ মাতৃভূমিৰ স্মৃতি তথা আত্মীয়-স্বজনৰ পৰা হোৱা বিচ্ছেদজনিত যন্ত্ৰণা আৰু তৃতীয়তে, নতুন ভৌগোলিক পৰিৱেশত স্থানচ্যুতলোকে সন্মুখীন হোৱা পৰিচয় সংকটৰ ফলত উদ্ভূত মানসিক দ্বন্দ্ব।

বিংশ শতিকাৰ দ্বিতীয় দশকত অবিভক্ত বংগদেশত দেখা দিয়া তিনিটাকৈ দুৰ্ভিক্ষৰ ফলত সাধাৰণ মুছলমান শ্ৰেণীলোকসকল আৰ্থিক সংকটত ভোগে। উপন্যাসখনৰ প্ৰাৰম্ভিক পৰ্যায়তে ঔপন্যাসিকে বছিৰ নামৰ চৰিত্ৰটিৰ জৰিয়তে সেই সময়ৰ আৰ্থ-সামাজিক সংকটৰ এক মৰ্মভেদী তথা বাস্তৱধৰ্মী চিত্ৰ নিপুণতাৰে অংকন কৰিছে -

চকুৰ পতা জাপ খাই যায়। প্ৰথমটো দুৰ্ভিক্ষত ৰমিজৰ ককাক বছিৰ মিঞাৰ বাপেক মৰিছিল। পিছৰটোত খুৱাকহঁতৰ পৰিয়ালৰ তিনিজন। তৃতীয়টোত বছিৰে কাচিম আৰু নাজিম - তাৰ প্ৰথম আৰু দ্বিতীয় সন্তান দুটাক হেৰুৱাবলগীয়া হৈছিল। কান্দিবলৈও শক্তি নাছিল সিহঁতৰ। তৃতীয়টো দুৰ্ভিক্ষত সি নিঃস্ব হৈ পৰিল। সন্তান হেৰুৱালেই, ভূমিও হেৰুৱালে। পেটৰ ভোকত থাকি ভৱিষ্যতৰ কথা কি ভাবিব? সেই ভৱিষ্যত সি জমিদাৰৰ হাতত বন্ধকত থ'লে। তেতিয়ালৈকে ল'ৰা দুটা আছিল। ভাবিছিল- ইহঁত দুটা ডাঙৰ হৈ জমিদাৰৰ খেতিত কাম কৰি মাটি বন্ধকৰ পৰা মোকলাব। পিছে কোনোফালে বাট নোলোৱা হ'ল। বেছিভাগৰে অৱস্থা একেই..." (শৰ্মা, ১২)।

এনে চৰম আৰ্থিক বিপৰ্যয়ৰ কবলৰ পৰা ৰক্ষাৰ্থে এই পূৰ্ববংগীয় মানুহখিনিয়ে জীৱন ধাৰণৰ এক নতুন পথৰ সন্ধামত অসমলৈ স্থানান্তৰিত হ'বলৈ বাধ্য হয়। উপন্যাসখনত তাৰ বৰ্ণনা এনেদৰে দাঙি ধৰিছে -

"মৈমনসিংহৰ নাগৰপুৰৰ ওচৰতে আছিল পাইছানা নামৰ বছিৰ মিঞাৰ গাঁওখন। ভোক, মৃত্যু আৰু দুৰ্ভিক্ষই নিজৰ ঠাই বুলি থকা হেঁপাহ কমাই আনিছিল। দৃঢ় হৈ পৰিছিল বছিৰ। ভেটিৰ মাটিকণহে আছে মাত্ৰ। তাৰ মোহতে ভিক্ষাৰ পাত্ৰ লৈ ঘূৰি ফুৰিবনে সি? সৰু-সুৰা কাপোৰ-কানি লাম-লাকটুকেইটা বান্ধি-কুছি টোপোলা কৰি লৈ গুচি আহিছিল সেই ঠাই এৰি। ওচমান আৰু জালালৰ পৰিয়ালো আহিছিল একেলগে" (শৰ্মা, ১৪)।

স্থানচ্যুতসকলে নিজ মাতৃভূমিৰ স্মৃতি সদায় মনত লৈ ফুৰে। এনে স্মৃতিয়ে কেতিয়াবা তেঁওলোকৰ অন্তৰত বেদনাৰ সৃষ্টি কৰে। এডৱাৰ্ড চাইদৰ মতে, "নিৰ্বাসন বা স্থানচ্যুতি হ'ল এজন ব্যক্তি বা একোটা গোট আৰু তেওঁলোকৰ জন্মভূমিৰ মাজত সৃষ্টি হোৱা এক অপূৰণীয় বিচ্ছেদ। এই বিচ্ছেদৰ পৰা সৃষ্টি হোৱা বিষাদ কেতিয়াও সম্পূৰ্ণৰূপে নিৰাময় কৰিব নোৱাৰি" (Said 173)। উপন্যাসখনৰ বিভিন্ন ঠাইত এই মাতৃভূমি বিচ্ছেদৰ স্মৃতিয়ে চৰিত্ৰসমূহক প্ৰভাৱিত কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। বছিৰ মিঞাই নিজ মাতৃভূমিত এৰি থৈ অহা পৰিয়ালৰ লোকসকলৰ

প্ৰসংগত এই দিশটো স্পষ্টভাৱে প্ৰকাশ পাইছে -

"নিজৰ ঠাই এৰি আহিছে। বুকুত বল থাকিলেও উজাই অহাৰ সময়ত নাওৰ বঠাৰ চপ চপ তাৰ বুকুৰ ধপ্‌ধপ্ শব্দৰ লগত একাকাৰ হৈ পৰিছিল। বান্ধোন ছিঙি আহিছিল সিহঁত। ককায়েক নজু মিএগ্ৰাৰ পৰিয়ালটো তাতেই আছে। খুৰাকহঁতৰ ঘৰখন আছে। গাঁও আছে। সমাজ আছে। পাহিবিবিক নিকাহ কৰাই আনিছিল কাষৰ গাঁওখনৰ পৰা। মিটিম কুটুম অঙহী-বঙহী সকলো আছে তাত" (শৰ্মা, ১৯)।

আত্মপৰিচয় সংকট স্থানচ্যুত লোকসকলৰ প্ৰধান সমস্যা। এনে সমস্যাই তেওঁলোকৰ মনোজগতত এক গভীৰ প্ৰভাৱ পেলায়। উপন্যাসখনতো এই বিষয়টো স্পষ্ট ৰূপত ধৰা দিছে। দেশ বিভাজনৰ পূৰ্বে জীৱিকাৰ সন্ধানত অসমলৈ অহা পূৰ্ববংগৰ মুছলমান লোকসকলে থলুৱা ভাষা-সংস্কৃতিক আঁকোৱালি লোৱা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। কিন্তু পূৰ্ববংগই বাংলাদেশ নামে সুকীয়া দেশৰূপে পৰিচয় লাভ কৰাৰ পিছত অবৈধভাৱে অহা অন্য লোকসকলৰ সৈতে এই মানুহখিনিৰ পৰিচয় একাকাৰ কৰি পেলোৱাৰ ফলত তেওঁলোকে পৰিচয় সন্দৰ্ভত নানা সমস্যাৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হয় আৰু ই তেওঁলোকক মানসিকভাৱে প্ৰভাৱ পেলায়। উপন্যাসখনত, এই দিশটো ভাৰত-পাকিস্তানৰ বিভাজনৰ প্ৰসংগত স্পষ্টভাৱে প্ৰকাশ পাইছে -

" পিছে কথাবোৰ যে জটিল সেই কথা বুজিবলৈ তাৰ বাকী নাথাকিল। সভা হোৱাৰ দুদিন পিছতে গৈছিল সি ভৰ মেধিৰ ঘৰলৈ। মেধিৰ গাঁৱৰ কেবাজনো লোকে তাক সুধিছিল।

- তহঁতে এতিয়া কি কৰিবি? পাকিস্তানলৈ যাবি নে কি কৰিবি?

- ভাচানিয়ে কি মন্ত্ৰণা দিলে তহঁতক? তহঁত য'ৰ পৰা আহিছিলি সেয়াতো পাকিস্তান হ'ল। এতিয়া তালৈ যাবিনে?

- তহঁতৰ নিজৰ দেশ হ'ল। নিজৰ দেশলৈ গুচি যাবি। বিৰৰ্ণ হৈ পৰিল মাধু। ইফালে মিটিং পতা নেতাসকলে কয় পাকিস্তান সিহঁতৰ সপোনৰ দেশ। ইফালে ইয়াৰ মানুবোৰে কয় ইয়াৰ পৰা যোৱাৰ কথা..." (শৰ্মা ৫৯)।

সিদ্ধান্ত ঃ

"অসমীয়া স্থানচ্যুতিকেন্দ্ৰিক উপন্যাসত মানসিক আঘাত (ট্ৰমা)ৰ চিত্ৰণ ঃ এক অধ্যয়ন" শীৰ্ষক বিষয়টিৰ অধ্যয়নৰ অন্তত আমি তলত উল্লেখ কৰা সিদ্ধান্তসমূহত উপনীত হ'ব পাৰোঁ ---

(ক) নিৰ্বাচিত উপন্যাসকেইখনত স্থানচ্যুতি বিষয়টোৰ স্পষ্ট প্ৰকাশ লক্ষ্য কৰা যায়। আটাইকেইখন উপন্যাসতে স্থানচ্যুতিৰ প্ৰধান কাৰণ হিচাপে ৰাজনৈতিক অস্থিৰতা আৰু অৰ্থনৈতিক বিপৰ্যয়-- এই দুয়োটা দিশে প্ৰাধান্য লাভ কৰা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। *'জহনাৰ ঝিটাছ'* উপন্যাসত চৰিত্ৰসমূহে দৰিদ্ৰতাৰ কবলৰ পৰা মুক্তি পোৱাৰ সন্ধানত নিজ মাতৃভূমিৰ পৰা স্থানচ্যুত হোৱা মৰ্মস্পৰ্শী চিত্ৰ অংকিত হৈছে। *'কাঁহিবুনৰ মালিতা'* উপন্যাসখনত অৰ্থনৈতিক দৈন্য আৰু দেশ বিভাজনৰ দৰে জটিল ৰাজনৈতিক পৰিণতিয়ে স্থানচ্যুতিৰ পটভূমি ৰচনা কৰা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। *'উপত্যকাৰ পৰা উপত্যকালৈ'* শীৰ্ষক উপন্যাসখনিত দেশ বিভাজনৰ ফলশ্ৰুতিত সংঘটিত হোৱা হিংসাত্মক ঘটনাই স্থানচ্যুতিৰ মুখ্য কাৰণ হিচাপে ধৰা দিছে।

(খ) আলোচ্য আটাইকেইখন উপন্যাসকেইখনতে স্থানচ্যুতিৰ ফলত ছিন্নমূল মানুহে সন্মুখীন হোৱা ট্ৰমা বিষয়টিয়ে স্পষ্ট ৰূপত ধৰা দিছে। স্থানচ্যুতিৰ ফলস্বৰূপে আত্মীয়-স্বজনৰ পৰা হোৱা বিচ্ছেদ, গৃহভূমিৰ স্মৃতি, ধাত্ৰীভূমিত সন্মুখীন হোৱা আৰ্থিক-সামাজিক বিপৰ্যয়, আত্ম পৰিচয় সংকট আদি বিষয়সমূহে চৰিত্ৰসমূহৰ মানসিক জগতখনত বিশেষভাৱে প্ৰভাৱ পেলোৱা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। ❑

তথ্যসূত্ৰ ঃ

১) Bourke,Joanna . Sexual Violence, Bodily Pain, and Trauma : A History, Theory Cult Soc. Author manuscript, 2012 May 1, p.2, web: Retrieved on 2 Mon, March 2026, 10:00pm<http:// www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/ PMC4001210/

২) Charcot,Jean Martin . Lectures on the Diseases of the Nervous System. Paris A.Delahaya, 1885

৩) Janet,Pierre.Psychological Automastism.Felix Alcan,Paris, 1889

৪) Freud,Sigmund.Breuer, Joseph.Studies on Hysteria.Discus Books,1966

৫) Freud,Sigmund.Beyond the Pleasure Principle.Liverright,Newyork,1924

৬) Erikon,Kai.Everything in its path: Destruction of Community in the Buffalo Creek Flood.Simon&Schuster,1976

৭) Caruth, Cathy.Unclaimed Experience : Trauma, Narrative and History.John Hopkins University Press, 1996

৮) Sztompka,Piotr.'Cultural Truma : The Other face of Social Change'.European Journal of Social Theory.Delanty,Gerard [Ed], Vol 3,Nov,2000. web: Retrieved on 3 Tue, March 2026, 02:34pm<http: //doi.org/10.1177/136843100003004004
৯) DSM-IV-TR provides a list of potentially traumatic events, including combat, sexual and physical assault, robbery, being kidnapped, being taken hostage, terrorist attacks, torture, disasters, severe automobile accidents, and life-threatening illness, as well as witnessing death or serious injury by violent assault, accidents, war, or disaster.-'What is Trauma', p.3,Sagepub, web: Retrieved on 3 Tue March 2026, 02:38 pm<https://www.sagepub.com/sites/default/files/upm-binaries/11559_Chapter_1.pdf
১০) American Psychiatric Association. (2022)."Diagnostic and statistical manual of mental disor-ders (5th ed., text rev.).web: Retrieved on 3 Tue March 2026, 02:58 pm"https://doi.org/10.1176/appi.books.978089042578
১১) Some common sources of trauma include: Rape, Domestic violence, Natural disasters, Severe -illness or injury, The death of a loved one, Witnessing an act of violence. -'Trauma Symp-toms, Causes and Effects', Psychguides, n. pag., web: Retrieved on 3 Tue,March 2026 <https://www.psychguides.com/trauma/
১২) Terr,Lenore.Too Scared to Cry: Psychic Trauma in Childhood.Harper&Row,1990
১৩) বৰকাকতী, ড° দীপক কুমাৰ. উপত্যকাৰ পৰা উপত্যকালৈ. জ্যোতি প্ৰকাশন,২০১৬
১৪) Caruth,Cathy.Unclaimed Experience : Trauma, Narrative and History.John Hopkins University Press, 1996
১৫) বৰকাকতী, ড° দীপক কুমাৰ. উপত্যকাৰ পৰা উপত্যকালৈ. জ্যোতি প্ৰকাশন,২০১৬
১৬) তদেৱ
১৭) তদেৱ
১৮) Frankl, Viktor.Man's Search for Meaning. Beacon Press, 1959
১৯) বৰকাকতী, ড° দীপক কুমাৰ. উপত্যকাৰ পৰা উপত্যকালৈ. জ্যোতি প্ৰকাশন,২০১৬
২০) তদেৱ
২১) Miller. Rasmussen. 'The Mental Health of Refugees : Ecological and Cultural Perspectives'.Psychological Bulletin. Mollica,Richard F. [Ed] Vol 136, 2010
২২) বৰকাকতী, ড° দীপক কুমাৰ. উপত্যকাৰ পৰা উপত্যকালৈ. জ্যোতি প্ৰকাশন,২০১৬
২৩) Hall,Stuart.Cultural Identity and Diaspora'. Identity:Community, Culture, Difference.Eds.Jonathan Rutherford, Lawrence & Wishart, 1990
২৪) কলিতা, অৰূপা পটঙ্গীয়া. জছ্নাৰ ঝিটাছ. চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০২২
২৫) তদেৱ
২৬) Herman,Judith.Trauma and Recovery.Basic Books,1992
২৭) Kolk, Bessel Van Der.The Body Keeps the Score:Brain,Mind and Body in the Healing of Trauma.Viking Press, 2014
২৮) কলিতা,অৰূপা পটঙ্গীয়া. জছ্নাৰ ঝিটাছ. চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০২২
২৯) তদেৱ
৩০) Bowlby, John.Attachment and Loss. Basic Books,1980
৩১) কলিতা,অৰূপা পটঙ্গীয়া. জছ্নাৰ ঝিটাছ. চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০২২
৩২) তদেৱ
৩৩) Rushdie,Salman.Imaginary Homelands : Essays and Criticism.Granta Books,London,1991
৩৪) কলিতা,অৰূপা পটঙ্গীয়া. জছ্নাৰ ঝিটাছ. চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০২২
৩৫) Bhabha, Homi K.The Loction of Culture, Routledge, London, 1994
৩৬) কলিতা, অৰূপা পটঙ্গীয়া. জছ্নাৰ ঝিটাছ. চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০২২
৩৭) শৰ্মা,ৰুদ্ৰাণী. কাঁহিবুনৰ মালিতা, পূৰ্বায়ণ প্ৰকাশ,২০১৭
৩৮) তদেৱ
৩৯) Said,Edward..Reflections on Exile and Other Essays.Harvard University Press, 2000
৪০) শৰ্মা, ৰুদ্ৰাণী. কাঁহিবুনৰ মালিতা, পূৰ্বায়ণ প্ৰকাশ, ২০১৭
৪১) তদেৱ

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

অসমীয়া-বঙালীৰ সম্পৰ্কসূত্ৰ আৰু সন্তোষ কুমাৰ কৰ্মকাৰৰ উপন্যাস ‘শিপাৰ সন্ধানত’

শিল্পী শৰ্মা

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
(সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
বি.পি. চলিহা কলেজ, নগৰবেৰা)
৭৩৯৯১৩৯৭২৩
shilpisharma81569@gmail.com

ড° লুটফা হানুম ছেলিমা বেগম

অৱসৰপ্ৰাপ্ত সহযোগী অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
৮৮৭৬৫২১৬১৭
lutfahsbegum@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

অসমত অসমীয়া আৰু বঙালীৰ পাৰস্পৰিক সম্পৰ্ক আৰু বিদ্বেষৰ বিষয়টো ঔপনিৱেশিক সময়ৰে পৰা এটা চৰ্চিত বিষয়। ঐতিহাসিক দৃষ্টিকোণেৰে এই সম্পৰ্কত বৰ্তমানলৈ ভালেমান অধ্যয়ন হৈছে। কিন্তু সাহিত্যৰ মাজত এই বিষয়টোৱে কিদৰে ঠাই পাইছে সেই সম্পৰ্কত বৰ্তমানেও অধ্যয়নৰ যথেষ্ট থল আছে। বিশেষকৈ অসমত বাস কৰা এজন বঙালী লোকে প্ৰব্ৰজনকাৰীৰ পৰিচয় বহন কৰি গোটেই বিষয়টোক কিদৰে চায় সেই সম্পৰ্কে বিচাৰ কৰি চোৱা প্ৰয়োজন আছে। সন্তোষ কুমাৰ কৰ্মকাৰৰ **শিপাৰ সন্ধানত** উপন্যাসখনত দেশ বিভাজনৰ পিছত সাম্প্ৰদায়িক সংঘৰ্ষৰ বলি হৈ পূৱ পাকিস্তানৰ পৰা অসমত প্ৰৱেশ কৰা এটা পৰিয়ালৰে গোটেই জীৱন মনৰ মাজত কঢ়িয়াই ফুৰা নিৰাপত্তাহীনতাৰ অনুভৱ আৰু অসম আন্দোলনৰ সময়ত সন্মুখীন হোৱা অপ্ৰীতিকৰ পৰিস্থিতিৰ আভাস পোৱা যায়। অসমত বাস কৰা প্ৰব্ৰজনকাৰী বঙালী শ্ৰেণীটোৱে অনুভৱ কৰা নিৰাপত্তাহীনতা, অস্তিত্ব আৰু আত্ম পৰিচয়ৰ সংকট আদি দিশবোৰ উপন্যাসখনৰ মাজেৰে অতি সূক্ষ্ম ৰূপত প্ৰকাশ পাইছে। প্ৰব্ৰজনকাৰী সমাজখনৰ এজন ভিতৰুৱা সদস্য হিচাপে ঔপন্যাসিকৰ বৰ্ণনাত উল্লিখিত দিশবোৰ অতি স্পষ্ট আৰু শক্তিশালী।

বীজ শব্দ ঃ

অসমীয়া, বঙালী, প্ৰব্ৰজন, পৰিচয়, অস্তিত্ব, নিৰাপত্তাহীনতা, জাতীয়তাবাদ, বিদ্বেষ ইত্যাদি।

অৱতৰণিকা ঃ

অসমৰ নৃতাত্ত্বিক ইতিহাস প্ৰব্ৰজনৰ ইতিহাস। অষ্ট্ৰলয়ড, মংগোলয়ড, ভূমধ্যসাগৰীয়, নৰ্ডিক আদি বিভিন্ন নৃগোষ্ঠী বিভিন্ন সময়ত অসমলৈ প্ৰব্ৰজন কৰি আহি পাৰস্পৰিক শক্তি প্ৰয়োগৰ দ্বাৰা কেতিয়াবা এটা নৃগোষ্ঠীয়ে আনটো নৃগোষ্ঠীক বিতাড়িত কৰিছে আৰু কেতিয়াবা সহ-অৱস্থানেৰে অসমভূমিত বসবাস কৰিছে। এনে প্ৰাগৈতিহাসিক প্ৰব্ৰজনৰ উপৰি ঐতিহাসিক কালতো বিভিন্ন জাতি-গোষ্ঠী অসমলৈ আহিছে। কিন্তু ঔপনিৱেশিক কালৰ গণ প্ৰব্ৰজনৰ প্ৰতি অসমৰ স্থানীয় মানৱবৰ্গই প্ৰথমবাৰলৈ প্ৰতিক্ৰিয়া প্ৰকাশ কৰিবলৈ লয়। ঔপনিৱেশিক কালত ভাৰতৰ বিভিন্ন ঠাইৰ পৰা হোৱা গণ প্ৰব্ৰজনৰ ভিতৰত বংগৰ বাংলাভাষীসকলো অন্যতম আছিল। অসমৰ প্ৰশাসনিক কাম-কাজ, স্কুলৰ শিক্ষকতা, ৰে’লৱে-ডাক বিভাগৰ কাম আদিৰ বাবে ব্ৰিটিছে কলিকতাৰ পৰা বঙালী লোকসকলক অসমলৈ আনিছিল। পিছত ধান-মৰাপাট আদি খেতিৰ বাবে পূৰ্ববংগীয় বাংলাভাষী মুছলমানসকলকো অসমলৈ অনা হৈছিল। দেশ বিভাজনৰ পৰৱৰ্তী সময়ত আৰু বাংলাদেশৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ

সময়ছোৱাত সাম্প্ৰদায়িক সংঘৰ্ষৰ সন্মুখীন হৈ পূৱ পাকিস্তানৰ পৰা বহু বঙালী লোক অসমত আহি আশ্ৰয় লৈছিল। তদুপৰি ব্ৰহ্মদেশত ব্যৱসায়-বাণিজ্যসূত্ৰে বাস কৰা প্ৰবাসী বঙালী লোকসকলো দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ সময়ত বাৰ্মীজ জাতীয়তাবাদী লোকৰ বিদ্বেষ আৰু যুদ্ধৰ ভয়াবহ পৰিস্থিতিৰ সন্মুখীন হৈ অসমত আশ্ৰয় গ্ৰহণ কৰিছিল। এনেদৰে বিভিন্ন সময়ত অসমলৈ অহা বঙালীসকলৰ সংখ্যা বৃদ্ধি হোৱাৰ লগে লগে অসমীয়াই নিজৰ অস্তিত্ব বিপন্ন হোৱা বুলি অনুভৱ কৰিবলৈ লৈছিল। ফলশ্ৰুতিত অসমত সময়ে সময়ে বঙালী বিদ্বেষ আৰু আন্দোলনৰ সৃষ্টি হৈছিল। বিগত তিনিটা শতিকা ধৰি অসমৰ সমাজ-ৰাজনীতিক বিপুলভাৱে প্ৰভাৱিত কৰা এই বিষয়টোক লৈ গল্প-উপন্যাস আদি সৃষ্টিশীল সাহিত্যও ৰচনা হৈ আহিছে। প্ৰদত্ত গৱেষণা পত্ৰত সন্তোষ কুমাৰ কৰ্মকাৰৰ **শিপাৰ সন্ধানত** উপন্যাসখনত অসমত বাস কৰা বঙালীসকলৰ নিৰাপত্তাহীনতা, পৰিচয় আৰু অস্তিত্বৰ সংকট আদি বিভিন্ন দিশমূহ কিদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে সেই সম্পৰ্কে বিস্তৃত আৰু পুংখানুপংখ অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

পদ্ধতি আৰু পৰিসৰ ঃ

শ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা লৈছে। ঠাই বিশেষে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিকো এই গৱেষণাৰ বাবে গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

প্ৰদত্ত গৱেষণা পত্ৰত অসমীয়া-বঙালীৰ সম্পৰ্ক বিচাৰ কৰোঁতে মূলতঃ সন্তোষ কুমাৰ কৰ্মকাৰৰ নিৰ্বাচিত উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত দৃষ্টিভংগীৰহে বিশ্লেষণ কৰা হৈছে। অসমত অসমীয়া-বঙালীৰ সম্পৰ্ক আৰু বিৰোধৰ বিষয়টো যথেষ্ট বিস্তৃত যদিও ইয়াত ঐতিহাসিক প্ৰসংগ বিস্তাৰিত ৰূপত তুলি ধৰা হোৱা নাই। অসমত বাস কৰা এজন বঙালী লোকৰ মানসিক জগতখনহে নিৰ্বাচিত উপন্যাসখনৰ আধাৰত পোহৰলৈ আনিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

অসমীয়া - বঙালীৰ সম্পৰ্কসূত্ৰ ঃ

ঔপনিৱেশিক শাসনে অসমক বহিঃবিশ্বৰ সৈতে সম্পৰ্কিত কৰাৰ ক্ষেত্ৰত এক নতুন গতিৰ সৃষ্টি কৰিছিল। আহোম শাসনৰ কালতেই অসমলৈ কোচবিহাৰ, নৱদ্বীপ আদি ঠাইৰ পৰা পূজা-পাতলৰ সৈতে জড়িত ব্ৰাহ্মণ লোকসকলৰ আগমন হৈছিল। কিন্তু ঔপনিৱেশিক শাসনৰ সময়ত অসমলৈ হোৱা প্ৰব্ৰজনে বিশেষ মোৰ লয়। ভাৰতৰ বিভিন্ন ঠাইৰ পৰা অসমলৈ অহা লোকসকলৰ ভিতৰত বঙালী লোকসকলো আছিল। পোনপ্ৰথমে ব্ৰিটিছে শাসন কাৰ্য চলাবলৈ কেৰাণী-মহৰী আদি কামৰ বাবে কলিকতাৰ পৰা বহুসংখ্যক বঙালী লোক অসমলৈ আনিছিল। পিছলৈ প্ৰশাসনিক ক্ষেত্ৰখনৰ বিভিন্ন পদবীৰ বাবে অনা পশ্চিমবংগৰ বঙালীসকলৰ উপৰিও ধান-মৰাপাটৰ খেতিৰ বাবে পূৰ্ববংগীয় বাংলাভাষী মুছলমানসকলক অসমলৈ অনা হৈছিল। এই প্ৰব্ৰজনৰ গতিধাৰা পৰৱৰ্তী শতিকাটোতো অব্যাহত আছিল। প্ৰসূন বৰ্মনে তেওঁৰ **অসম উপত্যকাত বঙালী প্ৰীতিৰ বীজ অংকুৰণ** গ্ৰন্থখনত উনবিংশ শতিকাত অসমলৈ অহা বঙালী লোকসকলৰ চাৰিটা শ্ৰেণীৰ কথা উল্লেখ কৰিছে—

(১) চাহ বাগিচাৰ প্ৰশাসনিক কাম-কাজত অহা লোকসকল
(২) ৰে'লৱে, ডাক, টেলিগ্ৰাফ, জল পৰিবহন আদি বিভাগত কাম কৰিবলৈ অহা বিষয়াসকল
(৩) শিক্ষক, চিকিৎসক, মুক্তিয়াৰ, আইনজীৱি আদি শ্ৰেণী
(৪) বিভিন্ন ব্যৱসায়সূত্ৰে অহা লোকসকল (বৰ্মন, ১৬)

১৮৩৬-১৮৭৩ চনৰ মাজৰ সময়ছোৱাত অসমৰ স্কুল-আদালতৰ পৰা অসমীয়া ভাষা আঁতৰাই বাংলা ভাষা প্ৰচলন কৰাৰ সময়ছোৱাত ইয়াৰ অন্তৰালৰ কাৰণ কলিকতীয়া বঙালীসকলৰ উচতনি বুলি যি মিথৰ প্ৰচলন হৈছিল তাৰ বাবেই প্ৰথমবাৰলৈ অসমীয়া মানুহৰ মাজত বঙালী বিদ্বেষী ভাৱৰ জন্ম হৈছিল। আনহাতে ইয়াৰ বিপৰীত ছবি এখনো দেখিবলৈ পোৱা গৈছিল। সেই সময়ত উচ্চশিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰখনৰ বাবে অসমীয়া শিক্ষিত চাম কলিকতীয়া সমাজখনৰ সৈতে জড়িত হৈ পৰিছিল। অসমীয়া আঢ্যৱন্ত আৰু মধ্যবিত্ত শ্ৰেণীৰ মুষ্টিমেয় লোকে সেই সময়ত কলিকতাত উচ্চশিক্ষা ল'বলৈ গৈছিল। সেইসকলৰ মাজত অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যক লৈ সচেতনতা জাগ্ৰত হোৱা পৰিলক্ষিত হ'লেও তেওঁলোকৰে আন এচামৰ মাজত বঙলা প্ৰীতিও দেখা পোৱা গৈছিল। প্ৰাক্-অৰুণোদয় যুগৰ পৰা জোনাকী যুগলৈ হলিৰাম ঢেকিয়াল ফুকন, যজ্ঞৰাম ফুকন, আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকন, লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা আদিয়ে প্ৰথম অৱস্থাত বাংলা ভাষাত সাহিত্য চৰ্চা কৰা সম্পৰ্কে জনা যায়। সেই সময়ছোৱাত অসমীয়া শিক্ষিতচামে বাংলা সাহিত্যৰ সৈতে নিকট সম্পৰ্ক ৰাখিছিল— "অসমৰ সম্ভ্ৰান্ত লোকসকল যেনেদৰে বঙলা সংবাদপত্ৰৰ গ্ৰাহক হৈছিল বংগদেশৰ কোনো জিলাতে তেনে দেখা নগৈছিল বুলি কোৱা হৈছে। আকৌ কলিকতাৰ বঙলা কাকতৰ সম্পাদকসকললৈ বঙালী মানুহৰ তুলনাত অসমীয়া মানুহৰ পৰা যোৱা চিঠিৰ সংখ্যা আছিল তুলনামূলকভাৱে বহু বেছি" (ভট্টাচাৰ্য্য, ৪৬)। আনহাতে

অসমীয়া নিৰক্ষৰ চহা মানুহখিনিৰ জাতীয় আৰু ভাষিক চেতনা প্ৰকৃত অৰ্থত সেই সময়ত গঢ়ি উঠিছিল বুলিব নোৱাৰি। ঔপনিৱেশিক শক্তিৰ বিৰুদ্ধে মাজে মধ্যে গঢ়ি উঠা সৰু-ডাঙৰ আন্দোলনবোৰৰ উদ্দেশ্য আছিল পৰাধীনতাৰ পৰা মুক্ত হোৱা। স্বাধীনতাৰ সপোন লাহে লাহে পূৰ্ণতাৰ পথলৈ অগ্ৰসৰ হোৱাত অসমীয়া মানুহৰ মনত জাতীয়তাবাদী চেতনাই লাহে লাহে ঠাই অধিকাৰ কৰিবলৈ ধৰে। এই চেতনাৰে আগুৱাই যোৱাৰ ক্ষেত্ৰত অসমীয়াসকলে প্ৰথমেই মুখামুখি হয় অসমত বাস কৰা বঙালীসকলৰ সৈতে। অসমীয়া জাতিৰ সৈতে প্ৰতিদ্বন্দিতামূলক অৱস্থানত থিয় হ'ব পৰাকৈ সেই সময়ছোৱাত বঙালীসকলকেই অসমীয়াই প্ৰত্যক্ষ কৰিছিল। অসমলৈ হোৱা প্ৰব্ৰজনৰ বিভিন্ন মানৱবৰ্গৰ তুলনাত বঙালীসকলেই আছিল সংখ্যাত সৰহ আৰু ভাষিক-সাহিত্যিক, সাংস্কৃতিক-অৰ্থনৈতিকভাৱে শক্তিশালী। সেইদৰে মধ্যবিত্ত বঙালীসকলৰ নিজৰ ভাষা-সাহিত্যক লৈ থকা আত্মৰভিতা অসমীয়াসকলে আৰম্ভণিৰে পৰা প্ৰত্যক্ষ কৰিছিল। অসমীয়া-বঙালীৰ মাজত এনে বিৰোধমূলক ভাৱাক্ৰান্ত পৰিৱেশ এটাৰ সূচনা হ'লেও সকলো সময়তে যে পৰস্পৰ পৰস্পৰৰ বৈৰীয়েই হৈ আছে তেনে নহয়। আৰম্ভণিৰে পৰা সাধাৰণ শ্ৰেণীৰ মাজত পাৰস্পৰিক সহযোগিতাও পৰিলক্ষিত হৈছিল। সেইদৰে বহু বংগমূলীয় লোকে অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনত অভূতপূৰ্ব বৰঙণি যোগাইছে।

সন্তোষ কুমাৰ কৰ্মকাৰৰ উপন্যাস শিপাৰ সন্ধানত ঃ

অসমীয়া-বঙালীৰ মাজৰ এনে তিক্ত-মধুৰ সম্পৰ্কক লৈয়ে একাধাৰে শিশু সাহিত্যিক, অনুবাদক, ঔপন্যাসিক সন্তোষ কুমাৰ কৰ্মকাৰ (১৯৫৩-২০২১)ৰ **শিপাৰ সন্ধানত** উপন্যাসখন ৰচিত হৈছে। তদুপৰি ৮০ৰ দশকৰ বিদেশী বিতাড়ন আন্দোলন আৰু ইয়াৰ পৃষ্ঠভূমিত অসমত বাস কৰা আন আন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ পৰিচয়ৰ সংকট আৰু শিপা সন্ধানৰ ইতিহাসো উপন্যাসখনৰ মূল বিষয়। উপন্যাসখনত ঔপন্যাসিকগৰাকীৰ আত্মজৈৱনিক উপাদানো নিহিত থকা যেন বোধ হয়। ঔপন্যাসিকগৰাকীয়ে বৰপেটাৰ পৰা উজনি অসমৰ শিৱসাগৰ জিলাত অধ্যাপনা কৰিবলৈ গৈ এজন পূৰ্ববংগীয় মূলৰ বঙালী হিচাপে সন্মুখীন হোৱা বিভিন্ন অভিজ্ঞতাৰ ছাঁ উপন্যাসখনৰ অমল চৰিত্ৰটোৰ মাজত বিচাৰি পোৱা যায়। দেশ বিভাজনৰ পৰৱৰ্তী সময়ত পূব পাকিস্তান (বৰ্তমানৰ বাংলাদেশ)ৰ পৰা সাম্প্ৰদায়িক সংঘৰ্ষৰ সন্মুখীন হৈ অমলৰ পিতৃপুৰুষ ধৰ্মৰক্ষাৰ স্বাৰ্থত অসমত আশ্ৰয় লৈছিলহি। ব্যৱসায়ৰ পাতনি মেলি অসমত পৰিয়ালটোৱে আৰ্থিকভাৱে এটা সন্তোষজনক অৱস্থাৰ মাজত জীৱন নিৰ্বাহ কৰিলেও অমলৰ দেউতাকে আশা কৰিছিল যাতে অমলে বেংকৰ চাকৰি কৰি পশ্চিমবংগলৈ বদলি লৈ তাতেই পৰিয়ালটো স্থায়ীভাৱে থিতাপি লোৱাৰ চেষ্টা কৰে। কিন্তু দেউতাকৰ আশাত চেঁচাপানী ঢালি অমলে শিৱসাগৰৰ এখন কলেজত অধ্যাপনা কৰিবলৈ যায়। কোচবিহাৰত থকা মাকৰ বাল্যকালৰ বান্ধৱীৰ ছোৱালী স্বাতীলেখাৰ সৈতে বিয়াত বহি অমলে শিৱসাগৰত সংসাৰ আৰম্ভ কৰিলেও প্ৰসৱজনিত কাৰণত স্বাতীলেখাই কোচবিহাৰৰ মাকৰ ঘৰত প্ৰাণ হেৰুৱায়। সিহঁতৰ প্ৰেমৰ চিনস্বৰূপে অমলৰ বাবে এৰি যায় পুত্ৰ সন্তান বাবুক। মৃত্যুৰ পিছত অমলে স্বাতীলেখাৰ নিথৰ মুখখন চোৱাৰ বাবে সাহস কৰিব নোৱাৰিলে আৰু সদ্যজাত পুত্ৰৰ মুখখনো নোচোৱাকৈ কোচবিহাৰৰ পৰা উভতি আহে। স্বাতীলেখাৰ অনিচ্ছা সত্বেও মাকৰ লগত কোচবিহাৰলৈ পঠিয়াই দিয়াৰ বাবে অমলে মনে মনে নিজেই দোষবোধত ভুগিছিল। শেষত দুবছৰৰ ব্যৱধানত অমল কোচবিহাৰলৈ নিজৰ পুত্ৰক চাবলৈ আহে আৰু সহকৰ্মী স্মৃতিৰেখাৰ সৈতে গঢ় লৈ উঠা মানসিক সম্পৰ্কটোক সামাজিক স্বীকৃতিৰে সাকাৰ ৰূপ দিয়াৰো সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ কৰে।

উপন্যাসখনত অমলৰ ব্যক্তিগত জীৱন কাহিনীৰ ফাঁকে ফাঁকে এজন বাংলাভাষী লোক হিচাপে অসমৰ সমাজ জীৱনত আত্ম প্ৰতিষ্ঠাৰ কঠোৰ সংগ্ৰাম আৰু ভিন্ন অভিজ্ঞতাৰ দিশটোক ঔপন্যাসিকগৰাকীয়ে অতি গুৰুত্বসহকাৰে প্ৰকাশ কৰিছে। লগতে বৃহত্তৰ অসমীয়া জাতি গঠনৰ বিশ্লেষণ কৰি ইয়াৰ ভাঙোনমুখী পশ্চাদপ্ৰসাৰণৰ গতিধাৰাকো উদঙাই দেখুওৱা হৈছে। অসমীয়াসকলৰ জাতীয়তাবাদী চেতনাৰ মাজতে যে অসমীয়া জাতি ভাঙোনৰ মূলসূত্ৰ প্ৰোথিত হৈ আছিল সেই বিষয়টোকো ঔপন্যাসিকগৰাকীয়ে নিৰপেক্ষ দৃষ্টিভংগীৰে আৰু অতি যুক্তিনিষ্ঠভাৱে বিশ্লেষণ কৰি দেখুৱাইছে।

নিৰাপত্তাহীনতা, অস্তিত্বৰ সংকট আৰু আত্ম পৰিচয়ৰ প্ৰসংগ ঃ

উপন্যাসখনত অমলৰ পিতৃপুৰুষ ১৯৫২ চনতে পূৱ পাকিস্তানৰ পৰা সাম্প্ৰদায়িক সংঘৰ্ষৰ বলি হৈ সম্পূৰ্ণ আইনী অনুজ্ঞাৰে অসমত প্ৰৱেশ কৰিছিল। কিন্তু অসমত বাস কৰা সুদীৰ্ঘ কালৰ পিছতো অমলৰ পিতৃয়ে মানসিকভাৱে নিৰাপদ অনুভৱ কৰা নাই। ইয়াৰ বাবে অমলে দেউতাকক দোষাৰোপ কৰিলেও অসমৰ মাটিত ব্যৱসায়-বাণিজ্যৰে প্ৰতিষ্ঠিত কোনো স্থায়ী বঙালীয়েই যে নিজকে সম্পূৰ্ণ নিৰাপদ অনুভৱ কৰিব নোৱাৰে সেইকথা অমলে শিৱসাগৰলৈ যোৱাৰ পিছত বুজি উঠিছে। আনকি পিতৃয়ে নিৰাপত্তাহীনতাত ভোগা কথাটোক অমূলক বুলি প্ৰথম অৱস্থাত ভবা অমল সেই একে নিৰাপত্তাহীনতাৰ সন্মুখীন হৈছে শিৱসাগৰত থকা কালত, বিশেষকৈ ভায়েক সুবিমলক নিজৰ লগত ৰাখি পঢ়াবলৈ নিয়াৰ পিছত— "...দেউতা পূৰ্ব পাকিস্তানৰপৰা অসমলৈ আহিছিল সংকটমুক্ত হৈ জীয়াই থাকিবৰ বাবে। অসমত বসবাস কৰিবলৈ লৈ আৰ্থিকভাৱে মোটামুটি স্বচ্ছল হৈও দেউতা সেই সংকটৰ পৰা মুক্ত হ'ব নোৱাৰিলে। তাৰ বাবে দেউতাক বেয়া পাওঁ, গালি পাৰোঁ। কিন্তু মই নিজেও ইয়াৰ পৰা সম্পূৰ্ণভাৱে মুক্ত হ'ব পৰা নাই। সেয়েহে মোৰ মনতো আশংকাৰ সৃষ্টি হ'ল, সুবিমলক লৈ গৈছোঁ— শিৱসাগৰত তাৰ কিবা বিপদ হ'ব নেকি? যদি তেনেকুৱা কিবা হয়, মই তাক ৰক্ষা কৰিব পাৰিমনে?" (কৰ্মকাৰ, ৪৬)

প্ৰব্ৰজনকাৰী লোকৰ এনে নিৰাপত্তাহীনতাৰ অন্তৰালতো কিছুমান কাৰকে ক্ৰিয়া কৰে। প্ৰব্ৰজনৰ সময়ত বা ইয়াৰ পূৰ্বতে সন্মুখীন হোৱা পৰিস্থিতিৰ বাবে একধৰণৰ মানসিক অভিঘাত (trauma) মনত সঞ্চিত হৈ থাকিলেও নতুন ঠাইখনৰ স্বাভাৱিক পৰিৱেশ-পৰিস্থিতিত এই অভিঘাত ধীৰে ধাৰে পাতলি আহিবলৈ ধৰে। কিন্তু নতুন ঠাইখনত বৈষম্য আৰু সংঘৰ্ষজনিত পৰিৱেশৰ সঘন সন্মুখীন হ'লে এনে মানসিক অভিঘাতৰ পৰিমাণ বাঢ়ি যায় আৰু ইয়াৰ প্ৰভাৱ স্মৃতিত অধিক জীৱন্ত হৈ থাকে। ফলস্বৰূপে নিৰাপত্তাহীনতা, অস্থিৰতা, আত্ম বা গোষ্ঠীগত পৰিচয় সংকট আদি ভাৱে প্ৰব্ৰজনকাৰীৰ মনত মানসিক চাপৰ সৃষ্টি কৰে। প্ৰজন্মৰ ব্যৱধানত এনে চাপ কম-বেছি আৰু ভিন্ন স্বৰূপৰ হ'ব পাৰে। উপন্যাসখনত অমলৰ দেউতাক, শিৱসাগৰৰ ব্যৱসায়ী বিহাৰীলাল আদিৰ দৰে চৰিত্ৰৰ ক্ষেত্ৰত নিৰাপত্তাহীনতা, পৰিচয় সংকট আদিৰ বোধ অতি তীব্ৰ। অৱশ্যে ইয়াৰ কাৰণ অমূলক নহয়। ৬০ চনৰ ভাষা আন্দোলন, ৭২ৰ মাধ্যম আন্দোলন, ৮০ ৰ দশকৰ বিদেশী বিতাড়ন আন্দোলনৰ দৰে ঘটনাই অমলৰ পিতৃ বা বিহালীলালৰ দৰে বঙালী লোকক নিজৰ ইতিহাস পাহৰিবলৈ দিয়া নাই। সেয়েহে সকলো সময়তে তেওঁলোকে মনত কঢ়িয়াই ফুৰিছে নিৰাপত্তাহীনতাৰ অনুভৱ আৰু চ্ছিন্নমূল হোৱাৰ মানসিক যন্ত্ৰণা। ইয়াৰ বাবেই তেওঁলোক অসমীয়াসকলৰ প্ৰতি ক্ষোভিত— "নিজৰ ধৰ্ম-সংস্কাৰ ৰক্ষা কৰি নিৰাপদে থাকিম বুলি মাইগ্ৰেছ্ন লৈ চৈধ্য পুৰুষ থকা ভেটি-মাটি এৰি পাকিস্তানৰ পৰা হিন্দুস্তানৰ এই অসমলৈ আহিলোঁ। উনৈছ্শ বাৱনৰপৰা উনৈছ্শ সাতসত্তৰ— পঁচিছ বছৰ অসমত থাকি বুজিব পাৰিলোঁ, এই অসমখন আমাৰ নিচিনা হতভাগ্য বাঙালীহঁতৰ বাবে নহয়। ইয়াৰ মানুহে আমাক নিজৰ মানুহ বুলি নাভাবে। সিহঁতে আমাক 'বঙাল' বুলি গালি পাৰে। কিবা কথাত বেয়া পালেই 'বঙালে অসমখন খালে' বুলি কয়। অসমত থাকিলে তই নিজকে বাঙালী বুলি পৰিচয় দিব নোৱাৰ, অসমীয়াই কৰা অন্যায়ৰ প্ৰতিবাদ কৰিব নোৱাৰ, মূৰ দাঙি সিহঁতৰ লগত কথা ক'ব নোৱাৰ। অসমত থাকিলে আমি অসমীয়াৰ মাৰ খাই থাকিব লাগিব। অসমীয়াৰ দাস হৈ থাকিব লাগিব।" (কৰ্মকাৰ, ৫)

অসমীয়া আৰু বঙালীৰ মাজত থকা পাৰস্পৰিক বিদ্বেষৰ কাৰণসমূহ উপন্যাসখনত বস্তুনিষ্ঠভাৱে ফঁহিয়াই দেখুওৱা হৈছে। ৰসাস্বাদনত ব্যাঘাত নজন্মোৱাকৈ উপন্যাসৰ বৰ্ণনাৰ মাজত এনেধৰণৰ নিৰস আৰু গম্ভীৰ বিষয় এটাক প্ৰকাশ কৰিব পৰাটো ঔপন্যাসিকগৰাকীৰ বিশেষ দক্ষতা। ঔপন্যাসিকগৰাকী বংগমূলীয় হ'লেও অসমীয়াৰ প্ৰতি আক্ৰমণাত্মক আৰু পক্ষপাতদুষ্ট দৃষ্টিভংগী উপন্যাসখনৰ কোনো ঠাইতে পৰিলক্ষিত হোৱা নাই। অসমীয়া-বঙালীৰ পাৰস্পৰিক বিদ্বেষৰ কাৰণসমূহৰ কথা উল্লেখ কৰোঁতে বঙালীসকলৰ প্ৰতি অসমীয়াৰ বিদ্বেষৰ কাৰণো যে অমূলক নহয় সেইকথাও যুক্তিপূৰ্ণভাৱে উপন্যাসখনত তুলি ধৰা হৈছে। অসমীয়া-বঙালীৰ তিক্ত সম্পৰ্কৰ অন্তৰালৰ পাঁচটা কাৰণ উপন্যাসখনত দেখুওৱা হৈছে—

(১) ঔপনিৱেশিক শাসনত প্ৰশাসনৰ কামত অহা বঙালীসকলৰ নিৰংকুশ প্ৰভাৱে অসমীয়াৰ মনত বঙালী বিদ্বেষী ভাৱৰ জন্ম দিছিল।

(২)১৮৩৬-৭৩ চনলৈ অসমীয়াৰ সলনি অসমৰ স্কুল আদালতৰ ভাষা বাংলা হোৱাটো অসমীয়াসকলে বঙালী

বিষয়া-আমোলাৰ পৰামৰ্শত হোৱা বুলি ভাবিছিল।

(৩) বংগৰ আটাইতকৈ অনুন্নত জিলা শ্ৰীহট্টক অসমৰ সৈতে সংযোগ কৰাৰ ফলত অসমৰ ৰাজহৰ অধিক অংশ ধন শ্ৰীহট্টৰ উন্নয়নৰ বাবে ব্যয় হোৱাটোক লৈ অসমীয়াসকল অসন্তুষ্ট হৈছিল আৰু শ্ৰীহট্টক অসমৰ কেঞ্চাৰ বুলি গণ্য কৰিবলৈ লৈছিল।

(৪) দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ সময়ত অহা ব্ৰহ্মদেশৰ প্ৰবাসী বঙালী শৰণাৰ্থী আৰু দেশ বিভাজনৰ সময়ত পূৰ পাকিস্তানৰ পৰা অহা বঙালী শৰণাৰ্থীয়ে অসমত বঙালীৰ সংখ্যা অধিক বৃদ্ধি কৰে। তদুপৰি এই বঙালীসকলে ব্যৱসায়-বাণিজ্য আদি সকলো ক্ষেত্ৰতে অৰ্থনৈতিকভাৱে প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰাৰ বাবে তেওঁলোকৰ প্ৰতি লাহে লাহে অসমীয়া মানুহ ঈৰ্ষান্বিত হ'বলৈ লয়।

(৫) নিজৰ ভাষা-সাহিত্যক লৈ বঙালীসকলৰ মাত্ৰাধিক আত্মৰম্ভিতা আৰু অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ প্ৰতি থকা অনীহাৰ বাবেই অসমীয়াসকলে বঙালীসকলক আপোন বুলি ভাৱিব নোৱাৰে। (কৰ্মকাৰ, ১১৮-১১৯)

অসমীয়া আৰু বঙালী উভয়ৰে মনত আত্ম পৰিচয় আৰু অস্তিত্বৰ প্ৰতি থকা শংকাৰ বাবেই দৰাচলতে পৰস্পৰৰ মাজৰ বিদ্বেষ দীৰ্ঘকালীন। অৱশ্যে অমল, সুবিমলহঁতৰ প্ৰজন্মটোৰ গোটেই বিষয়টোক লৈ চিন্তা আৰু প্ৰতিক্ৰিয়া বেলেগ। অসমত সন্মুখীন হোৱা অপ্ৰীতিকৰ পৰিৱেশটোক অমলহঁতৰ প্ৰজন্মটোৱে পলায়ন কৰিব নোৱাৰা বাস্তৱ সত্য বুলি গ্ৰহণ কৰিছে আৰু তাৰ মুখামুখি হোৱাৰ বাবে নিজকে সাহসী কৰি তুলিছে। সাময়িকভাৱে নিৰাপত্তাহীনতাত ভুগিলেও বিৰূপ পৰিস্থিতিত সৈতে থিয় দি এই প্ৰজন্মই সমাধান সূত্ৰ বিচাৰিছে। অসমৰ দৰে ঠাইত নিজৰ শিপা মজবুত কৰাৰ বাবে কৰ্মৰ বাহিৰে যে আন কোনো উপায় নাই সেইকথা অমলৰ প্ৰজন্মটোৱে বুজি উঠিছে। সেয়েহে শিৱসাগৰত বিভিন্ন সময়ত, বিশেষকৈ অসম আন্দোলনৰ সময়ত বৈষম্যৰ সন্মুখীন হোৱা অমলে নিজৰ অস্তিত্ব প্ৰতিষ্ঠাৰ বাবে কৰ্মক আশ্ৰয় হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছে— "স্বাতী, জন্ম মোৰ অসমত। কিন্তু ইমান বছৰ পাছতো ইয়াত আমাৰ অধিকাৰবোৰ বিন্যস্ত হোৱা নাই। বিন্যস্ত হোৱা নাই মানে আমিয়েই আমাৰ অধিকাৰবোৰ সাব্যস্ত কৰিব পৰা নাই। কিয় পৰা নাই এইটো লৈ বহুত ভাবিলোঁ। ভাবি ভাবি মোৰ কি ধাৰণা হ'ল জানা— ইয়াত থাকিবলৈ হ'লে, মানুহ হিচাপে নূন্যতম সন্মান লৈ জীয়াই থাকিবলৈ হ'লে আমি কাম কৰিব লাগিব। কৰ্মেৰে যোগ্যতা প্ৰমাণ কৰি নিজৰ অধিকাৰ সাব্যস্ত কৰিব লাগিব। কৰ্মৰ জৰিয়তেহে আমি আমাৰ ৰুটটো দৃঢ় কৰিব লাগিব।" (কৰ্মকাৰ, ১৮৩)

উপন্যাসখনত দেৱব্ৰত বেজবৰুৱাৰ দৰে চৰিত্ৰ নতুন চিন্তা-ধাৰাৰ দ্যোতক। দেৱব্ৰতে জাতীয়তাৰ ক্ষুদ্ৰ সীমাক অতিক্ৰমি গোলকীয় পৰিচয়ক গ্ৰহণ কৰিব খোজে সম্পূৰ্ণ নতুন দৃষ্টিভংগীৰে। বিজ্ঞান-প্ৰযুক্তিৰ যুগটোত ক্ষুদ্ৰ পৰিসীমাৰ ভিতৰত কোনো জাতিয়ে নিজকে আবদ্ধ নাৰাখি প্ৰসাৰিত মনোভাৱেৰে সকলোকে গ্ৰহণ কৰাৰ কথা দেৱব্ৰত চৰিত্ৰটোৱে কৈছে। উপন্যাসখনৰ অনীল শইকীয়া, আমিনূৰ ইছলাম হাজৰিকা, স্মৃতিৰেখা বৰগোহাঁইৰ দৰে চৰিত্ৰই ক্ষুদ্ৰ জাতীয়তাবাদী চিন্তাৰ বিপৰীতে থিয় দিছে। এনেবোৰ চৰিত্ৰই অসম আন্দোলনৰ প্ৰতি সমৰ্থন আগ নবঢ়োৱাৰ বাবে অসমীয়া মানুহখিনিৰ বিৰোধমূলক ব্যৱহাৰৰো সন্মুখীন হ'বলগীয়া হৈছে।

অসম আন্দোলন আৰু স্বাধীন অসমৰ প্ৰংসগ ঃ

অসম আন্দোলনৰ সময়ছোৱাত বংগমূলীয় বাবেই অমলৰ দৰে অসমৰ বঙালী লোক অসমীয়াৰ বিদ্বেষৰ সন্মুখীন হৈছে। আনকি একেখন মহাবিদ্যালয়ত অধ্যাপনা কৰা সহকৰ্মীয়েই অমলৰ বিৰুদ্ধে বিদেশী বুলি গোচৰ তৰিছে। আন্দোলন এটা জাতিৰ জাতীয় ভেটি সুদৃঢ় কৰাৰ ভিত্তি হ'ব নোৱাৰে। অসম আন্দোলনৰ নেতৃত্ব বহনকাৰী বা সমৰ্থনকাৰী অসমীয়া ডেকাসকলৰ ভুলনীতিয়ে দৰাচলতে অসমীয়া জাতীয় অস্তিত্ব মজবুত কৰাৰ সলনি অসমীয়া জাতি গঠনক অধিক শিথিলহে কৰি তুলিলে। ক্ষুদ্ৰ জাতীয়তাবাদী চেতনাক্ৰান্ত ডেকাসকল আক্ৰোশী হৈ পৰাৰ লগে লগে ঔপনিৱেশিক কালৰে পৰা অসমত বাস কৰিবলৈ লোৱা প্ৰব্ৰজনকাৰীসকল অধিক সন্ত্ৰস্ত হৈ পৰে। বৈষম্যমূলক পৰিস্থিতিৰ মুখামুখি হৈ ইতিমধ্যে অসমীয়া ভাষা-সংস্কৃতিৰ ভিতৰচৰালৈ আগবঢ়োৱা তেওঁলোকৰ খোজ পশ্চাৎগামী হ'বলৈ ধৰে আৰু অসমীয়া জাতি জাতি গঠন প্ৰক্ৰিয়াত জাহ যোৱাৰ সম্ভাৱনীয়তাক বহুলাংশে হ্ৰাস কৰে। তদুপৰি অসমীয়া জাতি গঠন প্ৰক্ৰিয়াৰ ঐতিহাসিক সত্যক আওকাণ কৰি অসমীয়াকৰণেৰে সকলোকে সামৰি ল'বলৈ যোৱাৰ ফলত জনজাতীয় লোকসকলে নিজৰ ভাষা-সংস্কৃতি আৰু জাতীয় অস্তিত্বক লৈ শংকিত হৈ পৰে। সেয়েহে অসমীয়া ডেকাসকলৰ আৰ্হিৰে জনজাতীয় লোকসকলেও ভূমিৰ অধিকাৰৰ আন্দোলন আৰু পৰৱৰ্তী সময়ত পৃথক ৰাজ্যৰ দাবী তুলিবলৈ লয়— "অসমীয়া জাতিৰ অস্তিত্ব সংকটাপন্ন— এই আশংকাৰপৰা গঢ় লৈ উঠা বিদেশী বিতাড়ন আন্দোলন দেখি অসমৰ আন আন জনজাতিসকল নিজৰ জাতিৰ অধিকাৰ আৰু সুৰক্ষাৰ বিষয়ে

সচেতন হৈ পৰিছে। এতিয়া জনজাতিসকলে নিজকে অসমীয়া জাতিৰ অংশ বুলি নাভাৱে।” (কৰ্মকাৰ, ১১৮)

বিদেশী বিতাড়ন বা স্বাধীন ৰাষ্ট্ৰ গঠন অসমৰ বাবে যে একেবাৰে ভিত্তিহীন কথা সেইকথা ঔপন্যাসিকে অনীল শইকীয়া চৰিত্ৰটোৰ মাধ্যমেৰে প্ৰকাশ কৰিছে। স্বাধীন ৰাষ্ট্ৰ গঠনৰ বাবে একাংশ অসমীয়া ডেকাই যি আত্মঘাতী সশস্ত্ৰ সংগ্ৰামত নামি নিৰীহ অসমীয়া লোকৰ জীৱনৰ স্বাভাৱিক ছন্দ হৰণ কৰিছিল তাৰ সমালোচনাও উপন্যাসখনত যুক্তিনিষ্ঠতাৰে আগবঢ়োৱা হৈছে। অসমত থকা আন আন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ লোকক বাদ দি যে অসমীয়া মানুহ স্বয়ংসম্পূৰ্ণ নহয় সেই কথা অনীল শইকীয়াৰ দৰে চৰিত্ৰই উপলব্ধি কৰিছে— “মানে এটা জাতি স্বয়ংসম্পূৰ্ণ হ'বলৈ হ'লে সমাজ জীৱনৰ সকলো পেছাত নিজৰ সম্প্ৰদায়ৰ মানুহ থাকিব লাগে। মুচি-মেটৰ, ধোবা-নাপিত, ঠেলা-ৰিক্সা চলোৱা, কমাৰ-কুমাৰ, শ্ৰমিক-কৃষক, কেৰাণী-মহৰীৰ পৰা দেশৰ প্ৰতিৰক্ষাৰ বাবে চিপাহী-চন্তৰী, ট'প-এক্সজিকিউটিভৰ লগতে পাণ্ডিত্য থকা শিক্ষক, অধ্যাপক, সাহিত্যিক-দাৰ্শনিক, ৰাজনৈতিক-অৰ্থনীতিবিদ...সকলো। কিন্তু অসমীয়াই মুচি-মেটৰৰ কাম কৰেনে? অসমীয়াৰ ভিতৰত কেইজন ধোবা-নাপিত? কেইজন অসমীয়াই ঠেলা বা ৰিক্সা চলায়? বজাৰ-ঘাটত যে সৰু সৰু ব্যৱসায় কৰা... আলু-পিয়াজৰ বেপাৰী, হাঁহ-কুকুৰাৰ বেপাৰী, কচাই, মুচি-মেটৰ...সিহঁতৰ ভিতৰত কেইটা অসমীয়া? তদুপৰি কৃষি উৎপাদনৰ ক্ষেত্ৰত চাহবাগানৰ শ্ৰমিক, ধান-মৰাপাট উৎপাদনৰ ক্ষেত্ৰত পূৰ্ব বংগীয় মূলৰ মুছলমানৰ বাহিৰে বেলেগ জাতি-গোষ্ঠীৰ কথা ভাবিব পাৰেনে? এওঁলোকক বাদ দি অসমীয়া জাতিটো চলিব পাৰিবনে?” (কৰ্মকাৰ, ৯১)

উপসংহাৰ ঃ

শিপাৰ সন্ধানত উপন্যাসখনত অসমীয়া-বঙালীৰ সম্পৰ্কটো যুক্তিৰ ভেটিত অতি নিৰহ নিপানীকৈ ঔপন্যাসিকগৰাকীয়ে বিচাৰ কৰি দেখুৱাইছে। ঐতিহাসিক আৰু ৰাজনৈতিক দিশৰ পৰা এই বিষয়টোৰ অধ্যয়ন নতুন নহ'লেও সাহিত্য বিচাৰৰ মাপকাঠিৰে বিচাৰ কৰাৰ পৰম্পৰা কিছু নতুন। পাশ্চাত্যৰ প্ৰব্ৰজন অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰখনত সাহিত্যৰ মাজত ইয়াৰ অনুসন্ধান জনপ্ৰিয় হৈ উঠে বিংশ শতিকাৰ আশীৰ দশকৰ ফালে। সাহিত্যত প্ৰব্ৰজনৰ বহু অলিখিত কাহিনী, প্ৰব্ৰজনকাৰীৰ মানসিক জগতখনৰ অনালোকিত খবৰ সঞ্চিত হৈ থাকে। সেয়েহে প্ৰব্ৰজনৰ প্ৰকৃত স্বৰূপ উদ্ঘাটনত সাহিত্য এক বিশেষ সমল। কৰ্মকাৰৰ উপন্যাসখনৰ পৰাও অসমীয়া-বঙালীৰ তিক্ত-মধুৰ সম্পৰ্কৰ বহু দিশ অমল চৰিত্ৰৰ মনৰ চকুৰে আৱিষ্কাৰ কৰিব পৰা গ'ল। বিশেষকৈ অসমত বাস কৰা বঙালীসকলৰ মানসিক স্থিতি, সমাজ জীৱনৰ বিভিন্ন স্তৰত বিভিন্ন ধৰণে সন্মুখীন হোৱা অনাকাংক্ষিত পৰিস্থিতি, 'অন্য' অনুভৱে সৃষ্টি কৰা মানসিক সংকোচন ইত্যাদি বিভিন্ন দিশ উপন্যাসখনৰ অধ্যয়নৰ যোগেদি পোহৰলৈ আহিছে। ❑

প্ৰসংগ উৎস ঃ

১) বৰ্মন, প্ৰসূন। *অসম উপত্যকাত বঙালী ঃ প্ৰীতিৰ বীজ অংকুৰণ*। অসম পাবলিচিং কোম্পানী। গুৱাহাটী। ডিচেম্বৰ, ২০১৮। পৃ. ১৬
২) ভট্টাচাৰ্য্য, সতীশ চন্দ্ৰ। *অৰুণোদয় যুগৰ সাহিত্য ঃ অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতি*। নতুন অসম। গুৱাহাটী। প্ৰথম প্ৰকাশ। নৱেম্বৰ, ২০০১। পৃ. ৪৬
৩) কৰ্মকাৰ, সন্তোষ কুমাৰ। *শিপাৰ সন্ধানত*। অসম পাবলিচিং কোম্পানী। গুৱাহাটী। প্ৰথম প্ৰকাশ। নৱেম্বৰ, ২০১৬। পৃ. ৪৬
৪) উল্লিখিত, পৃ. ৫
৫) উল্লিখিত, পৃ. ১১৮-১১৯
৬) উল্লিখিত, পৃ. ১৮৩
৭) উল্লিখিত, পৃ. ১১৮
৮) উল্লিখিত, পৃ. ৯১

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

কৰ্মকাৰ, সন্তোষ কুমাৰ। *শিপাৰ সন্ধানত*। অসম পাবলিচিং কোম্পানী। গুৱাহাটী। প্ৰথম প্ৰকাশ। নৱেম্বৰ, ২০১৬
বৰ্মন, প্ৰসূন। *অসম উপত্যকাত বঙালী ঃ প্ৰীতিৰ বীজ অংকুৰণ*। অসম পাবলিচিং কোম্পানী। গুৱাহাটী। ডিচেম্বৰ, ২০১৮
বিশ্বাস, সুকুমাৰ। *আসামে ভাষা আন্দোলন ও বাঙালি প্ৰসঙ্গ ঃ ১৯৪৭-১৯৬১*। পাৰুল প্ৰকাশনী প্ৰাইভেট লিমিটেড। কলকাতা। দ্বিতীয় পুনৰ্মুদ্ৰণ। ২০২৪।
ভট্টাচাৰ্য্য, সতীশ চন্দ্ৰ। *অৰুণোদয় যুগৰ সাহিত্য ঃ অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতি*। নতুন অসম। গুৱাহাটী। প্ৰথম প্ৰকাশ, নৱেম্বৰ, ২০০১
মহন্ত, প্ৰফুল্ল। *অসমীয়া মধ্যবিত্ত শ্ৰেণীৰ ইতিহাস*। পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ। গুৱাহাটী। চতুৰ্থ সংস্কৰণ। জানুৱাৰী, ২০২১
Abouddahab, Redouance & Sibbhan Brownlie. Editors. *Figures of Migrant : The Roles of Literature and The Arts in Representing Migration*. Routledge, Taylor and Francies Group. New York and London. First Published. 2022.
Frank, Soren. Migration and Literature : Gunter Grass, Milan Kundera, Salman Rushdie and Jan Kjaerstad. New York, Palgrave Macmillan. 2008.

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

শংকৰদেৱ আৰু গোপাল আতাৰ সাঁচিপতীয়া নাট্য পুথিৰ আংগিক বিচাৰ

মমী দত্ত

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়
মাজুলী-৭৮৫১০৪ (অসম)
৬০০০০৪৩৭০৬
momidutta556@gmail.com

ড° উৎপল নাৰায়ণ গোস্বামী

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়
মাজুলী-৭৮৫১০৪ (অসম)
৯৮৫৪৮১১৬৩৮
utpalngoswami123@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

শংকৰদেৱ আৰু গোপাল আতাৰ দ্বাৰা ৰচিত নাটসমূহে অসমীয়া ভাষা, সাহিত্য, সংস্কৃতি আৰু অসমীয়া জাতিৰ ইতিহাস সমৃদ্ধ কৰি আহিছে। লগতে আংগিকগত দিশ যেনে- ৰস, ছন্দ, অলংকাৰ আদিৰ প্ৰয়োগৰ ফলত বৃদ্ধি পোৱা নাটসমূহৰ সাহিত্যিক সৌন্দৰ্যৰ বাবেও সাহিত্যৰ ইতিহাসত নাটসমূহে সুকীয়া পৰিচয় লাভ কৰিছে। শংকৰদেৱ আৰু গোপাল আতাৰ নাটসমূহৰ ভাষা আছিল প্ৰাচীন অসমীয়া। এই নাটসমূহ পুৰণি পুথিসমূহৰ লিপি আছিল কাইথেলী, গড়গঞা আৰু লহকৰী। পাছৰ পৰ্যায়ত বিভিন্ন সময়ত ভিন্নজন অনুলিপিকাৰ বা নকলকাৰৰ সহায়ত এই পুথিসমূহৰ প্ৰতিলিপি কৰা হৈছিল আৰু লাহে লাহে নাটৰ পুথিসমূহৰ ছপা ৰূপৰ প্ৰচাৰ হ'ল। পুথিসমূহৰ প্ৰতিলিপি কৰাৰ সময়ত দৃষ্টিগত, মনোগত, অজ্ঞতাবশঃত আদি বিভিন্ন কাৰণত পুথিসমূহত বৰ্ণবিন্যাসগত বহুবোৰ ভুল সোমাই পৰিল। যাৰ ফলত সাঁচিপতীয়া পুথিৰ পৰা হুবহু ছপা কৰা পুথিসমূহতো বৰ্তমানেও বৰ্ণবিন্যাসৰ সমস্যা দেখা যায়, যিয়ে বহু ক্ষেত্ৰত অন্তৰ্নিহিত শব্দৰ বিপৰীতে পাঠকক বা গৱেষকক বিমোৰত পেলাই। গতিকে আলোচ্য গৱেষণা পত্ৰখনিত শংকৰদেৱ আৰু গোপাল আতাৰ সাঁচিপতীয়া নাটৰ পুথিৰ আংগিক বিচাৰ মূলৰ কাষ ছপা পুথিসমূহৰ জৰিয়তে আগবঢ়োৱা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ

ৰস, অলংকাৰ, ছন্দ, সাঁচিপাতৰ পুথি, লিপি আদি।

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

আমি বৰ্তমানে অধ্যয়ন কৰি থকা আধুনিক ছপা ৰূপৰ মূল হ'ল প্ৰাচীন পাণ্ডুলিপিসমূহ। এই পাণ্ডুলিপিৰ সহায়তেই আমি শংকৰদেৱ, গোপাল আতা আদিৰ ৰচনাৰাজিসমূহ বৰ্তমানে অধ্যয়ন কৰিব পাৰিছোঁ। শংকৰদেৱ আৰু গোপাল আতাই মূলতঃ সাঁচিপাততেই সাহিত্য ৰচনা কৰিছিল। সেই সাহিত্যসমূহ আছিল ৰস, ছন্দ, অলংকাৰ আদিৰ দৰে আংগিকেৰে সমৃদ্ধ। সাঁচিপতীয়া পুথিৰ পৰা ক্ৰমবিৱৰ্তনৰ মাজেৰে বহু বছৰ অতিক্ৰম কৰি ভাষাটোৱে বৰ্তমানৰ ৰূপ পৰিগ্ৰহণ কৰাৰ পাছতেই আংগিকৰ ব্যৱহাৰ লাহে লাহে কমি আহিল। যিয়েই নহওক শংকৰদেৱ আৰু গোপাল আতাৰ নাটত আংগিকৰ প্ৰয়োগ কেনেদৰে হৈছিল সেই বিষয়ক আলোচনাই আমাৰ আলোচনা পত্ৰখনিৰ মূল বিচাৰ্য বিষয়।

০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব ঃ

আলোচ্য গৱেষণা পত্ৰখনিত শংকৰদেৱ আৰু গোপাল আতাৰ নাটত আংগিকৰ আলোচনাক গুৰুত্ব প্ৰদান কৰা হ'ব।

০.২ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা পত্ৰখনিত অধ্যয়নৰ পদ্ধতি হিচাপে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ ব্যৱহাৰ কৰা হ'ব।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

গৱেষণা পত্ৰখনিত অধ্যয়নৰ পৰিসৰত শংকৰদেৱ আৰু গোপাল আতাৰ সাঁচিপতীয়া নাটৰ পুথিৰ আংগিক দিশৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা হ'ব।

২.০ সাহিত্যৰ আংগিক ঃ

সাহিত্যত আংগিক দিশ মানে সেইসমূহ, যিয়েই সাহিত্যকৰ্মৰ বাহ্যিক ৰূপ, প্ৰকাশভংগী আৰু গঠন শৈলীত প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰে। ইয়াৰ অন্তৰ্গত উপাদানসমূহৰ ভিতৰত ভাষা, ছন্দ, অলংকাৰ, ৰস, প্ৰতীক, চিত্ৰকল্প, প্লট, বৰ্ণনাৰীতি আদি। প্ৰত্যেক সাহিত্যতে বিষয়বস্তু হ'ল আত্মা আৰু আংগিক হ'ল সাহিত্যৰ দেহ সদৃশ। যাৰ সুপ্ৰয়োগৰ ফলত সাহিত্য অধিক আকৰ্ষনীয় আৰু নান্দনিক হৈ পৰে। সাহিত্যৰ আংগিকসমূহৰ ভিতৰত শব্দ চয়ন, বাক্য গাঁথনি আৰু বৰ্ণনাৰীতিক ভাষা আৰু শৈলীৰ ভিতৰত ধৰা হয়। ধ্বনি আৰু লয়ৰ সুষম বিন্যাসৰ বাবে ছন্দ আৰু তাল, ভাষাৰ সৌন্দৰ্য বৃদ্ধিৰ বাবে উপমা, ৰূপক আদিৰ ব্যৱহাৰ, কাহিনীৰ বিকাশৰ বাবে গঠনশৈলী আৰু ভিন্ন ভাৱৰ প্ৰকাশৰ বাবে প্ৰকাশভংগীক ধৰা হয়।

৩.০ শংকৰদেৱ আৰু গোপাল আতাৰ সাঁচিপতীয়া নাটৰ পুথিৰ আংগিক বিচাৰ ঃ

সাহিত্যৰ আংগিকসমূহৰ ভিতৰত শংকৰদেৱ আৰু গোপাল আতাৰ নাটত ৰস, ছন্দ আৰু অলংকাৰৰ সৰ্বাধিক ব্যৱহাৰ দেখা যায়।

শংকৰদেৱৰ নাটত নৱৰসৰ প্ৰয়োগ-বিশ্বনাথ কবিৰাজৰ মতে 'বাক্যং ৰসাত্মকং কাব্যম' সংস্কৃত অলংকাৰ শাস্ত্ৰত উল্লিখিত শৃঙ্গাৰ, কৰুণ, বীৰ, হাস্য, অদ্ভুত, বীভৎস, ৰৌদ্ৰ, ভয়ানক আৰু শান্ত ন বিধ ৰসৰ প্ৰায়বোৰেই শংকৰদেৱ আৰু গোপাল আতাৰ নাটত সমাহাৰ ঘটিছে যদিও ইয়াত ভক্তি ৰসৰহে প্ৰাধান্যতা বেছি।

বীৰ ৰস ঃ শংকৰদেৱৰ অংকীয়া নাটবোৰৰ মাজত বীৰ ৰসৰ প্ৰয়োগো দেখা যায়। 'ৰুক্মিণী-হৰণ' নাটত ৰুক্মিণীক পলুৱাই অনাৰ পাছত শ্ৰীকৃষ্ণৰ লগত আন আন ৰজা সকলৰ যুদ্ধ, ৰুক্মী আৰু কৃষ্ণৰ মাজত হোৱা যুদ্ধৰ বৰ্ণনাত বীৰ ৰসৰ উদ্ৰেক ঘটিছে। যেনে -

'হাতে শৰ ধনু ধৰি সৱ ধাৱে।
কম্পিত মেদনী এ পদ ঘাৱে'।

ৰামৰ সংলাপত প্ৰকাশ পোৱা বীৰ ৰস - 'আহে প্ৰাণপ্ৰিয়ে, হামাক আগু ওহি ৰাজাসৱ কোন পতঙ্গ, জৈচে সিহংক আগে ক্ষুদ্ৰ হৰিণ। ইহা জানি ভয়, শোক চাড়হ। দেখহ পাপী ৰাজাসৱক জৈচে শৃগালক এই খনে খেদাৱব'।

'ৰুক্মিণী হৰণ' নাটকখনত শ্ৰীকৃষ্ণ আৰু ৰুক্মীৰ মাজত হোৱা কাজিয়াখনক মাজেদিও বীৰ বসৰ উদ্ৰেক ঘটিছে। যেনে-

'হাতে মুঠি ধৰি ৰুক্মী কুমাৰ।
কৃষ্ণক হৃদয়ে কয়ল প্ৰহাৰ।।
তাহে প্ৰহাৰে হাসি যদুনাথে।
ধৰল কেশে কেশৰ ৰাম হাতে।।
ঘন্টা লাড়িঘাৰ কৰয় মোড়।
ৰুক্মীৰ হৃদয়ে মাৰল গোড়'।।

'পাৰিজাত হৰণ' নাটকত কৃষ্ণৰ লগত নৰকাসুৰ আৰু ইন্দ্ৰৰ মাজত হোৱা যুদ্ধৰ বৰ্ণনাত বীৰ ৰসৰ উদ্ৰেক ঘটিছে। উদাহৰণ স্বৰূপে - নৰকাসুৰ আৰু শ্ৰীকৃষ্ণৰ মাজত হোৱা যুদ্ধৰ বৰ্ণনাত বীৰ ৰসৰ প্ৰকাশ ঘটিছে।

পাৰিজাত হৰণ নাটত কৃষ্ণ আৰু ইন্দ্ৰৰ মাজত হোৱা যুদ্ধৰ বৰ্ণনাৰ মাজেৰেও বীৰ ৰসৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। যেনে-

'কৰু শৰ সত্বৰ মুৰাৰী।
দেখি তাহেক হৰি কৰে
শাৰঙ্গ ধৰি ছেদি বাণগণ
হৰলি চেতন ইন্দ্ৰক হৃদয়'।

'ৰামবিজয় ' নাটত ৰামে বিভিন্ন অসুৰ ৰাক্ষসী তাড়কা, মাৰীচ, সুবাহু আদিক বধ কৰা আৰু সীতাৰ সয়ম্বৰত ৰজাসকলৰ লগত যুদ্ধ কৰি পৰাস্ত কৰা আদি এইবোৰত বীৰ ৰসৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। যেনে-

'বুলিয়ে নিৰ্ভয়ে যোৰল বাণ।
তাড়কা হৃদয়ে কৰু সন্ধান।।
পড়ল পিশাচী তেজি আটাস।
বজ্ৰপাতে জৈচে লোক তৰাস।'

আনহাতে, সীতাৰ স্বয়ম্বৰত ৰজাসকলক পৰাস্ত কৰি ৰামে হৰ-ধনু ভঙ্গ কৰা সময়ত আৰু পৰশুৰামৰ দৰ্পচূৰ্ণ কৰা সময়ত বীৰ ৰস প্ৰকাশ পাইছে।

শৃঙ্গাৰ ৰস ঃ 'ৰামবিজয়' নাটৰ মূল কাহিনীৰ অংশত থকা ভটিমা দুটিৰ জৰিয়তে। ৰাম আৰু সীতাৰ ৰূপ-গুণৰ বৰ্ণনা কৰোতে শৃঙ্গাৰ ৰস প্ৰকাশিত হৈছে। তদুপৰি, ৰাম-সীতাৰ মিলন আৰু বিবাহ কাৰ্যত শৃঙ্গাৰ ৰসৰ উদ্ৰেক ঘটিছে। 'ৰামবিজয়' নাটকতো শৃংগাৰ ৰসৰ প্ৰয়োগ দেখা যায়। শংকৰদেৱে ৰাম সীতাৰ ৰূপ বৰ্ণনা, সীতাই ৰামক দেখা আৰু ৰাম সীতাৰ মিলনৰ বৰ্ণনা কৰোঁতে এই ৰসৰ সুন্দৰ প্ৰয়োগ ঘটিছে-ৰাম লক্ষ্মৈণ ঋষি বিশ্বামিত্ৰৰ সৈতে মিথিলালৈ যাওঁতে সীতাৰ ৰূপ লাৱণ্যৰ কথা শুনি ৰামৰ মন যে চঞ্চল হৈ পৰিছিল এই কথা বুজাবলৈ নাটখনত

ব্যৱহাৰ কৰা গীতটোৰ জৰিয়তে শৃংগাৰ ৰসৰ উদ্ৰেক ঘটিছে। যেনে -

'শুনিয়ে ৰমণীক কাহিনী মিলল মোহ মুৰাৰি।
ভাৱ ভিন্নভীত ভেলি কিঞ্চিত চিত্ত মদন বিগাৰি।।'

সীতাৰ সয়ম্বৰত উপস্থিত হোৱা ৰামৰ ৰূপ লাৱণ্যৰ বিষয়ে সখী কনকাৱতীৰ মুখৰ পৰা সীতাই শুনাৰ লগে লগে সীতাৰ মনত কেনেধৰণৰ ভাৱ অনুভূতি জাগি উঠিছিল তাৰ বৰ্ণনা কৰিবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা গীতটোৰ জৰিয়তেও শৃংগাৰ ৰস প্ৰকাশ পাইছে। যেনে-

'স্বামীক চৰণ চিত্ত থিৰ চিন্তিয়ে, নয়না মুদি ৰহু মাই।
প্ৰেম পৰশৰস ৰাজনন্দিনী জেছে মানস অমিয়া ঝুৰাই।।'

নাটখনত ৰাম সীতাৰ মিলনৰ যি বৰ্ণনা দিয়া হৈছে তাৰ মাজেৰেও শৃংগাৰ ৰসৰ উদ্ৰেক ঘটিছে। যেনে-

'পয়োধৰ ধৰিয়ে অধৰ মধু বঞ্চল লোচন মুদি ৰহু মাই।
কৰত সুৰত মণ্ড-মাতঙ্গ-গামিনী কামিনী যামিনী যাই'।।

'ৰুক্মিণী-হৰণ' নাটকত কুণ্ডিল নগৰৰ পৰা দ্বাৰকালৈ অহা সুৰভি ভাটৰ মুখেৰে শ্ৰীকৃষ্ণই ৰুক্মিণীৰ ৰূপ-গুণৰ কথা শুনা, সেইদৰে কৃষ্ণৰ বাৰ্তা লৈ যোৱা হৰিদাস নামৰ ভাটৰ পৰা ৰুক্মিণীয়ে শ্ৰীকৃষ্ণৰ ৰূপ-গুণৰ কথা শুনাৰ পাছত তেওঁলোকৰ মনৰ অৱস্থা, শ্ৰীকৃষ্ণ-ৰুক্মিণীৰ মিলনৰ কথা উল্লেখ কৰোঁতে শৃংগাৰ ৰসৰ উদ্ৰেক হৈছে।

উদাহৰণস্বৰূপে- 'শ্ৰীকৃষ্ণই ভাটৰ মুখৰ পৰা ৰুক্মিণীৰ ৰূপ লাৱণ্যৰ কথা শুনি মনৰ যি অৱস্থা হৈছিল তাৰ চিত্ৰ ফুটাই তুলিবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা গীতটোৰ মাজেৰে শৃংগাৰ ৰসৰ প্ৰকাশ পাইছে'। যেনে-

'প্ৰিয়াকেৰি কাহিনী শুনিয়ে মুৰাৰি।
বিৰহে দহনু চিত্ত আকুল
কিঞ্চিত মানস মদন বিদাৰি'।।

ভাটৰ মুখৰ পৰা শ্ৰীকৃষ্ণৰ ৰূপ লাৱণ্যৰ কথা শুনি ৰুক্মণীৰ মনত কেনেধৰণৰ প্ৰতিক্ৰিয়া হৈছিল সেই কথা বৰ্ণনা কৰোঁতেও শৃংগাৰ ৰসৰ উদ্ৰেক হৈছে — 'তদনন্তৰ ৰুক্মিণী ভিক্ষুক মুখে কথা শুনিএ মোহিত হুয়া শ্ৰীকৃষ্ণক স্বামী ভাৱে বৰল। কৃষ্ণক হৃদয়ে ধৰল। কৃষ্ণক চৰণ চিন্তি মাত্ৰ সৰ্ব্বথা ৰহল। আন চিন্তা সব ছোড়ল'।

'ৰুক্মিণী-হৰণ' নাটত ৰুক্মিণী আৰু কৃষ্ণৰ মিলনৰ কথা বৰ্ণনা কৰোঁতে শৃংগাৰ ৰসৰ উদ্ভৱ হৈছে বুলিব পাৰি-

'ঘন ঘন নয়ন পঙ্কজ মুহ হেৰি হেৰি কৰত কানু কেলি।
আলিঙ্গ অঙ্গ অনঙ্গ ৰঙ্গ ৰসিক ৰমণীক ভুজ মেলি'।।

ৰৌদ্ৰৰস ঃ ৰৌদ্ৰ ৰসৰ মূল ভাৱ হৈছে ক্ৰোধ। 'ৰামবিজয়' নাটত সীতাৰ স্বয়ম্বৰ সভাত উপস্থিত থকা ৰজাসকলৰ তৰ্জণ-গৰ্জণত আৰু ক্ৰোধান্বিত পৰশুৰামৰ আগমনত ৰৌদ্ৰ ৰসৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। 'পৰশুৰাম মহা কোপে দণ্ড খৰল। বিশ্বামিত্ৰ দণ্ড ধৰি ধাৱল দোহাৰ দণ্ড প্ৰহাৰক চোটে চুৰ ভেল। তদনন্তৰ চৰড়ি ধৰিয়ে যুদ্ধ কয়ল। 'ৰামবিজয় নাট' 'ৰুক্মিণী-হৰণ' নাটত শ্ৰী কৃষ্ণই ৰুক্মিণীক পলুৱাই লৈ যাওঁতে ৰুক্মী আৰু ৰজাসকলে কৰা তৰ্জন গৰ্জনত ৰৌদ্ৰ ৰসৰ উদ্ৰেক ঘটিছে।' যেনে-

'কোপে নৃপসৰ কামোৰে বাহু।
চান্দক জৈচে খেদি জাই ৰাহু'।।

'পাৰিজাত হৰণ' নাটকত নৰকাৰসুৰ আৰু ইন্দ্ৰই শ্ৰীকৃষ্ণৰ প্ৰতি কৰা তৰ্জন গৰ্জনত ৰৌদ্ৰ ৰসৰ উদ্ৰেক ঘটিছে। উদাহৰণস্বৰূপে-

'জানল আৱল মাধৱ ধাই।
গৰজে দানৱ জুদ্ধক লাই'।।
সমৰক লাগি বজাৱয় ঢোল।
ধৰ ধৰ মাৰ মাৰ কৰে কহু ৰোল'।।

'ৰামবিজয়' নাটত ৰামে হৰধনু ভঙাৰ পাছত ৰজাসকলে কৰা তৰ্জন গৰ্জন আৰু পৰশুৰামৰ ক্ৰোধত ৰৌদ্ৰ ৰসৰ প্ৰকাশ পাইছে। যেনে-

'বাহু কাণ্ড খাণ্ডা উৰি হাত।
দশন কামুৰি ঝঙ্কাৰয় মাথ।।
দৰপে কৰয় মাৰ ধৰ ৰোল।
আৱল ৰাজ সভাকেৰি কোল'।।

'আয়ে ৰেণুসীক পুত্ৰ। মেৰা গুৰুক ধনুভঙ্গ কয় তোহো কাহে জাৱ।পৰশুৰামৰ কথা তোহো জানয়ে নাহি। হামু একবিংশতি বাৰ ভুমি ভ্ৰমিয়ে ক্ষত্ৰিয়ৰ মুণ্ড মাৰলো। সে শোণিতে কুঠাৰ মলিন ভেল। আঃ আজু তোহাক স্কন্ধ ৰুধিবে নিকা কৰো'।

ভয়ানক ৰস ঃ 'ৰামবিজয়' নাটত ৰাক্ষসবোৰৰ আগমনত ভয়ানক ৰসৰ উদ্ৰেক ঘটিছে। যেনে -

'পেখিয়ে ধুম মাৰীচ সুবাহু।
চান্দ গিলিতে জৈচে আয়ল ৰাহু।।
ত্ৰাশে কৌশিক কহয় আৰাৰে।
পেখু পেখু দোহো ৰাক্ষস আৰে।।

ৰাম-লক্ষ্মণ সহিতে বিশ্বামিত্ৰ আশ্ৰমলৈ যাওঁতে বাটত তাৰকাই বাট ভেটিছিল আৰু তেতিয়া ঋষি বিশ্বামিত্ৰৰ মনত উদ্ৰেক হোৱা ভয়ৰ উমান পোৱা যায় পয়াৰটিৰ জৰিয়তে। যেনে-

'আশ্ৰম যাইতে ঋষিক উচাট।
পেখিয়ে তাড়কা বেড়ল বাট।।

মিলিল ভক্ষ্য পিশাচিনী হাসে।
কাম্পে কৌশিক পড়িয়ে তৰাসে।।'

তদুপৰি, ঋষি বিশ্বামিত্ৰই ৰাক্ষস বধৰ বাবে ৰজা দশৰথৰ ওচৰত ৰাম- লখ্যৈণ বিচাৰোঁতে পুত্ৰৰ কথা চিন্তা কৰি দশৰথৰ মনত যি ভয়ৰ উদ্ৰেক ঘটিছে, তাৰ দ্বাৰাও ভয়ানক ৰস প্ৰকাশিত হৈছে। শংকৰদেৱৰ 'পাৰিজাত হৰণ' আৰু 'ৰুক্মিণী হৰণ' নাটকত ভয়ানক ৰসৰ প্ৰয়োগ দেখা নাযায়।

অদ্ভুত ৰস ঃ সীতাৰ স্বয়ম্বৰ দৃশ্যত আন ৰজাসকলে দাঙিব নোৱাৰা ধনুখন ৰামে দাঙি ধৰি গুণ লগোৱা আৰু ধনুখন দ্বিখণ্ডিত হোৱা দৃশ্যাংশত অদ্ভুত ৰস প্ৰকাশিত হৈছে।

হাস্য ৰস ঃ হাস্য ৰসৰ মূল ভাৱ হৈছে হাস। ৰামবিজয় নাটত সীতাৰ স্বয়ম্বৰ সভাত ৰজাসকলৰ বীভৎস ভাৱনা দেখি সীতাৰ সখীসকলে গোৰ, ঠেলা মাৰি পঠিয়াইছে আৰু হাস্য ৰসৰ উদ্ৰেক ঘটিছে। যেনে- 'ঐচন কামে মত্ত হুয়া ৰাজাসৱ নানাবিধ বীভৎস ভাৱনা কৰয়। পেখি সীতাক সখী কনকাৱতী, মদনমঞ্জৰী, চন্দ্ৰাৱতী, সূৰ্য্যপ্ৰভা কাহু ৰাজাক গোড় মাৰি ভৰচয়, কাহুক হাতে ঠেঙ্গনা মাৰয়, কাহুক গলে বস্ত্ৰ বান্ধিয়ে দুই তিনি সখীয়ে ঘসাৰে, সে সব দুখকো নগণয়। তথাপি নৃপকুমাৰীক কাতৰ কয় থিক'।

তদুপৰি, ৰাম-সীতাৰ বিবাহৰ দৃশ্যত সীতাৰ ভূৱন-মোহন ৰূপ দেখি ঋষি বিশ্বামিত্ৰ কাম ভাৱত আতুৰ হৈ মূৰ্চ্ছিত হোৱা ঘটনাই হাস্য ৰসৰ সৃষ্টি কৰিছে। যেনে- মুখ চন্দ্ৰিকা কৰিতে সীতাক ভুবনমোহন ৰূপ নিৰেখি ঋষি কামে আতুৰ ভেলহ হাতক শ্ৰুৱশ্ৰুত খসি পৰল। শৰিৰ কম্পি মুৰুচি পৰল। তাহে পেখি শিষ্য গালৰে প্ৰবোধ বোলল। গালৰ বোল - হে গুৰু, তোহাৰ কোন বেৰহাৰ স্বস্থ হৰ স্বস্থ হৰ'। পৰশুৰাম আৰু বিশ্বামিত্ৰ মাজৰ যুদ্ধ আদিৰ মাজেৰে হাস্য ৰসৰ প্ৰকাশ ঘটিছে — 'তদনন্তৰ বাহুযুদ্ধ কয়ল। দোহো দোহোক ধৰিয়ে পৰি বাগৰয়। দোহো ঋষিৰ পৰিধান চৰ্ম্ম খসি পৰল'।

কৰুণ ৰস ঃ 'ৰুক্মিণী-হৰণক্ষ নাটকত ৰুক্মিণীৰ বিলাপত কৰুণ ৰসৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। যেনে-

'ঘন ঘন মুৰুচি পৰয় বৰ নাৰী।
ফোকাৰয় শ্বাস নয়নে ঝুৰে বাৰি'।।
'কেশৱ এ হামাকেৰি ৰাখহু প্ৰাণ।
নিজ কিঙ্কৰীক জীৱন দেহু দান।।
পৰম পুৰুষ কেশৱ বিনে বিফল জনম মোই।
মিলল মৰণ কৃষ্ণ চৰণ দৰশন নাহি হোই।। '

'পাৰিজাত হৰণ' নাটকত নৰকাসুৰৰ মৃত্যুৰ পিছত মাকে কৃষ্ণৰ ওচৰলৈ আহি যি বিলাপ অনুৰোধ কৰিছে তাৰ মাজেৰে কৰুণ ৰসৰ উদ্ৰেক হৈছে। যেনে- হে স্বামী কৃষ্ণ, কোটি ব্ৰহ্মাণ্ডৰ পৰম পুৰুষ পুৰুযোত্তম তুহু জগতক গুৰু। তোহোক দ্ৰোহ কৰিয়ে পাপী পুত্ৰ নৰক নিজ পাপে নাশ গেল। তাহে পুত্ৰ ওহি ভগদত্ত নাতিক তোহাৰি পাৱে সমৰ্পল। তাহেক ৰক্ষা কৰহ। হামাৰ সন্ততি ৰহোক। তোহাৰি চৰণ- পঙ্কজে কাতৰকয় অভয় প্ৰসাদ মাগো গোসাঞি'।

বীভৎস ৰস ঃ সীতাৰ স্বয়ম্বৰ দৃশ্যত সমবেত হোৱা ৰজাসকলৰ আচৰণত বীক্ষৎস ৰসৰ উদ্ৰেক ঘটিছে। 'ঐচন কামে মত্ত হুৱা ৰাজাসৱ নানা বিধ বীভৎস ভাৱনা কৰয়'।

'ৰুক্মিণী-হৰণ' নাটত ৰুক্মিণীৰ সয়ম্বৰত গোটখোৱা ৰজাসকলৰ আচৰণটো বীভৎস ৰসৰ প্ৰকাশ ঘটিছে।

শংকৰদেৱৰ নাটত অলংকাৰ প্ৰয়োগ ঃ

অনুপ্ৰাস ঃ

নাটখনৰ আৰম্ভণিৰ নান্দী গীতত আছে
"জয় জয় জগজিৰ ৰাম।
কয়লো পৰি পৰনাম।।" (ৰামবিজয়)
"জয় জয় জদুকুল কমল প্ৰকাশক নাশক কংসক প্ৰাণ।
জয় জয় জগতক ভকতক ভিতি নিতি কৰু নিৰজাণ।।"
(কালিয়দমন)

"আনন্দ সিন্দু সাধুজন বন্ধু
মধুৰ মুৰুতি মুৰ নাশি।
বিৰিন্দা বিপিন বিহাৰ বিশাৰদ
সাৰদ ইন্দু পৰকাসি।।" (কেলিগোপাল)

"শ্যা ৰুচিৰ চিৰ পিত পৰকাস।
পঙ্কজ নয়ন বয়নে মন্দ হাস।।" (ৰামবিজয়)

ৰূপক ঃ

"দসন ওতিম নৱ মোতিম পান্তি"
"পঙ্কজ নয়ন বয়ন মন্দহাস" (ৰামবিজয়)

উপমা ঃ

"পেখিয়ে ধুম্ৰ মাৰিচ সুবাহু।
চান্দ গিলিতে জচ আৱল ৰাহু।।" (ৰামবিজয়)

বৃত্তানুপ্ৰাস ঃ

"স্বামিক মাথে মালা পৰিধাই।
কৰু পৰনাম পাৱে পৰি মাই।।" (ৰামবিজয়)

ঝুনা ঃ

"কেহো বোলে হামু গোপিনী নাথ।
মৰ্দ্দয় কালিকচড়িয়া মাথ।।" (কেলিগোপাল)

উপমা ঃ

"শ্যাম মুৰুতি পিত অম্বৰ লাসা।
নয়ন পঙ্কজ জৌতি ইসত হাসা।।" (কেলিগোপাল)

শংকৰদেৱৰ নাটৰ ছন্দ ঃ

দুলড়ী ঃ

"বংশি স্বান শুনি আসিয়া গোপিনী
কাহেৰি হেৰব মুখ।
কমল নয়ন নিৰেখিয়া কোনে
হৰব হামাৰি দুখ।।"
"সুকৰ ৰুপে হিৰন্য বিদাৰি
দেৱ ভয় কয় ত্ৰান।।
সোহি হৰি তেৰি কৰতু নিত্য
মুকুতি মঙ্গল বিধান।।" (কেলিগোপাল)

পদ ছন্দ ঃ

"কাল কালিক মাথে চৰি ভিৰি
পিৰি কৃড়ি কানু নাচে ৰে।
মৃদঙ্গ দিমি দিমি নাদ দুন্দুভি
সিদ্ধসবে গাৱে কাচেৰে।।"

পয়াৰ ছন্দ ঃ

"নমো নমো অনন্ত সকতি নাৰায়ণ।
কাৰণৰো কাৰণ তুমিহে অকাৰণ।।
নাহি আদি অন্ত মধ্য পৰিপূৰ্ণ যাৰ।
পুৰ্নানন্দ দেৱ হেৰা কৰো নমস্কাৰ।।"

কুসুমমালা ছন্দ ঃ

"ত্ৰাহি ত্ৰাহি হেৰ প্ৰাণ নাৰায়ণ।
হৰায়ী এ বাপ সৰণে পশিলো।।"

গোপালদেৱৰ নাটৰ আংগিক বিচাৰ ঃ

শংকৰোত্তৰ যুগৰ নাট্যকাৰসকলৰ ভিতৰত গোপালদেৱ আছিল অন্যতম। গোপালদেৱৰ দ্বাৰা ৰচিত নাটসমূহত আংগিকগত দিশ বুলিলে মূলতঃ ৰস, ছন্দ আৰু অলংকাৰৰ ব্যৱহাৰ দেখা যায়।

শৃংগাৰ ৰস ঃ গোপালদেৱৰ উদ্ভৱ-যান নাটখনত বিপ্ৰলম্ভ শৃংগাৰ ৰসৰ প্ৰয়োগ দেখা যায়। উদ্ধৱৰ মুখেদি শ্ৰীকৃষ্ণ মথুৰাৰ পৰা গকুললৈ প্ৰত্যাৱৰ্তন নকৰা বুলি জানিব পাৰি গোপীসকল ইমানেই বিহ্বল হৈ পৰিছে যে বিৰহ যন্ত্ৰণাত তেওঁলোক অচেতন হৈ পৰিছে। কৃষ্ণ বিৰহত তেওঁলোকে আনকি আহাৰ, নিদ্ৰা, বসন, ভূষণো পৰিত্যাগ কৰিছে। যেনে-

'কৃষ্ণক শোকে দুখ সাগৰ সজল,
এক দিবাস বৰিষা সমযাবত,
বসন ভুষণ বিলাস সব চাৰণ,
গোপীসব নিশি নিদ্ৰানাহি কৰয়,
দিবসে দিশসব প্ৰসন্ন নাহি।' (সাঁচিপতীয়া পুথিৰ পৰা)

ৰৌদ্ৰ ৰস ঃ ক্ৰোধ স্থায়ী ভাৱৰ পৰা যি ৰসৰ সৃষ্টি হয় সেয়াই ৰৌদ্ৰ ৰস। জন্ম-যাত্ৰা নাটত দৈৱকীৰ অষ্টম পুত্ৰই কংসৰ প্ৰাণ লব বুলি আকাশবাণী হোৱাত তেতিয়া ক্ৰোধৰ বশবৰ্তী হৈ কংসই দৈৱকীক মাৰিব খোজোতে গোপালদেৱৰ জন্মযাত্ৰা নাটকত ৰৌদ্ৰ ৰসৰ সমাবেশ ঘটিছে।

ভয়ানক ৰস ঃ জন্মযাত্ৰা নাটত দৈৱকীৰ অষ্টম পুত্ৰই প্ৰাণ ল'ব বুলি জানি কংসৰ অন্তৰত যি অৱস্থাৰ সৃষ্টি হৈছে সেয়াই ভয়ানক ৰস ৰূপে ধৰা দিছে।

কৰুণ ৰস ঃ জন্ম-যাত্ৰা কংসৰ ভাগিন হত্যা আৰু শেষত কন্যা সন্তানটিৰ হত্যাৰ সময়ত দৈৱকীৰ কাতৰ সংলাপে পাঠকৰ অন্তৰত কৰুণ ৰসৰ সঞ্চাৰ হৈছে। যেনে-

'হামাৰ ছয় পুত্ৰ মাৰল, সোহি তাপে তাপিত হুয়াছি এহি কন্যা হামাক দান কৰহ'।

উদ্ভৱযান নাটতো কৰুণ ৰসৰ সমাৱেশ ঘটিছে। কৃষ্ণ বিচ্ছেদত যশোদা আৰু গোপ- গোপীসকলৰ মনৰ যি অৱস্থা নাট্যকাৰে বৰ্ণনা সেয়াই নাটখনত কৰুণ ৰসৰ সৃষ্টি কৰিছে। ইয়াৰ বাহিৰেও উদ্ভৱযান নাটৰ পয়াৰসমূহেও কৰুণ ৰসৰ সৃষ্টি কৰিছে।

হাস্য ৰস ঃ গোপালদেৱৰ 'নন্দোৎসৱক্স নাটত গৰ্গ ঋষিৰ চৰিত্ৰৰ মাজেৰে নাট্যকাৰে হাস্য ৰসৰ সৃষ্টি কৰিছে। যেনে-

'আৱত গৰ্গ পুৰোহিত ৰঙ্গে।
হাতহি পুস্তক বসুৰা সঙ্গে।।
ধৌত দশন বসন ধৌত গাৱে।
কৰে ধৰি মালা হৰি গুণ গাৱে'।

জন্মযাত্ৰা নাটৰ অলংকাৰ ঃ

অনুপ্ৰাস ঃ

"দাম দাম হুম হুম দুন্দুভি বাজে।
আৱত দানৱ ৰাজ সমাজে।।"
উৎপ্ৰেক্ষা-"সুন্দৰি পদ্মিনি নাৰিগন চলে

উৰুলি মঙ্গল হৰি ৰোলে।
কিঙ্কিনি কঙ্কন নুপুৰ ঝনকে
বয়ন চান্দ উজোৰে।।”

জন্মযাত্ৰা নাটৰ ছন্দ ঃ

ছবি ছন্দ ঃ

“গগনে গৰজে ঘন কোলে লৈয়া নাৰায়ণ
চলে বসুদেৱ ধীৰে ধীৰে।
দেখিয়া সহস্ৰানন ভিজে প্ৰভু নাৰায়ণ
ফনায়ে ধৰিলা চত্ৰ সিৰে।।”

ঝুনা ঃ

“আৰত বিধি মুনিগন সঙ্গে।
চৌভিতি বেদ উচাৰয় ৰঙ্গে।।”

দুলড়ী ঃ

“সখিসৰ সঙ্গে চললি দৈৱকি
বিবাহ মন্দিৰ মাজে।
হংসৰ গমনি কৃষ্ণ নয়নি
পেখি সসধৰ লাজে।।”

নৱৰসৰ ভিতৰত কৰুণ, ৰৌদ্ৰ, ভয়ানক, হাস্য আৰু শৃংসাৰ ৰস গোপালদেৱৰ নাটকেইখনত দেখা গৈছে। শংকৰোত্তৰ যুগৰ আনসকল লেখকৰ দৰেই গোপাল আতাৰো নাট্যাৱলীৰ মুখ্য উদ্দেশ্য আছিল কৃষ্ণ ভক্তি প্ৰচাৰ। সেয়েহে তেখেতৰ নাটসমূহৰ মূল ৰস হিচাপে ভক্তিৰসকেই ধৰা হয়। অসমীয়া বৈষ্ণৱ সাহিত্যত ৰস আৰু ভক্তি ৰস এই দুয়োটা শব্দৰে ব্যৱহাৰ পৰিলক্ষিত হয় যদিও অসমীয়া বৈষ্ণৱ কবিসকলে ভক্তিক স্বতন্ত্ৰ ৰস হিচাপে স্বীকাৰ কৰা নাছিল।

উপসংহাৰ ঃ

শংকৰদেৱ আৰু গোপাল আতাৰ সাঁচিপতীয়া নাটৰ আংগিক দিশসমূহৰ ভিতৰত অন্যতম হিচাপে সৰ্বাধিক প্ৰয়োগ হোৱা দেখা গ'ল ৰস , ছন্দ আৰু অলংকাৰ। যিহেতু শংকৰদেৱৰ বা শংকৰী যুগৰ সাহিত্যৰ প্ৰভাৱতেই শংকৰোত্তৰ যুগৰ সাহিত্যসমূহ ৰচিত হৈছিল, সেয়ে শংকৰদেৱৰ লগত গোপাল আতাৰ নাটৰ আংগিক দিশসমূহৰ সাদৃশ্য দেখা পোৱা যায়। বৰ্তমান নাটসমূহত সাহিত্যৰ আংগিকগত দিশসমূহৰ ব্যৱহাৰ কমি আহিল যদিও প্ৰাচীন নাটসমূহ অধিক সৌন্দৰ্যশালী হৈ উঠিছিল এইসমূহ দিশৰ প্ৰয়োভৰৰ বাবেই। সেয়ে হয়তো পাচীন নাটসমূহে সাহিত্যৰ ইতিহাসত বৰ্তমানেও এক সুকীয়া পৰিচয় বহন কৰি আহিছে। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

(সাঁচিপতীয়া)

কেলিগোপাল নাট ঃ বুৰঞ্জী আৰু পুৰাতত্ত্ব বিভাগ, MS. NO-৮৩৮, মুঠ ফলক ২২ টা
কেলিগোপাল নাট ঃ আঁহতগুৰি সত্ৰ, মুঠ ফলক ৮ টা
জন্মযাত্ৰা নাট ঃ গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, মুঠ ফলক ১০ টা
জন্মযাত্ৰা নাট ঃ প্ৰাচীন চামগুৰি সত্ৰ, মুঠ ফলক ৭ টা
ৰামবিজয় নাট ঃ প্ৰাচীন চামগুৰি সত্ৰ, ১৮২২ খ্ৰীষ্টাব্দ, মুঠ ফলক ৮ টা
ৰামবিজয় নাট ঃ নৰৈ চিপহা সত্ৰ, ১৭২৯ শক মুঠ ফলক ১০ টা
কালিয়দমন নাট ঃ প্ৰাচীন চামগুৰি সত্ৰ, মুঠ ফলক ৮ টা
ৰুক্মিণী-হৰণ নাট ঃ উত্তৰ কমলাবাৰী সত্ৰ, মুঠ ফলক ২৪ টা
পাৰিজাত হৰণ নাট ঃ উত্তৰ কমলাবাৰী সত্ৰ, মুঠ ফলক ২৮ টা

(ছপা)

শৰ্মা, তীৰ্থনাথ ঃ সাহিত্য-বিদ্যা পৰিক্ৰমা, বাণী প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ফেব্ৰুৱাৰী, ২০১৪
শৰ্মা, মুকুন্দ মাধৱ ঃ ধ্বনি আৰু ৰসতত্ত্ব, বাণী প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, আগষ্ট, ২০০৬
ঠাকুৰীয়া, ৰামমল ঃ সাহিত্য বিচাৰ, বীণা লাইব্ৰেৰী, গুৱাহাটী, জানুৱাৰী, ২০১৮
শাস্ত্ৰী, মনোৰঞ্জন ঃ সাহিত্য দৰ্শন, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, ২০০৯
শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ ঃ অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, সৌমাৰ প্ৰকাশ, ২০১৮

বি.দ্ৰ. ঃ সকলো আলোচনা সাঁচিপতীয়া পুথিৰ আধাৰত কৰা হৈছে। কিন্তু উদাহৰণসমূহ পাঠকৰ বোধগম্য হোৱাকৈ আধুনিক ৰূপত ৰখা হৈছে।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945
Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

বিকাশ বৰুৱাৰ ব্যংগ সাহিত্য চটপ ঃ এটি চমু আলোচনা

ডিম্পী দাস
গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
(সহকাৰী অধ্যাপক
দমদমা মহাবিদ্যালয়)
৮৮৭৬৯৭০৯৮১
dasdimpi535@gmail.com

ড° কল্পনা শৰ্মা কলিতা
অৱসৰপ্ৰাপ্ত সহযোগী অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ, কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী-৭৮১০০১
৭৫৭৮৯৩৯৮৯০
kalpana.sarma2@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমীয়া ব্যংগ সাহিত্যৰ নতুন যি স্তৰ সেই স্তৰটো কুৰি শতিকাৰ সপ্তম-অষ্টম দশকত আৰম্ভ হৈ বৰ্তমানলৈ চলি থকা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। অসমীয়া ব্যংগ সাহিত্যৰ সাম্প্ৰতিক সময়ৰ যিসকল ব্যংগ ৰচনাকাৰ আছে সেই সকলৰ ভিতৰত আমি বিকাশ বৰুৱাৰ নাম ল'ব পাৰোঁ। তেওঁৰ ব্যংগ ৰচনাসমূহৰ ভিতৰত উল্লেখযোগ্য ব্যংগ ৰচনাসমূহ হ'ল ধাৰাম, ধুপুচ, চটপ, গাধাৰশিলা, অন্ধ ৰজাৰ বন্ধ প্ৰদেশ, যি কম মিছা কম, শালমইনা, টু থাউজেণ্ড, শ্ৰীমতি কিং কং, অসমীয়া সাহিত্যত বিকাশ বৰুৱা আৰু ব্যংগ, সন্ধিয়াৰ ফুলকবি, ছাগলীৰ হাঁহি, নাচ অসমীয়া নাচ, প্ৰজ্ঞাসুন্দৰী আদি। এই ৰচনাসমূহৰ জৰিয়তে বিকাশ বৰুৱাই সামাজিক, ৰাজনৈতিক, সাংস্কৃতিক, অৰ্থনৈতিক আদি ভিন্ন দিশৰ কেৰোণসমূহক তুলি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। তেওঁৰ চটপ নামৰ গ্ৰন্থখনে সমাজ জীৱনৰ নানা দিশক সুন্দৰকৈ তুলি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। আমাৰ আলোচনাটিত বিকাশ বৰুৱাই কিদৰে তেওঁৰ চটপ গ্ৰন্থখনৰ জৰিয়তে সামাজিক, ৰাজনৈতিক, সাংস্কৃতিক পটভূমিক ব্যংগ আকাৰে তুলি ধৰিছে সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ'ব। আলোচনাটোত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হ'ব।

বীজশব্দ ঃ

ব্যংগ সাহিত্য, চটপ, সমাজ।

০.১ অৱতৰণিকা ঃ

সাধাৰণতে ব্যংগ সাহিত্যৰ আভিধানিক অৰ্থ হৈছে বিদ্ৰূপ। ব্যংগ সাহিত্য হৈছে এনে এক প্ৰকাৰৰ সাহিত্য যি সাহিত্যৰ জৰিয়তে সমাজ-সংস্কাৰৰ পোষকতা কৰা যায়। ব্যংগৰ ইংৰাজী প্ৰতিশব্দ হৈছে Satire। এই Satire শব্দটো আহিছে লেটিন ভাষাৰ Satura শব্দটিৰ পৰা। সাধাৰণতে সমাজত চলি থকা দুৰ্নীতি, অন্যায়-অবিচাৰ, কু-সংস্কাৰ আদিক প্ৰতিহত কৰিবলৈ ব্যংগতকৈ উৎকৃষ্ট সাহিত্য আৰু অইন একো হ'ব নোৱাৰে। মৌখিক সাহিত্যৰ সময়ৰ পৰাই হাস্য-ব্যংগৰ ধাৰা লাহে-লাহে বিকাশমুখী যাত্ৰাত অৱতীৰ্ণ হৈছিল যদিও পৰৱৰ্তী সময়তহে ই পূৰ্ণ ৰূপ লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হয়। প্ৰকৃততে হাস্য-ব্যংগ হৈছে এটা আনটোৰ পৰিপূৰক। ব্যংগ সাহিত্যত ব্যংগৰ মাত্ৰাৰ আধিক্য থাকিলেও ইয়াত হাস্যৰসৰ গুৰুত্বও নুই কৰিব নোৱাৰি। প্ৰাক্শংকৰী যুগৰ সাহিত্য, শংকৰী যুগৰ সাহিত্য, পাঁচালী কবি আদি লোকসকলৰ ৰচনাতো হাস্যৰসৰ মাত্ৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। আকৌ আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যত পোনপ্ৰথমে বুদ্ধিদীপ্ত হাস্যৰসৰ অৱতাৰণা কৰা দেখা যায়। হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ *কানীয়াৰ কীৰ্তন* নামৰ ৰচনাখনত পোনপ্ৰথমে বুদ্ধিদীপ্ত হাস্যৰসৰ অৱতাৰণা কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। আকৌ ইয়াৰ পিছত লম্বোদৰ বৰাৰ *সদানন্দৰ কলাঘুমটি*তো ব্যংগ সাহিত্যৰ সোৱাদ পোৱা পৰিলক্ষিত হয়। ইয়াৰ পিছত গুণাভিৰাম বৰুৱা, লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা, পদ্মনাথ

গোহাঞিবৰুৱা আদি লেখকসকলৰ ৰচনাত হাস্য-ব্যংগৰ পয়োভৰ দেখিবলৈ পোৱা যায়। আকৌ ইয়াৰ পিছত শ্ৰী মধুসূদন, প্ৰেমনাৰায়ণ দত্ত, তিলক হাজৰিকা, কীৰ্তিনাথ হাজৰিকা, লীলা গগৈ, ভদ্ৰ বৰা আদি লোকসকলৰ নাম ল'ব পাৰি। সাম্প্ৰতিক সময়ত বিকাশ বৰুৱা, ভৃংগেশ্বৰ শৰ্মা, পুণ্য শইকীয়া, জ্যোতিদেৱ গোস্বামী, ভাস্কৰ খাৰঘৰীয়া, সমুদ্ৰগুপ্ত কাশ্যপ, প্ৰশান্ত ৰাজগুৰু, নাজমা মুখাৰ্জী, ৰীণা দেৱী, সৌমিত্ৰ যোগী, অৰবিন্দ ৰাজখোৱা আদি লোকসকলে ব্যংগ সাহিত্য ৰচনা কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

সাম্প্ৰতিক সময় হৈছে তথ্য প্ৰযুক্তিৰ সময়। আজিৰ সমাজে তথ্য প্ৰযুক্তি অবিহনে আগবাঢ়িব নোৱাৰে। ৰাজনৈতিক সচেতনতা আগতকৈ মানুহৰ ভালেখিনি বাঢ়িছে। ৰাজনৈতিক ব্যক্তিয়ে দেশৰ কাৰণে কৰা প্ৰতিটো ভাল-বেয়া কৰ্মৰ হিচাপ আজিৰ তাৰিখত প্ৰায় সকলো সচেতন মানুহে ৰাখিবলৈ চেষ্টা কৰে। ইণ্টাৰনেটৰ প্ৰভাৱ ইমানেই বহুল হৈছে যে আজিকালি কোনো ধৰণৰ কথাই গোপন হৈ থকা নাই। ইণ্টাৰনেটৰ বহুল প্ৰভাৱে মানুহৰ মাজৰ দূৰত্ব ক্ৰমান্বয়ে কমাই আনিছে। মানুহে জনপ্ৰিয়তাৰ দৌৰত এনেদৰে পংগু হৈ গৈছে যে মানুহে ইয়াৰ খাতিৰত তললৈ নামিবলৈও কুণ্ঠাবোধ নকৰে। গতিকে সাম্প্ৰতিক সময়ত এনেবোৰ ঘটনা, দিশে মানুহৰ ওপৰত যথেষ্ট প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিছে। এই দিশবোৰক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই সাম্প্ৰতিক সময়ৰ ভিন্ন ব্যংগ ৰচকসকলৰ সৃষ্টিৰাজি গঢ় লৈ উঠিছে। তেনে এগৰাকী সাম্প্ৰতিক সময়ৰ উল্লেখযোগ্য ব্যংগ ৰচক হৈছে বিকাশ বৰুৱা। বিকাশ বৰুৱাই সমাজত চলি থকা ভিন্ন আঁসোৱাহসমূহক কেতিয়াবা তীব্ৰ আৰু কেতিয়াবা মৃদু ভাষাৰে সমালোচনা কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। সামাজিক-সাংস্কৃতিক-ৰাজনৈতিক আদি ভিন্ন আঁসোৱাহসমূহ তেওঁৰ ৰচনাৰ মাজেৰে পৰিলক্ষিত হৈছে। তেওঁ তেওঁৰ ব্যংগ লেখনিৰ মাজেৰে পাঠকৰ মনলৈ হাঁহিৰ খোৰাক যোগোৱাৰ লগতে চিন্তা কৰিবলৈও বাধ্য কৰায়। মানুহে কিদৰে নিজৰ ব্যক্তিগত স্বাৰ্থৰ বাবে বৃহৎ স্বাৰ্থকো জলাঞ্জলি দিব পাৰে তাক লেখকে সুন্দৰকৈ ফঁহিয়াই দেখুৱাবলৈ সক্ষম হৈছে। অসমৰ হাস্য-ব্যংগ ধাৰাটোক সুন্দৰকৈ আগুৱাই নিবলৈ সক্ষম হোৱা কৃপাবৰ নামেৰে পৰিচিত, সাহিত্যৰথী লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ আজোনাতি ৰূপেৰে পৰিচিত ডাঃ বিকাশ বৰুৱাইও অসমীয়া হাস্য-ব্যংগ ধাৰাটোক সুন্দৰকৈ আগুৱাই নিবলৈ সক্ষম হোৱা দেখা গৈছে। তেখেতৰ ব্যংগ গ্ৰন্থসমূহৰ ভিতৰত ধাৰাম, ধুপুচ, চটপ, গাধাৰশিলা, অন্ধ ৰজাৰ বন্ধ প্ৰদেশ, যি কম মিছা কম, শালমইনা, টু থাউজেণ্ড, শ্ৰীমতি কিং কং, অসমীয়া সাহিত্যত বিকাশ বৰুৱা আৰু ব্যংগ, সন্ধিয়াৰ ফুলকবি, ছাগলীৰ হাঁহি, নাচ অসমীয়া নাচ, প্ৰজ্ঞাসুন্দৰী আদি।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

বিকাশ বৰুৱাৰ ব্যংগ সাহিত্য চটপ ঃ এটি চমু আলোচনা শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনিৰ মুখ্য উদ্দেশ্যই হৈছে বিকাশ বৰুৱাৰ চটপ নামৰ গ্ৰন্থখনৰ আলোচনা কৰা। এই গ্ৰন্থখনৰ জৰিয়তে কিদৰে তেওঁ ব্যংগৰ জৰিয়তে সমাজ এখনৰ কেৰোণসমূহক তুলি ধৰিছে তাক উদঙাই দিয়াটোৱেই ইয়াৰ মুখ্য উদ্দেশ্য। বিশেষকৈ সমাজত থকা বেমেজালিবোৰক লেখকে কিদৰে উলিয়াই আনিছে সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰাই হৈছে গৱেষণা পত্ৰখনিৰ মূল উদ্দেশ্য।

০.৩ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

বৰ্তমান সমাজ জীৱনত যিবোৰ দোষ-ত্ৰুটি চলি আছে সেইসমূহক পোনপটীয়াকৈ নিৰ্মূল কৰা ইমান সহজসাধ্য নহয়। গতিকে এনে কেৰোণসমূহক তুলি ধৰিবলৈ ব্যংগক এক উপযুক্ত মাধ্যম হিচাপে ধৰিব পাৰি। আমাৰ আলোচনাৰ অন্তৰ্গত বিকাশ বৰুৱাৰ ৰচনাৰ ব্যংগ সাহিত্যসমূহলৈ মন কৰিলে দেখা যায় যে তেওঁৰ ব্যংগ সাহিত্যই অসমীয়া ব্যংগ জগতখনক চহকী কৰি তুলিছে। চটপৰ জৰিয়তে তেওঁ যিদৰে সামাজিক, ৰাজনৈতিক, সাংস্কৃতিক ব্যংগসমূহক সুন্দৰকৈ তুলি ধৰিছে সেই অৰ্থত এই গৱেষণা পত্ৰখনৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে বুলি ক'ব পাৰি।

১.০ সামাজিক ব্যংগ ঃ

বিকাশ বৰুৱাৰ দ্বাৰা ৰচিত এখন অন্যতম গ্ৰন্থ হৈছে *চটপ* (২০০১)। *চটপ*ৰ অন্তৰ্গত এটি অন্যতম ৰচনা হৈছে *এনেখন মৰমৰ দেশ*। এই ৰচনাখনত সামাজিক ব্যংগ কৰি কোৱা হৈছে যে কোনো এটা কামৰ সময়ত কামটো প্ৰায় অসম্ভৱ যেন লাগে আৰু যিয়ে কাম কৰে তেওঁলোকে আমাক পৰিস্কাৰকৈ বুজাই দিয়ে যে কাম কোনোপধ্যেই সম্ভৱ নহয়। কিন্তু লেফাফাৰ ভিতৰত কিবা অলপ দিলেই

কামৰ লগতে অতিথি আপ্যায়ন কৰাও দেখা যায়। এনে লোকসকলৰ কথা উল্লেখ কৰি লেখকে এই প্ৰকৃতিৰ লোকক তীব্ৰ সমালোচনা কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

চটপৰ অন্তৰ্গত অন্য এটি ৰচনা হৈছে *সুখৰ সন্ধান*। এই ৰচনাখনত সামাজিক ব্যংগৰ অন্তৰ্গত ভিন্ন দিশসমূহ অৱলোকন কৰা হৈছে। সমাজত এনে এচাম মানুহ আছে যিয়ে ভালদৰে পঢ়া-শুনা কৰি ভালদৰে চাকৰি-বাকৰি কৰি সাধাৰণভাৱে চলি আছে। কিন্তু অন্য এচামে সৰুৰ পৰাই দগাবাজ হৈ, সকলো বেয়া কামত সিদ্ধহস্ত হৈ দুৰ্নীতিৰে অগাধ সম্পত্তিৰ পাহাৰ গঢ়া পৰিলক্ষিত হয়। এনে লোকসকলে সমাজত আগস্থান লোৱাৰ চেষ্টা কৰা পৰিলক্ষিত হয়। এই লোকসকলক লেখকে তীব্ৰভাষাৰে সমালোচনা কৰিছে।

চটপৰ অন্তৰ্গত অন্য এখন ৰচনা হৈছে *সিদ্ধিলাভ*। *সিদ্ধিলাভ*ত দেখুওৱা হৈছে কিদৰে বঁটা-বাহন পাবলৈ মানুহে কিমান তললৈ নামিব পাৰে। আকৌ যিয়ে বঁটা প্ৰদান কৰে তাক তেল-তুল মাৰি বঁটা লোৱা কাৰ্যকো লেখকে তীব্ৰভাষাৰে গৰিহণা দিয়া পৰিলক্ষিত হৈছে।

বিকাশ বৰুৱাৰ অন্য এখন ৰচনা হৈছে *ব'লক দৰ্খাস্ত দিওঁগৈ*। এই ৰচনাখনত ভিন্ন বিভাগ সম্পৰ্কীয় কথাবোৰ ব্যক্ত কৰা হৈছে। লেখকে সমাজৰ এনে এচাম লোকৰ কথা ব্যক্ত কৰিছে যিয়ে সেৱাবিধি সংক্ৰান্তত কোনো কৰ্ম ভালকৈ সম্পাদন নকৰে। অলিয়ে-গলিয়ে নাৰ্চিং হোম খোলা, বিল বনোৱা, ইঞ্জিনিয়াৰে ঘৰ-দুৱাৰ নিৰ্মাণ নকৰি কলম আৰু কাগজতে ইয়াৰ সীমাবদ্ধ থকা, ঠিকাদাৰে পইচা হজম কৰা আদি কাৰ্যবোৰ লেখকে ব্যংগ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

বৰুৱাৰ অন্য এখন ৰচনা হৈছে *টেক ইট ইজি উৰ্বশী*। এই ৰচনাখনত সমাজকেন্দ্ৰিক নানান ব্যংগ পৰিলক্ষিত হৈছে। ৰচনাখনত দেখুৱাই দিয়া হৈছে কিদৰে মানুহে নিজৰ ব্যক্তিত্ব খৰ্ব কৰি নিজেই আনৰ ওচৰত বিক্ৰী হৈ যায়। সেয়ে লেখকে উল্লেখ কৰিছে—

যিকোনো মানুহেই যাকে তাকে কিনি ল'ব পাৰে। অলপমান পইচাতেই ডাক্তৰ, ইঞ্জিনিয়াৰ, নেতা, মন্ত্ৰী, বৰ-বৰ আমোলা, বিষয়া... চব বিক্ৰী হৈ যায়। (বৰুৱা, পৃ. ৫৩)

সমাজত কিদৰে দুৰ্নীতি বিয়পি পৰিছে সেই সম্পৰ্কেও লেখকে ব্যংগ ভাৱ পোষণ কৰিছে। এচামে কিদৰে ফাংচনৰ নামত, বিহু সন্মিলনখনৰ নামত অন্য লোকৰ টকা হৰলুকি কৰে সেইসকল লোককো লেখকে ব্যংগ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। কম পইচাৰে কাম কৰি এচামে কিদৰে কোটি কোটি টকাৰ বিল বনায় সেই সম্পৰ্কতো লেখকে ব্যংগবাণ নিক্ষেপ কৰি সমাজৰ ফোপোলা স্বৰূপ উদঙাই দিছে।

*চটপ*নামৰ গ্ৰন্থখনৰ অন্য এটি ৰচনা হৈছে *চিঃ*। ইয়াত লেখকে উল্লেখ কৰিছে কিদৰে একাংশ বিষয়া কৰ্মচাৰীয়ে অনবৰতে কিবা নহয় কিবা খাবলৈ বিচাৰি থাকে। লেখকে এনে লোকক পুখুৰীৰ পানী কমি যোৱা দিনত অক্সিজেন বিচাৰি মাছবোৰে ওপৰলৈ আহি 'কাপ কাপ' কৰাৰ লগত তুলনা কৰা হৈছে।

বিকাশ বৰুৱাৰ অন্য এখন সামাজিক ব্যংগ সম্পৰ্কীয় ৰচনা *কাৰডিয়াক ষ্টন্*। আমাৰ সমাজত এনে কিছুমান মানুহ আছে য'ত অজস্ৰ সা-সম্পত্তি থাকিলেও অনবৰতে নাই-নাই বা লাখ টকা ধাৰ আছে বুলি মন্তব্য প্ৰদান কৰে। এনে এচাম মানুহৰ চৰিত্ৰৰ কথা লেখকে উদঙাই দিয়া পৰিলক্ষিত হৈছে। বিকাশ বৰুৱাৰ অন্য এখন ৰচনা হৈছে *তুমিনো নাহাঁহা কিয়?*। এই ৰচনাখনত বৰ্তমানৰ শিক্ষা ব্যৱস্থা সম্পৰ্কত তীব্ৰ ব্যংগভাৱ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। শিক্ষাৰ সলনি ছাত্ৰ-ছাত্ৰীয়ে পঢ়াশালিত এখনেই কিতাপ পোৱাটো অতি হাস্যকৰ আৰু দুখলগা কথা। লেখকে সেই সময়ৰ ৰচনাৰ মাজত সামাজিক দিশটোক পুতৌ লগাকৈ ব্যংগ কৰিছে।

বিকাশ বৰুৱাৰ অন্য এখন সামাজিক ব্যংগ সম্পৰ্কীয় ৰচনা *এনেখন আমাৰ দেশ*। এই ৰচনাখনত নামটোৰ জৰিয়তেই ব্যংগ প্ৰকাশ কৰা হৈছে। আজিকালি লাইট নাযায় আহে হে বুলি লেখকে ব্যংগ প্ৰকাশ কৰা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। আকৌ এই লাইন মন্ত্ৰীৰ পুতেকৰ বিয়া, খোৱা বস্তুৰ গোন্ধ, কাৰোবাৰ ঘৰত বিয়া পাতিলেহে আহে বুলি লেখকে ব্যংগৰ জৰিয়তে তীব্ৰ সমালোচনা কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

বিকাশ বৰুৱাৰ অন্য এখন ৰচনা হৈছে *কাঠ আলু*। ঘৰুৱা উৎপাদন সম্পৰ্কত লেখকে ইয়াত ব্যংগ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। লেখকে ঘৰুৱা উৎপাদন সম্পৰ্কত ব্যংগ প্ৰকাশ কৰি উল্লেখ কৰিছে যে—

কোনোবা এটা বিভাগলৈ উন্নয়নৰ নামৰ অহা টকাখিনি ৰাস্তাই-বজাৰে, পথাৰে-সমাৰে গেলিপছি নষ্ট হ'বলৈ নিদি জেপে-তেপে ঘৰে-ঘৰে ভাগ কৰি লোৱাটোৱেই হৈছে ঘৰুৱা উৎপাদন। (বৰুৱা, পৃ. ১৬৩)

ইয়াতেই ৰাইজৰ প্ৰতি দায়িত্বৰ মনোভাৱ পোষণ নকৰি ৰাইজৰ টকা নিজৰ জেপত সুমুৱাই যি দুৰ্নীতি কৰি অহা হৈছে তাক লেখকে ব্যংগ প্ৰকাশ কৰিছে আৰু তীব্ৰ সমালোচনা কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

২.০ ৰাজনৈতিক ব্যংগ ঃ

বিকাশ বৰুৱাৰ *চটপ* নামৰ গ্ৰন্থখনত আমি যেনেদৰে সামাজিক ব্যংগসমূহ দেখিবলৈ পাইছো ঠিক তেনেদৰে ইয়াত ৰাজনৈতিক ব্যংগসমূহো পৰিলক্ষিত হয়। *এনেখন মৰমৰ দেশত* ৰাজনৈতিক ব্যংগ দেখিবলৈ পোৱা যায়। লেখকে ৰাজনৈতিক লোকৰ কথা ব্যংগ কৰি কৈছে যে সাধাৰণ লোকে নিজৰ সৰ্বস্ব ত্যাগ কৰি হ'লেও নেতাৰ বাবে স্বৰ্গীয় সুখৰ যোগান ধৰা পৰিলক্ষিত হয়।

বিকাশ বৰুৱাৰ ৰাজনীতিমূলক অন্য এখন ৰচনা হৈছে *জয় হিন্দ*। এই ৰচনাখনত ব্যংগাত্মকভাৱেৰে উল্লেখ কৰা হৈছে যে কিদৰে গণ-প্ৰতিনিধি হিচাপে নিৰ্বাচিত কৰিবলৈ কোনো ধৰণৰ নীতি-নিয়মৰ প্ৰয়োজন নাই। শিক্ষা-দীক্ষা, জ্ঞান, বুদ্ধি, পাণ্ডিত্য, ডিগ্ৰী আদি একো বস্তুৰে প্ৰয়োজন নহয় বুলি লেখকে ৰাজনৈতিক ব্যৱস্থাটোক ব্যংগ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। আকৌ সামান্য চাকৰিৰ বাবেও ইন্টাৰভিউ পাচ নকৰিলেই নহয়। এনে কাৰু-কাৰ্যক লেখকে তীব্ৰভাৱে ব্যংগ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

বিকাশ বৰুৱাৰ চটপৰ অন্তৰ্গত অন্য এখন ৰাজনৈতিকমূলক ব্যংগ ৰচনা হৈছে *ব'লক দৰ্খাস্ত দিওঁগৈ*। এই ৰচনাখনত দেখুওৱাই দিয়া হৈছে কিদৰে নিৰ্বাচনৰ সময়ত ঘন্টা ধৰি ভাষণ আৰু প্ৰতিশ্ৰুতি প্ৰদান কৰা হয় কিন্তু নিৰ্বাচন পাৰ হোৱাৰ পিছত সেইয়া ফুটুকাৰ ফেনলৈ ৰূপান্তৰিত হয়।

বিকাশ বৰুৱাৰ অন্য এখন ৰচনা হৈছে *টেক ইট ইজি উৰ্বশী*। এই ৰচনাখনত দেশত চলি থকা অসমতাৰ কথা কোৱা হৈছে। আমাৰ দেশত এনেকুৱা কিছুমান লোক আছে যিয়ে ভালদৰে খাবলৈ-পিন্ধিবলৈ নাপায় আকৌ এনে কিছুমান লোকো আছে যিয়ে হেলিকপ্টাৰ পৰ্যন্ত কিনিবলৈ কুণ্ঠাবোধ নকৰে। আকৌ ভাষণ দিবলৈ পেণ্ডেল তৰি লাখ-লাখ টকা খৰচ কৰিবলৈও কুণ্ঠাবোধ নকৰে। এনে লোকসকলক লেখকে ব্যংগ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

বিকাশ বৰুৱাই ৰচনা কৰা অন্য এখন ৰাজনৈতিক গুণসম্পন্ন ব্যংগাত্মক ৰচনা হৈছে *টিংখোপ*। এই ৰচনাখনত আগৰ দিনৰ মন্ত্ৰী বিষয়া আদিৰ লগত বৰ্তমানৰ দিনৰ মন্ত্ৰী-বিষয়াসকলক তুলনা কৰা হৈছে। আজিকালি স্বয়ং গাদীত বহা লোকেও কিদৰে সকলো কৰায়ত্ত কৰি নিজৰ অধীনলৈ আনে তাক লেখকে ব্যংগাত্মক ভাৱেৰে উল্লেখ কৰিছে।

বিকাশ বৰুৱাৰ অন্য এখন ৰচনা হৈছে *এড্‌ভান্স প্ৰেতাত্মা*। লেখকে ইয়াত উল্লেখ কৰিছে কিদৰে ভোটবেংক গঢ়িবলৈ এচামে শত্ৰু-মিত্ৰ সকলোৰে হাতে-ভৰিয়ে ধৰিবলৈ কুণ্ঠাবোধ নকৰে।

তেওঁৰ অন্য এখন ৰাজনৈতিকমূলক ব্যংগাত্মক ৰচনা হৈছে *হেপী নিউ ইয়েৰ টু লালুক সেনা*। এই ৰচনাখনত ৰাজনৈতিক ব্যক্তিৰ কিছু স্বভাৱক তীব্ৰ সমালোচনা কৰা দেখা গৈছে।

বিকাশ বৰুৱাৰ অন্য এখন ৰচনা হৈছে *চটপ*। ইংৰাজে আমাক এটা সময়ত শাসন কৰিছিল। সেই ইংৰাজ এতিয়া গ'ল যদিও লেখকে উল্লেখ কৰিছে কিদৰে নিজৰ দেশৰ লোকৰ চাবুকৰ কোব খোৱাতকৈ বিদেশী লোকৰ চাবুক খোৱাই ভাল। লেখকে উল্লেখ কৰিছে কিদৰে নিৰ্বাচন আহিলে ৰাজনৈতিক লোকসকলে সাধাৰণ জনতাক প্ৰতিশ্ৰুতি দি পিঠিত চাবুকেৰে কোবায়। তাতকৈ বিদেশী লোকে কোবোৱায় ভাল বুলি কৈ লেখকে ব্যংগ প্ৰকাশ কৰিছে।

৩.০ সাংস্কৃতিক ব্যংগ ঃ

বিকাশ বৰুৱাৰ *চটপ* নামৰ গ্ৰন্থখনত সাংস্কৃতিক ব্যংগ দেখিবলৈ পোৱা যায়। তেওঁৰ ৰচনা *এনেখন মৰমৰ দেশত* সাংস্কৃতিক ব্যংগ দেখিবলৈ পোৱা যায়। লেখকে ইয়াত উল্লেখ কৰিছে যে ইয়াৰ মানুহবোৰে বাৰটা মাহত তেৰটামানকৈ ডাঙৰ-ডাঙৰ উৎসৱ পালন কৰে। ঘৰত যদি কেতিয়াবা খাবও নাপায় তেতিয়াও নিজৰ ফুৰ্তিটো ঠিকেই ৰখা পৰিলক্ষিত হয়। এনে লোকসকলক লেখকে ব্যংগ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। আকৌ পূজা-অৰ্চনাত লাখ-লাখ, কোটি-কোটি টকা ব্যয় কৰা কথাও তেওঁ উল্লেখ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। আকৌ ভোগালী বিহুৰ নামত চোৰ কৰাৰ নামত আনৰ বস্তু খান্দি-উঘালি নষ্ট কৰি থৈ যোৱা দিশটোক তেওঁ সমালোচনা কৰা পৰিলক্ষিত হয়।

বিকাশ বৰুৱাৰ সাংস্কৃতিক গুণসম্পন্ন অন্য এখন ৰচনা হৈছে *মাজনিশাৰ সপোন*। বিহুৰ নামত কিদৰে ব'হাগ পাৰ হৈ জেঠ পায়গৈ আৰু কেতিয়াবা শাওনলৈ বিহু অনুষ্ঠান পাতি থাকে সেই সম্পৰ্কে লেখকে ব্যংগ প্ৰকাশ কৰা

পৰিলক্ষিত হৈছে। কিছুমানে প্ৰি-বিহু উদ্‌যাপন কৰি মুঠ চাৰিমাহমান বিহু পাতোতে বিহুৰ মৰ্যাদা কিদৰে হ্ৰাস পায় সেই সম্পৰ্কে ব্যংগ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। আকৌ কিছুমানে বিহু মানেই কেৱল চান্দাকহে বুজা পৰিলক্ষিত হয়। আকৌ কিছুমানে ৰেডিমেড পিঠাৰে বিহু উদ্‌যাপন কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়।

৪.০ সামৰণি ঃ

আধুনিক অসমীয়া ব্যংগ সাহিত্য আৰু সাম্প্ৰতিক অসমীয়া ব্যংগ সাহিত্যৰ অন্যতম হোতাস্বৰূপ বিকাশ বৰুৱাই তেওঁৰ ৰচনাসমূহৰ যোগেদি সমাজৰ ভিন্ন আঁসোৱাহসমূহ দূৰ কৰিছে। এই আঁসোৱাহসমূহৰ ভিতৰত সামাজিক, ৰাজনৈতিক, সাংস্কৃতিক আদিয়েই প্ৰধান। বৰুৱাই তেওঁৰ ব্যংগ ৰচনাসমূহৰ যোগেদি কেতিয়াবা মৃদু আৰু কেতিয়াবা তীব্ৰভাৱে আক্ৰমণ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। সামাজিক আঁসোৱাহ, ৰাজনৈতিক সংকট, সাংস্কৃতিক দুৰৱস্থা তেওঁ ব্যংগসমূহৰ মাজেৰে তুলি ধৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। তেওঁৰ চটপ নামৰ ব্যংগ গ্ৰন্থখনেও সামাজিক, ৰাজনৈতিক, সাংস্কৃতিক ব্যংগক তুলি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। অন্য এক অৰ্থত সাম্প্ৰতিক সময়ৰ এক উল্লেখযোগ্য ব্যংগ ৰচক হিচাপে বিকাশ বৰুৱাৰ অৱিহণাক নুই কৰিব নোৱাৰি। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

বৰুৱা, বিকাশ, চটপ, প্ৰথম প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, বনলতা, ২০০১, মুদ্ৰিত।
বৰুৱা, দিপ্তী, দত্ত, ৰন্টু, অসমীয়া হাস্য-ব্যংগ সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, প্ৰথম প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ, ২০২৪, মুদ্ৰিত।
বৰা, ভদ্ৰ, কলিতা, দাসো, তেৰটা দশকৰ অসমীয়া ৰম্য ৰচনা, প্ৰথম প্ৰকাশ, অসম সাহিত্য সভা, ২০১৭, মুদ্ৰিত।
হাজৰিকা, নিৰঞ্জন, ব্যঙ্গ আৰু ব্যঙ্গ, প্ৰথম প্ৰকাশ, বনলতা, ২০১১, মুদ্ৰিত।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাৰ উপন্যাস ‘আজাৰ’ৰ ইতিহাসনির্ভৰতা

সমীৰ শংকৰ দত্ত
গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
৮২৫৩৯৪৭৪৪৯
sameershankard@gmail.com

ড° কল্পনা শৰ্মা কলিতা
অৱসৰপ্ৰাপ্ত সহযোগী অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ, কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী-০১
৭৫৭৮৯৩৯৮৯০
kalpana.sarma2@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যত ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰা এটা উল্লেখযোগ্য নাম। বলিষ্ঠ কথনভংগী, স্বকীয় কাহিনীকথনৰ শৈলী, প্ৰখৰ ইতিহাসচেতনা আৰু ইয়াৰ সম্পৰীক্ষাত্মক প্ৰয়োগেৰে তেওঁ কেইবাখনো সাৰ্থক অসমীয়া উপন্যাস ৰচনা কৰিছে। সংখ্যাৰ লেখেৰে বৰাৰ উপন্যাসৰ সংখ্যা ২৭ খন। যোৱা শতিকাৰ আশীৰ দশকৰ পৰা উপন্যাস লিখিবলৈ আৰম্ভ কৰা বৰাই বৰ্তমানেও সক্ৰিয়ভাৱে উপন্যাস ৰচনা কৰি আছে। বিভিন্ন বিষয়ৰ উপন্যাস ৰচনা কৰিলেও এই কথা সহজেই অনুমেয় যে ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাৰ প্ৰিয় বিষয় হৈছে অসমৰ সামাজিক-ৰাজনৈতিক ইতিহাস। *সহস্ৰ হেমন্তৰ তৃষাগ্নি, দধিচীৰ অস্থি* আৰু *কৰ্ণ*ৰ বাহিৰে আন গোটেইকেইখন উপন্যাসৰেই পটভূমি অসমৰ ইতিহাস। ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাৰ উপন্যাসত ইতিহাসে প্ৰাণ পাই উঠে সৰ্বসাধাৰণ মানুহৰ জীৱদ্দশাৰ বৰ্ণনাৰে। *কৰ্ণ* উপন্যাসখন এটা মহাকাব্যিক চৰিত্ৰৰ কাল্পনিক পুনৰ নিৰ্মাণ হোৱাৰ বিপৰীতে তেওঁৰ আন সকলোবোৰ উপন্যাস ইতিহাসআশ্ৰিত। ইয়াৰ ভিতৰত বিজু বাউৰী (বৈষ্ণৱ)ৰ জীৱন আধাৰিত *স্বৰ্গাদপি* আৰু ফ্ৰান্সৰ নাৰীবাদী লেখিকা ক্ল’ৰা ক্ৰিষ্টানৰ জীৱন আধাৰিত উপন্যাস *সহস্ৰ হেমন্তৰ তৃষাগ্নি* দুটা ঐতিহাসিক চৰিত্ৰক লৈ ৰচিত হৈছে আৰু আন উপন্যাসসমূহত ইতিহাসে মাথোঁ পৃষ্ঠভূমি তৈয়াৰ কৰি দিছে আৰু এই পৃষ্ঠভূমিতে সমাজৰ সৰ্বসাধাৰণ লোকৰ প্ৰতিনিধিমূলক চৰিত্ৰৰ ক্ৰিয়া প্ৰতিক্ৰিয়াৰে ঔপন্যাসিকে কাহিনীসমূহ বৰ্ণনা কৰিছে।

এই গৱেষণা পত্ৰখনি ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাৰ দ্বাৰা ৰচিত আৰু একবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যৰ এখন অন্যতম লেখত ল’বলগীয়া উপন্যাস *আজাৰ*ৰ কথাবস্তুৰ ইতিহাসনিৰ্ভৰতাৰ বিষয়তো বিশ্লেষণাত্মক দৃষ্টিভংগীৰে প্ৰণালীবদ্ধভাৱে অধ্যয়ন কৰাৰ উদ্দেশ্যে নিৰ্বাচন কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

ইতিহাস, মহামাৰী, উপন্যাস, ইতিহাসআশ্ৰিত, মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহ, আকাল, আজাৰ, মান।

প্ৰস্তাৱনা ঃ

অধ্যয়নৰ বিষয়বস্তু আৰু পৰিসৰ ঃ

একবিংশ শতিকাৰ বৰ্তমানলৈ ৰচিত উপন্যাসসমূহৰ ভিতৰত *আজাৰ* এখন লেখত ল’বলগীয়া উপন্যাস। উপন্যাসত বৰ্ণিত কাহিনী, ওঠৰ শতিকাৰ মাজভাগৰ পৰা বিংশ শতিকাৰ মাজভাগলৈকে অসম ইতিহাসত ঘটিত ঘটনাৰাজিৰ সমান্তৰালকৈ বৰ্ণিত হৈছে। উপন্যাসৰ কাহিনীয়ে মূলত তিনিটা প্ৰজন্মক সামৰি লৈছে যদিও কাহিনীৰ এটা মূল চৰিত্ৰ বুঢ়াদেউতাৰ অতীত স্মৰণৰ মাজেৰে তেওঁলোকৰ পৰিয়ালকেন্দ্ৰিক কিংবদন্তীৰ নায়ক ঘিনাই ডকাইতৰ চৰিত্ৰ আৰু কাহিনীৰ বৰ্ণনাই উপন্যাসখনৰ কাহিনী পাঁচটা প্ৰজন্মলৈ সম্প্ৰসাৰিত কৰিছে। ইতিহাসৰ চিত্ৰণ ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাৰ উপন্যাসৰ

এটা অন্যতম বৈশিষ্ট্য। *আজাৰ* উপন্যাসতো ইতিহাস চিত্ৰিত হৈছে, কিন্তু পোনপটীয়াকৈ এই উপন্যাসখনক ঐতিহাসিক উপন্যাস আখ্যা দিব পৰা নাযায়। এই কথা ঔপন্যাসিকে নিজেই স্বীকাৰ কৰিছে। তেওঁৰ ভাষাৰেই জেৰ টানি ক'ব পাৰি, কাল্পনিক চৰিত্ৰৰ সহায়েৰে এই উপন্যাসখনত মাথো এছোৱা সময়ক তুলি ধৰা হৈছে। সেই সময়ত সংঘটিত কিছুমান সঁচা ঘটনা যেনে মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহ, বাৰে বাৰে হোৱা কলাজ্বৰ মহামাৰী আৰু মানুহৰ জীৱনত ইয়াৰ প্ৰভাৱ, দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধ, আকাল, আধুনিক চিকিৎসা বিজ্ঞান, ভাৰতবৰ্ষৰ স্বাধীনতা লাভ আৰু দেশ বিভাজন আদি এই উপন্যাসখনৰ প্ৰেক্ষাপট আৰু পটভূমি। আমাৰ গৱেষণা পত্ৰত এই উপন্যাসত বৰ্ণিত ঘটনাৰাজিৰ ইতিহাসনিৰ্ভৰতাৰ বিষয়লৈ দৃষ্টিপাত কৰা হ'ব।

অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

উপন্যাস সাহিত্যৰ এটা অতি জনপ্ৰিয় আৰু গুৰুত্বপূৰ্ণ অংগ। উপন্যাসৰ আয়তন গল্প বা কবিতাতকৈ বেছি বাবেই কল্পনাশ্ৰয়ী সাহিত্য (fiction) ৰ ভিতৰত উপন্যাসতেই ইতিহাস আৰু সমাজ আটাইতকৈ বেছিকৈ খুটি-নাটি সহ প্ৰতিফলিত হয়। একবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া ঔপন্যাসিকসকলৰ মাজত ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰা এজন নাম ল'বলগীয়া ঔপন্যাসিক। *কথা ৰত্নাকৰ, কালান্তৰৰ গদ্য, অৰ্থ, লোহা, যান্ত্ৰিক, বৰ্ণবোধ, আৰণ্যক, স্বৰ্গাদপি, ছেলফি, ভোক, সহস্ৰ হেমন্তৰ তৃযাগ্নি, টোপনিত খোজকঢ়া মানুহৰ সপোন* আদি উপন্যাসৰ স্ৰষ্টা ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাৰ উপন্যাসত অসমৰ সমাজ ইতিহাসৰ কেতবোৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয়ে ঠাই পাইছে। এইজন ঔপন্যাসিকৰে *আজাৰ* , অসমৰ ওপৰেদি বাগৰি যোৱা জটিল সময় এছোৱাত সৰ্বসাধাৰণ জনতাৰ জীৱনৰ উত্থান-পতনৰ সাৰ্থক চিত্ৰায়ণ কৰিছে। এক কথাত ক'ব পাৰি *আজাৰ* সৰ্বসাধাৰণ মানুহৰ ইতিহাস। সেয়ে ইয়াত কোনো ঐতিহাসিক চৰিত্ৰ নাথাকিলেও প্ৰত্যেকটো চৰিত্ৰই ইতিহাসৰ সেই সময়ছোৱাৰ সৰ্বসাধাৰণ নামহীন মানুহৰ প্ৰতিনিধি হৈ ধৰা দিছে। *আজাৰ* উপন্যাসখনৰ ইতিহাসনিৰ্ভৰতাৰ অধ্যয়নে সমাজ ইতিহাসৰ বিভিন্ন দিশত আলোকপাত কৰাৰ সম্ভাৱনীয়তাত এই বিষয়টিৰ গুৰুত্ব আৰু প্ৰয়োজনীয়তা উপলব্ধি কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাৰ উপন্যাস 'আজাৰ'ৰ ইতিহাসনিৰ্ভৰতা শীৰ্ষক পত্ৰখনৰ মুখ্য উদ্দেশ্য হৈছে *আজাৰ* উপন্যাসৰ কথাবস্তুৰ ধাৰণাৰে এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন কৰা। লগতে উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত ইতিহাস আৰু উপন্যাসৰ কথাবস্তুৰ আন্তঃসম্পৰ্কক চালি-জাৰি চোৱা।

পদ্ধতি ঃ

ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাৰ উপন্যাস 'আজাৰ'ৰ ইতিহাসনিৰ্ভৰতা শীৰ্ষক পত্ৰত বৰ্ণনামূলক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰা হ'ব।

_আজাৰ_ ৰ ইতিহাসনিৰ্ভৰতা আৰু কাহিনীত ইতিহাসৰ প্ৰতিফলন ঃ

"আজাৰ ঐতিহাসিক উপন্যাস নহয়। ই বাস্তৱৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত সম্পূৰ্ণ এক কাল্পনিক লিখনি। অসমত হোৱা ক'লাজ্বৰ মহামাৰী যিহেতু এটা বিশেষ কালৰ ঐতিহাসিক ঘটনা, গতিকে সেই অৰ্থত ই সময় আৰু ইতিহাসক প্ৰতিফলিত কৰিছে" (দত্ত, আজাৰ, পৃ. ৬৬৯)।*আজাৰ* ঐতিহাসিক উপন্যাসৰ শাৰীত নপৰে। উপন্যাসখনত কোনো ঐতিহাসিক চৰিত্ৰই প্ৰত্যক্ষ ৰূপত নাই। ঐতিহাসিক কেতবোৰ ঘটনাই উপন্যাসখনৰ পটভূমি আৰু প্ৰেক্ষাপটহে গঢ়ি দিছে মাথোন। কিন্তু আজাৰৰ প্ৰত্যেকটো চৰিত্ৰই সেই সময়চোৱাৰ প্ৰতিনিধিত্বমূলক চৰিত্ৰ। *আজাৰ* কোনো ঐতিহাসিক চৰিত্ৰৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল নহয়, এককথাত ক'ব পাৰি *আজাৰ*, সমাজৰ সাধাৰণ মানুহশ্ৰেণীৰ কাল্পনিক ইতিহাস। কল্পনাশ্ৰয়ী উপন্যাস হ'লেও আজাৰে ইয়াৰ কথাবস্তুক আগবঢ়াই নিয়াৰ ক্ষেত্ৰত ইতিহাসৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল। এই উপন্যাসত ইতিহাসৰ পটভূমিত ঔপন্যাসিকে সাধাৰণ মানুহৰ জীৱনৰ উত্থান-পতন, সংঘৰ্ষ, ক্ষমতাৰ অৰিয়াঅৰি, নতুন পৰিস্থিতিৰ প্ৰতি প্ৰতিক্ৰিয়া, মানৱীয় সম্পৰ্কৰ জটিলতা, সাংস্কৃতিক আৰু সামাজিক পৰিৱৰ্তনক উপন্যাসখনৰ নেৰেটিভ হিচাপে নিৰ্মাণ কৰিছে। আজাৰৰ আটাইতকৈ মনকৰিবলগীয়া বৈশিষ্ট্য হৈছে যে ঔপন্যাসিকে ইয়াত বিচাৰক বা নৈতিকতাৰ দ্বাৰপালৰ ভূমিকাত অৱতীৰ্ণ নোহোৱাকৈয়ে পৰম্পৰাগত ইতিহাসত উপেক্ষিত হৈ থকা নিম্নবৰ্গৰ দুখ-দুৰ্দশা আৰু জীৱনসংঘৰ্ষৰ চিত্ৰায়ণ কৰা হৈছে। ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাৰ উপন্যাসৰ এইটো এটা অন্যতম বৈশিষ্ট্য। *স্বৰ্গাদপি* আৰু *সহস্ৰ হেমন্তৰ তৃযাগ্নি*ৰ বাহিৰে গোটেইকেইখন উপন্যাসতে মূল ভূমিকাত এই সৰ্বসাধাৰণ লোকসকলৰ জীৱনকেই তেওঁ অৱতীৰ্ণ কৰাইছে। উল্লেখযোগ্য যে *স্বৰ্গাদপি* স্বাধীনতা যুঁজাৰু 'বিজু বাউৰী'ৰ জীৱন আধাৰিত আৰু *সহস্ৰ হেমন্তৰ তৃযাগ্নি* হৈছে ফ্ৰান্সৰ শ্ৰমিক আন্দোলনৰ নেত্ৰী, লেখিকা ফ্ল'ৰা ত্ৰিষ্টানৰ জীৱন কাহিনীৰ ভেটিত সৃষ্ট উপন্যাস। দুটা ঐতিহাসিক

চৰিত্ৰৰ জীৱনক লৈ ৰচিত উপন্যাস যদিও এই দুখন উপন্যাসৰ কাহিনীটো সৰ্বসাধাৰণৰ জীৱন সংঘৰ্ষ চিত্ৰিত হৈছে। অকলশৰীয়া মানুহৰ বা মানুহৰ সামাজিক কাম-কাজে ইতিহাসক যি গতি দিয়ে তেওঁ সেই গতিকেই ঐতিহাসিক পটভূমিত কাল্পনিক চৰিত্ৰৰ দ্বাৰাই কাৰ্যকলাপৰ মাজেৰে উপন্যাসত ফুটাই তোলে। 'ইতিহাস' ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাৰ উপন্যাসৰ এৰাব নোৱাৰা অনুষংগ। যি তেওঁৰ উপন্যাস *লোহা, আৰণ্যক, কথা ৰত্নাকৰ, চীনাযুদ্ধৰ মালিতা, কালান্তৰৰ গদ্য, অৰ্থ, তেজৰ আন্ধাৰ, টোপনিত খোজকঢ়া মানুহৰ সপোন, আজাৰ* আদি সকলোতেই পৰিস্ফুট হৈছে। *আজাৰ* ৰ কাহিনীয়ে প্ৰায় ডেৰশটা বছৰ সামৰি লৈছে। তিনিটা প্ৰজন্মৰ কাহিনীৰে ৰচিত ছশ (৬০০) পৃষ্ঠাতকৈও অধিক কলেৱৰৰ *আজাৰে* ইতিহাসৰ মূল তিনিটা প্ৰসংগ চুইছে। মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহৰ শেষভাগ, প্ৰাক্ স্বাধীনতা কালৰ আকাল আৰু মহামাৰী, আৰু ভাৰতৰ স্বাধীনতা লাভ। ইয়াৰ বাহিৰেও এই কালছোৱাৰ সমাজ সংস্কৃতিত ক্ৰিয়া কৰি থকা নানা সাংস্কৃতিক উপাদান, ক্ষমতাকেন্দ্ৰিক বিভিন্ন সামাজিক ব্যৱস্থা, ধৰ্ম আৰু ৰাজনীতিৰ কেতবোৰ বিষয়, সামাজিক আচাৰ-কুসংস্কাৰ, চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ বিশেষকৈ কলাজ্বৰ মহামাৰী বিষয়ক নানা চিন্তা-চৰ্চা, গৱেষণা আৰু এই মহামাৰী ৰোধ কৰিবলৈ লোৱা নানা পদক্ষেপৰ উল্লেখেও উপন্যাসখনৰ ইতিহাসনিৰ্ভৰতা স্পষ্ট কৰি তুলিছে। *আজাৰ* ত পোনপটীয়াকৈ কোনো ঐতিহাসিক কাহিনী বা চৰিত্ৰৰ বৰ্ণনা নাই যদিও গোটেই উপন্যাসখনেই ইতিহাসৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হৈছে।

মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহ আৰু মানৰ অসম আক্ৰমণৰ পটভূমিত *আজাৰ* ৰ কথাবস্তু ঃ

অসম ইতিহাসৰ এচোৱা গুৰুত্বপূৰ্ণ আৰু ঘটনাবহুল সময় হৈছে মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহৰ সময়খিনি। ১৭৬৯ চনৰ পৰা ১৮০৫ মানলৈকে এৰা ধৰাকৈ চলা এই বিদ্ৰোহে সুদীৰ্ঘ আহোম ৰাজত্বৰ ভেটি থৰক বৰক কৰি পেলাইছিল। আপাত দৃষ্টিত এই বিদ্ৰোহ মায়ামৰা সত্ৰৰ মৰাণ শিচসকল আৰু আহোম ৰাজন্যবৰ্গৰ মাজত হোৱা সংঘৰ্ষ যেন লাগিলেও এই বিদ্ৰোহত মাথো মৰাণ, মটকসকলেই নহয় সেইসময়ৰ আহোম ৰাজ্যৰ অন্তৰ্গত প্ৰায় সকলো জাতি জনজাতিৰ লোকেই অংশগ্ৰহণ কৰিছিল, আনকি স্বৰ্গদেউ ৰুদ্ৰসিংহৰ পুত্ৰ মোহনমালা কোঁৱৰক নেতা সাজি যুদ্ধ কৰিবলৈ যোৱা দ্ৰোহীয়াসকলৰ মাজত আহোম প্ৰজাও আছিল। মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহত হোৱা এই ব্যাপক অংশগ্ৰহণে ইয়াক সাধাৰণ কৃষক, নিগৃহীত প্ৰজাৰ বিদ্ৰোহলৈ ৰূপান্তৰিত কৰি তুলিলে। এই বিদ্ৰোহে অসমৰ ৰাজনৈতিক চিত্ৰপটৰ দ্ৰুত সালসলনি ঘটোৱাৰ লগতে সাধাৰণ জনজীৱনলৈও ব্যাপক পৰিৱৰ্তন লৈ আনে। এই বিদ্ৰোহৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত সাধাৰণ জনতাৰ জীৱনলৈ নামি আহিছিল অভাৱ, অনিশ্চয়তা, মৃত্যুভয়। বিদ্ৰোহত অংশগ্ৰহণ কৰা অথবা নকৰা সকলো লোকেই এই বিদ্ৰোহৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হৈছিল। ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাই সাহিত্যিক জীৱনৰ আৰম্ভণিৰ পৰাই ইতিহাস চৰ্চাক গুৰুত্ব সহকাৰে গ্ৰহণ কৰিছিল। ১৯৮৩ চনতে তেওঁৰ মোৱামৰীয়া গণ অভ্যুত্থান, অসমৰ সমাজ বিকাশৰ ইতিহাস নামেৰে দুটা খণ্ডৰ এখন কিতাপ প্ৰকাশ পাইছিল। তদুপৰি তেওঁৰ বিখ্যাত উপন্যাস *লোহা* ত মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহৰ উল্লেখ আছে। শেহতীয়াভাৱে ১৯২২ চনত তেওঁৰ *কৃষক বিদ্ৰোহী সৈনিক ৰাজন* নামৰ এইবিষয়ক এখন বৃহৎ কলেৱৰৰ কিতাপ প্ৰকাশ পাইছে। এই কথা স্পষ্ট যে ঔপন্যাসিক গৰাকী আহোম ইতিহাসৰ এই সময়চোৱাৰ প্ৰতি অতি আগ্ৰহী। ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাই বিশ্বাস কৰে যে "ইতিহাস সৃষ্টি কৰে জনগণে। জনগণেই হ'ল ইতিহাসৰ মূল চালিকাশক্তি" (মোৱামৰীয়া গণ অভ্যুত্থান পৃ.১)।

এই ধাৰণাৰে পুষ্ট হৈয়েই তেওঁ উপন্যাসসমূহ ৰচনা কৰিছে। *আজাৰ* ও তাৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। *আজাৰ* ত চৰিত্ৰসমূহ পোনপটীয়াকৈ এই বিদ্ৰোহৰ অংশ হৈ পৰা নাই তথাপি তেওঁলোকৰ জীৱনৰ দিক্‌নিৰ্ণয় বহুলাংশে এই বিদ্ৰোহ সৃষ্ট পৰিবেশ আৰু পৰিস্থিতিয়েই। ঔপন্যাসিকৰ ভাষাতেই ক'ব পাৰি— "এইবোৰ আমাৰ যুঁজ বাগৰ নহয়।..........আমি সিহঁতৰ লগত থাকিম আৰু নাথাকোঁও, লগে ভাগে যাম আৰু নাযাওঁ" (আজাৰ, পৃ. ১১০)।

উপন্যাসখনৰ পঞ্চম অধ্যায়ত ইয়াৰ অন্যতম মুখ্য চৰিত্ৰ ঘিনাইৰ আবিৰ্ভাৱ মনকৰিবলগীয়া— ঘিনাইৰ যিদিনা জন্ম হৈছিল "সেইদিনা বোলে ৰাজধানী ৰংপুৰত মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহী প্ৰজাবোৰে লক্ষ্মীসিংহক পাটৰ পৰা আঁতৰ কৰিছিল" (আজাৰ, পৃ. ৫৪)। অৰ্থাৎ ঘিনাইৰ জন্মলগ্নৰ দৈবতে ইতিহাসৰ এচোৱা সময় কাকতালীয়ভাৱে সংযোজিত হৈ পৰিছে। যেনেকৈ ছলমান ৰুশ্বদীৰ Midnight's Children ত। "I was born in Doctor Narlikar's Nursing Home on August 15th, 1947. And the time? ....." (Midnight's Children, p.1). ভাৰতে স্বাধীনতা লাভ কৰা বিশেষ দিনটোতে আৰু ইয়েই উপন্যাসখনৰ চলিম চিনাইৰ জীৱনলৈ এক বিশেষত্ব আনি দিয়ে। ঠিক তেনেকৈয়ে অসম ইতিহাসৰ মোৱামৰীয়া

বিদ্ৰোহৰ এই গুৰুত্বপূৰ্ণ দিনটোতে জন্ম হোৱা ঘিনাইৰ মাজেৰে ঔপন্যাসিকে এই সময়চোৱা চিত্ৰায়ণ কৰিব বিচাৰিছে যে সেয়া স্পষ্ট হৈ পৰিছে।

আজাৰ ত তথ্যৰ পয়োভৰেৰে ইতিহাস ৰচনা কৰাৰ প্ৰচেষ্টা নাই বৰং সৰ্বসাধাৰণ মানুহৰ ইতিহাসে ঢুকি নোপোৱা জীৱনৰ বৰ্ণনাৰে ঔপন্যাসিকে উপন্যাসখনৰ কথাবস্তু সজাইছে। তেওঁৰ সাহিত্যিক দৰ্শনৰে তেওঁ এই সৰ্বসাধাৰণকেই মুখ্য ভূমিকাত অৱতীৰ্ণ কৰাইছে আৰু ইতিহাস আৰু পাঠৰ মাজত এটা সুসন্তুলন বজাই ৰাখি দুয়োটাকে সম্পৰ্কিত কৰিছে। উপন্যাসৰ পাতত এইদৰেই তেওঁ ইতিহাসত 'নীৰৱ আৰু Passive দৰ্শক'ৰ ভূমিকাত থকা সাধাৰণ মানুহক 'সৰৱ আৰু Active participant'ৰ ভূমিকাত অৱতীৰ্ণ কৰাইছে। বদলি হৈ থকা পৰিবেশ পৰিস্থিতিৰ উমান দিবলৈ আৰু এই বদলিয়ে প্ৰভাৱিত কৰা সৰ্বসাধাৰণৰ জীৱনৰ গতিক চিত্ৰায়িত কৰিবলৈ *আজাৰ* ত কথোপকথনৰ মাজেৰে বা কেতিয়াবা বৰ্ণনাৰে তথ্য দিয়া হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে, "মৰিল সেই অসুৰটো মৰিল।....বৰ আই গোসাঁনীয়ে তাক নিলে। প্ৰথম আই গোসাঁনীয়ে নিলে জীয়েকজনীক তাৰ পাছত বাপেকক" (আজাৰ, পৃ. ৫৬)। "ঘিনাইৰ চৈধ্য বছৰ হৈছে, দেশৰ প্ৰজাহঁতৰ এবাহে আকৌ ৰজা মাৰিবলৈ দা দাঙিলে" (আজাৰ, পৃ. ৭২)। "সিহঁতে গড়গাঁও নগৰ মাৰি আহি ৰাজধানী ৰংপুৰো মাৰিলেহি। কিন্তু সিহঁতে ৰজাটোক মাৰিব নোৱাৰিলে।...দ্ৰোহীয়াহঁতক ৰজাঘৰে বেয়াকৈ হৰুৱালে অ', সোপাকে নগৰৰ পৰা খেদিলে, সোপাই গাঁৱলৈ পলাল, ঘৰে ঘৰে ভাগিল আৰু ৰজাই এতিয়া বোলে হুলিয়া জাৰি কৰিছে বোলে দ্ৰোহীয়াহঁতক সেয়ে য'তে পায় ধৰি সপুত্ৰ-বান্ধৱে মাৰিব" (আজাৰ, পৃ. ৭৩)। এইধৰণৰ উল্লেখসমূহৰ বাহিৰেও বিদ্ৰোহ দমন কৰিবলৈ মগলু ঘৌৰাচোৱাৰী (মণিপুৰী সৈন্য)ৰ সহায় লোৱা, বিদ্ৰোহৰ শেষত দেৰগাঁৱত বিদ্ৰোহীৰ দ্বাৰা নিজৰ মানুহৰেই অনিষ্ট সাধন, গাঁও উচন আদিৰ উল্লেখ আছে। তদুপৰি বুৰঞ্জীত সামান্য মাত্ৰ উল্লেখ থকা নঙঠা নামৰ বৈৰাগী এটাক ঔপন্যাসিকে আকৰ্ষণীয় চৰিত্ৰলৈ ৰূপান্তৰিত কৰিছে যি এদল টোকন লোৱা বৰতীয়াক লগত লৈ গাঁৱে গাঁৱে মানুহ মাৰি ফুৰিছিল। এই চৰিত্ৰটো এক অৰাজক পৰিৱেশত অৱধাৰিতভাৱে জন্ম পোৱা সশস্ত্ৰ ধৰ্মীয় নেতাৰ স্বয়ম্ভু চৰ্দাৰৰে প্ৰতিনিধিস্বৰূপ। ইতিহাসত একপ্ৰকাৰ উহ্য হৈ থকা এনেবোৰ চৰিত্ৰ উপন্যাসত প্ৰাণৱন্ত হৈ উঠে। এইক্ষেত্ৰত নতুন ইতিহাসবাদী চিন্তাধাৰাৰে প্ৰতিফলন ঘটে আৰু উপন্যাসৰ পাঠেও ইতিহাসৰ তথ্য দিব পৰাকৈ, ইতিহাসৰ পুনৰ্নিৰ্মাণ কৰিব পৰাকৈ শক্তিশালী হৈ উঠে। অৰ্থাৎ খণ্ডিত ইতিহাসৰ মাজৰ সুৰুঙাবোৰ মৰাৰ সুবিধাকণ উলিয়াই দিয়ে আৰু সেয়েই আন ঐতিহাসিক উৎস আৰু সমলৰ সমমৰ্যাদা লাভ কৰে।

মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহৰ পাছতে মানৰ অসম আক্ৰমণৰ বিষয়েও উপন্যাসখনত সামান্য উল্লেখ আছে। অস্থিৰ ৰাজনৈতিক পৰিৱেশত অসমত ক্ষমতাৰ অৰিয়াঅৰিত মানসকলে বদন বৰফুকনৰ আমন্ত্ৰণত প্ৰথমবাৰ অসম আক্ৰমণ কৰে। এই আক্ৰমণে জনজীৱনত আন এক বিভীষিকা আৰু ত্ৰাসৰ সৃষ্টি কৰে। তিনিবাৰকৈ হোৱা এই আক্ৰমণে অসমৰ জনগাঁথনি সম্পূৰ্ণৰূপে সলাই পেলাইছিল। দুৰণিবটীয়া কিছু ঠাইত কিছু লোকে এই ভয়ানক অত্যাচাৰৰ পৰা ৰক্ষা পৰিছিল কিন্তু তেওঁলোকে ঘৰ-বাৰী ত্যাগ কৰি দূৰ দুৰ্গম ঠাইলৈ প্ৰাণৰ দায়ত ঢাপলি মেলিবলগীয়া হৈছিল। উপন্যাসখনত ইয়াৰ বৰ্ণনা আছে এনেধৰণে, "মানতৰা সোমাইছে যেতিয়া কেতিয়া আহি এইখণ্ড পাইহি কোৱা টান। আটায়ে সাজু হ'ব লাগে। ল'ৰা-তিৰোতা পাহাৰৰ দাঁতিলৈ পঠিয়াব লাগিব।"

(আজাৰ, পৃ. ২০৪)।

এই ৰাজনৈতিক ঘটনাসমূহৰ উপৰিও উপন্যাসখনে সাংস্কৃতিক ইতিহাসৰো নানান কথাৰে কাহিনীটো আৰু জীৱন্ত আৰু ইতিহাসৰ ওচৰ চপাই লৈ গৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে ঘিনাইয়ে লৈ যোৱা গৰুহালেৰে হাল বাই মাটি বোকা কৰি শালি ধানৰ খেতি কৰিবলৈ ভৈয়ামৰ মানুহখিনিয়ে পাহাৰীয়া কাৰবি মানুহবোৰক শিকাইছে, বিভিন্ন ঠাইত ভূত-প্ৰেত আৰু অশৰীৰী আত্মাৰ উল্লেখ, কাৰবি সংস্কৃতিৰ চাংঘৰ, ইৰলাং আবাদ, ডেকাচাঙ, এঢলীয়া মাটিত কৰা খেতি, গছবনৰ পৰা তৈয়াৰ কৰা ঔষধ আদিৰ কথা উপন্যাসখনত বৰ্ণনা কৰিছে।

আজাৰত মহামাৰীৰ চিত্ৰায়ণ ঃ

মহামাৰীক বিষয় হিচাপে লৈ বিশ্বসাহিত্যত বহুকেইখন কালোত্তীৰ্ণ উপন্যাস ৰচনা কৰা হৈছে। ফৰাচী দাৰ্শনিক আলবেয়াৰ কেমুৰ *প্লেগ* আৰু পৰ্তুগীজ ঔপন্যাসিক হ'জে চাৰামাগৰ *ব্লাইণ্ডনেছ*, গ্ৰেবিয়েল গ্ৰাচিয়া মাৰ্কেজৰ *লাভ ইন দ্য টাইম অৱ কলেৰা* এই উপন্যাসসমূহৰ মাজত অন্যতম। অসমীয়া ভাষাত মহামাৰীক বিষয়বস্তু হিচাপে উপস্থাপন কৰা এইখনেই প্ৰথম আৰু বৰ্তমানলৈকে একমাত্ৰ উপন্যাস। ১৮৭৫ চনৰ পৰা গাৰোপাহাৰ আৰু লাহে লাহে অসমৰ বহু ঠাইত বিয়পি পৰি পাছৰ দুটা দশক (১৯০৩-০৪ লৈকে)

অসমত সংহাৰী ৰূপ লোৱা ক'লাজ্বৰ বা কালা-আজাৰ মহামাৰী যাক পোনতে অসম জ্বৰ বা আছাম ফিভাৰ বুলিও অভিহিত কৰা হৈছিল। এই মহামাৰীকেই এজন মেডিকেলৰ ছাত্ৰ আৰু পাছলৈ চিকিৎসক হোৱা উপন্যাসখনৰ এটা মুখ্য চৰিত্ৰ মণিময়ৰ মাজেৰে লেখকে উন্মোচন কৰিছে। ইতিহাসৰ এই সময়ছোৱাৰ বৰ বিশদ তথ্য পোৱা নাযায়। ঔপন্যাসিকে অতি কষ্টৰে তেওঁ লাভ কৰা সামান্য তথ্যৰ ভেটিতেই কাহিনীটো নিৰ্মাণ কৰিছে। এককথাত ই ইতিহাসৰ পুনৰ্নিৰ্মাণেই। তদুপৰি এই মহামাৰী *আজাৰ*ক তেওঁ এক প্ৰতীক হিচাপে উপস্থাপন কৰিছে আৰু সেয়ে কৈছে, "আজাৰ মানে কেৱল এটা বেমাৰ নহয়, ই সমগ্ৰ তদানীন্তন সমাজ ব্যৱস্থাৰ 'আজাৰো', এই বোধ মোৰ জাগিছিল আৰু উপন্যাসখনত মোৰ সমগ্ৰ সীমাবদ্ধতাৰে মই তাকেই প্ৰতিফলিত কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিছোঁ" (আজাৰ, পৃ. ৫)।

চিকিৎসা শাস্ত্ৰ পঢ়িবলৈ যোৱা মণিময়ক মাকে চিঠিৰে তাৰ সৰু কালৰ স্মৃতিৰ জেৰ টানি তাৰ কৰ্তব্যৰ কথা সোঁৱৰাই দিছে। "কাহানিও নেদেখা, নাম নুশুনা বেমাৰ এটাই মহামাৰী হৈ প্ৰজাক সংহাৰ কৰিলে বহু গাঁও উছন হ'ল। বহু এলেকা মৰিশালি হ'ল। ...এতিয়াও তুঁহজুইৰ দৰে আজাৰটো উমি উমি জ্বলি আছে। ঠায়ে ঠায়ে আকৌ ওলায়। তুমি কলিকতালৈ গ'লা যেতিয়া এই বেমাৰটোৰ বিষয়ে সকলো কথা খৰচি মাৰি শিকি আহিবা যাতে ইয়াত মানুহক চিকিৎসা কৰি ভাল কৰি তুলিব পাৰা... ।"

(আজাৰ, পৃ. ২২৮)।

মণিময়ৰ অনুসন্ধানৰ মাজেৰেই তাৰপৰা এই মহামাৰীৰ এন্ধাৰ সময়খিনি উপন্যাসখনত স্পষ্ট হৈ উঠিছে। "শ শ মানুহ মৰিছিল। যিবোৰ কিছুদিন জীয়াই আছিল সেইবোৰো জীৱন্ত নৰকংকালৰ দৰে হৈ পৰিছিল। খৰিকাৰ দৰে হাত ভৰি, বিশাল চেলেৰ দৰে পেট। পেটৰ ভিতৰত প্লীহাটো ডাঙৰ হৈ পৰিছিল। মানুহবোৰ জুয়ে পোৰাৰ দৰে ক'লা হৈ পৰিছিল। ইফালে সিফালে গছৰ তলত মানুহবোৰ পৰি থাকিছিল" (আজাৰ, পৃ. ২৩০)।

মণিময়ে লাইব্ৰেৰীত বিভিন্ন কিতাপ জাৰ্নেল আদি অধ্যয়ন কৰি পোৱা তথ্যবোৰে উপন্যাসখনত ঠাই পাইছে। যেনে ছাৰ্জন কেপ্তেইন ৰ'জাছৰ গৱেষণাৰ কথা, মেলেৰিয়াৰ বাবে প্লাজ'মডিয়াম ভাইভেক্স'ৰ আৱিষ্কাৰৰ কথা, ব্ৰিটিছ চাহাবসকলে এই বেমাৰত বাগানৰ গিৰমিটীয়া কুলীসকলৰ মৃত্যুত ব্যৱসায়িক লোকচানৰ আশংকা কৰি উদ্বিগ্ন হোৱাৰ কথা, ক'ৰনটাইন বা সামাজিক যোগাযোগৰ ৰাগী থকা পৰিয়ালক আঁতৰাই ৰখাৰ ব্যৱস্থা লোৱাৰ কথা, কলিকতাৰ কালিঘাট, বৰ্ধমান আদি ঠাইত হোৱা ক'লাজ্বৰৰ উল্লেখ। উপেন্দ্ৰনাথ ব্ৰহ্মচাৰীৰ দ্বাৰা ক'লাজ্বৰৰ প্ৰতিষেধক বেজীৰ আৱিষ্কাৰ আৰু ব্ৰহ্মচাৰীৰ জীৱনৰ কিছু অভ্যাসো উপন্যাসখনৰ কথাবস্তুৰে সামৰি লৈছে। এইসকলোবোৰ তথ্যৰ উল্লেখেও উপন্যাসখন ভাৰাক্ৰান্ত কৰি পেলোৱা নাই কাৰণ উপন্যাসখনৰ সকলো স্তৰতে মূল ভূমিকাত বা Protagonist হিচাপে সৰ্বসাধাৰণ মানুহৰ জীৱনকেই ৰখা হৈছে। তদুপৰি ইণ্ডিয়ান মেডিকেল চাৰ্ভিছ, ইউৰোপীয় আৰ্হিৰ চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ শিক্ষাৰ আৰম্ভণি কালৰ কিছু কথা আৰু স্বয়ং উপেন্দ্ৰনাথ ব্ৰহ্মচাৰীৰ মুখেৰে ক'লাজ্বৰৰ লক্ষণসমূহৰ বৰ্ণনা কৰাই আৰু মহামাৰী ৰোধ কৰাৰ চেষ্টা সমূহো বৰ্ণনা কৰি ঔপন্যাসিকে ৰাজনৈতিক উত্থান পতনৰ বৰ্ণনাৰে ভৰপূৰ ইতিহাসৰ মাজত উহ্য হৈ পৰা ভাৰতীয় চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ এই সময়চোৱা পোহৰাই তুলিছে। তদুপৰি ঔপনিবেশ চৰকাৰৰ এই মহামাৰীৰ প্ৰতি গ্ৰহণ কৰা স্থিতিত যে মানৱীয়তাতকৈ ব্যৱসায়িক লাভ লোকচানৰ হিচাপহে বেছি আছিল তাকো ঔপন্যাসিকে কাহিনীৰ মাজেৰে স্পষ্ট কৰি তুলিছে।

ঔপন্যাসিকে আগকথাতে এই কথা স্পষ্ট কৰি দিছিল যে এই আজাৰ আমাৰ সমাজ ব্যৱস্থাৰো *আজাৰ*। ম'হৰ খুটিত গৰুৱাৰ লগত সংসাৰ কৰি থকা বৰআইক পুৰি মৰা আৰু জীয়েক সৰুআইক যাঠীৰে হানি ডাইনীৰ সন্দেহত হত্যা কৰাৰ ঘটনাই এই কথাৰ প্ৰমাণ কৰিছে। বেমাৰ আজাৰৰ বা আন কিবা অমংগলৰ কাৰণ হিচাবে কোনো মানুহক ডাইনী সজোৱাটো পৃথিৱীৰ প্ৰায় সকলো প্ৰান্তৰৰ মানুহৰে দস্তুৰ। ইতিহাসৰ পাতত বিশেষকৈ ইউৰোপীয় ইতিহাস এনে উদাহৰণেৰে ভৰি আছে। জোৱান অৱ আৰ্ককো ডাইনী আখ্যা দিয়েই পুৰি মৰা হৈছিল। সময় আৰু দুৰ্যোগৰ সুবিধা লৈ আনক ডাইনী সজাই স্বাৰ্থ সিদ্ধি কৰাটোও সমাজৰ জটিল চৰিত্ৰৰে এটা বৈশিষ্ট্য। উপন্যাসৰ 'আহিনী'ৰ কাহিনীটোৱেই তাৰ উদাহৰণ।

ক'লাজ্বৰ মহামাৰী তিনিবাৰকৈ হৈছিল। প্ৰথমবাৰৰ বেমাৰ লক্ষণবোৰতকৈ পাছত দুবাৰ লক্ষণবোৰ অলপ বেলেগ হ'ল। প্ৰথমে ৰোগীবোৰ জ্বৰ হোৱাৰ কেইদিনমানৰ পাছতে মৰিছিল, পাছলৈ ইমান সোনকালে নমৰিছিল। প্ৰথম মহামাৰী প্ৰায় বিশবছৰ ধৰি চলিছিল তাৰে প্ৰথম দহবছৰতকৈ পাছৰ দহবছৰ ইয়াৰ সংহাৰীৰূপটো কিছু কমিছিল। দ্বিতীয়বাৰৰ মহামাৰী প্ৰায় পাঁচবছৰ কাল থাকিল আৰু কেইবাখনো নতুন ঠাইত ই দেখা দিছিল। তৃতীয়বাৰ পুৰণা

ক্ৰণিক কেছবোৰ পুনৰ ওলাল আৰু নতুন কেছো ওলাল, কিন্তু 'তেতিয়ালৈ ক'লাজ্বৰৰ বেজী ওলাল।' উপন্যাসখন চিকিৎসাবিজ্ঞানৰ ছাত্ৰ আৰু পাছলৈ চিকিৎসক মণিময়ৰ অনুসন্ধান আৰু ক'লাজ্বৰ নিৰাময়ৰ যুঁজত সক্ৰিয় অংশগ্ৰহণৰ দ্বাৰা ঔপন্যাসিকে মহামাৰীটোৰ ইতিহাস আৰু অসমত ইয়াৰ প্ৰভাৱক সম্পূৰ্ণ মানৱীয় দৃষ্টিভংগীৰে চিত্ৰায়িত কৰিছে। ক'লাজ্বৰৰ ইতিহাস বুলি কওঁতে ব্ৰিটিছ মেডিকেল জাৰ্ণেলত পোৱা তথ্যৰ পৰা উপেন্দ্ৰনাথ ব্ৰহ্মচাৰীৰ প্ৰতিষেধক উদ্ভাৱন, ক'লাজ্বৰ বিয়পোৱা পতংগ 'ফ্লেবটমাচ আৰ্জেণ্টিপাই' বা 'ছেণ্ড ফ্লাই' আৱিষ্কাৰ, ক'লাজ্বৰ বিয়পি পৰা অঞ্চলবোৰত বেজীৰ নাটনি, ব্ৰিটিছ বিষয়াসকলৰ মাথোঁ চাহবাগানৰ স্বাৰ্থৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি বেজী বিতৰণ আদি কথা উপন্যাসখনৰ কাহিনীৰ অগ্ৰগতিৰ লগে লগে পাঠকে লাভ কৰিছে। এই ইতিহাসৰ বাহিৰেও পৰম্পৰাগত ইতিহাসত সাধাৰণতে লিপিবদ্ধ নোহোৱা কিছু কথা অৰ্থাৎ সাধাৰণ লোকৰ এই মহামাৰী প্ৰতি যি দৃষ্টিভংগী আৰু ইয়াৰ প্ৰতিকাৰৰ বাবে তেওঁলোকে লোৱা চিকিৎসাশাস্ত্ৰৰ ভিতৰৰ আৰু বাহিৰৰ কামবোৰ যেনে গাঁও বা চুবুৰী একোটাক আন বসতিৰ পৰা সম্পূৰ্ণ নিলগাই দিয়া, এই বেমাৰৰ বাবে 'আজাৰ ফুকুৰা ডাইনী'ক পুৰি মৰা, মচুৰ ডাইল বিলাহী আৰু বৰালি মাছ খোৱাৰ হুতাশৰ কথা আদিয়ে উপন্যাসখনত ঠাই পাইছে।

***আজাৰ*ত ব্ৰিটিছ ঔপনিবেশকাল আৰু ভাৰতৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ প্ৰতিফলন ঃ**

*আজাৰ*ত ঠাই পোৱা তৃতীয় গুৰুত্বপূৰ্ণ ঐতিহাসিক সময় আৰু ঘটনা হৈছে ব্ৰিটিছৰ শাসনৰ সময়ছোৱা আৰু ভাৰতবৰ্ষৰ স্বাধীনতা লাভ। ভাৰতবৰ্ষৰ স্বাধীনতা লাভৰ ক্ষণতেই এক প্ৰচুৰ আশাবাদেৰে উপন্যাসখন শেষ হৈছে। ইতিহাসৰ ঘটনাসমূহে উপন্যাসখনৰ কাহিনীৰ চৰিত্ৰসমূহক পোনপটীয়াকৈ প্ৰভাৱিত নকৰিলেও তেওঁলোকৰ প্ৰত্যেকটো কাৰ্যকলাপৰ বাবে এক পৰিবেশ তৈয়াৰ কৰি দিছে। মাজে মাজে একেবাৰে সৰুকৈ উল্লেখ হোৱা ঐতিহাসিক চৰিত্ৰসমূহে পোনে পোনে উপন্যাসৰ কোনো চৰিত্ৰৰ মুখামুখি হোৱা নাই, ব্যতিক্ৰম মাথোঁ উপেন্দ্ৰনাথ ব্ৰহ্মচাৰীৰ মণিময় আৰু নীলদ্ৰীৰ সৈতে সাক্ষাৎ, তদুপৰি এঠাইত হৰনাথ দাৰোগাই বুঢ়াদেউতাৰ পূৰ্বপুৰুষক মৌজা চমজোৱাৰ উল্লেখ আছে আৰু ঘিনাই পুৰুযে মণিৰাম দেৱানৰ হৈ কাম কৰাৰ প্ৰস্তুতি চলোৱাৰ ইংগিত পোৱা যায়। ঔপন্যাসিকে ইতিহাসৰ তথ্যসমূহ মূল কাহিনীৰ সমান্তৰালকৈ বৰ কৌশলগতভাৱে উপন্যাসখনত গাঁঠি গৈছে যি উপন্যাসখনৰ ঘটনাৱলীৰ কালনিৰ্ণয় পাঠকৰ বাবে সুচল হৈ পৰিছে।

মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহ দমনত কোম্পানীৰ সামৰিক শক্তিৰ ভূমিকা, ইয়াণ্ডাবু সন্ধিৰ পাছত হোৱা গোমধৰ কোঁৱৰৰ দ্ৰোহ, পুৰন্দৰ সিংহক পঞ্চাছ হাজাৰ টকা কৰৰ বিনিময়ত লালবন্দীকৈ উজনি অসমৰ ৰজা পতা, মতিবৰ বৰসেনাপতিক মটক এলেকা দিয়া, মণিৰামৰ দ্ৰোহ, ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলন, মহাত্মা গান্ধীৰ অসহযোগ আন্দোলন, ইংৰাজৰ কানিৰ বেপাৰ, চাহ বাগিছা পতা, অসমত খ্ৰীষ্টধৰ্মৰ প্ৰভাৱ, স্বদেশী আন্দোলন, বংগ ভংগ, দেশ বিভাজনৰ পৰত গোপীনাথ বৰদলৈ, চৈয়দ চাদুল্লাৰ ভূমিকা, পাকিস্তানৰ জন্ম আৰু সদৌ শেষত স্বাধীনতা লাভৰ কথাই উপন্যাসখনত ঠাই পাইছে যদিও এই ঘটনাসমূহ বৰ্ণনা কৰা ঔপন্যাসিকৰ উদ্দেশ্য মুঠেও নহয়। এই ঘটনাবোৰৰ মাজে মাজে আগবাঢ়ি গৈ থকা আজাৰৰ মহামাৰীক লৈ মণিময়ে কৰা যুঁজখন আৰু এই মহামাৰীৰ লগতে পৰাধীনতাৰ বন্ধনত আৰু ন কৈ জাগ্ৰত হৈ অহা স্বাভিমান আৰু আত্মসচেতনতাৰে সৰ্বসাধাৰণ মানুহৰ নতুন সময়ৰ প্ৰেক্ষাপটত যি প্ৰতিক্ৰিয়া তাক প্ৰকাশ কৰাহে ঔপন্যাসিকৰ উদ্দেশ্য হৈ পৰিছে। আগতে উল্লেখ কৰি অহা ঘটনাবোৰৰ বাহিৰেও দ্বিতীয় মহাসমৰৰ কথাও উপন্যাসখনত আছে। সেয়ে দেখা যায় পৰম্পৰাগত ইতিহাসৰ যিবোৰ ঘটনাই উপন্যাসৰ চৰিত্ৰসমূহৰ জীৱন প্ৰভাৱিত কৰিছে সেই সকলো মূল কথাৰে উল্লেখ ঔপন্যাসিকে কৰিছে যদিও উপন্যাসখন ইতিহাসৰ নীৰস ধাৰাভাষ্য হৈ পৰা নাই। বৰং এই ঘটনাসমূহৰ প্ৰতিক্ৰিয়া সৰ্বসাধাৰণৰ জীৱনে যি বিমূৰ্ত্ত ইতিহাস গঢ়ি তুলিছে সেই ইতিহাসক তেওঁ মূৰ্ত্ত কৰি তুলিছে। ঠিক তেনেদৰেই দ্বিতীয় মহাসমৰৰ আৰম্ভণিৰ বৰ্ণনা কৰি যাজক চাহাবে মণিময়ক কৈছে, "সিদিনা জাৰ্মানীয়ে ৰাইনলেণ্ডৰ নিৰস্ত্ৰীকৃত অঞ্চলটো সামৰিকভাৱে দখল কৰি লৈছিল, যুদ্ধ লগাতো খাটাং হৈ পৰিছিল। প্ৰথম মহাসমৰৰ অন্ত পেলোৱা ভাৰ্ছাই চুক্তিৰ কফিনত যেন সেইদিনা শেষ গজালটো মৰা হৈছিল" (আজাৰ, পৃ. ৫৭৩)।

এই মহাসমৰে পোনপটীয়াকৈ উপন্যাসখনৰ কাহিনীত প্ৰভাৱ পেলোৱা নাই যদিও বুঢ়াদেউতাই কোৱাৰ দৰে "...কিন্তু শিয়াল-কুকুৰে মৰা গৰুৰ ছাল টনাদি সিহঁতে আমাকো টানিব নহয়। আমাৰ দেশৰ পৰা মানুহ তুলি নিব, ৰণুৱা, বনুৱা, কুলী কৰি দেশখনৰ বয়বস্তু লৈ যাব। কাপোৰ, নিমখ

এইবোৰলৈ আকৌ টান পৰিব। কাঢ়িও নিব। ধান চাউল এইবোৰো কোৰোক কৰি নিব চাই থাকিব। তুমি কোৱাৰ দৰে বগাহঁতৰ মাজত সিহঁতৰ দেশত আকৌ যদি যুদ্ধ লাগে তেনে আমাৰহে অৱস্থা বেয়া হ'ব" (আজাৰ, পৃ. ৫২১)। সৰ্বসাধাৰণক যুদ্ধই এনেদৰেই প্ৰভাৱিত কৰে।

দ্বিতীয় মহাসমৰত পোনপটীয়া অংশগ্ৰহণৰ পৰা সৌভাগ্যক্ৰমে ভাৰত ৰক্ষা পৰিল যদিও ইয়াৰ প্ৰস্তুতি ভালদৰেই হৈছিল। "গোলাঘাটতো যুদ্ধৰ তোড়-জোড় ভালদৰে চলিছিল। গোলাঘাটৰ পৰা আৰম্ভ কৰি দেৰগাঁও, যোৰহাট ৰৰৈয়লৈকে এই বিশাল অঞ্চলজুৰি ঠায়ে ঠায়ে সেনাৰ ছাউনী পতা হৈছিল..." (আজাৰ, পৃ. ৬০৩)। দ্বিতীয় মহাসমৰ অন্ত পৰাত ভাৰতো স্বাধীনতা লাভৰ দিশে আগবাঢ়িল আৰু ধৰ্মৰ নামত দেশ দ্বিখণ্ডিত হৈ দেশৰ বিভিন্ন ঠাই বিশেষকৈ বংগ আৰু পঞ্জাৱত হাজাৰ হাজাৰ লোক সাম্প্ৰদায়িক সংঘৰ্ষৰ বলি হোৱাৰ পাছত দেশে স্বাধীনতা লাভ কৰিলে। "ক'ত থাকিল, ক'ত আছে হিন্দু মুছলমানক দুভাগ কৰা, দুখন সুকীয়া দেশক জন্ম দিয়া সেই সীমাৰেখাডাল?" (আজাৰ, পৃ. ৬৪৪)।

ইমানৰ পাছতো স্বাধীনতাই সৰ্বসাধাৰণ মানুহক আলোড়িত কৰি তুলিছিল, সেইসকল সৰ্বসাধাৰণ মানুহ যিসকলে দেশে স্বাধীনতা লাভ কৰোতে নাম প্ৰসংগ কৰে, মহাত্মা গান্ধীৰ মৃত্যুৰ শোকতো দিনে ৰাতিয়ে খোৱা-বোৱা এৰি নাম প্ৰসংগ কৰিছে, সেইসকল মানুহৰ ইতিহাসত নামোল্লেখ নাই। এক নতুন আশা, এক নতুন স্বপ্নৰ বতৰা দি গৈছিল এই স্বাধীনতাই। উপন্যাসখনৰ অন্যতম মুখ্য চৰিত্ৰ জয়হৰি বুঢ়াদেউতাৰ এই স্বাধীনতাৰ দিনাই এটা সপোনৰ মাজতে মৃত্যু হৈছে আৰু তেওঁৰ নাতি মণিময়ে বিলাতলৈ যোৱাৰ সলনি ডিব্ৰুগড়ৰ আসাম মেডিকেল কলেজত গৈ কাম কৰাৰ কথা চিন্তা কৰিছে। এই দুয়োটা কথাই গুৰুত্বপূৰ্ণ।

উপসংহাৰঃ

আহোম সাম্ৰাজ্যৰ অৱক্ষয়ৰ প্ৰাৰম্ভণি কালৰ পৰা ভাৰতবৰ্ষই স্বাধীনতা লাভ কৰালৈকে প্ৰায় দুশটা বছৰ সাঙুৰি লোৱা *আজাৰ*ক এখন মহাকাব্যিক উপন্যাসৰ মৰ্যাদা দিব পৰা যায়। মহাকাব্যিক উপন্যাসৰ দৰেই ইয়াত মূল কাহিনীটোৰ সুঁতিত বহু সৰু সৰু কাহিনী আহি লগ লাগিছেহি। তাৰোপৰি প্ৰত্যক্ষ আৰু মূল চৰিত্ৰকেইটাৰ বাহিৰেও উপন্যাসখনত নানান সৰু বৰ আৰু বৈচিত্ৰ্যময় চৰিত্ৰৰ সমাবেশ ঘটিছে। উপন্যাসখনৰ মনকৰিবলগীয়া কথাটো হ'ল যে ইয়াৰ কাহিনীভাগ আৰম্ভ হৈছে মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহীয়ে লক্ষ্মীসিংহ পাটৰ পৰা নমোৱাৰ দিনা আৰু শেষ হৈছে ভাৰতবৰ্ষই স্বাধীনতা লাভ কৰাৰ দিনা। দুয়োটা দিনৰে ঐতিহাসিক গুৰুত্ব আছে। এই দীঘলীয়া সময়ছোৱাত সংঘটিত বিভিন্ন ঘটনা মূল ঘটনাৰ সৈতে সাঙুৰ খাই উপন্যাসৰ কথাবস্তুৰ ৰূপ দিছে। ঔপন্যাসিকে বিভিন্ন দৃষ্টিকোণৰ পৰা এই ঘটনাসমূহত পোহৰ পেলাইছে যদিও তেওঁৰ মূল দৃষ্টিকোণ হৈছে সৰ্বসাধাৰণৰ দৃষ্টিকোণ। সেইবাবেই পৰম্পৰাগত বুৰঞ্জী মাথোঁ মোৱামৰীয়া সত্ৰৰ শিচ সকলৰ বা মৰাণ মটকৰ দ্ৰোহ হিচাপে আখ্যা দিয়া মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহক তেওঁ গণ-অভ্যুত্থান আখ্যা দিছে। এই বৃহৎ উপন্যাসখন ইতিহাসনিৰ্ভৰতাৰ প্ৰসংগটোক এই গৱেষণা পত্ৰত কিঞ্চিত আভাস দিবলৈ চেষ্টা কৰা হৈছে। ❑

মুখ্য উৎস ঃ

বৰা, ধ্ৰুৱজ্যোতি। *আজাৰ*। নৰ্থ-ইষ্ট ফাউণ্ডেশ্যন, গুৱাহাটী, ২০১৭।

গৌণ উৎস ঃ

বৰা, ধ্ৰুৱজ্যোতি। *মোৱামৰীয়া গণ অভ্যুত্থান*। বনলতা, গুৱাহাটী, ১৯৮৩।

বৰা, ধ্ৰুৱজ্যোতি। *কৃষক বিদ্ৰোহী সৈনিক ৰাজন*। বনলতা, গুৱাহাটী, ২০১২।

বৰা, অভিজিৎ। *ড° ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰাৰ আজাৰ এক পাঠব্যাখ্যা*। পূৰ্বায়ণ প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, ২০২২।

শৰ্মা, দেৱব্ৰত। *মোৱামৰীয়া মহাবিদ্ৰোহ ঃ এক ত্ৰি-মাত্ৰিক গণ-অভ্যুত্থান*। একলব্য প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, ২০১৮।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

সাংবাদিক জীৱনৰ অভিজ্ঞতা আৰু ঐতিহাসিক তথ্যৰ দলিল ৰূপে সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ স্মৃতি বিচিত্ৰা

ৰিম্পী ৰাণী দত্ত

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
জগন্নাথ বৰুৱা বিশ্ববিদ্যালয় (স্বায়ত্তশাসিত)
যোৰহাট-৭৮৫০০১ (অসম)
৮১৩৬০০২৫০৮
rimpidutta98@gmail.com

ড° বিদিশা বুঢ়াগোহাঁই

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
জগন্নাথ বৰুৱা বিশ্ববিদ্যালয় (স্বায়ত্তশাসিত)
যোৰহাট-৭৮৫০০১ (অসম)
৬০০০৪০১০৪২

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমীয়া জাতীয় জীৱনত প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিবলৈ সক্ষম হোৱা সাংবাদিকসকলৰ তালিকাৰ অন্যতম সতীশ চন্দ্ৰ কাকতী। সতীশ চন্দ্ৰ কাকতী ইংৰাজী দৈনিক 'আছাম ট্ৰিবিউন' কাকতৰ লগত এক দশকৰ ওপৰকাল জড়িত থাকি ১৯৬৫ চনত কাকতখনৰ সম্পাদনাৰ পূৰ্ণভাৰ গ্ৰহণ কৰি সাংবাদিকতাৰ উল্লেখযোগ্য বছৰবিলাক সফলতাৰে অতিবাহিত কৰে। আনহাতে 'অসমবাণী' কাকতৰ তেওঁ প্ৰথম সম্পাদক আছিল। কাকতীয়ে সমাজৰ বিভিন্ন ধৰণৰ কাম- কাজত জড়িত হৈ সাংগঠনিক কৃতিত্ব আৰু পৰিচালনাৰ দক্ষতা প্ৰদৰ্শন কৰিছিল যদিও সাংবাদিকতা তেওঁৰ জীৱনৰ ঘাই ব্ৰত আছিল। তেওঁৰ সাংবাদিক জীৱনত সান্নিধ্য লাভ কৰা ব্যক্তিসকলৰ পৰা পোৱা অভিজ্ঞতা আৰু আৰু বিদেশ ভ্ৰমন স্মৃতিৰে *স্মৃতি বিচিত্ৰা* (১৯৯২) গ্ৰন্থখনত বিৰৰণী আগবঢ়াইছে। সাংবাদিক জীৱনৰ অভিজ্ঞতাৰ লগতে গ্ৰন্থখনত অসম, ভাৰত তথা বিশ্বৰ প্ৰেক্ষাপটৰ বিভিন্ন ঐতিহাসিক ঘটনাই প্ৰকাশ লাভ কৰিছে।

প্ৰস্তাৱিত আলোচনাৰ বিষয় *সাংবাদিক জীৱনৰ অভিজ্ঞতা আৰু ঐতিহাসিক তথ্যৰ দলিল ৰূপে সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ স্মৃতি বিচিত্ৰা* শীৰ্ষক আলোচনাত সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ আত্মজীৱনীমূলক গ্ৰন্থখনত প্ৰতিফলিত তেওঁৰ সাংবাদিক জীৱনৰ অভিজ্ঞতা আৰু ঐতিহাসিক ঘটনাৱলীৰ এক আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ

আত্মজীৱনী, সাংবাদিকতা, অভিজ্ঞতা, সমাজ-জীৱন।

অৱতৰণিকা ঃ

আত্মজীৱনীমূলক সাহিত্যই ব্যক্তিগত অভিজ্ঞতা আৰু সামূহিক ইতিহাসৰ মাজত এখন সেতু হিচাপে কাম কৰে। আত্মজীৱনীমূলক সাহিত্যৰ অৰ্ন্তগত স্মৃতিলেখা, ডায়েৰী আৰু ব্যক্তিগত ৰচনাৰ জৰিয়তে লেখকসকলে কেৱল নিজৰ বাস্তৱতাই নহয়, তেওঁলোকক গঢ় দিয়া সামজিক, সাংস্কৃতিক আৰু ঐতিহাসিক প্ৰসংগসমূহকো ধৰি ৰাখে। প্ৰতিটো জীৱনে এটা কাহিনী ধৰি ৰাখে আৰু আত্মজীৱনীমূলক সাহিত্যই এই জীৱিত অভিজ্ঞতাবোৰক কালজয়ী আখ্যানলৈ ৰূপান্তৰিত কৰে। শব্দ শক্তিৰ জৰিয়তে লেখকসকলে নিজৰ আনন্দ, সংগ্ৰাম আৰু পৰিচয়ক অমৰ কৰি তোলে। এনে সাহিত্যই লেখকসকলক গভীৰ স্তৰত পাঠকৰ সৈতে সংযোগ স্থাপন কৰাৰ লগতে নিজৰ ব্যক্তিগত যাত্ৰাসমূহ ভাগ-বতৰা কৰিবলৈ প্ৰেৰণা দিয়ে। আত্মজীৱনীমূলক সাহিত্যই কেৱল ব্যক্তিগত আখ্যানকেই নথিভুক্ত নকৰে, ই ঐতিহাসিক আৰু সামাজিক প্ৰেক্ষাপটৰ প্ৰতিফলন হিচাপেও কাম কৰে।

সাংবাদিকসকলে নিজৰ জীৱনটো তথ্য সংগ্ৰহ, তথ্যৰ প্ৰতিবেদন, সত্য উন্মোচন আদিৰ বাবে উৎসৰ্গা কৰে। কিন্তু যেতিয়া তেওঁলোকে নিজৰ জীৱনক প্ৰাধান্য দি আত্মজীৱনীমূলক সাহিত্যৰ এটা শাখা স্মৃতিলেখাসমূহ ৰচনা কৰে, তেতিয়া তেওঁলোকৰ ৰচনাত ব্যক্তিগত অভিজ্ঞতা আৰু পেছাদাৰী দুয়োটা দিশৰে প্ৰতিফলন হয যদিও ব্যক্তিগত জীৱনটো কেতিয়াবা গৌণ হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। এই আখ্যানসমূহে ব্যক্তিগত পক্ষপাতিত্ব আৰু সমাজৰ হেঁচাসমূহৰ মাজেৰে সত্যৰ প্ৰতিবেদন দিয়াৰ লগে লগে প্ৰত্যাহ্বান, দুৰ্বলতা আৰু দায়িত্বসমূহ উন্মোচন কৰে। উদাহৰণস্বৰূপে, এখন সাংবাদিকৰ স্মৃতিলেখাত এজন সাংবাদিকে কেনেকৈ নিজৰ জীৱন কাহিনী গঢ়ি তোলে, ব্যক্তিগত স্মৃতি আৰু পেছাদাৰী অভিজ্ঞতাৰ মাজত ভাৰসাম্য ৰক্ষা কৰে সেই সম্পৰ্কে বৰ্ণনা কৰা হয়। তেওঁলোকৰ আত্মজীৱনীমূলক ৰচনাসমূহ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে এই আখ্যানসমূহে সাহিত্য আৰু সংবাদ মাধ্যম দুয়োটা ক্ষেত্ৰতে কেনেদৰে অৰিহণা যোগায় তাক বিচাৰ কৰা হয়।

সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীয়ে সাংবাদিক জীৱনত সান্নিধ্য লাভ কৰা ব্যক্তিসকলৰ পৰা পোৱা অভিজ্ঞতা আৰু আৰু বিদেশ ভ্ৰমন স্মৃতিৰে *স্মৃতি বিচিত্ৰা* (১৯৯২) নামৰ স্মৃতিলেখাখনত আখ্যানমূলক বিৱৰণী আগবঢ়াইছে। প্ৰস্তাৱিত আলোচনাৰ বিষয় সাংবাদিক জীৱনৰ অভিজ্ঞতা আৰু ঐতিহাসিক তথ্যৰ দলিল ৰূপে সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ *স্মৃতি বিচিত্ৰা* শীৰ্ষক আলোচনাত সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ স্মৃতিলেখা *স্মৃতি বিচিত্ৰাত* প্ৰতিফলিত লেখকৰ সাংবাদিক জীৱনৰ বিভিন্ন অভিজ্ঞতাৰ লগতে গ্ৰন্থখনত প্ৰকাশিত বিভিন্ন ঐতিহাসিক ঘটনা-পৰিঘটনাৰ এক আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

আত্মজীৱনীমূলক সাহিত্যৰ স্বৰূপ আৰু শাখা-প্ৰশাখাসমূহ ঃ

আত্মজীৱনী আৰু আত্মজীৱনীমূলক ৰচনা হৈছে ব্যক্তিগত আখ্যানৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰি ৰচনা কৰা উল্লেখযোগ্য সাহিত্যিক ৰূপ, যিয়ে ব্যক্তিৰ জীৱন, পৰিচয় আৰু ঐতিহাসিক প্ৰসংগৰ অৰ্ন্তদৃষ্টি প্ৰদান কৰে। উভয় প্ৰকাৰৰ সাহিত্যতে ব্যক্তিগত ব্যাখ্যা, পক্ষপাতিত্ব আৰু নিৰ্বাচিত স্মৃতিশক্তি থাকে। দুয়োটা ৰূপেই ৰাস্তৱ জীৱনৰ অভিজ্ঞতাৰ পৰা আহৰণ কৰিলেও ইয়াৰ গঠন, উদ্দেশ্য আৰু সাহিত্যিক দৃষ্টিভংগীৰ পাৰ্থক্য আছে। আত্মজীৱনী হৈছে নিজৰ জীৱনৰ স্ব-লিখিত বিৱৰণ, যেতিয়া লেখকে নিজৰ জীৱন সম্পৰ্কে নিজে প্ৰথম পুৰুষত বিৱৰণ দিয়ে, তেনে সাহিত্যই আত্মজীৱনী। সাধাৰণতে কালক্ৰম অনুসৰি উপস্থাপন কৰা হয়। ইয়াত লেখকৰ অভিজ্ঞতা, সংগ্ৰাম, কৃতিত্ব আৰু প্ৰতিফলনৰ বিৱৰণ দিয়া থাকে। লেখকৰ যাত্ৰাৰ প্ৰত্যক্ষ আৰু ব্যক্তিগত দৃষ্টিভংগী প্ৰদান কৰে। আত্মজীৱনীৰ লক্ষ্য হৈছে বাস্তৱিকতা সঠিকতা আৰু ই প্ৰায়ে ঐতিহাসিক বা প্ৰেৰণাদায়ক গ্ৰন্থ হিচাপে কাম কৰে। আত্মজীৱনীত কেৱল ব্যক্তিজনকেই নহয়, সেইসময়ৰ সামগ্ৰিক ছবিখন তুলি ধৰা হয়। উদাহৰণ স্বৰূপে- লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ *মোৰ জীৱন সোঁৱৰণ*। আনহাতে আত্মজীৱনীমূলক সাহিত্য হৈছে লেখকৰ ব্যক্তিগত অভিজ্ঞতাৰ পৰা অনুপ্ৰাণিত যিকোনো সাহিত্য ৰচনাক সামৰি লোৱা এক বহল শ্ৰেণী। আনুষ্ঠানিক আত্মজীৱনীৰ দৰে এই ৰচনাসমূহে বাস্তৱিক পৰিঘটনাক কাল্পনিক উপাদানৰ সৈতে মিহলাই দিয়ে। এই শিতানত আত্মজীৱনীমূলক উপন্যাস, স্মৃতিলেখা, ব্যক্তিগত ৰচনা আদি অন্তভূক্ত কৰা হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে—সাংবাদিক ধ্ৰুৱজ্যোতি বৰুৱাৰ আত্মজীৱনীমূলক উপন্যাস *আকাশ বিহীন*। য'ত তেওঁৰ জীৱনৰ কথাখিনিকে উপন্যাস ৰূপত তুলি ধৰিছে। আত্মজীৱনী আৰু আত্মজীৱনীমূলক সাহিত্যৰ মাজত যদি আমি পাৰ্থক্যৰ বিচাৰ কৰোঁ তেতিয়া এনেধৰণৰ কিছুমান পাৰ্থক্য পৰিলক্ষিত হয়। গাৰ্থনিক দিশৰ পৰা লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে—আত্মজীৱনীত কালক্ৰমিক, বাস্তৱিক দৃষ্টিভংগী অনুসৰণ কৰা হয়, আনহাতে আত্মজীৱনীমূলক সাহিত্যই আখ্যান গঠনত সৃষ্টিশীল স্বাধীনতাৰ অনুমতি দিয়ে। আত্মজীৱনীত বাস্তৱিক সঠিকতাত গুৰুত্ব দিয়া হয়, আনহাতে আত্মজীৱনীমূলক সাহিত্যত বাস্তৱ আৰু কাল্পনিক উপাদান মিহলি হ'ব পাৰে। উদ্দেশ্যৰ দিশৰ পৰা চালে, আত্মজীৱনীত প্ৰায়ে ঐতিহাসিক, ৰাজনৈতিক বা প্ৰেৰণাদায়ক উদ্দেশ্যে জীৱন যাত্ৰাৰ বৰ্ণনা কৰা হয়, আনহাতে আত্মজীৱনীমূলক সাহিত্যই কলাত্মক প্ৰকাশ আৰু বিষয়ভিত্তিক গভীৰতাৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিব পাৰে। দুয়োবিধ সাহিত্যই সাহিত্যত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে, যাৰ ফলত লেখকসকলে পৰিচয়, স্মৃতি আৰু ব্যক্তিগত সত্যক অনন্যভাৱে অন্বেষন কৰিব পাৰে। এইসমূহৰ তাৎপৰ্য নিহিত হৈ আছে ব্যক্তিগত অভিজ্ঞতাক সাৰ্বজনীন বিষয়বস্তুৰ সৈতে সংযোগ কৰাৰ ক্ষমতাত, যাৰ ফলত এই সাহিত্য সমূহত ঐতিহাসিক নথিপত্ৰ আৰু কলাত্মক প্ৰকাশ দুয়োটা হিচাপে মূল্যৱান হৈ পৰে। স্মৃতিলেখা, জীৱনস্মৃতি, দিনলিপি বা ডায়েৰী, আত্মজীৱনীমূলক উপন্যাস, আত্মজীৱনীমূলক প্ৰবন্ধ আদি আত্মজীৱনীমূলক সাহিত্যৰ বিভিন্ন ৰূপ আছে।

যি লেখকৰ ব্যক্তিগত অভিজ্ঞতা, চিন্তা-ভাৱনা, স্মৃতি আৰু জীৱনক প্ৰকাশ কৰে। তত্ত্বগত ভাৱে স্মৃতিলেখা আত্মজীৱনীৰ পৰা বেলেগ। *স্মৃতিলেখাত লেখকৰ সত্তাৰ বিকাশতকৈ লেখকে ৰাজহুৱা জীৱনক প্ৰাধান্য দি অতীতত এৰি থৈ অহা বিভিন্ন ঘটনা বা লগ পোৱা মানুহৰ স্মৰণতহে বেছি গুৰুত্ব দিয়ে।*[১] মূলতঃ স্মৃতিলেখা হৈছে লেখকে নিজৰ জীৱনত অনুভৱ কৰা ঘটনা, অভিজ্ঞতা আৰু স্মৃতিসমূহক ব্যক্তিগত দৃষ্টিভংগীৰে সাহিত্যিক ৰূপত উপস্থাপন কৰা এক গদ্য সাহিত্যৰ ৰূপ। লেখক সকলে তেওঁলোকৰ জীৱনক প্ৰভাৱিত কৰা বিশেষ এছোৱা সময়, বিশেষ অভিজ্ঞতা, বিশেষ ঘটনা-পৰিঘটনাৰ লিখিত বৰ্ণনাৰে স্মৃতিলেখা ৰচনা কৰে। উদাহৰণস্বৰূপে, এজন সাংবাদিকে তেওঁৰ সাংবাদিক জীৱনৰ বিভিন্ন অভিজ্ঞতাক সামৰি স্মৃতিলেখা ৰচনা কৰিছে। এইক্ষেত্ৰত আমি লক্ষীনাথ ফুকনৰ *মহাত্মাৰ পৰা ৰূপকোঁৱৰলৈ*, হোমেন বৰগোহাঞিৰ *মোৰ সাংবাদিক জীৱন*, তিলক হাজৰিকাৰ *আবেলিৰ ছাঁ* আদি সাংবাদিকৰ স্মৃতিলেখাৰ নাম উল্লেখ কৰিব পাৰোঁ। আমাৰ আলোচনাৰ বাবে নিৰ্বাচিত সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ *স্মৃতি বিচিত্ৰা* এখন সাংবাদিকৰ স্মৃতিলেখা।

সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ জীৱন আৰু সাহিত্যিকৃতি ঃ

অসমীয়া সাহিত্য আৰু সংবাদ উভয় ক্ষেত্ৰতে অৱদান আগৱঢ়োৱা সতীশ চন্দ্ৰ কাকতী এটি জনপ্ৰিয় নাম। সাহিত্য জগতলৈ তেওঁৰ বিশিষ্ট বৰঙণিৰ স্বীকৃতি হিচাপে অসম চৰকাৰে সাহিত্যিক পেঞ্চন আৰু স্বাধীনতা সংগ্ৰামত তেওঁৰ অৱদানৰ বাবে ভাৰত চৰকাৰে তাম্ৰ-পত্ৰ আৰু পেঞ্চন আগবঢ়াইছিল। ১৯৯১ চনত ভাৰত চৰকাৰে পদ্মশ্ৰী সন্মানেৰে সন্মানিত কৰিছিল।

১৯১৪ চনত নলবাৰী জিলাৰ উলাবড়ী গাঁৱত সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ জন্ম হৈছিল। তেওঁ পেচাত এগৰাকী সাংবাদিক আৰু সাহিত্যিক। পিতৃৰ নাম বকলো ৰাম কাকতি আৰু মাতৃৰ নাম প্ৰিয়া কাকতি। ১৯২২ চনত উলাবড়ী প্ৰাথমিক বিদ্যালয়ৰ পৰা প্ৰাথমিক শিক্ষা শেষ কৰে। তাৰ পিছত বৰখলা এম.ই., কমাৰকুছি এম.ভি, নলবাৰী গৰ্ডন এইচ ই স্কুল আৰু পিছত কামৰূপ অকাডেমীৰ পৰা আৰু ১৯৩৬ চনত কটন কলেজৰ পৰা বি. এ ডিগ্ৰী লাভ কৰে। প্ৰথমে গংগাপুখুৰী হাইস্কুল আৰু পিছত কামৰূপ অকাডেমীত শিক্ষকতা কৰি চাকৰি জীৱনৰ পাতনি মেলিছিল। শিক্ষকতাৰ সমসাময়িকভাৱে তেওঁ 'আনন্দ বাজাৰ পত্ৰিকা' আৰু 'হিন্দুস্থান ষ্টেণ্ডাৰ্ড' কাকতৰ গুৱাহাটীৰ সংবাদদাতা হিচাপে কাম কৰিবলৈ লৈছিল। ১৯৩৭ৰ পৰা ১৯৪৭ চনলৈকে তেওঁ গুৱাহাটীৰ পি.টি আইৰ বাতৰি যোগনীয়াৰ আছিল। ১৯৪৭ ৰ পৰা ১৯৫১ চনলৈ গোপীনাথ বৰদলৈৰ ইচ্ছা অনুযায়ী তথ্য আৰু জনসংযোগ বিভাগৰ সহকাৰী সঞ্চালক হিচাপে কামত ভৰ্তি হৈছিল। চৰকাৰী চাকৰি এৰি ১৯৫১ চনৰ নৱেম্বৰ মাহত আছাম ট্ৰিবিউন কাকতৰ সহকাৰী সম্পাদক ৰূপে যোগদান কৰি ১৯৬৩ চনৰ পৰা সম্পাদনাৰ দায়িত্ব লয়। ১৯৫৪ চনত অসমবাণী কাকতৰো সম্পাদকৰ দায়িত্ব লৈ ১৯৮০ চনৰ অৱসৰ গ্ৰহণ কৰে। কাকতিয়ে বিভিন্ন অনুষ্ঠান-প্ৰতিষ্ঠানৰ লগত জড়িত থাকি জনসাধাৰণলৈ নিঃস্বাৰ্থভাৱে সেৱা আগবঢ়াই থৈ গৈছে। তেওঁ জড়িত থকা অনুষ্ঠানসমূহ হৈছে— ১৯৫৪ ৰপৰা ১৯৫৬ চনলৈ অসম ৰাজ্যিক কংগ্ৰেছ কমিটীৰ সদস্য, ১৯৫৮ চনত ভাৰতীয় কংগ্ৰেছৰ গুৱাহাটীত বহা অধিবেশনৰ প্ৰচাৰ সমিতিৰ চেয়াৰমেন, অসম ৰাজ্যিক পৰিকল্পনা বোৰ্ডৰ সদস্য, সৰ্বভাৰতীয় বাতৰি কাকত সম্পাদক মণ্ডলী কনফাৰেন্সৰ উপ-সভাপতি, ভাৰত চৰকাৰৰ চাহ বোৰ্ডৰ সদস্য, সদৌ অসম মিনিচিপালেটি বোৰ্ডৰ চেয়াৰমেন, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ সাংবাদিকতা বিভাগৰ প্ৰবক্তা, পাবলিচিটি বোৰ্ডৰ সদস্য, অসম পে' কমিচনৰ সদস্য, অসম চৰকাৰৰ মুক্তিযোদ্ধা উপদেষ্টা বোৰ্ডৰ সদস্য, অসম মাদক দ্ৰব্য নিবাৰণী পৰিষদৰ অধ্যক্ষ।[২]

সাহিত্যৰাজি ঃ

অসমীয়া সাহিত্য জগতলৈ সতীশ চন্দ্ৰ কাকতিয়ে ৫ খন অসমীয়া গ্ৰন্থ, ৩খন ইংৰাজী গ্ৰন্থ আগবঢ়াইছে। গ্ৰন্থসমূহ হৈছে—

অসমীয়া গ্ৰন্থ ঃ

(১) *স্মৃতি-বিচিত্ৰা* (স্মৃতিলেখা, ১৯৯২)
(২) *হিট্‌লাৰ-মুছোলিনী* (জীৱনী গ্ৰন্থ, ১৯৩৮)
(৩) *জীৱনীমালা* (জীৱনী গ্ৰন্থ, ১৯৪০)
(৪) *জৱাহৰলাল নেহৰু আৰু ছোভিয়েট ৰুচিয়া* (সমাজ আৰু ৰাজনীতিবিষয়ক গ্ৰন্থ, ১৯৭৬)
(৫) *মহৰ্ষি টলষ্টয় আৰু মহাত্মা গান্ধী* (১৯৭৯)

ইংৰাজী গ্ৰন্থঃ

(১) *Discovery of Assam,* (১৯৫৮)
(২) *From Pandav Nagar To Jawahar Nagar,* (১৯৭৬)
(৩) *Problems of North East,* (১৯৯৬)

এইসমূহ গ্ৰন্থৰ বাহিৰেও কাকতীয়ে চাৰিশৰো অধিক

উচ্চ পর্যায়ৰ প্ৰবন্ধ ৰচনা কৰিছিল। বিশেষকৈ 'আসাম ট্ৰিবিউন' কাকতৰ সম্পাদকৰ পদৰ পৰা অৱসৰ লোৱাৰ পাছত প্ৰবন্ধসমূহ লিখিছিল। তেওঁৰ ইয়াৰে বহুসংখ্যক প্ৰবন্ধ 'দ্য ষ্টেটচ্‌মেন', 'দ্য টেলিগ্ৰাফ', 'আসাম ট্ৰিবিউন', 'প্ৰকাশ' আদি বিভিন্ন আলোচনী আৰু অসমীয়া বাতৰিকাকতত প্ৰকাশ পাইছিল।

***স্মৃতি-বিচিত্ৰা* গ্ৰন্থখনৰ বিষয়বস্তু ঃ**

সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীয়ে আত্মজীৱনৰ বিভিন্ন দিশৰ বৰ্ণনা আত্মজীৱনীমূলক লেখাসমূহত বৰ্ণনা কৰিছে। তাৰ ভিতৰত *স্মৃতি-বিচিত্ৰা* পুথি আকাৰে ৰচনা কৰা আত্মজীৱনীমূলক ৰচনা। *স্মৃতি-বিচিত্ৰা* সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ এখন সাংবাদিক জীৱনৰ স্মৃতিলেখা। গ্ৰন্থখনত লেখকৰ একাষাৰত তেওঁ লিখিছে— "*স্মৃতি বিচিত্ৰা* আত্মজীৱনীমূলক গ্ৰন্থ নহয়। জীৱনৰ পৰা পঞ্চাছ বছৰৰো অধিক কাল মই সাংবাদিকতাৰ লগত নিৰৱিচিন্নভাৱে জড়িত আছিলোঁ আৰু মোৰ কৰ্মক্ষেত্ৰৰ কৰ্মই একাধিকবাৰ বিদেশ ভ্ৰমণ কৰিবলৈও সুযোগ আনি দিছিল। সাংবাদিক জগতত খোজ কাঢ়োতেও বহু নেতৃত্বস্থানীয় আৰু স্বনামধন্য ব্যক্তিৰ লগত মোৰ যোগাযোগ আৰু বন্ধুত্বও গঢ়ি উঠিছিল। সেইসকল ব্যক্তিৰ সান্নিধ্যৰপৰা পোৱা অভিজ্ঞতা আৰু বিদেশ ভ্ৰমণৰ স্মৃতিৰেই মোৰ এই *স্মৃতি-বিচিত্ৰা*।"

১৯৯২ চনত সাহিত্য প্ৰকাশৰ পৰা প্ৰকাশিত সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ *স্মৃতি-বিচিত্ৰা* অসমীয়া ভাষাত ৰচিত সাংবাদিকৰ তৃতীয়খন স্মৃতিলেখা। অৰ্থাৎ, লক্ষ্মীনাথ ফুকনৰ ১৯৬২ প্ৰকাশিত *মহাত্মাৰ পৰা ৰূপকোঁৱৰলৈ* আৰু ১৯৮৯ প্ৰকাশিত হোমেন বৰগোহাঞিৰ *মোৰ সাংবাদিক জীৱন*ৰ পিছতেই এইখন স্মৃতিলেখাক স্থান দিব পাৰি।

স্মৃতিলেখাখনত লেখকে ৭৫ বছৰীয়া জীৱনৰ বিভিন্ন অভিজ্ঞতা সামৰি ৰচনা কৰিছে। লগতে ৪১ বছৰ নিয়োজিত হৈ থকা সাংবাদিক জীৱনৰ বিভিন্ন তিতা-মিঠা স্মৰণীয় ঘটনাৰে গ্ৰন্থখন সমৃদ্ধ। বিশেষতঃ ১৯৩৪ চনত প্ৰথমবাৰৰ বাবে গান্ধীক দৰ্শন, অসমক কুখ্যাত কানিংহাম চাৰ্কুলাৰ বলবৎ হোৱাত শিক্ষা জগতত তথা ছাত্ৰ-সমাজৰ প্ৰত্যাহ্বান, ১৯৩০ চনত চাৰ্কুলাৰক্ৰমে স্কুল ত্যাগ কৰি স্বাধীনতা সংগ্ৰামত জড়িত হোৱা আৰু ভলন্টিয়াৰ হৈ গাঁৱে গাঁৱে Liberty, Equality আৰু Fraternityৰ বাণী প্ৰচাৰ কৰা, কানি ভাঙৰ বিৰুদ্ধে প্ৰচাৰ, ১৯৩০ চনত গুৱাহাটীৰ ফাঁচী বজাৰত বিদেশী কাপোৰৰ দোকানৰ সন্মুখত পিকেটিং কৰাৰ দোষত কাৰাবৰণ কৰা, জেলত খাদ্যৰ অত্যন্ত নিম্নগামী হোৱাৰ প্ৰতিবাদৰূপে আমৰণ অনশন কৰা, দৈনিক ইংৰাজী কাকত 'হিন্দুস্থান ষ্টেণ্ডাৰ্ড'ৰ গুৱাহাটীৰ সাংবাদদাতা হিচাপে কামত নিয়োগ, ১৯৩৬ চনত বি-এ পৰীক্ষাত উৰ্ত্তীণ হৈ গংগাপুখুৰী হাইস্কুলত প্ৰতিষ্ঠাপক প্ৰধান শিক্ষকৰ কামত যোগদান, ১৯৩৭ চনত কলিকতাৰ পৰা প্ৰকাশিত 'দ্য হিন্দু ষ্টেণ্ডাৰ্ড'ৰ গুৱাহাটীৰ সাংবাদিক হিচাপে যোগদান, গোপীনাথ বৰদলৈৰ কথামতে অসম চৰকাৰৰ প্ৰচাৰ বিভাগৰ সহকাৰী অধীক্ষক হিচাপে যোগদান, ১৯৫১ চনত চৰকাৰী চাকৰি এৰি দি 'আছাম ট্ৰিবিউন'ৰ সহকাৰী সম্পাদকৰ কামত যোগদান, মিজোৰামৰ বিদ্ৰোহ, ১৯৬৪ চনত 'আছাম ট্ৰিবিউন'ৰ সম্পাদক হিচাপে যোগদান, বিট্ৰিছ চৰকাৰৰ আমন্ত্ৰনক্ৰমে ব্ৰিটেইন ভ্ৰমণ, মাৰ্কিন যুক্তৰাষ্ট্ৰৰ আৰু জাৰ্মানী ভ্ৰমণ, 'অসমবাণী'ৰ সম্পাদকৰূপে সংবাদকৰ্ম, অসম বিভাজন আদিৰ নিখুঁতভাৱে স্মৃতিলেখাখনত বিবৃত হৈছে।

স্মৃতি-বিচিত্ৰা গ্ৰন্থখন কিতাপ আকাৰেৰে প্ৰকাশ হোৱাৰ পূৰ্বে হোমেন বৰগোহাঞিয়ে সম্পাদনা কৰা আলোচনী 'সূত্ৰধাৰ'ত চোৱা-চোৱাকৈ প্ৰকাশ পাইছিল। *স্মৃতি-বিচিত্ৰা*ৰ ৰচনাৰ বিষয়ে লেখকে বৰ্ণনা দিছে এনেদৰে- "মোৰ স্মৃতি বিচিত্ৰা বৰ্ণনা কৰোঁতে পাৰ্যমানে স্মৃতিৰ সচাঁ বিৱৰণ দিবলৈ চেষ্টা কৰিছোঁ। এনে সাৱধানতা লোৱা সত্ত্বেও অ'ত-ত'ত দিন-বাৰ আৰু আন ধৰণৰ ভুল সোমাইছে আৰু মোৰ নিজৰ অসাৱধানতাবশতঃ। *উল্লেখ কৰা উচিত হ'ব যে মই কোনো ডায়েৰী ৰখা নাছিলোঁ। বোধহয় আমাৰ অসমীয়া সমাজত কম সংখ্যক লোকৰহে ডায়েৰী ৰখাৰ অভ্যাস আছে। কিন্তু বাতৰি কাকতৰ টুকুৰা আৰু মোৰ মনত লগা গ্ৰন্থ সংগ্ৰহ কৰোঁ আৰু তাক সযত্নে ৰাখোঁ, যিখিনি মোৰ স্মৃতিলেখাৰ সমল"।*[৩]

লেখকে এই স্মৃতিলেখা লিখাৰ প্ৰেৰণা লাভ সম্পৰ্কে বৰ্ণনা কৰিছে এনেদৰে-"মই মোৰ স্মৃতিকথা লিখি বছৰেল হ'বলৈ মৰসাহ কৰা নাই। অৱশ্যে মহৎ লোকৰ জীৱনী পঢ়ি তেনে ব্যক্তিৰ জীৱনী লিখিবলৈ মই কলেজৰ ছাত্ৰ জীৱনৰ পৰা চেষ্টা কৰি আহিছোঁ। তথাপি একাধিক শুভাকাংক্ষী বন্ধুৰ অনুৰোধ স্বত্বেও আজিলৈ মোৰ স্মৃতিকথা লিখাত আগবাঢ়িবলৈ মৰসাহ হোৱা নাছিল, কিন্তু এনে এজন বন্ধুৰ পৰা মই স্মৃতিলেখাৰ বাবে উৎসাহ পাইছোঁ যে এই কাম হাতত লবলৈ সাহ কৰিছোঁ। *বন্ধুজন অসমীয়া সাহিত্যৰ এজন লব্ধপ্ৰতিষ্ঠ লেখক আৰু নিৰ্ভীক সাংবাদিক মোৰ ভাতৃসদৃশ হোমেন বৰগোহাঞি। এওঁৰ অনুৰোধক্ৰমে মোৰ*

স্মৃতিৰ কেইটামান বিক্ষিপ্ত ঘটনা নিবেদন কৰিবলৈ ওলোইছোঁ। ইয়াত কিঞ্চিৎমানো ৰহণ নাই বুলি ভাবোঁ। দিন-বাৰৰ ক'ৰবাত অলপ হেৰফেৰ হ'ব পাৰে।"[৪]

ঐতিহাসিক তথ্যৰ দলিল ৰূপে স্মৃতি বিচিত্ৰা ঃ

সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ স্মৃতি-বিচিত্ৰা লেখকৰ সাংবাদিকতা জীৱনৰ বৰ্ণনাৰ লগতে বিভিন্ন ঐতিহাসিক ঘটনা-পৰিঘটনাৰে সমৃদ্ধ। বিশেষকৈ গ্ৰন্থখনত লেখক ছাত্ৰৱস্থাত থাকোঁতে স্বাধীনতা সংক্ৰান্তত আৰু সাংবাদিকতা বৃত্তিত জড়িত হোৱাৰ পাছত লাভ কৰা বিভিন্ন ঐতিহাসিক অভিজ্ঞতাৰ স্মৃতিচাৰণ কৰি পুথিখনত বৰ্ণনা কৰিছে।

গ্ৰন্থখনত বহুকেইটা প্ৰসংগত স্বাধীনতাৰ আন্দোলনৰ বিষয়ে প্ৰকাশ পাইছে। ১৯২১ চনৰ জুন নে জুলাই মাহত লেখক প্ৰাইমেৰী স্কুলৰ ছাত্ৰ হৈ থাকোঁতে এদিন 'হিন্দু-মুছলমান একে মায়েৰ সন্তান', 'মহাত্মা গান্ধী কি জয়', 'ভাৰত মাতা কি জয়' আদি স্বৰাজৰ ধ্বনি দি দহ-বাৰজন আদহীয়া মানুহ আহি লেখকৰ গাঁৱত সোমাইছিল। সেয়া আছিল লেখকৰ ভাৰতৰ স্বাধীনতাৰ প্ৰসংগত বাল্যকালৰ স্মৃতি।

গ্ৰন্থখনত ১৯২৬ চনৰ ডিচেম্বৰ মাহৰ ২৬ আৰু ২৭ তাৰিখে গুৱাহাটীৰ পাণ্ডুত অৱস্থিত ভাৰতীয় জাতীয় কংগ্ৰেছৰ ৪১ সংখ্যক বাৰ্ষিক অধিবেশনৰ প্ৰসংগ বৰ্ণনা আছে। অধিৱেশনলৈ আলি ভাতৃদ্বয় মহম্মদ আলি আৰু চৌকত আলি অহাৰ লগতে অধিৱেশনৰ সভাপতিত্ব কৰিছিল এস. শ্ৰীনিবাস আয়েংগাৰে। হেজাৰ-বিজাৰ লোকৰণ্য হোৱা এই অভিৰেশনত হেৰাই যাব বুলিয়েই লেখক আৰু তেওঁৰ সমনীয়াসকলক সেই অনুষ্ঠানলৈ নিনিয়াৰ বিষয়ে গ্ৰন্থখনত বৰ্ণনা কৰিছে।

১৯৩৪ চনত মহাত্মা গান্ধীৰ তৃতীয়বাৰৰ অসম ভ্ৰমণৰ বৰ্ণনা পুথিখনত আছে। এইসময়ছোৱাতে লেখকে গান্ধীজীক গুবাহাটীৰ পাণবজাৰস্থিত হৰেকৃষ্ণ দাসৰ বাসভৱনত পোন প্ৰথমবাৰৰ বাবে লগ পাইছিল।লেখকে গান্দীজীৰ দৰ্শন লাভ কৰি তেওঁৰ ভৰি চুই সেৱা কৰিছিল যদিও গান্ধীজীয়ে এই কাম ভাল পচন্দ কৰা নাছিল। গ্ৰন্থখনত ১৯২৭ চনৰ ডিচেম্বৰ মাহত গুৱাহাটীত লতাশিল ফিল্ডত অনুষ্ঠিত অসম ছাত্ৰ সন্মিলনৰ বছেৰেকীয়া অধিৱেশনৰ প্ৰসংগ উল্লেখ আছে। কানিংহাম চাৰ্কুলাৰ, অৰ্থাৎ, স্কুল-কলেজৰ ছাত্ৰসকলক স্বাধীনতা আন্দোলনৰ পৰা আঁতৰাই ৰাখিবলৈ বিট্ৰিছ চৰকাৰে জাৰি কৰা নিৰ্দেশনাৰ বিষয়ে উল্লেখ আছে। এই নিৰ্দেশনা জাৰি কৰাৰ পিছত লেখকে স্কুল এৰি সহপাঠীৰ সৈতে গুৱাহাটীৰ লক্ষ্মীধৰ বৰাৰ ঘৰৰ ভলন্টিয়াৰৰ অতিথিশালাত আৰু পৰৱৰ্তী সময়ত নবীনচন্দ্ৰ বৰদলৈৰ বাসভৱনৰ ওচৰৰ বিজয় চন্দ্ৰ ভাগৱতীৰ নামৰ খেৰীঘৰকেইটাত ভাৰাত ভলন্টিয়াৰ কেম্পত আছিল। অৱশ্যে তেওঁলোকে দিনতহে ভলন্টিয়াৰ কেম্পত আছিল, ৰাতি পুলিচে ভলন্টিয়াৰহঁতক ঘেৰাও কৰাৰ ভয়ত ওচৰৰ পৰিয়ালৰ ঘৰবোৰত ৰখাৰ ব্যৱস্থা কৰিৰিছিল। লেখক আৰু সমনীয়াবোৰে ভলন্টিয়াৰৰ তত্বাবধানত গাঁৱে গাঁৱে কংগ্ৰেছৰ কাৰ্যক্ৰম প্ৰচাৰ কৰিছিল। লগতে কামৰূপত কানি ভাঙৰ বিৰুদ্ধে দোকানসমূহৰ আগত পিকেটিং কৰিছিল।

১৯২১ চনৰ অসহযোগ আন্দোলনৰ বৰ্ণনা গ্ৰন্থখনত আছে। আন্দোলনৰ সময়ত পুলিচে আন্দোলনকাৰীক অমানুষিক অত্যাচাৰ কৰাত এই বিষয়ৰ তদন্তৰ বাবে গান্ধীয়ে ১৯২২ চনত ৰাজেন্দ্ৰ প্ৰসাদ আৰু মদনমোহন মালৱীয়ক পঠোৱাৰ বিষয়ে উল্লেখ আছে। এই আন্দোলনত দক্ষিণ কামৰূপৰ বহু বড়ো জনগোষ্ঠীৰ লোকে আন্দোলনৰ যোগদান কৰিছিল, সেই ঠাইৰ সংগঠকৰ কাম কৰিছিল তৰুণৰাম ফুকন আৰু গোপীনাথ বৰদলৈয়ে।

১৯৩০ চনত মহাত্মা গান্ধী অসমলৈ আহোতে তৰুণ ৰাম ফুকনৰ বাস গৃহত বিদেশী বস্ত্ৰ বৰ্জনৰ কথা বৰ্ণনা কৰিছে— *"সিদিনা আমি ফুকন ডাঙৰীয়াক দেখা কৰি যিটো ঘৰত কথা পাতিছিলোঁ, সেই ঘৰটোতেই ১৯২১ চনৰ আগষ্ট মাহত প্ৰথমবাৰৰ কাৰণে মহাত্মা গান্ধী অসমলৈ আহোতে গান্ধীজী আছিল আৰু তাৰ সমুখৰ বহল চৌহদত বিলাতী কাপোৰৰ প্ৰকাণ্ড দ'ম এটা দাহন কৰা হৈছিল। তাৰ বহ্নিশিখা তিনিদিনলৈ জ্বলি আছিল, তাৰ মানে অসমত মুক্তি আন্দোলনৰ পাতনি মেলা হৈছিল দেশভক্তৰ বাহিৰৰ সৰুঘৰ আৰু চৌহদত"।*[৫]

এই অসহযোগ আন্দোলনৰ অংশস্বৰূপে, বিদেশী কাপোৰৰ বৰ্জন কাৰ্যসূচীয়ে গুৱাহাটীত বিযেশ ৰূপ ধাৰণ লৈছিল। গুৱাহাটীৰ অন্যতম বাণিজ্যিক অঞ্চল ফাঁচী বজাৰৰ ছাত্ৰনেতা, স্বেচ্ছাসেৱক আৰু সাধাৰণ নাগৰিকে পিকেটিং কৰাৰ বিষয়ে গ্ৰন্থখনত বৰ্ণনা কৰিছে। গুৱাহাটীৰ ফাঁচী বজাৰৰ দোকানৰ সন্মুখত পিকেটিং কৰি লেখকে তিনিমাহ কাৰাদণ্ড ভুগিছিল।

সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীয়ে কলিকতাত থাকোঁতে ঘটা এটা বিশ্ববিখ্যাত ঘটনাৰ বিষয়ে গ্ৰন্থখনৰ বৰ্ণনা কৰিছে। ইংলেণ্ডৰ ৰজা অষ্টম এডৱাৰ্ডে প্ৰেমৰ বাবে ১৯৩৬ চনত ৰাজ সিংহাসন পৰিত্যাগ কৰিবলৈয়ো কুণ্ঠাবোধ কৰা নাছিল। ই আধুনিক বিট্ৰিছ ইতিহাসৰ আটাইতকৈ ডাঙৰ ৰাজনৈতিক

আৰু সাংস্কৃতিক ঘটনা। ৰজাই সাধাৰণ শ্ৰেণীৰ ছিম্ছন নামৰ সমবয়স্কা নাৰীৰ প্ৰেমত পৰি বিবাহপাশত প্ৰতিশ্ৰুতিবদ্ধ হৈছিল, অথচ ধৰ্ম আৰু ৰাজতন্ত্ৰৰ বিধি অনুসৰি কোনো বিট্ৰিছ ৰজা তথা বংশধৰে সাধাৰণ শ্ৰেণীৰ মানুহৰ লগত বিয়া কৰোৱাতো নিষিদ্ধ আছিল আৰু এডৱাৰ্ডৰ এই সিদ্ধান্তই বিট্ৰেইনত এটা অভাবনীয় ৰাজনৈতিক সংকটৰ সৃষ্টি হৈছিল। এই ঘটনাৰ বাতৰিটো বাতৰি কলিকতাৰ 'ষ্টেটছমেন' কাকতে সদায় সন্ধিয়া ষ্টেটছমেন হাউছৰ সন্মুখত বিজুলী চালিত যন্ত্ৰৰ দ্বাৰা প্ৰদৰ্শন কৰিছিল।

গ্ৰন্থখনত ১৯৪৬ চনৰ ৯ জানুৱাৰীত চতুৰ্থবাৰৰ বাবে মহাত্মা গান্ধী অসমলৈ অহাৰ বিষয়ে বৰ্ণনা আছে। ১৬ মে'ৰ বিট্ৰিছ মন্ত্ৰীসভাৰ প্ৰস্তাৱৰ যোগেদি বিট্ৰিছ চৰকাৰে ভাৰতবাসীৰ হাতত ক্ষমতাৰ হস্তান্তৰ কাৰণে প্ৰস্তাৱ উত্থাপন কৰিছিল। এই প্ৰস্তাৱ ব্ৰিটিছ মন্ত্ৰীসভাৰ প্ৰস্তাৱ তথা ক্ৰিপ্‌ট প্ৰস্তাৱ বুলি জনাজাত, যি প্ৰস্তাৱৰ যোগেদি ব্ৰিটিছ চৰকাৰে 'ক', 'খ' আৰু 'গ' নামৰ গ্ৰুপিং ব্যৱহাৰেৰে ভাৰতবৰ্ষক কাৰ্যতঃ বিভাজন কৰিবলৈ মনস্থ কৰিছিল। এই ব্যৱস্থাৰ আছিল ব্ৰিটিছ চৰকাৰে ভাৰতক স্বাধীনতা দিয়াৰ আগতে দেশখনক তিনিটা অংশত বিভাজন কৰাৰ এক পৰিকল্পনা। ইয়াৰ উদ্দেশ্য আছিল হিন্দু-মুছলমানৰ মাজত মতভেদ সমাধান কৰা আৰু উভয়কে সমান সুযোগ দিয়াৰ ব্যৱস্থা হ'ব। ইয়াৰ জৰিয়তে ব্ৰিটিছসকলে ভাৰতক বিভাজন নকৰি একেলগে ৰাখিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল। মুছলীম লীগে এই ব্যৱস্থা ভাল নোপোৱাৰ কাৰণ পাকিস্তান গঠনৰ বাবে ই সুবিধাজনক নাছিল। এই প্ৰস্তাৱ অসমৰ পক্ষে এটা ষড়যন্ত্ৰমূলক ব্যৱস্থা আছিল। পিছে এই ব্যৱস্থা সফল হোৱা নাছিল। হিন্দু-মুছলমানৰ মাজত মতভেদ বাঢ়ি অহাৰ ফলত শেষত ১৯৪৭ চনত ভাৰত বিভাজন ঘটিল।

গ্ৰন্থখনত অসম আৰু পাকিস্তানৰ সীমান্ত সংক্ৰান্ত সমস্যাত মুছলিম লীগৰ ভূমিকা সম্পৰ্কে উল্লেখ আছে। ভাৰতে স্বাধীনতা লাভ কৰাৰ পিছত আৰু ঠিক ভাৰত বিভাজনৰ পিছত গাৰো পাহাৰ আৰু পূব পাকিস্তানৰ ৰংপুৰ সীমান্তৱৰ্তী অঞ্চলত সৃষ্টি হোৱা উত্তেজনাৰ সৃষ্টি হৈছিল। মুছলিম লীগৰ অসম শাখাৰ সভাপতি নেতা মৌলানা আব্দুল হামিদ ভাসানীয়ে ৰংপুৰৰ মুছলমানসকলক গাৰো পাহাৰত সোমাবলৈ উৎসাহ দিয়াৰ লগতে পাকিস্থানত অসমক অৰ্ন্তভুক্ত কৰিবলৈ আন্দোলন আৰম্ভ কৰিছিল। ১৯৩৮-৩৯ চনৰ ভিতৰত অসম কংগ্ৰেছ চৰকাৰৰ অধীনত থকাৰ সময়ত মুছলিম লীগৰ সভাপতি মৌলানা আব্দুল হামিদ ভাছানীৰ নেতৃত্বত মুছলিম লীগে ট্ৰাইবেল ব্লক(সংৰক্ষিত জনজাতীয় ভূমি) ভংগ কৰি সেই ব্লকবোৰত পমুৱা মুছলমানক বহুৱাবলৈ প্ৰয়াস কৰিছিল। কংগ্ৰেছ চৰকাৰে মুছলিম লীগৰ এই কাৰ্যক অসমত মুছলিম লীগৰ প্ৰভাৱ সম্প্ৰসাৰণৰ ৰাজনৈতিক প্ৰয়াস বুলি বুজি পাইছিল। অসমৰ প্ৰধানমন্ত্ৰী (মুখ্যমন্ত্ৰী)গোপীনাথ বৰদলৈয়ে এনে কাৰ্যৰ বাবে ভাসানীক গেপ্তাৰ কৰি আইন-শৃংখলা বজাই ৰখাৰ লগতে জনজাতীয় অঞ্চল সুৰক্ষাৰ বাবে পদক্ষেপ লৈছিল।

১৯৬৫ চনত অসমৰ পৰা পৰা পাৱৰ্ত্য জিলাকেইখন বিচিন্ন কৰাৰ প্ৰচেষ্টাই অসমৰ ভিতৰত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ৰাজনৈতিক আৰু সামাজিক আন্দোলনৰ সূচনা কৰিছিল। ১৯৬৬ চনত মিজোনেশ্যনেল ফ্ৰন্ট (Mizo National Front-MNF) নামৰ সংগঠনে ভাৰত চৰকাৰৰ বিৰুদ্ধে এটা সশস্ত্ৰ বিদ্ৰোহ আৰম্ভ কৰিছিল। এই বিদ্ৰোহৰ মূল কাৰণ আছিল Mizo National Front ৰ নেতৃত্বত হোৱা অসন্তোষ আৰু দাবীসমূহ। মিজোৰাম অঞ্চলত উন্নয়ন আৰু প্ৰসাশনৰ ক্ষেত্ৰত অৱহেলা হোৱা বুলি স্থানীয় লোকে অনুভৱ কৰিছিল। বিশেষকৈ ১৯৫৯ চনৰ মাউতাম দুৰ্ভিক্ষৰ সময়ত চৰকাৰৰ সহায় যথেষ্ট নহ'ল বুলি স্থানীয় লোকে অনুভৱ কৰিছিল, যাৰ ফলত ক্ষোভ বাঢ়ি গৈছিল। ইয়াৰ উপৰিও, কিছুমান মিজো লোকে ভাৰতৰ পৰা পৃথক হৈ নিজস্ব দেশ গঢ়াৰ দাবী তুলিছিল। এই সকলোবোৰ কাৰণ মিলি ১৯৬৬ চনত মিজো বিদ্ৰোহ আৰম্ভ হৈছিল আৰু ১৯৮৭ চনত মিজোৰামৰ গঠন হয়।

গ্ৰন্থখনত ১৯৬২ চনৰ চীন-ভাৰতৰ যুদ্ধৰ বিষয়ে বৰ্ণনা আছে। এই আক্ৰমণৰ ফলত অসমত সৃষ্টি হোৱা সন্ত্ৰাসৰ পৰিস্থিতিৰ বিষয়ে বৰ্ণনা কৰিছে। এই আক্ৰমণৰ ফলস্বৰূপে নেফা তথা বৰ্তমানৰ অৰুণাচল প্ৰদেশৰ কেইবাশ মানুহ আহি গুৱাহাটীস্থিত কলেজিয়েট স্কুলত আশ্ৰয় লৈছিলহি। প্ৰধান মন্ত্ৰী জৱাহৰলাল নেহৰুৰ নিৰ্দেশক্ৰমে ১৯৬২ চনৰ ১১ নৱেম্বৰৰ দিনা পুৱা ভাগত নতুন দিল্লীৰ পৰা বিশেষ বিমানযোগে পাঁচজন কেন্দ্ৰীয় নেতা — লালবাহাদুৰ শাস্ত্ৰী, ইন্দিৰা গান্ধী, কেশৱদেও মালব্য, অতুল্য ঘোষ আৰু বিজু পাটনায়ক গুৱাহাটীত উপস্থিত হৈছিলহি। চীন চৰকাৰে একপক্ষীয়ভাৱে তেওঁলোকৰ সৈন্য অপসাৰণ কৰাত ২০ নৱেম্বৰত পৰিস্থিতিৰ শাম কাটে।

এনেদৰে গ্ৰন্থখন অসম, ভাৰতবৰ্ষ তথা বিশ্বৰ বিভিন্ন ঐতিহাসিক ঘটনা-পৰিঘটনাৰে সমৃদ্ধ। গ্ৰন্থখনত প্ৰকাশিত

ঐতিহাসিক তথ্য সম্পৰ্কে সাংবাদিক ৰাধিকামোহন গোস্বামীয়ে উল্লেখ কৰা মতে '*স্মৃতি-বিচিত্ৰা* অসমীয়া আঠৈ কুৰিৰ ওপৰৰ আত্মজীৱনীমূলক গ্ৰন্থবিলাকৰ ভিতৰত এক ভিন্নধৰ্মী উল্লেখযোগ্য আত্মজীৱনী। কাকতীৰ সুদীৰ্ঘ সক্ৰিয় সামাজিক জীৱনৰ পাতনিৰে পৰা পূৰ্ণাংগ পৰ্যায়লৈকে বিচিত্ৰ ধৰণৰ অভিজ্ঞতাই তেওঁৰ জ্ঞানান্বেষণৰ পৰিপুষ্টি সাধন কৰাৰ লগতে অসমৰ ৰাজনৈতিক, সামজিক, সাংস্কৃতিক জীৱনৰ বিশেষকৈ ৰাজনৈতিক ইতিহাসৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ তথ্য *স্মৃতি-বিচিত্ৰাই* বহন কৰাত এইখন এক মূল্যৱান সামাজিক দস্তাবেজ ৰূপেই স্বীকৃতি হ'বৰ যোগ্য। কাকতীৰ স্মৃতি-বিচিত্ৰা দৰাচলতে অসমৰ এগৰাকী দিক্‌পাল স্বৰূপ সাংবাদিকৰ হ বল পৰিসৰৰ এক জীৱনবৃত্ত কিম্বা আত্মজীৱনী—*যি সাংবাদিকৰ জীৱনৰ দৰেই ৰোমাঞ্চ আৰু চেলেঞ্জেৰে পৰিপূৰ্ণ হৈ ৰসাল আৰু বৈশিষ্ট্যপূৰ্ণ নিশ্চয়'*।[৬]

সাংবাদিক জীৱনৰ অভিজ্ঞতাৰ প্ৰতিফলন ঃ

গ্ৰন্থখনত লেখকে তেওঁৰ একচল্লিশ সাংবাদিক জীৱনত লাভ কৰা বিভিন্ন অভিজ্ঞতাৰ লগতে লেখকে সাংবাদিকতা বৃত্তিত জড়িত থকা সময়ৰ সমসাময়িক সংবাদ জগতৰ বিভিন্ন তথ্য প্ৰকাশ কৰিছে। লেখকে 'হিন্দুস্থান ষ্টেণ্ডাৰ্ড', 'দ্য ষ্টেটছমেন', 'আনন্দ বাজাৰ পত্ৰিকা', 'দ্য আসাম ট্ৰিবিউন', 'অসমবাণী' কাকতৰ লগত নিয়োজিত হৈ সাংবাদিক হিচাপে আত্ম প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰি অসম, ভাৰতবৰ্ষৰ আৰু বিশ্বৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰৰ সংবাদ মাধ্যমৰ অভিজ্ঞতা লাভ কৰিছে।

গ্ৰন্থখনত লেখকৰ নিজা সাংবাদিক জীৱনৰ অভিজ্ঞতা বৰ্ণনা কৰাৰ লগতে সমসাময়িক আন আন সাংবাদিক সকলৰ বিষয়েও বৰ্ণনা কৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে— দেৱকান্ত বৰুৱা, সুৰেশচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্য, লক্ষ্মীনাথ ফুকন, অম্বিকাগিৰী ৰায়চৌধুৰী, আক্ৰাম হুছেইন, হৰেন্দ্ৰ নাথ বৰুৱা, তিলক হাজৰিকা,নিৰোদ চৌধুৰী, মনিকা বৰুৱা আদি সাংবাদিক বিষয়েও উল্লেখ কৰাৰ লগতে প্ৰসংগক্ৰমে চমুকৈ আলোচনা কৰিছে।

সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ *স্মৃতি বিচিত্ৰা* ত ভাৰতত স্বাধীনতা পূৰ্বৱতী আৰু পৰৱৰ্তী সাংবাদিকতাৰ বিষয়ে কিছু তথ্য উল্লেখ কৰিছে। তেওঁ উল্লেখ কৰা মতে স্বাধীনতাৰ পূৰ্বে সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষতে 'সাংবাদিকতা' বুলি কোনো বৃত্তি নাছিল। ব্ৰিটিছ মালিকীস্বত্বত পৰিচালিত লক্ষ্ণৌৰ 'দ্য পায়োনিয়াৰ', 'বম্বেৰ টাইমছ অৰ ইণ্ডিয়া', 'মাদ্ৰাছাৰ দ্য মেইল', কলিকতাৰ 'দ্য ষ্টেটছমেন' আদিৰ বাহিৰে ভাৰতৰ আন আন সংবাদ পত্ৰবোৰ সম্পূৰ্ণভাৱে জাতীয়তাবাদী আদৰ্শৰ আছিল, দেশৰ স্বাধীনতাকেই এইসমূহ বাতৰি কাকতে লক্ষ্য হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছিল। কাকতসমূহৰ স্বত্বাধিকাৰী আৰু কৰ্মী উভয়ে সাংবাদিকতাক বৃত্তি হিচাপে নলৈ মিছন বুলি গ্ৰহণ কৰিছিল। ভাৰতৰ স্বাধীনতা পৰৱৰ্তী কালছোৱাত ভাৰতত সংবাদিকতা আৰু সংবাদপত্ৰ পৰিচালনা মিছনৰ পৰিৱৰ্তে এটা সন্মানজনক বৃত্তিলৈ পৰিণত হৈছেআৰু দেশৰ গণতন্ত্ৰ আৰু সামাজিক জীৱনত ইয়াৰ এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা আছে।

গ্ৰন্থখনত খনত লেখকে এটা প্ৰসংগত বিট্ৰেইনৰ সংবাদ জগতখনৰ চিত্ৰণ দাঙি ধৰিছে। তেওঁ বৰ্ণনা কৰা মতে ব্ৰিটেইনৰ জনসাধাৰণৰ খুব বাতৰিকাকত পঢ়াৰ অভ্যাস আছে। মানুহবোৰে বাটে-ঘাটে, ট্ৰেইন, বাছ, মাটিৰ তলেৰে যোৱা ৰে'ল, হোটেল, ৰেষ্টুৰাঁ সকলোতে বাতৰিকাকত বা আলোচনী পঢ়িছিল। বিট্ৰেইনত বাতৰিকাকতৰ সংখ্যা আৰু চাৰ্কুলেচন বেছি হোৱাৰ মুখ্য কাৰণ হৈছে শিক্ষিতৰ হাৰ শতকৰা এশজন হোৱাৰ উপৰি, এটা পৰিয়ালৰ প্ৰত্যেকজন ব্যক্তিয়ে নিজৰ অভিৰুচি মতে এখন বাতৰি কাকত বা আলোচনী লয়। লেখকে ১৯৫৯ চনত ব্ৰিটেইন ভ্ৰমণৰ বাবে যাওঁতে ১৫০ খন মান দৈনিক আৰু দেওবৰীয়া বাতৰিকাকত আছিল। তাৰ ভিতৰত ১৬ খন কাকত একমাত্ৰ লণ্ডন চহৰত প্ৰকাশ হোৱাৰ লগতে সন্ধিয়া তিনিখন আৰু দেওবাৰে এঘাৰখন বাতৰিকাকত প্ৰকাশ হয়। তাৰ উপৰি বিভিন্ন বিষয়ৰ যেনে খেলা-ধূলা, সংস্কৃতি, মহিলা আনকি ধৰ্মবিষয়কে ধৰি উন্নত ধৰণৰ ১৩০০ খন সাপ্তাহিক ইংৰাজী ভাষাৰ কাকত আছিল। ভাৰতৰ আৰু বিলাতৰ বাতৰি কাকতৰ মাজত পাৰ্থক্য উল্লেখ কৰি লেখক কয় যে—সেইসমূহ ঠাইত বাতৰি পৰিৱেশনত ভাৰতৰ সৈতে বিশেষ পাৰ্থক্য পৰিলক্ষিত হৈছিল। 'টাইম্‌ছ', 'গাৰ্ডিয়ান', 'অব্‌জাৰভাৰ', 'ডেইলী টেলিগ্ৰাফ', 'ডেইলী মেইল' নামৰ বাতৰিকাকতখনৰ বাহিৰে তাৰ বেছিভাগ বাতৰি কাকতে চাঞ্চল্যকৰ বাতৰি প্ৰকাশ কৰে। সংবাদসমূহ সাধাৰণ পঢ়ুৱৈয়ে আমোদ পোৱাকৈ প্ৰস্তুত কৰিছিল। বিবাহ-বিচ্ছেদ, চুৰি ডকাইতি, আত্মহত্যা, ৰাজনৈতিক কেতবোৰ বাতৰি সাধাৰণ পঢ়ুৱৈৰ চকুত লগাকৈ পৰিৱেশন কৰে। গ্ৰন্থখনত ৱাশ্বিংটনস্থিত নেশ্যনেল প্ৰেছ ক্লাবত ১৯৬০

চনলৈকে মহিলা সাংবাদিকৰ প্ৰৱেশত বাধা থকা বিষয়টো অসমৰ বৰপেটা সত্ৰত নাৰীৰ প্ৰৱেশ নিষেধৰ লগত তুলনা কৰিছে।

গ্ৰন্থখনত বিভিন্ন প্ৰসংগত জনসাধাৰণৰ আগত তথ্য প্ৰকাশ কৰাৰ ফলত সংবাদকৰ্মীৰ জীৱন ৰক্ষাৰ সংকট সম্পৰ্কে প্ৰকাশ পাইছে। ১৯৬৫ চনত অসমৰ পাৰ্বত্য জিলাকেইখনৰ বিভাজনৰ বাবে হোৱা আন্দোলনত 'দি আছাম ট্ৰিবিউন' কাকতখনে আন্দোলনৰ বিৰুদ্ধে জনমত গঠন কৰিছিল। এই কৰ্মৰ বাবে লেখকলৈ চিঠিৰ জৰিয়তে লেখকক প্ৰাণ নাশৰ ভাবুকি দিছিল। ঠিক সেইদৰে মিজোৰাম বিদ্ৰোহৰ সময়ত লেখকলৈ প্ৰাণনাশৰ ভাবুকি দি বেনামী চিঠি আহিছিল।

উপসংহাৰ ঃ

স্মৃতি-বিচিত্ৰা গ্ৰন্থখন অসমীয়া সাহিত্যৰ প্ৰসিদ্ধ আত্মজীৱনীমূলক গ্ৰন্থসমূহৰ আন্যতম। এই গ্ৰন্থখনত লেখকে নিজৰ সাংবাদিৰ জীৱনৰ তিতা-মিঠা অভিজ্ঞতা আৰু সংবাদিক জীৱনত বিভিন্নজনৰ পৰা লাভ কৰা অভিজ্ঞতাক সামৰি গ্ৰন্থখন ৰচনা কৰিছে। কিন্তু সমগ্ৰ গ্ৰন্থখন অধ্যয়নৰ অন্তত আমি সিদ্ধান্তত উপনীত হৈছো যে— স্মৃতি-বিচিত্ৰা সতীশ চন্দ্ৰ কাকতীৰ এখন স্মৃতিলেখা। কিয়নো স্মৃতিলেখাখনত লেখকৰ সমগ্ৰৰে জীৱনৰ বিপৰীতে সাংবাদিক জীৱনৰ সময়ছোৱাই অধিক গুৰুত্ব লাভ কৰিছে। আত্মজীৱনীৰ এটা সমগোত্ৰীয় শাখা স্মৃতিলেখাৰ কেইবাটাও বিশেষত্ব গ্ৰন্থখনত ফুটি উঠিছে। স্মৃতি-বিচিত্ৰা অসমৰ ৰাজনৈতিক, সামাজিক, সাংস্কৃতিক জীৱনৰ বিশেষকৈ ৰাজনৈতিক ইতিহাসৰ তথ্যৰে সমৃদ্ধ এখন মূল্যৱান সামাজিক দস্তাবেজ ৰূপে স্বীকৃত হ'বৰ যোগ্য গ্ৰন্থ। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

১। দেৱভূষণ বৰা, *নিৰ্বচন সাহিত্য পাঠৰ আলোচনা*, পৃ.৪৫
২। সমীন কলিতা, *উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলৰ দুশগৰাকী জেষ্ঠ সাংবাদিক*, পৃ.৫
৩। দিলীপ কুমাৰ কাকতী, *সতীশ চন্দ্ৰ কাকতী ৰচনাৱলী*, পৃ.৫১
৪। *উল্লিখিত*,পৃ.৩২
৫। *উল্লিখিত*, পৃ.৩৫
৬। *উল্লিখিত*, পৃ.১৫

গ্ৰন্থ পঞ্জী ঃ

অসমীয়া

মূল গ্ৰন্থঃ

কাকতি, দিলীপ কুমাৰ ঃ *সতীশ চন্দ্ৰ কাকতী ৰচনাৱলী*, কথা, গুৱাহাটী, প্ৰথম, ২০১২

সহায়ক গ্ৰন্থঃ

কলিতা, সমীনঃ *উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলৰ দুশগৰাকী জেষ্ঠ সাংবাদিক*, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, প্ৰথম, জুলাই,
দাস, অমল চন্দ্ৰঃ *অসমীয়া জীৱনী আৰু আত্মজীৱনী অধ্যয়ন*, পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, মাৰ্চ, ২০১৮
বৰা, দেৱভূষণ ঃ *নিৰ্বচন সাহিত্য পাঠৰ আলোচনা*, বান্ধৱ, দ্বিতীয়, ডিচেম্বৰ, ২০২৩
মৰাণ, মন্টু ঃ *ভাষা সাহিত্য সংস্কৃতিত এভুমুকি*, সোণালী জয়ন্তী উদ্‌যাপন সমিতি, ন-তালপাৰ প্ৰাথমিক বিদ্যালয়, প্ৰথম, জানুৱাৰী, ২০২১
শৰ্মা, গোবিন্দ প্ৰসাদ ঃ *জীৱনী আৰু আত্মজীৱনী, অসমীয়াত আৰু পাশ্চাত্যত*, বলনতা, গুৱাহাটী, ফেব্ৰুৱাৰী, ২০১৯

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

মিচিং ভাষা চৰ্চা ঃ এটি আলোচনা

ড° ৰিন্‌চিন্ বৰুৱা

প্ৰকল্প সহযোগী
আইআইটি, গুৱাহাটী-৭৮১০৩৯
৭০০২২০৪০০৬
rincinboruah@gmail.com

ড° দিলীপ ৰাজবংশী

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-৭৮১০০১
৯৪৩৫০৯৪৬৬৩
drajbangshi1987@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

ভাষা জাতি একোটাৰ পৰিচয়। ভাষাই একোটা জাতিৰ ধৰ্ম, সাহিত্য, সংস্কৃতি আদি সকলোবোৰ উপাদানৰ প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। একোটা ভাষাক পূৰ্ণপৰ্যায়ত সুৰক্ষিত কৰি ৰাখিবৰ বাবে সেই নিৰ্দিষ্ট ভাষাটো কওঁতা লোকৰ সংখ্যা অধিক হোৱাৰ লগতে সেই ভাষাত ভাষা-সাহিত্যৰ চৰ্চাও সমানে অব্যাহত থাকিব লাগে। এই দৃষ্টিকোণৰ পৰা চালে অসমৰ মিচিং সম্প্ৰদায়ৰ ভাষা আৰু সাহিত্যপ্ৰেমী লেখকসকলৰ সহযোগত বৰ্তমান মিচিং ভাষা কিছুপৰিমাণে হ'লেও উন্নতিৰ শিখৰত ধাৱমান হোৱা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ অধিকাংশ জনজাতীয় ভাষাই লিপিহীন হোৱাৰ হেতু এই ভাষাসমূহৰ চৰ্চা তথা সংৰক্ষিত কৰি ৰখাৰ ক্ষেত্ৰত কিছু সমস্যাৰ সন্মুখীন হয়। এনে ভাষাসমূহ নিৰ্দিষ্ট সম্প্ৰদায়সমূহৰ মাজত কথিত ৰূপতহে ব্যৱহাৰ হৈ থাকে। মিচিং ভাষাৰো নিজা লিপি নাই। বৰ্তমান এওঁলোকে ৰোমান লিপিকে নিজস্ব লিপি হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছে যদিও কিছুসংখ্যক মিচিং লেখকে এতিয়াও অসমীয়া লিপিৰেই ভাষা-সাহিত্যৰ চৰ্চা কৰি অহা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। এওঁলোকে মিচিং আৰু অসমীয়া উভয় ভাষাতে নিজস্ব ভাষা-সাহিত্যৰ চৰ্চা অব্যহত ৰাখিছে। মিচিং ভাষা চৰ্চাৰ ক্ষেত্ৰত খ্ৰীষ্টিয়ান মিছনেৰীসকলেও যথেষ্ট অৱদান আগবঢ়াই থৈ গৈছে। এওঁলোকৰ পৰৱৰ্তী কালত নাহেন্দ্ৰ পাদুন, টাবু টাইদৰ দৰে মিচিং সমাজৰ পুৰূধা ব্যক্তিসকলৰ প্ৰচেষ্টাতেই মিচিং ভাষাই অগ্ৰগতি লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। এই দুজন ব্যক্তিৰ উদ্যোগতেই ১৯৬৮ চনত মিচিং ভাষাৰ চিন্তা-চৰ্চাৰ উদ্দেশ্যে 'গুৱাহাটী মিচিং কৌবাং' নামেৰে এটি সংগঠন আনুষ্ঠানিকভাৱে সংগঠিত হয়। এওঁলোকে ভাষাটোৰ উন্নতিৰ স্বাৰ্থত লোৱা অগ্ৰণী ভূমিকাৰ ফলশ্ৰুতিতেই পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ত ১৯৭২ চনত শিৱসাগৰৰ দিচাংমুখত 'মিচিং আগম কৌবাং' নামেৰে মিচিং সাহিত্য সভাৰ সৃষ্টি হয়। এই মিচিং আগম কৌবাঙেই আছিল মিচিং ভাষা সাহিত্য চৰ্চাৰ মূল কেন্দ্ৰস্বৰূপ। মিচিং আগম কৌবাং তথা মিচিং সাহিত্য সভা গঠিত হোৱাৰ পিছৰ পৰাই মিচিং ভাষাপ্ৰেমী আৰু সাহিত্যপ্ৰেমী লোকসকলে মিচিং ভাষা, সমাজ-সংস্কৃতি, লোকসাহিত্য আদি বিভিন্ন বিষয়ক পুথি প্ৰণয়ন কৰি মিচিং ভাষা-সাহিত্যৰ চৰ্চা অব্যাহত ৰাখিছে। খ্ৰীষ্টিয়ান মিছনেৰীসকলেও ৰোমান লিপিতেই মিচিং ভাষা-সম্পৰ্কীয় কেইবাখনো মূল্যবান গ্ৰন্থ লিখি মিচিং ভাষালৈ বিশেষ অৱদান আগবঢ়াই থৈ গৈছে। এই আলোচনাত প্ৰধানকৈ মিচিং ভাষাৰ চৰ্চা আৰু মিচিং ভাষাৰ ব্যাকৰণ, অভিধান, শব্দভাণ্ডাৰ বিষয়ক পুথি-পাজিসমূহৰ বিষয় উপস্থাপন কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ

মিচিং ভাষা, ব্যাকৰণ, অভিধান, শব্দভাণ্ডাৰ বিষয়ক পুথি।

০.০০ অৱতৰণিকা ঃ

বিভিন্ন ভাষা-ভাষী লোকৰ সমাগমস্থলী অসম ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ এখন অন্যতম ৰাজ্য। অসমত বহু পূৰ্বৰে পৰা বসবাস কৰি অহা থলুৱা বিভিন্ন জতি-জনগোষ্ঠীৰ বৈচিত্ৰময় ভাষা, কৃষ্টি-সংস্কৃতিয়ে অসমৰ বাৰেৰহণীয়া সংস্কৃতিৰ পৰিচয় দিয়ে। ইতিহাসে ঢুকি নোপোৱা কালতে অসমৰ ভৈয়াম অঞ্চললৈ প্ৰব্ৰজন কৰা মিচিংসকল অসমৰ খিলঞ্জীয়া জনগোষ্ঠীসমূহৰ ভিতৰত অন্যতম। মিচিং ভাষা চীন-তিব্বতীয় ভাষা পৰিয়ালৰ তিব্বত-বৰ্মী শাখাৰ উত্তৰ-অসম ঠালৰ অৰ্ন্তগত এক উল্লেখযোগ্য ভাষা। স্বকীয় ভাষা-সাংস্কৃতিক পৰম্পৰাৰে বৈশিষ্ট্যসম্পন্ন মিচিংসকল অসমৰ দ্বিতীয় বৃহৎ জনজাতীয় গোট। এওঁলোকৰ নিজস্ব ভাষা হৈছে মিচিং(তানী আগম)। মিচিং ভাষাৰ নিজা লিপি নাই বাবে পূৰ্বতে এওঁলোকে অসমীয়া লিপিৰে ব্যৱহাৰ কৰিছিল যদিও পৰৱৰ্তী সময়ত ৰোমান লিপিকে নিজস্ব লিপি হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছে। অৱশ্যে অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য চৰ্চাৰ ক্ষেত্ৰত এওঁলোকে মিচিং আৰু অসমীয়া উভয় ভাষাই ব্যৱহাৰ কৰি আহিছে।

০.০১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

ভাষা এটাৰ সমৃদ্ধি আৰু বিকাশৰ বাবে সেই নিৰ্দিষ্ট ভাষাটো বৈয়াকৰণিক দিশৰ পৰাও সৰল আৰু সুদৃঢ় হোৱাটো প্ৰয়োজনীয়। ব্যাকৰণ আৰু অভিধান ভাষা এটাৰ মেৰুদণ্ড। এই দুই উপাদানে ভাষাটোৰ ভেটিটো মজবুত কৰি ৰাখে। এই গৱেষণা পত্ৰখনিৰ জৰিয়তে মিচিং ভাষাৰ চৰ্চা তথা এই ভাষাত ৰচিত ব্যাকৰণ, অভিধান, শব্দভাণ্ডাৰ আদিকে ধৰি ভাষা বিষয়ক অন্যান্য পুথিৰ উল্লিখনেৰে বিষয়বস্তুৰ আলোচনা সম্পন্ন কৰাই প্ৰধান উদ্দেশ্য।

০.০২ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

বিষয়টি আলোচনাৰ বাবে বৰ্ণনামূলক পদ্ধতিৰ অৱলম্বন কৰা হৈছে।

১.০০ মিচিং ভাষাৰ চৰ্চা ঃ

খ্ৰীষ্টিয়ান মিছনেৰীসকলৰ সময়ৰ পৰাই মিচিং ভাষা বিষয়ত চৰ্চা আৰম্ভ হয়। ঊনৈছ শতিকাৰ পৰা কুৰি শতিকা এই সময়ৰাৰ ভিতৰত বহুকেইজন খ্ৰীষ্টিয়ান মিছনেৰীয়ে মিচিং ভাষা-সাহিত্যৰ চৰ্চা কৰি ভাষাটোলৈ বিশেষ অৱদান আগবঢ়াই থৈ গৈছে। এওঁলোকে ৰোমান লিপিতেই মিচিং ভাষা সম্পৰ্কীয় পুথি প্ৰণয়ন কৰিছিল। এইক্ষেত্ৰত জে.এফ.নীড্হামৰ 'আউটলাইন গ্ৰামাৰ অব্ চায়াং মিৰি লেংগুৱেজ'('Outline Grammar of Shiyang Miri Language' - J.F. Needham-1886), জে. হাবাৰ্ট লৰেইনৰ 'এ ডিক্চ'নেৰী অব্ দ্য আবৰ-মিৰি লেংগুৱেজ'('A Dictionary of the Abor-Miri Language, J.H. Lorrain, 1909) আদি মিচিং ভাষাৰ আপুৰুগীয়া সম্পদ। জৰ্জ হাবাৰ্ট লৰেইনৰ ৰোমান লিপিত লিখা 'Isorke Doyinge' অৰ্থাৎ, ঈশ্বৰৰ কথা আৰু 'Jisuke Doying' অৰ্থাৎ, যীশুৰ কথা- এই দুখন হৈছে মিচিং ভাষাৰ প্ৰথম ছপা পুথি। তাৰোপৰি এচিয়াটিক চ'ছাইটি অব্ বেঙ্গল নামৰ জাৰ্নেলত উইলিয়াম ৰবিন্সন, নাথান ব্ৰাউন, স্মিথ, হাড্চন আদিকে ধৰি কেইবাজনো খ্ৰীষ্টিয়ান মিছনেৰীয়ে মিৰি ভাষা সৰ্ম্পকীয় বিভিন্ন প্ৰৱন্ধ প্ৰকাশ কৰিছিল। উইলিয়াম ৰবিন্সনে ১৮৪৯ চনত জাৰ্নেল অব এচিয়াটিক চ'ছাইটি(খণ্ড১৮ অধ্যায়১)ত 'Mishing Abor Language' নামেৰে এখনি পুথি ৰিপৰ্ট হিচাপে প্ৰকাশ কৰিছিল। এই পত্ৰিকাখনতে জে.টি.ই ডেল্টনৰ 'On the Miris and Abors', উইলিয়াম ৰবিন্সনৰ 'Notes on the Language spoken by the various Tribes Inhabiting the valley of Assam and it's Mountain Confines'আদিকে ধৰি মিছনেৰী আৰু ইংৰাজ প্ৰশাসকসকলৰ কেইবাটাও উল্লেখযোগ্য প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ পাইছে। এই প্ৰবন্ধসমূহত মিৰি (মিচিং) ভাষাৰ বৈয়াকৰণিক দিশৰ লগতে শব্দভাণ্ডাৰৰ দিশত অধিক গুৰুত্ব দিছে।[১]

১৯৬৮ চনৰ প্ৰথমছোৱা সময়ত গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয় গৱেষক ছাত্ৰ হিচাপে অধ্যয়নৰত নাহেন্দ্ৰ পাদুন আৰু কটন কলেজৰ ইংৰাজী বিষয়ৰ প্ৰৱক্তা টাবুৰাম টাইদে গুৱাহাটীত বসবাস কৰি থকা মিচিং লোকসকলক লৈ এখন সভা অনুষ্ঠিত কৰে। সেইদিনাই টাবুৰাম টাইদৰ সভাপতিত্বত আৰু নাহেন্দ্ৰ পাদুনক সম্পাদক হিচাপে লৈ গুৱাহাটী মিচিং কৌবাং নামেৰে এটি সংঘ গঠিত হয়। এই সংঘই অন্যান্য দিশসমূহৰ লগতে মিচিং ভাষাৰ বাবে উপযুক্ত লিপি গ্ৰহণৰ বাবে চেষ্টা চলাইলছিল। সেই অনুসৰি এওঁলোকৰ প্ৰচেষ্টাতেই মিচিং ভাষাৰ চৰ্চা আৰু বিকাশ সাধনৰ উদ্দেশ্যে ১৯৭২ চনৰ ১৮ এপ্ৰিলত শিৱসাগৰৰ দিচাংমুখত 'মিচিং আগম কৌবাং'(মিচিং সাহিত্য সভা)ৰ গঠন কৰা হয়। এই 'মিচিং আগম কৌবাং' গঠন হোৱাৰ পাছৰ পৰাহে মিচিংসকলে ৰোমান লিপিৰ

ব্যৱহাৰ কৰি ভাষা সাহিত্যৰ চৰ্চা কৰিবলৈ ল'লে। 'মিচিং আগম কৌবাং'ৰ প্ৰধান উদ্দেশ্যসমূহ হৈছে —

(ক) মিচিং ভাষাত বিভিন্ন গ্ৰন্থ সংকলন আৰু প্ৰকাশ কৰা।

(খ) মিচিং লোক সাহিত্যৰ সংগ্ৰহ আৰু প্ৰকাশ কৰা।

(গ) মিচিং ভাষাক নিৰ্দেশনাৰ মাধ্যম আৰু একোটা বিষয় হিচাপে প্ৰৱৰ্তন কৰাৰ বাবে কাৰ্য কৰা।

(ঘ) মিচিং ভাষা-সাহিত্যক প্ৰসাৰিত কৰিব পৰা বিভিন্ন কাৰ্য্যকলাপসমূহৰ মুখপত্ৰ প্ৰস্তুত কৰা।

(ঙ) ৰাজনৈতিক আৰু ধৰ্মীয় বিতৰ্ক তথা সাম্প্ৰদায়িকতাৰ পৰা আঁতৰি মিচিং আগম কৌবাঙক এক ভাষিক, সাহিত্যিক আৰু সাংস্কৃতিক সংঘ হিচাপে প্ৰতিষ্ঠা কৰা।

মিচিং আগম কৌবাঙে মিচিং ভাষাপ্ৰেমী লোকসকলক ভাষা-সাহিত্য চৰ্চাৰ প্ৰতি আগ্ৰহী কৰি তুলিছিল। মিচিং আগম কৌবাঙৰ প্ৰতিষ্ঠাপক সভাপতি আছিল টাবুৰাম টাইদ আৰু সম্পাদক নাহেন্দ্ৰ পাদুন। মিচিং ভাষা-সাহিত্যক পৰিপুষ্টি প্ৰদান তথা ভাষাটোক সুৰক্ষিত কৰি ৰখাৰ ক্ষেত্ৰত এই অনুষ্ঠানসমূহে অগ্ৰণী ভূমিকা গ্ৰহণ কৰি আহিছে।

উল্লেখযোগ্য যে, সোণাৰাম পাএাং কটকীয়েই পোনপ্ৰথমে অসমীয়া লিপিৰে 'মিৰি জাতিৰ বুৰঞ্জী' (১৯৩৫) শীৰ্ষক গ্ৰন্থখন লিখিছিল। তাৰোপৰি টাবু টাইদ, নাহেন্দ্ৰ পাদুন, ভৃগুমুনি কাগ্যুম আদিকে ধৰি কেইবাজনো মিচিং লেখকে মিচিং ভাষা বিষয়ক বিভিন্ন পুথি-পাজি ৰচনা কৰিছে। ভাষা একোটাৰ সৰ্বতোপ্ৰকাৰে উন্নতি সাধনৰ বাবে প্ৰণালীৱদ্ধ ব্যাকৰণ আৰু অভিধান ৰচিত হোৱাটো অতিকৈ প্ৰয়োজনীয়। তেনেধৰণৰ মিচিং ভাষা বিষয়ক গ্ৰন্থসমূহ তলত উল্লেখ কৰা হ'ল -

ক) ব্যাকৰণ বিষয়ক পুথি ঃ

(১) জে.এফ. নীড্হামৰ 'আউটলাইন গ্ৰামাৰ অব্ চায়াং মিৰি লেংগুৱেজ' (Outline Grammar of Shiyang Miri Language, J.F. Needham-1886) - শদিয়াৰ ওচৰে পাজৰে সিঁচৰিত হৈ থকা চায়াং মিৰিসকলৰ ভাষাৰ ভিত্তিত সমল সংগ্ৰহ কৰা এইখনেই মিচিং ভাষাৰ প্ৰথমখন পূৰ্ণ পৰ্যায়ৰ ব্যাকৰণ। ইয়াত মিচিং ভাষাৰ স্বৰধ্বনি, ব্যঞ্জনধ্বনি, লিংগ, বিশেষ্য, বিশেষণ, সৰ্বনাম, ক্ৰিয়া, অব্যয় পদ, কাল আদিৰ বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ উদাহৰণসহ আলোচনা আগবঢ়াইছে।

(২) বলৰাম প্ৰসাদ(Bal Ram Prasad)ৰ 'Mising Grammar'(১৯৯১) - এইখনৰ বৈয়াকৰণিক বিশ্লেষণ আৰু প্ৰথম খচৰা প্ৰস্তুতিৰ কাম ১৯৮৫চনতে বলৰাম প্ৰসাদে কৰিছিল। এইখিনি সময়তে তেখেতে মাইচ'ৰত অৱস্থিত 'চেণ্ট্ৰেল ইনষ্টিটিউট অব ইণ্ডিয়ান লেংগুৱেজেছ' প্ৰতিষ্ঠান এৰি যোৱাৰ বাবে আৰু তেখেতৰ আকস্মিক মৃত্যুৰ বাবে উক্ত প্ৰতিষ্ঠানৰ পৰাই গ্ৰন্থখনৰ পাণ্ডুলিপি সংশোধন আৰু সম্পাদনা কৰি উলিয়াইছিল জি. ডেভী প্ৰসাদ শাস্ত্ৰী আৰু পি. টি. আব্ৰাহমে। ব্যাকৰণখনৰ আৰম্ভণিতে মিচিং ভাষা আৰু সমাজৰ পৰিচয়মূলক বিৱৰণ আগবঢ়াইছে। তাৰোপৰি মিচিং ভাষাৰ ধ্বনিতত্ত্ব (Phonology) - শ্ৰেণীবিভাজন, ধ্বনিগত বৈপৰীত্য, ৰূপধ্বনিবিজ্ঞান (Morphophonemics), ৰূপতত্ত্ব (Morphology) - বিশেষ্য, বিশেষণ, বিভক্তি, ক্ৰিয়া, শব্দ গঠন, বাক্য গঠন আৰু বাক্যতত্ত্ব (Syntax) - বাক্যাংশ স্তৰৰ নিৰ্মাণ (Phrase level construction) বাক্যৰ স্তৰ (Sentence Level) আদি বিষয়ত বিস্তৃত ৰূপত আলোচনা আগবঢ়াইছে।

(৩) মনোজ কুমাৰ মিলি আৰু নীলেশ্বৰ পেগুৰ 'Mising Agom Luyir' (১৯৯৪)

(৪) টাবুৰাম টাইদৰ 'An Introduction to Mishing Phonology and Grammar'(২০১৬)

এইকেইখন ব্যাকৰণ পুথিতো মিচিং ভাষাৰ স্বৰধ্বনি, ব্যঞ্জনধ্বনি, বিশেষ্য, বিশেষণ, সৰ্বনাম, অব্যয় আদি পদসমূহ, লিংগ, পুৰুষ, বচন, সম্বন্ধবাচক শব্দ, বাক্য ৰচনা আদিবোৰ বিষয় সন্নিবিষ্ট হৈছে।

মিচিং ভাষাৰ অভিধান ঃ

(১) জৰ্জ হাবাৰ্ট লৰেইনৰ 'A Dictionary of Abor-Miri Language'(১৯০৯), Shillong - এইখনেই মিচিং ভাষাৰ প্ৰথম আৰু পূৰ্ণাংগ ৰূপত প্ৰকাশিত ব্যাকৰণ। এই গ্ৰন্থখনৰ আৰম্ভিণিতে আখৰ জোটনি পদ্ধতি (Orthography), শ্ৰতিমধুৰতা (Euphony), চিহ্ন আৰু প্ৰতীক ব্যৱহাৰৰ বিষয়ত বিশ্লেষণাত্মক টোকা (Explanatory Notes on Signs and Symbols) আগবঢ়াই আবৰ-মিৰি শবদসমূহৰ ইংৰাজী অৰ্থ উল্লেখ কৰিছে। তাৰোপৰি শেষৰফালে নিদৰ্শনমূলক বাক্য আৰু টোকা (Illustrative Sentences and Notes) ৰ বিষয়েও

কিছু আলোচনা আগবঢ়াইছে।

(২) টাবুৰাম টাইদৰ 'A Dictionary of Mising Language' (১৯৯৫) - এইখন মিচিং ভাষাৰ প্ৰথম ত্ৰিভাষিক অভিধান।

(৩) টাবুৰাম টাইদৰ দ্বিতীয়খন ত্ৰিভাষিক অভিধান হৈছে - 'Mising Gomphir Kumsung'(A Dictionary of the Mising Language, Mising to Mising, Assamese, English) - এই অভিধানখন আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি অনুষ্ঠান (ABILAC)ৰ পৰা ২০১০ চনত প্ৰকাশিত হৈছে। গ্ৰন্থখনৰ আৰম্ভণিতেই মিচিংসকল আৰু তেওঁলোকৰ ভাষা (Mising and their speech) ঃ মিচিং ভাষা কঁওতাসকল (The speakers), মিৰি (Miri), মিচিং (Mishing), Mising আৰু Mishing, ভাষিক আত্মীয়তা (Linguistic kinship), মিচিঙসকলৰ উপভাষা (Dialects of Mising), মিচিঙৰ লিখিত পৰম্পৰা আৰু ইয়াৰ বৰ্তমান (Written tradition of Mising and its present); মিচিং ভাষাৰ মৌলিক বৈশিষ্ট্যসমূহ (Some basic features of the Mising language) ঃ ধ্বনি (The phonems), ব্যঞ্জনধ্বনি (The consonants), স্বৰধনিসমূহ (The vowels), সুৰ আৰু কণ্ঠধ্বনিৰ উত্থান-অৱনমন (Tone and intonation) আদি বিষয়ত আলোচনা আগবঢ়াই ক্ৰমে মিচিং ভাষাৰ বিভিন্ন শব্দসমূহৰ মিচিং, অসমীয়া আৰু ইংৰাজী অৰ্থ সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। মিচিং ভাষাৰ এই শব্দসমূহ উল্লেখ কঁৰোতে অনুসৰ্গ (Affixes), উপসৰ্গ (Prefixex), প্ৰত্যয় (Suffixes), সংখ্যা (Number), লিংগ (Gender), বিশেষ্য (Nouns), সৰ্বনাম (Pronouns), বিশেষণ (Adjectives), ক্ৰিয়া বিশেষণ (Adverbs), ক্ৰিয়া (Verbs), অব্যয় (Conjunction) আদিকে ধৰি ৰূপতাত্ত্বিক গঠনৰো কিছুপৰিমাণে বিশ্লেষণ কৰি দেখুৱাইছে। তাৰোপৰি, মিচিং ভাষাৰ বাক্য (Sentences) ঃ বিশেষ্য আৰু বিশেষণ বাক্যাংশ (The noun phrase and adjective phrase) ক্ৰিয়া বাক্যাংশ (The verb phrase), সৰল বাক্য (Simple sentence), যুগ্ম বা যৌগিক বাক্য (Compound sentence), জটিল বাক্য (Complex sentence) আদিৰ বিষয়তো কিছু আলোচনা আগবঢ়াইছে।

৪) জিৎমল দলেৰ 'The Pronouncing Mising-English-Assamese Dictionary' (২০০৪) মিচিং ভাষাৰ অন্য এখন উল্লেখযোগ্য ত্ৰিভাষিক অভিধান। এই উচ্চাৰণভিত্তিক ত্ৰিভাষিক অভিধানখন পূৰ্বভাৰতী প্ৰকাশনে প্ৰকাশ কৰি উলিয়াইছে। অভিধানখনৰ আৰম্ভিণিতে মিচিং ভাষা সন্দৰ্ভত এটি চমু আলোচনা আগবঢ়াইছে। এই অভিধানখনত মিচিং ভাষাৰ শব্দসমূহ লিখি বন্ধনীৰ ভিতৰত অসমীয়া লিপিতো লিখিছে আৰু প্ৰত্যেকটো শব্দৰে অসমীয়া আৰু ইংৰাজী অৰ্থ সন্নিবিষ্ট কৰিছে।

মিচিং ভাষা বিষয়ক অন্যান্য গ্ৰন্থ ঃ

মিচিং ভাষাৰ ব্যাকৰণ আৰু অভিধানসমূহৰ উপৰি মিচিং ভাষা বিষয়ক আন কেইবাখনো গ্ৰন্থ প্ৰকাশিত হৈছে। সেইসমূহৰ ভিতৰত শোণাৰাম মিৰি মহৰিৰ 'মিৰি দুয়ান' (১৯১৫), বিভিষণ পেগুৰ 'মিৰি দুয়ান' (১৯৫৮), টাবুৰাম টাইদৰ 'Mising Agom Ayyin' (১৯৭২), 'মিছিং ভাষাৰ বানান পদ্ধতি'(১৯৮৩), নাহেন্দ্ৰ পাদুনৰ 'মিচিং অসমীয়া পাঠ' (১৯৮১), 'মিচিং ভাষাৰ শিক্ষা' (২০১৬), 'Mising Agom Mimang' (১৯৭৪), 'Mising Gomlam' (১৯৮৭), কমল চন্দ্ৰ পাদুনৰ মিচিং পাঠ (১৯৮৫), পূৰ্বোত্তৰ ভাষা-সমিতিৰ দ্বাৰা সম্পাদিত অসমীয়া মিচিং শব্দকোষ (১৯৮২), ভৱানীকান্ত শৰ্মা সম্পাদিত 'অসমীয়া-মিচিং শব্দকোষ' (১৯৮২), পূৰ্বোত্তৰ ভাষা-সমিতিৰ দ্বাৰা প্ৰস্তুত কৰি উলিওৱা টাবুৰাম টাইদৰ 'মিচিং ভাষাৰ বানান পদ্ধতি' (১৯৮৩), 'মিচিং ভাষাৰ চমু পৰিচয়' (১৯৮৮) আদি উল্লেখযোগ্য। মিচিং ভাষা বিষয়ক এই গ্ৰন্থসমূহত বিশেষকৈ মিচিং ভাষাৰ আভাষ তথা মিচিং স্বৰধ্বনি, ব্যঞ্জনধ্বনিকে ধৰি ধ্বনি পৰিচয়, ধ্বনিবিন্যাস, বাক্যবিন্যাসৰ লগতে বিশেষ্য, বিশেষণ, সৰ্বনাম, অব্যয়, বচন, লিংগ, পুৰুষ, কাৰক, ক্ৰিয়াৰূপ আদিকে ধৰি ৰূপতাত্ত্বিক গঠন সম্পৰ্কেও আলোচনা আগবঢ়াইছে। মিচিং ভাষাৰ শব্দকোষকেইখনত প্ৰধানকৈ মিচিং ভাষাৰ সম্বন্ধবাচক শব্দ, গছ-গছনি, চৰাই-চিৰিকটি, জীৱ-জন্তুৰ নাম বুজোৱা শব্দৰ লগতে সা-সঁজুলি, সাজপোচাক, খাদ্যসামগ্ৰী আদিকে ধৰি বস্তুবাচক শব্দসমূহো সন্নিবিষ্ট কৰিছে।

ইয়াৰ উপৰি পূৰ্বোত্তৰ ভাষা সমিতিৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত ভৃগুমুনি কাগ্যুঙৰ 'মিচিং লুজন'(মিচিং ভাষাৰ লগৰী), মিচিং আগম কেবাঙৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত টাবুৰাম টাইদৰ 'Mising Gomlam-Potin' পুথিও মিচিং ভাষাৰ জ্ঞান

আহৰণৰ ক্ষেত্ৰত এক বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য পুথি। 'মিচিং লুজন' পুথিখনত মিচিং ভাষাৰ আখৰ চিনাকি কৰি সেই আখৰসমূহেৰে মিচিং শব্দসমূহ লিখি তাৰ অসমীয়া অৰ্থ প্ৰকাশ কৰিছে। তাৰোপৰি মিচিং ভাষাৰ 'আগম' অৰ্থাৎ বাক্যৰ উদাহৰণ দি সেইসমূহৰ অসমীয়া অৰ্থও লিখিছে। শেষৰ ফালে মিচিং ভাষা ব্যৱহাৰ হোৱা চিনৰ চিনাকি কৰিছে। উল্লেখযোগ্য যে এই পুথিখন সম্পূৰ্ণভাৱে অসমীয়া লিপিত লিখা। সেইদৰে ৰোমান লিপিত লিখা 'Mising Gomlam-Potin' পুথিতো মিচিং ভাষাৰ বৰ্ণ পৰিচয়, সঘোষ ধ্বনি, অঘোষ ধ্বনি, ধ্বনিতাত্ত্বিক বৈশিষ্ট্যৰ লগতে ভাষাগত বিভিন্ন দিশ প্ৰকাশ পাইছে।

সেইদৰে তুলেশ্বৰ পেগুৰ 'Gomnan'(Likkep Potinko) নামেৰে মিচিং ভাষাৰ এই পুথিখন(পকেট পুথি) ২০১২ চনত প্ৰকাশ পাইছিল। পুথিখনত মিচিং ভাষাৰ বৰ্ণ পৰিচয়, Mugyar (দীৰ্ঘ স্বৰ), Mugdeng (হ্ৰস্ব স্বৰ) আৰু এইসমূহৰ শব্দৰে উদাহৰণ, মিচিং ভাষাৰ জানিবলগীয়া বিভিন্ন শব্দ, সভা-সমিতিত ব্যৱহৃত শব্দ, বিভিন্ন স্তৰৰ মাটি-কালি সম্পৰ্কীয় শব্দ, শিক্ষাৰ লগত জড়িত শব্দ, পানীৰ বিভিন্ন অৱস্থা(যেনে- Sipung- বৰষুণ জমা হোৱা পানী, Sikur- নিজৰাৰ পানী, Sirung- নাদ বা কুঁৱা,পুখুৰী, Boggo মোহনা, Boglong - নদী দ্বীপ বা মাজুলি) বুজোৱা শব্দ, গণিত সম্পৰ্কীয় শব্দ, মাহৰ নাম, ঋতুৰ নাম, বাৰৰ নাম, কালৰ নাম(বৰ্তমান কাল, অতীত কাল, ভৱিষ্যত কাল), বাদ্যযন্ত্ৰৰ নাম, মিচিং বানান পদ্ধতি, ঋণ শব্দ আদিবোৰ সন্নিবিষ্ট হৈছে। পুথিখনত মিচিং শব্দসমূহ ৰোমান লিপিৰে লিখিছে আৰু তাৰ অৰ্থসমূহ অসমীয়াত লিখিছে।

মিচিং আগম কেবাঙৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত ঘনকান্ত দলেৰ '৩০দিনত মিচিং ভাষা শিকোঁ আহক'(২০২১) পুথিখনো মিচিং ভাষা শিকাৰুসকলৰ বাবে এখন উল্লেখযোগ্য পুথি। ইয়াত মিচিং ভাষাৰ বৰ্ণ পৰিচয় আৰু উচ্চাৰণ, হ্ৰস্ব ধ্বনি আৰু দীৰ্ঘ ধ্বনিৰ উচ্চাৰণ, ব্যঞ্জন ধ্বনিৰ উচ্চাৰণ বৈশিষ্ট্য আদিবোৰ মিচিং ভাষাত ৰোমান লিপি ব্যৱহাৰ কৰি লিখি পুনৰ অসমীয়া লিপিৰেও সেই উচ্চাৰণসমূহ কেনেধৰণৰ হ'ব লিখি দিছে। তাৰোপৰি মিচিং ভাষাৰ আখৰৰ আকৃতি, হ্ৰস্ব আৰু দীৰ্ঘ স্বৰবৰ্ণৰ ব্যৱহাৰৰ কৰি একেধৰণৰ শব্দসমূহৰ ভিন্নৰ্থক ৰূপ বুজোৱা শব্দ, মিচিং ভাষাৰ ধ্বনি বিন্যাস, বানান পদ্ধতিৰ আলোচনা কৰাৰ লগতে সংখ্যাৰ গণনা, টকাৰ হিচাপ, আঙুলি আৰু হাতৰ জোখ-মাখ, বাৰৰ নাম, ঋতুৰ নাম, মাহৰ নাম, পক্ষ(যেনে-শুক্ল পক্ষ-লাদ্‌দীং, পূৰ্ণিমা-কাৰ্‌তাং আদি), দিশৰ নাম, ৰোগ আৰু ঔষধ সম্পৰ্কীয় শব্দ, ইংৰাজী মাহৰ নাম, মিচিং ভাষাত অসমীয়া মাহৰ নাম, জ্যোতিষ্ক মণ্ডল, ৰঙৰ নাম, আত্মীয় স্বজন তথা সম্বন্ধবাচক শব্দ, মানুহৰ অংগ-প্ৰত্যংগৰ নাম, চৰাই-চিৰিকটি, কীট-পতঙ্গ, জীৱ-জন্তুৰ নামকে ধৰি বিভিন্ন শব্দ সন্নিবিষ্ট কৰিছে। বাক্য ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্ৰতো মিচিং ভাষাত সম্ভাষণ, প্ৰশংসা, কৃতজ্ঞতামূলক শব্দ বা বাক্য, বিস্ময়সূচক বাক্য, আদেশসূচক কথা, উপমা, প্ৰবাদ বাক্য আদিৰ লগতে যুৰীয়া শব্দ, শব্দৰ পুনৰোক্তি, সমষ্টিবাচক শব্দ, শব্দ বিভক্তি, লিঙ্গ প্ৰকৰণ, বিপৰীতাৰ্থক শব্দ, পদ আৰু পদসমূহৰ বৈশিষ্ট্য আৰু উদাহৰণ, উক্তি(Speech), বাচ্য, কথোপকথন, মিচিং পৰিভাষা, মিচিং ঋণ শব্দ, ফকৰা-যোজনা, নীতিবচন, সাঁথৰকে ধৰি প্ৰয়োজনীয় সকলোবোৰ দিশেই আলোচনা কৰিছে।

ৰত্নেশ্বৰ মিলিৰ 'মিচিং ভাষা আৰু সংস্কৃতি' (২০১৯) গ্ৰন্থখনতো মিচিং ভাষাৰ ধ্বনিতত্ত্ব, সন্ধি, ৰূপতত্ত্ব আৰু শব্দভাণ্ডাৰকে ধৰি ভাষাতাত্ত্বিক দিশসমূহৰ লগতে সাংস্কৃতিক বিভিন্ন দিশ যেনে মিচিং লোকগীতত প্ৰতিফলিত লোকজীৱন, মিচিং লোকখাদ্য, আপং আৰু 'অ'পব্'ৰ প্ৰস্তুত প্ৰণালী আৰু লোকবিশ্বাস, মিচিং খাদ্য-সংস্কৃতিত নাম্‌চুং, আলিয়াই লৃগাঙত মাংগলিক কাৰ্যৰ প্ৰতিফলন, মিচিংসকলৰ বআগ বিউ, মিচিং লোকসংস্কৃতিত বাঁহ, অইনিঃতমত উপমা অলংকাৰ আদি বিষয়ৰ লগতে 'মিক্‌চিজিলিক' উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত নাৰী জীৱন সম্পৰ্কে আলোচনাৰো সংযোজন কৰিছে।

মিচিং ভাষা বিষয়ক বহুতো গৱেষণাধৰ্মী প্ৰৱন্ধও পোৱা যায়। 'Linguistic of the Tibeto-Burman Area' নামৰ গৱেষণা পত্ৰিকাত টাবুৰাম টাইদৰ 'Verbal suffixes in Mising'(1995-vol. 18, no.1, pp.117-128), A Short note on Mising Phonology(1987- vol.10, no.1, pp.130-137), 'Mising morohophonemics' (1987- vol.10, no.1, pp. 138-146) নামেৰে মিচিং ভাষা বিষয়ক কেইবটাও গৱেষণাধৰ্মী প্ৰৱন্ধ প্ৰকাশ পাইছে। ইণ্টাৰনেটযোগে লাভ কৰা বসন্ত কুমাৰ দলেৰ 'A Sociolinguistic Profile of the Mising Language' নামেৰে গৱেষণাধৰ্মী প্ৰৱন্ধটিতো মিচিং ভাষাৰ সন্দৰ্ভত বিভিন্ন তথ্য সমৃদ্ধ হৈ আছে। বৰ্তমান সময়তো কিছুসংখ্যক

গৱেষকে মিচিং ভাষা সম্বন্ধীয় চৰ্চা অব্যাহত ৰাখিছে। হীমা ৰানী বৰাৰ 'Attitude Among the Mising Speech Community of Assam for Maintenance and Development of the Mising Language in Terms of Bilingualism' নামেৰে এটি প্ৰৱন্ধ 'International Journal of Innovative Technology and Exploring Engineering (IJITEE)' নামেৰে আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় গৱেষণা পত্ৰিকাত প্ৰকাশ পাইছে। গকুল গগৈৰ 'Bilingualism Among the Mising Speech-Community of Assam' বিষয়ক এটি প্ৰৱন্ধ 'Journal of Emerging Technolodgies and Innovatitive Research (JETIR-June-2019 Volume 6, Issue 6) নামৰ গৱেষণা পত্ৰিকাত প্ৰকাশ পাইছে। ৰিজ্বান ৰহ্মান, গোপাল চন্দ্ৰ হাজৰিকা আৰু ডেভিদ কাৰদঙৰ সহযোগিতাত 'Intonnation Pattern Analysis of Phonems in MISING Language' শীৰ্ষক এটি প্ৰবন্ধ 'International Journal of Computer Applications (Volume 150 -No.5, September 2016) নামেৰে আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় পৰ্যায়ৰ গৱেষণা পত্ৰিকাত প্ৰকাশ পাইছে। নিবেদিতা ফুকনৰ 'Impact of Language Policy on Primary Education of Mising and Tea-Tribes of Assam' শীৰ্যক প্ৰৱন্ধ 'Journal of English Language and Literature' (Vol.6 Issue1, 2019) নামৰ গৱেষণা পত্ৰিকাত প্ৰকাশ পাইছে।

বৰ্তমান গৱেষকসকলৰ দ্বাৰা মিচিং ভাষা বিষয়ক বিভিন্ন গৱেষণা গ্ৰন্থও ৰচিত হৈছে। সেইসমূহৰ ভিতৰত বসন্ত কুমাৰ দলেৰ 'A Morphological Study of the Mising Language' (অপ্ৰকাশিত) , কৈলাশ চন্দ্ৰ তালুকদাৰৰ গৱেষণা গ্ৰন্থ 'The Mishing People and their spoken Language' (অপ্ৰকাশিত, ১৯৯৩) বলোৰাম ভূএগ্ৰাৰ অপ্ৰকাশিত গৱেষণা গ্ৰন্থ 'চামগুৰিয়া মিচিং ঃ এটি ভাষা সামাজিক অধ্যয়ন' (এম.ফিল), উৎপল শইকীয়াৰ অপ্ৰকাশিত গৱেষণা গ্ৰন্থ 'মিচিংসকলৰ কথিত অসমীয়া-এক সমাজ-ভাষাবৈজ্ঞানিক অধ্যয়ন' (২০১৪), গকুল গগৈৰ অপ্ৰকাশিত গৱেষণা গ্ৰন্থ 'অসমৰ মিচিং সম্প্ৰদায়ৰ দ্বিভাষিক স্থিতি ঃ সমাজ-ভাষাবৈজ্ঞানিক অধ্যয়ন' (২০১৭), ৰাজীৱ কুমাৰ দলেৰ গৱেষণা গ্ৰন্থ 'Interlingual Code-Switching as a Sociolinguistic Phenomenon amogst the Mising of the Brahmaputra Valley : A Study.' (২০০৮) (Department of Humanities and Social Sciences,Indian Institute of Technology, Guwahati), যোগেন্দ্ৰ পেগুৰ 'Dialectal Variations in Mising and the Interference of Dominant Languages' (২০১০) (School of Humanities and Social Sciences, Department of English and Foreign Languages,Tezpur University) আদি উল্লেখযোগ্য।

বৰ্তমান সময়ত মিচিং ভাষাৰ চৰ্চা অব্যাহত ৰাখিবলৈ মিচিং আগম কেবাঙ (মিচিং সাহিত্য সভা)ৰ উদ্যোগত মিচিং ভাষাৰ শিক্ষাদানৰ কৰ্মশালাৰো অনুষ্ঠিত কৰা দেখা গৈছে। তাৰোপৰি মিচিং ভাষা-সংস্কৃতি ৰক্ষাৰ স্বাৰ্থত টাকাম মিচিং পৰিণ কেবাং(টি এম পি কে), মিচিং মিমাগ কৌবাং(এম এম কে) আদি মিচিং দল-সংগঠনসমূহেও বিশেষ ভূমিকা আগবঢ়াইছে।

২.০০ উপসংহাৰ ঃ

খ্ৰীষ্টিয়ান মিছনেৰীসকলৰ পৰা আৰম্ভ কৰি মিচিং ভাষা, সমাজ-সাহিত্যপ্ৰেমী লোকসকলৰ প্ৰচেষ্টাত মিচিং ব্যাকৰণ, অভিধান, শব্দভাণ্ডাৰ বিষয়ক বিভিন্ন পুথি প্ৰকাশিত হৈছে। বৰ্তমান সময়ত গৱেষণাধৰ্মী বিভিন্ন প্ৰৱন্ধ, গৱেষণা গ্ৰন্থ আদিৰ জৰিয়তেও মিচিং ভাষা বিষয়ক ন ন দিশৰ উত্থাপন হৈছে। ভাষা একোটাৰ অস্তিত্ব জীয়াই ৰখাৰ ক্ষেত্ৰত সেই নিৰ্দিষ্ট ভাষাটোৰ ব্যৱহাৰ আৰু চৰ্চা বা অধ্যয়ন অটুট ৰাখিব লাগে। সেই দৃষ্টিকোণেৰে চালে, মিচিং ভাষা পূৰ্বতে কেৱল কথিত ৰূপত ব্যৱহাৰ হৈ আছিল। সেই সময়ত লিপিহীন এই ভাষাটোৰ ভাষা-সাহিত্যৰ চৰ্চাৰ ক্ষেত্ৰত আশংকাই দেখা দিছিল। কিন্তু পৰৱৰ্তী সময়ত ১৯৬৮ চনত গুৱাহাটী মিচিং কৌবাঙৰ জন্মৰ পিছত লিপি ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্ৰত মিচিঙসকলে এক পৰীক্ষামূলক আঁচনি প্ৰস্তুত কৰে। এই আঁচনিৰ সফল ৰূপায়নৰ বাবে নাহেন্দ্ৰ পাদুনে নেতৃত্ব লৈছিল আৰু তেওঁৰ নেতৃত্বতেই ১৯৬৯ চনত 'মিচিং ভাষাৰ লিপি ঃ এটি পৰীক্ষামূলক আঁচনি' প্ৰকাশ কৰে। তদুপৰি তেওঁ মিচিং ভাষাত ৰোমান লিপি প্ৰয়োগৰ আৰ্হি স্বৰূপে ১৯৭১ চনত 'Mising Agom Ayyir' পুথি প্ৰস্তুত কৰি উলিয়াই।[১] ১৯৭২ চনত মিচিং ভাষা-সাহিত্যৰ উন্নয়নৰ উদ্দেশ্যে 'মিচিং আগম্ কৌবাং' নামেৰে এটি জাতীয় সংগঠন গঠিত হয়। ১৯৭৮ চনত 'মিচিং আগম্ কৌবাং'ৰ উদ্যোগতেই মিচিং ভাষাৰ বাবে ৰোমান লিপি ব্যৱহাৰৰ সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ কৰা হয়। ইয়াৰ পিছৰ পৰাই মিচিং ভাষাত ভাষা-সাহিত্য, সমাজ-সংস্কৃতি বিষয়ক বিভিন্ন পুথি প্ৰকাশ পোৱাৰ লগতে আলোচনী ('*দকচিৰি*'-*অসমীয়া আৰু মিচিং ভাষাৰ একমাত্ৰ দ্বিভাষিক ই আলোচনী*), বাতৰি কাকত (*মিচিং আগম*

কীবাঙৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত সৰ্বপ্ৰথম বাতৰি কাকত 'মিমাঙ') আদিও প্ৰকাশিত হৈছে। আকাশবাণী ডিব্ৰুগড় কেন্দ্ৰৰ পৰা মিচিং ভাষাৰ মাধ্যমেৰে বাতৰিও সম্প্ৰচাৰিত হয়। আনহাতে অসম চৰকাৰে ১৯৮৫ চনতে মিচিং অধ্যুষিত অঞ্চলসমূহত অৱস্থিত প্ৰাথমিক বিদ্যালয়সমূহৰ তৃতীয় আৰু চতুৰ্থ শ্ৰেণীত মিচিং ভাষাক অতিৰিক্ত বিষয় হিচাপে শিক্ষাদানৰ ব্যৱস্থা কৰিছিল। গতিকে এই সকলোবোৰ দিশ চালি জাৰি চালে মিচিংভাষীসকলে নিজস্ব ভাষাটোক এক স্বতন্ত্ৰ ভাষা হিচাপে গঢ়ি তুলিবলৈ কৰা প্ৰচেষ্টাৰ উমান পোৱা যায়। তাৰোপৰি মিচিং লেখকসকলৰ লগতে অনামিচিং লেখকসকলেও মিচিং ভাষা-সাহিত্যৰ বিভিন্ন দিশত চৰ্চা অব্যহত ৰখা দেখা গৈছে যিটো ভাষাটোৰ সুৰক্ষা আৰু প্ৰসাৰৰ ক্ষেত্ৰত এক ইতিবাচক কাৰক বুলিব পাৰি। ❑

প্ৰসংগসূচী ঃ

১। ক. পাদুন, নাহেন্দ্ৰ, মিচিং ভাষাৰ আভাস, পৃ.৩১
খ. কোঁৱৰ, অৰ্পণা, অসমত ভাষাৰ অধ্যয়ন, পৃ.১৭৫
২। কোঁৱৰ, অৰ্পণা, অসমত ভাষাৰ অধ্যয়ন, পৃ.১৭৮

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

অসমীয়া ঃ

কাগ্য়ুং, ভৃগুমুনি, মিচিং লুজন' (মিচিং ভাষাৰ লগৰী), পূৰ্বোত্তৰ ভাষা সমিতি, গুৱাহাটী, ১৯৮৯
কুলি, জৱাহৰ জ্যোতি, 'মিচিং সংস্কৃতি'(প্ৰথম আৰু দ্বিতীয় খণ্ড একত্ৰে), কৌস্তুভ প্ৰকাশন, ডিব্ৰুগড়, ২০১৫
কোঁৱৰ, অৰ্পণা, 'অসমত ভাষাৰ অধ্যয়ন', অসম সাহিত্য সভা, চন্দ্ৰকান্ত সন্দিকৈ ভৱন যোৰহাট, ২০২০
দলে,ঘনকান্ত, '৩০দিনত মিচিং ভাষা শিকো আহক', মিচিং আগম কেবাং, ধেমাজি, ২০২১
দেৱী, প্ৰণীতা, 'তিব্বত-বৰ্মীয় ভাষাৰ সম্বন্ধবাচক শব্দৰ অধ্যয়ন', প্ৰতিশ্ৰুতি প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, ২০১৬
পেগু, তুলেশ্বৰ, 'Gomnan'('গম্‌নাম'), কুঁহিপাত অফ্‌চেট, নাৰায়ণপুৰ, ২০১২
হোছেইন, ইছমাইল, 'মিচিং সমাজ-ইতিহাস আৰু সংস্কৃতিৰ ঐতিহ্য', জ্যোতি প্ৰকাশন, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, ২০১৫

ইংৰাজী ঃ

Lorrain, Herbert, 'A Dictionary of the Abor Miri Language', Mittal Publications, New Delhi, India.
Needham, J.F. 'Outline Grammar of the Shaiyang Miri Language', Assam Secretariat Press, Shillong, 1886
Prasad, Bal Ram, 'Mising Grannar', Central Institute of Indian Languages, Mysore, India, 1991
Taid, Tabu Ram(Editor), 'Mising Gompir Kumsung'(মিচিং শব্দকোষ, A Dictionary of the Mising Language with an introduction to Mising phonology and grammar), Anundoram Borooah Institute of Language, Art & Culture, Guwahati, Assam.

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ দেউকুবেৰ উৎসৱ ঃ এক অধ্যয়ন

ভৃগুত্তম বৰা

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
নৰ্থ লখিমপুৰ বিশ্ববিদ্যালয়, খেলমাটি
লখিমপুৰ-৭৮৭০৩১ (অসম)
৮৮৭৬০৪২৯০৮
rs.bhriguttam@nlu.ac.in

ড° ধীৰাজ পাটৰ

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
নৰ্থ লখিমপুৰ বিশ্ববিদ্যালয়, খেলমাটি
লখিমপুৰ-৭৮৭০৩১ (অসম)
৮৬৩৮২৮০৯৯২
dhirajpatar@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমত বসবাস কৰি থকা জনগোষ্ঠীসমূহৰ ভিতৰত চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকল অন্যতম। এই জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ এক গৌৰৱোজ্বল ইতিহাস আছে। পুৰণি ভাস্কৰ্য, পুৰাণ-উপপুৰাণ আদিৰপৰা চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ প্ৰাচীন ৰাজ্যৰ অৱস্থিতি, ৰাজকাৰ্য পৰিচালনা, ৰজা-প্ৰজাৰ ভিন্ন তথ্য আহৰণ হয়। পুৰণি মঠ-মন্দিৰ আৰু বৰ্তমান পৰম্পৰাৰ আনুসঙ্গিক হিচাপে শদিয়াৰ ওচৰে-পাজৰে থকা ভীষ্মক নগৰতেই চুতীয়াসকলৰ প্ৰাচীন ৰাজ্যৰ অৱস্থিতি পোৱা যায়। আৰু এইসময়ছোৱা মহাভাৰতৰ সময়ৰ যেন বোধ হয়। অৱশ্যে কোনো ধৰণৰ লিখিত বুৰঞ্জী নথকাৰ ফলত লোকসংস্কৃতি, লোক কাহিনী, পুৰাকথা, কিংবদন্তি আদিৰ মাজৰে জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে ঐতিহ্যক সোঁৱৰি আছে। এই ঐতিহাসিক জনগোষ্ঠীটোৰ মাজত বৰ্তমান সময়ত পৰম্পৰাগতভাৱে পালন কৰা সামাজিক আচাৰ-অনুষ্ঠানৰ দিশ যথেষ্ট। এনেক্ষেত্ৰত জনগোষ্ঠীটোৱে প্ৰতিবছৰে পালন কৰা দেউকুবেৰ উৎসৱ উল্লেখযোগ্য। জনগোষ্ঠীটোৰ লোকসকলে পৰম্পৰাগত সামাজিক ৰীতি-নীতিৰে এই উৎসৱৰ আয়োজন কৰে আৰু এইসমূহত জনগোষ্ঠীটোৰ স্বকীয় দিশসমূহ স্পষ্টকৈ ফুটি উঠে। জনগোষ্ঠীটোৰ মাজত পালন কৰা এই পৰম্পৰাগত লোক অনুষ্ঠানে জনগোষ্ঠীটোৰ ঐতিহ্য অধিক কটকটীয়া কৰি তোলাৰ লগতে সামাজিক বান্ধোন শক্তিশালী কৰি তুলিছে। ইফালে জনগোষ্ঠীটোৰ পৰম্পৰাগত সামাজিক আচাৰ, ৰীতি-নীতিসমূহে জনগোষ্ঠীটোৰ ভেটি অধিক বছৰ জীয়াই ৰখাৰ সম্ভাৱনাই দেখা দিয়ে। সেয়েহে আমাৰ এই অধ্যয়নত দেউকুবেৰ উৎসৱ আয়োজনৰ ভিন্ন দিশসমূহ পোহৰলৈ অনাৰ প্ৰয়াস কৰাৰ লগতে ই ভৱিষ্যত অধ্যয়নতো সহায় আগবঢ়াব বুলি আশা কৰিব পাৰি।

সূচক শব্দ ঃ

সমাজ, সংস্কৃতি, পৰম্পৰা, উৎসৱ, দেউকুবেৰ।

অৱতৰণিকা ঃ

অসম বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ আবাসভূমি। পুৰণি কালৰেপৰা এই ভূ-খণ্ডত বসতি কৰি থকা চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকল অন্যতম আৰু ঐতিহ্যপূৰ্ণ। এই জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে উজনি অসমত ৰাজ্য শাসন কৰাৰ ভিন্ন তথ্য আহৰণ হয়। বিশেষকৈ প্ৰাচীন ভাস্কৰ্য, পুৰাণ-উপপুৰাণ আৰু উজনি অসমত লাভ কৰা পুৰাতাত্ত্বিক সমল ইয়াৰ মূল নিদৰ্শনস্বৰূপ। আনকি মহাভাৰতৰ সময়ছোৱাতো চুতীয়াসকলে উজনি অসমত ৰাজ্য শাসনৰ তথ্য লাভ কৰিব পাৰি। বৰ্তমানৰ শদিয়াৰ ওচৰে-পাজৰে থকা ভীষ্মক নগৰ, ৰুক্মিণী নগৰ, কেঁচাইখাতী মন্দিৰ, বুঢ়া বাবাৰ মন্দিৰ, মালিনী থান আদিবোৰ চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ প্ৰাচীন ৰাজ্য আৰু ৰাজ্য অৱস্থিতিৰ ওচৰ চপা। সেয়েহে এই ঐতিহ্যপূৰ্ণ জনগোষ্ঠীৰ সম্পৰ্কত ভিন্ন গৰাকী গৱেষকৰপৰা তথ্য

আহৰণ হয়। চুতীয়া জনগোষ্ঠী সম্পৰ্কত সৰ্বপ্ৰথম উল্লেখিত নিদৰ্শন হিচাপে ফ্ৰেন্সিচ্ বুকানন হেমিল্টনে ১৮০৭ চনৰপৰা ১৮১৪ চনলৈ কৰা এক সমীক্ষাত গুৰুত্বপূৰ্ণ তথ্য সন্নিবিষ্ট কৰে। তেওঁ An Account of Assam নামৰ অসম সম্পৰ্কীয় বিৱৰণত উল্লেখ কৰা অনুসৰি — *In the parts of East from Koliyabar the tribe next most numerous is called chutiya and is devided into two classes, called Hindu and Ahom. The former have abandoned many of their impure customs, and have received degraded (varna) Brahmans as their spiritual/guides. The latter wallow in their impurity, and adhre to the Deodheings.*[১] চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ বসতিপ্ৰধান ঠাই আৰু তেওঁলোকৰ বসবাসৰ প্ৰণালী সম্পৰ্কতো পৰৱৰ্তীসকলে আলোচনা কৰে। *W.B. Brown অৰ An Outline Grammar of the Deori-Chutiya Language, Spoken in Upper Assam গ্ৰন্থতো চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ*[২] বিষয়ে উল্লেখ কৰিছে।

চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ বসতিপ্ৰধান ঠাই, বসবাস প্ৰাণালী, আচাৰ, ৰীতি-নীতি ইত্যাদিৰ ভিত্তিত বহুতে এই জনগোষ্ঠীক কিৰাত জনগোষ্ঠীৰ লোক বুলি মতপোষণ কৰে। অৱশ্যে পৰৱৰ্তী সময়ত ৰাজনৈতিক, সামাজিক, অৰ্থনৈতিক ইত্যাদি কাৰণত জনগোষ্ঠীৰ লোকসকল এঠাইৰপৰা আন ঠাইলৈ প্ৰবজিত হোৱাৰ লগতে হিন্দুকৃত হৈছিল। সৰ্বানন্দ ৰাজকুমাৰে চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ সম্পৰ্কত উল্লেখ কৰা অনুসৰি— *চুতীয়াবিলাক মংগোলীয়ান জাতিৰ পৰা উৎপত্তি হৈছে বুলি কৈছে আৰু চুতীয়াসকলক চাৰিভাগে বিভক্ত কৰিছে। হিন্দু চুতীয়া, আহম চুতীয়া, দেউৰী আৰু বৰাহী।*[৩] এই জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে এসময়ত শক্তিশালী অস্তিত্বৰে ৰাজ্য শাসন কৰিছিল। হিন্দুকৃত হোৱাৰ লগতে পৰৱৰ্তী সামাজিক, ৰাজনৈতিক কাৰণত বৰ্তমানৰ অসমৰ লগতে উত্তৰ-পূবৰ অন্যান্য ঠাইলৈ প্ৰবজিত হৈ বসবাস কৰিবলৈ লয়। এইক্ষেত্ৰত ডম্বৰুধৰ দেউৰীয়ে উল্লেখ কৰা অনুসৰি— *চুতীয়াবিলাক অসমৰ ৰাজবংশীয় কৃষ্টি সম্পন্ন মানুহ। অসমৰ সংস্কৃতিত চুতীয়াৰ অমূল্য অৱদান আছে। পুৰণি কালত চুতীয়া আছিল প্ৰাচুৰ্য, শৌয্য-বীৰ্য্যশালী স্বাধীন জাতি। তেওঁবিলাকৰ সভ্যতাও সম্পূৰ্ণৰূপে চুতীয়া।*[৪] এই জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে খ্ৰীষ্টীয় একাদশ শতিকাৰপৰা যোড়শ শতিকাৰ প্ৰথমাৰ্ধলৈকে নিজা ভাষা-ধৰ্মৰে পশ্চিমে সোৱণশিৰিৰ উপনদী চিচিৰপৰা পূবে ব্ৰহ্মকুণ্ডলৈকে ৰাজ্য প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল। চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ ৰাজ্য প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল বীৰপাল নামৰ ৰজাই। ইয়াৰ পাছত ক্ৰমে— ৰত্নধ্বজপাল, গৌৰীনাৰায়ণ, বিজয়ধ্বজপাল, বিক্ৰমধ্বজ পাল, গৰুড়ধ্বজ পাল, শংখধ্বজ পাল, ময়ুৰধ্বজ পাল, জয়ধ্বজ পাল, কৰ্মধ্বজ পাল আৰু ধৰ্মধ্বজ পালে ৰাজ্য শাসন কৰে। শদিয়া অঞ্চলত ৰাজ্য শাসন কৰোঁতে চুতীয়াসকলৰ ৰাজ্য যথেষ্ট শক্তিশালী আছিল। সেইসময়ত আহোমসকলে বহুবাৰ সংঘৰ্ষ কৰিব বিচাৰিও চুতীয়া ৰাজ্য আক্ৰমণ কৰিবলৈ সাহস গোটাব পৰা নাছিল। পৰৱৰ্তী সময়ছোৱাত আহোম আৰু চুতীয়াসকলৰ মাজত হোৱাত যুদ্ধত চুতীয়া সকল পৰাজিত হোৱাত তেওঁলোকৰ ৰাজ্যৰ অস্তিত্ব ম্লান হৈ পৰে। এই লোকসকলক আহোম ৰাজ্যৰ ভিন্ন পদত নিয়োজিত কৰাৰ লগতে শক্তিশালি হৈ মূৰ দাঙি উঠিব নোৱাৰাকৈ বিভিন্ন ঠাইলৈ পৰ্যবসিত কৰে। এই লোকসকলে ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ উত্তৰ পাৰৰ ভৰলী নদীৰ কাষৰীয়া বিস্তীৰ্ণ এলেকাৰ লগতে চতিয়া অঞ্চললৈকে বসতি কৰে। ইফালে চুতীয়া সাম্ৰাজ্যৰ শেষৰজন কোঁৱৰ সাধকনাৰায়ণক পশ্চিম দিশলৈ অৰ্থাৎ বৰ্তমানৰ দৰং অঞ্চলত বসতি কৰিবলৈ দিয়ে। এই ৰাজ পৰিয়ালৰে সদস্যসকলে ব্ৰিটিছ শাসন কালৰ সময়তো ৰাজহুৱা পদবীৰে বসবাস কৰে। তেওঁলোকৰ পৰিয়ালে দৰং জিলাৰ ৰৌতা অঞ্চলৰ কৰ সংগ্ৰহৰ দায়িত্বও লাভ কৰিছিল। বৰ্তমান অসমৰ ভিন্ন ঠাইত গাঁও পাতি বসতি কৰি থকা চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ মাজত পূৰ্বৰ জনগোষ্ঠীয় পৰম্পৰা, সামাজিক ৰীতি-নীতি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, উৎসৱ-অনুষ্ঠান, বাসস্থান, খাদ্য প্ৰণালী, ঐতিহাসিক চেতনা, নৃগোষ্ঠীয় পৰিচয়ৰ দিশসমূহ বৰ্তমানেও বৰ্তি আছে। সেয়েহে এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে জনগোষ্ঠীটোৰ মাজত পালন কৰা উৎসৱ-পাৰ্বণৰ ভিন্ন দিশসমূহ পোহৰলৈ অনাৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

বৰ্তমান অসমৰ বিভিন্ন ঠাইত চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে গাঁওপাতি বসবাস কৰি আছে। পূৰ্বে উল্লেখ কৰা অনুসৰি বিভিন্ন প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগ, মানৱ আক্ৰমণ, আহোম ৰজাৰ সৈতে হোৱা যুদ্ধ বা আন কাৰণত চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকল ভিন্ন অঞ্চললৈ পৰ্যবসিত হৈছিল। বৰ্তমান চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ সমাজ জীৱনৰ ৰীতি-নীতি সম্পূৰ্ণ হিন্দুকৃত হোৱাৰ লগতে অসমীয়াকৰণৰ সমন্বয়ৰে বান্ধ খাই পৰিছে। পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতিসমূহৰ লগতে অসমৰ বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ সমিল-মিলেৰে

সকলো একত্ৰিত হৈ পৰিছে। তেওঁলোকৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক দিশসমূহৰ মাজত সেয়েহে বৰ অসমৰ বৰ্ণিল সাংস্কৃতিক চেতনা লক্ষণীয় হয়। অসমৰ ঐতিহ্যপূৰ্ণ জনগোষ্ঠী হিচাপে বৃহত্তৰ অঞ্চলৰ ঐতিহাসিক, সামাজিক-সাংস্কৃতিক দিশসমূহৰ ধাৰক হিচাপেও গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰি আহিছে।

পূৰ্বকৃত অধ্যয়নৰ সমীক্ষা ঃ

চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ দেউকুবেৰ উৎসৱৰ বিষয়ে বিভিন্ন গ্ৰন্থ, আলোচনীত কিছু তথ্য পোৱা যায় যদিও প্ৰস্তাৱিত বিষয় সন্দৰ্ভত প্ৰণালীবদ্ধ অধ্যয়ন নহয়। সেয়েহে বিষয়টি চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ সমাজ জীৱনৰ ৰীতি-নীতিৰ আধাৰত আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। বিষয়ৰ লগত সংগতি থকা বহু কেইখন গ্ৰন্থত কিছু তথ্য আহৰণ হয়। পূৰ্বকৃত কৰ্মৰ এই গ্ৰন্থসমূহৰ ভিতৰত— ৰজনীকান্ত বৰদলৈৰ 'ছুটিয়া বুৰঞ্জী' (১৯২৪) চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ বিষয়ে ৰচনা কৰা প্ৰথমখন বুৰঞ্জীমূলক গ্ৰন্থ। গ্ৰন্থখনত বৰদলৈয়ে চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ এটা ঐতিহাসিক পৰিচয় প্ৰদান কৰাৰ সমান্তৰালকৈ এই জনগোষ্ঠীৰ সমাজ জীৱন, পৰম্পৰা, ৰীতি-নীতি আদি দিশবোৰ আলোচনাৰ মাজলৈ আনিছে। প্ৰৱন চন্দ্ৰ শইকীয়াৰ 'দেউৰী-চুতীয়া' (১৯৭৪) অসম সাহিত্য সভাৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত গ্ৰন্থখনত চুতীয়াসকলৰ আদিম বাসস্থান, সমাজ-সংস্কৃতি, ৰীতি-নীতি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ আদি দিশবোৰ আলোচনা কৰিছে। ভৱানন্দ বুঢ়াগোহাঞিৰ 'শদিয়াৰ বুৰঞ্জী' (১৯৭৪) অসম প্ৰকাশন পৰিষদৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত গ্ৰন্থখনত বুঢ়াগোহাঞিয়ে চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ পুৰণি ৰাজ্যৰ বৰ্ণনাৰ লগতে শদিয়াৰ চাৰিশাল গোসাঁনীৰ বৰ্ণনা, সামাজিক ৰীতি-নীতি সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিছে। Raj Mohan Nath-অৰ'The Background of Assamese Culture' (১৯৪৮) গ্ৰন্থত অসমৰ ইতিহাস, ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ আলোচনা হৈছে। সমান্তৰালভাৱে গ্ৰন্থখনত অসমৰ ভাষা সম্প্ৰদায়সমূহৰ লগতে অসমীয়া সংস্কৃতিলৈ আগবঢ়োৱা অৱদানসমূহৰ বিষয়েও আলোচনা কৰিছে। বিৰিঞ্চি কুমাৰ বৰুৱাৰ 'A Cultural History of Assam' (১৯৫১) গ্ৰন্থত অসমৰ ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ ভিন্ন দিশ আলোচনা কৰিছে।

ডম্বৰুধৰ নাথৰ সম্পাদিত 'চুতীয়া জাতিৰ বুৰঞ্জী' (২০০৭) গ্ৰন্থখনত চুতীয়া ৰাজ্যৰ গঠন আৰু বিকাশৰ লগতে এক ঐতিহাসিক পটভূমিৰ পৰা বৰ্তমানলৈকে জনগোষ্ঠীটোৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক দিশ, কালৰ সোঁতত জনগোষ্ঠীটোৰ পৰিৱৰ্তন আৰু আলি দোমোজাৰ সকলো দিশ আলোচনা কৰিছে। কোযেশ্বৰ বৰুৱাৰ সংকলিত আৰু সম্পাদিত 'ঐতিহাসিক বিৱৰ্ত্তনত অসমৰ চুতীয়া জনগোষ্ঠী' (২০১১) গ্ৰন্থখনো উল্লেখযোগ্য। বৰুৱাৰ 'লুইতৰ আগৰিৰ অসমীয়া সভ্যতা' (২০০০) গ্ৰন্থখনত প্ৰাচীন অসমৰ বসবাস কৰা জাতি-জনগোষ্ঠীৰ বৰ্ণনাৰ সমান্তৰালকৈ লুইতৰ পাৰৰ নৃগোষ্ঠীয় লোকসকলৰ ভিন্ন দিশ আলোচনা কৰিছে। সূৰ্যকান্ত খনিকৰ দ্বাৰা ৰচিত 'চুতীয়া জাতিৰ ইতিহাস আৰু লোক-সংস্কৃতি' (প্ৰথম আৰু দ্বিতীয় খণ্ড) (১৯৯১) উল্লেখযোগ্য গ্ৰন্থ। গ্ৰন্থখনত খনিকৰে জনগোষ্ঠীটোৰ ইতিহাস, ঐতিহ্যৰ পৰিচয়, সমাজ-সংস্কৃতি, আচাৰ, ৰীতি-নীতি, উৎসৱ-পাৰ্ৱণৰ দিশ আলোচনা কৰিছে। পূৰেন্দ্ৰ প্ৰসাদ শইকীয়াৰ 'চুতীয়াৰ ইতিহাস আৰু সংস্কৃতি' (২০১১) শীৰ্ষক গ্ৰন্থত চুতীয়াসকলৰ ধৰ্মীয় বিশ্বাস, পৰম্পৰা, উৎসৱ-পাৰ্ৱণৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে। লোকেশ্বৰ গগৈৰ ৰচিত 'অসমৰ লোক-সংস্কৃতি' (২০১১) গ্ৰন্থখনত অসমৰ বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ বাসবাস প্ৰণালী, পৰম্পৰাগত খাদ্য প্ৰণালী, সামাজিক ৰীতি-নীতি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ ইত্যাদি দিশ আলোচনা কৰিছে। Ajit Kumar Boarh-ৰ 'The Chutiyas' (২০২০) গ্ৰন্থত চুতীয়াসকলৰ বংশ পৰিচয়, মধ্যযুগত চুতীয়াসকলৰ ৰাজ শাসন, চুতীয়াসকলৰ স্থাপত্য-ভাস্কৰ্য, পুৰাতাত্ত্বিক সমল, ধৰ্মীয় ৰীতি-নীতি আদি দিশ আলোচিত হৈছে। ললিত চুতীয়াৰ 'চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ চমু পৰিচয়' (২০১৬) গ্ৰন্থত চুতীয়াসকলৰ সমাজ-সংস্কৃতি, বসবাস প্ৰণালীৰ লগতে ভিন্ন দিশসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে।

উল্লিখিত গ্ৰন্থৰ উপৰি অসম বুৰঞ্জী আধাৰত ৰচিত বহুকেইখন গ্ৰন্থত নিৰ্বাচিত বিষয় সম্পৰ্কে আলোচনা হৈছে। সূৰ্যকুমাৰ ভূঞাৰ সম্পাদিত 'দেওধাই অসম বুৰঞ্জী' (১৯৯০)ত চুতীয়াসকলৰ জন্ম কথা, চুতীয়া ৰাজ্যৰ শাসনকৰ্তাসকল, চুতীয়া ৰাজ্যৰ বিবিধ খেল পৰম্পৰা দিশৰ তথ্য পোৱা যায়। হিতেশ্বৰ বৰবৰুৱাৰ প্ৰণীত 'আহোমৰ দিন' (২০০৮) গ্ৰন্থত চুতীয়াসকলৰ বিভিন্ন ফৈদ, আহোম-চুতীয়াৰ সম্পৰ্ক দিশ আলোচনা হৈছে। সৰ্বানন্দ ৰাজকুমাৰ প্ৰণীত 'ইতিহাসে সোঁৱৰা ছশটা বছৰ'(২০১৭), প্ৰমোদ চন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যৰ সম্পাদিত 'অসমৰ জনজাতি' (১৯৯৯), নগেন শইকীয়াৰ ৰচিত 'অসমীয়া মানুহৰ ইতিহাস' (২০১৩) গ্ৰন্থত চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ আচাৰ, ৰীতি-নীতি পৰম্পৰাগত দিশসমূহৰ বিষয়ে চমুকৈ আলোচনা কৰিছে।

অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকল উত্তৰ-পূবৰ বৃহৎ ভূ-খণ্ডৰ প্ৰাচীন জনগোষ্ঠী। সেয়েহে উত্তৰ-পূবৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক জনজীৱনৰ লগত চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ ওতপ্ৰোত সম্পৰ্ক বিৰাজমান। এই জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে পালন কৰা দেউকুবেৰ উৎসৱ আয়োজনৰ ভিন্ন দিশ অধ্যয়নৰ যোগেদি জনগোষ্ঠীটোৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক দিশ পোহৰলৈ অহাৰ সমান্তৰালকৈ অসমীয়া জন জীৱনৰো ভিন্ন দিশ এই অধ্যয়নত পোহৰলৈ আহিব।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকল অসম তথা উত্তৰ-পূবৰ বিভিন্ন ঠাইলৈ প্ৰব্ৰজিত হৈ পৰাৰ লগতে তেওঁলোক হিন্দু ধৰ্মও গ্ৰহণ কৰিছিল। এনে দিশৰ ফলত জনগোষ্ঠীটোৰ লোকসকলে স্বকীয় ভাষা-সংস্কৃতিৰে সৈতে সেই স্থানসমূহত পৰিশীলিত ৰূপত সোমাই পৰিছিল। তথাপি চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ বসতিপ্ৰধান লোকসকল বা তেওঁলোক বসতি কৰা গাঁওসমূহত সমাজ-সংস্কৃতিৰ ভিন্ন দিশ, আচাৰ-ৰীতি-নীতি, পৰম্পৰা জড়িত হৈ আছে। সেয়েহে 'চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ দেউকুবেৰ উৎসৱ ঃ এক অধ্যয়ন' শীৰ্ষক অধ্যয়নত সামাজিক ৰীতি-নীতি, আচাৰ ভিন্ন দিশসমূহ পোহৰলৈ অনাৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব। অধ্যয়নৰ কেইটামান প্ৰমেয়—

(ক) চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ মাজত প্ৰচলিত উৎসৱ-পাৰ্বণ আৰু পৰম্পৰা আদি দিশসমূহ পোহৰলৈ আহিব।

(খ) চুতীয়া জনগোষ্ঠী লোকসকলে পালন কৰা দেউকুবেৰ উৎসৱৰ লগত জড়িত সামাজিক ৰীতি-নীতি-আচাৰ বিশ্বাস-পৰম্পৰা, পূৰ্বপুৰুষসকলক কৰা স্মৰণৰ লগত জড়িত সামাজিক বিশ্বাস ইত্যাদি দিশসমূহ এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে ফুটি উঠিব।

অধ্যয়নৰ ব্যৱধান ঃ

চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে পালন কৰা দেউকুবেৰ উৎসৱৰ লগত জড়িত ৰীতি-নীতি, আচাৰ ইত্যাদি দিশ সম্পৰ্কত এতিয়ালৈকে প্ৰণালীবদ্ধ আৰু পদ্ধতিগত অধ্যয়নৰ অভাৱ দেখা গৈছে, সেয়েহে এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে জনগোষ্ঠীটোৰ লগত জড়িত ৰীতি-নীতি, বিশ্বাস, পৰম্পৰা, ভিন্ন প্ৰণালী ইত্যাদি দিশসমূহ এই অধ্যয়নৰ যোগেদি পোহৰলৈ অনাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

মূল বিষয়ৰ আলোচনা ঃ

মধ্যযুগৰ বা তাৰ পূৰ্বৰ সময়ছোৱাত চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে উজনি অসমৰ নদী কাষৰীয়া ওখ ঠাইসমূহত বসবাস কৰিছিল। বসতিপ্ৰধান ঠাইত পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি আৰু সামাজিক-সাংস্কৃতিক দিশসমূহেৰে চহকী আছিল। তেওঁবিলাকে কুবেৰক উপাস্য দেৱতা হিচাপে গণ্য কৰিছিল। কুবেৰ দেৱতাই চুতীয়াসকলৰ প্ৰথম ৰাজ্য প্ৰতিষ্ঠাতা বীৰবৰক এখন ঢাল, এখন তৰোৱাল আৰু এটা সোণৰ মেকুৰী উপহাৰ হিচাপে দিয়া কথা জন সমাজত প্ৰচলিত। সেয়েহে চুতীয়াসকলে মেকুৰীক আদৰ প্ৰীতি কৰাৰ লগতে প্ৰতিবছৰে প্ৰতীকি ৰূপত হ'লেও কুবেৰ প্ৰদত্ত সম্পত্তিৰ লগতে ঢাল, তৰোৱাল আদিক পূজা-অৰ্চনা কৰি আহিছে।

পূৰ্বতে নদীকেন্দ্ৰিক অঞ্চলত বসবাস কৰিছিল যদিও বৰ্তমান সময়ত সমতলৰ ওখ ঠাইতহে চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ বসতি দেখা যায়। চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ মূলতঃ কৃষিজীৱি। এই জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ মাজত আহু, বাও আৰু শালিধানৰ খেতি বহুলভাৱে প্ৰচলিত। মাঘ-ফাগুন মাহত আহু ধানৰ খেতি কৰাৰ সময়ত দ ঠাইসমূহত বাও ধানো একেলগে কৰে। বাও ধানৰ ভিতৰত তুলসী, ঈশগুনি, মেডেল; শালিধানৰ ভিতৰত বিৰিয়াভঙা, বৰ জাহিঙা, সৰু জাহিঙা, পানী মাগুৰী, বৰ ধান, অমনা, প্ৰসাদভোগ, আমপাখি আদি। কৃষিকৰ্মত তেওঁলোক পাৰ্গত। খাদ্য হিচাপে প্ৰয়োজন হোৱা প্ৰায়বোৰ সামগ্ৰী নিজেই প্ৰস্তুত কৰি লয়। আলু, কচু, মাহ-সৰিয়হ, লাউ, জিকা, ভোল, কবি, ভেণ্ডি, কেৰেলা, বেঙেনা ইত্যাদিবোৰৰ খেতি কৰে। ইয়াৰ উপৰিও শাক হিচাপে লাই, লফা, ধনীয়া পালেঙৰ খেতি খৰালি সময়ত কৰে। চুতীয়া লোকসকল কৃষিজীৱি হোৱা বাবে গৰু, ম'হ, ছাগলী, হাঁহ, পাৰ ইত্যাদিবোৰো পালন কৰে। চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে আমিষ-নিৰামিষ দুই ধৰণৰ খাদ্যই গ্ৰহণ কৰে। চুতীয়াসকলৰ প্ৰধান খাদ্য ভাত। বৰা চাউল, চকোৱা চাউল আদিৰ পৰা পিঠা, মুৰি, আখৈ, সান্দহ, কৰাইগুৰি, কোমল চাউল, ভজা চাউল আদিবোৰ তৈয়াৰ কৰে। মাছ চুতীয়াসকলৰ প্ৰিয়। ইয়াৰ ভিতৰত গৰৈ, কাৱৈ, মাগুৰ, শ'ল, শাল, চেঙা, পুঠি, চেঙেলী মাছ অন্যতম। চুতীয়া সমাজত ঢেঁকিয়া, পুঠি মাছ, ঔটেঙাৰ তৰকাৰী আৰু কাঠ আলু মাটিমাহ, কোমোৰা হাঁহ, কলা কচু বিহ জলকীয়াৰ জ্বলা ভাজি বৰ সমাদৃত। শাক-পাচলিও চুতীয়াসকলৰ প্ৰিয় খাদ্য। নিজৰ ঘৰতে কৰা শাক-পাচলিৰ উপৰিও বনৰীয়া নলটেঙা,

ভেদাইলতা, কলমৌ, ঢেঁকীয়া, মানিমুনি, কচু, ভেকুৰী গুটি, লেহেতী আদিবোৰ খাদ্য হিচাপে গ্ৰহণ কৰে। বিহু আৰু অন্যান্য উৎসৱ-অনষ্ঠানত বৰা চাউল আৰু আন আন সামগ্ৰীৰে ‘সাজ পানীয়’ তৈয়াৰ কৰে। সাজপানীয় চুতীয়াসকলে কলহত ৰাখি তৈয়াৰ কৰা

চুতীয়াসকলে একোখন সমাজ তৈয়াৰ কৰি গাঁও পাতি বাস কৰে। এই সমাজ বৰ আপোন আৰু সমিল-মিলৰ। তেওঁলোকৰ মাজত একক আৰু যৌথ দুইধৰণৰ পৰিয়ালৰ ব্যৱস্থা দেখা যায়। সামাজিক বান্ধোনত বান্ধ খাই থকা চুতীয়াসকলৰ এঘৰত বিপদ হ’লে সকলোৱে সমিল-মিলেৰে সহায় আগবঢ়ায়। ইঘৰ-সিঘৰ মাজত আহ-যাহ আৰু উৎসৱ-পাৰ্বণত জ্যেষ্ঠজনক কৰা সন্মান ইয়াৰ মূল দিশ। উৎসৱসমূহত সকলো একেলগ হোৱাৰ লগতে জ্যেষ্ঠজনৰ প্ৰতি শ্ৰদ্ধা ভক্তি লক্ষণীয়। তেওঁলোকে পৰম্পৰাগতভাৱে বহুতো ৰীতি-নীতি পুৰণি কালৰপৰা পালন কৰি আহিছে। বিশেষকৈ চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে পূৰ্বপুৰুষ সকলৰ স্মৃতিত বিভিন্ন অনুষ্ঠানৰ আয়োজন কৰি পূৰ্বপুৰুষ সকলৰ স্মৃতি সজীৱ কৰাৰ লগতে পূৰ্বপুৰুষৰ পৰা আশীৰ্বাদ কমনা কৰে। তিনিটা বিহুৰ লগতে ডাঙৰীয়া সকাম, শলিতা লগোৱা, বৰ সবাহ, বৰ সকাম ইত্যাদিবোৰত তেওঁলোকৰ সামাজিক আচাৰ, ৰীতি-নীতি প্ৰতিফলিত হয়।

সামাজিক ৰীতি-নীতিত চুতীয়াসকল যথেষ্ট চহকী। কৃষিৰ লগত জড়িত চুতীয়াসকলৰ মাজত ভিন্ন ৰীতি-নীতি, আচাৰ জড়িত। এই অনুষ্ঠানসমূহৰ ভিতৰত — পানীতোলা সবাহ, বৰসবাহ, ভাতপিঠা দিয়া, ন-খোৱা, গৰখীয়া ভোগ, সদাশিৱ পূজা, ভেকুলী বিয়া আদিবোৰ অন্যতম। এইবোৰৰ উপৰিও বিহু পৰম্পৰা চুতীয়াসকলৰ আড়ম্বৰপূৰ্ণ অনুষ্ঠান। বহাগ বিহু, কাতি বিহু আৰু মাঘৰ বিহুৰ সমান্তৰালকৈ আন উৎসৱসমূহো প্ৰাচীন ৰীতি-নীতিৰে পালন কৰে। চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ প্ৰাণৰ সাংস্কৃতিক উৎসৱ বিহু। তেওঁলোকে তিনিটা বিহু বহাগ বিহু, মাঘ বিহু আৰু কাতি বিহু পালন কৰে। চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে মাঘ বিহু অন্য দুটা বিহুৰ দৰেই অতি উলহ-মালহেৰে আৰু বিভিন্ন নীতি-নিয়মেৰে উদ্‌যাপন কৰে। পুহ মাহৰ শেষত অৰ্থাৎ পুহ আৰু মাঘ মাহৰ সংক্ৰান্তিৰ সময়ত মাঘ বিহু আয়োজন কৰে। পূৰ্বতে চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে মাঘ বিহু মাঘৰ প্ৰথম বুধবাৰৰ পৰাহে আৰম্ভ কৰিছিল। বৰ্তমান পুহ আৰু মাঘৰ দোমাহী অৰ্থাৎ সংক্ৰান্তিৰ দিনা পালন কৰে।

অসমৰ প্ৰায় সকলোবোৰ জাতি-জনগোষ্ঠী কৃষিৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল। অসমৰ লোকসকলে পালন কৰা বিহু উৎসৱসমূহো কৃষি কৰ্মৰ লগতে জড়িত। কৃষিজীৱী লোকসকলে আঘোণ-পুহ মাহতে ধান-মাহ-সৰিহয়ৰ খেতি চপাই শেষ কৰে। হাড়ভঙা পৰিশ্ৰমেৰে পথাৰত কৰা কৃষি কৰ্মৰ সোণগুটি ভঁৰালত সামৰি কৃষকে তৃপ্তিৰ হাঁহি মাৰে। ইফালে অসম নদীমাতৃক দেশ হোৱা হেতু খৰালি কালত মাছ-পুঠি উভৈনদী হৈ পৰে। এই সময়ছোৱাত শস্য-শ্যামলা অসম সকলো ফালৰপৰা নদন-বদন হৈ পৰে। খাদ্যৰ উভৈনদী আৰু অপৰূপা সৌন্দৰ্যৰ প্ৰাচুৰ্যতাৰ বাবেই এই বিহুক ভোগালী বিহু বুলি কয়।

অসম বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ বাসভূমি। চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকল ইয়াৰে এটা বুৰঞ্জীপ্ৰসিদ্ধ জনগোষ্ঠী। এই জনগোষ্ঠীৰ এক গৌৰৱোজ্বল ইতিহাস আছে। অৱশ্যে কোনো ধৰণৰ লিখিত বুৰঞ্জী নথকাৰ ফলত লোকসংস্কৃতি, লোক কাহিনী, পুৰাকথা, কিংবদন্তি আদিৰ মাজতে জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে ঐতিহ্যক সোঁৱৰি আছে। এই জনগোষ্ঠীৰ লগত সোণৰ মেকুৰী, সোণৰ হাতীৰ ঐতিহাসিক নিদৰ্শন লুকাই আছে। সোণৰ মেকুৰী কুবেৰ প্ৰদত্ত সম্পত্তি হিচাপে প্ৰচলিত হৈ আহিছে। সেয়েহে এই জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে কুবেৰ প্ৰদত্ত সম্পত্তিক ৰক্ষাকৰ্তা, কষ্ট সহিষ্ণুতা, দৃঢ়তা, আত্মসন্মান জগাই তোলা আদিৰে বন্ধু সদৃশ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। চুতীয়াসকলে পূৰ্বতে দেৱী মহামায়াক তুষ্ট কৰিবলৈ ভিন্ন পূজা-অৰ্চনা কৰিছিল। শদিয়াৰ তাম্ৰেশ্বৰী মন্দিৰত দেৱীক শক্তি পূজাৰ সেৱাৰে উপাসনা কৰিছিল। *দেৱী মহামায়াৰ অন্য এক স্থানীয় ৰূপ হ’ল মহাকলিকা বা কিৰাতনী। এই কিৰাতনী প্ৰদত্ত সোণৰ মেকুৰী আছিল চুতীয়া ৰাজ্যৰ সমৃদ্ধিৰ প্ৰতীক।*[৪]

দেওধাই অসম বৰৰঞ্জীতো এই কথাৰ এক দিশ উল্লেখ আছে। পূৰ্বে চুতীয়া ল’ৰাই ম’হ ৰাখোতে এক দিনা দেৱীয়ে কিৰাতনীৰূপে বনৰ মাজত দেখা দিলে। গৰখীয়াক বোলে, ‘মোক তোৰ শুকুলা ম’হটি দে। তোক মই এক শক্তি দিম। তাৰ প্ৰভাৱে ৰজা হ’বি।’ সি বোলে ‘মই দিব নোৱাৰোঁ।’ দেৱীয়ে বোলে, ‘সাক্ষাতে নোৱাৰ, মনেৰে দে’। পাছে মনেৰে দিলে। হাস্য কৰি দেৱীয়ে বোলে ‘মই মহাকালিকা, কালি প্ৰভাতে তোৰ ঘৰলৈ যি পোহাৰী আহে, যি মাছ দিয়ে, সেই মাছ চৰুত দি ঢাকন দি থবি। পৰশুলৈ চাবি। সেই শক্তিয়েৰে ৰাজখাবি। অন্যক নিদিবি। গুপ্তে বলি-বিধান দি, পূজা কৰি থাকিবি। যি কালত লোকক দিবি সেইবেলা মই তোক এৰিম।’ এই বুলি দেৱী অন্তৰ্ধান হ’ল। পিছে বিস্ময়

মানি ঘৰলৈ আসি আনাক দিনা প্ৰভাতে পোহাৰীৰ মাছ পাই ঢাকন দি থ'লে। *পিছ দিনা চৰুৰ ঢাকন গুচাই চালে - সোণৰ বিড়ালী দুটি পালে, দণ্ড খাটো পালে। ছোট হিন্দুৱানৰ খুন্তৱান ৰজা হ'ল। শদিয়াত সিটো ৰজা অবাক ৰূপে থাকে।*"[৫]

চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে সেয়েহে পৰম্পৰাগতভাৱে প্ৰতিবছৰে কুবেৰ প্ৰদত্ত সম্পত্তিক পূজা কৰে। এই পৰম্পৰাগত উৎসৱক দেউকুবেৰ উৎসৱ বুলি গণ্য কৰে। প্ৰতিবছৰে ফাগুণ মাহৰ কৃষ্ণ চতুৰ্দশী তিথিত এই উৎসৱ অনুষ্ঠিত কৰে। চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে বিশ্বাস কৰা অনুসৰি সোণৰ মেকুৰী, ধন-সোণ, মণি-মুকুতা আদি কুবেৰৰ সম্পত্তি হিচাপে লাভ কৰিছিল। সেয়েহে চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ ৰজা-প্ৰজা সকলোৱে কুবেৰৰ সম্পত্তি সোণৰ মেকুৰীক দৈনিক ভক্তি মাৰ্গৰে সেৱা আৰু পূজা অৰ্চনা কৰিছিল। তেওঁলোকে এই সম্পত্তিক সেৱা আৰু পূজা অৰ্চনা কৰিলে মনোবাঞ্ছা পূৰ্ণ হোৱাৰ লগতে একো বিপদ-বিঘিনি নহয় বুলি বিশ্বাস কৰিছিল। সেয়েহে চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ প্ৰাচীন ৰজাসকলে সোণৰ মেকুৰী ৰাজহুৱা স্থানত ৰাইজৰ দৰ্শনৰ ব্যৱস্থা কৰিছিল আৰু প্ৰজাই দৰ্শন কৰি আনন্দ পাইছিল। সমান্তৰালকৈ ৰজা-প্ৰজা উভয়ে সুখ, সমৃদ্ধি আৰু শান্তি কামনা কৰিছিল। এই সম্পদ দৰ্শন কৰি কৃষি কাৰ্যত মঙ্গল হ'ব বুলিও বিশ্বাস কৰিছিল। প্ৰজাসকলেও এই উৎসৱ আয়োজন কৰি পিতৃ-মাতৃ, পৰিয়াল আৰু ৰাজ্যৰ মঙ্গল কামনা কৰিছিল। সেয়েহে এই উৎসৱ চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে পৰম্পৰাগতভাৱে প্ৰতি বছৰে পালন কৰি আহিছে।

চুতীয়া সাম্ৰাজ্যৰ ৰজা নীতিপালৰ সময়ত চুতীয়া আৰু আহোমসকলৰ যুদ্ধ হয়। এই যুদ্ধত ৰজা নীতিপালৰ মৃত্যু হোৱাত ৰাণী সাধনীয়ে সাম্ৰাজ্যৰ দায়িত্ব কান্ধ পাতি লৈছিল। যুদ্ধত ৰাণী সাধনীও আহোম সৈন্যৰ হাতত পৰাজিত হৈছিল। কথিত অনুসৰি সাধনীয়ে পৰাজয়ৰ পিছত আত্মসমৰ্পণ কৰা নাছিল। তেওঁ কুবেৰৰ সম্পত্তি সোণৰ মেকুৰী বুকুত বান্ধি চন্দনগিৰি পৰ্বতৰপৰা জপিয়াই সম্পদৰ পৱিত্ৰতা ৰক্ষা কৰিছিল বুলি জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে বিশ্বাস কৰে। আৰু তেতিয়াৰ পৰাই সোণৰ মেকুৰী চুতীয়া জাতিৰ মাজৰ পৰা নোহোৱা হ'ল বুলিও গণ্য কৰে। সেয়েহে প্ৰাচীন সম্পদক সোঁৱৰি চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে দেউকুবেৰ উৎসৱ বছৰি পালন কৰি আহিছে।

চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে দেউকুবেৰ উৎসৱ পকা পন্থাৰে আয়োজন কৰে। দেউকুবেৰ উৎসৱত মূল দেউৰী, দেউৰী (কোনো কোনো ঠাইত 'দোকানী' হিচাপে প্ৰচলিত), ঠাল সিজোৱা এই তিনিজনে মুখ্য ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। মূল দেউৰীৰ আজ্ঞা লৈ দেউৰী বা দোকানীয়ে উৎসৱ গৃহত চেলেং কাপোৰেৰে (তিনিটা খুটি পুতি আৰু কাপোৰ সদৃশ কৰি) এভাগ আসন বা বেদী প্ৰস্তুত কৰে। এই বেদী মাটিৰে সামান্য ওখ কৰি পিঠা গুৰিৰে সজাই তাত গামোচা এখন পাৰি লয়। বেদীৰ আগত খুটি পুতি বান্ধি লোৱা চেলেং কাপোৰখনে বেদীতো আন ঠাইৰপৰা পৃথক কৰাৰ লগতে পৰিষ্কাৰ কৰিও ৰাখে। বেদীৰ কাষতে ঐতিহ্যপূৰ্ণ কুবেৰৰ সম্পদক স্তুতি কৰি ঢাল, তৰোৱাল বা সোণৰ মেকুৰীৰ প্ৰতিকৃতি স্থাপন কৰি আশীৰ্বাদ কামনা কৰে। সাধু ভকতৰ আজ্ঞা গ্ৰহণ কৰি জ্ঞাতি ভকতে ইয়াৰ কাষতে সৰুকৈ আন এখন বেদী প্ৰস্তুত কৰি লয়। কোনো ঠাইত এখন শৰাইত আগলি কলাপাতত তামোল (গুৱা-পান)ৰ লগতে আন নৈবেদ্য আগবঢ়ায়। বহু ঠাইত বেদীত গামোচা এখন পাৰি লৈ তাৰ ওপৰত আগলি কলাপাতত চাৰিখন খনীওৱা তামোল (গুৱা-পান) আৰু মাজত মাননি (কাগজী বা গোটা মুদ্ৰা) আগবঢ়ায় দিয়ে। বেদীৰ ঠিক কাষতে আগলি কলপাতত মূল নৈবদ্য আখৈ, বৰা চাউলৰপৰা প্ৰস্তুত কৰা পিঠা, গোট্ কৰাই (মাটি মাহ, চাউল, তিল), সান্দহ গুৰি আদিৰ লগতে পকা সকামৰ বাবে প্ৰস্তুত কৰা সাজপানীয় কাঁহৰ বাটিত সজাই আসনৰ (বেদী) কাষত আগবঢ়ায়। কাষতে ধূপ-বন্তি প্ৰজ্বলন কৰে।

সাধু আৰু অন্যান্য জ্ঞাতি বা সঙ্গী ভকতসকল উৎসৱ গৃহত আসন লয়। তেখেতসকলে সেৱকীক শাৰি শাৰিকৈ কাষতে বহুৱাই সকলোৰে মংগল কামনাৰে স্তুতি পাঠ কৰে। উৎসৱ গৃহত সাধু ভকতে মূল ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। স্তুতি প্ৰাৰ্থনা সময়ত কোনো জ্ঞাতিৰ কিবা ক'ব লগা বা উঠি যাব লগা হ'লে সাধুৰ আজ্ঞা গ্ৰহণ কৰিহে আগবাঢ়িব পাৰে। এই নীতিৰ বিপৰীতে গ'লে বা কোনো লোক অন্যমনষ্ক হ'লে পূৰ্বপুৰুষসকলে মনত আঘাত পাই বা মনোবাঞ্ছা বিফল হয় বুলি বিশ্বাস কৰে। সাধুৰ আজ্ঞা গ্ৰহণ কৰি জ্ঞাতি বা সাধু ভকতে বন্দনা স্তুতি পাঠ কৰে। জ্ঞাতি বা সাধু ভকতজনক বন্দনা স্তুতি পাঠৰ বাবে পূৰ্বেই নিৰ্দিষ্ট কৰি থোৱা হয়। কোনো ঠাইত গাঁৱৰ বয়োবৃদ্ধ পুৰুষ বা মহিলাক এই কৰ্মৰ বাবেই দায়িত্ব দিয়ে। তেওঁলোকে অনুষ্ঠানৰ দিনা উপবাসে থাকি উপস্থিত ৰাইজক আৰু বেদীত সেৱা জনাই স্তুতি পাঠ কৰে।

শ্ৰী কৃষ্ণায়, গোপালায়, ৰুক্মিণী বল্লভায় চ বনমালীনে
ব্ৰজাঙ্গনানাং হৃদয় হাৰীনে, বিশ্বৰূপায়, চ নমঃ।
নমস্তাজং জগৎ কাৰণায়, বংশীবদনায় চ
গোবিন্দায় নমো নমঃ।
সৰ্ব্বজয় মঙ্গলায়, শুকায় চ কৃষি কৰ্ম্মণঃ

প্ৰজ্বলামি পঞ্চ প্ৰদীপমদিং দেউকুবেৰৎসবস্য
ক্ষমস্বনঃ সৰ্ব্বাপৰূধং জগদীশ্বৰ কৰুণাময়,
ত্বং দেবো হৃদিস্থিতো পৰমেশ্বৰঃ।[৬]

আকৌ, বন্তিত তেল (চাকিৰ তেল কমিলে) আগবঢ়াই স্তুতি পাঠ কৰে —

এই স্তুতি পাঠ শেষ হোৱা লগে লগে পুনৰ ধূপ-বন্তি জ্বলায়। এই ধূপ-বন্তি প্ৰজ্বলনৰ বাবে পূৰ্বেই সাজু কৰি থয়। মূল বেদীৰপৰা ক্ৰমে পাঁচ ভাগ বন্তি প্ৰজ্বলন কৰে। বন্তি কেইভাগৰ ভিতৰত প্ৰথমভাগ ভগৱান শ্ৰীকৃষ্ণৰ নামত অৰ্পণ কৰে, তাৰ অলপ কাষত তললৈ দ্বিতীয়ভাগ দেউকুবেৰৰ নামত অৰ্পণ কৰে, তৃতীয়ভাগ কুণ্ডিলৰাজ ভীষ্মকৰ নামত অৰ্পণ কৰে, চতুৰ্থভাগ পূৰ্বপুৰুষক স্মৰণ কৰি অৰ্পণ কৰে আৰু পঞ্চমভাগ ৰজা প্ৰজা বা ৰাইজৰ নামত অৰ্পণ কৰে। বন্তি প্ৰজ্বলনৰ পিছত সাধু, জ্ঞাতি ভকত সকলোৱে একেস্বৰে উন্মোচন কৰা স্তুতি পাঠ কৰে—

নমো নমো ইষ্টদেৱ কুবেৰ ধনপতি
তোমাৰ চৰণে কৰো সেৱা শতকোটি।
তোমাৰ আদেশে দেৱ খান্দি যজ্ঞস্থলী
পালো ঢাল তৰোৱাল সোণাৰু বিড়ালী।
ৰাজ্যৰ সম্পদ শ্ৰেষ্ঠ সবাতো অধিক
সৌভাগ্য সমৃদ্ধি আৰু জয়ৰ প্ৰতীক।
এই দৈব দৰশনে হয় সৰ্ব্ব সিদ্ধি
প্ৰজাৰ মঙ্গল হয়, হয় শস্য বৃদ্ধি।
সবাৰ কামনা সেয়ে দৈবী দৰশন
উন্মুক্ত কৰিলো আজি তাৰ আৱৰণ।
মনত আনন্দ লভি চোৱা সৰ্ব্বজনে,
হৰিধ্বনি কৰা সবে একচিত্ত মনে।[৭]

ইয়াৰ পিছত সাধুৰ আজ্ঞা গ্ৰহণ কৰি কুবেৰ প্ৰদত্ত সম্পদৰ প্ৰশস্তি পাঠ কৰে। প্ৰজাৰ মংগল কামনা কৰাৰ লগতে পূৰ্বপুৰুষসকলৰ নাম উচ্চাৰণ কৰি তেওঁলোকৰপৰা আশীৰ্বাদ কামনা কৰি বেদীৰফালে চাই সেৱা কৰে।

দেউকুবেৰ উৎসৱৰ ৰন্ধন প্ৰকৰণৰ দিশ মনকৰিবলগীয়া। সাধু ভকতৰ আজ্ঞা গ্ৰহণ কৰি (অনুসৰি) বলি লোৱাজনে সাধু ভকতসহিতে আন জ্ঞাতি ভকতসকলক সন্মুখত ৰাখি হাঁহ বা পাৰ বধ কৰি ৰন্ধন প্ৰকৰণৰ বাবে আগবাঢ়ে। বলি লোৱাজনে হাঁহ-পাৰ মৰাৰ সময়ত একে হেঁচাতে মাৰিব লাগে। একে হেঁচাতে মাৰিব নোৱাৰিলে মনোকামনা সফল নহয় বুলি বিশ্বাস কৰে। ইয়াৰ পিছত পূৰ্বে নিৰ্দিষ্ট কৰি থোৱা ঠাইত হাঁহ বা পাৰ পাখি গুচাই নিৰ্দিষ্ট জোখত কাটি-বাচি ৰন্ধনৰ সাজু কৰে। ৰন্ধন গৃহত মূল দেউৰীৰ বাদে আন লোকৰ প্ৰৱেশ নিসিদ্ধ। পূৰ্বে যোগাৰ কৰি থোৱা শাক-পাচলিসমূহো উপযুক্ত কাৰি কাটি ৰন্ধনৰ ব্যৱস্থা কৰে। মাংসৰ প্ৰকৰণত কলপচলা, ৰঙলাও, আলু, জালুক আদিৰ ব্যৱহাৰ কৰে। ৰন্ধন কাৰ্য শেষ হ'লে দোকানীয়ে ৰান্ধনিশালৰ পৰা হাঁহৰ মাংসৰ(পৰিৱেশন কৰিব পৰা) ভাজি কলপাতত সমাজৰ মাজলৈ আগবঢ়াই দিয়ে। ইয়াৰ পিছত জ্ঞাতিসকলে পকা সকামৰ বাবে প্ৰস্তুত কৰা সাজ পানীয় কাঁহৰ বাটিত সজাই আসনৰ (বেদী) কাষত আগবঢ়ায়। ৰান্ধনৰ সকলো সামগ্ৰী সাজু হ'লে সাধুৰ আজ্ঞা লৈ দোকানীয়ে সামগ্ৰীসমূহ ভকত সহিতে সকলোকে বিলাই দিয়ে। সাধুক কাঁহৰ বাটিত দোকানী বা উপস্থিত সঙ্গীয়ে সাজপানীয় খুৱাই দিয়াৰ লগতে মূল বাটিৰ সাজ সকলো ভকতলৈ অলপ অলপ আগবঢ়ায়।

প্ৰাচীন ঐতিহ্য ৰক্ষাৰ বাবে প্ৰতিঘৰ চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকে এই উৎসৱত অংশ লয়। অৱশ্যে বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ লোকসকলে এই অনুষ্ঠানৰ লগত জড়িত নহয়। এই অনুষ্ঠানৰ দ্বাৰা চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে এটা পৰম্পৰাৰ সেঁতুৰে বান্ধ খোৱাৰ লগতে পিতৃ-পুৰুষলৈকো স্মৰণ কৰে।

এই উৎসৱৰ বাবে গাঁৱৰ লোকসকলে পিঠা, আখৈ, কৰাইগুৰি, সান্দহগুৰি, গোট্ কৰাই, বৰা চাউল আদিবোৰ ঘৰতে প্ৰস্তুত কৰি উৎসৱৰ বাবে আগবঢ়ায়। কোনো কোনো গৃহস্থী লোকে হাঁহ-পাৰ মাংস, কোনো গৃহস্থীয়ে শাক-পাচলি ৰঙলাও, কোমোৰা, আলু, জালুক, আদা, নহৰু আদি ৰাইজৰ বাবে আগবঢ়ায়। ইফালে জ্ঞাতি ভকতৰ বাবে প্ৰয়োজনীয় সাজপানীয়ও গৃহস্থীসকলে বৰা চাউলেৰে ঘৰতে নিৰ্মাণ কৰে।

সাধু ভকতৰ আজ্ঞামতে গৃহস্থই যোগাৰ কৰা বৰা চাউল সিজোৱা বা চেৰা দিয়া, পিঠা, আখৈ, কৰাইগুৰি, সান্দহগুৰি, গোট্ কৰাই, মাছৰ ভজা, হাঁহ-কোমোৰা-কলপচলা-ৰঙলাওৰ ভজা দেউৰীয়ে বিতৰণ কৰে। সাধু ভকতৰ আজ্ঞা লৈ দেউৰীয়ে সাজপানীয় কাঁহৰ বাটিত ভগাই দিয়ে। সকলো খাদ্য-সামগ্ৰী বিতৰণ কৰাৰ পিছত জ্ঞাতি সহিতে মূল দেউৰীয়ে আশীৰ্বাদ দিয়ে—

'ভাল নিজ পূৰ্ণ শংকৰ মাধৱ গোপাল যদুমণি দেউ'।[৮]

ইয়াৰ পাছত সকলো বহি কলপাতত বৰা চাউলৰ চেৰা দিয়া, ভাজি, হাঁহৰ মাংস ইত্যাদি পৰিশেৱন কৰে। কলহ বা আন মাটিৰ বাচনত গোটোৱা সাজপানীয় জ্ঞাতি ভকত-ভকতনী সকলে ডাঙৰ বাচনত বগা কাপোৰ পাৰি চেকি ভোগৰ বাবে আগবঢ়াই দিয়ে। হালধীয়া বৰণৰ সাজপানীয় মিঠা হোৱাৰ লগতে ভকতৰ মন পুলকিত কৰি তোলে। ভোগ গ্ৰহণৰ পাছত মনৰ আনন্দত সকলোৱে

একগোট হৈ বিহুও নাচে।

দেউকুবেৰ উৎসৱ চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ গাঁও বা অঞ্চলৰ সকলো লোক একগোট হৈ পালন কৰে। বৰ্তমান চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ উন্নয়ন, উত্তৰণ বাবে গঢ় লোৱা সামাজিক-সাংস্কৃতিক দল-সংগঠনসমূহে জাতীয় ঐতিহ্য অটুত ৰখাৰ বাবে ৰাজহুৱাভাৱে প্ৰতিবছৰে এই উৎসৱৰ আয়োজন কৰে। চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ মাজত একতা-প্ৰীতি আৰু ঐতিহ্য ৰক্ষাৰ্থে বিভিন্ন আচাৰ, ৰীতি-নীতি ইয়াত জড়িত হৈ আছে। একেদৰে চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে এই উৎসৱৰ দৰে বৰ্তমান শলিতা লগোৱা, গৰখীয়া সবাহ, বৰ সবাহ আদি পূৰ্বৰ পৰম্পৰাৰে ৰাজহুৱাকৈ আয়োজন কৰে।

সিদ্ধান্ত ঃ

১। ‘চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ দেউকুবেৰ উৎসৱ ঃ এক অধ্যয়ন’ শীৰ্ষক আলোচনা পত্ৰখনত চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ পৰিচয়, জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে বসবাস কৰা প্ৰণালী, সমাজ ব্যৱস্থাৰ ভিন্ন দিশসমূহৰ বিষয়ে তথ্য আহৰণ হয়।

২। দেউকুবেৰ উৎসৱ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে জনগোষ্ঠীটোৰ লোকসকলে পৰম্পৰাগতভাৱে পালন কৰা এই উৎসৱৰ লগত জড়িত আচাৰ-ৰীতি-নীতি আদি দিশসমূহ পোহৰলৈ আহে।

উপসংহাৰ ঃ

সমাজ আৰু সংস্কৃতি একেটা মুদ্ৰাৰে ইপিঠি-সিপিঠি। ইফালে সমাজত বসতি কৰা প্ৰতিটো জনগোষ্ঠীৰে পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতিৰে পালন কৰা আচাৰ-অনুষ্ঠান আৰু উৎসৱ-পাৰ্বণ আছে। এইসমূহ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে তেওঁলোকৰ সংস্কৃতিৰ আভাস পাব পাৰি। সময় বাগৰাৰ লগে লগে জনগোষ্ঠীসমূহৰ ৰীতি-নীতি, আচাৰ-অনুষ্ঠান, উৎসৱ-পাৰ্বণসমূহৰ মাজত ৰূপৰ পৰিৱৰ্তন ঘটিছে। কেতিয়াবা এনে পৰিৱৰ্তনৰ মাজতে কিছু বিশিষ্টতা লক্ষ্য হয়। সমান্তৰালভাৱে জনগোষ্ঠীসমূহ বৃহত্তৰ অসমীয়া সংস্কৃতিৰে সমন্বয়ৰ ফলত এইবিলাকৰ প্ৰকৃত ৰূপ কিছুপৰিমাণে হেৰাই গৈছে যদিও তাৰ মূল ৰূপৰ ক্ষেত্ৰত এতিয়াও স্বকীয়তা বৰ্তি আছে। এনেধৰণৰ প্ৰাসংগিক প্ৰসংগৰ ভিত্তিতে চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ মাজত প্ৰচলিত সামাজিক ৰীতি-নীতি, আচাৰ-অনুষ্ঠান আৰু উৎসৱ-পাৰ্বণ সমূহক বিশেষভাৱে ঐতিহ্যৰ প্ৰতীক বুলি গন্য কৰিব পাৰি। এই উৎসৱ-পাৰ্বণ, আচাৰ-অনুষ্ঠানসমূহে শিশুৰ পৰা বৃদ্ধলৈকে সকলোকে আনন্দ আৰু আত্মীয়তাৰ লগতে সমাজৰ একতা, পাৰস্পৰিক প্ৰীতি, সদিচ্ছা আৰু প্ৰাণৰ আবেগ-অনুভূতিৰে জগাই তোলে। এই পাৰিবাৰিক আৰু সামাজিক মূল্যবোধৰ বাবেই দেউকুবেৰ উৎসৱ বৰ্তমানেও চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ মাজত জীৱন্ত ৰূপত চলি আছে। সেয়েহে জনগোষ্ঠীটোৰ সভ্যতা সংস্কৃতিৰ মাজত প্ৰতিফলিত হোৱা বিশিষ্টতাৰ ভিত্তিত এই অধ্যয়নৰ পৰিসৰ আগবাঢ়িছে। এই অধ্যয়নৰ সমলসমূহে জনগোষ্ঠীটোৰ লগত জড়িত আন আন দিশসমূহ অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰত ভৱিষ্যতে ন ন দিশত সহায় কৰিব। ❑

প্ৰসংগসূচী আৰু পাদটীকা ঃ

১। Francis Hamilton, An Account of Assam,১৯৮৭, p.54-55
২। The Deori-Chutiyas are a small and secluded tribe in the Lakhimpur and Sibsagar districts of upper Assam. As the name implies, they are the representatives of the priestly or levite class among the chutiyas. W.B. Brown, An Outline Grammar of the Deori-Chutiya Language,Spoken in Upper Assam,১৮৯৫, Introduction p. i
৩। সৰ্বানন্দ ৰাজকুমাৰ, ইতিহাসে সোঁৱৰা ছশটা বছৰ, ২০১৩, পৃ. ৭১৪-৭১৫
৪। চুতীয়া জাতিৰ বুৰঞ্জী, পৃ-২৯৫
৫। দেওধাই অসম বুৰঞ্জী, পৃ- ২০১
৬। ডম্বৰুধৰ নাথ (সম্পা), *চুতীয়া জাতিৰ বুৰঞ্জী*(২০০৭), চুতীয়াসকলৰ সামাজিক আচাৰ অনুষ্ঠান(প্ৰবন্ধ), ভৱকান্ত চুতীয়া, পৃ. ৩৬৬)
৭। উক্ত গ্ৰন্থ, পৃ. ৩৬৬
৮। সংবাদ, বোধেন বৰা, খলিহামাৰী, বয়স-৭৪

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

নাথ, ডম্বৰুধৰ (সম্পা.)। *চুতীয়া জাতিৰ বুৰঞ্জী*। চুতীয়া জাতিৰ বুৰঞ্জী প্ৰণয়ন সমিতি, ২০০৭। মুদ্ৰিত।
পাদুন, নাহেন্দ্ৰ। *অসমীয়া সংস্কৃতিলৈ জনজাতীয় বৰঙণি*। গুৱাহাটী ঃ লয়াৰ্ছ বুকষ্টল, ১৯৯৩। মুদ্ৰিত।
বৰবৰুৱা, হিতেশ্বৰ। *আহোমৰ দিন*। গুৱাহাটী ঃ অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ২০০৮। মুদ্ৰিত।
———। *লুইতৰ আগাৰিৰ অসমীয়া সভ্যতা*। গহপুৰ ঃ কিৰণ প্ৰকাশ, ২০০০। মুদ্ৰিত।
———। (সং. আৰু সম্পা.)। *ঐতিহাসিক বিৱৰ্তনত অসমৰ চুতীয়া জনগোষ্ঠী*। গহপুৰ ঃ কিৰণ প্ৰকাশ, ২০১১। মুদ্ৰিত।
ভট্টাচাৰ্য, প্ৰমোদচন্দ্ৰ (সম্পা.)। *অসমৰ জনজাতি*। গুৱাহাটী ঃ লয়াৰ্ছ বুকষ্টল, ১৯৯১। মুদ্ৰিত।
———। *অসমৰ লোক উৎসৱ*। গুৱাহাটী ঃ নৱগিৰি। ১৯৯৩। মুদ্ৰিত।
শইকীয়া, পুৰেন্দ্ৰ প্ৰসাদ। *চুতীয়াৰ ইতিহাস আৰু সংস্কৃতি*। ধেমাজি ঃ কিৰণ প্ৰকাশন, ২০১১। মুদ্ৰিত।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ ঃ এক তুলনামূলক অধ্যয়ন

কিৰণ ৰবিদাস

সংক্ষিপ্তসাৰ

অসম ৰাজ্য বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ বসতিস্থল। অসমত বসবাস কৰা প্ৰত্যেকটো জাতি-জনজাতিৰে স্বকীয় সংস্কৃতি আছে আৰু তেওঁলোকৰ সাংস্কৃতিক সংমিশ্ৰণত বৃহত্তৰ অসমীয়া সংস্কৃতি গঢ়ি উঠিছে। অসমীয়া সংস্কৃতি সমন্বয়ৰ সংস্কৃতি। সেয়ে অসমীয়া সংস্কৃতি গঢ়ি উঠাত বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ অৱদান অনস্বীকাৰ্য। লোকসংস্কৃতিৰ উপাদানসমূহৰ ভিতৰত লোকাচাৰ অন্যতম। সমাজত অতীতৰে পৰা পৰম্পৰাগতভাৱে চলি অহা ৰীতি-নীতি, বিশ্বাস আদিয়ে হৈছে লোকাচাৰ। অসমীয়া আৰু জনজাতীয় সমাজত লোকাচাৰৰ স্থান অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। অসমীয়া আৰু কাৰ্বি দুয়োখন সমাজত জীৱনবৃত্তৰ লগত বিভিন্ন লোকাচাৰৰ প্ৰচলন আছে। সেইসমূহৰ ভিতৰত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ উল্লেখযোগ্য। এগৰাকী নাৰীৰ গৰ্ভত সন্তানে স্থিতি লোৱাৰ পিছত শাৰিৰীক আৰু মানসিকভাৱে সবল কৰিবলৈ দুয়োখন সমাজতে বিভিন্ন লোকাচাৰ পালন কৰে। আমাৰ গৱেষণা পত্ৰখনত অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰীক লোকাচাৰৰ সাদৃশ্য আৰু বৈসাদৃশ্য বিচাৰ কৰি তুলনামূলক অধ্যয়ন কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ

কাৰ্বি, অসমীয়া, সমাজ, লোকাচাৰ, জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ, লোকবিশ্বাস।

অৱতৰণিকা

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয়

লোকসংস্কৃতিৰ ভাগসমূহৰ ভিতৰত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভাগ হৈছে লোকাচাৰ। কোনো এখন সমাজত পৰম্পৰাগতভাৱে পালন কৰি অহা কিছুমান বিশেষ ৰীতি-নীতি আৰু ক্ৰিয়াকলাপৰ সমষ্টিকে লোকাচাৰ বোলা হয়। সমাজত প্ৰচলিত বিবিধ আচাৰ-অনুষ্ঠান, উৎসৱ, বিশ্বাস, ধৰ্ম, জন্ম, মৃত্যু, বিবাহৰ লগত জড়িত বিভিন্ন অনুষ্ঠান, খেল ধেমালি, লোক-ঔষধ আদিকো লোকাচাৰ বুলিব পাৰোঁ। লোকাচাৰ সমূহ লোকবিশ্বাসৰ গাত ভেজা দিয়ে সমাজত গঢ়ি উঠিছে আৰু অতীতৰে পৰা জনসমাজত চলি আহিছে। এইসমূহৰ মাজেদি একোটা জাতিৰ স্বকীয় বৈশিষ্ট্যসমূহ প্ৰকাশ হয়।

আদিম অৱস্থাৰ পৰাই মানুহে নজনাক জানিবলৈ বা যিকোনো বিষয়ত জ্ঞান আহৰণ কৰিবলৈ তুলনাৰ সহায় লৈ আহিছে। সাধাৰণতে 'তুলনা' বুলিলে যিকোনো দুটা বিষয়ৰ পাৰস্পৰিক সাদৃশ্য আৰু বৈসাদৃশ্যসমূহ বিচাৰ কৰাকে বুজায়। মানৱ সভ্যতাৰ বিকাশৰ লগে লগে তুলনামূলক পদ্ধতিয়ে সাহিত্য অধ্যয়নৰ এটি গুৰুত্বপূৰ্ণ পদ্ধতি হিচাপে বিবেচিত হয়। তুলনামূলক পদ্ধতিয়ে সাহিত্য, সমাজ, কলা, বিজ্ঞান, ৰাজনীতি, সমাজনীতি আদি সকলো বিষয়ক সামৰি লয় আৰু এই সকলো বিলাক দিশতে তুলনাৰ সহায় লোৱা দেখা যায়।

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
অসম বিশ্ববিদ্যালয়, ডিফু চৌহদ
কাৰ্বি আংলং, ডিফু (অসম) -৭৮২৪৬২
৮৮৭৬৮০০৭৬০
kiranrobidas180@gmail.com

অসমত বসবাস কৰা জনগোষ্ঠীসমূহৰ ভিতৰত এটি প্ৰাচীন জনগোষ্ঠী হৈছে কাৰ্বি জনগোষ্ঠী। কাৰ্বিসকল স্বকীয় সংস্কৃতিত অতি চহকী। তেওঁলোকৰ সমাজত প্ৰচলিত লোকাচাৰ, লোকবিশ্বাস, উৎসৱ-পাৰ্বণ আদিৰ সুকীয়া বৈশিষ্ট্য বিৰাজমান। অসমৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ দৰে কাৰ্বি জনগোষ্ঠীৰ সমাজতো জন্ম সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন লোকাচাৰৰ প্ৰচলন আছে। কাৰ্বি সংস্কৃতি অসমীয়া সংস্কৃতিৰে এক অংগস্বৰূপ। সেয়ে অসমীয়া আৰু কাৰ্বি দুয়োখন সমাজতে এগৰাকী নাৰীয়ে গৰ্ভধাৰণ কৰাৰ পৰা কেঁচুৱাৰ অন্নপ্ৰাশন পতালৈকে বিভিন্ন লোকাচাৰ পালন কৰে। অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰৰ তুলনামূলক অধ্যয়নে দুয়োখন সমাজত প্ৰচলিত লোকাচাৰ সমূহৰ সাদৃশ্য-বৈসাদৃশ্যৰ বিভিন্ন দিশৰ উন্মোচন হ'ব।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য

'অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ ঃ এক তুলনামূলক অধ্যয়ন' শীৰ্ষক অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ হৈছে —

(ক) অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ সমূহ পোহৰলৈ অনা।

(খ) দুয়োখন সমাজত প্ৰচলিত লোকাচাৰসমূহৰ সাদৃশ্য-বৈসাদৃশ্য বিচাৰ কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ

আমাৰ গৱেষণা পত্ৰখনত অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰৰ পৰিসৰ হিচাপে গৰ্ভধাৰণৰ সময়ত লোৱা যতন সম্পৰ্কীয় লোকাচাৰ, প্ৰসৱকালীন ৰীতি-নীতি, প্ৰসূতিৰ ল'বলগীয়া যতন সম্পৰ্কীয় লোকাচাৰ, নামাকৰণ পৰ্ব, চুলিকটা পৰ্ব, অন্নপ্ৰাশন আদিৰ লগত জড়িত বিভিন্ন লোকাচাৰসমূহৰ তুলনামূলক আলোচনা আগবঢ়োৱা হ'ব।

০.4 অধ্যয়নৰ পদ্ধতি

'অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ ঃ এক তুলনামূলক অধ্যয়ন' শীৰ্ষক অধ্যয়নৰ বাবে তুলনামূলক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হ'ব।

০.৫ তথ্য আহৰণৰ উৎস

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে মুখ্য উৎস হিচাপে ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ন আৰু গৌণ উৎস হিচাপে বিষয়ৰ সৈতে সম্পৰ্কযুক্ত গৱেষণা গ্ৰন্থ, গৱেষণামূলক গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধ সংকলন, সম্পাদনা গ্ৰন্থ আৰু আলোচনী আদিৰ সহায় লোৱা হ'ব।

১.০ অসমীয়া সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ

অসমৰ জনসাধাৰণৰ মাজত যুগ যুগ ধৰি পৰম্পৰাগতভাৱে বিভিন্ন লোকাচাৰৰ প্ৰচলন হৈ আহিছে। এই লোকাচাৰসমূহ জন্মৰ পৰা আৰম্ভ কৰি মৃত্যুলৈকে নিবিড়ভাৱে জড়িত হৈ আছে। অসমীয়া সমাজত প্ৰচলিত লোকাচাৰ সমূহৰ ভিতৰত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ লোকাচাৰ হৈছে জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ। এগৰাকী নাৰীৰ গৰ্ভত সন্তানে স্থিতি লোৱাৰ পিছৰে পৰা শাৰিৰীক আৰু মানসিকভাৱে সবল কৰিবলৈ অসমীয়া সমাজত বিভিন্ন লোকাচাৰ পালন কৰে। জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰত নাৰীৰ ভূমিকা গুৰুত্বপূৰ্ণ। সেয়ে জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰক নাৰীকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ বোলা হয়।

অসমীয়া সমাজত এগৰাকী নাৰীৰ গৰ্ভত সন্তানে স্থিতি লোৱাৰ পৰা সন্তান জন্ম হোৱালৈকে বিভিন্ন লোকাচাৰ পালন কৰে। সন্তানে গৰ্ভত স্থিতি লোৱাৰ পিছৰে পৰা পিতৃ-মাতৃয়ে মিছা কথা ক'ব নাপায় আৰু জীৱ-জন্তু হত্যা কৰাৰ পৰা বিৰত থাকে। তদুপৰি পূজাৰ বলি কটা চাব নাপায় আৰু মাছ মাৰি বাচিবলৈ দিয়া নহয়। জীৱ-জন্তু হত্যা কৰিলে পাপৰ ফল আহিবলগীয়া সন্তানৰ গাত পৰে বুলি বিশ্বাস কৰে। গৰ্ভধাৰণৰ সময়ছোৱাত প্ৰসূতি গৰাকীয়ে দুৰাৰোগৰ কথা শুনিব নাপায় আৰু আপচু জীৱ-জন্তু আদি চাব নাপায়। তদুপৰি প্ৰসূতি গৰাকীৰ কোঠাত শিশুৰ ফটো আৰু লাৰুৱা গোপালৰ ফটো আঁৰি থোৱা হয়। এই সময়ছোৱাত প্ৰসূতি গৰাকীয়ে যোৰ মাহত নদী পাৰ হ'ব নাপায় আৰু বিযোৰ মাহত মাতৃ গৃহলৈ অনাৰ নিয়ম আছে।

অসমীয়া সমাজত গৰ্ভধাৰণৰ পাঁচমাহত শুভ দিন বাৰ চাই গৰ্ভৱতী গৰাকীক 'পঞ্চামৃত' খুওৱা হয়। এই অনুষ্ঠানত দৈ, ঘিউ, এৰা গাখীৰ, মৌ আৰু চেনীৰ পঞ্চমৃত আৰু পায়স গৰ্ভৱতী গৰাকীক খুওৱা হয়। গৰ্ভৱতী গৰাকীৰ মাতৃৰ উপস্থিতিত এই অনুষ্ঠান ভাগ সম্পন্ন কৰা হয়। মাতৃৰ লগতে সম্বন্ধীয় পাঁচ গৰাকী আত্মীয়ই পাঁচবাৰ গৰ্ভৱতী গৰাকীক পঞ্চামৃত খুৱায়। এই অনুষ্ঠানৰ পিছতে 'ভাতপিঠা' খুওৱা নিয়ম অসমীয়া সমাজত আছে। সাত মাহত 'সাতমহীয়া সকাম' অনুষ্ঠানত প্ৰসূতি গৰাকীক ভাত পিঠাৰ লগতে দৈ, ঘিউ, গাখীৰ, মৌ, চেনী আৰু মিঠা জাতীয় বস্তু খুওৱা হয়। তদুপৰি প্ৰসূতি গৰাকী ভালে ভালে প্ৰসৱ কৰিবৰ বাবে ন মাহত 'প্ৰসূতি সবাহ' পতা হয়। সবাহত প্ৰসূতি গৰাকীক উদ্দেশ্য কৰি আয়তীসকলে নাম গাই ঘৰৰ সকলোৰে লগতে প্ৰসূতি গৰাকীৰ সুস্বাস্থ্যৰ বাবে প্ৰাৰ্থনা

জনায়। আইসকলে ভোগ, মাহ প্ৰসাদ গ্ৰহণ কৰি প্ৰসূতি গৰাকীৰ ভালে ভালে প্ৰসৱ হ'বৰ বাবে আশীৰ্বাদ দিয়ে।

প্ৰসূতি গৰাকীৰ প্ৰসৱৰ বেদনা আৰম্ভ হোৱাৰ লগে লগে মহিলাসকলে আচুতীয়া কোঠালৈ লৈ যায়। অসমীয়া সমাজত ল'ৰা সন্তান জন্ম হ'লে উৰুলি দিয়া আৰু ছোৱালী সন্তান জন্ম হ'লে বেৰত ঢকিওৱা আৰু ঢেকি দিয়া নিয়ম আছে। ইয়াৰ পিছতে কেচুৰাক বাঁহৰ চেচুৰে নাড়ী কাটি পৰিষ্কাৰ কৰা হয়। সন্তান জন্ম হোৱা পিছৰে পৰা প্ৰসূতি থকা কোঠাত একুৰা জুই জ্বলাই থোৱা নিয়ম আছে। তদুপৰি ভূত-প্ৰেত, অপশক্তি আদিয়ে অনিষ্ট নকৰিবলৈ দুৱাৰৰ ওপৰত ফটা জালৰ টুকুৰা বা জালৰ গুটি আৰু বগৰি গছৰ ডাল আঁৰি দিয়া হয়। প্ৰসূতি গৰাকী আৰু সন্তানক অপশক্তিয়ে অনিষ্ট নকৰিবলৈ মন্ত্ৰপূত ডোল আৰু তাবিজ পৰিধান কৰে। তদুপৰি শোৱা বিচনাৰ তলত বা গাৰুৰ তলত কটাৰী, কাচি আদি লোহা জাতীয় বস্তু থোৱা হয়।

অসমীয়া সমাজত সন্তান প্ৰসৱৰ পিছত প্ৰসূতি গৰাকীৰ খোৱা-বোৱাৰ ক্ষেত্ৰত যত্ন লোৱা হয়। প্ৰসূতি গৰাকীক ভাত আৰু কম তেলযুক্ত দাইল, জালুক, নহৰু, ভেদাইলতা, মানিমুনি, দোৰোণ শাক আদি খাবলৈ দিয়া হয়। সন্তান জন্ম হোৱা তিনি দিনত কচুশাকৰ জোল ৰান্ধি খুওৱা হয়। পাঁচ দিনমানৰ পিছৰ পৰা কুকুৰা, পাৰ মাংসৰ জোল বনাই গৰমে গৰমে খাবলৈ দিয়া হয়। অসমীয়া সমাজত সন্তান প্ৰসৱ হোৱা পাঁচ বা সাত দিনৰ দিনা 'জাল দিয়া' নিয়ম আছে। জাল দিয়া দিনা কচুশাক, জালুক, মাছ আদিৰে প্ৰসূতি গৰাকীক জাল খুওৱা হয়। তদুপৰি সেইদিনা ওচৰ চুবুৰীয়াক মাছ বিলোৱাৰ নিয়ম অসমীয়া সমাজত আছে।

অসমীয়া সমাজত কেচুঁৱাৰ নাড়ী সৰাৰ পিছত কেচুঁৱাক বাহিৰলৈ উলিয়াই সূৰ্যৰ পোহৰ দেখুৱা নিয়ম আছে। ইয়াক 'বাজ দেখুওৱা' বোলা হয়। বাজলৈ উলিওৱা দিনা কেঁচুৱাক বাহিৰত পীৰা এখন পাৰি তাত শুৱাই দিয়া হয়। পীৰাখনৰ কাষত চাকি-ধূপ জ্বলাই এঘটি পানী, এটা শিল, কিতাপ, ফলি, কলম, বহী আদি ৰখা হয়। শিলটো পানীত তিয়াই, জুইত পুৰি পীৰাখনত খুন্দা হয়। এনে কৰিলে কেচুঁৱাটোৱে ডাঙৰ হ'লে জুই আৰু পানীলৈ ভয় নকৰে বুলি বিশ্বাস কৰে। কেচুঁৱাটোৰ আঙুলি লগাই বহীখনত আঁক মাৰিলে ভাগ্য দেৱতাই ভাগ্য লিখে বুলি অসমীয়া সমাজত বিশ্বাস কৰে। সেয়ে বাজ উলিওৱাৰ দিনা কেচুঁৱাটোৰ আঙুলি লগাই বহীত আঁক মৰা হয়। তদুপৰি সন্তান প্ৰসৱৰ সময়ত সহায় কৰা মহিলাসকলক নাড়ী সৰাৰ পিছত এসাঁজ ভাত খুৱাই মান ধৰা পৰম্পৰা আছে।

অসমীয়া সমাজত নৱজাতকৰ কু-দৃষ্টি, বেমাৰ আজাৰৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ বিভিন্ন লোকাচাৰ পালন কৰা হয়। সন্তান প্ৰসৱৰ পিছত ঘৰৰ ভিতৰত বাহিৰৰ পৰা বেয়া বস্তুৱে প্ৰৱেশ নকৰিবলৈ প্ৰসূতি আৰু কেঁচুৱা থকা কোঠালিৰ দোৱাৰখনৰ ওপৰত বগৰী গছৰ ডাল, ৰাঁচ, জাল আৰু জালৰ গুটি আঁৰি থোৱা হয়। কেঁচুৱাৰ ওপৰত কাৰোবাৰ বেয়া দৃষ্টি পৰিলে সৰিয়হৰ লগত জলকীয়া আদি দি মুখ লগা মন্ত্ৰ মাতি মুখ ভঙা হয়। এনে দৰে সন্তানক কু-দৃষ্টি পৰা পৰিত্ৰাণ পাব পাৰি বুলি লোক সমাজে বিশ্বাস কৰে। তদুপৰি সন্তানৰ মুখ লাগিলে বা কু-দৃষ্টি পৰিলে বেজ বা ওজাৰ ওচৰৰ পৰা পানী জৰাই অনাৰ লগতে তাবিজ বা মন্ত্ৰপুত জাপ কেচুঁৱাক পিন্ধোৱা হয়। কেচুঁৱাটোৰ সঘনাই বেমাৰ আজাৰ হৈ থাকিলে বেমাৰ আজাৰৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ অন্য জাতিৰ মানুহক বেছি দিয়া হয়। এনে কৰিলে কেচুঁৱাৰ বেমাৰ-আজাৰ নহয় বুলি অসমীয়া সমাজত বিশ্বাস কৰে।

ভাৰতৰ অন্যান্য ৰাজ্যসমূহৰ লগতে অসমৰ বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ মাজত কেচুঁৱাৰ নামাকৰণৰ অনুষ্ঠান অনুষ্ঠিত কৰা হয়। আৰ্য হিন্দু সমাজৰ দৰে অসমীয়া সমাজতো এই অনুষ্ঠান পতা হয়। অসমীয়া সমাজত গণকৰ হতুৱাই কেচুঁৱাৰ নামাকৰণ কৰা হয়। নামাকৰণৰ দিনা কেচুঁৱাক গা ধোৱাই নতুন কাপোৰ পিন্ধোৱা হয় আৰু মাকৰ ঘৰৰ মানুহৰ উপস্থিতিত গণকে গণনাৰ কাম আৰম্ভ কৰে। কেচুঁৱাৰ জন্মৰ বাৰ আৰু সময়ৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি কেচুঁৱাৰ ভাল-বেয়া, ভৱিষ্যত, বিবাহ, চাকৰি, চাল-চলন আদি ৰাইজক অৱগত কৰে আৰু কোষ্ঠী প্ৰস্তুত কৰে। গণকে ৰাশিৰ আদ্যাক্ষৰ ঠিক কৰি দিয়া পিছতে আত্মীয়সকলে কেচুঁৱাৰ নাম ৰাখে। সাধাৰণতে অসমীয়া সমাজত কেচুঁৱাৰ দুটা নাম ৰখা হয়। এটা গোপন নাম আনটো মানুহে মতা নাম।

অসমীয়া সমাজত কেচুঁৱাৰ জন্মৰ পিছত প্ৰথম চুলি কাটোতে কিছুমান নিৰ্দিষ্ট নীতি-নিয়মৰ মাজেৰে কৰে। কেচুঁৱা জন্ম হোৱা ন দিনৰ দিনা বা বাজ ওলোৱা দিনা কেঁচুৱাৰ চোৱা চুলি খুৱাই দিয়া হয় আৰু বিভিন্ন ধৰণে সংৰক্ষণ কৰি ৰাখে। বাজ ওলোৱাৰ দিনা নাপিত বা ঘৰৰ মানুহৰ দ্বাৰা কেচুঁৱাৰ চুলি কটা হয়।

অসমীয়া সমাজত কেচুঁৱাক প্ৰথম ভাত খোৱা অনুষ্ঠান অৰ্থাৎ অন্নপ্ৰাশন যুগ্ম মাহত অনুষ্ঠিত কৰা হয়। কিছুমানে ছয়

মাহ বা আঠ মাহত কেচুঁৱাৰ অন্নপ্ৰাশন অনুষ্ঠান অনুষ্ঠিত কৰে। অনুষ্ঠানৰ দিনা কেচুঁৱাৰ মোমায়েকে কেচুঁৱাক প্ৰথম ভাত খুওৱাই। এই দিনাৰ পিছৰ পৰাই কেচুঁৱাই অনুষ্ঠানিকভাৱে ভাত, মাছ, মাংস আদি খাব পাৰে। অন্নপাশন অনুষ্ঠানত মোমায়েকে কেচুঁৱাক কাঁহৰ কাঁহী-বাতি, গিলাচ দিয়াৰ লগতে সোণ-ৰূপৰ বস্তু দিয়াৰ নিয়ম আছে।

২.০ কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ ঃ

ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ অন্যান্য ৰাজ্যসমূহৰ দৰে অসমৰ জনজাতীয় সমাজত নাৰীৰ স্থান আৰু মৰ্যদা উচ্চ খাপৰ। *"যি সমাজত অৰ্থনীতিৰ বাঘজৰীডাল পুৰুষৰ হাতত থাকে, তেনে সমাজত পুৰুষেহে প্ৰাধান্য পায়, নাৰীৰ স্থান তেনে সমাজত পুৰুষতকৈ তলত থাকে। আনহাতে যি সমাজত উৎপাদনৰ ক্ষেত্ৰত নাৰীয়ে মুখ্য ভূমিকা লয়, তেনে সমাজত প্ৰাধান্য লাভ কৰে নাৰীয়ে।"*[১] (বৰ্মণ, পৃ-২২০) অসমৰ জনজাতীয় সমাজখনলৈ লক্ষ্য কৰিলে এই কথা স্পষ্টকৈ অনুধাৱন কৰিব পাৰি যে জনজাতীয় সমাজত নাৰীৰ স্থান সদায় উচ্চ। কাৰ্বি সমাজখন আদিতে মাতৃতান্ত্ৰিক আছিল বুলি জনা যায় যদিও বৰ্তমান কাৰ্বি সমাজখন পিতৃতান্ত্ৰিক। অসমীয়া সমাজৰ দৰে কাৰ্বি সমাজখনতো নাৰীক পুৰুষৰ সমানে মৰ্যাদা দিয়া হয়। কাৰ্বিসকলৰ ঘৰখন সুচাৰুৰূপে পৰিচালনা কৰাত নাৰীৰ ভূমিকা গুৰুত্বপূৰ্ণ। তদুপৰি ৰন্ধা-বঢ়াৰ পৰা আৰম্ভ কৰি ঘৰুৱা কাম-কাজ কৰাৰ উপৰিও সন্তান প্ৰতিপালন কৰা, বজাৰ সমাৰ কৰা, গাহৰি-কুকুৰা প্ৰতিপালন কৰা, তাঁত বোৱা, উৎসৱ-পাৰ্বণ আদিত নাৰীয়ে মুখ্য ভূমিকা পালন কৰে।

কাৰ্বি সমাজত এগৰাকী নাৰীৰ গৰ্ভত সন্তানে স্থিতি লোৱাৰ পৰা সন্তান জন্ম হোৱালৈ বিভিন্ন লোকাচাৰ পালন কৰে। এই সময়ছোৱাত প্ৰসূতি গৰাকীয়ে কিছুমান ৰীতি-নীতিৰ মাজেৰে চলিব লাগে। গৰ্ভধাৰণৰ প্ৰথম সময়ছোৱাত প্ৰসূতি গৰাকীক কষ্টকৰ কাম কৰিবলৈ দিয়া নহয়। এই সময়ছোৱাত গধুৰ বস্তু দঙা, খৰি ফলা, উৰালত ধান খুন্দা আদি কাম কৰাৰ পৰা বিৰত থাকে। প্ৰসূতি আৰু সন্তানৰ পিতৃয়ে এই সময়ছোৱাত জীৱ হত্যা, মিছা কথা কোৱা আৰু বেয়া কথা পাতিব নাপায়। এনে ৰীতি-নীতি মানি নচলিলে সন্তানৰ ওপৰত বেয়া প্ৰভাৱ পৰে বুলি বিশ্বাস কৰে। সেয়ে কাৰ্বি সমাজত নাৰীয়ে ৰীতি-নীতি মানি চলে। গৰ্ভধাৰণৰ সময়ছোৱাত প্ৰসূতি গৰাকীয়ে বিচৰা খাদ্য খাবলৈ নাপালে জন্ম হ'বলগীয়া সন্তানটিৰ লেলাউতি ওলায় বুলি কাৰ্বি সমাজে বিশ্বাস কৰে। সেয়ে প্ৰসূতি গৰাকীয়ে খাবলৈ ইচ্ছা কৰা সকলো খাদ্য খাবলৈ দিয়া হয়। গৰ্ভধাৰণৰ তিনি মাহৰ পিছত প্ৰসূতিগৰাকীৰ সুস্বাস্থ্যৰ কামনাৰে 'চ'মাৰজু' পূজা আগবঢ়াই। এই পূজা কাৰ্বিসকলে স্বকীয় ৰীতি-নীতিৰ মাজেৰে এটা ৰঙা কুকুৰা বলি দি পূজা সম্পন্ন কৰে। ছয়-সাতমাহমান হোৱাৰ পিছত হ'বলগা সন্তানটি ল'ৰা নে ছোৱালী হ'ব জানিবৰ বাবে মঙলতীৰ ওচৰত কণীত মঙল চোৱা পৰম্পৰা আছে।

কাৰ্বি সমাজতো প্ৰসৱৰ সময়ত বিভিন্ন লোকাচাৰ পালন কৰে। প্ৰসূতি গৰাকীৰ প্ৰসৱৰ বেদনা আৰম্ভ হোৱাৰ লগে লগে এটা আছুতীয়া কোঠালৈ লৈ যোৱা হয়। কোঠাটোলৈ পুৰুষ আৰু সৰু ল'ৰা-ছোৱালীক সোমাবলৈ দিয়া নহয়। প্ৰসৱৰ সময়ত প্ৰসূতি গৰাকীয়ে কষ্ট পোৱা অনুভৱ কৰিলে বা কষ্ট পাই থাকিলে বেজ বা ওজা, কবিৰাজৰ পৰা পানী জৰাই অনাৰ লগতে জাপ, সৰিয়হ জৰা আনি দিয়ে। তদুপৰি ৰঙা মাইকী কুকুৰা বলি দি 'হাংথু কেফ্লুক' নামৰ পূজা আগবঢ়াই কষ্ট উপশম হ'বলৈ ভগৱানক প্ৰাৰ্থনা জনায়। সন্তান প্ৰসৱ হোৱাৰ লগে লগে মহিলাসকলে কেইফাঁকিমান মন্ত্ৰ উচ্চাৰণ কৰি নৱজাতকক আদৰণি জনায়। মন্ত্ৰফাঁকি এনেধৰণৰ—

"হে ভগৱান ভূমিষ্ঠ হোৱা সন্তানটি মানৱ শিশুৰে, কোনো জন্তু নহয়। মানুহৰ সৈতে সম্বন্ধ পাতিবলৈহে তেওঁ জন্ম লৈছে।"[২] (হাঞ্চেপী, পৃ-১৬৯) এনেদৰে মন্ত্ৰফাঁকি গোৱাৰ পিছতে সন্তানটি সম্পূৰ্ণ মানৱ শাৰীলৈ আহে বুলি বিশ্বাস কৰে। ইয়াৰ পিছতে নৱজাতকক বাঁহৰ চেচুৰে নাড়ী কাটি পৰিষ্কাৰ কৰা হয়। কাৰ্বি সমাজত নাই সৰিলে বিভিন্ন ধৰণে সংৰক্ষণ কৰি থয়।

সন্তান জন্ম হোৱাৰ পিছৰে পৰা প্ৰসূতি গৰাকী আৰু নৱজাতক থকা কোঠাত জুই একোৱা জ্বলাই থোৱা হয়। এই অশৌচীয়াৰ সময়ছোৱাত প্ৰসূতি গৰাকীয়ে ঘৰৰ কোনো বস্তু স্পৰ্শ নকৰে। তদুপৰি ঘৰখন অশৌচীয়া হৈ থকা বাবে যিকোনো মাঙ্গলীক অনুষ্ঠান পতাৰ পৰা বিৰত থাকে। কাৰ্বি সমাজত সন্তান জন্ম হোৱাৰ পাঁচ বা সাত দিনত ছেনাফলা গৰৈ মাছত জালুক দি প্ৰসূতি গৰাকীক জাল খুওৱা হয়। সন্তান জন্ম হোৱা কেইদিনমানৰ পিছত বচা বচা শাক-পাচলিৰে আঞ্জা বনাই খুওৱা হয়। তদুপৰি জালুক দিয়া ছেনাফলা গৰৈ মাছৰ জ্বলা তৰকাৰী, অমিতা দিয়া জ্বলা তৰকাৰী, জালুক-কেঁচা হালধি দিয়া জ্বলা তৰকাৰী তেল নিদিয়াকৈ ৰান্ধি খুওৱা হয়। কাৰ্বিসকলে তৰকাৰীত তেল, মচলাৰ ব্যৱহাৰ নকৰে।

কাৰ্বি সমাজত কেচুঁৱাৰ নাই সৰা দিনা বাজলৈ উলিওৱা নিয়ম আছে। বাজ উলিওৱাৰ দিনা ঘৰ-দুৱাৰ সাৰি মচি পৰিষ্কাৰ কৰাৰ লগতে কাপোৰ ধুই তুলসী পানী চটিয়াই ঘৰখন পৱিত্ৰ কৰে। তাৰ পিছত 'ক্লংক থেকাৰ' নামৰ পূজা পাতি অশৌচ খেদে। এই পূজা ভাগ নাপাতিলে কেচুঁৱাটো আজীৱন অপৱিত্ৰ হৈ থাকে আৰু ভগৱানেও ৰক্ষণাবেক্ষণ নিদিয়ে বুলি কাৰ্বিসকলে বিশ্বাস কৰে। তদুপৰি প্ৰসূতি গৰাকীক সন্তান জন্মৰ সময়ত সহায় কৰা মহিলাসকলক ভালদৰে এসাঁজ খুৱাই মান ধৰা হয়।

কাৰ্বিসকলৰ পৰম্পৰা অনুসৰি মঙলতীৰ হতুৱাই মঙল চোৱাই কেচুঁৱাটোৰ পূৰ্বজন্মৰ নামেৰে নামাকৰণ কৰা হয়। ল'ৰা সন্তান জন্ম হ'লে সোঁহাতত আৰু কন্যা সন্তান হ'লে বাওঁহাতত এৰা সূঁতাৰ জৰী বান্ধে। তদুপৰি কেচুঁৱাটো পূৰ্বজনমত বাপেকৰ সৈতে কি সম্পৰ্ক আছিল সেয়া মঙল চোৱাই নিৰ্দ্ধাৰণ কৰা হয়। মঙলৰ মতে বাপেকৰ নাম হ'লে 'প'মেন', ককাকৰ নাম হ'লে 'ফুমেন', বায়েক বা পেহীয়েকৰ নাম হ'লে 'নীমেন' বুলি সম্বোধন কৰে।

কাৰ্বি সমাজত স্বকীয় ৰীতি-নীতিৰে কেচুঁৱাৰ চুলি কটা হয়। কাৰ্বিসকলে কেচুঁৱাৰ চুৰা চুলি খুৰাবৰ বাবে এটা নিৰ্দিষ্ট দিন বাৰ ঠিক কৰে। পৰম্পৰাগত নিয়ম অনুসৰি মোমায়েকেহে কেচুঁৱাৰ চুৰা চুলি কাটিব লাগে। চুলি কটা পৰ্বৰ দিনটোলৈ কেচুঁৱাৰ মোমায়েকক হৰলাং আৰু তমান (জুইত শুকোৱা ছেনাফলা মাছ) আদি মাননি হিচাপে আগবঢ়াই স-সন্মানেৰে নিমন্ত্ৰণ জনায়। নিৰ্দিষ্ট দিনটোত মোমায়েকে উপস্থিত হৈ কেচুঁৱাৰ চুলি কাটে।

৩.০ অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰৰ তুলনামূলক অধ্যয়ন ঃ

অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰৰ অধ্যয়নৰ পৰা দেখা যায় যে দুয়োখন সমাজত প্ৰচলিত লোকাচাৰসমূহৰ মিল আছে যদিও কেতবোৰ অমিল আছে। সেয়ে দুয়োখন সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰৰ এক তুলনামূলক আলোচনা আগবঢ়োৱা হ'ল—

সাদৃশ্য —

- অসমীয়া আৰু কাৰ্বি দুয়োখন সমাজতে নাৰীৰ গৰ্ভত সন্তানে স্থিতি লোৱাৰ পিছত গধুৰ বস্তু দঙা আৰু পেটত কষ্ট পোৱা কাম কৰিবলৈ দিয়া নহয়।
- দুয়োখন সমাজত গৰ্ভৱতী মহিলাগৰাকীয়ে বিচৰা সকলো খাদ্য খাবলৈ দিয়া হয়।
- গৰ্ভৱতী হোৱাৰ পিছত দুয়োখন সমাজতে হ'বলগীয়া সন্তানৰ পিতৃ-মাতৃয়ে মিছা কথা ক'ব নাপায় আৰু জীৱ-জন্তু হত্যা কৰাৰ পৰা বিৰত থাকে।
- প্ৰসৱৰ সময়ত প্ৰসূতি গৰাকীয়ে কষ্ট পাই থাকিলে বেজ বা ওজা, কবিৰাজৰ পৰা পানী জৰাই অনাৰ লগতে জাপ, সৰিয়হ জৰা আনি দিয়া নিয়ম অসমীয়া আৰু কাৰ্বি দুয়োখন সমাজতে আছে।
- দুয়োখন সমাজতে প্ৰসূতি গৰাকীয়ে সন্তান প্ৰসৱ কৰাৰ পিছত খোৱা-বোৱাৰ ক্ষেত্ৰত যত্ন লয়। অসমীয়া আৰু কাৰ্বি দুয়োখন সমাজতে প্ৰসূতি গৰাকীক স্বাস্থ্যৰ উপযোগী খাদ্য খাবলৈ দিয়া হয়।
- অসমীয়া আৰু কাৰ্বি দুয়োখন সমাজতে নৱজাতকক বাঁহৰ চেচুৰে নাড়ী কাটি পৰিষ্কাৰ কৰা হয়।
- প্ৰসৱৰ পিছত দুয়োখন সমাজতে প্ৰসূতি আৰু কেঁচুৱাক অপশক্তিয়ে অনিষ্ট নকৰিবলৈ বিচনাৰ কাষত জুই একুৰা জ্বলাই থোৱা হয়।
- অসমীয়া আৰু কাৰ্বি দুয়োখন সমাজতে সন্তান জন্ম হোৱাৰ পিছত মাক আৰু সন্তানক ভূত-প্ৰেত আদিয়ে অনিষ্ট নকৰিবলৈ মাকৰ গাৰুৰ তলত চুৰি, কটাৰী আদি লোহা জাতীয় সামগ্ৰী থোৱা নিয়ম আছে।
- দুয়োখন সমাজতে সন্তান জন্ম হোৱা কেইদিনমান পিছত প্ৰসূতি গৰাকীক 'জাল খুওৱা' নিয়ম আছে।
- সন্তান জন্ম হোৱা কেইদিনমান পিছত দুয়োখন সমাজতে কেঁচুৱাক বাজলৈ উলিওৱা পৰম্পৰা আছে।
- অসমীয়া আৰু কাৰ্বি দুয়োখন সমাজতে জন্মৰ পিছত অশৌচ চুৱা পালন কৰা হয়। এই অশৌচীয়াৰ সময়ছোৱাত প্ৰসূতি গৰাকীয়ে ঘৰৰ কোনো বস্তু স্পৰ্শ নকৰে। তদুপৰি ঘৰখন অশৌচীয়া হৈ থকা বাবে যিকোনো মাঙ্গলীক অনুষ্ঠান পতাৰ পৰা বিৰত থাকে।
- দুয়োখন সমাজতে সন্তান প্ৰসৱৰ সময়ত সহায় কৰা মহিলাসকলক কেঁচুৱাৰ নাড়ী সৰাৰ পিছত এসাঁজ ভাত খুৱাই মান ধৰা নিয়ম আছে।
- অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত কেঁচুৱাৰ নাড়ী বিভিন্ন ধৰণে সংৰক্ষণ কৰি থোৱা পৰম্পৰা আছে।

বৈসাদৃশ্য—

- অসমীয়া সমাজত প্ৰসূতি গৰাকীৰ স্বাস্থ্য আৰু সুস্থ সন্তানৰ বাবে সাতমহীয়া সবাহ পতা নিয়ম আছে। কাৰ্বি সমাজত সাতমহীয়া সবাহ পতা নিয়ম নাই। প্ৰসূতি গৰাকীৰ

সুস্বাস্থ্যৰ কামনাৰে তিনিমাহৰ পিছত 'চ'মাৰজু' নামৰ পূজা এভাগ আগবঢ়াই।

• অসমীয়া সমাজত সন্তান প্ৰসৱ হোৱাৰ লগে লগে ল'ৰা হ'লে উৰুলি দিয়া আৰু ছোৱালী হ'লে বেৰত ঢকিওৱা, ঢেকী দিয়া নিয়ম আছে। এনে নিয়ম কাৰ্বি সমাজত নাই। কাৰ্বি সমাজত সন্তান প্ৰসৱৰ লাগে লগে কাৰ্বি মহিলাসকলে কেইফাঁকিমান মন্ত্ৰ উচ্চাৰণ কৰি নৱজাতকক আদৰণি জনায়।

• অসমীয়া সমাজৰ দৰে কাৰ্বি সমাজত পাঁচ মাহত 'পঞ্চামৃত' খুওৱা পৰম্পৰা নাই।

• কাৰ্বি সমাজত সাত-আঠ মাহত আহিবলগীয়া সন্তানটি ল'ৰা নে ছোৱালী হ'ব সেই সম্পৰ্কে মঙলতীৰ ওচৰত কণীত মঙল চোৱা পৰম্পৰা আছে। অসমীয়া সমাজত এনে নিয়ম নাই।

• অসমীয়া সমাজত প্ৰসূতি আৰু কেঁচুৱাক অপশক্তিয়ে অনিষ্ট নকৰিবলৈ দুৱাৰ মুখত ফটা জালৰ গুটি আঁৰি থয়। কাৰ্বি সমাজত এনে নিয়ম নাই।

• অসমীয়া সমাজত সন্তান প্ৰসৱ হোৱা পাঁচ বা সাত দিনৰ দিনা 'জাল দিয়া' নিয়ম আছে। জাল দিয়া দিনা কচুশাক, জালুক, মাছ আদিৰে প্ৰসূতি গৰাকীক জাল খুওৱা হয়। তদুপৰি সেইদিনা ওচৰ চুবুৰীয়াক মাছ বিলোৱাৰ নিয়ম অসমীয়া সমাজত আছে। অসমীয়া সমাজৰ দৰে কাৰ্বি সমাজতো জাল খুওৱা নিয়ম আছে। যদিও ওচৰ চুবুৰীয়াক মাছ বিলোৱা নিয়ম নাই।

• সন্তান জন্ম হোৱা তিনি দিনত প্ৰসূতিগৰাকীক কচুশাকৰ জোল ৰান্ধি খুওৱা হয়। পাঁচ দিনমানৰ পিছৰ পৰা কুকুৰা, পাৰ মাংসৰ জোল বনাই গৰমে গৰমে খাবলৈ দিয়া হয়। অসমীয়া সমাজৰ দৰে কাৰ্বি সমাজত প্ৰসূতি গৰাকীক কচুশাকৰ জোল ৰান্ধি খুওৱা নিয়ম নাই।

• অসমীয়া সমাজত বাজ উলিওৱাৰ দৰে কাৰ্বিসকলেও বাজ উলিয়াই অশৌচ খেদে যদিও দুয়োখন সমাজতে ৰীতি-নীতিখিনি সম্পূৰ্ণ বেলেগ।

• কেঁচুৱাৰ ওপৰত কাৰোবাৰ বেয়া দৃষ্টি পৰিলে সৰিয়হৰ আৰু জলকীয়াৰে মুখ ভাঙা মন্ত্ৰ মাতি জুইত দি মুখ ভঙা হয়। কাৰ্বি সমাজত এনে নিয়ম নাই।

• অসমীয়া সমাজত কেচুঁৱাৰ সঘনাই বেমাৰ আজাৰ হৈ থাকিলে বেমাৰ আজাৰৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ অন্য জাতিৰ মানুহক বেছি দিয়া হয়। এনে কৰিলে কেচুঁৱাৰ বেমাৰ-আজাৰ নহয় বুলি অসমীয়া সমাজত বিশ্বাস কৰে। কাৰ্বি সমাজত এনে লোকাচাৰৰ প্ৰচলন নাই।

• অসমীয়া সমাজত কেঁচুৱাৰ নামাকৰণ কৰি গণকৰ দ্বাৰা কোষ্ঠী প্ৰস্তুত কৰা নিয়ম আছে। কিন্তু কাৰ্বি সমাজত এনে পৰম্পৰা নাই।

• অসমীয়া সমাজৰ চোৱা চুলি কটা পৰ্বৰ লগত কাৰ্বিসকলৰ চোৱা চুলি কটা ৰীতি-নীতি সম্পূৰ্ণ বেলেগ বেলেগ। অসমীয়া সমাজত বাজলৈ উলিওৱাৰ দিনা নাপিতে চুলি কাটে। কিন্তু কাৰ্বি সমাজত একোটা নিৰ্দিষ্ট দিনত মোমায়েকে চুলি কাটে।

• অসমীয়া সমাজত কেঁচুৱাৰ প্ৰথম ভাত খুওৱা অনুষ্ঠান 'অন্নপ্ৰাশন' অনুষ্ঠিত কৰা হয়। অনুষ্ঠানত কেঁচুৱাৰ মোমায়েকে প্ৰথম অন্ন খুৱাই আৰু কাঁহৰ কাঁহী-বাতি, গিলাচ দিয়াৰ লগতে সোণ-ৰূপৰ বস্তু দিয়াৰ নিয়ম আছে। কিন্তু কাৰ্বিসকলৰ মাজত এই পৰম্পৰা নাই।

• সন্তানৰ মুখ লাগিলে বা কু-দৃষ্টি পৰিলে বেজ বা ওজাৰ ওচৰৰ পৰা পানী জৰাই অনাৰ লগতে তাবিজ বা মন্ত্ৰপূত জাপ কেচুঁৱাক পিন্ধোৱা হয়। কাৰ্বি সমাজত এনেধৰণৰ কোনো লোকাচাৰ নাই। তেওঁলোকে কেঁচুৱাৰ বেমাৰ-আজাৰ হ'লে বা কু-দৃষ্টি পৰিলে মঙ্গলতীৰ ওচৰত মঙ্গল চোৱাই আৰু দায়-দোষ লাগিলে পূজা পাতল কৰে।

সিদ্ধান্ত ঃ

'অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ ঃ এক অধ্যয়ন' শীৰ্ষক আলোচনাৰ পৰা তলত দিয়া কিছুমান সিদ্ধান্তত উপনীত হ'ব পৰা গ'ল—

(ক) অসমীয়া আৰু কাৰ্বি দুয়োখন সমাজতে জন্মকেন্দ্ৰীক লোকাচাৰত স্বকীয় বৈশিষ্ট্য পৰিলক্ষিত হয়।

(খ) দুয়োখন সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰৰ সাদৃশ্য-বৈসাদৃশ্য আছে।

(গ) অসমীয়া আৰু কাৰ্বি দুয়োখন সমাজতে জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰত ধৰ্মীয় দিশ জড়িত হৈ আছে।

(ঘ) দুয়োখন সমাজতে জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰত নাৰীৰ গুৰুত্ব অধিক।

(ঙ) অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰৰ লগত বৈজ্ঞানিক আৰু সামাজিক দিশ জড়িত হৈ আছে।

২.০ উপসংহাৰ ঃ

'অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজত প্ৰচলিত জন্মকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ ঃ এক তুলনামূলক অধ্যয়ন' শীৰ্ষক গৱেষণা

পত্ৰখনৰ বিশ্লেষণৰ পৰা দেখা যায় যে অসমীয়া আৰু কাৰ্বি দুয়োখন সমাজতে এগৰাকী নাৰীয়ে গৰ্ভধাৰণ কৰাৰ পৰা সন্তান জন্ম হোৱালৈকে বিভিন্ন লোকাচাৰ পালন কৰে। প্ৰসূতি গৰাকীৰ লগতে জন্ম হোৱা সন্তানটিক লৈয়ো দুয়োখন সমাজত বিবিধ লোকাচাৰৰ প্ৰচলন আছে। দুয়োখন সমাজতে গৰ্ভধাৰণৰ সময়ত লোৱা যতন সম্পৰ্কীয় লোকাচাৰ, প্ৰসৱকালীন ৰীতি-নীতি, প্ৰসূতিৰ ল'বলগীয়া যতন সম্পৰ্কীয় লোকাচাৰ, কু-দৃষ্টিৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ কৰা লোকাচাৰ, নামাকৰণ পৰ্ব, চুলিকটা পৰ্ব, অন্নপ্ৰাশন আদি পালন কৰে। এই লোকাচাৰ সমূহৰ যোগেদি দুয়োখন সমাজৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক দিশৰ প্ৰকাশ হয়।

সময়ৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে সমাজখনৰো পৰিৱৰ্তন হয়। পূৰ্বৰ অসমীয়া আৰু কাৰ্বি সমাজখনৰ তুলনাত বৰ্তমান আধুনিকতাৰ প্ৰভাৱত বহুতো পৰিৱৰ্তন হৈছে। আধুনিক চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ প্ৰভাৱত পূৰ্বতে ঘৰত প্ৰসৱ কৰা আৰু প্ৰসৱৰ সময়ত পালন কৰা ৰীতি-নীতি বিলাকো সলনি হৈছে আৰু কিছুমান লুপ্ত হৈছে। তদুপৰি অসমীয়া সংস্কৃতিৰ সৈতে কাৰ্বি সংস্কৃতিৰ পাৰস্পৰিক সমন্বয় হোৱাত কিছুমান কাৰ্বি লোকেও পঞ্চামৃত, অন্নপাশন আদি অনুষ্ঠিত কৰা দেখা যায়। ❑

প্ৰসংগসূত্ৰ ঃ

(১) বৰ্মণ. শিৱনাথ। ভাৰতীয় চিন্তা। পৃ-২২০।
(২) হাঞ্চেপী, গীতা। কাৰ্বি সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ আভাস। পৃ-১৬৯।

সহায়িকা গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

কলিতা, থুনু (সম্পা.)। অসমৰ লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাস। সদৌ অসম লেখিকা সমাৰোহ সমিতি, ২০১৪।
দাস, বসন্ত। কাৰ্বি সংস্কৃতিৰ ধাৰা। কাৰ্বি লামেত আচং, ২০০০।
বৰ্মণ, শিৱনাথ। ভাৰতীয় চিন্তা। অসম পাব্লিচিং কোম্পানী, ২০০৩।
ৰাজবংশী, পৰমানন্দ (সম্পা.)। অসমীয়া জাতি আৰু সংস্কৃতি। অসমীয়া বিভাগ, প্ৰাগজ্যোতিষ মহাবিদ্যালয়, ২০০৩।
হাঞ্চেপী, গীতা। কাৰ্বি সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ আভাস। সম্প্ৰীতি প্ৰকাশন, ২০১৯।
অপ্ৰকাশিত গৱেষণা গ্ৰন্থ বৰা, ৰমেশ। অসমীয়া আৰু বড়ো জনগোষ্ঠীৰ লোকবিশ্বাস আৰু লোকাচাৰ ঃ এটি তুলনামূলক অধ্যয়ন। অসমীয়া বিভাগ, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, ২০১৮।

তথ্যদাতাৰ নাম ঃ

(ক) মিলবন টেৰণপী, বয়স-৫০, গৃহিণী, ডকমকা, কাৰ্বি আংলং।
(খ) গোলাপী দেৱী, বয়স-৬০, গৃহিণী, গোলাঘাট।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

'অসম সাহিত্য সভা'ৰ মহিলা সভাপতিৰ অভিভাষণত প্ৰতিফলিত জাতীয় চেতনা

ডৰথী শইকীয়া

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
জগন্নাথ বৰুৱা বিশ্ববিদ্যালয়, যোৰহাট
তৰাজান (অসম)-৭৮৫০০১
৬০০৩৩৯০২৫৩
saikiadorothy6@gmail.com

ড° পাপুমণি হাজৰিকা

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
জগন্নাথ বৰুৱা বিশ্ববিদ্যালয়, যোৰহাট
তৰাজান (অসম)-৭৮৫০০১
৯৮৫৪০৪০২১২
papumonijb@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

'অসম সাহিত্য সভা' হৈছে ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ সৰ্বাঙ্গীণ উন্নতিৰ বাবে গঠিত অসমৰ সৰ্ববৃহৎ অৰাজনৈতিক অনুষ্ঠান। ১৯১৭ চনৰ ২৬- ২৭ ডিচেম্বৰত শিৱসাগৰত এই অনুষ্ঠানৰ প্ৰথম অধিৱেশন অনুষ্ঠিত হয়। এই সভাত সভাপতিত্ব কৰিছিল পদ্মনাথ গোহাঞি বৰুৱাই। ১৯১৭ চনত শিৱসাগৰত অনুষ্ঠিত হোৱা 'আসাম এছ'চিয়েচন'ৰ বছৰেকীয়া অধিৱেশনত এখন 'সদৌ অসম সাহিত্য সন্মিলন'ৰ ব্যৱস্থা কৰা হৈছিল। এই সন্মিলনীতেই ২৬ ডিচেম্বৰত 'অসম সাহিত্য সভা' গঠন কৰা হয়। প্ৰথমতে 'আসাম সাহিত্য সভা' হিচাপে ইয়াৰ পঞ্জীয়ন কৰা হৈছিল। ১৯৪৪ চনত নীলমণি ফুকন (বাগ্মীবৰ)ৰ সভাপতিত্বত হোৱা অধিৱেশনত অনুষ্ঠানটিৰ নাম 'অসম সাহিত্য সভা' কৰা হয়। প্ৰতি বছৰে 'অসম সাহিত্য সভা'ৰ বিশেষ বাৰ্ষিক অধিৱেশন অনুষ্ঠিত কৰা হয়। ১৯৯৯ চনৰপৰা সভাপতিৰ কাৰ্যকাল দুবছৰীয়া কৰা হয়। দুবছৰৰ অন্তৰালত সভাই মূল অধিৱেশন অনুষ্ঠিত কৰে। অসমৰ বৌদ্ধিক ক্ষেত্ৰৰ অগ্ৰণী ব্যক্তিসকলক এই মূল সভাৰ সভাপতিৰ দায়িত্ব অৰ্পণ কৰা হয়। অসমৰ সৰ্বাঙ্গীণ দিশক সামৰি এই সভাপতিসকলে অধিৱেশনত একোটা দীঘলীয়া অভিভাষণ প্ৰদান কৰে। অধিৱেশনবোৰত সভাপতিসকলে দেশজাতিৰ লগত জড়িত আৰু সমসাময়িক পৰিস্থিতিৰ লগত জড়িত একোটা তথ্যসমৃদ্ধ অভিভাষণ আগবঢ়ায়। ১৯১৭ চনৰপৰা বৰ্তমান কাললৈকে 'অসম সাহিত্য সভা'ৰ এই সুদীৰ্ঘ পৰিক্ৰমাত কেৱলমাত্ৰ দুগৰাকী মহিলাই সভাপতিৰ পদ অলংকৃত কৰিছে। ১৯৫৪ চনত যোৰহাটত অনুষ্ঠিত অধিৱেশনত সভাপতিত্ব কৰিছিল নলিনীবালা দেৱীয়ে আৰু ১৯৯১ চনত দুধনৈত অনুষ্ঠিত অধিৱেশনত সভাপতিত্ব কৰিছিল নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়ে। অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য জগতত এই দুয়োগৰাকী সাহিত্যিকৰ স্বকীয় অৱদান নিহিত হৈ আছে। 'অসম সাহিত্য সভা'ৰ সভাপতি পদৰপৰা তেওঁলোকে প্ৰদান কৰা অভিভাষণৰ সাহিত্যিক আৰু সামাজিক মূল্য নিশ্চয়কৈ বিশ্লেষণৰ বিষয়। এই আলোচনাপত্ৰৰ জৰিয়তে এই দুগৰাকী সভাপতিৰ অভিভাষণত সন্নিৱিষ্ট প্ৰসংগত জাতীয় চেতনা কি দৰে নিহিত হৈ আছে তাক বিচাৰ কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ

অসম সাহিত্য সভা, অভিভাষণ, ভাষা, সাহিত্য, সমাজ, জাতীয়তা।

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

বিভিন্ন প্ৰেক্ষাপটত অসম আৰু অসমীয়া জাতিয়ে সময়ে সময়ে অস্তিত্ব ৰক্ষাৰ সংগ্ৰামত অৱতীৰ্ণ হ'ব লগা হৈছে। অসমীয়া ভাষা- সাহিত্যৰ অস্তিত্ব ৰক্ষাৰ স্বাৰ্থতে সমাজ-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ লগত জড়িত অসমৰ অগ্ৰণী লোকসকলৰ প্ৰচেষ্টাত 'অসম

সাহিত্য সভা' নামৰ অনুষ্ঠানটিৰ জন্ম হয়। অসমৰ সৰ্বস্তৰৰ উন্নতি সাধনেই এই সভাৰ উদ্দেশ্য। ১৯১৭ চনৰ ২৬ ডিচেম্বৰত, শিৱসাগৰত পদ্মনাথ গোহাঞি বৰুৱাৰ সভাপতিত্বত সভাৰ প্ৰথম অধিৱেশন অনুষ্ঠিত হয়। ১৯২৪ চনৰ ৫ মে'ত 'আসাম সাহিত্য সভা' নামেৰে সভাক পঞ্জীয়ন কৰে। ১৯৪৪ চনত নীলমণি ফুকন (বাগ্মীবৰ)ৰ সভাপতিত্বত বহা অধিৱেশনত সভাৰ নাম 'অসম সাহিত্য সভা' কৰা হয়। ১৮৮৮ চনত কলিকতাত পঢ়িবলৈ যোৱা প্ৰবাসী অসমীয়া ছাত্ৰসকলৰ মনত উদয় হোৱা ভাষিক সচেতনতাৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা 'অ.ভা.উ.সা সভা'ৰ বিকশিত ৰূপেই 'অসম সাহিত্য সভা' বুলি ক'ব পৰা যায়। 'অ.ভা.উ.সা'ৰ পৃষ্ঠভূমি আছিল ভাষিক- সাংস্কৃতিক আৰু সাহিত্যিক চেতনা। যিকোনো এক জনগোষ্ঠীয়ে 'জাতি' হিচাপে স্বীকৃতি পাবলৈ উমৈহতীয়া কিছুমান গুণ আৰু উপাদানৰ প্ৰয়োজন হয়। তাৰ ভিতৰত ঘাই উপাদান হৈছে উমৈহতীয়া 'ভাষা' আৰু 'সাহিত্য'। জাতি হিচাপে স্বীকৃতি প্ৰাপ্ত জনসমূহৰ বাবে সাংস্কৃতিক পৰাধীনতা এক ডাঙৰ অন্তৰায়। অসমীয়া জাতিয়েও ঊনবিংশ শতিকাৰ তৃতীয়-চতুৰ্থ দশকত এনে এক বিপৰ্যয়ৰ সন্মুখীন হৈছিল। ১৮৩৬ চনত অসমৰ স্কুল, আদালতৰপৰা অসমীয়া ভাষাক আঁতৰাই প্ৰশাসনীয় কামৰ সুবিধাৰ বাবে ব্ৰিটিছে চৰকাৰী ভাষা হিচাপে বঙলা ভাষাক প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল। অসমীয়া ভাষাই নিজৰ ঠাইতে চৰকাৰী মৰ্যাদা হেৰুৱাই ভাষা-সাহিত্য বিকাশৰ সামান্য সাম্ভাব্যতাকো হেৰুৱালে। সেই একে সময়তে ১৮৩৬ চনত আমেৰিকান বেপ্টিষ্ট মিছনেৰীসকলে খ্ৰীষ্ট ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ উদ্দেশ্যে অসমত পদাৰ্পণ কৰিছিল। ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ ক্ষেত্ৰত অসমীয়া ভাষাৰ দুৰ্যোগৰ কথা উপলব্ধি কৰি তেওঁলোকে অসমীয়া ভাষাক চৰকাৰী ভাষা হিচাপে পুনৰ প্ৰতিষ্ঠাৰ ক্ষেত্ৰত আগভাগ ল'লে। মিছনেৰীসকলৰ সহযোগত সেই সময়ৰ অসমৰ বৌদ্ধিক ক্ষেত্ৰত অগ্ৰণী ব্যক্তি আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকন, হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা আদিয়ে অসমীয়া ভাষাক পুনৰ অসমৰ চৰকাৰী ভাষা হিচাপে প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰ ক্ষেত্ৰত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিলে। ঊনবিংশ শতিকাৰ চতুৰ্থ দশকত অসমৰপৰা একাংশ ছাত্ৰ কলিকতাত উচ্চ শিক্ষা গ্ৰহণ কৰিবলৈ গৈছিল। এই ছাত্ৰসকলে সেই সময়ত বংগৰ নৱজাগৰণ আৰু সাহিত্যিক আন্দোলনৰদ্বাৰা প্ৰভাৱান্বিত হৈছিল। বংগৰ নৱজাগৰণে অসমীয়া ছাত্ৰসকলৰ মনতো নিজ মাতৃভাষা আৰু সাহিত্যৰ প্ৰতি সচেতনতা সৃষ্টি কৰিলে। ছাত্ৰসকলৰ মনত উদয় হোৱা এই জাতীয় চেতনাই 'অ.ভা.উ.সা সভা'ৰ দৰে এক অনুষ্ঠানৰ জন্ম দিলে। অসমীয়া ভাষাৰ উন্নতি সাধনেই এই সভাৰ উদ্দেশ্য আছিল। পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ত এই অনুষ্ঠানৰ আদৰ্শতেই 'অসম সাহিত্য সভা'ৰ জন্ম হ'ল। অসমীয়া ভাষা- সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ সৰ্বাংগীন উন্নতি সাধনেই এই সভাৰ উদ্দেশ্য। সেয়ে এই অনুষ্ঠানক অসমৰ 'জাতীয় অনুষ্ঠান' আখ্যা দিব পাৰি। যিয়ে অসমৰ উমৈহতীয়া ভাষা, সাহিত্য, সংস্কৃতিৰ উন্নতিৰ বাবে জন্মলগ্নৰ পৰাই চেষ্টা কৰি আহিছে। 'অসম সাহিত্য সভা'ই বছৰি ইয়াৰ অধিৱেশন অনুষ্ঠিত কৰি আহিছে। প্ৰত্যেক অধিৱেশনৰ বাবে অসমৰ বৌদ্ধিক ক্ষেত্ৰৰ অগ্ৰণী ব্যক্তিসকলৰ মাজৰ এজনক সভাপতি হিচাপে নিৰ্বাচন কৰা হয়। সভাপতিসকলে অধিৱেশনসমূহত অসমৰ সৰ্বাংগীণ উন্নতি সাধনৰ বাবে এক তথ্যপূৰ্ণ আৰু গুৰুগম্ভীৰ অভিভাষণ আগবঢ়াই।

অসমীয়া ভাষাৰ বিপৰ্যয়ৰ পৰাই অসমত ভাষিক জাতীয় চেতনাৰ উত্থান হৈছিল। ঔপনিৱেশিকতাবাদে সৃষ্টি কৰা ভাষিক আগ্ৰাসনৰ ফলত অসমীয়া ভাষাই নিজ জন্মভূমিতে বিতাৰিত হ'ব লগা ঘটনাই তদানীন্তন অসমৰ শিক্ষিত মধ্যবিত্ত শ্ৰেণীক সজাগ কৰি তুলিছিল। এই সজাগতাই জাতীয় চেতনাৰ জন্ম দিছিল। অসমত প্ৰথম অৱস্থাত ভাষা-সাহিত্যক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই জাতীয়তাবাদী চেতনাৰ উত্থান হ'ল। ঔপনিৱেশিক কালত এই জাতীয়চেতনা কেৱল ভাষাক কেন্দ্ৰ কৰিয়ে গঢ় লৈ উঠিছিল। শিক্ষিত মধ্যবিত্ত শ্ৰেণীয়ে ব্ৰিটিছৰ আনুগত্য স্বীকাৰ কৰিয়েই অসমীয়া ভাষাৰ উন্নতি হোৱাটো কামনা কৰিছিল। জাতীয় চেতনাক সবল ৰূপত আত্মপ্ৰকাশ কৰাত সহায় কৰে বিভিন্ন সংগঠন আৰু অনুষ্ঠান- প্ৰতিষ্ঠানসমূহে। অসমৰ বৌদ্ধিক সমাজৰ মাজত উদয় হোৱা জাতীয় চেতনাৰ পৰাই 'অসম সাহিত্য সভা'ৰ দৰে অনুষ্ঠানৰ জন্ম হয়। এই অনুষ্ঠানৰ নামকৰণৰ পৰাই ইয়াৰ চাৰিত্ৰিক গঠন সম্পৰ্কে ধাৰণা লাভ কৰিব পাৰি। এই অনুষ্ঠান কেৱল 'অসমীয়া'ৰ সাহিত্য সভা নহয়। ই 'অসম'ৰ সাহিত্য সভা। গতিকে বিভিন্ন ভাষিক-সাংস্কৃতিক বৈচিত্ৰ্যৰে গঠিত সমগ্ৰ অসমৰ সামগ্ৰিকতাক ই সামৰি লৈছে। বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ স্বকীয় বৈশিষ্ট্য অটুট ৰাখি সামগ্ৰিক ৰূপত বৃহত্তৰ অসমীয়া ভাষা- সাহিত্যৰ বিকাশ সাধনেই এই অনুষ্ঠানৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য। সভাপতিসকলে অধিৱেশনত প্ৰদান কৰা অভিভাষণৰ জৰিয়তেও এই কথাই প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়।

'অসম সাহিত্য সভা'ৰ মহিলা সভাপতিৰ অভিভাষণত

প্ৰতিফলিত জাতীয় চেতনা শীৰ্ষক আলোচনা পত্ৰৰ জৰিয়তে নলিনীবালা দেৱী আৰু নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়ে 'অসম সাহিত্য সভা'ৰ সভাপতি আসনৰপৰা প্ৰদান কৰা অভিভাষণত নিহিত হৈ থকা জাতীয় চেতনাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

'অসম সাহিত্য সভা'ৰ মহিলা সভাপতিৰ অভিভাষণত প্ৰতিফলিত জাতীয় চেতনা শীৰ্ষক বিষয়টিৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ এনেধৰণৰ—

● অভিভাষণসমূহৰ জৰিয়তে অসমীয়া জাতীয়তাবাদৰ স্বৰূপ সম্পৰ্কে ধাৰণা লাভ।

● অভিভাষণসমূহত কিদৰে জাতীয় চেতনা প্ৰতিফলিত হৈছে সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।

● জাতীয় চেতনাৰ ভাব জাগ্ৰত কৰিবলৈ অভিভাষণসমূহে জনোৱা আহ্বান আৰু ইয়াৰ গুৰুত্ব সম্পৰ্কে অৱগত হোৱা

০.৩ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

'অসম সাহিত্য সভা'ৰ সভাপতিসকলে প্ৰদান কৰা অভিভাষণসমূহ সভাপতিজনৰ জ্ঞান, অভিজ্ঞতা আৰু গৱেষণা আধাৰিত। এই অভিভাষণসমূহত ইতিহাস, সমাজ, ৰাজনীতি, অৰ্থনীতি, ভাষা-সাহিত্যৰ বিকাশৰ সামগ্ৰিক দিশসমূহ নিহিত হৈ থাকে। 'অসম সাহিত্য সভাই' কেনেধৰণৰ প্ৰসংগৰ জৰিয়তে জাতীয় চেতনা জাগ্ৰত কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল এই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিবৰ বাবে এই অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব লক্ষ্য কৰা যায়।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ বিষয় অধ্যয়নৰ পদ্ধতি হিচাপে বৰ্ণনাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.৫ তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

বিষয় সম্পৰ্কে আলোচনা কৰোঁতে মুখ্য উৎস আৰু গৌণ উৎসৰ সহায় লোৱা হৈছে। নলিনীবালা দেৱী আৰু নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈৰ অভিভাষণৰ প্ৰকাশিত ৰূপক মুখ্য উৎস হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছে। এই ক্ষেত্ৰত *অসম সাহিত্য সভা বাৰ্ষিকী, ২৩ শ অধিৱেশন যোৰহাট* আৰু *অসম সাহিত্য সভাৰ ভাষণাৱলী পঞ্চম খণ্ড*ক মুখ্য উৎস হিচাপে লোৱা হৈছে। বিষয়ৰ লগত সম্পৰ্কিত বিভিন্ন গ্ৰন্থক গৌণ উৎস হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

০.৬ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

বিষয়টো অধ্যয়নৰ পৰিসৰ হিচাপে ১৯৫৪ চনৰ যোৰহাট অধিৱেশনত নলিনীবালা দেৱীয়ে প্ৰদান কৰা অভিভাষণ আৰু ১৯৯১ চনত দুধনৈ অধিৱেশনত নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়ে প্ৰদান কৰা অভিভাষণৰ বিশ্লেষণ কৰা হ'ব। অভিভাষণ দুটা বিশ্লেষণৰ ক্ষেত্ৰত কেৱল জাতীয়তাবাদৰ প্ৰসংগক অগ্ৰাধিকাৰ প্ৰদান কৰা হৈছে।

১.০ বিষয় বিশ্লেষণ ঃ

এক নিৰ্দিষ্ট জনসমষ্টিয়ে বসবাস কৰা একোটা অঞ্চলৰ নিৰ্ধাৰিত ভৌগোলিক, সামাজিক, সাংস্কৃতিক, ৰাজনৈতিক পৰিসীমা থাকে। সেই পৰিসীমাৰ ভিতৰত সুসংবদ্ধভাৱে সুৰক্ষিত হৈ জীৱন নিৰ্বাহ কৰিবলৈ তেওঁলোকে কিছুমান উমৈহতীয়া নীতি আৰু কৰ্তব্য পালন কৰে। এই উমৈহতীয়া চিন্তা আৰু কৰ্ম-কাণ্ডৰ যি ধাৰণা তাকেই আঞ্চলিকতাবাদ বুলি ক'ব পাৰি। আঞ্চলিকতাবাদৰ পৰৱৰ্তী পৰ্যায়তে জাতীয়তাবাদৰ উত্থান ঘটে। জাতীয়তাবাদ হৈছে এক বিশেষ আদৰ্শ বা মতবাদ যি ৰাজনৈতিক প্ৰেক্ষাপটত জড়িত হৈ থাকে। কোনো এক জাতি-গোষ্ঠীয়ে উমৈহতীয়া ভাষা, সংস্কৃতি, ৰাজনৈতিক আৰু অৰ্থনৈতিক স্বত্ব উপভোগ কৰিবলৈ গঢ়ি তোলা একতাৰ ভাব বা আদৰ্শই হৈছে জাতীয়তাবাদ। হেমকোষৰ মতে জাতীয়তাবাদৰ অৰ্থ হৈছে—"স্বজাতিৰ প্ৰীতি আৰু জাতীয় চেতনাকেন্দ্ৰিক মত বা দৰ্শন"। জাতি বা জাতীয়চেতনা গঠন হ'বলৈ প্ৰয়োজনীয় দুটা গুৰুত্বপূৰ্ণ উপাদান হৈছে 'ভাষা-সাহিত্য'। এই ভাষা-সাহিত্যক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই অসমত প্ৰথম অৱস্থাত জাতীয় চেতনাৰ উত্থান ঘটিছিল।

অসমীয়া জাতীয়তাবাদৰ ধাৰণাৰ আৰম্ভণি আৰু বিকাশ আৰম্ভ হৈছিল ব্ৰিটিছৰ অসম আগমনৰ পাছত অৰ্থাৎ ঊনবিংশ শতিকাৰ প্ৰথমাৰ্ধত। অসমৰ এই জাতীয় চেতনা গঢ়ি উঠিছিল ভাষা আৰু সংস্কৃতিৰ পৃথক পৰিচয়ৰ ভেটিত। ব্ৰিটিছ ঔপনিৱেশিকতাবাদে অসমলৈ প্ৰব্ৰজন ঘটোৱা বঙালী লোকসকলৰ ভাষা-সংস্কৃতিয়ে অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিলৈ ভাবুকি কঢ়িয়াই অনা বুলি কৰা ধাৰণাৰ পৰিপেক্ষিতত‌েই অসমীয়া শিক্ষিত মধ্যবিত্তৰ মনত জাতীয় চেতনাৰ উত্থান হৈছিল। প্ৰশাসনীয় কামৰ সুবিধাৰ বাবে ব্ৰিটিছ ৰাজতন্ত্ৰই অসমীয়া ভাষাৰ পৰিৱৰ্তে অসমত বঙলা ভাষাৰ প্ৰৱৰ্তন কৰিছিল। ব্ৰিটিছৰ আগমনৰ ফলত পাশ্চাত্য সংস্কৃতিৰ প্ৰভাৱে অসমৰ সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰলৈ নতুনত্ব কঢ়িয়াই আনিলে যদিও ভাষিক দিশত অনিশ্চয়তা কঢ়িয়াই আনিলে। বঙলা ভাষাৰ আগ্ৰাসনৰপৰা অসমীয়া ভাষাক ৰক্ষা কৰা আৰু ইয়াৰ স্বকীয়তা বৰ্তাই ৰখাৰ বাবে এচাম চিন্তাশীল ব্যক্তিয়ে নেতৃত্ব প্ৰদান কৰিলে। এই ক্ষেত্ৰত

ভাৰতীয় প্ৰেক্ষাপটত উত্থান ঘটা বিভিন্ন জাতীয়তাবাদী চিন্তাধাৰা, আন্দোলন যেনে— বংগ-ভংগ, স্বদেশী আন্দোলন, অহিংস সংগ্ৰাম আদিয়ে প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিলে। বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সাহিত্যৰ পটভূমি নিৰ্মাণ আৰু অসমীয়া ভাষাক কেন্দ্ৰ কৰি গঢ় লৈ উথা জাতীয়তাবাদী চিন্তা উত্থানৰ ক্ষেত্ৰত 'অ.ভা.উ.সা সভা', 'অসম এছোছিয়েচন', 'অসম সাহিত্য সভা'ৰ দৰে অনুষ্ঠানসমূহে প্ৰত্যক্ষ ভূমিকা পালন কৰিলে। *১৮৭৩ চনত* [১] অসমৰ স্কুল, আদালতত অসমীয়া ভাষাক পুনৰ প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰপৰা অসমীয়া সাহিত্যৰ বিকাশৰ যাত্ৰাত এই অনুষ্ঠানসমূহৰ অৱদান উল্লেখযোগ্য। ১৯১৭ চনত গঠন হোৱা 'অসম সাহিত্য সভা'ই প্ৰধানকৈ অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ উত্তৰণৰ বাবে আনুষ্ঠানিক নেতৃত্বৰ দায়িত্ব বহন কৰিছে। সভাৰ নিৰ্বাচিত সভাপতিসকলে প্ৰদান কৰা অভিভাষণসমূহত ভাষা-সাহিত্যৰ স্বৰূপ, বিকাশৰ বাবে পৰামৰ্শ, সাহিত্যিক-পাঠকৰ কৰণীয় ইত্যাদি বিভিন্ন দিশৰ উল্লেখ পোৱা যায়। এই অভিভাষণসমূহে জনসাধাৰণৰ মনত জাতীয় চেতনাৰ উত্থান ঘটোৱাৰ ক্ষেত্ৰত অৰিহণা আগবঢ়াইছে। সভাপতিসকলৰ অভিভাষণৰ জৰিয়তে তেওঁলোকৰ জাতীয় চেতনাৰ উমান পোৱা যায়।

নলিনীবালা দেৱী আৰু নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈৰ অভিভাষণৰ মাজেদিও এনে জাতীয় চেতনা প্ৰতিফলিত হৈছে। 'ভাষা' হৈছে জাতি আৰু জাতীয়তাৰ মূল উপাদান সেয়ে দুয়োগৰাকী সভাপতিৰ অভিভাষণত অসমীয়া ভাষাৰ অগ্ৰগতিৰ প্ৰতি দৃষ্টি প্ৰদান কৰা হৈছে। জাতীয় চেতনা বা দেশপ্ৰেমৰ লগত সাংস্কৃতিক আৰু ৰাজনৈতিক দিশ নিহিত হৈ থাকে। জন্মভূমিৰ প্ৰতি প্ৰেম-ভালপোৱা, ঐতিহ্য-প্ৰীতি বা অতীত গৌৰৱৰ প্ৰতি সচেতনতা, ভাষিক আৰু সাহিত্যিক বিকাশৰ প্ৰতি সচেতনতা আদিয়েই জাতীয় চেতনাৰ বাহক। দুয়োগৰাকী সভাপতিৰ অভিভাষণত এই সাংস্কৃতিক জাতীয়তাবাদী ভাব প্ৰতিফলিত হৈছে। নলিনীবালা দেৱীয়ে আৰম্ভণিতেই অসমীয়া ভাষাৰ গুণ-গৰিমা উল্লেখ কৰিছে। লগতে অসমৰ ঐতিহ্যৰ সোঁৱৰণ কৰিছে। একেদৰে নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়েও অসম আৰু অসমীয়া ভাষাক প্ৰণিপাত জনাইছে। ঐতিহ্য প্ৰীতিক জাতীয়তাবাদৰ প্ৰাৰম্ভিক বৈশিষ্ট্য বুলিব পাৰি। দুয়োগৰাকী সভাপতিৰ অভিভাষণত অসম আৰু অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ যি গৌৰৱময় ঐতিহ্য সেই ঐতিহ্যক শ্ৰদ্ধাৰে সোঁৱৰণ কৰা পৰিলক্ষিত হয়।

নলিনীবালাদেৱীয়ে অভিভাষণৰ আৰম্ভণিতেই নিজ জন্মভূমিৰ প্ৰতি থকা নিজৰ প্ৰেমক ব্যক্ত কৰিছে— "জনমৰে পৰা ভাল পাওঁ মোৰ চিৰচেনেহী অসমী আইক, ভাল পাওঁ মোৰ অসমৰ আকাশ, বতাহ জোন বেলি তৰা। *ভাল পাওঁ অসমৰ সুৰদি শুৱলা ভাষা।"*[২] নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়েও *"হে মোৰ চিৰ চেনেহী দেশ আৰু চিৰ চেনেহী ভাষা তোমাক প্ৰথমেই প্ৰণিপাত জনাইছোঁ"*[৩] বুলি দেশ মাতৃক আৰু মাতৃভাষাক শ্ৰদ্ধা জনাই অভিভাষণৰ আৰম্ভণি কৰিছে।

অসমীয়া জাতি গঠন প্ৰক্ৰিয়া সম্পৰ্কে নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়ে তেওঁৰ অভিভাষণত বৰ্ণনা কৰিছে। অতীতৰ পৰাই অসমলৈ বিভিন্ন গোষ্ঠীৰ লোকৰ প্ৰব্ৰজন ঘটিছে। সেই সকলোবোৰ গোষ্ঠীৰ ঐক্যসূত্ৰৰে অসম আৰু অসমীয়া জাতি গঠিত হৈছে। তেওঁ কৈছে— *"সেই সকলেই অসমীয়া যাৰ অন্তৰে অসমৰ সুখত হাঁহে, দুখত কান্দে। যি সকলে "এয়ে মোৰ জন্মভূমি, এয়ে মোৰ কৰ্মভূমি, এয়ে মোৰ আই বুলি অসমৰ মাটি সাৱটি লৈছে সেইসকলেই অসমীয়া"*[৪] অসমৰ এই সমন্বয়ৰ ঐক্যক প্ৰেম আৰু সমিলমিলেৰে বৰ্তাই ৰাখিবলৈ নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়ে আহ্বান জনাইছে। তেওঁ গীতা আৰু বুদ্ধৰ বাণীৰ প্ৰসংগ উত্থাপনেৰে প্ৰেম আৰু মৈত্ৰীৰদ্বাৰা বিশ্বৰ সকলো মানৱেই এক হৈ থাকিব পাৰে বুলি কৈছে। নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়ে এই সমন্বয়ৰ ঐক্যক এইবুলি স্মৰণ কৰিছে— *"অসমৰ ইতিহাসৰ যাউতি যুগীয়া সমন্বয় তথা ঐক্যৰ সূত্ৰটোক আজি স্মৰণ কৰিব পাৰোঁ এই ভাৱেও - 'সংগচ্ছধ্বং, সংবদধ্বং সংবোমানাংসি জনতাম'— এক হৈ গমন কৰিম, এক হৈ কম, সকলোৰে মনক এক বুলি জানিম।"*[৫] অসমৰ সভ্যতা গঢ় লৈ উঠিছে পূব-পশ্চিম সকলো ফালৰ সমন্বয়ৰ জৰিয়তে। নিজ দেশৰ এই সমন্বয়ৰ প্ৰক্ৰিয়া সম্পৰ্কে আৰু ঐতিহ্যৰ প্ৰতি জ্ঞান থাকিলেহে দেশখনৰ প্ৰতি দেশবাসীৰ মনত জাতীয় চেতনাৰ উদয় হ'ব। অনৈক্যৰ মাজত ঐক্যৰ যি যোগসূত্ৰ সেই সংযোগসূত্ৰক চিনি পালেহে অসমীয়া জাতিৰ স্বকীয়তা বৰ্তি থাকিব।

সভাপতি দুগৰাকীৰ ভাষণত অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ প্ৰতি সচেতনতা স্পষ্টৰূপত দেখা পোৱা যায়। অসমীয়া ভাষাৰ স্বতন্ত্ৰতা প্ৰতিষ্ঠাৰ ক্ষেত্ৰত অসমীয়া ভাষাৰ উৎপত্তি সম্পৰ্কীয় সম্পূৰ্ণ তথ্য নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়ে অভিভাষণত উল্লেখ কৰিছে। বাণীকান্ত কাকতি, সুনীতি কুমাৰ চট্টোপাধ্যায়ে অসমীয়া ভাষাৰ উৎপত্তি সম্পৰ্কে যি মত আগবঢ়াইছে সেই মতসমূহ উল্লেখ কৰি অসমীয়া ভাষাই

স্বতন্ত্ৰ ভাষাৰূপ গ্ৰহণ কৰাৰ সম্পূৰ্ণ তথ্য তেওঁ প্ৰদান কৰিছে। অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰাচীনত্ব সম্পৰ্কে ক'বলৈ গৈ তেওঁ সপ্তম শতিকাত অসমলৈ অহা চীনা পৰিব্ৰাজক হিউচেন চাঙৰ টোকাৰ প্ৰসংগ উত্থাপন কৰিছে। হিউৱেন চাঙে তেওঁৰ টোকাত এই ৰাজ্যৰ ভাষা মধ্য ভাৰতৰ ভাষাৰপৰা কিছু পৃথক বুলি উল্লেখ কৰিছিল। ইয়াৰ উপৰি তাম্ৰশাসনসমূহেও অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰাচীনতাৰ প্ৰমাণ দিয়ে বুলি তেওঁ কৈছে। আৰ্য্যমূলীয় অসমীয়া ভাষাই বিভিন্ন স্তৰ অতিক্ৰম কৰি প্ৰাকৃত, অপভ্ৰংশ আদি স্তৰৰ পৰা বৰ্তমানৰ ৰূপ পোৱাত আৰ্য্যভিন্ন ভাষা গোষ্ঠীৰ সংশ্ৰৱেও প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰাৰ কথা তেওঁ উল্লেখ কৰিছে। লগতে কৈছে যে এই কাৰক বা প্ৰভাৱসমূহে অসমীয়া ভাষাৰ স্বকীয়তাক বিলুপ্ত কৰিব পৰা নাই। ভাষাৰ লগতে অসমীয়া সাহিত্যৰ প্ৰাচীনত্ব সম্পৰ্কেও তেওঁ সচেতনতা প্ৰকাশ কৰিছে। চৰ্যাপদসমূহেই অসমীয়া সাহিত্যৰ আদি স্তৰৰ নিদৰ্শন। চৰ্যাপদৰ ভাষাৰ বৈশিষ্ট্যই অসমীয়া ভাষাৰ লগত থকা সাদৃশ্যৰ কথা প্ৰমাণ কৰে। নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়ে এই মতৰ সমৰ্থন কৰি কৈছে— *"কামৰূপ নামটোৰেই তান্ত্ৰিক নাম বুলি মই ক'ব খোজো। সপ্তম অষ্টম শতিকা মানৰ পৰাই কামৰূপে তন্ত্ৰ প্ৰধান ক্ষেত্ৰৰূপে বিশেষ প্ৰসিদ্ধি লাভ কৰে। সেয়ে দশম শতিকামানৰ বৌদ্ধ তান্ত্ৰিক সহজযান মাৰ্গৰ এই দোহাসমূহে প্ৰাচীন অসমীয়া সাহিত্যৰ নিদৰ্শন দাঙি ধৰাত আচৰিত হ'বৰ কোনো কাৰণ নাই।"*[৬] প্ৰাক্‌শংকৰী যুগত ৰচিত হোৱা মাধৱ কন্দলীৰ ৰামায়ণৰ অনুবাদ আদিৰ প্ৰসংগ উত্থাপন কৰি তেওঁ অসমীয়া সাহিত্যৰ প্ৰাচীন গৌৰৱৰ সোঁৱৰণ কৰিছে। অসমীয়া ভাষাৰ উৎপত্তি আৰু বিকাশৰ দৰেই অসমীয়া সাহিত্যৰ বিকাশৰ ধাৰা সম্পৰ্কে তেওঁ পুংখানুপুংখকৈ বৰ্ণনা কৰিছে। ইয়াৰ জৰিয়তে তেওঁৰ নিজ ভাষা-সাহিত্যৰ প্ৰতি শ্ৰদ্ধা, ঐতিহ্য-প্ৰীতিৰ প্ৰমাণ পোৱা যায়। ইয়াৰোপৰি অসমৰ জনগণক ভাষা-সাহিত্যৰ গৌৰৱময় ইতিহাসৰ বিষয়ে সজাগ কৰি দিবলৈও তেওঁ এই অভিভাষণৰ জৰিয়তে যত্ন কৰিছে। এই সম্পৰ্কে তেওঁ নিজেই অভিভাষণত উল্লেখ কৰিছে এইদৰে— *" অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য ঐতিহ্যৰ কথা অতি চমুকৈ এই ভাষণত উল্লেখ কৰাৰ কাৰণ এইটোও যে, অসমৰ ৰাজ্যভাষা অসমীয়া গুণগত দিশৰ পৰাই যে হৈছে তাৰ প্ৰমাণ স্পষ্টকৈ দাঙি ধৰা।"*[৭] তেওঁৰ মতে ভাষা এটাই নিজ গুণৰ জৰিয়তেহে মৰ্যাদা লাভ কৰে। আবেগেৰে এটা ভাষাই মৰ্যাদা আহৰণ কৰিব নোৱাৰে। অসমৰ অন্যান্য জনগোষ্ঠীৰ ভাষাকো নিজৰ গুণৰ জৰিয়তে নিজৰ ভাষা-সাহিত্যৰ বিকাশ সাধন কৰিবলৈ তেওঁ আহ্বান জনাইছে। এই ক্ষেত্ৰত অসমীয়া ভাষাই তেওঁলোকৰ ভাষাৰ ওপৰত আগ্ৰাসী মনোভাব পোষণ নকৰে বুলি তেওঁ জনসাধাৰণক সজাগ কৰিব বিচাৰিছে। নলিনীবালা দেৱীয়েও তেওঁৰ অভিভাষণত অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ গৌৰৱপূৰ্ণ অতীতৰ কথা উত্থাপন কৰিছে। তেওঁৰ অভিভাষণত ভাৰতবৰ্ষৰ উদাৰ সাম্যবাদী ঋষি সাহিত্যিকসকলে গঢ়ি যোৱা মহৎ সাহিত্যিক সমাজখনৰ ঐতিহ্যৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। বৰ্তমানৰ নৱতন্ত্ৰ ৰচনাকাৰী সাহিত্যসেৱীসকলো সেই ঋষিসকলৰ সন্ততিয়ে বুলি তেওঁ উল্লেখ কৰিছে। গতিকে সকলোকে সাহিত্য-সেৱাত ব্ৰতী হৈ দেশমাতৃৰ সেৱা আগবঢ়াবলৈ কৈছে। তেওঁ সাহিত্যিকসকলক সাহিত্য ৰচনাৰ জৰিয়তে দেশ প্ৰেমৰ স্বাক্ষৰ বহন কৰিবলৈ আহ্বান জনাইছে— *" আজি এই মহান যজ্ঞত আমি সকলোৰেই প্ৰতিজ্ঞাৱদ্ধ হৈ আমাৰ এই অপৰূপ প্ৰদেশখনিত সাহিত্য সাধনাৰ যোগেৰে সকলো ভেদ ভাব আঁতৰাই, পৃথিৱীৰ জ্ঞান-সাগৰৰ মণি-মুকুতা আনি সজাইপৰাই নতুন ৰূপত ৰূপ দিবলৈ যত্ন কৰিবলৈ সংঘৱদ্ধ হোৱাই হ'ব আমাৰ মাতৃপূজা।"*[৮] প্ৰাচীন অসমীয়া সাহিত্যৰ ঐতিহ্যৰ ক্ষেত্ৰত তেওঁ শংকৰদেৱৰ অৱদানৰ কথা সোঁৱৰণ কৰিছে— *"অসমীয়া ঋষি শংকৰদেৱে সাধনাৰ আত্মশক্তিৰ বলত অসমক এটি নতুন ৰূপ দি থৈ গৈছে। ঋষিপ্ৰাণৰ মহত্ত্বৰ অনুপ্ৰেৰণাৰে গোটেই অসমত যি বিৰাট সাম্যবাদ প্ৰতিষ্ঠা কৰিলে, মানৱতাৰ ভেটিত ভাষা সংস্কৃতিৰ যি বিজয়-স্তম্ভ স্থাপিত কৰিলে, যি অমৰ অমূল্য বৈষ্ণৱ সাহিত্যৰ শৰাই সজালে, সাহিত্য সংগীত নৃত্য চিত্ৰ সভ্যতা আৰু মানৱীয়তাৰ সু-সংস্কৃত কৰি পৰ্বত-ভৈয়ামক সাঙুৰি একেডালি একতা ডোলেৰে বান্ধি দিলে, সেই সভ্যতা সাহিত্য সংস্কৃতিৰ অমৰ গৌৰৱ লৈ অসমীয়া জাতি আজিও চিৰ-গৌৰৱান্বিত হৈ আছে।"*[৯] নলিনীবালা দেৱীয়ে সাহিত্য সাধনাৰ ক্ষেত্ৰত অধিক গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছে। সাহিত্যৰ জৰিয়তে পৰ্বত-ভৈয়ামৰ মাজত যোগসূত্ৰ স্থাপন কৰিবলৈ আহ্বান জনাইছে। নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়েও শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ অনুপম সৃষ্টি অংকীয়া নাট, বৰগীত, নামঘোষা, কীৰ্তনঘোষা আদি ৰচনাসমূহত ভাৰতীয় বৈষ্ণৱ দাৰ্শনিকতা আৰু সাম্যবাদৰ আদৰ্শ প্ৰকাশিত হৈছে বুলি উল্লেখ কৰিছে। চৰ্যাপদৰপৰা বৰ্তমানলৈকে অসমীয়া সাহিত্যৰ বিকাশৰ গৌৰৱময় ইতিহাস দুয়োগৰাকী সভাপতিৰ অভিভাষণত প্ৰতিফলিত হৈছে।

মাতৃভাষাৰ উন্নতিৰ বিষয়ে দুয়োগৰাকী সভাপতিৰ অভিভাষণত সচেতনতা পৰিলক্ষিত হয়। মাতৃভাষাৰ সবল ভিত্তিয়েহে জাতিটোৰ অস্তিত্বৰ প্ৰমাণ বহন কৰে। সেয়ে শিক্ষা গ্ৰহণৰ পৰা সাহিত্য সৃষ্টিৰে বিশ্বৰ সমুখত নিজৰ পৰিচয় প্ৰতিষ্ঠা কৰালৈকে মাতৃভাষাৰ উন্নতি আৰু বিকাশত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছে। নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়ে শিক্ষাৰ মাধ্যম অসমীয়া হোৱাৰ ক্ষেত্ৰত অধিক গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছে। ব্যৱসায়িক মনোভাবেৰে গঢ়ি উঠা ইংৰাজী মাধ্যমৰ স্কুলসমূহত ল'ৰা-ছোৱালীক পঢ়োৱাতকৈ অসমীয়া মাধ্যমৰ স্কুলৰ শিক্ষাৰ মানদণ্ড উন্নত কৰাৰ ক্ষেত্ৰত তেওঁ গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছে। তেওঁৰ মতে নিজ মাতৃভাষা ভালকৈ আয়ত্ত কৰিব নোৱাৰিলে অন্য কোনো ভাষাকেই আয়ত্ত কৰিব নোৱাৰি। আনহাতে নলিনীবালা দেৱীয়েও তেওঁৰ অভিভাষণৰ জৰিয়তে কৈছে যে মাতৃভাষাৰ প্ৰতিটো শব্দ আৰু সুৰৰ মাজত জাতিটোৰ জীৱন পৰিচয় লুকাই থাকে। মাতৃভাষাত ৰচনা কৰা সাহিত্যৰ জৰিয়তেহে এটা জাতিয়ে নিজৰ পৰিচয় গঢ়াৰ ক্ষেত্ৰত সফল হ'ব পাৰে।

সাংস্কৃতিক চেতনাই জাতীয় চেতনাৰ ভাবকেই প্ৰতিফলিত কৰে। অভিভাষণত প্ৰতিফলিত গুৰুত্বপূৰ্ণ এক দিশ হৈছে সাংস্কৃতিক চেতনা। নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়ে তেওঁৰ অভিভাষণখনিত কৈছে যে অসমীয়া সংস্কৃতিৰ স্বকীয় ৰূপে বিভিন্ন কাৰণত স্বকীয়তা হেৰুৱাইছে। অসমীয়া সংস্কৃতিয়ে নিজৰ 'পেটাৰ্ণ' হেৰুৱাই বিজতৰীয়া হৈ পৰিছে বুলি তেওঁ তেতিয়াই সচেতন কৰি দিছিল। তেওঁ কৈছে যে অসমৰ কৃষিজীৱী সমাজ সংস্কৃতিৰ এটা স্তৰ অসমীয়া জীৱনৰ কেন্দ্ৰীয় ধাৰাটোত প্ৰতিফলিত হৈছিল। অসমৰ নাৰীসকলৰ মাজত অসমৰ সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্য সংৰক্ষিত হৈছিল বুলি তেওঁ মত প্ৰদান কৰিছে। অসমীয়া মানুহৰ কথা-বতৰা, পিন্ধা-উৰা, আচাৰ-নীতি, উৎসৱ-পাৰ্বন সকলোতে অসমীয়াৰ স্বকীয় গুণ বৈশিষ্ট্য নিহিত হৈ আছে যি এতিয়া বিপন্ন অৱস্থালৈ গতি কৰিছে। তেওঁ অসমীয়া জনসাধাৰণক সচেতন কৰিব বিচাৰিছিল তেওঁৰ অভিভাষণৰ জৰিয়তে। অসমীয়াৰ এই সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্য লুপ পালে অসমীয়া জাতিৰ পৰিচয়ও বিপদাপন্ন হ'ব। তেওঁৰ মতে— *"অসমীয়া ঠাঁচ, অসমীয়া উচ্চাৰণ, অসমীয়া সুৰ, অসমীয়া সাজ, অসমীয়া জুতি, অসমৰ নৃত্য, অসমৰ বাদ্য যদি আমি এৰি পেলাওঁ আমি অসমীয়া হৈ কিহেৰে আৰু ক'ত জীয়াই থাকিমহঁক নিজা সংস্কৃতিৰ উৎকৰ্ষত, গুণগত ধাৰাটোৰ ওপৰতেই এটা জাতিৰ উদগতি নিৰ্ভৰ কৰে।"* ১০

নলিনীবালা দেৱীয়েও বহিঃ ৰাজ্যৰ ধৰ্মীয় আৰু সাংস্কৃতিক আগ্ৰাসনৰ কথা অসমীয়া জনসাধাৰণক সোঁৱৰাই দিছে। ভিন ভিন প্ৰদেশৰ ৰং-ৰূপত ভোল গৈ অসমীয়া জনসাধাৰণে নিজৰ সাতামপুৰুষীয়া ধৰ্ম, সংস্কৃতিক পাহৰি পেলাই আনৰ ধৰ্মীয় অনুষ্ঠানলৈ নিজৰ দান-বিত আগবঢ়াই আনৰ দেশৰহে মংগল সাধিছে বুলি তেওঁ উল্লেখ কৰিছে।

লোক সাহিত্য হৈছে এটা জাতিৰ মৌলিকতাৰ বাহক। অসমৰ লোক সাহিত্যসমূহৰ সংগ্ৰহ সংৰক্ষণ আৰু অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰত নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়ে গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছে। অসমৰ জনজাতীয় অঞ্চলসমূহৰ মাজত প্ৰচলিত গীত পদ, আখ্যান আদি পদ্ধতিগতভাৱে সংগ্ৰহ কৰি এইবোৰৰ সংৰক্ষণ কৰিবলৈ তেওঁ আহ্বান জনাইছে। শিশুৰ মানসিক বিকাশৰ বাবে উন্নত মানদণ্ডৰ শিশু সাহিত্য ৰচনা কৰাত দুয়োগৰাকী সভাপতিৰ অভিভাষণত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰা হৈছে। শিশু আৰু নাৰী স্বতন্ত্ৰতা, নাৰী শিক্ষা আদিৰ জৰিয়তে সুস্থ সামাজিক ব্যৱস্থা স্থাপনৰ ক্ষেত্ৰত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছে।

নলিনীবালা দেৱীয়ে তেওঁৰ অভিভাষণৰ জৰিয়তে কিছু ৰাজনৈতিক চেতনাও প্ৰকাশ কৰা দেখা যায়। তেওঁৰ মতে স্বাধীন অসমৰ একতা শক্তি, সমাজৰ উদাৰ দৃষ্টি স্বাধীনতা লাভৰ পূৰ্বতকৈ যেন কিছু শিথিল হৈছে। এই ক্ষেত্ৰত স্বাধীন অসমৰ কল্যাণৰ বাবে তেওঁ মাতৃভাষা আৰু সাহিত্য সাধনাৰ ক্ষেত্ৰত অগ্ৰসৰ হৈ দেশৰ উন্নতি সাধিবলৈ সাহিত্যিকসকলক আহ্বান জনাইছে। সাহিত্যক ৰাজনীতিৰ ভেদনীতিৰপৰা আঁতৰাই ৰাখিবলৈ তেওঁ আহ্বান জনাইছে। পশ্চিম বংগ কংগ্ৰেছৰ ৰাজ্য পুনৰ্গঠন আয়োগৰ প্ৰস্তাৱক তেওঁ সমালোচনা কৰি ইয়াক ভাৰত ঐক্যবাদৰ বিৰুদ্ধবাদী নীতি বুলি মত প্ৰদান কৰিছে। এই নীতিৰ বিচাৰ কৰিবলৈ অসম চৰকাৰৰ ওচৰত দাবী জনাবলৈ 'অসম সাহিত্য সভা'ক তেওঁ আহ্বান জনাইছিল। অসমীয়া ভাষা- সাহিত্যৰ ওপৰত অন্য ৰাজ্যৰ অভিসন্ধিৰ প্ৰতি তেওঁ সবল প্ৰতিবাদ জনাই অসমীয়া জনসাধাৰণকো এই বিষয়ে সচেষ্ট কৰি তুলিছিল। এই ক্ষেত্ৰত অভিভাষণত তেওঁ এইদৰে মত প্ৰদান কৰিছে— *"যি একতাৰদ্ধ অসমে মোগল শক্তিক সোতৰবাৰ ওফৰাই পেলাব পাৰিছিল, যি অসমে পৰাধীনতাৰ যুগতো নিজৰ দক্ষতাৰে ব্ৰিটিছ ষড়যন্ত্ৰ ওফৰাই আত্মপ্ৰতিষ্ঠা কৰিব পাৰিলে, যি অসমে স্বাধীনতাৰ মুক্তি আন্দোলনত আগভাগ ল'ব পাৰিছিল, সেই অতীতৰ বীৰ অসমীয়া জাতিয়ে বিশেষকৈ শিক্ষা-দীক্ষা জ্ঞানত উদীপ্ত স্বাধীন অসমৰ পৰ্ব্বত-ভৈয়ামৰ বিৰাট মিলিত শক্তিয়ে এই আক্ৰমণ কেতিয়াও সহ্য নকৰে।*

সুপ্ৰাচীন অসমীয়া সাহিত্য-কৃষ্টি ধ্বংস কৰি অসমৰ বুকুত বিদেশীক বৰপীৰা পাৰি বহিবলৈ এৰি নিদিয়ে।”[১১] ইয়াৰ জৰিয়তে সভাপতিগৰাকীৰ ৰাজনৈতিক চেতনাৰ আভাস পোৱা যায়। তেওঁ পুনৰ কৈছে— *“জনমভূমিৰ আক্ৰমণাত্মক মনোভাবৰ বিৰুদ্ধে যি জাতিয়ে বিৰোধিতা নকৰে সেই জাতি ভীৰু, প্ৰাণহীন।”*[১২] তেওঁ সাহিত্যিকসকলক দেশৰ সকলো সমস্যাৰ বিষয়ে নিজৰ সৃষ্টিৰ জৰিয়তেই কেন্দ্ৰীয় চৰকাৰৰ দৃষ্টি আকৰ্ষণ কৰিবলৈ আহ্বান জনাইছে। এনেদৰে সাহিত্যৰ জৰিয়তে দেশসেৱা কৰিবলৈ আহ্বান জনাইছে। তেওঁ কৈছে যে লোকতান্ত্ৰিক শাসনৰ সম্পূৰ্ণ সফলতা একমাত্ৰ মাতৃভাষাৰ ওপৰতে নিৰ্ভৰ কৰে। গণতান্ত্ৰিক দেশ এখনৰ মাতৃভাষাৰ উন্নতিৰ দায়িত্ব চৰকাৰে বহন কৰিব লাগে কিন্তু অসমৰ শাসনকৰ্তাসকলে মাতৃভাষাৰ উন্নতিৰ প্ৰতি বৰ বিশেষ মনোযোগ দিয়া নাই বুলি তেওঁ ব্যক্ত কৰিছে। জনজাতীয় সাহিত্যৰ উন্নতিৰ বাবে শিক্ষিত অসমীয়া লোকক জনজাতীয় ভাষা অধ্যয়ন কৰি জনজাতীয় আৰু অসমীয়া ভাষাত সৰু সৰু পুথি লেখি জনজাতীয় অঞ্চলত প্ৰচাৰ কৰিবলৈ আহ্বান জনাইছে। তেওঁ সাহিত্যৰ মাধ্যমেৰেই অসমৰ বহুধা বিভক্ত জাতি-জনগোষ্ঠীৰ লগত সম্পৰ্ক অটুট ৰাখি সকলোকে ঐক্যবদ্ধ হৈ থাকিবলৈ অভিভাষণৰ জৰিয়তে আহ্বান জনাইছে।

জাতীয় চেতনাৰে নিজেই উদ্বোদ্ধ হৈ সভাপতি কেইগৰাকীয়ে অসমৰ জনসাধাৰণৰ মনতো জাতীয় চেতনা জাগ্ৰত কৰিবলৈ জাতীয় চেতনা উদ্ৰেককাৰী কিছুমান আহ্বান জনাইছে। প্ৰাচীন কালত এখন উদাৰ বিচাৰশীল জ্ঞানী সমাজে দেশৰ সমাজ ব্যৱস্থা পৰিচালনাত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছিল। বৰ্তমানৰ সাহিত্যসেৱীসকলকো সেই উদাৰ জ্ঞানী- ঋষিসকলৰ সন্তান বুলি কৈ সাহিত্য ৰচনাৰ জৰিয়তে মাতৃভূমিৰ সেৱা কৰিবলৈ নলিনীবালা দেৱীয়ে আহ্বান জনাইছে। ভাৰতবৰ্ষই স্বাধীনতা লাভ কৰাৰ পৰাই ভাৰতৰ আন আন জাতিয়ে নিজ ভাষা-সাহিত্যৰ উন্নতিৰ বাবে ঐকান্তিক প্ৰচেষ্টা হাতত লোৱা বুলি অসমবাসীৰ মনতো সেই দেশ প্ৰেমৰ ভাব জাগ্ৰত কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিছে। স্বাধীনতা লাভৰ পিছতো অসমত দেখা দিয়া বিভিন্ন ভাষিক, ৰাজনৈতিক, সাংস্কৃতিক সমস্যা, অন্য জাতিৰ আগ্ৰাসি মনোভাবক প্ৰতিহত কৰি জনমভূমিৰ প্ৰতি আক্ৰমণাত্মক শক্তিৰ বিৰুদ্ধে বিৰোধিতা কৰিবলৈ আহ্বান জনাইছে। লগতে দেশৰ অৱস্থাৰ বিষয়ে কেন্দ্ৰীয় চৰকাৰৰ দৃষ্টি আকৰ্ষণ কৰিবলৈ আহ্বান জনাইছে। নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈৰ অভিভাষণতো জাতীয় চেতনা উদ্ৰেক কৰিবলৈ ভাষা-সাহিত্যৰ উন্নতি, বিজ্ঞান মনস্কতাৰ বিকাশৰ ওপৰত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰা হৈছে। তেওঁলোকৰ অভিভাষণে আধুনিক চিন্তাধাৰাৰ বিকাশ ঘটোৱাৰ লগতে সাহিত্যই সমাজ আৰু দেশৰ বাবে ল'ব লগা ভূমিকাৰ বিষয়ে সচেতনতা সৃষ্টি কৰিছে। নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈয়ে নিজৰ অভিভাষণৰ জৰিয়তে সাহিত্য সৃষ্টিৰ ক্ষেত্ৰত আধুনিকতাৰ এক বাট মুকলি কৰিবলৈ অনুপ্ৰাণিত কৰিছে। যাৰ জৰিয়তে নতুন নতুন সাহিত্যিক ধাৰাৰ জৰিয়তে দেশৰ, সমাজৰ নানা দিশৰ উপস্থাপন সম্ভৱ হৈ উঠিব পাৰে। মাতৃভাষাৰ উন্নতিৰ জৰিয়তে বিশ্বায়নৰ যুগত ফেৰ মাৰি নিজৰ জাতীয় পৰিচয় প্ৰতিষ্ঠা কৰিবলৈ এই অভিভাষণসমূহে আহ্বান জনাইছে আৰু পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ত ভাষা-সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনত ইয়াৰ কাৰ্যকৰীকৰণ ঘটিছে। সেইবাবে সাহিত্য সভাৰ অভিভাষণসমূহক জাতীয় দলিল বুলি অভিহিত কৰিব পাৰি।

উপসংহাৰ ঃ দুয়োগৰাকী সভাপতিৰ অভিভাষণৰ জৰিয়তে নিজৰ দেশ, মাতৃভাষা, সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ প্ৰতি প্ৰেম, দায়িত্বৰ ভাব স্পষ্টৰূপত প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়। নিজ ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ ঐতিহ্য সোঁৱৰণৰ জৰিয়তে জনসাধাৰণক সজাগ আৰু সচেতন কৰি তোলাৰ প্ৰচেষ্টা অভিভাষণদুখনিত দেখিবলৈ পোৱা যায়। অসমীয়া জাতি গঠন প্ৰক্ৰিয়া হৈছে সমন্বয়ৰ প্ৰক্ৰিয়া সেই সমন্বয়ক অটুট ৰাখিবলৈ ল'ব লগা ব্যৱস্থাসমূহৰ বিষয়ে দুয়োগৰাকী সভাপতিয়ে উনুকিয়াইছে। ভাষা-সাহিত্যৰ উন্নতিৰ জৰিয়তে নিজৰ জাতীয় পৰিচয় গঢ়ি তুলিবলৈ চৰকাৰ, জনসাধাৰণ সকলোকে আহ্বান জনাইছে। অভিভাষণসমূহক জাতীয় দলিল হিচাপে গণ্য কৰা হয়। অভিভাষণত সভাপতিসকলে নিজৰ অভিজ্ঞতা আৰু জ্ঞানেৰে কিছুমান পৰামৰ্শ আগবঢ়াই গৈছে। যিসমূহ পৰামৰ্শ বাস্তৱ ক্ষেত্ৰত ৰূপায়ণ কৰি দেশ-জাতিৰ উন্নতি সাধিব পাৰি। নলিনীবালা দেৱী আৰু নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈ দুয়োগৰাকী স্বকীয় জ্ঞান আৰু কৰ্মেৰে অসমীয়া সাহিত্য জগতত নিজৰ স্থান ৰাখি যাবলৈ সক্ষম হৈছে। তেওঁলোকৰ অভিভাষণৰ জৰিয়তে সভাপতি দুগৰাকীৰ গভীৰ জাতীয় চেতনা প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়।

সিদ্ধান্ত ঃ *'অসম সাহিত্য সভা'ৰ মহিলা সভাপতিৰ অভিভাষণত প্ৰতিফলিত জাতীয় চেতনা* শীৰ্ষক বিষয়টিৰ আলোচনাৰ শেষত উপনীত হোৱা সিদ্ধান্তসমূহ হৈছে—

● দুয়োটা অভিভাষণত ভাষা-সাহিত্য কেন্দ্ৰিক জাতীয় চেতনা প্ৰতিফলিত হৈছে।

● সাহিত্য ৰচনাৰ জৰিয়তে ভাতৃত্ববোধ, পৰ্বত-ভৈয়ামৰ মাজৰ সমন্বয় স্থাপনত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰাৰ লগতে

সাহিত্য ৰচনাৰ জৰিয়তে নিজ দেশৰ

সংস্কৃতিক পৃথিৱীৰ সন্মুখত প্ৰতিষ্ঠা কৰিবলৈ পৰামৰ্শ আগবঢ়োৱা হৈছে।

● ভাষা-সাহিত্যৰ গৌৰৱোজ্জ্বল ঐতিহ্যৰ সোঁৱৰণ দেখিবলৈ পোৱা যায়।

● অসমৰ প্ৰত্যেক জাতি- জনগোষ্ঠীৰে স্বকীয় ভাষা-সাহিত্যৰ উন্নতিৰ প্ৰতি গুৰুত্ব প্ৰদান কৰা হৈছে।

● অভিভাষণসমূহত সভাপতিসকলে পৰামৰ্শ আগবঢ়োৱা দিশসমূহৰ ভাষা-সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনত কাৰ্যকাৰিতা দেখিবলৈ পোৱা যায়। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

১। সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা, অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, পৃ.২৪৮
২। অতুলচন্দ্ৰ হাজৰিকা (সম্পা), অসম সাহিত্য সভা বাৰ্ষিকী ২৩ শ অধিৱেশন যোৰহাট, সভানেত্ৰীৰ অভিভাষণ, পৃ.২৪
৩। সতীশ চন্দ্ৰ চৌধুৰী, প্ৰদীপ ভূঞা (সম্পা), অসম সাহিত্য সভা ভাষণাৱলী পঞ্চম খণ্ড, পৃ.৩৮৪
৪। উল্লিখিত, পৃ.৩৮৪
৫। --- পৃ ৩৮৪
৬। — পৃ. ৩৮৭
৭। --- পৃ.৩৮৮
৮। অতুলচন্দ্ৰ হাজৰিকা (সম্পা), অসম সাহিত্য সভা বাৰ্ষিকী ২৩ শ অধিৱেশন যোৰহাট, সভানেত্ৰীৰ অভিভাষণ, পৃ.৩৪
৯। --- পৃ.৩৪
১০। সতীশ চন্দ্ৰ চৌধুৰী, প্ৰদীপ ভূঞা (সম্পা), অসম সাহিত্য সভা ভাষণাৱলী পঞ্চম খণ্ড, পৃ.৩৯২
১১। অতুলচন্দ্ৰ হাজৰিকা (সম্পা), অসম সাহিত্য সভা বাৰ্ষিকী ২৩ শ অধিৱেশন যোৰহাট, সভানেত্ৰীৰ অভিভাষণ, পৃ.৫৭
১২। --- পৃ. ৬৩

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

চৌধুৰী সতীশ চন্দ্ৰ, প্ৰদীপ ভূঞা (সম্পা), *অসম সাহিত্য সভাৰ ভাষণাৱলী পঞ্চম খণ্ড*, কিৰণ প্ৰকাশন, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৮
হাজৰিকা, অতুলচন্দ্ৰ (সম্পা), *অসম সাহিত্য সভা বাৰ্ষিকী প্ৰথম ভাগ ২৩ শ অধিৱেশন*, যোৰহাট, অসম সাহিত্য সভা, প্ৰথম প্ৰকাশ ১৯৫৫
শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ, *অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত*, সৌমাৰ প্ৰকাশ, দশম সংস্কৰণ ২০১৪

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ

নয়ন চেতিয়া

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
জগন্নাথ বৰুৱা বিশ্ববিদ্যালয়, যোৰহাট
তৰাজান (অসম)-৭৮৫০০১
৭০৮৬৩১২৫৩৫
nayanchetia693@gmail.com

ড°পুষ্পাঞ্জলি হাজৰিকা

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
জগন্নাথ বৰুৱা বিশ্ববিদ্যালয়, যোৰহাট
তৰাজান (অসম)-৭৮৫০০১
৮৬৩৮৮৬৯২৪০
puspanjali.hazarika30@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

ভিন্ন ভাষিক, সাংস্কৃতিক অথবা বহুভাষিক কোনো এক যোগাযোগত অংশগ্ৰহণকাৰীসকলে ভিন্ন ভাষাৰ প্ৰয়োগ কৰি ভাষিক প্ৰক্ৰিয়াৰ মাজেৰে কৰা এক পৰিঘটনাই হৈছে ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ। কোনো এক কথোপকথনত দ্বিভাষী বা বহুভাষী বক্তাই স্বাভাৱিকভাৱে এটাতকৈ অধিক ভাষা ব্যৱহাৰ কৰাৰ বাবে, পৰিৱেশ-পৰিস্থিতি অনুসৰি বেলেগ বেলেগ ভাষা প্ৰয়োগ কৰাৰ বাবে, বিষয়ক সহজে বুজিবলৈ এটা ভাষা কওঁতে আন ভাষাৰো প্ৰয়োগ কৰে। প্ৰথম ভাষাৰ মাধ্যমেৰে বক্তব্য প্ৰকাশ কৰিবলৈ অপাৰগ হ'লে বক্তাই যোগাযোগ অধিক ফলপ্ৰসু কৰিবৰ বাবেও এটা ভাষাৰ লগত আন ভাষাৰ সংযোগ কৰে। এনেধৰণৰ ভাষিক প্ৰক্ৰিয়াই হৈছে ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ। এজন বক্তাই বহুভাষিক পৰিৱেশ-পৰিস্থিতিত বা অংশগ্ৰহণকাৰী অনুসৰি বক্তব্য বিষয়ক অধিক স্পষ্ট কৰিবলৈ বিভিন্ন সময়ত নিজৰ বক্তব্যক এটা ভাষাৰ পৰা অন্য ভাষালৈ সংক্ৰমণ কৰে আৰু বহু সময়ত পৰিৱেশ পৰিস্থিতি অনুসৰি বক্তব্য বিষয়ক প্ৰভাৱশালী কৰি তুলিবলৈ অন্য ভাষাৰ শব্দ, সৰ্গ আদিৰ প্ৰয়োগ কৰি ভাষাৰ মিশ্ৰণ কৰে। সাম্প্ৰতিক সময়ত সামাজিক মাধ্যমৰ বহুল প্ৰয়োগৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত অসমীয়া ভাষাৰ ব্যৱহাৰত ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ যথেষ্ট পৰিমাণে হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। বিশেষকৈ সামাজিক মাধ্যমসমূহৰ ভিতৰত ফেচবুক, হোৱাট্চ এপ, ইউটিউব আদি নব্য মাধ্যমসমূহত এই ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া অধিকৰূপত সংঘটিত হোৱা দেখা যায়। শেহতীয়াকৈ নব্য মাধ্যমসমূহত জনপ্ৰিয় হোৱা এক অনুষ্ঠান হৈছে পডকাষ্ট। বৰ্তমান সময়ত নব্য মাধ্যমসমূহৰ জৰিয়তে অসমীয়া ভাষাৰ মাধ্যমত বিভিন্ন পডকাষ্ট সম্প্ৰচাৰিত হৈ আছে। পডকাষ্টত অংশগ্ৰহণ কৰা বিভিন্ন ব্যক্তিসকলৰ কথোপকথনতো ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। এই গৱেষণাত অসমীয়া ভাষাৰ মাধ্যমেৰে প্ৰচাৰিত কেইটামান জনপ্ৰিয় অসমীয়া পডকাষ্টক নিৰ্বাচন কৰি তাৰ পৰা নিৰ্দিষ্ট কিছু বিশিষ্ট ব্যক্তিৰ কথোপকথনক নমুনা হিচাপে লৈ কেনেদৰে অসমীয়া ভাষাৰ পডকাষ্টত ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ হৈছে তাক বিচাৰ কৰা হৈছে।

মূল শব্দ ঃ

পডকাষ্ট, অসমীয়া ভাষা, ভাষা-সংক্ৰমণ, ভাষা-মিশ্ৰণ, কথোপকথন।

০.০ অৱতৰণিকা

০.১ বিষয় পৰিচয়

ভাষা কেৱল যোগাযোগৰেই মাধ্যম নহয়, ই একোখন সমাজ-সংস্কৃতিৰ পৰিচায়ক। বিশ্বায়নৰ পটভূমিত সময়ৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে ভাষাৰ ক্ষেত্ৰতো পৰিৱৰ্তন লক্ষ্য কৰা যায়। বিভিন্ন সময়ত বিভিন্ন সামাজিক-সাংস্কৃতিক-অৰ্থনৈতিক-ৰাজনৈতিক কাৰণত এটা ভাষাৰ লগত আন্য এটা ভাষাৰ সংযোগ ঘটায়। ভাষিক

সংযোগৰ ফলত ভাষা পৰিৱৰ্তনৰ ক্ষেত্ৰত হোৱা এক বিশেষ ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া হক্সল ভাষা-সংক্ৰমণ (code switching) আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ (code mixing)। দ্বিভাষী বা বহুভাষী বক্তাই যোগাযোগৰ সময়ত এটা ভাষা ব্যৱহাৰৰ সময়ত নিজৰ বক্তব্যক অন্য এটা ভাষাৰ মাধ্যমেৰে প্ৰকাশ কৰা প্ৰক্ৰিয়াই হৈছে ভাষা - সংক্ৰমণ (Code-Switching)। আকৌ বক্তাই যেতিয়া কথোপকথনত এটা ভাষাৰ মাজত আন এটা ভাষাৰ শব্দ, শব্দাংশ বা সৰ্গ মিশ্ৰণৰ ফলত যি ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া সংঘটিত হয় তাকে ভাষা-মিশ্ৰণ (Code-Mixing) বোলে। সাম্প্ৰতিক কালত সামাজিক মাধ্যমৰ বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত এনে ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া সংঘটিত হোৱা দেখা যায়। ইউটিউব, হোৱাটচ এপ, ফেচবুক আদিৰ দৰে নব্য মাধ্যমসমূহত বিভিন্ন ভাষিক পটভূমিৰ ব্যক্তিৰ মাজৰ যোগাযোগত ভাষা পৰিৱৰ্তনৰ দৃষ্টান্ত পোৱা যায়। শেহতীয়াকৈ নব্য মাধ্যমসমূহত সম্প্ৰচাৰিত 'পডকাষ্ট' (Podcast) নামৰ এক মৌখিক যোগাযোগৰ অনুষ্ঠানত কথোপকথনত অংশগ্ৰহণ কৰা ব্যক্তিসকল বা অনুষ্ঠানলৈ আমন্ত্ৰিত অতিথিসকলৰ ভাষাত প্ৰায়ে এনে ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া হোৱা পৰিলক্ষিত হয়।

পডকাষ্ট হৈছে একবিংশ শতিকাত সৃষ্টি হোৱা এক বাৰ্তালাপৰ অনুষ্ঠান। য'ত এজন সঞ্চালকে সাহিত্য, সংস্কৃতি, ক্ৰীড়া, ৰাজনীতি আদি বিভিন্ন ক্ষেত্ৰৰ বিশিষ্ট ব্যক্তিসকলক মাতি আনি তেওঁলোকৰ সৈতে মত বিনিময় কৰে। সাধাৰণ অৰ্থত পডকাষ্ট এক মত বিনিময়ৰ মৌখিক অনুষ্ঠ। *"A podcast is a piece of episodical, downloadable or streamable, primarily spoken audio content, distributed via the internet, playable anywhere, at anytime, produced by anyone who so wishes."* [১] অৰ্থাৎ পডকাষ্ট হৈছে ইন্টাৰনেটত উপলব্ধ, ক্ৰমাগতভাৱে প্ৰকাশিত, যিকোনো ব্যক্তিয়ে প্ৰস্তুত কৰিব পৰা, যিকোনো সময়ত আৰু যিকোনো ঠাইতে শুনিব পৰা এক কথোপকথনমূলক শ্ৰাব্য অনুষ্ঠান। পোন প্ৰথমে বৃটিছ সাংবাদিক Ben Hammersley 2004 চনত পডকাষ্ট শব্দটোৰ সৃষ্টি কৰিছিল। পডকাষ্ট মূলত এটা মিশ্ৰিত ইংৰাজী ভাষাৰ শব্দ। পডকাষ্টৰ উপযুক্ত অৰ্থ প্ৰকাশক অসমীয়া পৰিভাষা নথকাৰ বাবেই মূল ইংৰাজী শব্দটোৰ অসমীয়ালৈ লিপ্যন্তৰ কৰি প্ৰয়োগ কৰা হয়। Hammersley এ 'Ipod' আৰু 'Broadcast' এই শব্দ দুটাক সংযোগ কৰি 'Podcast' শব্দটো নতুনকৈ নিৰ্মাণ কৰিছিল। ইয়াৰ অসমীয়া লিপ্যন্তৰ হৈছে 'পডকাষ্ট'। বৰ্তমান সময়ত বিভিন্ন নব্য মাধ্যম যেনে - Spotify, YouTube, Apple Podcast, Google Podcast, over cart আদিৰ যোগদি বিভিন্ন ধৰণৰ পডকাষ্ট সম্প্ৰচাৰিত হৈ আছে। অসমতো শেহতীয়াকৈ অসমীয়া ভাষাৰ মাধ্যমেৰে নানা পডকাষ্ট সম্প্ৰচাৰিত হোৱা দেখা যায়। য'ত অসমৰ বিভিন্ন ক্ষেত্ৰৰ বিশিষ্ট ব্যক্তিসকল আহি তেওঁলোকৰ মনৰ ভাব প্ৰকাশ কৰে। বৰ্তমান জনপ্ৰিয় হোৱা অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভিতৰত ৰেন-মৌ, বাৰ্তালাপ, সত্য, অযান্ত্ৰিক আদি অন্যতম। এই পডকাষ্টসমূহলৈ বিভিন্ন ভাষিক - সাংস্কৃতিক-সামাজিক পৰিৱেশৰ মানুহ আহি বিভিন্ন বিষয় সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিছে। পডকাষ্টত অংশগ্ৰহণ কৰা বিশিষ্ট ব্যক্তিসকল বা পডকাষ্ট সঞ্চালন কৰা ব্যক্তিজনৰ ভাষা প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত এটাতকৈ অধিক ভাষা একে সময়তে ব্যৱহাৰ কৰা দেখা যায়। সেয়ে তেওঁলোকৰ কথোপকথনৰ ভাষাৰ মাজত ভাষা -সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। এই অধ্যয়নত অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত হোৱা ভাষা -সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণৰ স্বৰূপ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা হৈছে। অসমীয়া পডকাষ্টৰ কথোপকথনত কেনেকৈ ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু মিশ্ৰণ হৈছে, কি কাৰকে প্ৰভাৱ পেলাইছে এই দিশবোৰৰ বিষয়ে এই গৱেষণাত বিচাৰ কৰা হৈছে।

০.২ অধ্যয়ৰ উদ্দেশ্য ঃ

‘‘অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত ভাষা -সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ’’ শীৰ্ষক বিষয়টি অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য এনেধৰণৰ -

➢ অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত হোৱা ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণৰ স্বৰূপ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা।

➢ অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত ভাষা -সংক্ৰমণ আৰু ভাষা -মিশ্ৰণ সংঘটিত হোৱাৰ কাৰণসমূহ বিচাৰ কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

ভাষা হৈছে এটা জাতি, সংস্কৃতি বা এখন সমাজৰ আধাৰ। ভাষাৰ যোগেদিয়েই মানুহে সামাজিক যোগসূত্ৰ স্থাপন কৰে। ভাষাৰ কথিত আৰু লিখিত দুটা ৰূপ পোৱা যায়। ভাষাৰ কথিত ৰূপৰ মাজত ভাষাৰ সমকালীন ৰূপৰ আভাস পোৱা যায়। ভাষাৰ কথিত ৰূপেহে এটা ভাষাক দীৰ্ঘজীৱী কৰি তোলে। সেয়ে ভাষা এটাৰ কথিত ৰূপটোৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰাতো প্ৰয়োজনীয়। সাম্প্ৰতিক কালত বিশ্বায়নৰ প্ৰভাৱত সমাজ-সংস্কৃতি-ভাষা সকলোতে পৰিৱৰ্তন বিদ্যমান। কথোপকথন বা যোগাযোগৰ ক্ষেত্ৰতো

অংশগ্ৰহণকাৰীয়ে বিষয় আৰু পৰিস্থিতি অনুসৰি এটা ভাষাৰ লগত অন্য এটা ভাষাৰ সংযোগ কৰে। যাৰ ফলত ভাষাটোৰ মূল ৰূপত অন্য ভাষাৰ শব্দ, শব্দাংশ, বাক্যাংশ বা বাক্য সোমাই ভাষাৰ সংক্ৰমণ আৰু মিশ্ৰণ হয়। গতিকে কোনো এক যোগাযোগত হোৱা ভাষিক প্ৰক্ৰিয়াৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰিলে এনে সংযোগৰ স্বৰূপ আৰু কাৰণ জানিব পৰা যায়। ভাষা প্ৰয়োগত হোৱা এনে ভাষিক প্ৰক্ৰিয়াৰ বিষয়ে ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ তত্ত্বৰ যোগেদি অধ্যয়ন কৰিব পাৰি। সেয়ে ভাষাৰ ক্ষেত্ৰত হোৱা এনে ভাষিক প্ৰক্ৰিয়াৰ অধ্যয়নৰ বাবে ভাষা -সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰাৰ প্ৰাসংগিকতা আছে। তথ্য-প্ৰযুক্তিৰ বিকাশ আৰু বিশ্বায়নৰ বাবে অসমীয়া ভাষাতো যথেষ্ট পৰিমাণে ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ হোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। বিশেষকৈ নব্য মাধ্যমসমূহত ব্যৱহৃত ভাষাৰ মাজত প্ৰচুৰ পৰিমাণে ইংৰাজী আৰু হিন্দী ভাষাৰ শব্দ, সৰ্গ, বাক্য আৰু বাক্যাংশৰ সংক্ৰমণ আৰু মিশ্ৰণ হৈছে। বৰ্তমান সময়ত জনপ্ৰিয় হোৱা পডকাষ্টসমূহৰ ভাষাৰ মাজতো ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু মিশ্ৰণ হোৱা দেখা যায়। পডকাষ্টত অংশ লোৱা ব্যক্তিসকলৰ ভাষাৰ কথিত ৰূপৰ মাজত ইংৰাজী, হিন্দী বা আন স্থানীয় উপভাষাৰ সংযোগ মন কৰিবলগীয়া। এনেধৰণৰ ভাষিক সংযোগৰ স্বৰূপ আৰু তাৰ কাৰণ তথা এনে ভাষিক সংযোগৰ ফলত অসমীয়া ভাষাৰ মূল ৰূপত কেনে প্ৰভাৱ পৰিছে তাৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰাৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে। গতিকে এনেধৰণৰ গুৰুত্বৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি "অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ" শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ বাবে নিৰ্বাচন কৰা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

''অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ'' শীৰ্ষক গৱেষণা কৰ্মৰ বাবে অসমীয়া ভাষাত ইউটিউবৰ মাধ্যমেৰ প্ৰচাৰিত চক্ৰপাণি পৰাশৰ সঞ্চালিত 'বাৰ্তালা প' আৰু আইচেংফা বৰুৱা সঞ্চালিত 'ৰেন-মৌ' শীৰ্ষক পডকাষ্ট দুটাক অধ্যয়নৰ বাবে নিৰ্বাচন কৰা হৈছে। উক্ত পডকাষ্ট দুটাত অংশ লোৱা বিভিন্ন ব্যক্তিৰ ভিতৰত 'ৰেন-মৌ'ত অংশ লোৱা ৰাজনৈতিক নেতা গৌৰৱ গগৈ, ৰাষ্ট্ৰীয় পৰ্যায়ৰ ৰন্ধন প্ৰতিযোগিতাৰ শ্ৰেষ্ঠ বিজয়ী নয়নজ্যোতি শইকীয়া, সাহিত্যিক-সাংবাদিক মাইনি মহন্ত আৰু বাৰ্তালাপত অংশ লোৱা সংগীত শিল্পী জুবিন গাৰ্গ, সাহিত্যিক ৰঞ্জু হাজৰিকা, ৰাজনৈতিক নেতা তথা প্ৰাক্তন মুখ্যমন্ত্ৰী সৰ্বানন্দ সোণোৱাল, সংগীত শিল্পী তৰালি শৰ্মাৰ কথোপকথন ভাষাক ভাষিক সমল হিচাপে নমুনা লোৱা হৈছে। দুয়োটা পডকাষ্টতে সঞ্চালক আৰু বিশিষ্ট ব্যক্তিসকলৰ মাজৰ কথোপকথনৰ ভাষাত হোৱা ভাষা - সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণক আলোচনাৰ পৰিসৰত অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে।

০.৫ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

"অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত ভাষা -সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ" শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ বাবে ৰেন-মৌ আৰু বাৰ্তালাপ নামৰ পডকাষ্ট দুটাৰ ভাষাৰ পৰা নমুনা সংগ্ৰহ কৰি বিশ্লেষণ কৰা হৈছে। প্ৰধানকৈ সমাজভাষাবৈজ্ঞানিক বিশ্লেষণ পদ্ধতি আৰু বৰ্ণনাত্মক বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

সমাজভাষাবৈজ্ঞানিক বিশ্লেষণ পদ্ধতি ঃ সমাজভাষা-বৈজ্ঞানিক পদ্ধতিৰ তত্ত্ব আৰু দৃষ্টিভংগীৰ আধাৰত এই গৱেষণা কৰ্মৰ বাবে সংগৃহীত তথ্যসমূহ বিশ্লেষণ কৰা হৈছে। সমাজভাষাবৈজ্ঞানিক পদ্ধতিৰ বিশেষ দিশ হৈছে ভাষা সংযোগৰ ফলত হোৱা ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ। এই ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰিবলৈ যাওঁতে সমাজভাষাবৈজ্ঞানিক পদ্ধতিৰ তত্ত্ব আৰু দৃষ্টিভংগীৰ সহায়ত অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

বৰ্ণনাত্মক বিশ্লেষণ পদ্ধতি ঃ

বৰ্ণনাত্মক বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰ অন্তৰ্গত ৰূপতত্ত্ব আৰু শব্দ গঠনৰ দৃষ্টিৰে পডকাষ্টৰ ভাষাত ইংৰাজী বা হিন্দী ভাষাৰ শব্দৰ লগত অসমীয়া ভাষাৰ নিৰ্দিষ্টতাবাচক প্ৰত্যয় আৰু বহুবচনবাচক প্ৰত্যয় যোগ হৈ কেনেকৈ শব্দগঠন হৈছে সেয়া অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

১.০ অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ ঃ

বিশ্বায়নৰ প্ৰভাৱত সমাজৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে ভাষাৰ ক্ষেত্ৰতো নানা পৰিৱৰ্তন হোৱা দেখা যায়। বৰ্তমান সময়ত বিভিন্ন ভাষাৰ সংযোগ সাধন হৈ বিশেষ কিছুমান ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া সংঘটিত হৈছে। যাৰ ফলত মূল ভাষাৰ ৰূপৰ সাল-সলনি হৈছে। ভিন্ন পৰিৱেশ, ভিন্ন বক্তা আৰু শ্ৰোতা অনুসৰি ভাষা প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত বিভিন্নতা লক্ষণীয়। বিভিন্ন বক্তাই কথোপকথনত একে সময়তে ভিন্ন ভাষাৰ প্ৰয়োগ কৰি ভাষিক সংযোগ কৰিছে। ভাষিক সংযোগৰ ক্ষেত্ৰত ভাষাৰ পৰিৱৰ্তনৰ দুটা অনত্যম ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া হৈছে ভাষা-সংক্ৰমণ (Code-Switching) আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ (Code-Mixing) *"দ্বিভাষিক বা বহুভাষিক*

পৰিস্থিতিত সাধাৰণতে ভাষা সঞ্চৰণ লক্ষ্য কৰা যায়। আনহাতে, ভাষিক বা সাংস্কৃতিক যোগাযোগৰ ফলশ্ৰুতিত ভাষা মিশ্ৰণ লক্ষ্য কৰা যায়।" [২] ভাষা-সংক্ৰমণ বা ভাষা-মিশ্ৰণ এক স্বাভাৱিক ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া। মানুহে বিভিন্ন প্ৰয়োজনত একে সময়তে এটা ভাষাৰ পৰা আন ভাষালৈ গতি কৰিব পাৰে বা এটা ভাষাৰ মাজত আন ভাষাৰ মিশ্ৰণ কৰিব পাৰে। বহুভাষী এজন বক্তাই এটা ভাষা ব্যৱহাৰৰ সময়ত যোগাযোগত নিজৰ বক্তব্যক অন্য এটা ভাষা বা উপভাষাৰ মাধ্যমেৰে প্ৰকাশ কৰা প্ৰক্ৰিয়াক ভাষা-সংক্ৰমণ বোলে। কথোপকথনৰ মাজত প্ৰয়োজন অনুসৰি বক্তাই প্ৰথম ভাষাৰ অন্য ভাষালৈ সংক্ৰমণ কৰা প্ৰক্ৰিয়াই হৈছে ভাষা-সংক্ৰমণ। বক্তাই ভিন্ন সময়ত পৰিৱেশ পৰিস্থিতি অনুসৰি প্ৰয়োগ এটা ভাষাৰ পৰা আন ভাষালৈ সংক্ৰমণ কৰে। *''Use of different varieties in different times by single speaker''* [৩] অৰ্থাৎ এজন বক্তাই ভিন্ন সময়ত প্ৰয়োগ কৰা ভাষা ৰূপৰ ভিন্নতাই ভাষা-সংক্ৰমণ। ভাষা- সংক্ৰমণৰ কেইবাটাও ভাগ বা ৰূপ পোৱা যায়।পৰিস্থিতি আৰু বিষয় ক্ষেত্ৰৰ দিশৰ পৰা চালে পৰিস্থিতিগত ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ৰূপকাত্মক ভাষা-সংক্ৰমণ। বিভিন্ন পৰিৱেশ পৰিস্থিতি অনুসৰি বক্তাই এটা ভাষাৰ পৰা আন এটা ভাষালৈ কৰা ভাষা-সংক্ৰমণ হৈছে পৰিস্থিতিগত ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু বিষয় অনুসৰি বক্তব্যক স্পষ্ট কৰিবলৈ বা আলোচ্য বিষয় অনুসৰি অৰ্থ প্ৰকাশ কৰিবলৈ আন ভাষাৰ সহায় লয়। অৰ্থাৎ বিষয়ৰ স্পষ্টতাৰ বাবে হোৱা ভাষা-সংক্ৰমণ হৈছে ৰূপকাত্মক ভাষা-সংক্ৰমণ। আনহাতে গঠনগত দিশৰ পৰা ভাষা-সংক্ৰমণক দুটা ভাগত ভগাব পাৰি আন্তঃবাক্যিক ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু অৰ্ন্তবাক্যিক ভাষা-সংক্ৰমণ। কোনো এক কথোপকথনত একেলগে দুটা বা ততোধিক ভাষাৰ ব্যৱহাৰ হ'লে তাক আন্তঃবাক্যিক ভাষা-সংক্ৰমণ বোলে আৰু একোটা বাক্যৰ ভিতৰতে বেলেগ বেলেগ ভাষাৰ বাক্যাংশ প্ৰয়োগ হ'লে তাক কোৱা হয় অৰ্ন্তবাক্যিক ভাষা-সংক্ৰমণ।

ভাষা-সংক্ৰমণৰ দৰেই ভাষা-মিশ্ৰণো হ'ল এনে এক ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া য'ত কথোপকথনৰ সময়ত বক্তাই এটা ভাষাৰ মাজত অন্য ভাষাৰ ভাষিক উপাদান অন্তৰ্ভুক্ত কৰে। *"ডেভিদ ক্ৰিষ্টেলৰ মতে ভাষা-মিশ্ৰণ হৈছে এনে এক ভাষিক ব্যৱহাৰ য'ত এটা ভাষাত অন্য এটা ভাষাৰ পৰা ভাষিক উপাদান অন্তৰ্ভুক্ত হয়।"* [৪] ভিন্ন ভাষিক পৰিস্থিতিত ভাষা সংযোগৰ ফলত এটা ভাষাৰ মাজত যেতিয়া আন এটা ভাষাৰ শব্দ, সৰ্গ, শব্দাংশ আদি অন্তৰ্ভুক্ত হৈ পৰে ভাষিক সংযোগৰ তেনে প্ৰক্ৰিয়াকে ভাষা-মিশ্ৰণ বোলে। বৰ্তমান সময়ত ভিন্ন ভাষা-ভাষীৰ মাজৰ যোগাযোগত ভাষা-মিশ্ৰণ এক সহজ ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া। ভাষা-মিশ্ৰণকো পৰিস্থিতি আৰু বিষয় অনুসৰি পৰিস্থিতিগত ভাষা-মিশ্ৰণ আৰু ৰূপকাত্মক ভাষা-মিশ্ৰণ এই দুটা ভাগত ভগোৱা হয়। ভিন্ন পৰিৱেশ-পৰিস্থিতি অনুসৰি হোৱা ভাষা-মিশ্ৰণেই পৰিস্থিতিগত ভাষা-মিশ্ৰণ আৰু নিৰ্দিষ্ট বিষয়ক কেন্দ্ৰ কৰি হোৱা ভাষা মিশ্ৰণক ৰূপকাত্মক ভাষা-মিশ্ৰণ বোলে। আনহাতে গঠনগত দিশৰ পৰা আন্তঃশাব্দিক আৰু আন্তঃবাক্যিক ভাষা-মিশ্ৰণ। যেতিয়া এটা ভাষাৰ শব্দৰ লগত অন্য ভাষাৰ শব্দ, পৰসৰ্গ সংযোগ হৈ বাক্যত ব্যৱহৃত হয় তেতিয়া তাকে আন্তঃশাব্দিক ভাষা-মিশ্ৰণ বোলে। এটা ভাষাৰ বেলেগ বেলেগ শব্দৰ লগত আন ভাষাৰ নিৰ্দিষ্টতাবাচক সৰ্গ, অনিৰ্দিষ্টতাবাক সৰ্গ, বহুবচনৰ সৰ্গ যোগ হৈ ভাষা মিশ্ৰণ কৰে। আনহাতে যেতিয়া এটা ভাষাৰ শব্দসমূহ আন ভাষাৰ শব্দ বা পৰসৰ্গৰ লগত সংযোগ নোহোৱাকৈ পোনপটীয়াকৈ প্ৰয়োগ হয় তেতিয়া তেনেধৰণৰ মিশ্ৰণক আন্তঃবাক্যিক ভাষা-মিশ্ৰণ বোলে।

বৰ্তমান সময়ত অসমীয়া ভাষাৰ ক্ষেত্ৰতো একে ভাষিক সংযোগ দেখা যায়। বিভিন্ন সময়ত বক্তাই কথোপকথনত বিভিন্ন কাৰণত অসমীয়া ভাষাৰ লগত একাধিক ভাষাৰ সংযোগ কৰি ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ কৰিছে। দ্বিভাষিক বা বহুভাষিক পৰিস্থিতিত এনে ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া সহজেই দেখা যায়। পৰিৱেশ পৰিস্থিতি অনুসৰি বক্তাই ভাষাৰ সংক্ৰমণ বা মিশ্ৰণ কৰে। সামাজিক -সাংস্কৃতিক , অৰ্থনৈতিক যোগাযোগ এইবোৰে ভাষাৰ এনে সংযোগত বিশেষ প্ৰভাৱ পেলায়। পৰিৱেশ পৰিস্থিতি সাপেক্ষে যোগাযোগ অধিক শক্তিশালী কৰিবলৈ কোনো কোনো ক্ষেত্ৰত বিষয় অনুসৰি বক্তব্যক স্পষ্ট আৰু প্ৰভাৱশালী ৰূপত প্ৰকাশ কৰিবলৈ ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ কৰে। কেতিয়াবা বিষয়ক সহজে বুজিবৰ বাবেও এনে প্ৰক্ৰিয়া সংঘটিত কৰা দেখা যায়। কথোপকথনত বক্তব্য বিষয়ৰ অৰ্থ প্ৰকাশক উপযুক্ত অসমীয়া শব্দৰ অভাৱৰ বাবেও বহু সময়ত বক্তাই ভাষাৰ সংযোগ কৰে। তদুপৰি বক্তাই দৈনন্দিন জীৱনত শিক্ষা , বাণিজ্য, বিজ্ঞান আদি বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত স্বাভাৱিকতেই অসমীয়াৰ মাজত ইংৰাজী ভাষাৰ প্ৰয়োগ কৰে। দেখা যায় বিজ্ঞান-প্ৰযুক্তি,

অৰ্থনীতি, সংবাদ মাধ্যম আদিৰ লগত জড়িত এনে বহু শব্দ আছে যাৰ অসমীয়া পৰিভাষা থাকিলেও উপযুক্ত অৰ্থ বহন কৰিব পৰা, সকলো লোকেই সহজে বুজিব পৰাকৈ মূল ইংৰাজী ৰূপটোহে প্ৰয়োগ কৰাতো যুগুত। সেয়ে তেনে ক্ষেত্ৰতো অসমীয়াৰ পৰা ইংৰাজীলৈ সংক্ৰমণ কৰে বা অসমীয়াৰ মাজত ইংৰাজী ভাষাৰ মিশ্ৰণ কৰে। লগতে বৰ্তমান বেছিভাগ লোকেই দ্বিভাষী হোৱাৰ বাবেও বিভিন্ন সময়ত কথোপকথনত সহজতেই দুয়োটা ভাষাই একেলগে প্ৰয়োগ কৰে। তদুপৰি কেতিয়াবা প্ৰথম ভাষাৰ মাধ্যমেৰে বক্তব্য প্ৰকাশ কৰিবলৈ অক্ষম হ'লে বক্তব্যক শক্তিশালী ৰূপত উপস্থাপন কৰিবলৈ এনেধৰণৰ ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া সংঘটিত কৰা পৰিলক্ষিত হয়। সাম্প্ৰতিক কালত সামাজিক মাধ্যমৰ বহুল প্ৰয়োগৰ ফলত ভাষাৰ পৰিৱৰ্তনতো ই যথেষ্ট প্ৰভাৱ পেলাইছে। শেহতীয়াকৈ জনপ্ৰিয় হোৱা একবিংশ শতিকাৰ সৃষ্টি পডকাষ্ট ইয়াৰ উৎকৃষ্ট নিদৰ্শন। পডকাষ্ট হৈছে যোগাযোগৰ এক মৌখিক অনুষ্ঠান। য'ত দুটা পক্ষৰ মাজত বিভিন্ন বিষয় ক্ষেত্ৰ লৈ কথোপকথন কৰা হয় আৰু ইন্টাৰনেটৰ মাধ্যমেৰে সকলোৰে মাজত সেই অনুষ্ঠান প্ৰচাৰ কৰা হয়। অৰ্থাৎ পডকাষ্ট হ'ল ইণ্টাৰনেটত উপলব্ধ যিকোনো সময়তে, যিকোনো ঠাইতে শুনিব পৰা ক্ৰমাগতভাৱে প্ৰকাশিত এক শ্ৰাব্যানুষ্ঠান। য'ত সাহিত্য, সংস্কৃতি , ক্ৰীড়া, ৰাজনীতি, অৰ্থনীতি আদি বিভিন্ন ক্ষেত্ৰৰ বিশিষ্ট ব্যক্তিসকলে অংশ লৈ মত বিনিময় কৰি বিভিন্ন বিষয় সম্পৰ্কে আলোচনা কৰে। ই এক আলোচনামূলক অনুষ্ঠান। এনে পডকাষ্টসমূহত ভিন্ন ভাষিক, সাংস্কৃতিক পৰিৱেশৰ ব্যক্তিৰ অংশগ্ৰহণ তথা ভিন্ন বিষয় ক্ষেত্ৰৰ প্ৰসংগ আলোচনাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ হোৱা সহজেই দেখা যায়। অসমীয়া ভাষাৰ মাধ্যমতো এনে বহু পডকাষ্ট সম্প্ৰচাৰিত হৈ আছে য'ত বিভিন্ন সময়ত অংশগ্ৰহণকাৰীসকলৰ কথোপকথনৰ মাজত অসমীয়া ভাষাৰ লগত আন ভাষাৰ ভাষিক উপাদান অন্তৰ্ভুক্ত হৈ ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণৰ দৰে ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া সংঘটিত হোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। অসমীয়া পডকাষ্টসমূহৰ ভাষাত হোৱা ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণৰ স্বৰূপ সম্পৰ্কে তলত আলোচনা কৰা হ'ল।

১.১ অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত ভাষা-সংক্ৰমণ ঃ

বিশ্বায়নৰ প্ৰেক্ষাপটত অসমৰ সামাজিক, সাংস্কৃতিক, ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক দিশৰ লগতে ভাষিক ক্ষেত্ৰখনলৈও পৰিৱৰ্তন আহিছে। অসমীয়া ভাষীসকলে বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত পৰিৱেশ -পৰিস্থিতি সাপেক্ষে ইংৰাজী আৰু হিন্দী ভাষালৈ প্ৰায়ে সংক্ৰমণ কৰা পৰিলক্ষিত হয়। বিশেষকৈ সামাজিক মাধ্যমসমূহত এনেধৰণৰ পৰিৱৰ্তন সঘনাই দেখা যায়। অসমীয়া ভাষাত সম্প্ৰচাৰিত বিভিন্ন পডকাষ্টলৈ অহা বিভিন্ন ব্যক্তিৰ ভাষাত ভাষা -সংক্ৰমণ সহজেই পৰিলক্ষিত হয়। পডকাষ্টৰ কথোপকথনত বিষয় বস্তুক অধিক স্পষ্ট কৰিবলৈ বা পৰিস্থিতি-প্ৰসংগ অনুসৰি অসমীয়া ভাষাৰ পৰা আন ভাষালৈ সংক্ৰমণ কৰে। তলত সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হৈছে -

(ক) অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত পৰিস্থিতি-প্ৰসংগগত ভাষা-সংক্ৰমণ

পডকাষ্টলৈ অহা বিভিন্ন ব্যক্তিয়ে বিভিন্ন পৰিৱেশ পৰিস্থিতিৰ প্ৰসংগ উল্লেখ কৰোঁতে কেতিয়াবা অসমীয়াৰ পৰা ইংৰাজী আৰু হিন্দী ভাষালৈ সংক্ৰমিত হোৱা দেখা যায়। লগতে ব্যক্তিৰ সামাজিক স্থিতি অনুসৰিও ভাষা-সংক্ৰমণ হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। অসমীয়া পডকাষ্টসমূহত হোৱা পৰিস্থিতি-প্ৰসংগগত ভাষা-সংক্ৰমণৰ উদাহৰণ তলত দিয়া হ'ল —

প্ৰয়োগ	ভাষা	প্ৰসংগ
১। হাম গুলাম নেহি হে'	হিন্দী	সদনৰ মজিয়াৰ পৰিৱেশ প্ৰসংগত
২। হোৱাট আৰ্ দি ৰোড মেপ ইন ইয়ৰ হেণ্ড, আপোনালোকৰ পাৰ্টিৰ এই ক্ষেত্ৰত কৰিবলগীয়া কি ?	ইংৰাজী	ভাৰতৰ ৰাজনৈতিক পৰিস্থিতিৰ প্ৰসংগত
৩। ওপচ্ছ্ আই ড্ৰপ মাই টাৰ্ট	ইংৰাজী	অনাকাংক্ষিত পৰিস্থিতিৰ প্ৰসংগত
৪। লোকেশ্যন ওৱাইজ ভেৰি নাইচ	ইংৰাজী	'চিকাৰ' ছবিখনৰ দৃশ্যগ্ৰহণৰ পৰিৱেশ প্ৰসংগত
৫। মানে এণ্টাৰটেইনমেন্ট লাইনত যেতিয়া মানুহ থাকে। যদি সেইটোৰেই প্ৰফেশ্যন হয় , তেতিয়া হ'লে এইবোৰ পাৰ্ট অফ দ্যা গেম। মানে গ্লেমাৰ ইছ পাৰ্ট অফ দ্যা গেম।	ইংৰাজী	মনোৰঞ্জন জগতৰ পৰিৱেশ প্ৰসংগত

ওপৰৰ উদাহৰণসমূহৰ পৰা দেখা গৈছে বিভিন্ন প্ৰসংগত পৰিস্থিতি অনুসৰি অসমীয়া ভাষাৰ পৰা ইংৰাজী ভাষালৈ সংক্ৰমণ কৰিছে। উদাহৰণ ১ত গৌৰৱ গগৈয়ে সদনৰ মজিয়াত হোৱা পৰিৱেশ পৰিস্থিতিৰ বৰ্ণনাত হিন্দী ভাষালৈ সংক্ৰমণ কৰিছে। যিহেতু সদনৰ মজিয়াত ৰাষ্ট্ৰ ভাষা হিন্দীতেই বক্তব্য আগবঢ়াব লাগে, সেয়ে সদনৰ পৰিৱেশ প্ৰসংগৰ অৱতাৰণা কৰোঁতে হিন্দীলৈ সংক্ৰমণ কৰিছে। উদাহৰণ - “২” একেটা পডকাষ্টতে নিবন্ধকাৰ ৰাহুল গৌতম শৰ্মাই গৌৰৱ গগৈক তেওঁলোকৰ ৰাজনৈতিক দৃষ্টি, বৰ্তমানৰ ৰাজনৈতিক পৰিস্থিতিৰ তুলনাত কেনে হ'ব তাৰ প্ৰশ্ন কৰোঁতে ইংৰাজী ভাষালৈ সংক্ৰমণ কৰা দেখা গৈছে। যিহেতু ৰাহুল গৌতম এজন উচ্চ শিক্ষিত যুৱক, ইতিহাসৰ ছাত্ৰ। উচ্চ শিক্ষা ইংৰাজী ভাষাৰ মাধ্যমেৰে গ্ৰহণ কৰা হয় লগতে ৰাজনীতি সম্পৰ্কীয় সেই শব্দসমূহ ইংৰাজীৰ পৰা অহা গতিকে ৰাজনৈতিক পৰিস্থিতি সম্পৰ্কত কথা কওঁতে সহজে অসমীয়াৰ পৰা ইংৰাজীলৈ সংক্ৰমণ কৰাতো স্বাভাৱিক। উদাহৰণ - ‘৩’ ত ৰেন-মৌ নামৰ পডকাষ্টতেই ৰাষ্ট্ৰীয় পৰ্যায়ৰ ৰন্ধন প্ৰতিযোগিতাত শ্ৰেষ্ঠ খিতাপ অৰ্জন কৰা নয়নজ্যোতি শইকীয়াই প্ৰতিযোগিতাৰ আৰম্ভণি পৰ্যায়ত তেওঁৰ হাতৰ পৰা খাদ্য পৰাৰ পাছত যি পৰিৱেশ হৈছিল, তাৰ পিছত তেওঁ কি কৰিলে তাৰ পৰিস্থিতি বৰ্ণনাত অসমীয়াৰ পৰা ইংৰাজীলৈ সংক্ৰমণ কৰিছে। উদাহৰণ ৪ ত জুবিন গাৰ্গে তেওঁৰ চিকাৰ ছবিখনৰ দৃশ্যগ্ৰহণৰ পৰিৱেশৰ আভাস দিবলৈ যাওঁতে ইংৰাজী বাক্যৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। ঠিক সেইদৰে উদাহৰণ-৫ ত তৰালি শৰ্মাই মনোৰঞ্জন জগত বা সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰখনৰ পৰিস্থিতৰ প্ৰসংগত ইংৰাজী ভাষালৈ সংক্ৰমণ কৰিছে। দেখা যায় যে এনেদৰেই অসমীয়া পডকাষ্টলৈ অহা বিভিন্ন ব্যক্তিসকলে ভিন্ন ভাষিক , শৈক্ষিক, সাংস্কৃতিক পটভূমিৰ হোৱাৰ বাবে বিষয় আৰু পৰিস্থিতি প্ৰসংগক প্ৰভাৱশালী ৰূপত প্ৰকাশ কৰিবলৈ আৰু বহুসময়ত পডকাষ্টলৈ অহা অধিকাংশ লোকেই দ্বিভাষী হোৱাৰ বাবেও স্বাভাৱিকভাৱেই অসমীয়াৰ পৰা ইংৰাজীলৈ সংক্ৰমণ হৈছে।

(খ) অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত ৰূপকাত্মক ভাষা-সংক্ৰমণ ঃ

অসমীয়া পডকাষ্টসমূহলৈ অহা বিভিন্ন ক্ষেত্ৰৰ ব্যক্তিসকলৰ সৈতে হোৱা মত বিনিময়ত বিভিন্ন বিষয় সম্পৰ্কে আলোচনা কৰে। সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ পৰা আৰম্ভ কৰি ৰাজনীতি, ক্ৰীড়ালৈকে বিভিন্ন ক্ষেত্ৰৰ নানা ধৰণৰ বিষয় কথোপকথনৰ মাজত উত্থাপন হয়। তেনে পৰিপ্ৰেক্ষিতত বিষয়ক অধিক স্পষ্ট ৰূপত প্ৰকাশ কৰিবলৈ, সকলোৰে বোধগম্য হ'বলৈ মাজে মাজে অসমীয়া ভাষাৰ পৰা ইংৰাজী, হিন্দী ভাষালৈ সংক্ৰমণ কৰা পৰিলক্ষিত হয়। অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত বিষয়বস্তুক কেন্দ্ৰ কৰি হোৱা ভাষা -সংক্ৰমণ ৰ উদাহৰণ তলত দিয়া হ'ল -

সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰৰ বিষয় সম্পৰ্কীয় ঃ অসমীয়া পডকাষ্টলৈ অহা বিভিন্ন ক্ষেত্ৰৰ ভিতৰত সাংস্কৃতিক জগতৰ চলচ্চিত্ৰ , সংগীত, অভিনয় আদি ভিন্ন দিশৰ লগত জড়িত ব্যক্তিসকলৰ ভাষাত ৰূপকাত্মক ভাষা-সংক্ৰমণ দেখা যায়। সাংস্কৃতিক জগতৰ বিভিন্ন দিশ সম্পৰ্কে ক'বলৈ যাওঁতে শিল্পীসকলে অসমীয়াৰ লগতে ইংৰাজী ভাষাৰো প্ৰয়োগ কৰে। যেনে -

১) আৰু লোকেশ্যন ৱাইজ ভেৰি নাইচ

২) আই এম নট দ্যা লাষ্ট ষ্টাৰ। মই সেইটোৰেই কওঁ মোৰ পিছত ওলাব ছাগে কোনোবা।

৩) যদি সেইটোৰেই প্ৰফেশ্যন হয়, তেতিয়াহ'লে এইবোৰ পাৰ্ট অফ দ্যা গেম। মানে গ্লেমাৰ ইজ পাৰ্ট অফ দ্যা গেম।

ৰাজনীতি বিষয়ক ঃ অসমীয়া পডকাষ্টত ৰাজনীতিৰ প্ৰসংগও মাজে মাজে উত্থাপন। য'ত বিভিন্ন ধৰণৰ ৰাজনৈতিক দিশ সম্পৰ্কে অংশগ্ৰহণকাৰীসকলে আলোচনা কৰে। আলোচনাৰ প্ৰসংগত বিষয়টো অধিক প্ৰভাৱশালী ৰূপত উপস্থাপন কৰিবলৈ অসমীয়াৰ পৰা ইংৰাজীলৈ সংক্ৰমণ কৰে। যেনে -

১. দেক্স আৰ দ্যা পেনেল অফ জাডজেছ এণ্ড দিছ পিপক্সলচ ক'ৰ্ট ইজ দ্যা বিগেষ্ট ক'ৰ্ট অফ দ্যা লেণ্ড , ইট ইজ বিগাৰ দেন ছুপ্ৰিম ক'ৰ্ট এণ্ড অল দ্যা ভোটাৰচ আৰ দ্যা পেনেল অফ জাডজেছ।

২. আফটাৰ বি.জে.পি ইফ দ্যা কংগ্ৰেছ অৰ ইণ্ডিয়া কমচ ইনটু পাৱাৰ ইয়াত পাছত সেই প্ৰৱণতাটো আন্‌লিছ সৈ থকা যিটো এভিল স্পিৰিত আছে ৰুলাৰশ্বিপৰ মাজত সেইটোক কন্ত্ৰল কৰিবলৈ বা একেবাৰে দিমলিছ কৰিবলৈ হোৱাট আৰ দ্যা এজেণ্ডাজ, হোৱাট ইজ দ্যা ৰোড মেপ ইন ইয়ৰ হেণ্ড, আপোনালোকৰ পাৰ্টিৰ এই ক্ষেত্ৰত ক'বলগীয়া কি।

ওপৰৰ উদাহৰণৰ পৰা দেখা যায় যে প্ৰথম উদাহৰণটোত সৰ্বানন্দ সোণোৱালে ভোটাৰসকলৰ প্ৰসংগত বা ভোটাৰসকলৰ বিষয়ে ক'বলৈ যাওঁতে লগতে ভাৰতৰ ৰাজনীতিত ভোটাৰৰ গুৰুত্ব সম্পৰ্কে আভাস দিয়াৰ ক্ষেত্ৰত অসমীয়াৰ পৰা ইংৰাজীলৈ সংক্ৰমণ কৰিছে। ঠিক সেইদৰে দ্বিতিয় উদাহৰণটোত যাত্ৰা নামৰ পডকাষ্টত গৌৰৱ গগৈক ৰাহুল গৌতম শৰ্মাই এক ৰাজনৈতিক বিষয়ক প্ৰশ্ন কৰোঁতে অসমীয়াৰ পৰা ইংৰাজীলৈ সংক্ৰমণ কৰা দেখা গৈছে।

খাদ্য বিষয়ক ঃ

১. ওপচ্ আই ড্ৰপ মাই টাৰ্ট

ওপৰৰ উদাহৰণৰ পৰা দেখা যায় নিৰ্দিষ্ট খাদ্যৰ সম্পৰ্কে কব্লবলৈ যাওঁতে ইংৰাজীৰ প্ৰয়োগ কৰিছে।

গ) আন্তঃবাক্যিক ভাষা-সংক্ৰমণ

অসমীয়া পডকাষ্টসমূহত অংশগ্ৰহণকাৰী ব্যক্তিসকলে একেটা কথোপকথনতে পৃথক পৃথক বাক্যত দুটা ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিছে। পৰিস্থিতি বা বিষয়ক অধিক বাস্তৱসন্মত কৰিবলৈ, ভাবক অধিক স্পষ্টৰূপত প্ৰকাশ কৰিবলৈ পডকাষ্টসমূহত অংশগ্ৰহণকাৰীসকলে অসমীয়া ভাষাৰ মাজত ইংৰাজী আৰু হিন্দী ভাষাৰ প্ৰয়োগ কৰি আন্তঃ বাক্যিক সংক্ৰমণ কৰা দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে -

১.! আৰু লোকেশ্যন ৱাইজ ভেৰি নাইচ , এখন ধুনীয়া এক্সন থ্ৰিলাৰ, সবেই উপভোগ কৰিব পাৰিব।

২.! এভ্ৰি চেকেণ্ড গৈ আছে কিন্তু চক্স ওই আৰ লোজিং চমথিং। ওই আৰ্ নট গেইনিং এনিথিং, ওই আৰ্ লোজিং।

৩. কাইন্দ অফ এক্সপ্ৰেছন অফ হেপিনেছ অফ লাইফ। গতিকে আপুনি য'তেই কাম কৰে তাতেই আনন্দ বুটলিবলৈ চেষ্টা কৰিব লাগে।

৪. অল দ্যা ইউ চুদ বি জুবিলিয়েণ্ট এনাফ টু কমবেট দ্যা চেলেঞ্জেছ অফ লাইফ। জীৱনৰ যিকোনো পৰিস্থিতিৰ লগত মোকাবিলা কৰিবৰ কাৰণে আপুনি সজীৱ, সতেজ, সক্ৰিয় থাকিব লাগিব।

৫. নট লাইক এ ষ্টাৰ। বিকজ আই এম এ ভেৰি কমন হিউমেন বিং। মানে সাধাৰণ মানুহ।

ওপৰৰ উদাহৰণৰ ১ আৰু ২ বাৰ্তালাপ পডকাষ্টৰ কথোপকথনত জুবিন গাৰ্গৰ কথাৰ পৰা লোৱা হৈছে , ৩ আৰু ৪ সৰ্বানন্দ সোনোৱালৰ কথাৰ পৰা লোৱা হৈছে। ঠিক সেইদৰে উদাহৰণ ৫ টো তৰালি শৰ্মাৰ কথাৰ পৰা লোৱা হৈছে। দেখা গৈছে পাচোঁটা উদাহৰণতে বক্তাই একেটা কথোপকথনতে অসমীয়া ভাষাৰ এটা বাক্য কোৱাৰ পাছত ইংৰাজীৰ এটা বাক্য কৈছে বা ইংৰাজীৰ এটা বাক্য কোৱাৰ পাছত পুনৰ অসমীয়াত কৈছে। অৰ্থাৎ তেওঁলোকৰ কথোপকথনত অসমীয়াৰ পৰা ইংৰাজীলৈ সংক্ৰমণ হৈছে। বিষয়ক অধিক স্পষ্ট ৰূপত প্ৰকাশ কৰিবলৈ বা প্ৰসংগটোক সহজ বোধগম্য হ'বৰ বাবেই পডকাষ্টটোত বক্তা কেইজনে অসমীয়া আৰু ইংৰাজী ভাষাৰ সংযোগ কৰি একে ভাব প্ৰকাশ কৰিবলৈ দুয়োটা ভাষাৰে বাক্য প্ৰয়োগ কৰিছে।

ঘ) অন্তৰ্বাক্যিক ভাষা-সংক্ৰমণ

অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত অৰ্থাৎ পডকাষ্টত অংশগ্ৰহণ কৰা ব্যক্তিসকলৰ সৈতে হোৱা বাৰ্তালাপত অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰয়োগৰ মাজতে ইংৰাজী, হিন্দী ভাষাৰ বাক্যাংশ প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়। ফলত এটা ভাষাৰ এটা বাক্যৰ ভিতৰতে আন ভাষাৰ বাক্যাংশ সোমাই অৰ্ন্তবাক্যিক ভাষা-সংক্ৰমণ সংঘটিত হৈছে। তলত এনে ভাষিক প্ৰক্ৰিয়াৰ উদাহৰণ দিয়া হ'ল-

১. ঠিক প্ৰশ্ন নহয়, ইট্চ কাইন্দ অফ এ অপিনিয়ন

২. মানে এণ্টাৰটেণ্টমেন্ট লাইনত যেতিয়া মানুহ থাকে। যদি সেইটোৱে প্ৰক্সফেশ্যন হয়, তেতিয়াহ'লে এইবোৰ পাৰ্ট অফ দ্যা গেম।

৩. বুদ্ধই কৈছে যে দু লেছ। আমাৰ সমাজখনে কৈছে কাম কৰা, কাম কৰা , দু ম'ৰ।

৪. সদনৰ মজিয়াত কথাবোৰ খুব অধ্যয়ন কৰি ক'ব লাগে। আমি লুজ টক কৰিব নোৱাৰোঁ।

৫. ইউনিটি ইন ডাইভাৰচিটি চ' সেইটো কাৰণে বেছি ভাল লাগিলে।

৬. মই ভাবোঁ যে টাইম ইজ গড।

৭.! সেইটো ভুল কথা নথিং ইজ লাষ্ট।

৮. তেতিয়া তেওঁ মোক সুধিছে সৰ্বানন্দ ইয়ে তুম কিয়া বল্টে হ'।

ওপৰৰ উদাহৰণৰ পৰা দেখা গৈছে অসমীয়া পডকাষ্টসমূহত অংশ লোৱা ব্যক্তিসকলৰ কথোপকথনৰ ভাষাত অসমীয়াৰ মাজত প্ৰসংগ আৰু বিষয় অনুসৰি ইংৰাজী আৰু হিন্দী ভাষাৰ বাক্যাংশ সোমাই পৰিছে। অৰ্থাৎ কথোপকথন সহজ আৰু স্পষ্ট হ'বলৈ কথাৰ মাজে মাজে ইংৰাজী বাক্যাংশৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। কিয়নো পডকাষ্টত অংশ

লোৱা অধিকাংশ ব্যক্তিয়েই দ্বিভাষী গতিকে অসমীয়াৰ পৰা ইংৰাজী অথবা হিন্দীলৈ সংক্ৰমণ কৰাতো স্বাভাৱিক। তথাপি বহু ক্ষেত্ৰত আকৌ উপযুক্ত ভাব প্ৰকাশৰ বাবে বা বিষয়ক অধিক সহজে বোধগম্য কৰি তুলিবৰ বাবেও এনে হোৱা দেখা যায়।

১.২ অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত ভাষা-মিশ্ৰণ ঃ

সাম্প্ৰতিক সময়ত অসমীয়া ভাষাৰ ক্ষেত্ৰখনলৈ চালে দেখা যায় অসমীয়া ভাষাৰ মাজত ইংৰাজী আৰু হিন্দী ভাষাৰ শব্দ, সৰ্গৰ বহুল প্ৰয়োগ হৈছে। ব্যক্তিৰ দৈনন্দিন জীৱনৰ পৰিৱেশ, অৰ্থনৈতিক, সামাজিক দিশৰ লগতে শৈক্ষিক আদি দিশেও এই ক্ষেত্ৰত প্ৰভাৱ পেলায়। বিভিন্ন নতুন সামগ্ৰীৰ আমদানিৰ লগে লগে তাৰ লগত জড়িত বহু শব্দ অসমীয়া ভাষাত সোমাই পৰিছে। লগতে শিক্ষা, অৰ্থনীতি, ৰাজনীতি, প্ৰশাসন, বিজ্ঞান-প্ৰযুক্তি আদিৰ ক্ষেত্ৰত আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় যোগাযোগৰ বাবে ইংৰাজী আৰু ৰাষ্ট্ৰীয় প্ৰেক্ষাপটত হিন্দী ভাষাৰ দক্ষতা থকাতো প্ৰয়োজন। সেয়ে এনেবোৰ কাৰণতে অসমীয়া ভাষাত সততে ইংৰাজী আৰু হিন্দী ভাষাৰ মিশ্ৰণ দেখা যায়। বিশ্বায়নৰ যুগত নৱপ্ৰজন্মৰ পৰা আৰম্ভ কৰি শিশুলৈকে সকলোৱে নব্য মাধ্যমত সক্ৰিয় হৈ থাকে আৰু বিভিন্ন প্ৰসংগত অসমীয়া ভাষাৰ মাজত ইংৰাজী, হিন্দী বা উপভাষাৰ শব্দ প্ৰয়োগ কৰি ভাষা-মিশ্ৰণ কৰিছে। অসমীয়া পডকাষ্টসমূহতো বিভিন্ন ভাষিক, সাংস্কৃতিক, শৈক্ষিক পটভূমিৰ ব্যক্তিৰ অংশগ্ৰহণে কথোপকথনৰ সময়ত পৰিস্থিতি সাপেক্ষে বিষয়ক অধিক স্পষ্ট ৰূপত প্ৰকাশ কৰিবলৈ ভাষা মিশ্ৰণ কৰে। তদুপৰি কিছুমান ইংৰাজী শব্দৰ উপযুক্ত অৰ্থ প্ৰকাশক অসমীয়া পৰিভাষা নথকাৰ বাবে বা অসমীয়া পৰিভাষা থাকিলেও সহজে বুজিবলৈও ইংৰাজী বা হিন্দী ভাষাৰ শব্দৰ মিশ্ৰণ কৰা দেখা যায়। অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত হোৱা ভাষা-মিশ্ৰণৰ বিষয়ে তলত উদাহৰণৰ সহায়ত আলোচনা কৰা হ'ল।

ক) পৰিস্থিতিগত ভাষা-মিশ্ৰণ

ভিন্ন সামাজিক সাংস্কৃতিক পৰিৱেশ-পৰিস্থিতি অনুযায়ী ভাষা ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্ৰত পাৰ্থক্য পৰিলক্ষিত হয়। ব্যক্তিয়ে কেনে পৰিৱেশত কথা পাতিছে বা কথোপকথনৰ মাজত কি পৰিৱেশ-পৰিস্থিতিৰ বিষয়ে অৱতাৰণা কৰিছে আৰু কথোপকথন কৰা ব্যক্তিৰ মাজত কেনে সম্পৰ্ক এই দিশসমূহৰ বাবেও ভাষা-মিশ্ৰণ হয়। সেয়ে অসমীয়া পডকাষ্টসমূহত অংশ লোৱা ব্যক্তিসকলে বিভিন্ন সময়ত অসমীয়া ভাষাৰ মাজত ইংৰাজী বা হিন্দী ভাষাৰ শব্দৰ প্ৰয়োগ কৰা দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে-

প্ৰয়োগ	ভাষা	প্ৰসংগ
১। ভিডিঅ'টি স্কিপ নকৰিব চাই থাকিব।	ইংৰাজী	পডকাষ্টৰ আৰম্ভণিৰ পৰিৱেশত
২। পি.ভি. নাৰ্চিমা ৰাওৰ দিনত ইকনমিক লিবাৰাইজেশ্যন হ'ল, অৰ্থনৈতিক নীতিবোৰ ৰূপায়ণ কৰিলোঁ। যাৰ ফলত বহুত বাহিৰৰ কোম্পানীবোৰ পেপ্সি, ডমিন'জ এইবোৰ সব সেইসময়ত ইণ্ডিয়াত এনট্ৰি কৰিলে।	ইংৰাজী	নাৰ্চিমা ৰাওৰ দিনৰ ভাৰতৰ অৰ্থনৈতিক পৰিৱেশ প্ৰসংগত
৩। তেওঁলোকৰ ওপৰত ৰেগিং হয়।	ইংৰাজী	শিক্ষানুষ্থানৰ পৰিৱেশ প্ৰসংগত
৪। ডেমক্ৰেচি ভিতৰত চৰকাৰ এটা অংশ।	ইংৰাজী	ৰাজনৈতিক পৰিৱেশত
৫। ভাৰতৰ ভিতৰত অন্যতম এগৰাকী শ্ৰেষ্ঠ চেফক ৰেন মৌৰ অতিথি কৰি অনা যাওক। চনি টি.ভি.এ আয়োজন কৰা মাষ্টাৰ চেফ চঞ্চু বৰ্ষৰ বিজয়ী তিনিচুকীয়াৰ নয়নজ্যোতি শইকীয়াক।	ইংৰাজী	পডকাষ্টৰ আৰম্ভণিত অতিথি চিনাকিত
৬। আৰে তই মেডিকেল পঢ়িব লাগিছিল, ঘৰত ফ'ৰ্চ কৰি মেলি ইঞ্জিনিয়াৰিং পঢ়ালে নেকি?	ইংৰাজী	শিক্ষানুষ্ঠানৰ পৰিৱেশ প্ৰসংগত
৭। জাড্‌জ আহিলে দিচটো টেষ্ট কৰিলে খুব ভাল পালে।	ইংৰাজী	ৰন্ধন প্ৰতিযোগিতাৰ পৰিৱেশৰ বৰ্ণনা প্ৰসংগত
৮। মই মানে দিচটো ইমানেই কমপ্লিকেটেড কৰি ললোঁ, পেনিক কৰিছোঁ, কি কৰিম কি নকৰিম। ৰন্ধন প্ৰতিযোগিতাৰ পৰিৱেশৰ বৰ্ণনা প্ৰসংগত	ইংৰাজী	এখন চলচ্চিত্ৰৰ পৰিৱেশ বৰ্ণনাত

প্ৰয়োগ	ভাষা	প্ৰসংগ
৯। মই এক্সন ভাল পাওঁ চিনেমাত , মোৰ আগৰ দুইখন চিনেমাত যথেষ্ট বেলেগ বেলেগ ধৰণৰ এক্সন কৰিছোঁ।	ইংৰাজী	এখন চলচ্চিত্ৰৰ পৰিৱেশ বৰ্ণনাত
১০। এখন ধুনীয়া এক্সন থিলাৰ , সবেই উপভোগ কৰিব পাৰিব।	ইংৰাজী	এখন চলচ্চিত্ৰৰ পৰিৱেশ বৰ্ণনাত
১১। বাগানৰ মানুহখিনি খুব চিম্পল মানুহ , ধুনীয়াকৈ অকল জীয়াই থাকিব লাগে, ফুৰ্টি অকমাণ, কাম্‌সে মতলব বেলেগ কথা নাই।	হিন্দী	চাহ বাগানৰ পৰিৱেশ উপস্থাপনত

ওপৰৰ উদাহৰণ '১' আৰু '৫' ত পডকাষ্টৰ আৰম্ভণিৰ পৰিৱেশত সঞ্চালক আইচেংফা বৰুৱাই দৰ্শকক অনুষ্ঠান উপভোগ কৰিবলৈ কোৱাৰ লগতে আমন্ত্ৰিত অতিথি চিনাকি পৰ্বৰ প্ৰসংগত অসমীয়াৰ মাজত ইংৰাজী শব্দৰ প্ৰয়োগ কৰি ভাষা-মিশ্ৰণ কৰিছে। উদাহৰণ '২' ত পি.ভি নাৰ্চিমাৰ প্ৰধান মন্ত্ৰীৰ সময়ৰ অৰ্থনৈতিক পৰিৱেশ- পৰিস্থিতিৰ বৰ্ণনাত সাংসদ গৌৰৱ গগৈয়ে ইংৰাজী ভাষাৰ মিশ্ৰণ কৰিছে। উদাহৰণ '৩' আৰু '৬'ত পডকাষ্টত অংশগ্ৰহণকাৰীয়ে তেওঁলোকৰ শিক্ষানুষ্ঠানৰ পৰিৱেশৰ অৱতাৰণা কৰিবলৈ যাওঁতে ভাষা-মিশ্ৰণ ঘটাইছে। উদাহৰণ '৪'ত ভাৰতৰ ৰাজনৈতিক পৰিৱেশৰ অৱতাৰণা কৰোঁতে গৌৰৱ গগৈয়ে ইংৰাজী শব্দৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। উদাহৰণ '৭' আৰু '৮'ত নয়নজ্যোতি শইকীয়াই ৰাষ্ট্ৰীয় পৰ্যায়ৰ ৰন্ধন প্ৰতিযোগিতাৰ সময়ৰ পৰিৱেশৰ বৰ্ণনা প্ৰসংগত ইংৰাজী শব্দৰ মিশ্ৰণ ঘটাইছে। ঠিক সেইদৰে উদাহৰণ '৯' আৰু '১০' ত সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰৰ বিশেষকৈ চলচ্চিত্ৰৰ উদ্যোগৰ লগত সংগতি থকা কিছুমান ইংৰাজী শব্দৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। উদাহৰণ '১১'ত জুবিন গাৰ্গে চাহ বাগানৰ পৰিৱেশ, তাৰ মানুহৰ কথাৰ প্ৰসংগত ক্ৰমে হিন্দী ভাষাৰ শব্দৰ মিশ্ৰণ কৰা দেখা যায়। এনেদৰে বিভিন্ন পৰিস্থিতি বুজাবলৈ অংশগ্ৰহণকাৰীয়ে ইংৰাজী বা অন্য ভাষাৰ শব্দৰ মিশ্ৰণ কৰে।

খ) ৰূপকাত্মক ভাষা-মিশ্ৰণ ঃ

অসমীয়া পডকাষ্টসমূহত অংশগ্ৰহণকাৰীসকলে উপযুক্ত ভাব প্ৰকাশ কৰিবলৈ বা বিষয় বস্তুক অধিক স্পষ্ট কৰি তুলিবৰ বাবে বহু সময়ত এটা বিষয়ৰ লগত জড়িত ইংৰাজী বা হিন্দী শব্দৰ প্ৰয়োগ কৰা দেখা যায়। বিজ্ঞান, তথ্য-প্ৰযুক্তি, অৰ্থনীতি, সংবাদ জগত, সামাজিক মাধ্যম আদি ক্ষেত্ৰৰ লগত জড়িত বহুতো ইংৰাজী শব্দৰ যথাযথ অৰ্থ বহন কৰিব পৰা অসমীয়া পৰিভাষাৰ অভাৱৰ বাবেও বহুসময়ত পডকাষ্টৰ ভাষাত অংশগ্ৰহণকাৰীয়ে শব্দবোৰৰ মূল ইংৰাজী ৰূপটোকেই অসমীয়ালৈ লিপ্যন্তৰ কৰি প্ৰয়োগ কৰিছে। লগতে অংশগ্ৰহণকাৰীসকল দ্বিভাষী হোৱাৰ বাবেও স্বাভাৱিকতে তেওঁলোকৰ কথোপকথনৰ ভাষাত ইংৰাজী শব্দৰ মিশ্ৰণ হৈছে। অসমীয়া পডকাষ্টসমূহত বিষয় অনুসৰি কেনেকৈ ৰূপকাত্মক ভাষা-মিশ্ৰণ হৈছে সেয়া তলত উদাহৰণৰ সহায়ত আলোচনা কৰা হৈছে -

সামাজিক মাধ্যম বিষয়ক শব্দ ঃ

পডকাষ্টসমূহ যিহেতু সামাজিক মাধ্যমৰ যোগেদিয়ে প্ৰচাৰ হয়, সেয়ে স্বাভাৱিকতেই সামাজিক মাধ্যমৰ বিষয়ৰ লগত সংগতি থকা শব্দৰ প্ৰয়োগ হয়। আৰু তেনে বহু ইংৰাজী শব্দৰ মিশ্ৰণ হোৱা দেখা যায়। লগতে অনুষ্ঠানত সামাজিক মাধ্যমৰ লগত জড়িত ব্যক্তিসকলৰ অংশগ্ৰহণৰ ফলতো তেনে ক্ষেত্ৰৰ ব্যক্তিৰ ভাষাত ইংৰাজী শব্দৰ মিশ্ৰণ দেখা যায়। যেনে -

১) ভিডিঅ'টো চাই স্কিপ নকৰিব।

২) মই কিলাৰ মোবাইলফোন বুলি কওঁ। এই কিলাৰ মোবাইলফোনটোৱে পঢ়াৰ অভ্যাসটো কমাই দিছে।

৩) ৯:১৫ৰ বুলেটিনখন পঢ়িব লাগে। মই প্ৰথমতে ভাবিলোঁ নিউজ ৰুমত তাক থৈ যাম। এডিটৰ আছিল। মই বুলেটিনখন লিখিলোঁ।

৪) চেগমেণ্ট আৰম্ভ কৰিছিলে।

৫) তোমালোকৰ পৰ্টেলত

৬) চনি টি.ভিয়ে আয়োজন কৰা মাষ্টাৰ চেফ ২০২৩ বৰ্ষৰ বিজয়ী।

৭) আজি চচিয়েল মিডিয়াত এটা প'ষ্ট দিছিলোঁ। জুবিন দাক কি কি প্ৰশ্ন সুধিব লাগে মোক ইয়াত কমেণ্ট কৰক।

ওপৰৰ উদাহৰণৰ পৰা দেখা গৈছে যে সামাজিক মাধ্যমৰ লগত সংগতি থকা বিষয়ৰ ভিডিঅ', স্কিপ, মোবাইলফোন,বুলেটিন, নিউজ, এডিটৰ, চেগমেণ্ট চনি.টি.ভি , কমেণ্ট আদি ইংৰাজী শব্দসমূহৰ মিশ্ৰণ হৈছে। এই শব্দসমূহ সামাজিক মাধ্যম তথা সংবাদ মাধ্যমৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰায়েই প্ৰয়োগ হৈ থাকে। সেয়ে বিষয়ক স্পষ্ট কৰি তুলিবলৈ বক্তাই এনে মিশ্ৰণ কৰে।

অৰ্থনীতি বিষয়ক শব্দ ঃ

নিৰ্বাচিত পডকাষ্টসমূহত হোৱা বাৰ্তালাপত অৰ্থনীতি বিষয়ক ভালেমান ইংৰাজী ভাষাৰ শব্দৰ মিশ্ৰণ হোৱা দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে—

১) নাৰ্চিমা ৰাওৰ দিনত ইকনমিক লিবাৰাইজেশ্যন হ'ল।

২) বেলেঞ্চ কৰে নিৰপেক্ষ ইনষ্টিটিউশ্যন ইলেকশ্যন কমিছ্ছন, ৰিজাৰ্ভ বেংক অফ ইণ্ডিয়া

ওপৰৰ উদাহৰণৰ পৰা দেখা যায় যে ইকনমিক লিবাৰাইজেশ্যন, ইনষ্টিটিউশ্যন, ৰিজাৰ্ভ বেংক অফ ইণ্ডিয়া আদি অৰ্থনীতিৰ লগত জড়িত শব্দ ইংৰাজী ভাষাৰ পৰা প্ৰয়োগ কৰিছে।

সাংস্কৃতিক জগতৰ লগত জড়িত শব্দ ঃ

সাধাৰণতে দেখা সাংস্কৃতিক জগত তথা চলচ্চিত্ৰ উদ্যোগৰ লগত জড়িত ভালেমান ব্যক্তিয়ে পডকাষ্টত অংশ লয় তেওঁলোকৰ কথোপকথনৰ মাজত ইংৰাজী শব্দৰ মিশ্ৰণ প্ৰায়ে দেখা যায়। চলচ্চিত্ৰ জগত বা সাংস্কৃতিক জগত খনৰ লগত জড়িত এনে কিছুমান শব্দ আছে যিবোৰ অসমীয়া পৰিভাষা থকাৰ পাছতো ইংৰাজী শব্দটো প্ৰয়োগ কৰিলেহে সহজে বুজিব পাৰি ।আকৌ এনে কিছু শব্দ আছে যাৰ উপযুক্ত অসমীয়া শব্দৰ অভাৱ। এনেবোৰ কাৰণতে সাংস্কৃতিক জগতৰ লগত জড়িত বহু ইংৰাজী শব্দৰ মিশ্ৰণ হৈছে। যেনে—

১) মইও এণ্টাৰটেইনমেণ্ট ফিল্ডত আছোঁ। এখন ষ্টেজ শ্ব' কৰিলে মানুহে দেফিনেটলি ভাল পাব লাগিব।

২) আজিকালি খালি কেচেটবোৰ দেখোঁ, কেচেট প্লেয়াৰটো নেদেখোঁ

৩) মই এক্সন ভাল পাওঁ চিনেমাত।

৪) আমাৰ প্ৰডিউচাৰৰ নিজৰ ষ্টুডিঅ' আছিল, তাতে এডিটিং কৰিছে , গ্ৰাফিক্স কৰিছে।

৫) দুজনমান ট্ৰেইলাৰত দেখিছোঁ বৃটিছ আছে

৬) মিউজিচিয়ান বা আৰ্টিষ্ট হিচাপে থাকিব বিচাৰোঁ।

৭) জুলুৰ শ্বুটিং সম্পূৰ্ণ হ'ল বুলি ক'লে, এডিটিং চলি আছে বুলি ক'লে।

ওপৰৰ উদাহৰণৰ পৰা দেখা গৈছে সাংস্কৃতিক জগতয় লগত জড়িত বিভিন্ন শব্দ শ্বুটিং, ষ্টেজ শ্ব', এডিটিং, গ্ৰাফিক্স, ট্ৰেইলাৰ, কেছেট , প্ৰডিউচাৰ, এক্সন আদি ইংৰাজী শব্দৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। এই শব্দবোৰৰ অসমীয়া পৰিভাষা থাকিলেও সহজে সকলোৰে বোধগম্য হ'বৰ বাবে ইংৰাজীৰ মিশ্ৰণ কৰিছে।

ৰাজনীতি বিষয়ক শব্দ ঃ

১) ডেমক্ৰেচি ভিতৰত চৰকাৰ এটা অংশ

২) আমাৰ চৰকাৰৰ দিনত আমি আৰ.টি.আই ওলালোঁ

ওপৰৰ উদাহৰণৰ পৰা দেখা যায় ডেমক্ৰেচি, আৰ.টি.আই. আদি ইংৰাজী শব্দৰ প্ৰয়োগ কৰিছে।

খাদ্য বিষয়ক শব্দ ঃ

খাদ্যৰ লগত জড়িত বিভিন্ন ইংৰাজী শব্দ কথোপকথনৰ মাজত প্ৰয়োগ কৰা প্ৰায়ে দেখা যায়। বিভিন্ন খাদ্যৰ নাম, খাদ্যৰ লগত জড়িত আন আন শব্দৰ অসমীয়া পৰিভাষা নথকাৰ বাবে বা পৰিভাষা থকাৰ পাছতো সহজে বুজি পাবলৈ ইংৰাজী শব্দৰ মিশ্ৰণ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। যেনে—

১) মই সকলোকে ছাজেষ্ট কৰোঁ যে, খুব চিম্পল ৰেচিপি, খুব কম সামগ্ৰীৰে যি বিলাক দিচেছ বনাব পাৰি তেনেকুৱা ৰেচিপিজবিলাক ছাজেষ্ট কৰিম প্ৰথমতে।

২) জাড্জ আহিলে দিচটো টেষ্ট কৰিলে খুব ভাল পালে।

৩) এটা প্ৰপাৰ যিটো মিল বুলি কয়, সুষম খাদ্যত প্ৰপাৰ মেজাৰমেণ্ট বা প'ৰপশ্যন বুলি কয় থাকিব লাগে।

৪) দিচটোৰ টাৰ্টটো এক চাইদ লাগিলে এটা চাইদ হাফ কৰি দিওঁ।

ওপৰৰ উদাহৰণ পৰা দেখা গৈছে যে ৰেচিপি, দিচ, টেষ্ট, টাৰ্ট, মিল আদি বিভিন্ন খাদ্য সম্পৰ্কীয় ইংৰাজী শব্দৰ মিশ্ৰণ হৈছে।

গ) আন্তঃশাব্দিক ভাষা-মিশ্ৰণ ঃ

গঠনগত দিশৰ পৰা চালে দেখা যায় অসমীয়া পডকাষ্টসমূহৰ ভাষাত যথেষ্ট পৰিমাণে আন্তঃশাব্দিক ভাষা-মিশ্ৰণ হৈছে। অন্য ভাষাৰ শব্দৰ লগত অসমীয়া ভাষাৰ বিভিন্ন পৰসৰ্গ যোগ কৰি এনে ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া সংঘটিত কৰা পৰিলক্ষিত হয়। ইংৰাজী ভাষাৰ শব্দৰ লগত অসমীয়া নিৰ্দিষ্টতাবাচক প্ৰত্যয় আৰু বহুবচনবাচক প্ৰত্যয়ৰ সংযোগ কৰি অসমীয়া ভাষাত প্ৰয়োগ কৰিছে।

ইংৰাজী শব্দ	অসমীয়া অনিৰ্দিষ্টাবাচক প্ৰত্যয়	প্ৰয়োগ
ভিডিঅ’	টো	ভিডিঅ’টো চাই থাকিব স্কিপ নকৰিব।
বুলেটিন	খন	বুলেটিনখন পঢ়িব লাগে
দিচ	টো	জাড্জ আহিলে দিচটো টেষ্ট কৰিলে
লেপটপ	টো	আপোনাৰ পিতৃৰ দিনতহে লেপটপটো পাইছোঁ।
স্কিন	খন	আমাৰ স্কিনখন বা চুলিৰ কাৰণে যিটো নেচাৰেল ফেট লাগে সেইখিনি আমাৰ খাদ্যত খুব প্ৰয়োজন হয়
ৰেচিপিজ	বিলাক	খুব কম সামগ্ৰীৰে যিবিলাক দিচ বনাব পাৰি তেনেকুৱা ৰেচিপিজবিলাক ছাজেষ্ট কৰিম প্ৰথমতে
দিচ	বিলাক	জাড্জে কি বুলি কমপ্লিমেণ্ট দিলে দিচবিলাকৰ সেইটো গৈ এটা ভি.ডি. ৰূমত গৈ ক’বগৈ লাগে।

ওপৰৰ আলোচনাৰ পৰা দেখা যায় যে অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ দুয়োটাই কম-বেছি পৰিমাণে হৈছে। বিশেষকৈ অসমীয়া ভাষাৰ মাজত ইংৰাজী আৰু হিন্দী ভাষাৰ প্ৰয়োগ দেখা যায়। ইংৰাজী ভাষাৰ প্ৰয়োগেই সৰ্বাধিক। পডকাষ্টত অংশ লোৱা ব্যক্তিসকল বহুভাষী বা দ্বিভাষী হোৱাৰ বাবেও দৈনন্দিন জীৱনত অসমীয়াৰ মাজত ইংৰাজী ভাষাৰ মিশ্ৰণ হোৱাৰ দৰেই পডকাষ্টৰ কথোপকথনতো ভাষিক সংযোগ দেখা যায়। বিভিন্ন ক্ষেত্ৰৰ ব্যক্তিসকলে নিজৰ ক্ষেত্ৰ বা বিভিন্ন পৰিস্থিতি বৰ্ণনাৰ প্ৰসংগত অসমীয়াৰ পৰা ইংৰাজীলৈ সংক্ৰমণ কৰিছে আৰু পৰিস্থিতি অনুসৰি ইংৰাজী ভাষাৰ মিশ্ৰণ কৰিছে। লগতে বাৰ্তালাপৰ মাজত প্ৰসংগক্ৰমে বিভিন্ন বিষয়ক অধিক স্পষ্ট কৰিবলৈ বিষয়ৰ অৰ্থ প্ৰকাশক ভাব অধিক প্ৰভাৱশালী কৰিবলৈ ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ কৰা দেখা গৈছে। লগতে অৰ্থনীতি, চলচ্চিত্ৰ, ৰাজনীতি, খাদ্য আদি বিষয়ৰ কিছুমান শব্দৰ উপযুক্ত অৰ্থ প্ৰকাশক অসমীয়া পৰিভাষা নথকাৰ বাবে এনে ভাষিক সংযোগ হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। কেতিয়াবা তেনে শব্দৰ অসমীয়া পৰিভাষা থাকিলেও সহজে বোধগম্য হ’বলৈও ভাষা-সংক্ৰমণ বা ভাষা-মিশ্ৰণ কৰিছে। অসমীয়া পডকাষ্টত ভাষা-সংক্ৰমণৰ তুলনাত ভাষা-মিশ্ৰণ বেছিকৈ সংঘটিত হৈছে। বিশেষকৈ অসমীয়া ভাষাৰ মাজত ইংৰাজী ভাষাৰ প্ৰয়োগেই অধিক।

২.০ উপসংহাৰ ঃ

একবিংশ শতিকাত বিজ্ঞান-প্ৰযুক্তিৰ দ্ৰুত বিকাশৰ ফলশ্ৰুতিত অসমৰ সমাজ জীৱনৰ সকলো দিশতেই পৰিৱৰ্তন পৰিলক্ষিত। মানুহৰ জীৱনশৈলীৰ পৰা ভাষালৈকে সকলো ক্ষেত্ৰত বিশ্বায়নৰ প্ৰভাৱ সুস্পষ্ট। অসমীয়াভাষীসকলে কথাৰ মাজে মাজে বিষয় বিচিত্ৰতা তথা পৰিস্থিতি প্ৰসংগ অনুসৰি অন্য ভাষাৰ শব্দ বা বাক্যৰ প্ৰয়োগ কৰা দেখা যায়। ই হৈছে এক ভাষিক যোগাযোগ, যিয়ে ভাষাৰ পৰিৱৰ্তন যথেষ্ট প্ৰভাৱ পেলায়। বিভিন্ন প্ৰয়োজন পূৰাবলৈ বা স্বাভাৱিকতেই মানুহে দৈনন্দিন জীৱনত অসমীয়াৰ মাজত ইংৰাজী, হিন্দী বা আন ভাষাৰ শব্দ, বাক্যৰ সংযোগ কৰি ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ কৰিছে। বৰ্তমান সামাজিক মাধ্যমৰ যুগত ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণৰ দৰে ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া একেবাৰেই স্বাভাৱিক , অধিকাংশ মানুহেই সম্পূৰ্ণ অসমীয়া ভাষাত কথোপকথন নকৰি অসমীয়াৰ মাজত আন ভাষাৰ সংক্ৰমণ আৰু মিশ্ৰণ কৰা পৰিলক্ষিত হয়। নব্য মাধ্যমসমূহত জনপ্ৰিয় হোৱা পডকাষ্টসমূহৰ কথোপকথনৰ মাজতো এনে ভাষিক প্ৰক্ৰিয়া সঘনাই দেখা যায়। পডকাষ্টত বিভিন্ন পৰিৱেশ

পৰিস্থিতিৰ বৰ্ণনা কৰিবলৈ যাওঁতে বা বিভিন্ন প্ৰসংগৰ উল্লেখ কৰোঁতে সকলোৱে বুজিব পৰাকৈ ইংৰাজী ভাষাৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। কেতিয়াবা পডকাষ্টতত এনে কিছুমান বিষয় উত্থাপন কৰা হয়, তাৰ অৰ্থ প্ৰকাশক উপযুক্ত অসমীয়া শব্দৰ অভাৱৰ বাবেও বিভিন্ন সময়ত ইংৰাজী শব্দটোকেই লিপ্যন্তৰ কৰি অসমীয়া ভাষাত প্ৰয়োগ কৰে।

২.১ সামগ্ৰিক সিদ্ধান্ত ঃ

➢ অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত বিভিন্ন পৰিস্থিতি পৰিৱেশৰ বৰ্ণনা প্ৰসংগত ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ হয়।

➢ বিভিন্ন বিষয়ক অধিক স্পষ্ট ৰূপত প্ৰকাশ কৰিবলৈ ইংৰাজী বা হিন্দী আদি আন ভাষালৈ সংক্ৰমণ কৰে বা ভাষাৰ মিশ্ৰণ কৰে।

➢ পডকাষ্টৰ অংশগ্ৰহণকাৰীসকল দ্বিভাষী বা বহুভাষী হোৱাৰ বাবে অসমীয়াৰ মাজত সহজেই আন ভাষাৰ সংযোগ দেখা গৈছে।

➢ বিজ্ঞান, অৰ্থনীতি, ৰাজনীতি, সামাজিক মাধ্যম আদি বিভিন্ন ক্ষেত্ৰৰ লগত সম্পৰ্কিত ইংৰাজী শব্দৰ উপযুক্ত অৰ্থ প্ৰকাশক অসমীয়া শব্দৰ অভাৱ বা অসমীয়া পৰিভাষা থাকিলেও মানুহে সহজে বুজিবৰ বাবে মূল ইংৰাজী শব্দটোকেই প্ৰয়োগ কৰে।

➢ অসমীয়া পডকাষ্টত আন্তঃবাক্যিক ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু অৰ্ন্তবাক্যিক ভাষা সংক্ৰমণো হৈছে।

➢ অসমীয়া পডকাষ্টসমূহত বক্তাসকলে ইংৰাজী! হিন্দী ভাষাৰ লগত অসমীয়া ভাষাৰ নিৰ্দিষ্টতাবাচক প্ৰত্যয় আৰু বহুবচনবাচক প্ৰত্যয়ৰ সংযোগ কৰি আন্তঃশাব্দিক ভাষা-মিশ্ৰণ কৰিছে।

➢ অসমীয়া পডকাষ্টৰ ভাষাত সাধাৰণতে ইংৰাজী ভাষাৰেই অধিক সংক্ৰমণ আৰু মিশ্ৰণ হোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

১. Jemily, Rime ঃ *Convergence: The Internatinal journal of research into new media technology,*p.9
২. বিশ্বজিৎ, দাস ঃ *সমাজভাষাবিজ্ঞান,* পৃ.৪৬
৩. R.A.Hudson ঃ *Sociolinguistics*,p.51
৪. পুষ্পাঞ্জলি, হাজৰিকা ঃ *একবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া আলোচনীৰ ভাষা ঃ ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ,* পৃ.২৮

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

কোঁৱৰ, অৰ্পণা ঃ *ভাষাবিজ্ঞান উপক্ৰমণিকা* , ডিব্ৰুগড় , বনলতা , ২০০৬
কোঁৱৰ, অৰ্পণা ,অনুৰাধা শৰ্মা ঃ *ভাষাবিজ্ঞান পৰিভাষাকোষ,* ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, অসমীয়া বিভাগ, ২০০৮
দাস, বিশ্বজিৎ ঃ *সমাজ ভাষাবিজ্ঞান* , নগাঁও, অজন্তা প্ৰেছ , ২০১৫
দুৱৰা, সপোন ঃ *ভাষা আৰু সমাজ,* গুৱাহাটী, ষ্টুডেণ্ট ষ্ট'ৰচ্ , ২০০২
শৰ্মা , অনুৰাধা ঃ *সংহতি আৰু অসমীয়া ভাষা* , গুৱাহাটী, ভবানী প্ৰিণ্টাৰ্চ এণ্ড পাব্লিকেশ্যনচ , ২০১২
- ঃ সমাজ আৰু ভাষা সমাজভাষাবিজ্ঞান পৰিচয়, গুৱাহাটী, বান্ধৱ, ২০১৬
Hudson.R.A., *Sociolinguistics*,UK,Oxford University Press,1980

অপ্ৰকাশিত গৱেষণা গ্ৰন্থ ঃ

হাজৰিকা,পুষ্পাঞ্জলি, ঃ *একবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া আলোচনীৰ ভাষা ঃ ভাষা-সংক্ৰমণ আৰু ভাষা-মিশ্ৰণ,* ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, অসমীয়া বিভাগ, ২০২১

পত্ৰিকা ঃ

A.Sarah(ed.) ঃ Jemily, Rime, "What is podcasat? Considering innovations in podcasting through the six-tensions framework,"*Convergence: The Internatinal journal of research into new media technology,*p.1-23,2022

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

নৱকান্ত বৰুৱাৰ উপন্যাসত চিত্ৰিত সমাজ জীৱন
(‘কপিলীপৰীয়া সাধু’ উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লিখনসহ)

লীমা কলিতা
গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী-৭৮১০০১
৮৪৭৩০২০২২৬
limakalita02@gmail.com

ড° মহেশ্বৰ কলিতা
প্ৰাধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী-৭৮১০০১
৯৮৬৪০৭৫০৯০
kalitasir2020@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যত নৱকান্ত বৰুৱা এক জনপ্ৰিয় নাম। চল্লিশৰ দশকৰ পৰাই সাহিত্য সৃষ্টিত মনোনিৱেশ কৰা নৱকান্ত বৰুৱাৰ ১৯৫৪ চনত প্ৰকাশিত “কপিলীপৰীয়া সাধু” প্ৰথম উপন্যাস। কপিলী নদীক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত উপন্যাসখন আঞ্চলিক উপন্যাস বুলি গণ্য কৰিব পাৰি। উপন্যাসখনৰ পাতনিত তেওঁ উপন্যাসৰ কাহিনীটোক সাধু অথবা আখ্যান বুলি অভিহিত কৰিছে। কপিলীপাৰৰ লোকজীৱনক কেন্দ্ৰ কৰি ঔপন্যাসিকে বাস্তৱ অভিজ্ঞতাৰ আধাৰত উপন্যাসখনৰ কাহিনীভাগ কাল্পনিকভাৱে সজাই-পৰাই তুলিছে। নগাঁৱৰ কপিলী নৈৰ দুয়োপাৰে প্ৰেম-ভালপোৱা আদিৰে পৰিপূৰ্ণ হোৱা জীৱনৰ কাহিনী উপন্যাসখনত অংকিত হৈছে। আঞ্চলিক উপন্যাসৰ বৈশিষ্ট্যৰাজি ফঁহিয়াই চাই নৱকান্ত বৰুৱাৰ ‘কপিলীপৰীয়া সাধু’ক একে আশাৰে আঞ্চলিক উপন্যাসৰ ধাৰাত স্থান দিব পাৰি। কপিলীপাৰৰ মানুহৰ বহুতো ইতিহাস, ঘটনা, উপ-ঘটনাৰ ৰেঙণি উপন্যাসখনত লিপিবদ্ধ হৈছে। এনেবোৰ কাৰণতেই ইয়াক আঞ্চলিক উপন্যাস হিচাপে চিহ্নিত কৰিব পাৰি। গৱেষণা পত্ৰখনত এই উপন্যাসখনত প্ৰকাশিত সামাজিক চিত্ৰ সম্পৰ্কে বিশ্লেষণ আগবঢ়োৱা হৈছে।

বীজশব্দ ঃ

সমাজ, চিত্ৰ, উপন্যাস, কপিলী, নৈ, ঔপন্যাসিক, জীৱন, গ্ৰাম্য।

প্ৰস্তাৱনা ঃ

পঞ্চাশৰ দশকত ঔপন্যাসিক হিচাপে আত্মপ্ৰকাশ কৰা নৱকান্ত বৰুৱা এগৰাকী শক্তিশালী ঔপন্যাসিক। কপিলীপৰীয়া সাধু উপন্যাসৰ পাছত ক্ৰমাগতভাৱে প্ৰকাশিত তেওঁৰ উপন্যাসবোৰ হ’ল - ককাদেউতাৰ হাড় (১৯৭৩), গড়মা কুঁৱৰী (১৯৮০), মানুহ আটাইবোৰ দ্বীপ (১৯৮০), অপদাৰ্থ (১৯৮১), পটাচাৰ (১৯৮৭), অহিংসাৰ জুই (অসমাপ্ত ৰূপত)। ইয়াৰ ভিতৰত ‘ককাদেউতাৰ হাড়’ উপন্যাসখনৰ বাবে তেওঁ ১৯৭৫ চনত সাহিত্য একাডেমী বঁটা লাভ কৰে। সৰ্বমুঠ ৫খন উপন্যাস ৰচনা কৰা নৱকান্ত বৰুৱাই ১৯৮৪ চনত ‘সীৰলু’ নামৰ এখন অসমীয়া আলোচনী প্ৰকাশ কৰে, যিখনত তেওঁৰ ‘অহিংসাৰ জুই’ উপন্যাসখন অসমাপ্ত ৰূপত প্ৰকাশ হৈছিল। বৰুৱাৰ লেখাবোৰত সেই সময়ৰ সমসাময়িক সমাজৰ চিত্ৰৰ লগতে দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ প্ৰভাৱ দেখা যায়। প্ৰতিখন উপন্যাসতে ঔপন্যাসিক নৱকান্ত বৰুৱাক পাঠকে অনুভৱ কৰিব পাৰে। সমাজ বাস্তৱতাৰ কথা ক’ব গ’লে বৰুৱাই স’ততে এটা দৃষ্টিভংগী আগত ৰাখে। তেওঁ উপন্যাসৰ এইটো এটা বৈশিষ্ট্য। ‘কপিলীপৰীয়া সাধু’ উপন্যাসখন ঘাইকৈ কপিলীপাৰৰ ভুৰাবন্ধা গাঁৱৰ জীৱন-যাত্ৰাৰ এখনি চিত্ৰ কাব্য সুলভ গদ্যৰীতিৰে নৱকান্ত

বৰুৱাই উপন্যাসখনত চিত্ৰিত কৰিছে। 'কপিলীপৰীয়া সাধু' মূলতঃ এখন নদীকেন্দ্ৰীক আঞ্চলিক উপন্যাস, য'ত কপিলী নৈয়ে তাৰ দুয়োপাৰৰ মানুহৰ একো একোটা বিস্তৃত অঞ্চলক প্ৰভাৱিত কৰি ৰাখিছে যুগ যুগ ধৰি।

বিষয়বস্তুৰ গুৰুত্ব আৰু উদ্দেশ্য ঃ সমাজৰ দাপোন সাহিত্যত প্ৰকাশিত সামাজিক চিত্ৰসমূহ 'কপিলীপৰীয়া সাধু' উপন্যাসখনত কেনেধৰণে কাহিনী তথা চৰিত্ৰৰ যোগেদি প্ৰকাশিত হৈছে এই বিষয়ে আলোচনা কৰাটোৱেই এই গৱেষণা পত্ৰৰ প্ৰধান উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব।

আলোচনাৰ পৰিসৰ ঃ নৰকান্ত বৰুৱাৰ 'কপিলীপৰীয়া সাধু' নামৰ উপন্যাসখনক আমাৰ আলোচনাৰ বাবে নিৰ্বাচন কৰি লোৱা হৈছে। আলোচ্য উপন্যাসখনত প্ৰকাশিত সামাজিক চিত্ৰতে বিষয়ৰ পৰিসৰ সীমিত কৰি লোৱা হৈছে।

গৱেষণা পত্ৰৰ উৎস আৰু পদ্ধতি ঃ গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে মূলগ্ৰন্থ কপিলীপৰীয়া সাধু' উপন্যাসখনক মুখ্য উৎস হিচাপে লোৱা হৈছে আৰু বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনামূলক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

মূল আলোচনা ঃ পশ্চিম নগাঁওৰ মাজেৰে বৈ যোৱা কপিলী নৈক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত 'কপিলীপৰীয়া সাধু' উপন্যাসখন কপিলীপাৰৰ জীৱন যাত্ৰাক আধাৰস্বৰূপে লৈ ৰচনা কৰা নৰকান্ত বৰুৱাৰ প্ৰথমখন উপন্যাস। উপন্যাসখনত কপিলী নৈয়ে সৃষ্টি কৰা বানপানী, বানপানীয়ে বিধ্বস্ত কৰা কপিলী পাৰৰ মানুহখিনিৰ দুৰ্যোগ, কপিলীক আশ্ৰয় কৰি মানুহখিনিৰ সপোন, প্ৰেম, দুৰ্নীতি আদি বিভিন্ন বিষয় সামৰি লোৱা হৈছে। নগাঁৱৰ কপিলী নৈৰ পাৰৰ কেবাটাও অঞ্চলক পটভূমি হিচাপে লোৱা উপন্যাসখন মূলত এখন আঞ্চলিক উপন্যাস।

উপন্যাসখনত বৰুৱাই নৈ আৰু মানুহৰ সম্পৰ্ক অতি সজীৱ ৰূপত চিত্ৰিত কৰিছে। কপিলীপাৰৰ ঘাইকৈ ভুৰবন্ধা গাঁৱৰ গ্ৰাম্যসমাজ জীৱনৰ এক বাস্ত ৱ চিত্ৰ ঔপন্যাসিকে উপন্যাসখনৰ মাজেৰে অংকন কৰিছে। ৰূপাই আৰু সোণপাহীৰ কাল্পনিক প্ৰণয় কাহিনীৰ সমান্তৰালভাৱে উপন্যাসখনত স্বৰাজ আন্দোলনৰ ছবিয়েও স্থান লাভ কৰিছে।

উপন্যাসখনৰ মূল চৰিত্ৰ ৰূপাই আছিল ভুৰবন্ধা গাঁৱৰ ধীৰ সিঙৰ তোলনীয়া পুতেক। কপিলী নদীৰ প্ৰলয়ংকাৰী বানে বিধ্বস্ত কৰা কপিলীপাৰৰ মানুহখিনিক উদ্ধাৰ কৰাৰ সময়ত ধীৰ সিঙে ঘৰৰ চালত লাগি থকা পানীকেঁচুৰা অৱস্থাত ৰূপাইক লাভ কৰি তুলি-তালি ডাঙৰ দীঘল কৰে। ৰূপাইৰ জন্মৰ এই ৰহস্য সি পিতৃৰ মৃত্যুৰ পিছতহে গম পাই। বেথাৰাম পণ্ডিতৰ স্কুলত পঢ়া শুনা কৰা ৰূপাই পঢ়াত আনবোৰ ছাত্ৰ- ছাত্ৰীতকৈ উন্নত আছিল। ল'ৰালিকালৰ দুষ্টামীৰে এখোপ চৰা ৰূপাইৰ সমনীয়া ভেদৌং, নোমল, কোমল আদিয়ে পঢ়া শুনা নকৰি কপিলীত মাছ মৰা দৃশ্য চাই আনন্দ কৰিছিল। কপিলীখনৰ প্ৰতি ৰূপাইৰো বিশেষ আকৰ্ষণ আছিল। কপিলীৰ সৈতে ৰূপাইৰে নহয় কপিলীপৰীয়া ৰাইজৰ নিবিড় সম্পৰ্ক আছে। নৈখনৰ পাৰত কৃষি কৰি, নৈখনত মাছ মাৰিয়েই এই মানুহখিনিয়ে জীৱন নিৰ্বাহ কৰি আছে। উপন্যাসখনত কপিলীয়ে সৃষ্টি কৰা নৈসৰ্গিক দৃশ্যৰ লগতে ইয়াৰ পাৰৰ মানুহখিনিৰ জীৱন-জীৱিকাৰ চিত্ৰ অংকিত হৈছে। অংকিত হৈছে এনেদৰে— "কপিলীক ভাল পোৱাটো কপিলীপৰীয়া মানুহৰ স্বভাৱেই। আজিৰ নহয়। তাহানিখনৰে পৰা সিহঁতে কপিলীক ভাল পাই আহিছে। ডেকাহঁতে তাত নাও খেলে। ব'হাগৰ প্ৰথম দিনা, লালুং মানুহৰ বিহু আৰম্ভ হয়— গাভৰুহঁতেও ঘূৰি চিঞৰে। কপিলীত ধল আহে। কঠীয়াতলী বুৰ যায়। ভয়ত মানুহৰ টোপনি নহা হয়। খেতিয়কবোৰে পথাৰত খুঁটি পুতি থৈ আহে। এবেগেত এমুঠনকৈ খুঁটি নেদেখা হয়। আকৌ কেইদিনমানৰ ভিতৰতে পানী হঁহকি যায় খাল— ডোঙত মাছ-পুঠি থৈ। পথাৰত পলস পৰে। শালি খেতি ভাল হয়।" (বৰা, প্ৰাণ্জিৎ (সম্পা. নৰকান্ত বৰুৱা ৰচনাৱলী পৃ.৪৫৭)

পঢ়া শুনাত উন্নত ৰূপাইক বাপেক ধীৰ সিঙে বৃত্তি পৰীক্ষাৰ বাবে চহৰৰ দিনবন্ধু উকীলৰ ঘৰত থৈ পঠুৱাইছিল। কিন্তু গ্ৰাম্য চহা জীৱনৰ বিপৰীতে চহৰীয়া জীৱনৰ মানুহৰ কৃত্ৰিম মন, কঠোৰ হৃদয় আদিৰ কবলত বুৰ গৈ ৰূপাইৰ পঢ়া-শুনা নিঃশেষ হ'ল। উকীলৰ ঘৰত ৰূপাইৰ পঢ়া-শুনাৰ সলনি চাকৰ খটাহে হ'ল। দিনবন্ধ উকীলৰ ঘৈনীয়েক আৰু চাকৰ হাৰিয়াৰ মানসিক নিৰ্যাতন, বজাৰ কৰা, খৰি ফলা আদি সকলো কাম ৰূপাইৰ দ্বাৰাই সিহঁতে কৰাইছিল। ফলত সি বৃত্তিটো দূৰৰে কথা কোনো এটা শ্ৰেণীয়ে উত্তীৰ্ণ হ'ব নোৱাৰিলে। ঔপন্যাসিকে উপন্যাসখনত গ্ৰাম্য চহা মনৰ মানুহৰ চিত্ৰ অংকন কৰিছে। তথাকথিত শিক্ষিত সমাজৰ মানুহৰ কলুষিতা, কঠোৰ হৃদয়, সমাজত ভদ্ৰতাৰ মুখাপিন্ধা এচাম মানুহৰ জীৱনৰ চিত্ৰ দিনবন্ধু উকীলৰ পৰিয়ালক প্ৰতিনিধিত্ব কৰি চিত্ৰিত কৰিছে। উপন্যাসখনত বৰ্ণিত "সিনো ফেল নহ'ব কিয়? গোটেই বছৰটো তাৰ এখনো কিতাপ নোহোৱাকৈয়ে গ'ল। পঢ়িবলৈ সময়কে নাপায়। বজাৰ কৰা, খৰি ফলা সকলোবোৰ সিয়েই কৰিব লাগে।

ৰাতি চাকি এটাও নেপায়! হৰিয়া— যি হৰি ককাইৰ মৰমৰ পাৰ নাছিল সেই হৰিয়ায়ো আজিকালি তাক ভাবি দিহে কথা কয়। এদিন হৰিয়ে তাক বজাৰৰ পইচাৰে বিৰি আনিবলৈ ক'লে...... বজাৰলৈ দিয়া টকাটোৰ পাঁচ অনা এপইচা সি উকীলনীক ওভোতাই দিয়ে। বাবুনীয়ে তাক ঠাচ কৰে চৰ এটা মাৰি ক'লে, চুৰাৰ বাচ্চা, ইচকুলেৰ ছেলে হয়ে তুই বিড়ি খাচ্ তাৰ উপৰ আমাৰ বাজাৰেৰ পইচা চুৰি কৰে? বাপেৰ পেয়েছিচ?" (উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৪৬৫)

উকীলৰ ঘৰৰ নিৰ্যাতনৰ পৰা হাত সাৰিবৰ বাবে ৰূপাই এটা সময়ত ভলণ্টিয়াৰ দলত সোমায়। এনেদৰে ভলণ্টিয়াৰৰ কামত ঘুৰি ঘুৰি ফুৰোঁতে অন্যান্য আন্দোলনকাৰীৰ লগতে ৰূপাইক পুলিচে জেললৈ লৈ যায়। জেলত ৰূপাই তিলক গোঁসাইক লগ পাই আৰু অহিংসা আন্দোলনত ব্ৰতি হৈ পৰে। উপন্যাসখনত তিলক গোঁসাইক গান্ধীবাদী আদৰ্শৰে সৃষ্টি কৰি পৰৱৰ্তী সময়ত ৰূপাইকো সেই আদৰ্শৰে অনুগামী কৰি চিত্ৰিত কৰি অহিংসা আন্দোলনৰ সজল চিত্ৰ অংকন কৰিছে। অহিংসা আন্দোলনৰ উদ্দেশ্য, প্ৰয়োজনীয়তা, বিলাতী কাপোৰ বৰ্জনৰ কাৰণ, সত্যাগ্ৰহ আদি সকলো কথা ৰূপাইয়ে তিলক গোঁসাইৰ পৰা বুজি উঠি অহিংসা নীতিত বিশ্বাসী হৈ পৰে। জেলৰ পৰা মুক্তি লাভ কৰি সি আপোন গাঁওখনলৈ উভতি যাই গঠনমূলক কাম অৰ্থাৎ দেশৰ উন্নয়ণৰ বাবে সামাজিক কাম-কাজত লিপ্ত হয়। ইয়াৰ দ্বাৰা ঔপন্যাসিকে মহাত্মা গান্ধীৰ আদৰ্শৰ লগতে অহিংসা আন্দোলনে জোকাৰি যোৱা গ্ৰাম্য জীৱনৰ চিত্ৰৰ সুন্দৰ প্ৰতিফলন ঘটাইছে। ইয়াৰ উপৰিও সমাজৰ জাতি-ভেদৰ পাৰ্থক্যহীনতাৰ কথা সুধাংশু বাবুই গুৱাহাটীৰ জেলত ৰূপাইক কোৱা নানা চাহেব, তান্তীয়া টোপ আদিৰ লগতে হিন্দু-মুছলমানৰ মিলৰ কথাৰ পৰা বৰ্ণনা কৰিছে। উপন্যাসখনত স্বৰাজ তথা মহাত্মা গান্ধীৰ কথা বৰ্ণিত "তিলক গোসাঁইৰো শত্ৰু আছে গান্ধী মহাত্মাৰো শত্ৰু আছে নেকি? ইংৰাজ ইংৰাজতো কাৰো শত্ৰু নহয়, সিহঁতে আমাক অধিন কৰি ৰাখিছে কাৰণেহে আমি বেয়া পাওঁ। শত্ৰু হ'লে ইংৰাজ সকলোৰে শত্ৰু। সেই মানুহটোৰো। কিন্তু আমাৰ মানুহ কোনোবায়ো মহাত্মাৰ বিষয়ে এনেকৈ কয় নেকি?" (উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৪৭৩)

আন্দোলনে জোকাৰি যোৱা ভুৰবন্ধা গাঁৱৰ পৰিবৰ্তনৰ সময়তেই ৰূপাইয়ে গাঁওখনলৈ উভতি আহি নানান সামাজিক কৰ্মত লিপ্ত হৈ বানে বিধস্ত কৰা মানুইখিনক ৰিলিফৰ বস্তু বিলাবলৈ গৈ সোণপাহীৰ মুখামুখি হয় আৰু তাইৰ প্ৰেমত পৰে। উপন্যাসখনত সোণপাহী আৰু ৰূপাইৰ প্ৰণয়ৰ কাহিনীটো ঔপন্যাসিকে কাল্পনিকতাৰে সুন্দৰভাৱে উপস্থাপন কৰিছে। দুয়োৰে প্ৰেমে গভীৰ ৰূপ লাভ কৰি সোণপাহী অন্তঃসত্বা হয় যদিও পাছলৈ ৰূপাই নিজৰ জন্ম ৰহস্য জানি নিজৰে পৰিচয়হীন অৱস্থা বুলি ভাবি সোণপাহীক বিয়া কৰাবলৈ অস্বীকাৰ কৰে। পৰিণতি স্বৰূপে সোণপাহীয়ে কপিলীৰ বুকুতে আত্মজাহ যায়। উপন্যাসখনত সোণপাহী আৰু ৰূপাইৰ প্ৰেমৰ অসফলতাৰ চিত্ৰ কৰুণতাৰে ঔপন্যাসিকে বৰ্ণনা কৰিছে। কপলীয়েই সিহঁতৰ প্ৰেমৰ উৎপত্তিৰ থল, অন্যহাতে কপিলীয়েই সিহঁতৰ বিচ্ছেদৰো কাৰণ। যাৰ ফলত কপিলীকেই ৰূপায়ে মাতৃ স্বৰূপে গ্ৰহণ কৰিছে। উপন্যাসখনত সোণপাহী আৰু ৰূপাইৰ প্ৰেমৰ চিত্ৰ এনেদৰে বৰ্ণিত— "তাইৰ চুলিত কোনো তেলৰ গোন্ধ নাই। কিন্তু তিৰোতাৰ চুলিৰ স্বাভাৱিক সুগন্ধ এটাই মনটো তাৰ উতলা কৰি দিয়ে...... তাইৰ চুলিৰ অৰণ্যত তাৰ মুখখন লুকাই যায়..... সি অনুভৱ কৰে তাতকৈ ডাঙৰ কিবা এটা শক্তিয়ে তাৰ গোটেই মানুহটো অধিকাৰ কৰি পেলাইছে। বুকুত মুখত কিবা এটা অসহ্য পোৰণি প্ৰত্যেকডাল স্নায়ুৰ যোগাযোগ বিচ্ছিন্ন হৈ অনুভৱ কৰে তাৰ হাতখনে আঁইৰ বাহু দুটা চোৱে..... কান্ধৰ কাষেদি নামি যায়..... বুকুখন কোমল। তাৰ নিশাহৰ তপত বতাহখিনি তাইৰ মুখত লাগে— তাই তাক জোৰেৰে সাৱটি ধৰে, আৰু জোৰে..... তাইৰ গোটেই মানুহজনীৰ স্পৰ্শ সি অনুভৱ কৰে তাৰ গোটেইটো শৰীৰে নিস্তব্ধ উশাহ-নিশাহৰ শব্দৰ বাহিৰে সকলো নীৰৱ। জিলিটোৰো মাত বন্ধ হৈ গ'ল। সি চুমা খালে। চকুত, গালত, ওঁঠত, বুকুত......।" (উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৪৮৪)

উপন্যাসখনত সমাজৰ সুবিধাবাদী শ্ৰেণীৰ প্ৰতিনিধিৰূপে সুলভ দোকানীক চিত্ৰিত কৰিছে। উপন্যাসখনৰ এই চৰিত্ৰটো নেতিবাচক চৰিত্ৰ। সুলভ দোকানী স্বাৰ্থপৰ আৰু এজন চতুৰ লোক। নিজৰ স্বাৰ্থৰ বাবে পুলিচৰ হঁতুৱাই সি বসু গোসাঁইৰ দোকান ভাঙি দিয়াৰ লগতে দোকানৰ বাকীৰ বিনিময়ত দুখীয়া শ্ৰেণীৰ মানুহৰ মাটি পৰ্যন্ত কাঢ়ি নিজৰ নামত কৰি লৈছিল। ইয়াৰ দ্বাৰা নিম্ন শ্ৰেণীৰ মানুহক কৰা শোষণৰ চিত্ৰ ঔপন্যাসিকে ডাঙি ধৰিছে। সমাজ জীৱনত প্ৰচলিত অন্ধবিশ্বাস, কু-সংস্কাৰ আদিৰ চিত্ৰও 'কপিলীপৰীয়া সাধু' উপন্যাসখনত বহুলভাৱে অংকিত হৈছে। উপন্যাসখনত হেমো গাওঁবুঢ়াক অন্ধবিশ্বাসী এটা গাঁৱলীয়া চৰিত্ৰ হিচাপে পোৱা যায়। শোৱাপাটীৰ পৰা

মাজৰাতি অকলে আহি কপিলীৰ পাৰত ৰূপাইক বহি থকা দেখি গাওঁবুঢ়াই ৰূপাইক ভূত-যখিনিয়ে পালে বুলি সন্দেহ কৰি 'ৰাম'ৰাম' বুলি উচ্চাৰিব কৈছে। অন্যহাতে দদাইকে তিতি বুৰি নৈত সাঁতুৰি অহাত গঞা ৰাইজে তেঁওকো ভূতে ধৰা বুলি ভাবিছিল। পিছদিনাৰ পৰা দদায়েকৰ জ্বৰ উঠাত জৰা-ফুকা, জলকীয়া পুৰি ধোঁৱা দিয়া আদি সকলো ভূত যোৱা কৰ্ম কৰিছে। ভূত যোৱাৰ চিন স্বৰূপে বাৰীৰ ৰবাব টেঙাৰ ডাল এটা ভাঙি থকা দৃশ্যও মানুহে প্ৰত্যক্ষ কৰিলে। উপন্যাসখনত বৰুৱাই অন্ধবিশ্বাস, কু-সংস্কাৰ, তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰ, জৰা-ফুকা আদিৰ চিত্ৰ অংকণ কৰিছে।

গ্ৰাম্য সমাজ জীৱনত প্ৰচলিত কাহিনী তথা জনশ্ৰুতিৰ বৰ্ণনাও উপন্যাসখনত পোৱা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে গায়ন বায়নৰ ঘুলিটোৰ লগত জড়িত কাহিনীটোৰ কথা ক'ব পাৰি। জনশ্ৰুতিমতে গায়ন বায়ন ঘুলিটোত আগতে হেনো জলকোঁৱৰৰ তলাতল ঘৰ আছিল আৰু তাতে কমলা কুঁৱৰী জলকোঁৱৰী হৈ আছে। মানুহৰ কন্যা কমলা কুঁৱৰীয়ে দেশৰ মঙ্গলৰ কাৰণে জলকোঁৱৰৰ লগত বিবাহপাশত আৱদ্ধ হয়। মানুহৰ কন্যা হোৱা হেতুকে কমলা কুঁৱৰীয়ে ছবিৰ মানুহৰ মুখ চাবলৈ আকুল হৈ পৰে। অন্যহাতে আন এটা জনশ্ৰুতিমতে কপিলীপাৰৰ পৰিয়াল সমূহক বানপানীয়ে বিধ্বস্ত কৰিলেও পৰিয়ালবোৰে কপিলীক এৰি ক'লৈকো নাযায়। কিন্তু ৰজা পোৱালী মনচিং এবাৰ উঠি যাব খুজোতে কপিলীয়ে তেওঁৰ হালৰ বলধহাল লৈ যায়। সেই ৰাতিয়েই ভকতধূলি বৈৰাগীক কপিলীয়ে সপোনত দেখালে যে ৰজা পোৱালী ঘৰৰ ল'ৰা যদি কপিলীৰ পাৰৰ পৰা উঠি যায় তেন্তে কপিলীও পিছে পিছে যাব।

উপসংহাৰ ঃ

অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যৰ এক অনুপম সৃষ্টি নৰকান্ত বৰুৱাৰ 'কপিলীপৰীয়া সাধু'। গ্ৰাম্য সমাজ জীৱনৰ চিত্ৰ দাঙি ধৰা উপন্যাসখনত সমাজৰ বিভিন্ন চিত্ৰ কপিলী নৈক আধাৰ স্বৰূপে লৈ নৈ পাৰৰ মানুহখিনিৰ জীৱন-জীৱিকাৰ চিত্ৰ, নৈখনে সৃষ্টি কৰা প্ৰাকৃতিক সৌন্দৰ্য, চহৰীয়া সমাজৰ বাস্তৱ চিত্ৰ, ৰাজনৈতিক চিত্ৰ, অন্ধবিশ্বাস, কু-সংস্কাৰে গ্ৰাস কৰা গঞা সমাজৰ চিত্ৰ, জনশ্ৰুতি, প্ৰেম-পৰিণয়, বিচ্ছেদ, শোষণ আদি প্ৰতিফলিত হৈছে। ৰচনাশৈলীৰ ক্ষেত্ৰত উপন্যাসখনত কাব্যিকতা, ভাষাৰ সৰলতা বৰ্ণনাৰ প্ৰাঞ্জলতা লক্ষ্য কৰা যায়। অৱশ্যে উপন্যাসখনত গভীৰ জীৱনবোধৰ অভাৱ দেখা যায়। উপন্যাসখনে পাঠকৰ অন্তৰত নদীভিত্তিক আঞ্চলিক উপন্যাসস্বৰূপে এখন বৰণীয়া উপন্যাস হৈ সদায় জিলিকি ৰ'ব। প্ৰাণজিৎ বৰাৰ সম্পাদনাৰ 'নৰকান্ত বৰুৱা ৰচনাৱলী' (প্ৰথম খণ্ড)ত উপন্যাসখন সন্দৰ্ভত বৰ্ণিত "উপন্যাসখন মাথো ষাঠি পৃষ্ঠাৰ সৰু কলেৱৰৰ এখন উপন্যাস কিন্তু এই সৰু শৰীৰটোতে সোমাই আছে সুদীৰ্ঘ এছোৱা সময়। একেবাৰে নতুন এটা সমাজ ব্যৱস্থাৰ স'তে নিজকে খাপ খুৱাই ল'বলৈ যত্নপৰ অথচ কৃষিভিত্তিক সামন্তীয় গাঁথনিৰ পৰাও সম্পূৰ্ণৰূপে মুক্ত নোহোৱা কপিলীপাৰৰ সমাজ এখনৰ সুদীৰ্ঘ এছোৱা সময় উপন্যাসখনৰ এই নাতিদীৰ্ঘ অৱয়বটোত ঔপন্যাসিকে খাজি খাজি ভৰাই পেলাইছে। উপন্যাসখনত কপিলী হৈছে এই আহোম জয়ন্তীয়াৰ বিবাদকে ধৰি কছাৰীৰ বিপক্ষে আহোমৰ অভিযানত কপিলীপৰীয়া বাৰঘৰ ৰজাৰ সহযোগিতাৰ পৰা ইংৰাজৰ শাসন, কোৰ্ট-কাছাৰীৰ বঙালী উকিল, 'লোকেল বৰ্ড'ৰ আলি-পদূলী, গাঁৱত ৰাইজে পাতি লোৱা স্কুল, দেছুৱালী মাছবেপাৰী, মৈমনচিঙীয়া খেতিয়ক, ইংৰাজৰ বিপক্ষে মহাত্মাৰ স্বদেশী আন্দোলন এই আটাইবোৰৰে সাক্ষী হৈ ৰৈছে কপিলী"। ❑

অন্ত্যটীকা ঃ

বৰা, প্ৰাণজিৎ (সম্পা.), নৰকান্ত বৰুৱা ৰচনাৱলী, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, পৃ.৪৫৭

উল্লিখিত, পৃ. ৪৬৫

উল্লিখিত, পৃ. ৪৭৩

উল্লিখিত, পৃ. ৪৮৪

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী

১। শৰ্মা, গোবিন্দ প্ৰসাদ ঃ অসমীয়া উপন্যাস অধ্যয়ন, প্ৰজ্ঞা, মিডিয়াহাইপ পাব্লিকেশ্বন হাউছ নং ২, ২০২৩
২। বৰা, প্ৰাণজিৎ (সম্পা.)ঃ নৰকান্ত বৰুৱা ৰচনাৱলী (প্ৰথম খণ্ড), অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ২০২১
২। বৰুৱা নৰকান্ত ঃ কপিলীপৰীয়া সাধু, লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল, ১৯৫৪
৩। বৰগোহাঞি, হোমেন (সম্পা.) ঃ অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী, ষষ্ঠ খণ্ড, আনন্দৰাম বৰুৱা কলা-সংস্কৃতি সন্থা, অসম, ২০১৫
৪। শৰ্মা, গোবিন্দ প্ৰসাদ ঃ উপন্যাস আৰু অসমীয়া উপন্যাস, বনলতা, পাণবজাৰ, ২০২১
৫। ঠাকুৰ, নগেন (সম্পা.) ঃ এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস, জ্যোতি প্ৰকাশন, ২০১৮

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 Peer Reviewed Journal
ISSN : 2321-4945 [UGC-CARE Listed]

শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৃতিত প্ৰতিফলিত উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী আৰু বৰ্তমান ইয়াৰ প্ৰাসংগিকতা

অপূৰ্ব নাথ

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী-৭৮১০০১
৬০০৩৪৬৫৭১৪
apurbanath108@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

শংকৰদেৱ অসমীয়া জাতীয় জীৱনৰ মহান কাণ্ডাৰী। মধ্যযুগৰ অসমৰ এক জটিল পৰিস্থিতিৰ মাজত জন্মগ্ৰহণ কৰা মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে (১৪৪৯-১৫৬৮) এখন নতুন অসমৰ কল্পনা কৰি, নতুন চিন্তাধাৰাৰে ধৰ্মপ্ৰচাৰ কৰিছিল আৰু লগতে অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ সৌধ নিৰ্মাণতো গুৰুত্ব দিছিল। প্ৰচলিত সমাজ ব্যৱস্থাৰ পৰিৱৰ্তন কামনা কৰা শংকৰদেৱে বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ মাজত ঐক্য, সম্প্ৰীতি স্থাপন কৰি বৰ অসমৰ ভেঁটি নিৰ্মাণ কৰিছিল। শংকৰদেৱে প্ৰচাৰ কৰা নৱ-বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ প্ৰাথমিক লক্ষ্যই আছিল মানুহৰ মনত সোমাই থকা ভেদভাৱ, অসূয়া-অপ্ৰীতি নোহোৱা কৰি শান্তি আৰু প্ৰগতিৰ সমাজ প্ৰতিষ্ঠা কৰা। এনে উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী তেখেতে সাহিত্য পাঠত ৰোপণ কৰিছিল। যাৰ বাবে শংকৰদেৱৰ সাহিত্যৰাজিয়ে অসমৰ পৰিসীমা অতিক্ৰম কৰিছিল। তেখেতে ৰচনা কৰা অংকীয়া নাট, কাব্য, তত্ত্বপ্ৰধান গ্ৰন্থ আদি সকলোতে আন দিশবোৰৰ সমান্তৰালভাৱে উদাৰনৈতিক মানৱতাবাদী দৃষ্টিভংগী স্পষ্টৰূপত প্ৰকাশি উঠিছিল। বৰ্তমানৰ প্ৰেক্ষাপটত শংকৰদেৱৰ ধৰ্মীয় দৰ্শনত ফুটি উঠা উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগীৰ প্ৰাসংগিকতা অধিক। লাহে লাহে অসমীয়া জাতিয়ে ক'ব নোৱাৰাকৈয়ে অসমীয়া সমাজখনৰপৰা আধ্যাত্মিকতা, নৈতিকতা, উদাৰ মানৱতা নোহোৱা হৈ গৈছে। গতিকে, বৰ্তমানৰ অসমীয়া সমাজখনৰ বাবে শংকৰদেৱৰ প্ৰগতিশীল আদৰ্শৰ প্ৰয়োজনীয়তা বৃদ্ধি পাইছে। আমাৰ এই গৱেষণা পত্ৰখনৰ জৰিয়তে শংকৰদেৱৰ বিশাল সাহিত্যকৃতিত প্ৰতিফলিত হোৱা উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী সম্পৰ্কে তথ্যৰ সহায়ত সংক্ষেপে আলোচনা কৰাৰ লগতে বৰ্তমান সময়ত ইয়াৰ প্ৰাসংগিকতা সম্পৰ্কেও অধ্যয়ন কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ

শংকৰদেৱ, উদাৰনীতি, আদৰ্শ, প্ৰাসংগিকতা।

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

অসমীয়া ভাষা, সাহিত্য, সমাজ, কলা-সংস্কৃতিৰ নিৰলস সাধক, ভৱিষ্যত দ্ৰষ্টা শ্ৰীমন্ত শঙ্কৰদেৱ অসমৰ সৰ্বশ্ৰেষ্ঠ ব্যক্তি। বহুমুখী প্ৰতিভাৰ অধিকাৰী , অসাধাৰণ ব্যক্তিত্ব সম্পন্ন এই গৰাকী মহান পুৰুষে অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিলৈ যি অৰিহণা আগবঢ়াই গৈছে তাৰ তুলনা বিৰল। সাহিত্য, সঙ্গীত, নৃত্য-নাট্য, চিত্ৰ, স্থাপত্য, ভাস্কৰ্য্য আদি সকলো সুকুমাৰ কলাৰ পাৰদৰ্শী ব্যক্তি শঙ্কৰদেৱে সমাজ সংস্কাৰ, সমাজ-সংগঠন আৰু সমাজ পৰিচালনাৰ ক্ষেত্ৰত নানা প্ৰতিকূল পৰিৱেশতো যি দক্ষতা আৰু আৱিষ্কাৰধৰ্মিতা (innovativeness) ৰ পৰিচয় দিছিল সি অতি বিস্ময়জনক। সেয়ে তেওঁৰ সমকালীন, সমধৰ্মী প্ৰতিভাসম্পন্ন গুণগ্ৰাহী পণ্ডিত, শঙ্কৰদেৱৰ প্ৰধান শিষ্য

মাধৱদেৱৰ দ্বাৰা তেওঁ 'সৰ্ব গুণাকৰ, যাকেৰি নাহিকে উপাম' বুলি বন্দিত। অসমীয়া জাতি গঠন প্ৰক্ৰিয়াৰ প্ৰধান হোতা, অক্লান্ত কৰ্মী শঙ্কৰদেৱে অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ পুনৰ্নিৰ্মাণ আৰু বিকাশত আত্মোৎসৰ্গ কৰিছিল। বহুজাতিগত সংঘাত, সংঘৰ্ষ, অস্থিৰ ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক, ধৰ্মীয় বিশৃঙ্খল বাতাৱৰণত অতিষ্ঠ, নিষ্পেষিত, নিপীড়িত দাৰিদ্ৰ্যক্লিষ্ট জনগণক তৎকালীন পটভূমিত অৰ্থনৈতিক মুক্তিপথৰ সন্ধানস্বৰূপ সমধৰ্মী আত্মজিজ্ঞাসা আৰু আধ্যাত্মিক মুক্তিৰ প্ৰশস্ত বাট সুন্দৰৰ সাধনাত নিমজ্জিত আৰু অৱগাহন কৰোৱাই নিসংগ দ্বীপৰ দৰে ছেদেলি-ভেদেলি হৈ থকা জনগোষ্ঠীসমূহৰ ঐক্য সংহতিৰ সুদৃঢ় ভেঁটি প্ৰতিষ্ঠিত কৰি এক সুবিশাল সমাজ সংস্কৃতিৰ সুউচ্চ সৌধ নিৰ্মাণ কৰি অসমীয়া জাতিক বিশ্বদৰবাৰত প্ৰতিষ্ঠা কৰোৱাইছিল। পঞ্চদশ শতিকাত সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষতে ভক্তি আন্দোলনৰ উকমুকনি আৰম্ভ হৈছিল। অসমতো ভক্তি আন্দোলনৰ প্ৰভাৱ পৰিছিল আৰু ইয়াৰ গুৰি বঠা ধৰিছিল শংকৰদেৱে নিজেই। অসমীয়া ধৰ্ম সংস্কৃতিৰ সহজ ৰূপদান দি ইয়াক সমাজৰ বৌদ্ধিক বিকাশৰ মাধ্যমৰূপে লৈ সামাজিক শৃংখলা গঠনত শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱে অসমীয়া জাতীয় জীৱনত এক সোণালী যুগৰ পাতনি মেলে। শংকৰদেৱে অসমত নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্ম প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰৰ বাবে সাহিত্যক মুখ্য আশ্ৰয় স্বৰূপে গ্ৰহণ কৰিছিল। শংকৰদেৱে একেধাৰে ধৰ্মগুৰু তথা আধ্যাত্মিক কবি, সাহিত্যিক, অভিনেতা, গীতিকাৰ, সুৰকাৰ, বাদক, সংগঠক, শিল্পী, স্থপতিবিদ আৰু চিত্ৰকৰ মনোভাৱৰ পৰিচয়েৰে জনসাধাৰণৰ হিত সাধনাৰ্থে ধৰ্মক কেন্দ্ৰ কৰি নানান অভিজ্ঞতাপ্ৰসূত সাহিত্যৰ সৃষ্টি কৰিছে। শংকৰদেৱে সময় কাল-অৱস্থা অনুসৰি যেনেকুৱা সাহিত্য পন্থাৰ প্ৰয়োজন আছিল; ঠিক তেনে প্ৰয়োজনীয় সাহিত্য সৃষ্টিৰ অভাৱ পূৰণ কৰিছে। তেওঁ সৃষ্টি কৰা সাহিত্যৰ প্ৰতিটো শাখাতে জনসাধাৰণৰ মাজত প্ৰচলিত জাতি-ধৰ্ম, উচ্চ-নীচ আদি ভেদভাৱৰপৰা জনমানসে পৰিত্ৰাণ লাভ কৰাৰ উপায় জনসাধাৰণক প্ৰদান কৰিছে আৰু শংকৰদেৱৰ উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগীয়ে অসমীয়া সমাজখনক বিশ্বমুখী হোৱাত সহায় কৰিছে। শংকৰদেৱৰ সাহিত্য সম্পৰ্কত সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাৰ ভাষাৰে এনেদৰে ক'ব পাৰি, 'শংকৰদেৱৰ সাহিত্যত জনমানসৰ সুখ-দুখ প্ৰতিফলিত হোৱা নাই সঁচা, কিন্তু জনগণৰ প্ৰতি দৰদেই যে তেওঁক সহজ ভক্তিমাৰ্গ আৰু জনবোধ্য সাহিত্য, সংগীত আৰু অভিনয় কলাৰ সাধনাত ব্ৰতী কৰাইছিল সেই বিষয়ে সন্দেহ নাই।'

০.২ অধ্যয়নৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

গৱেষণাৰ যিকোনো বিষয় এটাৰ উদ্দেশ্য হৈছে বিষয়টো নতুন ধৰণে চিন্তা-চৰ্চা কৰা। বিষয় এটাৰ সমালোচকমূলক বিচাৰ আৰু বিশ্লেষণৰ জৰিয়তে আন কোনোৱে আগবঢ়োৱা তথ্যৰ সৈতে নিজে পোৱা তথ্যৰ তুলনামূলক সম্পৰ্ক নিৰ্ণয়েৰে কোনো দিশ আৱিষ্কাৰ কৰাই হ'ল প্ৰতিজন সচেতন গৱেষকৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য। শ্ৰীমন্ত শঙ্কৰদেৱৰ 'উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী' সম্পৰ্কে ইতিমধ্যে যথেষ্ট আলোচনা হৈছে। সেই আলোচনাসমূহৰ মাধ্যমত এই গৱেষণা পত্ৰত আমাৰ প্ৰস্তাৱিত বিষয়টো প্ৰণালীবদ্ধভাৱে আলোচনা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। তলত আমাৰ গৱেষণা পত্ৰখনৰ প্ৰধান লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্যসমূহ দাঙি ধৰা হ'ল ঃ

(ক) প্ৰস্তাৱিত বিষয়টিৰ আলোচনাৰ সুবিধাৰ্থে শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৰ্মৰ চমু পৰিচয় দাঙি ধৰা।

(খ) বিশ্ব ভ্ৰাতৃত্ববোধৰ আদৰ্শৰে উচ্চ-নীচ , জাতি-ধৰ্ম-বৰ্ণ নিৰ্বিশেষে ধৰ্ম প্ৰচাৰ কৰা শংকৰদেৱৰ

সাহিত্যকৃতিত উদাৰনৈতিক মানৱতাবাদী দৃষ্টিভংগীৰ প্ৰকাশ দেখিবলৈ পোৱা যায়। শংকৰদেৱৰ

এনে উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী সম্পৰ্কে তেখেতৰ সাহিত্যৰ আধাৰত তথ্যভিত্তিক আলোচনা

কৰাই হৈছে আমাৰ গৱেষণা পত্ৰখনৰ প্ৰাথমিক উদ্দেশ্য।

(গ) শংকৰদেৱে সাহিত্যৰ মাধ্যমেৰে কিদৰে সাম্য-মৈত্ৰীৰ বাণী প্ৰচাৰ কৰিছিল আৰু বৃহৎ

অসমীয়া জাতি নিৰ্মাণৰ পোষকতা কৰিছিল সেই বিষয়ে অধ্যয়ন কৰাটোও আমাৰ গৱেষণা

কাৰ্যৰ অন্য এক উদ্দেশ্য।

(ঘ) পঞ্চদশ শতিকাৰ শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৃতিত প্ৰতিফলিত প্ৰগতিশীল দৰ্শনৰ প্ৰাসংগিকতা

একৈশ শতিকাৰ সমাজতো বিদ্যমান। এই গৱেষণা পত্ৰখনৰ জৰিয়তে সাম্প্ৰতিক সময়ত

শংকৰদেৱৰ উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগীৰ প্ৰাসংগিকতা সম্পৰ্কেও অধ্যয়ন কৰা হ'ব।

০.৩ গৱেষণাৰ গুৰুত্ব ঃ

উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলত অৱস্থিত 'অসম' নামৰ ভূখণ্ডত এক জটিল সন্ধিক্ষণত জন্ম গ্ৰহণ কৰি, বৃহত্তৰ অসমৰ জাতি জনগোষ্ঠীৰ প্ৰাণস্পন্দন অনুধাৱন কৰি, সময়োচিত পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰা শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ ধৰ্ম প্ৰচাৰক, সমাজ সংস্কাৰক হোৱাৰ উপৰিও এগৰাকী যুগোত্তীৰ্ণ সাহিত্যিক। অসমীয়া

সাহিত্যিক সমৃদ্ধিশালী কৰি তোলাত শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱৰ প্ৰভাৱ অসীম আৰু অনন্ত। সাহিত্যৰ মাধ্যমেৰে ধৰ্ম প্ৰচাৰত গুৰুত্ব দিয়া শংকৰদেৱে অসমীয়া সমাজখনক নতুন ৰূপত গঢ়িবলৈ চেষ্টা কৰিছিল। তেখেতে সাহিত্যৰ জৰিয়তে পাঁচশ শতিকাৰো আগতেই অসমীয়া মানুহৰ মনত সৰ্বভাৰতীয় সাৰ্বভৌমত্বৰ চেতনাৰ উন্মেষ ঘটাই গৈছে। সাম্প্ৰতিক বিশ্বত গোলকীয় উষ্ণতা, সাম্প্ৰদায়িক মানসিকতা, বিচ্ছিন্নতাবাদ, মানবীয় চেতনাৰ বিলোপ, নৈতিক মূল্যবোধৰ অৱক্ষয় আদি এশ-এবুৰি সমস্যাই গা-দাঙি উঠাৰ সময়ত শংকৰদেৱৰ চিন্তা আৰু আদৰ্শৰ প্ৰাসংগিকতা প্ৰতিগৰাকী সচেতন নাগৰিকে গভীৰভাৱে উপলব্ধি কৰে। বাণীকান্ত কাকতিয়ে *'শংকৰদেৱৰ আধ্যাত্মিক দান'* শীৰ্ষক প্ৰবন্ধত উল্লেখ কৰা শংকৰদেৱৰ চতুৰংগ দানৰ ভিতৰত এটা হৈছে ঃ সামাজিক শ্ৰেণীভেদ উলংঘা কৰি সমাজৰ পিছ পৰি থকা সকলোকো সমানে অধিকাৰ প্ৰদান। তাৰবাবে "কৰ্মৰ বিভীষিকা আৰু সামাজিক ব্যৱধানৰ কুঁৱলী আঁতৰাই সকলোকে ভয় নোহোৱাকৈ খোজ কাঢ়িবৰ জন্মগত অধিকাৰ মহাপুৰুষে প্ৰদান কৰে।" (বাণীকান্ত ৰচনাৱলী, ০৪) চাৰিওফালে আধুনিক সমাজ জীৱনত হত্যা, হিংসা, লুণ্ঠন, ধৰ্ষণ, জাতিভেদ ইত্যাদিয়ে ছানি ধৰাৰ সময়ত শংকৰদেৱৰ উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগীৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাৰ অৱকাশ আহি পৰিছে। এনে দিশবোৰৰ প্ৰতি গুৰুত্ব অনুভৱ কৰিয়েই প্ৰস্তাৱিত বিষয়টোৰ অধ্যয়নত আগবঢ়া হৈছে।

০.৪ গৱেষণাৰ পৰিসৰ ঃ

আমাৰ গৱেষণা পত্ৰৰ প্ৰস্তাৱিত বিষয় হৈছে , *"শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৃতিত প্ৰতিফলিত উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী আৰু বৰ্তমান ইয়াৰ প্ৰাসংগিকতা।"* আচলতে, নিৰ্দ্ধাৰিত বিষয়টোৰ আলোচনাৰ পৰিসৰ যথেষ্ট বিশাল। কিন্তু, নিৰ্দিষ্ট নিয়মৰ মাজত আবদ্ধ থাকি গবেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবলগা হোৱাৰ বাবে সীমিত পৰিসৰত প্ৰস্তাৱিত বিষয়টোৰ বিশ্লেষণ আগবঢ়াবলৈ যত্ন কৰা হৈছে। আমাৰ গৱেষণা পত্ৰখনত শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৃতিৰ চমু পৰিচয় দাঙি ধৰি তেখেতৰ সৃষ্টিৰাজিত প্ৰতিফলিত উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হৈছে। তদুপৰি , বৰ্তমান সময়ত শংকৰদেৱৰ উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগীৰ প্ৰাসংগিকতা সম্পৰ্কীয় আলোচনাও প্ৰস্তাৱিত গৱেষণা পত্ৰখনৰ পৰিসীমাই সামৰি লৈছে।

০.৫ তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

"শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৃতিত প্ৰতিফলিত উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী আৰু বৰ্তমান ইয়াৰ প্ৰাসংগিকতা" শীৰ্ষক প্ৰস্তাৱিত বিষয়টোৰ বাবে বিভিন্ন গ্ৰন্থৰপৰা প্ৰয়োজনীয় তথ্য আহৰণ কৰা হৈছে। তথ্য আহৰণৰ উৎসক দুটা প্ৰধান ভাগত বিভক্ত কৰি দেখুৱাব পাৰি ঃ

(অ) মুখ্য উৎস (Primary Source) ঃ

এই গৱেষণা কৰ্মত শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱৰ সাহিত্যৰাজিক মুখ্য সমল হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

(আ) গৌণ উৎস (Secondary Source) ঃ

গৌণ উৎস হিচাপে লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা, মহেশ্বৰ নেওগ, বাণীকান্ত কাকতি, শিৱনাথ বৰ্মনৰ শংকৰদেৱ সম্পৰ্কীয় ৰচনাৰাজিক গ্ৰহণ কৰা হৈছে। তদুপৰি, বিশ্ববিদ্যালয়ৰ বিভিন্ন গবেষকৰ গৱেষণা গ্ৰন্থৰো সহায় লোৱা হৈছে।

০.৬ পূৰ্বকৃত অধ্যয়নৰ পৰিচয় ঃ

অসম আৰু অসমীয়া জাতিৰ প্ৰাণ প্ৰতিষ্ঠাতা শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৃতিৰ আলোচনা ইতিমধ্যে যথেষ্ট হৈছে। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই *শ্ৰীশ্ৰীশঙ্কৰদেৱ, মহাপুৰুষ শ্ৰীশ্ৰীশঙ্কৰদেৱ আৰু শ্ৰীমাধৱদেৱ* আদি ৰচনাত শঙ্কৰদেৱৰ বিভিন্ন দিশৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে। ভক্তিধৰ্মৰ উদ্যোক্তা শংকৰদেৱৰ শিল্পকাৰ ৰূপ, শিল্পদৰ্শন সম্বন্ধে নতুন চিন্তাৰ সঞ্চাৰ কৰা বিংশ শতিকাৰ আন এজন চিন্তানায়ক হৈছে জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা। একপ্ৰকাৰ ৰোমাণ্টিক ঐতিহ্যানুৰাগ থাকিলেও জ্যোতিপ্ৰসাদে তেওঁক একাধিক ৰচনাত শংকৰদেৱৰ সংস্কৃতিদ্ৰষ্টা, মানৱ প্ৰতিভাৰ পূৰ্ণ প্ৰকাশ ৰূপত অংকন কৰিছে। মহেশ্বৰ নেওগে *শ্ৰীশ্ৰীশঙ্কৰদেৱ* নামৰ গ্ৰন্থত ভিন্ন দিশৰ লগতে শংকৰদেৱৰ প্ৰগতিশীল আদৰ্শৰ বিষয়েও আলোচনা কৰিছে। তদুপৰি, বাণীকান্ত কাকতি, সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা, শিৱনাথ বৰ্মন, হীৰেন গোহাঁই, বাপচন্দ্ৰ মহন্ত, নগেন শইকীয়া আদিয়েও শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৃতিৰ বিষয়ে বিভিন্ন দৃষ্টিকোণেৰপৰা আলোকপাত কৰিছে। উল্লিখিত আলোচনাসমূহৰ সহায়ত প্ৰণালীবদ্ধভাৱে আমাৰ গৱেষণা পত্ৰখনত শংকৰদেৱৰ উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগীৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা হ'ব।

০.৭ গৱেষণা পদ্ধতি ঃ

"শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৃতিত প্ৰতিফলিত উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী আৰু বৰ্তমান ইয়াৰ প্ৰাসংগিকতা" শীৰ্ষক গবেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে মূলতঃ বিশ্লেষণাত্মক (Analytical) পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে। অৱশ্যে, মূল পদ্ধতিৰ সহায়ক

হিচাপে ঠাইবিশেষে সমীক্ষাত্মক (Critical) আৰু তুলনাত্মক (Comparative) পদ্ধতিৰো সহায় লোৱা হৈছে।

গবেষণা পত্ৰখনৰ পদ্ধতিগত লিখনৰ বাবে বিশেষকৈ উক্তি দাঙি ধৰোঁতে, তথ্যসূত্ৰ নিৰ্দেশ কৰোঁতে, গ্ৰন্থপঞ্জী সজাওঁতে আৰু লগতে অন্যান্য প্ৰয়োজনত আন্তৰ্জাতিক ভাৱে স্বীকৃত Modern Language Association of Ameria-ই প্ৰকাশ কৰা 'MLA Handbook for Writers of Research Papers'-ৰ অষ্টম সংস্কৰণ (8th edition) ক আৰ্হি হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছে। অভিধানৰ ক্ষেত্ৰত হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ 'হেমকোষ' অভিধানৰ সহায় লোৱা হৈছে।

১.০ শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৃতিৰ চমু পৰিচয় ঃ

বৈষ্ণৱ যুগ অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত এক গৌৰৱময় অধ্যায়। অনুবাদ গ্ৰন্থ, গীত, নাট, কাব্য, ভটিমা আদি বিভিন্ন বিভাগৰ সাহিত্য সৃষ্টিৰে এই যুগৰ সাহিত্য ভঁৰাল নদন বদন। অসমীয়া সাহিত্যৰ বিস্তৃতিৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি বৈষ্ণৱ যুগটোক অসমীয়া সাহিত্যৰ সোণালী অধ্যায় বুলি কোৱা হয়। অসমীয়া জাতীয় জীৱনৰ ভেঁটি সুদৃঢ় কৰোঁতা নৱ-বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ প্ৰৱৰ্তক শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱৰ ৰচনাৰাজি অসমীয়া জাতীয় ভঁৰালৰ অমূল্য সম্পদ। "অসমৰ সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰত শঙ্কৰদেৱৰ বহুমুখী দানৰ কথা বাদ দিলেও কেৱল সাহিত্য ক্ষেত্ৰত যি দি গ'ল সেয়েই তেখেতক অমৰত্ব দান কৰাৰ পক্ষে যথেষ্ট।" (শৰ্মা, ১১৯) শঙ্কৰদেৱৰ ধৰ্ম প্ৰচাৰ আৰু সাহিত্য-চৰ্চা এটা মুদ্ৰাৰ ইপিঠি সিপিঠি স্বৰূপ। তেখেতে নিজৰ ধৰ্ম সম্প্ৰদায়ৰ ধৰ্মমত প্ৰতিষ্ঠা, প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰৰ বাবে হাতত কলম তুলি লৈ নানা গ্ৰন্থ প্ৰণয়ন কৰিছিল। তাকে কৰিবলৈ যাওঁতে তেওঁৰ সৃষ্টিশীল কাব্য প্ৰতিভা জাগৃত হৈ বিশাল সাহিত্য সম্ভাৰৰ জন্ম হৈছিল। অসমীয়া সাহিত্যৰ যুগপ্ৰৱৰ্তক শংকৰদেৱে যদিও ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ উদ্দেশ্যেহে সাহিত্য ৰচনা কৰিছিল, তথাপি শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৃতিৰ প্ৰভাৱ সুদূৰপ্ৰসাৰী আছিল।

ৰচনাৰ বৈশিষ্ট্য অনুযায়ী শংকৰদেৱৰ ৰচনাৰাজিক সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই *'অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত'* নামৰ গ্ৰন্থত ছটা ভাগত বিভক্ত কৰিছে। সেয়া তলত উল্লেখ কৰা হ'ল ঃ

(অ) কাব্য ঃ

'হৰিশ্চন্দ্ৰ উপাখ্যান', 'ৰুক্মিণী হৰণকাব্য', 'বলিছলন', 'অমৃত মথন', 'অজামিল উপাখ্যান' আৰু 'কুৰুক্ষেত্ৰ'।

(আ) ভক্তিতত্ত্ব প্ৰকাশক সংগ্ৰহ ঃ

'ভক্তি প্ৰদীপ', 'ভক্তি ৰত্নাকৰ' (সংস্কৃত), 'নিমি-নৱসিদ্ধ সংবাদ' আৰু 'অনাদিপাতন'।

(ই) অনুবাদমূলক ঃ

'ভাগৱত'ৰ ১ম, ২য়, ৬ষ্ঠ (অজামিল উপাখ্যান মাত্ৰ), ৮ম (বলিছলন, অমৃত মথন), ১০ম, ১১শ, ১২শ

স্কন্ধ আৰু 'উত্তৰাকাণ্ড ৰামায়ণ'।

(ঈ) অংকীয়া নাট ঃ

'পত্নীপ্ৰসাদ', 'কালিয়দমন', 'কেলিগোপাল', 'ৰুক্মিণী হৰণ', 'পাৰিজাত হৰণ' আৰু 'ৰাম বিজয়'।

(উ) গীত ঃ

বৰগীত, ভটিমা, টোটয় আৰু চপয়।

(ঊ) নাম প্ৰসংগ ঃ

'কীৰ্তন' আৰু 'গুণমালা'।

২.০ শংকৰদেৱৰ উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী আৰু বৰ্তমান ইয়াৰ প্ৰাসংগিকতা ঃ

মধ্যযুগৰ শেষৰফালে সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষৰ লগতে অসমখনতো অন্ধবিশ্বাস, কুসংস্কাৰ, জাতিভেদ প্ৰথা ইত্যাদি সামাজিক ব্যাধিবোৰে ছানি ধৰিছিল। সেই সময়তেই জগতগুৰু শংকৰদেৱ (১৪৪৯-১৫৬৮) ৰ আবিৰ্ভাৱ হৈছিল। এইজনা মহান পুৰুষে অসমত পঞ্চদশ শতিকাৰ শেষৰফালে নৱ-বৈষ্ণৱ ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ অৱতাৰণা কৰিছিল। শংকৰদেৱে প্ৰচাৰ কৰা নৱ-বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ মূল বৈশিষ্ট্য হৈছে 'একশৰণ হৰিনাম ধৰ্ম'। যিয়ে 'এক দেৱ এক সেৱ এক বিনে নাই কেৱ' ৰ কথা কয়। অহিংসা, প্ৰেম, দয়া, ক্ষমা আদি মহৎ গুণৰাজিৰ ওপৰত শংকৰদেৱে বিশেষভাৱে গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল। অৰ্থাৎ, অধঃপতিত, অস্পৃশ্য, তথাকথিত উচ্চ সমাজৰদ্বাৰা উপেক্ষিত পাপী-তাপীক ভক্তি ধৰ্মৰদ্বাৰা ভক্তিৱান কৰাই আছিল শংকৰদেৱৰ ভক্তি ধৰ্মৰ মূল লক্ষ্য। শংকৰদেৱৰ একশৰণ নামধৰ্মই সেই সময়ৰ অসমীয়া সমাজখনলৈ তৎকালীনভাৱে পৰিৱৰ্তন কঢ়িয়াই আনিলে। সমকালীন সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক বাতাবৰণত শংকৰদেৱৰ ধৰ্মই প্ৰভূত প্ৰভাৱ পেলালে। শংকৰদেৱৰ আধ্যাত্মিক আন্দোলনৰ উদ্দেশ্য আছিল মানুহৰ মন তথা চিত্ত বৃত্তিক উচ্চতৰ আৰু বিশালতাৰ ৰূপ দিয়া।

শংকৰদেৱে ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ বাবে সাহিত্যক আধাৰ হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছিল। তেখেতে নৱ-বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ নীতি আৰু আদৰ্শসমূহ সহজ-সৰলকৈ জনসাধাৰণক বুজাই দিবলৈ সাহিত্য সৃষ্টিত হাত দিছিল। "শংকৰদেৱৰ সাহিত্যিক জীৱন তিনিটা স্তৰত ভাগ কৰিব পাৰি; প্ৰথম বৰদোৱাত বাস কৰা কাল, দ্বিতীয়, গাংমৌ, ধুৱাঁহাট-বেলগুৰি আদি উজনি অসমত

বাস কৰা প্ৰায় কুৰিবছৰৰ অধিক কাল আৰু শেষ নামনিৰ পাটবাউসী আৰু কোচবেহাৰত কটোৱা কাল।" (শৰ্মা, ১২০) মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ বিপুল সাহিত্যৰাজি মূলতঃ ভাগৱত আধাৰিত। ৬১৮ টা ছন্দত ৰচিত *'হৰিশ্চন্দ্ৰ উপাখ্যান'* শংকৰদেৱৰ প্ৰথম ৰচনা। ইয়াৰ পৰৱৰ্তী সময়ত শংকৰদেৱে *ভক্তি প্ৰদীপ, ৰুক্মিণীহৰণ কাব্য* আদি প্ৰণয়ন কৰে। তেখেতৰ সাহিত্যিক জীৱনৰ কীৰ্তিস্তম্ভ হৈছে *'কীৰ্তন ঘোষা'*। " শংকৰদেৱে একশৰণ ভাগৱতী ধৰ্মৰ প্ৰচাৰৰ উদ্দেশ্যে সময়ে সময়ে যিবোৰ ঘোষা ৰচনা কৰিছিল, সেইবোৰৰ সংকলিত ৰূপেই হৈছে *কীৰ্তনঘোষা*।" (বৰ্মন, ১৩১)

শংকৰদেৱৰ নাম প্ৰসংগমূলক আন এখন গ্ৰন্থ হৈছে *'গুণমালা'*। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই 'গুণমালা'ৰ সম্পৰ্কত এনেদৰে কৈছিল, "গুণমালা বাৰ স্কন্ধ ভাগৱতৰ 'পকেট এডিচন'।" এনেদৰে শংকৰদেৱে বিভিন্ন গ্ৰন্থ ৰচনা কৰি অসমীয়া সাহিত্যৰ ভঁৰাল চহকী কৰিছিল। তেখেতৰ সাহিত্যকৃতিত বিভিন্ন দৰ্শন ফুটি উঠাৰ লগতে উদাৰনৈতিক মানৱতাবাদী দৃষ্টিভংগীয়েও মুখ্য ঠাই অধিকাৰ কৰিছে। আমাৰ এই আলোচনাত শংকৰদেৱৰ বিশাল সাহিত্যকৃতিত প্ৰতিফলিত উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী সম্পৰ্কে সংক্ষেপে আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হ'ব।

শংকৰদেৱৰ আবিৰ্ভাৱৰ সময়ছোৱা সকলো ফালৰপৰাই দুঃসময় আছিল। উদাৰতাৰ বিপৰীতে সংকীৰ্ণ চিন্তাধাৰাৰ প্ৰাধান্য আছিল বেছি। অসমৰ বিভিন্ন ভাষা-ভাষী, বিভিন্ন মতাৱলম্বী মানুহৰ মাজত সম্প্ৰীতি, ঐক্য আৰু আধ্যাত্মিক ভাব জগাই তুলিবলৈ অপ্ৰাণ চেষ্টা চলাইছিল আৰু এখন প্ৰগতিশীল মানৱ সমাজ গঢ়াৰ পোষকতা কৰিছিল। মানৱতাবাদী দৰ্শনেৰে শংকৰদেৱে সমাজৰ সকলো স্তৰৰ লোককে হৰিনাম ধৰ্মত দীক্ষিত কৰি এখন বহল সমাজ গঢ়াৰ ব্যৱস্থা কৰিছিল। সমাজৰ প্ৰতিটো স্তৰৰ লোকে হৰিনাম কীৰ্তন কৰিব পাৰে আৰু পৰস্পৰে পৰস্পৰৰ প্ৰতি শ্ৰদ্ধাশীল মনোভাৱেৰে সমাজত বৰ্তি থাকিব লাগে বুলি শংকৰদেৱে সাহিত্যৰ মাধ্যমেৰে জনতাক কৈছিল ঃ

চণ্ডালে কৰিছে হৰি কীৰ্ত্তন।
বুলি তাক নিন্দে অজ্ঞজন।।
তাক সম্ভাষণ যিজনে কৰে।
আজন্মৰ পুণ্য তেখনে হৰে।।

(কীৰ্ত্তন ঘোষা)

শংকৰদেৱে প্ৰচাৰ কৰা নৱ-বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ দুৱাৰ সকলোৰে বাবে মুকলি আছিল বাবেই তেখেতে গাৰোৰ গোবিন্দ, নগাৰ নৰোত্তম, মিৰিৰ পৰমানন্দ, মুছলমানৰ চান্দসাই, ব্ৰাহ্মণৰ হৰিদেৱ আৰু ভট্টদেৱ, আহোমৰ নৰহৰি, বনিয়াৰ হৰি দাস, কছাৰীৰ ৰমাই আদিক শৰণ দিছিল আৰু বৰ অসম গঢ়াত অৱতীৰ্ণ হৈছিল। "বৰদোৱা নামঘৰৰ প্ৰথম খুঁটাটো মুছলমান ভকত চান্দসাইৰ দ্বাৰা পোৱা, টেম্বুৱানী জান বান্ধিৱৰ সময়ত প্ৰথম মাটিৰ পাচি কৈৱৰ্ত্ত সম্প্ৰদায়ৰ সতী ৰাধিকা আইৰ দ্বাৰা পেলোৱা, তাঁতী সম্প্ৰদায়ৰ মথুৰাৰাম দাস বুঢ়া আতাক বৰপেটা সত্ৰৰ প্ৰথম জনা সত্ৰাধিকাৰ আসনত বহুৱা আদি কামবোৰ বিভেদ, বৈষম্যতা, জাতিভেদ আৰু অস্পৃশ্যতা আদিৰ বিপৰীতে সাম্য, একতাৰ একোকগছি অক্ষয় বন্তি।" (বৰা সন্দিকৈ, ১২১)

বাঢ়ৈ, মালী, তাঁতী,কমাৰ, কুমাৰ, কঁহাৰ সকলোৰে প্ৰতি থকা শংকৰদেৱৰ উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগীৰ বাবেই অসমত জাত্যাভিমানৰ ভেদাভেদ কমি আহিল। বিশিষ্ট সাহিত্যিক প্ৰ াদ কুমাৰ বৰুৱাই এই প্ৰসংগত এনেদৰে কৈছিল, "শংকৰদেৱৰ উদাৰনৈতিক প্ৰগতিশীল আদৰ্শই জাত-কুলৰ ভেদাভেদৰ প্ৰাচীৰখন ভাঙি পেলোৱা বাবেই ভাৰতৰ অন্যান্য ৰাজ্যৰ তুলনাত অসমত জাত্যাভিমানৰ দম্ভ কম।" শংকৰদেৱৰ এই উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগীৰ বিষয়ে মহাত্মা গান্ধীয়ে মত প্ৰকাশ কৰিছিল এইদৰে, "যি ধৰ্মৰ অৱলম্বন কৰি মই ৰামৰাজ্য কল্পনা কৰিছোঁ তাতোকৈ সুন্দৰ আৰ্হি শংকৰদেৱে অসমবাসীক দি গৈছে। মই কেৱল তাক অনুশীলনহে কৰিছোঁ - মোৰ নতুনত্ব একো নাই।"

শংকৰদেৱে পাঁচশ বছৰৰ আগতেই অসমীয়া মানুহক জাতীয়তাবোধ উপলব্ধি কৰাইছিল। অসমত যুগ যুগ ধৰি বসবাস কৰি অহা থলুৱা জনগোষ্ঠীসমূহৰ প্ৰতি শংকৰদেৱৰ আছিল ইতিবাচক দৃষ্টিভংগী। এই দৃষ্টিভংগীয়ে বৃহত্তৰ অসমীয়া জাতি নিৰ্মাণত সহায় কৰিছে। শংকৰদেৱে অসমৰ পাহাৰ-ভৈয়ামত সিঁচৰতি হৈ থকা জাতি-জনগোষ্ঠী সকলোকে একশৰণ নামধৰ্মৰ দৰ্শনৰ মাজেদি ঐক্য স্থাপন কৰিবলৈ মনে-প্ৰাণে বিচাৰিছিল আৰু সেইবাবে এনেদৰে কৈছিল ঃ

কিৰাত কছাৰী খাচী গাৰো মিৰি
যৱন কঙ্ক গোৱাল।
অসম মুলুক ৰজক তুৰুক
কুবাচ ম্লেচ্ছ চণ্ডাল। (ভাগৱত, ২য় স্কন্ধ)

শংকৰদেৱে সাহিত্যত বিভিন্ন প্ৰসংগত জাতিপ্ৰথাৰ বিৰোধিতা কৰিছিল। "সমগ্ৰ ভাৰতৰ ইতিহাসত যিসকল

সমাজ সংস্কাৰক আৰু ধৰ্ম সংস্কাৰকসকলে মহান ত্যাগৰ দ্বাৰা সমাজৰ বৈষম্য দূৰ কৰি এক জাতি ৰূপে সমাজ গঢ়িবলৈ প্ৰয়াস কৰিছিল, সেইসকলৰ ভিতৰত মহাপুৰুষ শংকৰদেৱ আছিল অন্যতম।" (নাথ, ৪১৫)

অস্পৃশ্যতা বৰ্জন কৰি সাম্য উদৰতাপূৰ্ণ সমাজ এখন গঢ়িবলৈ শংকৰদেৱে চেষ্টা কৰিছিল। "অস্পৃশ্যতা বৰ্জন আন্দোলন অভিযান চলাবলৈ মহাত্মা গান্ধী অসমলৈ আহোঁতে অসমত অস্পৃশ্যতাৰ অভিশপ্ত অৱস্থা নেদেখি শংকৰদেৱৰ প্ৰতি শ্ৰদ্ধাশীল হৈ গান্ধীজীয়ে কৈছিল, 'সমগ্ৰ ব্ৰিটিছ সৈন্যবাহিনীয়ে যি কাম হয়তো কৰিব নোৱাৰিলেহেঁতেন, শংকৰদেৱে অকলে সেই কাম সম্পন্ন কৰিলে'।" (মহন্ত, ০৪) শ্ৰীমদ্ভাগৱতত উল্লেখ আছে ঃ

জাতি অন্ত্যজাতি আদি   সবাকো পবিত্ৰ কৰে
সমস্ত প্ৰাণীৰ মনোনীত।
আতি অপ্ৰয়াসে তৰে   সমস্ত পাতকে হৰে
কহিয়ো হেনসে প্ৰায়শ্চিত্ত।।

(শ্ৰীমদ্ভাগৱত,ষষ্ঠ স্কন্ধ,পদ ৫৩২৭)

তদুপৰি, আমাৰ সৰ্বসাধাৰণৰ প্ৰচলিত ধাৰণা অনুসৰি কেৱল ব্ৰাহ্মণসকলেহে হৰিনাম কীৰ্তনত অংশগ্ৰহণ কৰিব পাৰে তথা হৰিনামত ৰস পায়। সৰ্বসাধাৰণৰ ধাৰণা ভ্ৰান্ত বুলি মত প্ৰকাশ কৰি শংকৰদেৱে 'কীৰ্ত্তন ঘোষা'ৰ ১৩০ নং পদত এনেদৰে ক'লে ঃ

কৃষ্ণৰ কথাত যিটো ৰসিক।
ব্ৰাহ্মণ জন্ম তাক লাগে কিক।।
স্মৰাক মাত্ৰ হৰি দিনে ৰাত।
নবাছে ভকতি জাতি অজাতি।।

(কীৰ্ত্তন ঘোষা, ১৩০ নং পদ)

অহিংসা, বিনয়, দয়া, ত্যাগ, সহিষ্ণুতা আদিৰ প্ৰতি শংকৰদেৱ গভীৰভাৱে আস্থাশীল আছিল। প্ৰতিগৰাকী মানুহকেই সমান চকুৰে চোৱাৰ উপৰি সকলো জীৱ-জন্তুকো সমমৰ্যাদা প্ৰদান কৰিছিল। তেখেতে 'কীৰ্ত্তন ঘোষা'ত লিখিছে ঃ

কুকুৰ শৃগাল গৰ্দভৰো আত্মাৰাম।
জানিয়া সবাকো পৰি কৰিবা প্ৰণাম।।
সমস্ত প্ৰাণীকে দেখিবা আত্মসম।
উপায় মধ্যত ইটো অতি মুখ্যতম।।

(কীৰ্ত্তন ঘোষা)

শংকৰদেৱে নিজে বিশ্বাস কৰা ধৰ্মটোকে শ্ৰেষ্ঠ বুলি কাহানিও কোৱা নাছিল। বৰং, প্ৰতিটো ধৰ্মীয় সম্প্ৰদায়ৰ লোকক সমানভাৱে চাবলৈ, কাকো হিংসা নকৰিবলৈ আৰু সকলো ধৰ্মৰ প্ৰতি উদাৰ হ'বলৈ 'ভক্তি প্ৰদীপ'ত এনেদৰে কৈছিল ঃ

পৰৰ ধৰ্মক নিহিংসিবা কদাচিত।
কৰিবা ভূতক দায়া সকৰুণ চিত্ত।।

(ভক্তি প্ৰদীপ, ১৪১ নং পদ)

শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৃতিত প্ৰতিফলিত হৈছে মানৱ সেৱাই প্ৰকৃত ধৰ্ম। তেখেতে সেইগৰাকী লোকক পণ্ডিত বুলিছে যিগৰাকীয়ে ব্ৰাহ্মণ-চাণ্ডালৰ কুলৰ পৰিচয় নোসোধে, দাতা আৰু চোৰৰ মাজত কোনো ভেদ নাৰাখে। 'কীৰ্ত্তন ঘোষা'ত এইদৰে আছে ঃ

ব্ৰাহ্মণৰ চাণ্ডালৰ নিবিচাৰি কুল।
দাতাত চোৰত যেন দৃষ্টি এক তুল।।
নীচত সাধুত যাৰ ভৈল এক জ্ঞান।
তাহাকেসে পণ্ডিত বুলিয় সৰ্বজন।।

(কীৰ্ত্তন ঘোষা)

পঞ্চদশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজখনত থকা জাত-পাত, উচ্চ-নীচ ভেদাভেদৰ বিপৰীতে শংকৰদেৱৰ আছিল এক উদাৰ আৰু বিশ্বজনীন মনোভাৱ। শংকৰদেৱৰ উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগীয়ে এখন জহি যোৱা সমাজক পুনৰুদ্ধাৰ কৰি মানুহৰ মাজতেই সৰগীয় সুখৰ সন্ধান দিছিল। তেখেতে সাহিত্যৰ যোগেদি অসমত এক নতুন আদৰ্শ প্ৰতিষ্ঠা কৰিলে, ছেদেলি ভেদেলি হৈ থকা অসমৰ জনগোষ্ঠীসমূহক সেই আদৰ্শৰ জৰীৰে বান্ধি তেওঁলোকৰ মাজত এক জাতীয় চৈতন্যৰ সঞ্চাৰ কৰিলে। শংকৰদেৱৰ সাহিত্যকৃতিত প্ৰতিফলিত উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী কেৱল সেই সময়ৰ বাবেই প্ৰাসংগিক নহয় ,বৰ্তমান সময়তো ইয়াত প্ৰাসংগিকতা তথা গুৰুত্ব আছে। একবিংশ শতিকাৰ পুঁজিবাদী বিশ্বায়নে সমাজ-সংস্কৃতিক একপ্ৰকাৰ গ্ৰাস কৰিছে। সমাজৰপৰা লোপ পাইছে নৈতিকতা, মূল্যবোধ, উদাৰতা, সাম্য-মৈত্ৰী ইত্যাদি, ইত্যাদি। মুঠতে, বৰ্তমান অসমীয়া সমাজখন বিভিন্ন কাৰকৰ হেঁচাত পৰি থান-বান হৈ পৰিছে, জাতীয় চেতনা আৰু ঐক্যত ঘূণে ধৰিছে। সাম্প্ৰদায়িক বিষবাষ্পই সমাজখন এফালৰপৰা নিঃশেষ কৰি আহিছে। জাতি-ধৰ্ম-বৰ্ণ নিৰ্বিশেষে সকলো এক হৈ থাকিবলৈ হ'লে শংকৰদেৱৰ আদৰ্শৰ মূল্যায়ন কৰাটো নিতান্তই প্ৰয়োজনীয়। যিমানেই নৱবৈষ্ণৱ জাগৰণৰ সামগ্ৰিক পৰ্যালোচনা আৰু তাৰ বৰ্তমান প্ৰাসংগিকতাৰ মূল্যায়নৰ দৰে আলোচনাত প্ৰবৃত্ত হোৱা যায়, অসমীয়া জাতীয় জীৱন, সংস্কৃতি গঠন আৰু ইয়াৰ বিকাশৰ

ঐতিহাসিক প্ৰক্ৰিয়াত শংকৰদেৱৰ প্ৰভাৱৰ পৰিধি সিমানেই ব্যাপকতৰ হোৱা যেন অনুভূত হয়। শংকৰদেৱৰ মহতীসৃষ্টিৰ দিশত সাৰ্বিক অভিক্ষেপেৰে লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই মন্তব্য কৰিছিল এনেদৰে, “এটা জাতিক সকলোপিনে সৰ্বাংগসুন্দৰ কৰি থিয় কৰিবৰ নিমিত্তে যি যি আৱশ্যক, সকলোবোৰ শংকৰদেৱে দান কৰি থৈ গৈছে।”

৩.০ উপসংহাৰ ঃ

সাম্য-মৈত্ৰীৰ ধ্বজাবাহক শংকৰদেৱৰ আদৰ্শ চিৰপ্ৰবহমান। সমাজ সংস্কাৰক শংকৰদেৱৰ কৃতিত্বই সমন্বয়-সংহতিৰ মালা গাঁথি অসমক একতাৰ ডোলেৰে বান্ধি পেলালে। জাতি-উপজাতিৰ ক্ষুদ্ৰ চিন্তা পৰিহাৰ কৰি বিশ্বৰ সকলো লোকক আপোন বুলি আঁকোৱালি ল'বলৈ শিক্ষা দিয়া শংকৰদেৱ সাৰ্বজনীনতাৰ প্ৰতীক। স্পৃশ্য-অস্পৃশ্য, জাতি-জনজাতি , উচ্চ-নীচৰ ভেদাভেদ আঁতৰাই শংকৰদেৱে পৰিচয় দিলে এক মহামানৱতাৰ। গীতেৰে, নাটেৰে, কথাৰে, স্থাপত্য-ভাস্কৰ্য চৰ্চাৰ মাধ্যমেদি নৱ-বৈষ্ণৱ ধৰ্ম প্ৰচাৰ কৰি মানুহৰ আশা-আকাংক্ষাৰ বিনীত অভিব্যক্তি প্ৰচাৰ কৰিলে। শংকৰদেৱৰ উদাৰনৈতিক মানৱীয় চিন্তাধাৰাৰ বাবেই অসমত সৰু-বৰ সকলো মানুহে মাটিৰ পৃথিৱীতেই থাকি সৰগীয় সুখৰ আনন্দ লভিলে।

ধৰ্মৰ মাজত ধৰ্ম নিৰপেক্ষতা অক্ষুণ্ণ ৰাখি শংকৰদেৱে নৱ-বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ জৰিয়তে সামান্য সমতা বৃদ্ধি কৰিছিল। শংকৰদেৱৰ উদাৰনৈতিক দৃষ্টিভংগী তথা দৰ্শনৰ বিষয়ে আচাৰ্য বিনোৱা ভাবে কৈছিল, “মই বহুতো ধৰ্মৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰিছোঁ, কিন্তু শংকৰদেৱৰ প্ৰচাৰিত ধৰ্মৰ নিচিনা উদাৰ ধৰ্ম এই পৰ্যন্ত ক'তো পোৱা নাই।” (ভাবে, ৮৮) ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

অসমীয়া গ্ৰন্থ ঃ

গোস্বামী, বসন্তকুমাৰ (সম্পা.)। *শংকৰদেৱ- সন্দৰ্শন*। অসম সাহিত্য সভা, যোৰহাট, ১৯৯৮। মুদ্ৰিত।
নেওগ, মহেশ্বৰ। *শ্ৰীশ্ৰীশঙ্কৰদেৱ।* চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ১৯৮৭। মুদ্ৰিত।
নেওগ, মহেশ্বৰ (সম্পা.)। *বাণীকান্ত ৰচনাৱলী।* অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী, ১৯৯১। মুদ্ৰিত।
নেওগ, মহেশ্বৰ। *অসমৰ সাংস্কৃতিক ঐতিহ্য*। কৌস্তুভ প্ৰকাশন, ডিব্ৰুগড়, ২০০৩। মুদ্ৰিত।
বৰা, মহিম। *চিন্তা বিচিত্ৰা* (প্ৰথম খণ্ড)। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ , ১৯৭৫। মুদ্ৰিত।
বৰ্মন, শিৱনাথ। *শ্ৰীমন্ত শঙ্কৰদেৱ ঃ কৃতি আৰু কৃতিত্ব*। চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ১৯৮৬। মুদ্ৰিত।
বৰ্মন, শিৱনাথ (সম্পা.)। *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* (দ্বিতীয় খণ্ড)। আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা, উত্তৰ গুৱাহাটী, তৃতীয় প্ৰকাশ, ২০১৭। মুদ্ৰিত।
মহন্ত, বাপচন্দ্ৰ। *ঐতিহাসিক পটভূমিত মহাপুৰুষ শংকৰদেৱ*। বনলতা, গুৱাহাটী, ১৯৯৯। মুদ্ৰিত।
মহন্ত, প্ৰদীপজ্যোতি। *শংকৰদেৱৰ শিল্পলোক*। পূৰ্বাঞ্চল, গুৱাহাটী, ২০০৭। মুদ্ৰিত।
ৰায়চৌধুৰী, ভূপেন্দ্ৰ। *শ্ৰীমন্ত শঙ্কৰদেৱৰ কৃতিত্বৰ সুৱাস*। ৰেখা প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, ১৯৯২। মুদ্ৰিত।
শইকীয়া, নগেন (সম্পা.)। *বেজবৰুৱা ৰচনাৱলী* (দ্বিতীয় খণ্ড)। বনলতা, ডিব্ৰুগড়, ২০১০। মুদ্ৰিত।
শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ। *অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত।* সৌমাৰ প্ৰকাশ, বিহাবাৰী,গুৱাহাটী, ২০১৮। মুদ্ৰিত।

উদ্ধৃত-কৰ্ম ঃ

নেওগ, মহেশ্বৰ (সম্পা.)। *বাণীকান্ত ৰচনাৱলী*। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী, ১৯৯১। মুদ্ৰিত। পৃ. ০৪।
শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ। *অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত*। সৌমাৰ প্ৰকাশ, বিহাবাৰী, গুৱাহাটী, ২০১৮। মুদ্ৰিত। পৃ. ১১৯।
শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ। পূৰ্বোল্লিখিত। পৃ. ১২০।
বৰ্মন, শিৱনাথ (সম্পা.)। *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* (দ্বিতীয় খণ্ড)। আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা, উত্তৰ গুৱাহাটী, তৃতীয় প্ৰকাশ,২০১৭। মুদ্ৰিত। পৃ. ১৩১।
বৰা সন্দিকৈ, নিবেদিতা (সম্পা.)। *শংকৰী সাহিত্য সংস্কৃতি*। মুদ্ৰিত। পৃ. ১২১।
নাথ, ধ্ৰুৱজ্যোতি (সম্পা.)। *শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ ঃ সাহিত্য, কলা আৰু দৰ্শন*। পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ২০১২। মুদ্ৰিত। পৃ. ৪১৫।
মহন্ত, প্ৰদীপজ্যোতি (সম্পা.)। *শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ ঃ সমাজ আৰু সংস্কৃতি*। মুদ্ৰিত। পৃ.০৪।
ভাবে, বিনোৱা। *শঙ্কৰ অভিক্ষেপ*। পৃ. ৮৮।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

য়েছে দৰজে ঠংচিৰ চুটিগল্প 'মৃত্যু' ঃ মাতৃভাষা অৱলুপ্তিৰ মৰ্মন্তুদ চিত্ৰণ

অৰূপ চন্দ্ৰ দাস

সংক্ষিপ্ত-সাৰ ঃ

য়েছে দৰজে ঠংচিৰ 'মৃত্যু' নামৰ গল্পটোত অৰুণাচলৰ বুগুনসকলৰ মাতৃভাষাটিৰ অৱলুপ্তিৰ কাহিনী মৰ্মস্পৰ্শী ৰূপত তুলি ধৰিছে। গাঁওখনৰ বুগুনভাষী অন্তিমজন ব্যক্তি ইণ্ডি ফিনয়াৰ মৃত্যুৰ লগে লগে তেওঁৰ মুখৰ ভাষাটোও চিৰদিনৰ বাবে পৃথিৱীৰ পৰা নিচিহ্ন হৈ পৰিছে। কাৰণ সময়ৰ পৰিৱৰ্তন তথা আধুনিকতাৰ গ্ৰাসত পৰি গাঁওখনৰ নতুন প্ৰজন্মটোৱে হিন্দী-ইংৰাজী ভাষাক আদৰি লোৱাৰ সমান্তৰালভাৱে নিজৰ মাতৃভাষাটো ক্ৰমাৎ পাহৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিছে। ইণ্ডি ফিনয়াকে ধৰি গাঁওখনৰ একাংশ ব্যক্তিয়ে ভাষাটো উত্তৰ প্ৰজন্মৰ বাবে সুৰক্ষিত কৰি ৰাখি থৈ যাবলৈ আহোপুৰুষাৰ্থ কৰাৰ পাছতো তেওঁলোক বিফল হৈছে। নিজ ভাষাৰ প্ৰতি নতুন প্ৰজন্মৰ অৱহেলা, নীচাত্মিকাবোধ, উদাসীনতাৰ উপৰি অন্যান্য যিবোৰ ভাষিক, সামাজিক, সাংস্কৃতিক, আধিপত্যবাদী কাৰণত 'বুগুন'ৰ দৰে জনজাতীয় ভাষাবোৰ কালৰ বুকুত হেৰাই যোৱাৰ উপক্ৰম হৈছে, সেই আটাইবোৰ দিশ 'মৃত্যু' নামৰ গল্পটোত এটি হৃদয়স্পৰ্শী কাহিনীৰ মাধ্যমেৰে উপস্থাপিত হৈছে। এই আলোচনাত য়েছে দৰজে ঠংচিয়ে এটা জাতিৰ মাতৃভাষা ৰক্ষাৰ প্ৰয়াসৰ অন্তৰালত নিহিত থকা কষ্ট, ত্যাগ অথবা বেদনাৰ লগতে ভাষা এটা হেৰাই যোৱাৰ অন্তৰালৰ কাৰণবোৰ কেনেদৰে উন্মোচন কৰিছে, তাকেই পোহৰলৈ অনাৰ চেষ্টা কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ ঃ

অৰুণাচল, ইণ্ডি ফিনয়া, বুগুন, ভাষা, মাতৃভাষা, মৃত্যু, উদাসীনতা।

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

য়েছে দৰজে ঠংচিৰ অধিকাংশ ৰচনাৰ দৰেই 'মৃত্যু' গল্পটোও অৰুণাচলৰ এখন জনজাতীয় সমাজৰ পটভূমিত ৰচিত। কিন্তু এই গল্পটোৰ বিষয়বস্তু অথবা কাহিনী যথাৰ্থতে ব্যতিক্ৰমধৰ্মী। ইয়াত ভাষা এটা পৃথিৱীৰ বুকুৰ পৰা একেবাৰে হেৰাই যোৱা; অৰ্থাৎ ভাষা এটাৰ মৃত্যুৰ কাহিনী কৰুণভাৱে বৰ্ণনা কৰা হৈছে। ২০২০ চনত ৰচিত 'মৃত্যু' গল্পটো ঠংচিৰ *ধাৰ আৰু অন্যান্য গল্প* (২০২১) সংকলনটোৰ অন্তৰ্গত।

'মৃত্যু' গল্পটো হৈছে অৰুণাচলৰ বুগুন ভাষাটি জীয়াই ৰখাৰ হেতু গাঁওখনৰ গাঁওবুঢ়া ইণ্ডি ফিনয়াকে প্ৰমুখ্য কৰি একাংশ সচেতন ব্যক্তিৰ শংকা, উদ্বিগ্নতা আৰু অসন্তুষ্টিৰ লগতে তেওঁলোকৰ আন্তৰিক প্ৰচেষ্টাৰ কাহিনী। তাৰ লগতে নতুন প্ৰজন্মৰ মাতৃভাষা ব্যৱহাৰৰ প্ৰতি অনীহা, অৱহেলা আৰু উদাসীন মনোভাৱৰ কথাও তুলি ধৰা হৈছে। তদুপৰি ভাষা একোটা হেৰাই যোৱাৰ অন্তৰালৰ অন্যান্য

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী-৭৮১০১৪
৬৯০০৪৭৮৭৫১
arupchdas470@gmail.com

আনুষংগিক কাৰণবোৰো গল্পকাৰে কাহিনী আৰু চৰিত্ৰৰ মাধ্যমেৰে উন্মোচন কৰিছে। দেখা যায় যে 'মৃত্যু' গল্পটো যদিও অৰুণাচলৰ 'বুগুন' ভাষাক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচনা কৰা হৈছে, তথাপি এই গল্পৰ মাধ্যমেৰে প্ৰতিফলিত ভাষিক দুঃৰবস্থাৰ ছবিখন 'বুগুন'ৰ দৰে পৃথিৱীৰ অন্যান্য লুপ্তপ্ৰায় ভাষাবোৰৰ ক্ষেত্ৰতো প্ৰযোজ্য আৰু প্ৰাসংগিক হৈ উঠিছে।

০.১ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

'য়েছে দৰজে ঠংচিৰ চুটিগল্প 'মৃত্যু' ঃ মাতৃভাষা অৱলুপ্তিৰ মৰ্মন্তুদ চিত্ৰণ' শীৰ্ষক এই বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে এই তিনিটা দিশ আলোচনাৰ পৰিসৰলৈ অনা হৈছে—

ক) য়েছে দৰজে ঠংচিৰ 'মৃত্যু' নামৰ গল্পটোত ভাষা এটাৰ 'মৃত্যু'ৰ কাহিনীৰ সমান্তৰালভাৱে ভাষা এটা হেৰাই যোৱাৰ অন্তৰালৰ কাৰকবোৰ কেনেদৰে উন্মোচিত হৈছে, সেই দিশটোত আলোকপাত কৰা হৈছে।

খ) এটা গল্প-বিষয়ক আলোচনা হিচাপে স্বাভাৱিকতেই গল্পটোৰ পটভূমি, কাহিনী, চৰিত্ৰ আদি দিশবোৰ আলোচনাৰ আওতালৈ আনি সাহিত্যিক দৃষ্টিকোণেৰে বিচাৰ কৰা হৈছে।

গ) মূলতঃ মাতৃভাষা এটি সময়ৰ বুকুত চিৰদিনৰ বাবে লোপ পোৱাৰ কাৰুণ্য আৰু মৰ্মস্পৰ্শী অনুভৱ-উপলব্ধিক গল্পকাৰে কিদৰে তুলি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে, সেই দিশটোত বিশেষভাৱে গুৰুত্ব আৰোপ কৰা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

য়েছে দৰজে ঠংচিৰ 'মৃত্যু' গল্পটোৰ পটভূমি, কাহিনী, চৰিত্ৰ আদিৰ আধাৰত ভাষা এটা অৱলুপ্তিৰ কাৰুণ্যৰ লগতে গল্পকাৰে তুলি ধৰা তাৰ আনুষংগিক কাৰণবোৰ উন্মোচন কৰাই হৈছে এই অধ্যয়নৰ মূল উদ্দেশ্য।

০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

'য়েছে দৰজে ঠংচিৰ চুটিগল্প 'মৃত্যু'ঃ মাতৃভাষা অৱলুপ্তিৰ মৰ্মন্তুদ চিত্ৰণ' শীৰ্ষক এই অধ্যয়নটিত বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ উৎস ঃ

'য়েছে দৰজে ঠংচিৰ চুটিগল্প 'মৃত্যু'ঃ মাতৃভাষা অৱলুপ্তিৰ মৰ্মন্তুদ চিত্ৰণ' বিষয়টো অধ্যয়নৰ বাবে মূল গল্পটো মুখ্য উৎস আৰু দুই-এক আনুষংগিক প্ৰবন্ধ গৌণ উৎস হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে।

১.০ বিষয়বস্তুৰ আলোচনা ঃ

য়েছে দৰজে ঠংচিৰ 'মৃত্যু' গল্পটোৰ আৰম্ভণিতে অৰুণাচলৰ ছিনচুঁঙ নামৰ গাঁওখনৰ গাঁওবুঢ়া ইণ্ডি ফিনয়াৰ পৰিচয় পোৱা যায়। আদিৰ পৰা অন্তলৈ মুখ্য ভূমিকা পালন কৰা এই ব্যক্তি জনেই গল্পটোৰ মুখ্য চৰিত্ৰ। বৃদ্ধ হ'লেও শাৰীৰিকভাৱে সুস্থ তথা অভাৱ-অনাটন নথকা ইণ্ডি ফিনয়া বহু মানুহৰ মৰম-আদৰ- সন্মানেৰে পৰিৱেষ্টিত হৈ থকাৰ পাছতো প্ৰতিমুহূৰ্ততে মনৰ মাজত কঢ়িয়াই লৈ ফুৰিছে এক অব্যক্ত দুঃখ। এই দুঃখ সম্পৰ্কে গল্পকাৰে কৈছে-

"কি সেই দুখ? সেই দুখ হ'ল বুঢ়াই নিজৰ মাতৃভাষা হেৰুৱাৰ দুখ।সেই মাতৃভাষাত কাৰো সৈতে কথা পাতিব নোৱাৰাৰ দুখ। কাৰো মুখৰ পৰা সেই মাতৃভাষাৰ এটা বাক্যও শুনিবলৈ নোপোৱাৰ দুখ।" (ঠংচি, *ধাৰ আৰু অন্যান্য গল্প*, মৃত্যু, ১৮৩)

নিজৰ মাতৃভাষাত মনৰ ভাব বিনিময় কৰিব নোৱাৰাৰ দুঃখত পিষ্ট শেষৰজন ব্যক্তি হিচাপে জীয়াই থকা ইণ্ডি ফিনয়াক গল্পকাৰে 'প্ৰাক-ঐতিহাসিক প্ৰস্তৰ মূৰ্তি'ৰ সৈতে তুলনা কৰিছে; যাক চাবলৈ দূৰ-দূৰণিৰ পৰা মানুহ আহে আৰু তেওঁৰ ফটো তুলি লৈ যায়। তাৰ পাছতো তেওঁ অকলশৰীয়া এই বাবেই যে, নিজ ভাষাত কথা পাতিবলৈ তেওঁৰ এজনো সংগী নাই। তাৰেই পৰিণতিত ইণ্ডি ফিনয়া হৈ পৰিছে এটি প্ৰস্তৰ মূৰ্তি।

কিন্তু, ইণ্ডি ফিনয়াৰ এনে দুৰ্ভাগ্যজনক পৰিণতি এদিনতে হোৱা নাই। এক পৰ্যায়ক্ৰমিক পৰিৱৰ্তনে তেওঁৰ ভাষাটোক মৃত্যুৰ মুখলৈ ঠেলি দিছে। পৰিৱৰ্তনৰ এই ছবিখন গল্পকাৰ ঠংচিয়ে বিস্তৃত ৰূপত তুলি ধৰিছে, য'ত ভাৰতবৰ্ষৰ স্বাধীনতাৰ পৰৱৰ্তী সময়ৰ পৰা দ্ৰুতভাৱে সলনি হোৱা সামাজিক, সাংস্কৃতিক আৰু অৰ্থনৈতিক দিশসমূহ চালিজাৰি চোৱা হৈছে। এই পৰিৱৰ্তনৰ আভাস হিচাপে প্ৰথমেই কৈছে—

" যি এক বৃহৎ এলেকা আগতে জনশূন্যভাৱে পৰি আছিল, যি পাহাৰত এদিন কাচিৎহে কেতিয়াবা মানুহৰ আহ-যাহ হৈছিল, সেই এলেকাত ভাৰতৰ স্বাধীনতাৰ পাছত প্ৰথমতে আলিবাট নিৰ্মাণ কৰা হ'ল ।ইণ্ডি ফিনয়াৰ গাঁওখনৰ কাষেদি।" (১৮৫)

এয়াই পৰিৱৰ্তনৰ দ্ৰুত আৰম্ভণি। তাৰ পাছত ক্ৰমান্বয়ে—

"যাঠি-সত্তৰ দশকৰ কালছোৱাতেই ছিনছুঙ গাঁৱৰ

আশে-পাশে বাহিৰা মানুহেৰে ভৰি থকা এখন ডাঙৰ নগৰ গঢ় লৈ উঠিছিল আৰু তাৰ মাজতে ইণ্ডিহঁতৰ মানুহ হেৰাই গৈছিল। হেৰাই গৈছিল তেওঁলোকৰ সাজ-পাৰ আৰু তাৰ ঠাই লৈছিল আধুনিক সাজ-পাৰেঃ চার্ট, লংপেণ্ট আদিয়ে।" (১৮৭)

সময়ৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে সমাজত এইধৰণৰ ভাষিক-সাংস্কৃতিক পৰিৱৰ্তনো অৱশ্যম্ভাৱী। বিশ্বায়নৰ যুগত দেশী- বিদেশী মানুহৰ সংস্পৰ্শত অথবা বিভিন্ন প্ৰয়োজনত অন্য ভাষা শিকাটোও আৱশ্যক হৈ উঠে। তেনে প্ৰয়োজনৰ বাবেই ইণ্ডিহঁতৰ গাঁৱৰ মানুহবোৰে তেওঁলোকৰ অঞ্চলত খোপনি পোতা হিন্দীভাষী সৈন্য, বনুৱা, ঠিকাদাৰ আদিৰ সৈতে ভাবৰ আদান-প্ৰদান কৰিবৰ হেতু অপৰিহাৰ্যভাৱে হিন্দী ভাষা শিকিব লগা হৈছিল। কিন্তু এই ভাষা শিকন বা ভাষাটো ব্যৱহাৰৰ পৰিসৰ কেৱল প্ৰয়োজনতে যে সীমাবদ্ধ হৈ নাথাকিল, সেই দিশটোহে 'মৃত্যু' গল্পটোত দুৰ্ভাগ্যজনকভাৱে তুলি ধৰা হৈছে।

গুৰুত্বপূৰ্ণ এই যে, গল্পকাৰ ঠংচিয়ে আধুনিকতা অথবা পৰিৱৰ্তিত সময়ে দাবী কৰা প্ৰয়োজনীয়তাক উদাৰ মনে স্বীকাৰ কৰি লৈছে। সমান্তৰালভাৱে নিজস্বতাক পাহৰি পেলোৱা মানুহবোৰৰ আত্মবিস্মৃতি দুঃখলগা ছবিখনো তেওঁ বৰ কঠোৰভাৱেই চিত্ৰিত কৰিছে। বৃদ্ধ ইণ্ডিয়ে হিন্দী ভাষা শিকিব নোৱাৰাৰ বাবে গাঁৱৰ মানুহবোৰে তেওঁক তিৰস্কাৰ কৰিছে। হিন্দী শিকি গৌৰৱত গদগদ হৈ পৰা মানুহবোৰে নিজৰ মাজতো সেই ভাষাত কথা পাতিবলৈ আৰম্ভ কৰিছে। কেৱল সেয়ে নহয়, নিজৰ সন্তানকো সৰুৰে পৰা মাতৃভাষাৰ সলনি হিন্দী ভাষা শিকাইছে আৰু সেই ভাষাত কথা ক'ব পৰা হ'লে আনন্দত দিশহাৰা হৈ পৰিছে। সন্তানে নিজৰ ভাষাটো বুজি নোপোৱাৰ বাবে দুঃখিত হোৱাৰ পৰিৱৰ্তে সেই পিতৃ-মাতৃসকলে গৰ্ববোধ কৰিছে। গাঁৱৰ মানুহবোৰৰ নিজ ভাষাটোৰ প্ৰতি চূড়ান্ত অনীহা প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে—

"আৰু গাঁৱৰ সকলো মানুহে কোৱাকুই কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিছিল 'কি কৰিব আমাৰ বুগুন কথা শিকি? বাহিৰত গ'লেই কোনোও বুজি নাপায়। আমি নিজৰ ভাষাত কথা ক'লে মানুহে হাঁহে।" (১৮৮)

গাঁওবাসী যে নিজৰ ভাষাটোৰ প্ৰতি এধানমানো সচেতন নাছিল সেই কথা সহজেই অনুমান কৰিব পাৰি। কাৰণ সময় বা প্ৰয়োজনৰ দাবীত অন্য ভাষা শিকাটো আদৰণীয় যদিও নিজ ভাষাৰ প্ৰতি নীচাত্মিকাবোধ পুহি ৰাখাটো সঁচা অৰ্থতেই নিন্দনীয়। এয়া অৱশ্যে কেৱল বুগুনভাষীসকলৰ ক্ষেত্ৰতেই প্ৰযোজ্য নহয়; বৰং মানৱজাতিৰ এনে মানসিকতাৰ বাবেই পৃথিৱীৰ বহুতো ভাষা কালৰ বুকুত জাহ গৈছে; যিদৰে ইণ্ডি ফিনয়া আৰু তেওঁৰ প্ৰজন্মটো ক্ৰমান্বয়ে পৃথিৱী এৰি গুচি যোৱাৰ লগে লগে তেওঁলোকৰ মুখৰ ভাষাটোও বিলুপ্ত হোৱাৰ উপক্ৰম হৈছে। এই কথাটোক লৈ ইণ্ডি ফিনয়া শংকিত হৈ পৰিছে।

ভাষা একোটাৰ লগত এটা জাতিৰ অস্তিত্বৰ প্ৰসংগটোও ওতপ্ৰোতভাৱে জড়িত হৈ থাকে। নিজৰ ভাষা আৰু জাতিৰ ভৱিষ্যৎ সম্পৰ্কে সন্ত্ৰস্ত আৰু উদ্বিগ্ন হৈ পৰা ইণ্ডি ফিনয়াই সেইবাবেই গাঁৱৰ মানুহবোৰক সকীয়াই দিছিল-

"তহঁতে বৰ ডাঙৰ ভুল কৰি আছু এনেকৈ আমি লোকৰ ভাষাত কথা কৈ থাকিলে এদিন আমাৰ ভাষা কোৱা মানুহ নাইকিয়া হৈ যাব। ভাষা নাইকিয়া হৈ গ'লে আমাৰ জাতিও এই পৃথিৱীৰ পৰা নাইকিয়া হৈ যাব। কিমান বেয়া কথা হ'ব, কোনোবাই ভাবি চাইছেনে?"(১৮৯)

ইণ্ডি ফিনয়াৰ এই সতৰ্কবাণীৰ মাধ্যমেৰে গল্পকাৰ য়েছে দৰজে ঠংচিয়ে নিজস্বতা পাহৰি যোৱা আধুনিক মানুহক স্বকীয়তা সম্পৰ্কে সচেতন কৰি তুলিছে। তাৰ লগতে হিন্দী, ইংৰাজী আদি ভাষাৰ আগ্ৰাসনৰ পৰা মাতৃভাষা ৰক্ষাৰ্থে অৰুণাচলৰ সেই গাঁওখনত একাংশ সচেতন মানুহৰ দ্বাৰা সভা অনুষ্ঠিত কৰাৰ প্ৰসংগটোও অতি গুৰুত্বসহকাৰে উপস্থাপন কৰিছে, য'ত সমাজৰ জ্যেষ্ঠ প্ৰজন্মৰ ব্যক্তিসকলে অৱলুপ্তিৰ গৰাহলৈ অগ্ৰসৰ হোৱা ভাষাটোৰ ৰক্ষণাবেক্ষণত দিয়াৰ সপক্ষে নিজস্ব শক্তিশালী যুক্তি দাঙি ধৰিছে। কিন্তু এই প্ৰসংগতে গল্পকাৰে পুৰণি প্ৰজন্মটোৰ সৈতে নতুন প্ৰজন্মৰ চিন্তাৰ পাৰ্থক্য, বিৰোধ, দ্বন্দ্ব আদিও যৌক্তিকভাৱে অৱতাৰণা কৰিছে। নিজৰ মানুহৰ মাজত হিন্দী-ইংৰাজীত কথা নাপাতি মাতৃভাষা ব্যৱহাৰৰ পোষকতা কৰা ইণ্ডি ফিনয়াৰ যুক্তি খণ্ডন কৰি এগৰাকী ডেকাই কৈ উঠিছে—

"...আমাৰ ভাষাত কথা পাতিলেও আমি ইংৰাজী আৰু হিন্দী শব্দৰ ব্যৱহাৰ কৰিবই লাগিব। আমাৰ ভাষাত টেলিফোন, বজাৰ, মাৰ্কেট, গাড়ী,চাট, বুট, পেন, কিতাপ আদি শব্দ আছে জানো?" (১৯০)

ডেকাগৰাকীৰ মন্তব্যৰ জৰিয়তে যদিও মাতৃভাষাত

অভাৱ হোৱা বিশেষ কেতবোৰ শব্দৰ উল্লেখ ঘটিছে, আচলতে তাৰ মাজেৰে গাঁওখনলৈ অহা নতুনত্ব আৰু পৰিৱৰ্তনৰ ছবিখনো স্পষ্ট হৈ উঠিছে। ইণ্ডি ফিনয়াই কৈছে—

"কাৰণ আগৰ দিনত আমাৰ মাজত সেইবিলাক বস্তু নাছিল। টেলিফোন, গাড়ী আদিও নাছিল, বজাৰ,মাৰ্কেট আদিও নাছিল। গতিকে আমাৰ ভাষাত সেইবিলাক শব্দ নাই।"(১৯০)

ভাষা-ৰক্ষাৰ হকে অনুষ্ঠিত সভাখনত ব্যক্তিসকলৰ মাজৰ কথোপকথনৰ দ্বাৰা গল্পকাৰে এনেদৰেই ভাষা সম্বন্ধিত কেইবাটাও গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয়ত আলোকপাত কৰিছে। এই কথোপকথন অংশৰ মাধ্যমেৰে কেৱল ভাষা সুৰক্ষাৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ কথাই নহয়, বৰঞ্চ ভাষাৰ পৰিবৰ্তনশীলতা, প্ৰজন্মৰ পৰা প্ৰজন্মলৈ ভাষাৰ গতিশীলতা, প্ৰজন্মভেদে মাতৃভাষাৰ প্ৰতি আত্মীয়তাৰ প্ৰভেদ, সময় তথা সমাজ পৰিবৰ্তনৰ লগে লগে ভাষা এটালৈ আমদানি হোৱা বহিঃভাষাৰ শব্দৰ পয়োভৰ আৰু তাৰেই পৰিণতিত ক্ৰমান্বয়ে ভাষা এটাই স্বকীয়তা হেৰুৱাই পেলোৱা আৰু অৱশেষত মৃত্যুৰ মুখলৈ ধাৱমান হোৱা আদিৰ দৰে স্পৰ্শকাতৰ বিষয় কিছুমান গল্পকাৰ ঠংচিয়ে অৱতাৰণা কৰিছে।

কেৱল সেয়ে নহয়, ভাষা এটা সন্দৰ্ভত বৰ্তি থকা কিছুমান ভ্ৰান্ত ধাৰণাও এই গল্পত উদঙাই দিয়া হৈছে।' বুগুন' ভাষাটো ভাষা নহয়, ই এটা দোৱানহে; এনেধৰণৰ ভুল ধাৰণা এটা প্ৰচলিত হৈ থকাৰ প্ৰসংগেৰে গল্পকাৰে দিল্লী জৱাহৰলাল নেহৰু ইউনিভাৰ্চিটিৰ ভাষা-গৱেষক প্ৰফেছৰজনৰ দ্বাৰা এই কথা স্পষ্ট কৰাইছে যে 'বুগুন' ভাষাটো দোৱান বুলি স্কুলত ভুলকৈ পঢ়োৱা হৈছে। কিতাপতো ভুল কথাহে সন্নিৱিষ্ট হৈ আছে। মৃতপ্ৰায় ভাষা-সম্পৰ্কীয় গৱেষণাৰ উদ্দেশ্যে তেওঁলোকৰ গাঁওলৈ অহা এইগৰাকী প্ৰফেছৰৰ মাধ্যমেৰে গল্পকাৰে কেৱল 'বুগুন' ভাষাটোৰ মৰ্যাদা ৰক্ষা কৰাই নহয়, বৰং সামগ্ৰিকভাৱেও মাতৃভাষা সম্পৰ্কে এক উচ্চ ভাবধাৰা প্ৰতিষ্ঠা কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। এই চৰিত্ৰটোৰ দ্বাৰা গল্পকাৰ ঠংচিয়ে মাতৃভাষাৰ প্ৰতি মানুহে পুহি ৰখা হীনমন্যতাবোধ দূৰ কৰাৰো প্ৰয়াস কৰিছে।গল্পটোত কোৱা হৈছে—

"মানুহে যি ভাষাত মনৰ ভাব প্ৰকাশ সম্পূৰ্ণভাবে কৰিব পাৰে সেই ভাষা আনৰ ভাষাৰ তুলনাত দুখীয়া কেতিয়াও হ'ব নোৱাৰে।"(১৯২)

'মৃত্যু' গল্পটোৰ আন এক লক্ষ্যণীয় বৈশিষ্ট্য এয়ে যে, ইয়াত যদিও কেৱল 'বুগুন' ভাষাটোৰ অস্তিত্ব ৰক্ষা-সম্পৰ্কীয় কথাই প্ৰাধান্য পাইছে, তথাপি প্ৰসংগক্ৰমে অন্য ভাষা কেতবোৰলৈ আহি পৰা অশনি সংকটৰ কথাও উনুকিওৱা হৈছে। মাতৃভাষা ৰক্ষাৰ উদ্দেশ্যে অনুষ্ঠিত সভাখনতে উপস্থিত থকা 'পেনজে' বোলা গ্ৰাম-পঞ্চায়ত মেম্বাৰজনে অৰুণাচলৰ অন্য জনজাতিৰ মাজতো হিন্দীৰ প্ৰাধান্যৰ দিশটো আঙুলিয়াই দিছে। একেদৰে 'চোজু' নামৰ আন এগৰাকী সচেতন ব্যক্তিয়েও "দিৰাঙৰ মনপা ল'ৰা-ছোৱালী, ৰূপাৰ চেৰদুকপেন ল'ৰা-ছোৱালী, জামিৰীৰ অঁকা ল'ৰা-ছোৱালী আৰু নাফ্ৰাৰ মিজি ল'ৰা-ছোৱালীয়েও আজিকালি নিজৰ নিজৰ ভাষা ক'ব নোৱাৰা হ'ল(১৯২-১৯৩) বুলি দুঃখ প্ৰকাশ কৰিছে।

সমগ্ৰ অৰুণাচলৰে জনজাতিসমূহৰ মাজত মাতৃভাষাৰ শোচনীয় ৰূপৰ কথা জানিব পাৰি উদ্বিগ্ন হৈ পৰা ইণ্ডি ফিনয়াৰ জৰিয়তে গল্পকাৰে ভাষাৰ এনে দুঃৰৱস্থাৰ প্ৰেক্ষাপটত চৰকাৰৰ ভূমিকা সম্পৰ্কেও প্ৰশ্ন উত্থাপন কৰাইছে।

এই প্ৰশ্নৰ আধাৰতে অৰুণাচলত হিন্দী ভাষাৰ আধিপত্যৰ অন্যতম মূল কাৰণ হিচাপে এই ৰাজ্যৰ কোনো এটা উমৈহতীয়া ভাষা নথকাৰ দিশটো আঙুলিয়াই দিয়া হৈছে। যাৰ বাবে চৰকাৰী বিষয়াসকলেও ইংৰাজী অথবা হিন্দীতহে কথা-বতৰা পাতে। এই প্ৰসংগৰ আঁত ধৰি অদূৰ ভৱিষ্যতে যে হিন্দীয়েই এই ৰাজ্যৰ সকলো জনজাতিৰ মাতৃভাষা হৈ পৰিব সেই শংকাও ব্যক্ত কৰা হৈছে। ভাষাৰ লগতে সংস্কৃতিও হেৰাই যোৱাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত এদিন সঁচাকৈ 'বুগুন'অথবা আদি,আপাটানি, নিচি, মনপা আদি কালৰ বুকুত হেৰাই যাব। এই শংকাত শোকাহত হৈ চোজুৱে অস্বাভাৱিক আচৰণ কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিছে। প্ৰথমাৱস্থাত অট্টহাস্য কৰি পাছলৈ তেওঁ হুকহুকাই কান্দি দিছে। চোজুৰ এই হুঁহা-কন্দাৰ অন্তৰালত নিহিত হৈ আছে এক অবৰ্ণনীয় কৰুণ্য। তেওঁ কৈছে—

"নাকান্দি কি কৰিম ? কান্দিবই লাগিব। যিদিনা আমাৰ ভাষাৰ মৃত্যু হ'ব সেইদিনা কান্দিবলৈ কোনো মানুহ নাথাকিব। হয়তো আমাৰ মাজৰে এজন এই পৃথিৱীত আমাৰ বুগুন ভাষা কোৱা শেষ মানুহ হ'ব আৰু সেই শেষ মানুহজন

মৰিলে কোনো কন্দা মানুহ নাথাকিব। সেই কাৰণেই মোৰ আজিয়ে কান্দি থবৰ মন গৈছে।" (১৯৪)

চুজোৰ এই বেদনাদায়ক উক্তিৰ মাজত নিহিত হৈ আছে নিজৰ আপোন মাতৃৰ মুখৰ ভাষাটো ৰক্ষা কৰিব নোৱাৰাৰ অসহায়বোধ আৰু প্ৰচণ্ড শোক। এই শোকৰ পৰিণতিস্বৰূপেই তেওঁলোকে পাৰ্যমানে ভাষাটো ৰক্ষণাবেক্ষণ দিবৰ বাবে চিন্তা-চৰ্চা কৰিছে। প্ৰত্যেকেই নিজ নিজ ধৰণে উদ্যোগ লৈছে। ঘৰৰ ভিতৰত নিজৰ ভাষাত কথা পতাৰ সংকল্প লোৱাৰ উপৰি স্কুলতো হিন্দী-ইংৰাজীৰ লগতে তৃতীয় ভাষা হিচাপে 'বুগুন' ভাষা পঢ়িবলৈ চৰকাৰক খাটনি ধৰিবলৈ মনস্থ কৰিছে। আনকি 'দাম্বিং' নামৰ শিক্ষকজনে লিপি আৰু কিতাপ নোহোৱা 'বুগুন' ভাষাটোৰ লিপি উদ্ভাৱন কৰাতো মনোনিৱেশ কৰিছে।

বুগুন গাঁৱৰ এইসকল ব্যক্তিৰ মাতৃভাষা ৰক্ষাৰ স্বেচ্ছাই গ্ৰহণ কৰা উদ্যোগ তথা তেওঁলোকৰ ত্যাগ আৰু কষ্টৰ দ্বাৰা গল্পকাৰে সেই একাংশ গাঁওবাসীৰ ভাষা-প্ৰীতি আৰু সচেতনতাৰ ছবিখন আন্তৰিকভাৱে অংকন কৰিছে। কিন্তু তাৰ লগে লগে এই কথাও স্পষ্ট কৰিছে যে সেই এমুঠিমান ব্যক্তিৰ আহোপুৰুষাৰ্থৰ বিপৰীতে অন্য মানুহসকলে নিজ নিজ সংকল্পৰ ক্ষেত্ৰত শিথিল হৈ পৰিছে। সমান্তৰালভাৱে দুৰ্ঘটনাগ্ৰস্ত হৈ দাম্বিঙৰ মৃত্যু আৰু বেমাৰত আক্ৰান্ত হৈ অগা-পিছাকৈ পেনজে আৰু চোজুৰ মৃত্যুৱে ভাষাটো জীয়াই ৰখাৰ শেষ আশাকণতো যেন চেঁচা পানী ঢালিছে। গল্পটোত কোৱা হৈছে—

"কিন্তু ভাষাৰ জানো কেতিয়াবা মৃত্যু হয়? অথচ এতিয়া তাকেই হ'বলৈ গৈ আছে, যি এটা আশাৰ থল আছিল দাম্বিঙৰ মৃত্যুৰ লগে লগে সেই আশাও নিৰ্বাপিত হৈ গ'ল।" (196)

পৰৱৰ্তী সময়ত এজন-দুজনকৈ মাতৃভাষা ক'ব পৰা মানুহৰ মৃত্যুৰ পাছত অৱধাৰিতভাৱে "নিজ বুগুন ভাষা জনা মানুহৰ ভিতৰত জীয়াই থাকিল মাথোঁ ইণ্ডি ফিনয়া।"(১৯৫)

অৱশেষত চুজোৱে কোৱাৰ দৰেই ইণ্ডি ফিনয়া হৈ পৰিল বুগুন ভাষা কোৱা পৃথিৱীৰ শেষৰজন ব্যক্তি। এই শেষৰজন ব্যক্তিজনে শেষ পৰ্যন্ত অকলশৰেই যুঁজ দিছে মাতৃভাষাটো জীয়াই ৰাখিবলৈ। তেওঁ অহৰহ চিন্তা কৰিছে পিছৰ প্ৰজন্মটোক ভাষাটো শিকাবলৈ, কিন্তু তেওঁ বিফল হৈছে। তেওঁৰ চৌপাশৰ মানুহবোৰে তেওঁৰ মুখৰ ভাষাটো বুজিবলৈ অপাৰগ হৈছে। গল্পকাৰে কৈছে—

"এইবিলাক কাৰণত বুঢ়া এটা সময়ত নিশ্চিত হ'ল তেওঁৰ মৃত্যুৰ পাছত বুগুন ভাষাৰ কোনো শব্দ-তৰংগ এই পৃথিৱীত আৰু ভাহি নুঠে।"(১৯৬)

ইমানৰ পাছতো ইণ্ডি ফিনয়া আশাবাদী হৈ ৰৈছে। তেওঁৰ মন-মস্তিষ্কত ক্ৰিয়া কৰি থকা চিন্তা-ভাবনাৰ মাধ্যমেৰে গল্পকাৰ ঠংচিয়ে নিৰাশাৰ মাজতো এধানমান আশাৰ ৰেঙনি দেখুৱাইছে। কাৰণ ইণ্ডি ফিনয়াই ভাবিছে, দাম্বিং, পেনজে আৰু চোজুৰ দৰে কোনোবাই কেতিয়াবা হয়তো মৃত 'বুগুন' ভাষা উদ্ধাৰৰ বাবে আগবাঢ়ি আহিব পাৰে। তেনে এটি আশা লৈয়ে ইণ্ডি ফিনয়াই জীৱনৰ শেষৰ সময়কণ দিন-ৰাতি একাকাৰ কৰি খোৱা-বোৱা পৰিত্যাগ কৰিকোনোবাই আনি দিয়া টেপ- ৰেকৰ্ডাৰ এটাত 'বুগুন'ভাষাটো বাণীবদ্ধ কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰি দিছে। এই কাৰ্যকলাপৰ বাবে তেওঁ অন্য মানুহৰ চকুত 'পাগল' হিচাপে পৰিগণিত হৈছে। জীৱনৰ অন্তিম সময়লৈকে সৰ্বস্ব উজাৰি নিজ ভাষাটো জীয়াই ৰখাৰ বাবে অপ্ৰাণ চেষ্টা কৰা ইণ্ডি ফিনয়াৰ এদিন মৃত্যু হৈছে। এই মৃত্যুৰ ছবিখন গল্পকাৰে তুলি ধৰিছে এনেদৰে—"এদিন নাতি-বোৱাৰীয়ে ভাত দিবলৈ গৈ দেখিলে বুঢ়া টেপ ৰেকৰ্ড সাবটি শুই আছে। নাতি- বোৱাৰীয়ে বুঢ়াক জগাবলৈ গৈ দেখিলে বুঢ়া আৰু জীয়াই থকা নাই। টেপ ৰেকৰ্ড সাবটি থাকিয়েই তেওঁ মৃত্যুকো সাবটি লৈছে।" (১৯৭)

এইখিনিতে য়েছে দৰজে ঠংচিৰ 'মৃত্যু' গল্পটোৰ নামকৰণে সাৰ্থকতা লাভ কৰিছে। কাৰণ ইণ্ডি ফিনয়াৰ মৃত্যু মানে কেৱল তেওঁৰ মৃত্যু নহয়; এই মৃত্যু হৈছে এটা ভাষাৰ মৃত্যু। গল্পকাৰে সেয়ে এই মৃত্যুক পৃথিৱীত অহৰহ ঘটি থকা সাধাৰণ মৃত্যু নহয় বুলি মন্তব্য দিছে। তেওঁ কৈছে যে, ইণ্ডি ফিনয়াৰ মৃত্যু মানে পৃথিৱীৰ বুকুৰ পৰা এটা ভাষাৰ মৃত্যু ঘটি নিশ্চিহ্ন হৈ যোৱাৰ মৃত্যু। এই কাৰুণ্যই চূড়ান্ত ৰূপ পৰিগ্ৰহণ কৰিছে তেতিয়া, যেতিয়া গল্পটোৰ একেবাৰে শেষত কোৱা হৈছে যে ইণ্ডি ফিনয়াৰ মৃত্যুৰ পাছত নিয়ম অনুসৰি তেওঁৰ মৃতদেহৰ সৈতে সমাধিস্থ কৰা সকলো বয়-বস্তুৰ সৈতে বুগুন ভাষা বাণীবদ্ধ কৰি থৈ যোৱা টেপ-ৰেকৰ্ডাৰটোও পুতি পেলোৱা হৈছে। তাৰ লগে লগে বুগুন ভাষাৰ শেষ অৱশিষ্টকণো পৃথিৱীৰ বুকুৰ পৰা সমূলঞ্চে নিশ্চিহ্ন হৈ পৰিছে।

যেছে দৰজে ঠংচিৰ 'মৃত্যু' গল্পটোত এনেদৰেই এগৰাকী ব্যক্তিৰ মৃত্যুৰ দ্বাৰা এটা ভাষা শেষ হৈ যোৱাৰ করুণ ছবিখন স্পৰ্শকাতৰভাৱে অংকিত হৈছে; য'ত প্রতিফলিত হৈছে ইণ্ডি ফিনয়া নামৰ বুগুনভাষী অন্তিম ব্যক্তিগৰাকীৰ মাতৃভাষাৰ প্রতি চূড়ান্ত প্রেম আৰু দায়বদ্ধতাৰ এখন মর্মস্পশী তথা অনুপ্ৰেৰণামূলক কাহিনী। সমান্তৰালভাৱে গল্পটোত প্রকাশ পাইছে অন্য এচাম মানুহৰ নিজ ভাষাৰ প্রতি চৰম অৱহেলা তথা নতুন প্রজন্মৰ উদাসীনতা। গল্পকাৰ ঠংচিৰ 'মৃত্যু' গল্পটো এনেদৰেই হৈ পৰিছে ভাষা এটাৰ মৃত্যুৰ অন্তৰালৰ অসংখ্য কাৰক অথবা কাৰণৰ এক স্বচ্ছ প্রতিবিম্ব।

উপসংহাৰ ঃ

যেছে দৰজে ঠংচিৰ 'মৃত্যু' গল্পটো যথার্থতে এটি আধুনিক মানুহ আৰু সমাজখনৰ বাবে প্রাসংগিক গল্প। এই গল্পত বর্ণিত মর্মন্তুদ কাহিনীৰ মাজেৰে কেৱল অৰুণাচলৰ বুগুন ভাষাটোৰে নহয়, বৰঞ্চ বুগুনৰ দৰে পৃথিৱীৰ প্রতিটো জনগোষ্ঠী অথবা ক্ষুদ্র জাতিসত্তাৰ ভাষা সংস্কৃতিৰ অস্তিত্বৰ প্ৰতি অহা ভাবুকিৰ পূৰ্বাভাস দাঙি ধৰা হৈছে। গল্পটোৱে মানুহক মাতৃভাষা ৰক্ষণাবেক্ষণৰ প্রতি সচেতন কৰি তোলাৰ লগতে ইণ্ডি ফিনয়া অথবা চোজু ,দাম্বিং, পেনজে আদিৰ দৰে ব্যক্তিসকলৰ ভাষা-প্ৰেম তথা মাতৃভাষাটো জীয়াই ৰখাৰ স্বার্থত তেওঁলোকৰ সদিচ্ছা, উদ্যোগ, ত্যাগ আদিয়ে সকলোকে নিজ নিজ ভাষাৰ মৰ্যদা আৰু গৰিমাৰ অক্ষুন্ন ৰাখিবলৈ উদ্বুদ্ধ কৰিব। একে আষাৰে ক'ব পাৰি যে, কেৱল এটি হৃদয়স্পৰ্শী কাহিনীৰ বাবেই নহয়; বৰং কাহিনীটোৰ মাধ্যমেৰে প্ৰেৰণ কৰা এক গুৰুত্বপূর্ণ বাৰ্তাৰ বাবেও যেছে দৰজে ঠংচিৰ 'মৃত্যু' গল্পটো অসমীয়া সাহিত্যৰ জগতত এটি ব্যতিক্রমী তথা মূল্যৱান গল্প স্বৰূপে চিহ্নিত হৈ ৰ'ব। ❑

উৎস ঃ

ঠংচি, যেছে দৰজে। মৃত্যু। *ধাৰ আৰু অন্যান্য গল্প*। গুৱাহাটী ঃ বনলতা, দ্বিতীয় প্রকাশ, ২০২৩। মুদ্রিত।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যৰ ভাষা সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক পৰ্যবেক্ষণ

ঋতুপৰ্ণা শইকীয়া

বিষয়সাৰ ঃ

ভাষা হৈছে মানুহৰ ভাৱ প্ৰকাশৰ এক বলিষ্ঠ মাধ্যম। ভাষাৰ সহায়ত মানুহে মনৰ ভাৱ আনৰ আগত প্ৰকাশ কৰিব পাৰে। ভাৰতবৰ্ষত বৈদিক যুগৰে পৰা ঋষি-মুনি সকলে ভাষাৰ বিজ্ঞানসন্মত অধ্যয়ন কৰিছিল। খ্ৰীঃ পূঃ প্ৰায় ২৫ বছৰৰ আগতেই ঋকবেদৰ মুক্ততেই ভাষা সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা শুভাৰম্ভ হয়। খ্ৰীঃপূঃ প্ৰায় পঞ্চম শতিকাৰ পাণিনিৰ অষ্টাধ্যায়ী ব্যাকৰণতেই ভাষাৰ বিজ্ঞানসন্মত চিন্তা-চৰ্চাৰ বীজ অংকুৰিত হৈছিল। পাণিনিৰ ব্যাকৰণৰ ৰচনাৰ পাছতেই অন্যান্য বৈয়াকৰণিক কাত্যায়ন, পতঞ্জলি আদিয়ে পাশ্চাত্য ভাষাবিজ্ঞানীসকলৰ ভাষাৰ চিন্তা-চৰ্চাক উজ্জীৱিত কৰি তোলে। এনেদৰেই ভাৰতবৰ্ষৰ বিভিন্ন অঞ্চলৰ লগতে উত্তৰ -পূৰ্বাঞ্চলতো ভাষা সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চাৰ সূচনা হ'বলৈ ধৰে।

মিছনেৰীসকলে ঊনবিংশ শতিকাত অসমত ভাষা-সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চাৰ আৰম্ভণি ঘটায়। পৰৱৰ্তী সময়ত জৰ্জ আব্ৰাহম গ্ৰীয়াৰ্ছন, দেৱানন্দ ভৰালী, ডিম্বেশ্বৰ নেওগ, বেণীমাধৱ বৰুৱা, কালিৰাম মেধি, বাণীকান্ত উপেন্দ্ৰনাথ গোস্বামী, গোলোকচন্দ্ৰ গোস্বামী, প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্য আদিয়ে অসমৰ ভাষাসমূহৰ বিষয়ে বৈজ্ঞানিক দৃষ্টিভংগীৰে আলোচনা-বিলোচনা কৰে। যেনেদৰে গোলোকচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে অসমীয়া ব্যাকৰণৰ সংস্কৰণ আৰু সংশোধন ঘটায় ঠিক তেনেদৰে বড়ো ভাষা বা বড়ো সম্প্ৰদায়ক স্বীকৃতি দিব নোখোজা একাংশ বুদ্ধিজীৱিৰ বিপৰীতে গৈ প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যই বড়ো ভাষাক বিশ্বৰ পৰিয়ালত প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল। ভট্টাচাৰ্যই ভাষা সম্পকীয় চিন্তা-চৰ্চাৰে ভাষাচৰ্চাৰ ক্ষেত্ৰখনলৈ গুৰুত্বপূৰ্ণ বৰঙণি আগবঢ়াই থৈ গৈছে। আমাৰ এই আলোচনাত প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যৰ 'A Descriptive Analysis of the Bodo Language' গ্ৰন্থখনত বড়ো ভাষাৰ ধ্বনিতত্ত্ব, ৰূপতত্ত্ব, বাক্যতত্ত্ব সম্পৰ্কে কেনেদৰে আলেচনা কৰা হৈছে সেই বিষয়ে বিস্তৃত আলোচনা আগবঢ়োৱা হৈছে।

এই আলোচনা পত্ৰখনত মূলত ঃ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

সূচক শব্দ ঃ

বড়ো ভাষা, ধ্বনিতত্ত্ব, ৰূপতত্ত্ব, বাক্যতত্ত্ব, বৈজ্ঞানিক দৃষ্টিভংগী, জনজাতীয় ভাষা।

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
অসম বিশ্ববিদ্যালয়, ডিফু চৌহদ
কাৰ্বি আংলং, ডিফু (অসম) -৭৮২৪৬২
৮৪৭১৮২০৭৪২!
rituparnasaikia121@gmail.com

০.০ প্ৰস্তাৱনা ঃ

০.১ আলোচ্য বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

অসমৰ জনজাতীয় ভাষাৰ গৱেষণাৰে বিদ্যায়তনিক ক্ষেত্ৰত আলোড়নৰ সৃষ্টি কৰা আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় খ্যাতি সম্পন্ন ভাষাবিদ গৰাকী হ'ল, প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্য। অসমত ভাষা সম্পৰ্কীয় চিন্তাৰ এক মাইলৰ খুঁটি হ'ল, ১৯৭৭ চনত প্ৰকাশিত ভট্টাচাৰ্যৰ 'A

Descriptive Analysis of the Bodo Language' গ্ৰন্থখন। এইখন ১৯৫৫ চনত গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ত দাখিল কৰা গৱেষণা কৰ্মৰ গ্ৰন্থৰূপ। গ্ৰন্থখন পাশ্চাত্যৰ বৰ্ণনাত্মক ভাষাবিজ্ঞানৰ আদৰ্শত প্ৰতিষ্ঠিত। আঠটা অধ্যায়ত বিভক্ত গ্ৰন্থখন বড়ো ভাষাৰ অধ্যয়নৰ আটাইতকৈ গুৰুত্বপূৰ্ণ গ্ৰন্থ। এই গ্ৰন্থখনে বড়ো ভাষাৰ বৈজ্ঞানিক অধ্যয়নৰ বাট মুকলি কৰাই নহয় অসমৰ জনজাতীয় ভাষাবোৰৰ গৱেষণা অধ্যয়নৰ প্ৰতিও গৱেষকসকলক আগ্ৰহী কৰি তুলিলে। ভাষাৰ সাধক প্ৰমোদ ভট্টাচাৰ্যৰ প্ৰকাশিত গ্ৰন্থৰ সংখ্যা সীমিত যদিও অসমৰ লগতে সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষ তথা বিশ্বৰ বিভিন্ন পত্ৰিকাত তেখেতৰ অনেক প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ হৈছে। 'প্ৰতিনিধি ভাষা নিৰন্ধ', 'অসমৰ ভাষা পৰিচয়', 'অসমত ভাষা বৈজ্ঞানিক চৰ্চা', 'Aspect of North East Indian Language', গ্ৰন্থখনত ভাষা বিষয়ক চাব্বিশটা প্ৰবন্ধ সংকলিত হৈছে। ইয়াৰ বেছিভাগ প্ৰবন্ধই জনজাতীয় ভাষা সম্পৰ্কীয়। আনহাতে ভট্টাচাৰ্যই বিভিন্ন ঠাইত কেইবাটাও বক্তৃতা প্ৰদান কৰিছে আৰু বক্তৃতাবোৰেও অসমৰ ভাষা বিজ্ঞানৰ চৰ্চাত সহায় কৰিছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যৰ ভাষা সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক পৰ্যবেক্ষণ শীৰ্ষক অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ এনেধৰণৰ -

ক) ভাষা চৰ্চাবিদ প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যৰ ভাষা চৰ্চাৰ চমু আলোচনা আগবঢ়োৱা ।

খ) ভট্টাচাৰ্যৰ A Descriptive Analysis of the Bodo Language গ্ৰন্থৰ ধ্বনিতাত্ত্বিক বিশ্লেষণ আগবঢ়োৱা।

গ) ভট্টাচাৰ্যৰ নিৰ্বাচিত গ্ৰন্থখনৰ ৰূপতাত্ত্বিক দিশটোৰ আলোচনা আগবঢ়োৱা।

ঘ) A Descriptive Analysis of the Bodo Language গ্ৰন্থৰ বাক্যতাত্ত্বিক দিশটোৰ আলোচনা সামৰা।

ঙ) অসমৰ জনজাতীয় বড়ো ভাষাৰ চৰ্চাৰ ক্ষেত্ৰত ভট্টাচাৰ্যৰ ভাষাতাত্ত্বিক দিশটো পুংখানুংখভাৱে অধ্যয়ন কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

ভাষাবিজ্ঞানৰ বিভিন্ন দিশ সম্পৰ্কে বিভিন্ন সময়ত ভিন্ন ধৰণৰ আলোচনা হৈছে যদিও প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যৰ ভাষা সম্পৰ্কীয় বিষয়ক পদ্ধতিগতভাৱে হোৱা নাই। সেয়ে এই আলোচনাৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ

প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যৰ ভাষা সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক পৰ্যবেক্ষণ শীৰ্ষক আলোচনাৰ পৰিসৰে ভট্টাচাৰ্যৰ ভাষা সম্পৰ্কীয় চমু আলোচনাৰ লগতে A Descriptive Analysis of the Bodo Language গ্ৰন্থৰ ধ্বনিতাত্ত্বিক, ৰূপতাত্ত্বিক আৰু বাক্যতাত্ত্বিক দিশসমূহৰ আলোচনা সামৰা হৈছে লগতে আলোচনাৰ সুবিধাৰ্তে অনুপ কুমাৰ বৰুৱাৰ অসমৰ ভাষা আৰু লিপিৰ পৰিচয় গ্ৰন্থখনৰ কিছু সহায় লোৱা হৈছে ।

০.৫ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যৰ ভাষা সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক পৰ্যবেক্ষণ শীৰ্ষক বিষয়টো আলোচনাৰ বাবে মূলতঃ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে।

১.০ মূল বিষয়ৰ আলোচনা ঃ

প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যই ১৯৭৭ চনত গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ত প্ৰকাশ কৰা গৱেষণা গ্ৰন্থখন হৈছে, 'A Descriptive Analysis of the Bodo Language' । এই গৱেষণা গ্ৰন্থখনৰ জৰিয়তে ভট্টাচাৰ্যই বড়ো ভাষাক বিশ্বৰ ভাষা পৰিয়ালত প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল। গৱেষণা গ্ৰন্থখনৰ গুৰু আছিল বাণীকান্ত কাকতি। কাকতিৰ মৃত্যু হোৱাত সুকুমাৰ সেনৰ তত্ত্বাৱধানত গৱেষণা কাৰ্য সম্পন্ন কৰে। গ্ৰন্থখনত ভূমিকাসহ আঠোটা অধ্যায় আছে। Introduction অংশতত তিব্বত-চীনীয় ভাষা পৰিয়াল, বড়ো ভাষাৰ অৱস্থিতি, ভাষিক জনগোষ্ঠী, বড়ো ভাষাৰ উপভাষা, লিপি, সাহিত্য-সংস্কৃতি সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন দিশ আলোচনা কৰিছে। ভট্টাচাৰ্যই গ্ৰীয়াৰ্ছন আদিকে ধৰি আগৰ আলোচকসকলৰ মতৰ ভিত্তিত বড়ো ভাষাক চীন-তিব্বতীয় ভাষা পৰিয়ালৰ তিব্বতবৰ্মীৰ প্ৰশাখাৰ অসমবৰ্মী শাখাৰ বড়ো- নগা এটি শাখা ভাষা ৰূপে চিহ্নিত কৰিছে। ভট্টাচাৰ্যই বড়ো ভাষাৰ উপভাষাৰ চাৰিটা কথা উল্লেখ কৰিছে -

ক) উত্তৰ পশ্চিম উপভাষা (অবিভক্ত গোৱালপাৰা আৰু কামৰূপ জিলাৰ উত্তৰাঞ্চল)

খ) দক্ষিণ পশ্চিম উপভাষা (দক্ষিণ গোৱালপাৰা, গাৰোপাহাৰ আৰু দক্ষিণ কামৰূপৰ কিছু অংশ)

গ) উত্তৰ মধ্য অসম উপভাষা (দৰং, উত্তৰ লখিমপুৰ আৰু অৰুণাচলৰ কিছু অংশ)

ঘ) দক্ষিণ অসম উপভাষা (নগাঁও, উত্তৰকাছাৰ আৰু কাৰ্বি আংলং আদি অঞ্চল)।

১.১ বড়ো ভাষাৰ ধ্বনিতত্ত্ব সম্পৰ্কীয় আলোচনা ঃ

ভট্টাচাৰ্যই গ্ৰন্থখনৰ প্ৰথম অধ্যায়ত বড়ো ভাষাৰ

ধ্বনিতত্ত্বৰ সকলো দিশ আলোচনা কৰিছে। সেই অনুসৰি বড়ো ভাষাৰ ছটা স্বৰ বৰ্ণৰ কথা উল্লেখ আছে। স্বৰবৰ্ণকেইটা হৈছে, ই, এ, আ, উ, ঔ আৰু অ। (বৰুৱা ৫০) বড়ো ভাষাৰ স্বৰবৰ্ণসমূহ জিভাৰ অৱস্থান আৰু উচ্চতা অনুসৰি তলত দিয়া ধৰণে ভাগ কৰিব পাৰি -

	প্ৰান্তীয়	কেন্দ্ৰীয়	মূলীয়
উচ্চ	ই		উ
মধ্য	এ	ঔ	অ
নিম্ন		আ	

ওপৰৰ স্বৰবৰ্ণসমূহ শব্দৰ আদি, মধ্য আৰু অন্ত্য অৱস্থানত প্ৰয়োগ দেখুৱাব পাৰি -

আদি	মধ্য	অন্ত্য
। ই । ইংফু (পোক)	গিচিফ (বিচনী)	বি (তাই, সি)
।এ । এম (বিচনা)	চেলা (চেলা)	চে (এক)
।উ। উন (পিদু)	গুমা (ফৰিং)	নু দোখা
।অ। অন (মৰম কৰ)	গন (কাঠি)	ন' (ঘৰ)
।আ। আং (মই)	নাৰ (ঠেল)	না (মাছ)
।ঔ। ঔংখাম (ভাত)	ছৌং (সোধ)	বৌ (টনা)

বড়ো ভাষাত মুঠ ১৬ টা ব্যঞ্জনবৰ্ণ পোৱা যায়। সেইকেইটা হৈছে, ফ, ব, থ, দ, খ, গ, ম, ন, ঙ, ছ, জ, হ, ল, ৰ, ৱ, য়। (বৰুৱা ৫৩) এই বৰ্ণবিলাকৰ ভিতৰত -প, ভ, ত, ধ, ক - এই পাঁচোটা বৰ্ণ বড়োভাষাৰ ধ্বনি চাৰিত্ৰিক বৈশিষ্ট্যৰ পৰা হোৱা বৰ্ণ নহয় আৰু আন বৰ্ণকেইটাৰ দৰে সকলো শব্দত সাধাৰণভাৱে ব্যৱহাৰ নহয়। ব্যঞ্জনবৰ্ণকেইটাৰ তালিকাকৰণ কৰি দেখুওৱা হ'ল-

	দৌষ্ঠ্য অঘোষ ঘোষ	দন্তমূলীয় অঘোষ ঘোষ	তালব্য অঘোষ ঘোষ	পশ্চতালব্য অঘোষ ঘোষ	কণ্ঠ্যমূলীয় অঘোষ ঘোষ
স্পৰ্শ	প ব	ত	দ	ক গ	
ধ্বনি	ফ ভ	থ	ধ	খ	
অনুনাসিক	ম		ন	ঙ	
প্ৰবাহ		ছ	জ		হ
পাশ্চিক			ল		
লুঠিত			ৰ		
অৰ্দ্ধস্বৰ	ৱ		য়		

ভট্টাচাৰ্যই বড়ো ভাষাৰ স্বৰবৰ্ণ আৰু ব্যঞ্জনবৰ্ণ কেইটাৰ উপধ্বনি সন্ধি, বিৰাম, অক্ষৰ আদিৰ আলোচনা কৰিছে। তেখেতে বড়ো ভাষাত চাৰিটা সুৰ থকাৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। সেইকেইটা হৈছে, উচ্চ , মধ্য, নিম্ন আৰু সাধাৰণ।

১.২ বড়ো ভাষাৰ ৰূপতত্ত্ব সম্পৰ্কীয় আলোচনা ঃ

ভট্টাচাৰ্যই নিৰ্বাচিত গ্ৰন্থখনৰ তৃতীয় অধ্যায়ত আধুনিক প্ৰাকৃতিক বিজ্ঞানৰ আধাৰত বড়ো ভাষাৰ ৰূপতত্ত্বৰ আলোচনা কৰিছে। চতুৰ্থ অধ্যায়ত ৰূপতাত্ত্বিক বিশ্লেষণৰ অংশ হিচাপে 'বড়ো ভাষাৰ সব্যয়-অব্যয়, বিভিন্ন পদৰ সৈতে প্ৰত্যয়ৰ প্ৰয়োগ, যেনে কাৰক বিভক্তি, ক্ৰিয়া বিভক্তি, স্বাৰ্থিক প্ৰত্যয়ৰ লগতে সম্বন্ধ নিৰ্দিষ্টতা, শ্ৰেণী নিৰ্দেশক পৰিমাণবাচক, লিংগবাচক, বচনবাচক ইত্যাদি সম্পৰ্কে বিস্তাৰিতভাৱে আলোচনা কৰিছে। বড়ো ভাষাৰ সব্যয় শব্দবোৰক বিশেষ্যসদৃশ আৰু ক্ৰিয়া সদৃশ এই দুই শ্ৰেণীত বিশেষ্য, সৰ্বনাম, সংখ্যাবাচক শব্দ আৰু ক্ৰিয়াসদৃশ শব্দৰ শ্ৰেণীত ক্ৰিয়া, বিশেষণ আৰু ক্ৰিয়া বিশেষণৰ অন্তভূৰ্ক্ত কৰিছে।

কাৰক অনুযায়ী বিভক্তিৰ ব্যৱহাৰ কৰিছে এনেদৰে ,

কৰ্তা কাৰক ঃ- –o, আ, আ

কৰ্ম কাৰক ঃ- –o, আ, আ

কৰণ কাৰক ঃ- জৌং, ছৌং

সম্প্ৰদান কাৰক ঃ - নৌ

সম্বন্ধবাচক কাৰক ঃ- নি, হা, আ

অপাদান কাৰক ঃ- আউ- নিআউ।

আনহাতে বড়ো ভাষাত লিংগৰ পাৰ্থক্য বুজাবলৈ তিনিটা সুকীয়া পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰে। সেইকেইটা হৈছে এনেধৰণৰ -

ক) পুং আৰু স্ত্ৰীভেদে সুকীয়া বিশেষ্য শব্দ প্ৰয়োগ কৰি। যেনে, হোৱা (মতা মানুহ) -হিনজাৱ (মাইকী মানুহ)

খ) লিংগ বুজাব লগা বিশেষ্য শব্দটোৰ আগতে মাওজি, ওমা , বৌৰ্‌য়া , মৌয়, মৌচুৰ, মৌয়দাৰ শব্দ যোগ কৰি পুলিংগ আৰু স্ত্ৰীলিংগ বুজোৱা হয়।

পুলিংগ	স্ত্ৰীলিংগ
মাওজি বোন্দা (বোন্দা)	মাওজি বোন্দি (জাঁই)
ওমা বোন্দা (মতা গাহৰি)	ওমা বোন্দি (মাইকী গাহৰি)

গ) লিংগভেদ কৰিবলৈ বিশেষ্য শব্দৰ পাছত চৌন ; চ্‌ি আঃ ই প্ৰত্যয় যোগ হয় । ইয়াৰে আ-

পুলিংগসূচক আৰু ই- স্ত্ৰীলিংগসূচক।

পুলিংগ	স্ত্ৰীলিংগ
বোন্দা (মতা মেকুৰী)	বোন্দি (মাইকী মেকুৰী)

১.৩ বড়ো ভাষাৰ বাক্যতত্ত্ব সম্পৰ্কীয় আলোচনা

বড়ো ভাষাৰ বাক্যবোৰ তিনিটা ভাগত ভাগ কৰা হৈছে। সেইকেইটা হৈছে , সৰল , মিশ্ৰ আৰু যৌগিক।

সৰল বাক্যৰ উদাহৰণ যেনে -

মানচি আঁং আঁখাম জাদোঁং (মানুহবোৰে ভাত খাইছে)

মিশ্ৰ বাক্যৰ উদাহৰণ -

জেৰাওমি জায়া মানচিয়া মাআঁনা জানাংগৌ (য'তে হওঁক মানুহে কাম কৰি খাব লাগে)

যৌগিক বাক্যৰ উদাহৰণ -

ৰাম আৰৌ হৰি চানাইজং বেওথা (ৰাম আৰু হৰি দুয়োজনে তাত থাকিব)

কাৰ্য অনুসৰি বড়ো ভাষাৰ বাক্যবোৰক তলত দিয়া ধৰণেৰে ভাগ কৰিব পাৰি -

ক) বিশেষণ স্থানীয় - ফ্রি ফ্রি অখা (কিনকিনীয়া বৰষুণ)

খ) ক্রিয়া বিশেষণ স্থানীয় - ব্রা ব্রা মাউ (জোৰপূৰ্বক কৰ)

গ) সংযোজক অব্যয় - নৌং আৰৌ আং (তুমি আৰু মই)

ঘ) ভাৱবোধক অব্যয় - হাকাব মা জাখৌ (হায়হু কি হ'ল)

ঙ) প্রশ্নবোধক - বি থাংগৌননা (সি যাব নেকি ?)

চ) সম্বোধনবোধক - আঁই গথ' (হেৰা ল'ৰা)

ছ) জোৰ বুজোৰা - আংনৌ জাদোঁং (ময়েই খাইছোঁ)

জ) পশ্চাৎ শব্দ হিচাপে -আংনি বাহেৰা (মোৰ বাহিৰে)

ঝ) তুলনামূলক - জৌৰ যিষণ ঐৱৰ ফিছা (পিতাৰ দৰে পুত্র)

ঞ) সমিধানবোধক - আঁউ, থাংবয় (হয়, গ'ল)

আনহাতে বড়ো ভাষাত অনুজ্ঞআ, অনুৰোধ, প্রশ্নবোধক, জোৰ বুজোৰা আৰু আশীৰ্বাদসূচক বাক্য পোৱা যায় এনেদৰে -

অনুজ্ঞাত ঃ নৌংথাং (তই যা)

অনুৰোধ ঃ নৌং থাংনৌ না? (তুমি খোৰাচোন)

প্রশ্নবোধক ঃ নৌং থাংথাৰ (তুমি নিশ্চয় যাবা)

আশীৰ্বাদসূচক ঃ নৌংহা মৌজাং জাথোঁং (তোমাৰ মংগল হওক) ।

বড়ো ভাষাৰ বাক্যবোৰক অৰ্থ বা ভাৱ অনুসৰিও ভাগ কৰিব পাৰি এনেদৰে -

ক) ইতিসূচক আৰু

খ) নেতিসূচক

ক) ইতিসূচক বাক্য ঃ- বে জাবায় (সি খাইছে)

খ) নেতিবাচক বাক্য ঃ- বে জায়াখৈ (সি নাখালে)।

২.০ উপসংহাৰ

প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যৰ 'A Descriptive Analysis of the Bodo Language' নামৰ গ্ৰন্থখনত চীন-তিব্বতীয় ভাষা পৰিয়ালৰ অন্তৰ্গত অসম বৰ্মী উপশাখাৰ বড়ো ভাষাৰ ধ্বনিতত্ত্ব, ৰূপতত্ত্বৰ লগতে বাক্যতাত্ত্বিক দিশটোৰে ভাষাতত্ত্বৰ দৃষ্টিভংগীৰে সুন্দৰৰূপত আলোচনা সামৰিছে। তেখেতে গ্ৰন্থখনত ধ্বনিতত্ত্ব, ৰূপতত্ত্ব আৰু বাক্যতত্ত্ব এই আটাইকেইটা দিশ সামৰিছে যদিও বাক্যতত্ত্ব সম্পৰ্কত বৰ বিশেষ পুংখানুপুংখ অধ্যয়ন চকুত নপৰে। তথাপিও এনেধৰণৰ অধ্যয়নে বড়ো ভাষাৰ ভিন্ন দিশৰ ভাষাতাত্ত্বিক অধ্যয়নৰ বাট মুকলি কৰিছে। ❑

প্রসঙ্গ সূত্র ঃ

বৰুৱা , অনুপ কুমাৰ । অসমৰ ভাষা আৰু লিপিৰ পৰিচয়। কৌস্তুভ প্ৰকাশন, দ্বিতীয় সংস্কৰণ, ২০১৬ পৃ. ৫০।

উল্লিখিত, পৃ. ৫৩।

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

গোস্বামী, গোলোকচন্দ্ৰ। *অসমীয়া বৰ্ণপ্ৰকাশ* । বীণা লাইব্ৰেৰী। প্ৰথম সংস্কৰণ, ১৯৬৯।

গোস্বামী, উপেন্দ্ৰনাথ। *অসমীয়া ভাষাৰ উদ্ভৱ সমৃদ্ধি আৰু বিকাশ* । মণি-মাণিক প্ৰকাশ। প্ৰথম সংস্কৰণ, ১৯৯১।

শৰ্মা , দীপক কুমাৰ। *অসমৰ ভাষা বিজ্ঞানী আৰু ভাষা বিজ্ঞান চৰ্চা* । বনলতা। প্ৰথম সংস্কৰণ, ২০১৭।

ডেকা , খগেশসেন। *ব্যাকৰণ ঃ তত্ত্ব আৰু তাত্ত্বিক* । বান্ধৱ। প্ৰথম সংস্কৰণ, মে, ২০১৭।

মহন্ত, দীপকজ্যোতি। *অসমত ভাষা সম্পৰ্কীয় অধ্যয়নৰ গতি- প্ৰকৃতি* । ন প্ৰিণ্ট এণ্ড পাব্লিকেশ্যন । প্ৰথম সংস্কৰণ, ফেব্ৰুৱাৰী, ২০১৯।

Bhattacharya, Pramod Chandra. *A Descriptive Analysis of the Bodo Lan guage* . Department of Publication , Gauhati University, 1977.

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कराकर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2500 और अधिकतम 3000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का अनुपालन करना होगा।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल होंगे।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना आवश्यक है।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : ....

पदनाम : ....

पूरा पता : ....

: ....

ई-मेल : .... मोबाइल : ....

RTGS का विवरण : ....

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत		*संस्थागत*	
प्रति अंक	: रु. 100/-	प्रति अंक	: रु. 150/-
वार्षिक	: रु. 1000/-	वार्षिक	: रु. 1,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary	: Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No.	: 551802010004619
Name of Bank & Branch	: Union Bank of India, Hatigaon Chariali, Dispur-781038
IFS Code	: UBIN0555185

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

POSTAL REGISTRATION NO. GH-127/2025-2027 ❖ Date of Publication : 31th March, 2026 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

समिति के कुछ अनमोल प्रकाशन

- ❖ नामघोषा
- ❖ लौहित्य और नीलाचल
- ❖ डाक के वचन
- ❖ दादी की कहानियाँ
- ❖ राह और रोड़े
- ❖ कवच
- ❖ निर्भीक मुक्तियोद्धा
- ❖ प्रागज्योति (हिंदी/असमीया)
- ❖ असमीया साहित्य की रूपरेखा
- ❖ साहित्य समीक्षा
- ❖ आधुनिक असमीया कविता
- ❖ कार्यालयीन हिंदी
- ❖ साहित्य और प्रेम
- ❖ व्यावहारिक आलेखन और टिप्पण
- ❖ राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा
- ❖ ध्रुवस्वामिनी
- ❖ लाचित बरफुकन (काव्य)
- ❖ लाचित बरफुकन (नाटक)
- ❖ पूर्वोत्तर भारत के क्रांतिकारी
- ❖ माँ कामाख्या
- ❖ कुतु और सुमन (बाल उपन्यास)
- ❖ महापुरुष शंकरदेव (सचित्र पुस्तिका)
- ❖ भूपेन दा का सुरीला सफर
- ❖ हिंदी-असमीया शब्दकोश
- ❖ शिवसागर (पर्यटकों के लिए)

■ **प्राप्ति स्थान :** पुस्तक बिक्री विभाग ■ **संपर्क :** 9435146092

संपादकीय कार्यालय :
प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032
arpsguwahati.com rastrasewak51@gmail.com 9101541395/9101541380